योगवासिष्ठ

भाषा

द्वितीय भाग

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

ॐ

सच्चिदानन्दाय नमः

योगवासिष्ठ भाषा

द्वितीय भाग

जिसमें–

छठा निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्धोत्तरार्द्ध है।

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

संस्करण : अगस्त २०१७, सम्वत् २०७४

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग
मुंबई - ४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg.
7 th Khetwadi, Mumbai. 400 004
Tel / Fax : 91 22 23857456

Web Site : http://www.khe_shri.com
E-Mail khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai 400004
at their Shri Venkateshwar Press,
66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411013

ॐ

सच्चिदानन्दाय नमः

योगवासिष्ठ भाषा

द्वितीय भाग

जिसमें

छठा निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्धोत्तरार्द्ध है ।

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

श्रीयोगवासिष्ठ

निर्वाणप्रकरण की अनुक्रमणिका

पूर्वार्द्ध

।।इति योगवासिष्ठ की अनुक्रमणिका समाप्त।।


दशरथराजा
रा.
ल.
श.

परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

षष्ठं निर्वाणप्रकरणं–प्रारभ्यते ।

(पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः १

दिवसरात्रि व्यापारवर्णनम् ।

श्रीवाल्मीकिजी बोले–हे भरद्वाज! उपशम प्रकरण के अनन्तर तुम निर्वाण प्रकरण सुनो, जिसको जानकर निर्वाण पद की प्राप्ति होगी, मुनिनायक श्रीवसिष्ठ महाराज ने बहुत ही उत्तम ढंग के साथ श्रीरामचन्द्रजी के प्रति उत्तम वचन कहे हैं और जैसे श्रीवसिष्ठजी महर्षि परमोत्तम वक्ता हैं, उसी प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराज अपूर्व श्रोता हैं जो मुनिवर के कहे गूढातिगूढ तत्व को दत्तचित्त होकर सुनते हुए अनायास हृदयसंगत कर लेते हैं और उस पर खूब विचार करते हैं और भी जितने राजा लोग तथा राजकुमार हैं सबके तल्लीन हो जाने के कारण ऐसे निःस्पन्द हो रहे हैं कि मानों कागज पर

लिखी हुई मूर्तियाँ हैं, परन्तु सम्यक् रूप से अवगतार्थ होने पर जब कभी विशेष आनन्द आने लग जाता है तो सिर हिलाने लगते हैं, करवट बदल कर मुहं को दूसरी ओर फिराते हुए अति विस्मित हो रहे हैं, कि जिस जगत् को सत्य जानते थे वह है ही नहीं, कैसा आश्चर्य है, अति विचित्र लीला है, ऐसे ही विचार विमर्श हो रहा था कि दिन का चतुर्थ भाग समाप्त हुआ सूर्यदेव अस्त हुए, मानों वसिष्ठजी के वचन सुनकर सूर्यदेव को भी इसका फल मिला है कि शीतलता आ गयी उष्णता जाती रही, वहां स्वर्ग से आये हुए देवगण भी बैठे थे उनकी कण्ठस्थ पुष्मालाएं पवन के चलने से उस स्थान को परम सुगन्धित करने लगीं, फूलों पर भ्रमर गूँजने लगे, झरोखों के मार्ग से सूर्य की किरणें आकर देवता सिर पर के सूर्यमुखी कमलों पर पड़ रही हैं वे सूखकर जल रहे हैं। जैसे मन से जगत् की सत्ता निवृत्त हो जाने से मनोवृत्ति संकुचित हो जाती है ऐसे सूख गये, सभा में जो बालक बैठे थे और पिंजरों कें जो पक्षी पड़े थे उनके भोजन का समय आ गया, बालकों को भोजन कराने माताएं उठीं और इधर चौथे पहर के सूचक नौवत नक्कारे भेरी सहनाई आदि बाजे बजने लगे, वसिष्ठजी ऊँचे स्वर से कथा कह रहे थे, परन्तु फिर भी उनकी कथा का शब्द बाजों के शब्द से आच्छादित हो गया, जैसे वर्षाकाल का मेघ गर्जता है, मोर चुप हो जाते हैं, ऐसे ही वसिष्ठजी चुप हो गये, वह ऐसा शब्द हुआ कि जिससे आकाश पृथिवी तथा सब दिशाएं भर गयी, पिंजरों में पक्षी फडफड शब्द करने लगे। पंखों को पसारते और कांपते थे, जैसे भूकम्प आने पर लोक कांपते हैं और चिल्लाते हैं, यही दशा पक्षियों की थी, बालक भय के मारे माताओं के साथ चिपक गये, उस समय मुनिशार्दूल श्री वसिष्ठजी ने सब लोगों में इस प्रकार कहा, हे निष्पाप रघुनाथ! मैंने तेरे चित्तरूप पक्षी को फंसाने के लिये वचनरूप जाल फैलाया है, इसलिये अपने चित्त को वश करके आत्मपद में लगाओ, हे रामजी! यह जो मैंने तुम्हें उपदेश किया है, उसके सार में अपने निर्दोष मन को लगा दो, जैसे हंस जल को त्यागकर दुग्धपान करता है, ऐसे ही

इस सारे उपदेश को आदि से लेकर अन्तपर्यन्त बार बार विचार कर सार को अंगीकार करो, इस प्रकार संसार सागर से पार होकर परमपद को प्राप्त हो सकोगे अन्यथा नहीं, हे रामजी! यदि मेरे इन वचनों को मान जाओगे तो संसार समुद्र को सुगमता से पार कर जाओगे, यदि न मानोगे तो अधोगति मिलेगी, जैसे विन्ध्याचल के खात में पड़ा हुआ हस्ती कष्ट पाता है, ऐसे ही संसार में कष्ट पाओगे, हे रामजी! मैं पुनः कहता हूँ कि मेरे वचनों को यदि न मानोगे तो तुम्हारा अधःपतन होगा, जैसे मुसाफिर अपने हाथ में पकड़े दीपक को त्यागकर रात को चलता हुआ किसी गर्त में गिरता है, ऐसे ही गिरोगे और जो असंग होकर व्यवहार में विचरेगा तो आत्मसिद्धता को प्राप्त होगा, यह जो मैंने तुम्हें तत्वज्ञान मनोनाश वासना क्षय कहे हैं, इनके अभ्यास से सिद्धता प्राप्त होगी, यह शास्त्र का सिद्धान्त है, हे सभासदो! राजा महाराजा लोगों! हे राम लक्ष्मण भूपति! जो कुछ मैंने तुम्हें कहा है, इस पर विचार करो। और जो कुछ कहना है प्रातः काल कहूँगा। वाल्मीकिजी बोले—हे साधो! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सब सभा उठ खड़ी हुई और वसिष्ठ के वचनों से सबके मन प्रसन्न हुए, जैसे सूर्य से कमल खिलते हैं, वसिष्ठ और विश्वामित्रजी इकट्ठे उठे और वसिष्ठजी विश्वामित्र को अपने आश्रम पर ले गये और आकाशचारी जितने देवता और सिद्ध थे, वसिष्ठजी को नमस्कार करके अपने अपने स्थानों को चले गये, राजा दशरथ ने अर्घ्यपाद्य से वसिष्ठजी की पूजा की और अन्तःपुर में चले गये और श्रोताओं ने भी आज्ञा लेकर वसिष्ठजी की पूजा की और अपने स्थानों को चले गये, राजकुमार अपने मंडल को गये, मुनि लोग वन को गये, राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, वसिष्ठजी के आश्रम को चले गये और पूजा करके अपने घर को चले आये, तब श्रोता लोगों ने अपने स्थान पर जाकर सन्ध्या वन्दनादि कर्म किये, पितृ पूजन व देव पूजन किया, तदनन्तर ब्राह्मणों से लेकर सेवकों पर्यन्त सबको भोजन कराकर अपने मित्रों और भाइयों सहित भोजन किया, तदनन्तर यथा शक्ति अपने

वर्णाश्रम धर्म पालन सम्बन्धी काम किया, इतने में सूर्य भगवान् अस्त हुए, दिन की क्रिया से निवृत्त हुए, रात आ गयी, निशाचर घूमने लगे, तब भूचर, राजर्षि, ब्रह्मर्षि और राजपुत्र आदि जितना भी श्रोतृ समाज था रात को अपनी शय्या बिछाकर एकांत में बैठकर विचारने लगे कि मुनि महाराज ने संसार को तरने के क्या उपाय कहे हैं, इस प्रकार वे राजकुमार और ब्राह्मण तपस्वी भी कुशासन बिछाकर विचार करने लगे कि वसिष्ठजी ने संसार तरने के कौन से उपाय कहे हैं, वसिष्ठजी के कहे वचनों में सबने अपना अपना मन लगा दिया और एक पहर तक यह विचार चर्चा होती रही और तदनन्तर सब सो गये, जैसे सूर्योदय हुए पद्मिनियाँ मुँद जाती हैं इस प्रकार सुषुप्ति को प्राप्त हुए, श्रीरामजी लक्ष्मण शत्रुघ्नजी के सहित तीन पहर तक वसिष्ठजी के उपदेश को विचारते रहे, आधा पहर सोकर फिर जाग उठे, इस प्रकार सब विचार पूर्वक रात्रि को चिंतायुक्त हुए, प्रातःकाल होने पर आया, क्योंकि सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा की कांति फीकी पड़ने लगी, चंद्रमुखी कमल मुंद गये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धं दिवसरात्रिव्यापारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीयः सर्गः २

विश्राम दृढीकरणवर्णनम् ।

वाल्मीकि बोले—हे साधो! इस प्रकार रात बीत गयी, अन्धेरा दूर हुआ, तब राम लक्ष्मण शत्रुघ्न उठकर स्नान करने लगे, संध्या से निवृत्त हुए, वसिष्ठजी के आश्रम पर गये, वहां जाकर बैठ गये, तब वसिष्ठजी सन्ध्यादि कर्म करके अग्निहोत्र करने लगे, जब कर चुके तब रामजी ने भाइयों समेत वसिष्ठजी का अर्घ्यपाद्य से पूजन किया, चरणों पर विनयपूर्वक मस्तक रखा, जब रामजी गये थे तब वसिष्ठजी के द्वार पर

मौन था, एक घड़ी में अनेक सहस्र जीव आकर इकट्ठे हुए, राजकुमार, ब्राह्मण, मुनीश्वर, हस्ती, घोड़े, रथ तथा बहुत सी सेनाएं आ पहुँचीं, तब वसिष्ठजी रामादि को साथ लेकर राजा दशरथ के घर में आये तब राजा दशरथ उनके लेने को आगे आये और वसिष्ठजी का सादर पूजन किया, अन्य लोगों ने भी बड़े प्रेम से उनकी पूजा की, इस प्रकार सभा में आ पहुँचे, तब नभश्चर और भूचर जितने भी श्रोता थे वे सब आ गये, सभा में आकर सब नमस्कार करके बैठ गये, जितने सभा में विराजमान लोग थे सबके सब निस्पन्द तथा एकाग्र हो गये, जैसे निस्पन्द वायु से कमलों की पंक्ति अचल होती है, ऐसे स्थित हुए, तब सूर्य की किरणें झरोखों के मार्ग से आ पहुँचीं, मानों रवि किरणें भी वसिष्ठजी के वचन श्रवण करने आई हैं, तब जैसे शंकरजी की ओर स्वामि कार्तिक देखें, ऐसे वसिष्ठजी की ओर रामजी देखने लगे, जैसे कच बृहस्पति की ओर देखें, जैसे प्रह्लाद शुक्र की ओर देखें, ऐसे वसिष्ठजी की ओर रामजी देखने लगे, जैसे भ्रमर घूमता घूमता आकाश मार्ग से आकर कमल पर आ बैठता है ऐसे रामजी की दृष्टि औरों को देखते देखते वसिष्ठजी पर आकर स्थित हुई और वसिष्ठजी रामजी की ओर देखने लगे और देखकर बोले—हे रघुनन्दन! मैंने जो तुम्हें उपदेश किया है, क्या तुमने उस पर कुछ विचार किया? जो वचन कहे हैं, कैसे कहे हैं, जो परमार्थ बोध का कारण आनन्दरूप महागम्भीर कहे हैं, अब और भी बोध के कारण और अज्ञानरूप शत्रु के नाशकर्ता इन्दु प्रमाण वचन हैं, उनको सुनो, आत्मसिद्धान्त निरन्तर शास्त्र तुम्हें कहता हूँ, हे रामजी! वैराग्य, दृढ अभ्यास और तत्व का विचार इनसे संसार समुद्र तरता है, सम्यक् तत्व के बोध से दुर्बोध निवृत्त हो जाता है, तब वासना का आवेश नष्ट हो जाता है और निर्दुःख पद प्राप्त हो जाता है, वह पद देश, काल,वस्तु के परिच्छेद से रहित है, वही ब्रह्म जगत् रूप होकर स्थित हुआ है और भ्रम से द्वैत की नाईं भासता है, जो सब भावों से अविच्छिन्न है, सर्वत्र ब्रह्म है, इस प्रकार मत्स्वरूप जानकरशान्तिमान्‌बनो। हे रामजी! केवल ब्रह्मतत्व अपने आप में स्थित है, न कुछ चित्त है न अविद्या है, न मन है,

न जीव है, यह सब कलना ब्रह्म में भ्रम से फुरती है, जो स्पंद फुरणा दृश्य है और चित्त है वह कलनारूप संभ्रम है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं हे रामजी! स्वर्ग पाताल भूमि में सदाशिव से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ दृश्य है वह सब परब्रह्म है, चिद्रूप से अन्य कुछ नहीं, उदासीन और मित्र बान्धव आदि से लेकर सब ब्रह्म है, जब तक अज्ञान कलना से जगत् में स्थित बुद्धि है और ब्रह्मभाव नानात्व है, तब तक चित्तादिक कलना होती है और जब तक देह में अहं भाव है और अनात्म दृश्य में ममत्व है तब तक चित्तादिक भ्रम होता है, जब तक सन्तजन और सत्शास्त्रों से ऊँचे पद को प्राप्त नहीं हुआ तथा मूर्खता क्षीण नहीं हुई तब तक चित्तादिक भ्रम होता है, हे रामजी! जब तक देहाभिमान शिथिल नहीं हुआ, संसार की भावना नहीं मिटी और सम्यक् ज्ञान से स्थिति नहीं पाई, जब तक चित्तादिक प्रकट है, जब तक अज्ञान से अन्ध है, जब तक विषयों की आशा के आवेश से मूर्छित है, जब तक मोहमूर्छा से सचेत नहीं हुआ, तब तक चित्तादिक कलना होती है, हे रामजी! जब तक आशारूप विष की गन्ध हृदयरूप बन से आती है तब तक विचार रूप चकोर वहां नहीं पहुँचता और भोगवासना नहीं मिटती है, जब भोगों की आशा मिट जाय और शीतलता, संतुष्टता, हृदय में आकर प्राप्त हो तब चित्तरूप भ्रम निवृत्त हो जाता है, जब मोह और तृष्णा को निवृत्त किया जाय और नित्य संवित् हो तब चित्त शान्त भूमिका को प्राप्त होता है हे रामजी! जिस पुरुष की स्थिति स्वरूप में हुई है, वह आपको देह से दूर देखता है, उसको सम्यक् दर्शी के चित्त की भूमिका कहा गया है जब अनन्त चैतन्य तत्व की भावना होती है और दृश्य को त्यागकर आत्मरूप में प्राप्त होता है, तब वह पुरुष सब जगत् को अपना अंग ही देखता है, अर्थात् अपना सब स्वरूप देखता है, ऐसे जो आत्मरूप देखता है उसको जीवत्वादिक भ्रम कहा गया है, जब अज्ञान भ्रम निवृत्त होता है, तब परम अद्वैत पद उदय होता है जैसे रात्रि के क्षीण हुए सूर्य उदय होता है, ऐसे मोह के निवृत्त हुए आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है, जब स्वरूप

का साक्षात्कार होता है तब चित्त नष्ट हो जाता है, जैसे सूखापत्र अग्नि में दग्ध हो जाता है, ऐसे ज्ञानवान् का चित्त नष्ट हो जाता है, हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष है और परावर दर्शी है, सर्वत्र ब्रह्म जिसको दृष्टि आया है, उसका चित्त सत्य पद को प्राप्त होता है वह चित्त सत्य कहाता है और उसमें वासना भी दृष्टि नहीं आती है, वह चेतन मन है, वह चित्त सत्य पद को प्राप्त हुआ है, यह जगत् ज्ञानवान् को लीला मात्र भासता है और अन्दर से शान्तरूप है, नित्य तृप्त है, सर्वदा उसको आत्मज्योति भासती है, विवेक द्वारा उसके चित्त से जगत् की सत्ता निवृत्त हो गयी है और स्वरूप में स्थिति प्राप्त हुई है, वह चित्त सत्ता कहाती है, पुनः वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टि आता है और मोह को नहीं प्राप्त होता, जैसे भूना बीज उत्पन्न नहीं होता, ऐसे ही ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं और जो अज्ञानी है उसकी वासना मोह संयुक्त है, जैसे कच्चा बीज उत्पन्न होता है, ऐसे अज्ञानी वासना से बार बार जन्म लेता है और जिस चित्त से आसक्ति निवृत्त हुई है, उसकी वासना जन्म का कारण नहीं, वह चित्त सत्ता कहाती है, हे रामजी! जिन पुरुषों ने पाने योग्य पद पाया है और ज्ञानाग्नि से चित्त को भस्म किया है वह पुनर्जन्म नहीं लेता, जितना भी यह जगत् है उसको सब ब्रह्मरूप है, जैसे वृक्ष और तरु नाम मात्र के दो हैं, वस्तुतः एक ही हैं, जैसे जल में तरंग और बुदबुदे जलरूप हैं, ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है, चेतन आत्मारूप मिरच है और जगत् रूप तीक्ष्णता है हे रामजी! ऐसा ब्रह्म तू है और यदि तू कहे कि मैं चित्त नहीं तो कुछ माना जाता है क्यों? जो तू कहे मैं जड़ हूँ तो तू आकाशवत् हुआ, तेरे अंदर कल्पना का उल्लेख कैसे हो? और जो चेतन है वह शोक किसका करता है? और यदि चिन्मय है तो निरायास आदि अन्त से रहित हुआ सब तू ही है, अपने स्वरूप का स्मरण कर। तब शान्ति को प्राप्त होगा, जो सब भावों में स्थित है और सबको उदय करने वाला है, वह तू ही है, शान्तरूप है, तू चैतन्य ब्रह्म रूप है, हे रामजी! ऐसी जो चेतनरूप शिला है, उसके उदर में वासनारूप फुरणा कहाँ हो, वह तो महा घनरूप है, हे रामजी! जो तू है, वह वही

है, उसमें और तुझमें भेद कुछ नहीं, वही सत् और असत् रूप होकर भासता है, सब पदार्थ जिसके अन्दर हैं और नानात्व जिसमें कुछ नहीं, अहंत्वं अज्ञतज्ज्ञ जिसके कलना कुछ नहीं, ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है उसको नमस्कार है, हे रामजी! तेरी जय हो, तुम कैसे हो? आदि अन्त से रहित विशाल है और शिला के अन्तर्वत् चिद्घन स्वरूप है, आकाशवत् निर्मल है, जैसे समुद्र में तरंगें हैं ऐसे तुझमें जगत् है वह लीलामात्र है तू अपने घन स्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्रामदृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः ३

ब्रह्मैक्यप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे निष्पाप रामजी! जिस चेतनरूप समुद्र में जगत्‌रूप तरंग फुरते हैं और लीन हो जाते हैं, ऐसा अनन्त आत्मा है, तू भव की भावना से मुक्त है और भाव अभाव से रहित है ऐसे जो चिदात्मा तेरा स्वरूप है सर्वजगत् वही रूप है, तब वासनादिक आवरण कहां है, जीव और वासना सब आत्मा का किंचन है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं, तब अपर कथा प्रसंग कैसे हो? हे रामजी! महासरलगंभीर प्रकाशरूप जो चैतन्य समुद्र है, वह तेरा रूप है और रामरूप एक तरंग फुर आया है, वह समुद्र तू है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है वह जगत् रूप होकर व्यापारी भासता है, जैसे अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं, जैसे फूल से सुगन्धि भिन्न नहीं, जैसे कज्जल से कृष्णता भिन्न नहीं और बर्फ से शुक्लता भिन्न नहीं, जैसे गुड से मधुरता भिन्न नहीं, जैसे सूर्य से प्रकाश भिन्न नहीं, ऐसे ब्रह्म से अनुभव भिन्न नहीं, नित्यरूप है, अनुभव से अहं भिन्न नहीं अहं से जीव भिन्न नहीं, जीव से मन भिन्न नहीं मन से इन्द्रिय भिन्न नहीं, इन्द्रिय से देह भिन्न नहीं और देह से जगत् भिन्न नहीं, इस प्रकार यह महाचक्र

प्रवृत्त हुआ है, अथवा कुछ प्रवृत्त नहीं हुआ न शीघ्र हुआ न चिरकाल से हुआ है, स्वसंवेद्य है, अनन्त है, न कुछ ऊनता है न अधिकता है, यह सब एक अखंड परमात्मसत्ता हैं, जैसे आकाश में आकाश स्थित है, ऐसे ही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, वही सत्ता वज्रभूत होकर स्थित है, वही पूर्ण होकर स्थित है इतर द्वैत कल्पना कुछ नहीं, ऐसे अपने स्वरूप में जो पुरुषस्थित है वह जीवन्मुक्त है, ऐसे ज्ञानवान् को मन इन्द्रियों तथा शरीर से चेष्टा करते हुए भी उसको कर्तृत्व का लेशमात्र स्पर्श नहीं होता, हे रामजी! ज्ञानवान् को न कुछ ग्रहण करने योग्य रहता है न त्यागने योग्य रहता है, वह प्रत्येक पदार्थ से निर्लेप रहता है, जब तक इस की ग्रहण त्याग की बुद्धि होती है तब तक संसार के सुख दु:ख का भागी होता है, यह हेयोपादेय जिसमें नहीं है वह सुखदु:ख का भागी नहीं होता, हे रामजी! जितना यह जगत् है एक अद्वैत आत्मतत्व है, अन्यत् कुछ नहीं, जैसे घट मठ की उपाधि से आकाश नाना प्रकार भासता है, जैसे समुद्र तरंग से अनेकरूप भासता है और नानात्वभाव को प्राप्त नहीं होता, ऐसे आत्मा में नाना प्रकार का जगत् भासता है और नाना प्रकार को प्राप्त नहीं होता, ऐसे स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो जाइये, हे रामजी! अन्तर प्रकाश की नाईं निर्मल स्थित रहो और बाहिर से अपने वर्णाश्रम व्यवहार करो, काष्ठ पत्थर की नाईं अन्त:करण में तो हर्ष शोक से रहित होकर स्थित हो रहिये, संवित् मात्र आत्मा को जो अपना स्वरूप देखता है वही सम्यग्दर्शी है उसका अज्ञान और मोह नष्ट हो जाता है, जैसे नदी का वेग मूलरहित तट के वृक्ष को उखाड़ता है, ऐसे आत्मज्ञान मोह सहित अज्ञान को उखाड़ फेंकता है। मित्रता, बैर, हर्ष, शोक रागद्वेष आदिक जो विकार हैं वह चित्त में रहते हैं, वह चित्त उसका नष्ट हो जाता है, हे रामजी! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आता है और सोता कभी नहीं ,जिसका अनात्म वस्तु में अहंभाव निवृत्त हो गया है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह पुरुष इस लोक को मारे तो भी उसने किसी को नहीं मारा और वह बन्धन में भी नहीं आता, हे रामजी! जो वस्तु हो नहीं परन्तु भासती हो उसको मायामात्र जानिये,

उसके जानने से वह नष्ट हो जायगी, जैसे तेल के बिना दीपक शान्त हो जाता है, ऐसे ज्ञान से वासना शान्त हो जाती है, चित्त अचित्त हो जाता है, जिसको सुख दुःख में ग्रहण त्याग नहीं, वह जीवन्मुक्त आत्म स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम तृतीय सर्गः ।।३।।

चतुर्थः सर्गः ४

चित्तभावाभाववर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं, सब अचिन्त्य चिन्मात्र हैं, जीव भी अभिन्नरूप है जैसे स्वर्ण और भूषण में भेद कुछ नहीं, ऐसे चिन्मात्र और जीवादिक अभिन्न हैं, जब तक चित्त अज्ञान में होता है तब तक जगत् का कारण होता है जब अज्ञान नष्ट हो जाता है तब चित्तादिक का अभाव हो जाता है, अध्यात्मविद्या (वेदान्तशास्त्र) के अभ्यास से नष्ट हो जाता है, जैसे अग्नि के तेज से शीत का अभाव हो जाता है, ऐसे अध्यात्मविद्या के अभ्यास और विचार से अज्ञान नष्ट हो जाता है, जब तक अज्ञान का कारण तृष्णा उपशम को प्राप्त नहीं हुई तब तक अज्ञान है जब तृष्णा नाश हो तब जानिये कि अज्ञान का अभाव हुआ है, हे रामजी! तृष्णारूप विषूचिका रोग है, उसके नाश करने का मंत्र अध्यात्मशास्त्र है, उसके अभ्यास से चित्त शान्त हो जाता है, जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट हो जाता है, ऐसे विचार से मूर्खता नष्ट हो जाती है, जब चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है, तब वासना भ्रम क्षीण हो जाता है, जैसे धागे से साथ मोती पिरोये होते हैं, धागे के टूटने से मोती भिन्न भिन्न हो जाते हैं, ऐसे अज्ञान के नष्ट होने से मन आदिक सब नाश हो जाते हैं और जो पुरुष अध्यात्मशास्त्र के अर्थ को धारण नहीं करते और प्रीति नहीं करते, वे पापी कीटादिक नीच

योनि को प्राप्त होंगे। हे कमलनयन! तुझमें जो कुछ मूर्खता चंचलता थी वह नष्ट हो गयी है, जैसे पवन के ठहरने से जल अचल होता है, ऐसे तू स्थिरता को प्राप्त हुआ है भाव अभाव रहित परम आकाशवत् निर्मल पद को प्राप्त हुआ है, हे रामजी! ऐसा मैं मानता हूं कि मेरे वचनों से तू बोध को प्राप्त हुआ है और विस्तृत अज्ञानरूप निद्रा से जगा है, सामान्य जीव भी हमारी वाणी से जग जाते हैं, तुम तो अति उदार बुद्धि हो, तुम्हारे जगने में क्या आश्चर्य है, हे रामजी! जब गुरु दृढ होता है और शिष्य शुद्ध पात्र होता है, तब गुरु के वचन उसके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं, मैं गुरु भी समर्थ हूं, मुझे अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है और सच्छास्त्र के अनुसार कहे हुए मेरे वचन हैं और तुम्हारा हृदय भी शुद्ध है, तभी तो वचन प्रवेश कर गये हैं, जैसे तप्त पृथ्वी के क्षेत्र में जल प्रवेश कर जाता है ऐसे तुम्हारे हृदय में वचनों ने प्रवेश किया है हे राघव! हम महानुभाव रघुवंश कुल के बड़े गुरुओं के गुरु हैं हमारे वचन तुमको धारण करने आते हैं और खेद से रहित होकर अपने प्रकृत आचार को करो, वाल्मीकि मुनि बोले इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सूर्य अस्त होने लगा, सर्व सभासद परस्पर नमस्कार करके अपने अपने स्थान को चले गये रात व्यतीत हुई और वे सूर्य की किरणों के साथ फिर आ बैठे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे पूर्वार्द्धे चित्तभावाभाव वर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ।।४।।

पंचमः सर्गः ५

राघवविश्रान्तिवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे मुनीश्वर! मैं परम स्वस्थ हूँ, अर्थात् अब मैं स्वरूप स्थित हूं, आपके वचनों की भावना से मुझको यह जगत् जाल होता हुआ भी नहीं भासता, मैं आत्मानन्द से तृप्त हुआ हूँ, जैसे बड़ी वर्षा से पृथ्वी तृप्त होती है, ऐसे मैं तृप्त हूं, सम हूं। शीतल हूं, सर्वथा प्रसन्न हुआ हूं,

सर्वत्र मुझे केवल आत्मा ही आत्मा भासता है, नानात्व का अभाव हुआ है, जैसे कुहिड से रहित दिशा और प्रकाश निर्मल भासता है, ऐसे सम्यग् ज्ञान से मुझको शुद्ध आत्मा भासता है और मेरा मोह निवृत्त हो गया है, मोहरूप जंगल में तृष्णारूप मृग था और रागद्वेष आदि घूड कुहिर थी वह सब निवृत्त हो गयी है, ज्ञानरूप वर्षा से सब शान्त हो गये हैं, अब मैं आत्मानन्द को प्राप्त हुआ हूं, जो आदि अन्त से रहित है और अमृत है, अमृत का स्वाद भी उसके आगे तुच्छ भासता है, ऐसे अपने आनन्द स्वभाव को प्राप्त हुआ हूं, मैं राम हूं, अर्थात् सब में रमनेवाला हूं, मेरा मुझको नमस्कार है, अब मैं सर्व संदेहों से रहित हूं। सब संशय और विकार मेरे नष्ट हुए हैं, जैसे प्रातः काल से निशाचर वेताल आदि निवृत्त हो जाते हैं ऐसे ही मेरे राग द्वेषादि विकारों का अभाव हुआ है, निर्मल विस्तीर्ण हिम की नाईं हृदयकमल में स्थित हूं जैसे भँवरा फिरता फिरता कमल पर आकर स्थित होता है ऐसे मैं आत्मरूप सार में स्थित हूँ, अविद्यारूप कलंक आत्मा को कहां था, मैं तो निश्चय रूप से निर्मलता को प्राप्त हुआ हूं, जैसे सूर्य के उदय होने पर तम का अभाव हो जाता है ऐसे मेरे संशय और अविद्या नाश हुई है, कलना कोई नहीं, सब आत्मा ही भासता है, भाषित आकार अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं, पूर्व प्रकृति को देख हंसता हू, कि क्या जानता था और क्या करता था, मैं तो नित्य शुद्ध ज्यों का त्यों आदि अन्त से रहित हूं, हे मुनीश्वर! तेरे वचनरूप अमृत के समुद्र में मैंने स्नान किया है, इसलिये अजर अमर आनन्दपद को प्राप्त हुआ हूं, सूर्य से भी ऊँचे पद की प्राप्ति हुई है, वीतशोक होकर परम शुद्धता समता शीतलता का अनुभव करता हुआ अद्वैतपद को प्राप्त हुआ हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण पूर्वार्द्धे राघवविश्रान्ति वर्णनं नाम पंचमः सर्गः ।।५।।

षष्ठः सर्गः ६

अज्ञानमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो! मेरे परमपवित्र वचन फिर सुनो, जिनके श्रवण करने से अल्पबुद्धि भी आनन्द को प्राप्त हो। हे रामजी! जिसको अनात्मा में आत्माभिमान है और आत्मज्ञान नहीं, उसको इन्द्रियरूप शत्रु दुःख देते हैं, जैसे निर्बल पुरुष को चोर दुःख देते हैं, ऐसे अज्ञानी को इन्द्रिय दुःख देते हैं और जिसको आत्मपद में स्थिति प्राप्त हुई है, उसको इन्द्रिय दुःख नहीं देते, जैसे दृढराजा के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, ऐसे ज्ञानवान् के इन्द्रिय गणमित्र होते हैं और जिस पुरुष को देह में आत्म–बुद्धि है और इसी कारण से विषय सेवन करता है वह अधिक दुःख भोगता है, हे रामजी! आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं, यह परस्पर विलक्षण स्वभाव है, जैसे तम और प्रकाश परस्पर विपरीत स्वभाव है, ऐसे आत्मा और देह का परस्पर विपरीत स्वभाव है, आत्मा सर्व विकार से रहित नित्यमुक्त है और उदय अस्त से रहित सबसे निर्लेप है, सदा ज्यों का त्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत् रूप है, उसका सम्बन्ध किससे हो, देह जड और असत्य अज्ञानरूप तुच्छ विनाशी अकृतज्ञ है, उसका संयोग किस भांति हो, आत्मा चैतन्यज्ञान सत् प्रकाशरूप है, उसका देह के साथ संयोग कैसे हो, अज्ञान से देह और आत्मा का संयोग भासता है, सम्यक् ज्ञान करके संयोग का अभाव भासता है, हे रामजी! यह मैंने अति निपुणता पूर्ण वचन कहे हैं इनका निरन्तर अभ्यास करने से संसार मोह का अभाव हो जायगा, जब संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ, तब फिर सद्भाव न होगा, जब तक अज्ञानरूप निद्रा से दृढ होकर नहीं जगता, तब तक फिर आवरण हो जाता है जैसे निद्रा से जगने पर पुनः निद्रा घेर लेती है, जब दृढता से जगे तब नहीं घेरती ऐसे दृढ अभ्यास से अज्ञान निवृत्त होकर पुनः आवरण न

होगा, अतः मोह दुःख निवृत्ति के अर्थ दृढ अभ्यास करो, हे रामजी! आत्मा देह के गुण को अंगीकार नहीं करता, जब देह के गुण अंगीकार करे तब आत्मा भी जड हो जाय वह तो सदा ज्ञानरूप है और यदि देह आत्मा का गुण परमार्थसे अंगीकार करे तो देह भी चेतन हो जाय, वह तो जडरूप है, हे रामजी! देह और आत्मा का संयोग सम्बन्ध कुछ नहीं और समवाय सम्बन्ध भी नहीं, फिर इससे मिलकर वृथा दुःखों को ग्रहण करना, इससे और मूर्खता क्या है? यही मूर्खता है, जब कुछ भी इसका समान लक्षण हो तो तब सम्बन्ध भी हो, जिनका समान लक्षण कुछ नहीं हो, उनका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा चेतन है देह जड है, आत्मा सत्‌रूप है देह असत्‌रूप है, आत्मा प्रकाशरूप है देह तमोरूप है, आत्मा निराकार है, देंह साकार है, आत्मा सूक्ष्म है देहस्थूल है, फिर देह और आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो, जब संयोग नहीं तब दुःख किसका हो, जैसे सूक्ष्म और स्थूल का संयोग नहीं होता, जैसे दिन और रात्रि का संयोग नहीं होता, जैसे ज्ञान और अज्ञान का संयोग नहीं होता, जैसे धूप और छाया का मिलाप नहीं होता, जैसे सत् और असत् का संयोग कहीं होता, ऐसे आत्मा और देह का संयोग नहीं होता, अज्ञान से तत्वरूप मिले हुए भासते हैं, परन्तु सम्बन्ध कुछ नहीं जैसे वायु और आकाश का संयोग नहीं होता, ऐसे इनका संयोग नहीं होता, देह के सुख दुःख से आत्मा को सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रम है, जरा, मरण, सुख, दुःख, भाव अभाव आत्मा में किंचित् मात्र भी नहीं, जब देह में अभिमान होता है, तब उच्च नीच जन्मोंको पाता है, वास्तवसे कुछ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, उसमें विकार कोई नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलमें होता है और जल के हिलने से प्रतिबिंब चलता भासता है, ऐसे देह के सुख दुःख से आत्मा में सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं, आत्मा सदा निर्लेप है और जब सम्यक् यथाभूत ज्ञान होता है, तब सत् को सत् जानता है और असत् को असत् जानता है, जैसे दीपक हाथ में होता है, तब सत् असत् पदार्थ भासते हैं, ऐसे ज्ञान से सत् असत् यथार्थ जानता है, अज्ञान से मोह में

भ्रमता है, जैसे वायु से पत्र घूमता है ऐसे मोहरूपी वायु से अज्ञानी जीव घूमता है, स्वस्थ कदाचित् नहीं होता जैसे यंत्र की पुतली धागे से चेष्टा करती है, ऐसे अज्ञानी जीव प्राणरूप धागे से चेष्टा करते हैं, जैसे नटुआ अनेक स्वाँग धारण करता है, ऐसे ही कर्मों से जीव अनेक शरीर धारण करता है, जैसे पेषण की पुतली तृण काष्ठ फूल आदिक को लेती त्यागती है और नृत्य करती है, ऐसे यह प्राणी चेष्टा करते हैं, शब्द स्पर्श रूप गन्धको ग्रहण करते हैं, जैसे पुतलियाँ जड़ हैं, ऐसे यह जड हैं और यदि कहो कि इनमें प्राण है तो जैसे लोहार की खाल होती है वह श्वास को लेती है त्यागती है, ऐसे यह जीव भी चेष्टा करते हैं, हे रामजी! अपना वास्तव स्वरूप वह परब्रह्म है, उसके प्रमाद से मोह कृपणता को प्राप्त होते हैं, जैसे लुहार की खाल वृथा श्वास लेती है, ऐसे इनकी चेष्टा व्यर्थ है, इनकी चेष्टा और बोलना अनर्थ के निमित्त है, जैसे धनुष से जो बाण निकलता है वह हिंसा के निमित्त है, उससे और कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता, ऐसे अज्ञानी की चेष्टा और बोलना अनर्थ के लिये है। दुःख के निमित्त है, सुख के निमित्त नहीं, उसकी संगति भी कल्याण के निमित्त नहीं, जैसा जंगल का ठूठा वृक्ष होता है, उससे फल की या छाया की इच्छा करना व्यर्थ है उससे कुछ फल नहीं प्राप्त होता और विश्राम के लिये छाया भी नहीं मिलती, ऐसे अज्ञानी जीव की संगति से सुख नहीं प्राप्त होता उनको देना भी व्यर्थ है जैसे कीचड़ में घृत डाला हुआ व्यर्थ होता है, ऐसे मूर्ख को दान दिया हुआ व्यर्थ है, उनके साथ बोलना भी व्यर्थ है जैसे यज्ञ में श्वान को बुलाना निष्फल है, ऐसे उनके साथ बोलना निष्फल है, हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं, वे संसार में आते जाते जन्मते मरते हैं, शरीर में आस्था करते हैं और पुत्र दाराबांधव धनादिकमें ममत्व बुद्धि करते हैं, इस मिथ्या दृष्टि से दुःख पाते हैं, मुक्ति कदाचित् नहीं होती, क्योंकि अनात्मा में आत्म बुद्धि का त्याग नहीं करते और ममताबुद्धि में दृढ रहते हैं, इसीलिये मुक्ति नहीं होती, हे रामजी! जो अज्ञानी हैं, वे असत् पदार्थ को देखते हैं और वस्तु रूप की ओर से अन्ध

है, इसलिये परमार्थ धन से विमुख रहते हैं, नरक का सार जो स्त्री आदिक हैं उनमें प्रीति करते हैं, तथा उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं, मालूम होता है कि उन्हें वह नरक नहीं बल्कि स्वर्ग सुख प्रतीत होता है, जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है, ऐसे स्त्री आदिक भोग्य वस्तुओं के देखकर मूर्ख प्रसन्न होते हैं, हे रामजी! मूर्ख के मारने के लिये स्त्री ।वेष की वेल हैं, नेत्र उसके फूल हैं, होठरूप पत्र हैं, स्तनरूप उनके गुच्छ हैं, अज्ञानरूप भ्रमर वहां विराजमान होकर नाश हो रहा है, बुद्धिरूप सरोवर में हर्षरूप कमल हैं, चित्तरूप भँवरा सदा वहीं रहता है। अज्ञान रूप नदी है, उसमें दुःखरूप तरंगें हैं, तृष्णारूप बुद्बुदे हैं, ऐसी नदी मृत्युरूप बड़वानल में जाकर गिरेगी, हे रामजी! जब जन्म लेता है तब महागर्भाग्नि से जलता हुआ निकलता है। उस महामूर्ख अवस्था को देखकर दुखी होता है और जब यौवन अवस्था को प्राप्त होता है, तब विषयों का सेवन करता है, वह भी दुःख के कारण होते हैं, उसके अनन्तर वृद्ध अवस्था को प्राप्त होता है, तब शरीर अशक्त होता है और अंदर से तृष्णा पड़ी जलाती है, इस प्रकार जन्म मरण अवस्था में पड़े भटकते हैं, हे रामजी! संसार रूप कूप हैं, उसमें मोहरूप घट माला है तृष्णा वासना रूप रस्सी से बाँधे हुए जीवरूप टीड़ घूमते हैं और ज्ञानवान् को संसार कोई दुःख नहीं देता, गोपद की नाईं तुच्छ हो जाता है और अज्ञानी को समुद्रवत् तरना कठिन हो जाता है, अपने अंदर ही भ्रम को देखता है निकल नहीं सकता, थोड़ा भी उसको बहुत हो जाता है, जैसे पक्षी को पिंजरे में बड़ा माग (यात्रा) होता है, जैसे कोल्हू के बैल को घर ही में बड़ी यात्रा होती है, ऐसे अज्ञानी को तुच्छ संसार बड़ा हो भासता है, हे रामजी! जिस जगत् को रमणीय जानकर पदार्थ की इच्छा करता है और वे सब पांच भौतिक पदार्थ हैं, मोह से उनको सुन्दर जानता है और उनमें प्रीति करता है, स्थिर जानता है, वे अनर्थ के निमित्त होते हैं, हे रामजी! अज्ञानरूप चन्द्रमा उदय हुआ है, उससे भोगरूप वृक्ष पुष्ट होते हैं, जन्म परम्परा रूप रस को पाते और कर्मरूप जल से सींचे जाते हैं, उनमें पुण्य पापरूप मंजरी होती है और अज्ञानरूप चन्द्रमा है वासनारूप

अमृत है, आशारूप चकोर उसको देखकर प्रसन्न होता है और आशारूप कमलिनी है, अज्ञानरूप भ्रमर उसपर बैठकर प्रसन्न होता है, इसलिये सब जगत् अज्ञान से रमणीय भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अज्ञान माहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तमः सर्गः ७

अज्ञानमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह जगत् अज्ञान करके स्थित है उस अज्ञान का प्रवाह सुन। अज्ञान रूप चन्द्रमा जब पूर्णरूप से स्थित होता है, तब कामनारूप क्षीर समुद्र उछलता है और अनेक तरंगों को फैलाता है, उसके रस से तृष्णा रूप मंजरी पुष्ट होती है और काम क्रोध लोभ मोहरूप चकोर उसको देखकर प्रसन्न होते हैं और देह अभिमानरूप रात्रि के निवृत्त हुए और विवेक रूप सूर्य के उदय हुए अज्ञानरूप चन्द्रमा का प्रकाश निवृत्त हो जाता है, हे रामजी! अज्ञान से यह जीव भ्रान्त है और इनकी चेष्टा विपरीत हो गयी है, जो तुच्छ नीच दुःखरूप पदार्थ हैं, उनको देखकर सुखदायक रमणीय जानते हैं, स्त्री को देख प्रसन्न होते हैं, कवीश्वर कहते हैं कि इसके कपोल कमलवत् हैं और नेत्र भ्रमरवत् हैं, होंठ स्मित युक्त (मुस्कुराहट वाले) हैं और बल्ली की नाईं इसकी भुजाएं हैं ओर कंचन कमलवत् स्तन हैं, उदर और वक्षस्थल बहुत सुन्दर हैं और जंघास्थल केले के स्तंभवत् इत्यादिक। जिसकी स्तुति करते हैं वह स्त्री रक्त मांस की पुतली है, कपोल भी रक्त मांस हैं, होठ भी रक्त मांस है, भुजा विषवृक्ष के टासवत् हैं, स्तन भी रक्त मांस हैं और भी सम्पूर्ण शरीर रक्त मांस अस्थियों से पूर्ण एक ढांचा बना है, इसको जो रमणीय जानते हैं वे मूर्ख मोह से मोहित हुए हैं, अपने नाश के लिये इसकी इच्छा करते हैं, जैसे सर्पिणी से कोई हित करेगा तो उसके नाश के लिये होगा,

जैसे कदली वन का हाथी महाबली होकर भी कामना से नीच गति को पाता है और संकट में पड़ता है, अंकुश सहता है अपमान पाता है वह एक हस्तिनी के हित से ऐसी गति पाता है ऐसे यह जीव एक स्त्री की इच्छा से अनेकों दुःख पाते हैं, जैसे दीपक को रमणीय जानकर उसमें पतंग प्रवेश करता है और नाश को प्राप्त होता है, ऐसे यह जीव स्त्री की इच्छा करता है, उसके संग से नाश को प्राप्त होता है और लक्ष्मी का आश्रय करके जो सुख की इच्छा करता है, वह भी सुखी न होगा, जैसे पहाड़ दूर से देखने मात्र सुन्दर भासता है, ऐसे यह भी देखने मात्र सुन्दर लगती है, लक्ष्मी का आश्रय करके सुख की इच्छा करे वह न होगा, अन्त दुःख को प्राप्त होगा जब लक्ष्मी प्राप्त होती है तब अनर्थ करने लगता है और दुःख का भागी बनता है, जब लक्ष्मी जाती है तब भी दुःख दे जाती है इसलिये जलता रहता है, हे रामजी! जगत् में जो सुख की इच्छा करे वह न होगा, जन्म लेता है तो दुःख के साथ जन्म लेता है और फिर जन्म से मूर्ख नीच स्वभाव ही बाल्य अवस्था को प्राप्त होता है उसमें विचार कुछ नहीं होता, इससे दुःख पाता है और शक्ति कुछ नहीं होती, जब यौवन अवस्थारूप रात्रि आती है तब उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोहरूप निशाचर आकर घूमने लगते हैं और तृष्णारूप पिशाचिनी भी आकर विचरने लगती है, विवेकरूप चन्द्रमा के उदय होने का वह समय नहीं होता, तब सब अन्धकार में मौज बहार करते हैं, हे रामजी! यौवन अवस्थारूप वर्षाकाल है, उसमें बुद्धि आदि नदियाँ मलिन भाव को प्राप्त होती हैं और कामरूप मेघ गरजता है, तृष्णारूपी मोरनी उसको देखकर प्रसन्न होती है और नाचती है और लोभरूप बादल आते हैं और शब्द करते हैं, इत्यादिक अनर्थ का बीज होता है, यौवनावस्था रूपी चूहे को जरारूपी बिल्ली खा जाती है, बूढ़े के अंग जर्जरित हो जाते हैं, शरीर तो अशक्त हो जाता है पर तृष्णा बलवान् हो जाती है, अन्दर से जलता रहता है मृत्युरूप सिंह वृद्ध शरीर रूप हिरण का भोजन कर ही जाता है, इस प्रकार उत्पन्न होता है और मरता रहता है, आशारूप रस्सी से बन्धा

हुआ आवागमन के अरहट पर चढा हुआ घटी यंत्र के रूप में भटकता रहता है, शान्ति का मुख कभी नहीं देख पाता। हे रामजी! ब्रह्माण्डरूप एक वृक्ष है, जीवरूप उसको पत्र लगे हैं वे कर्मरूप वायु से हिलते हैं और उनमें अज्ञानरूप जड़ता है चित्तरूप एक ऊंचा वृक्ष है, उस पर लोभ आदि घू घू आकर बैठते हैं, जगत्‌रूप तालाब है, उसमें शरीररूप कमल है, उन पर जीवरूप भँवरे आकर बैठते हैं, कालरूप हस्ती आकर उसका भोजन कर जाता है हे रामजी! यत्नरूप जीर्ण पक्षी है, आशारूप फांसी से बन्धे हुए वासनारूप शिक्य में पड़े रहे हैं रागद्वेष रूप अग्नि में पड़े कालरूप पुरुष के मुख में प्रवेश करते हैं और जनरूप पक्षी उड़ते फिरते हैं, कालरूप व्याध जाल फैलाकर किसी दिन उनको फंसा लेगा, हे रामजी! संसाररूप ताल है और जीवरूप उसमें मछलियाँ हैं, कालरूप गुलाब उनको खाता रहता है, अथवा कालरूप कुम्हार मनुष्यरूप मिट्टी के पात्र बनाता है वे शीघ्र ही फूट जाते हैं, जीवरूप नदी है, कर्मरूप तरंगों को फैला रही है, वह कालरूप वडवानलमें जा पड़ती है, जगत्‌रूप हाथी है, जीवरूप मोती उसके मस्तक में हैं, उस हस्ती को कालरूप सिंह भोजन कर जाता है, वह काल ऐसा भक्षकरूप है कि जिसने ब्रह्मा का भी भोजन किया है और करता है, तृप्त नहीं होता, जैसे घृत की आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होता ऐसे ही काल जीव के भोजन से कदाचित् तृप्त नहीं होता, हे रामजी! एक निमेष में जगत् उत्पन्न होता है और उन्मेष में लीन हो जाता है, सबके अभाव हुए जो शेष रहता वह रुद्र है, फिर निवृत्त हो जाता है सबके पीछे एक परमतत्व ब्रह्मसत्ता रहती है, हे रामजी! जितना जगत् है अज्ञान करके भासता है, जन्म मरण बाल्य यौवन वृद्धत्वादिक विकार अज्ञान से भासते हैं, अज्ञान के नष्ट हुए सब नष्ट हो जाते हैं और जब तक आत्मविचार नहीं उत्पन्न होता, तब तक अज्ञान रहता है, जब आत्मविचार उत्पन्न होता है, तब अज्ञानरूप रात्रि निवृत्त हो जाती है, केवल ब्रह्मपद भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अज्ञानमाहात्म्य वर्णनम्
नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः ८

अविद्यालता वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संसाररूप यौवन है, वह चेतनरूप पर्वत के श्रृंग पर स्थित है, उसमें अविद्यारूप वल्ली बढ़ी है और विकास को प्राप्त हुई है और सुख दुःख भाव अभाव अज्ञान इसके पत्र हैं, फूल हैं, फल हैं, जहां अविद्या सुखरूप होकर स्थित होती है, वहां ऊंचे सुख का भोग दिलाती है, उसके सत्ताभाव को प्राप्त होती है और सुखरूप होकर स्थित होती है, वहां दुःखरूप होकर भासती है, वही सुख दुःख इसके फल गुच्छ हैं, दिनरूपी फूल हैं और रात्रिरूप भ्रमर है, जन्मरूपी अंकुर हैं और भोगरूप रस से पूर्ण हैं, जब विचाररूप घुण अविद्यारूप वृक्ष को खाने लगता है तब नष्ट हो जाती है, जब तक विचाररूप घुण नहीं लगा तब तक प्रतिदिन बढ़ती जाती है और दृढ़ हो जाती है। हे रामजी! अविद्यारूप वल्ली है और भूल इसका संवित् फुरणा है, उसी से विस्तृत है, तारागण इसके किसी ओर फूल हैं, चन्द्रमा सूर्य इसका प्रकाश हैं और दुष्कृत कर्मरूप नरक स्थान कंटक हैं और शुभकर्मरूप स्वर्ग इसके फूल खिले हैं और सुख दुःख रूप फल लगते हैं, जीवरूप उसके पत्र हैं और कालरूप वायु से हिलते हैं, कई जीर्ण होकर गिर पड़ते हैं, पृथ्वीरूप त्वचा है, पर्वत घोड़े हैं, मृत्युरूप इसमें छिद्र हैं, जन्मरूप अंकुर है, मोहरूप कलियाँ हैं, महासुन्दर गौरांग है, उससे जीव मोहित होते हैं, जैसे स्त्री को देखकर मोहित होते हैं और सप्त समुद्र के जल से सिंचती है, उससे पुष्ट होती है, उस वल्ली में विषभरी एक सर्पिणी रहती है, जो कोई उसके निकट जाता है उसको काटती है, तब वह मूर्छा से गिर पड़ता है, संसाररूप मूर्छा को देनेवाली तृष्णारूप सर्पिणी है, वह वल्ली अन्यथा नष्ट नहीं होती, जब विचाररूप घुण इसको लगे, तब नष्ट हो जाती है, हे रामजी! जितना कुछ प्रपंच तुझको भासता है वह अविद्यारूप है, कहीं अविद्या जलरूप है, कहीं पहाड़ कहीं नाग, कहीं देवता, कहीं दैत्य, कहीं पृथ्वी हुई

है, कहीं चन्द्रमा, कहीं सूर्य, कहीं तारे, कहीं तम, कहीं प्रकाश, कहीं तेज तमो रहित, कहीं पाप, कहीं पुण्य, कहीं स्थावर मूढ़रूप कहीं अज्ञान से दीन होती है, कहीं ज्ञान से आप ही क्षीण हो जाती है, कहीं तप दान आदिक से क्षीण होती है, पापादिक से बढ़ती है, कहीं सूर्यरूप होकर प्रकाशित होती है, कहीं स्थानरूप होती है, कहीं नरक में लीन है, कहीं स्वर्ग निवासिनी है, कहीं देवता होती है, कहीं कृमि होती है, कहीं विष्णु रूप होकर स्थित हुई है, कहीं ब्रह्मा होकर स्थित हुई है, कहीं रुद्र है, कहीं अग्नि रूप, कहीं पृथ्वीरूप हुई है, कहीं आकाश के काल भूत भविष्य वर्तमान हुई है, हे रामजी! जो कुछ देखने में आता है, वह सब इसकी महिमा है, ईश्वर से लेकर तृण पर्यन्त अविद्यारूप है, जो इस दृश्य जाल से अतीत है इसको आत्मलाभ जान।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेऽविद्याचिकित्सावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥८॥

नवमः सर्गः ९

अविद्या निराकरणम् ।

रामजी बोले–हे ब्राह्मण! हरिविष्णु और हर आदिक तो शुद्ध आकार आकाश जाति हैं, इनको अविद्या तुम कैसे कहते हो? मुझको संशय उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! पहिले अविद्या और तत्व श्रवण करो कि किसको कहते हैं? जो अविद्यमान हो (मौजूद न हो) और विद्यमान भासे वह अविद्या है और जो सदा विद्यमान है, उसको तत्व कहते हैं, हे रामजी! शुद्ध कलना से रहित चिन्मात्र आत्मसत्ता है वह तत्व है, उसमें जो अहं उल्लेख करके संवेदन कलना पूर्णरूप फुरी है वह चिन्मात्र संवित् का आभास है, वही फुरकर सूक्ष्म स्थूल मध्यभाव को प्राप्त हुई है, स्थान भेद से फिर वही दृढ़स्पन्द से मनोभाव को प्राप्त हुई है और सात्विक राजस तामस तीनों उसके आकार हुए हैं, वह अविद्या त्रिगुण प्राकृत धर्मिणी हुई है और तीन गुण

जो तुझे कहे हैं, वह भी एक एक गुण तीन तीन प्रकार का हुआ है, अविद्या के गुण नव प्रकार के भेद को प्राप्त हुए हैं, जितना कुछ दृश्य तुझको भासता है, वह अविद्या के नव गुणों में ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सिद्ध, नाग, विद्याधर, देवता जो हैं वे अविद्या का सात्विकभाग हैं, उस सात्विक विभाग में नाग सात्विक तामस हैं और विद्याधर सिद्ध देवता मुनीश्वर यह अविद्या के सात्विक भाग में सात्विक राजस है और हरिहरादिक सात्विक हैं, हे रामजी! सात्विक जो प्राकृत भाग है, उससे जो तत्वज्ञ हुए हैं, वे मोह को प्राप्त नहीं होते, मुक्तिरूप होते हैं, हरिहरादिक शुद्ध सात्विक हैं, सदा मुक्तरूप होकर जगत् में स्थित है, जब तक जगत् में है, तब तक जीवन्मुक्त हैं, जब विदेह मुक्त हुए तब परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, हे रामजी! एक अविद्या के दो रूप हैं, एक अविद्यारूप, पुनः वही विद्यारूप होती है, जैसे बीज फल भाव को प्राप्त होता है और फल बीजभाव को प्राप्त होता है, जैस जल में में बुदबुदा उठता है, ऐसे अविद्या से विद्या उत्पन्न होती है और विद्या से अविद्या लीन होती है, जैसे काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होकर काष्ठ को दग्ध करती है, ऐस विद्या अविद्या से उत्पन्न होकर अविद्या को नाश करती है और वास्तव से सब चिदाकाश है, जैसे जल में तरंग कलना मात्र है, ऐसे विद्या अविद्या भावना मात्र हैं, इसको त्यागकर शेष आत्मसत्ता रहती है, अविद्या और विद्या आपस में प्रतियोगी हैं, जैसे तम और प्रकाश होता है, अतः इन दोनों को त्यागकर आत्मसत्ता में स्थित हो। विद्या और अविद्या कल्पना मात्र हैं, विद्या के अभाव का नाम अविद्या है और अविद्या के अभाव का नाम विद्या है, यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है, जब विद्या उत्पन्न होती है तब अविद्या का भास करती है, पीछे आप भी लीन हो जाती है, जैसे काष्ठ से उत्पन्न अग्नि काष्ठ को जलाकर आप भी शान्त हो जाती है, ऐसे अविद्या को नाश करके विद्या आप भी लीन हो जाती है, उससे जो शेष रहता है वह अशब्द पद सर्वव्यापी है, जैसे वट बीज में पत्र टास फूल फल पाते हैं, ऐसे सब में एक अनुस्यूत सत्ता व्यापी है, वह

ब्रह्म तत्व सर्वशक्त है, सर्व शक्ति का स्पंद है और आकाश से भी शून्य है, जैसे सूर्यकान्त में अग्नि होती है, जैसे दूध में घृत होता है, ऐसे सब जगत् में ब्रह्म व्याप रहा है, जैसे दधि के मथे बिना घृत नहीं निकलता, ऐसे विचार बिना आत्मा नहीं भासती, जैसे अग्नि से चिनगारे निकलते हैं और सूर्य से किरणें निकलती हैं, ऐसे यह जगत् आत्मा का किंचनरूप है, जैसे घट के नाश हुए घटाकाश अविनाशी है, ऐसे जगत् के अभाव से भी आत्मा अविनाशी है। हे रामजी! जैसे चुम्बक पत्थर की सत्ता से जड़ लोहा चेष्टा करता है, परन्तु चुम्बक सदा आकर्षता ही है, ऐसे आत्मा की सत्ता से जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं चैतन्य होते हैं, परन्तु आत्मा सदा कर्ता है, इस जगत् का बीज चेतन आत्मसत्ता है, उसमें संवित् संवेदन आदिक शब्द भी कल्पना मात्र हैं, जैसे जल को कहें कि बहुत सुन्दर है, चंचल है, वह जल ही जल है, ऐसे संवेदन आदिक सब चेतनरूप हैं, जहां न किंचन है न अकिंचन है, वह तेरा स्वरूप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विद्यानिराकरणवर्णनं
नाम नवमः सर्गः ॥९॥

दशमः सर्गः १०

अविद्या चिकित्सा वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! स्थावर जंगम जितना जगत् तुझको भासता है वह आधिभौतिकता को नहीं प्राप्त हुआ, सब चिदाकाश रूप है, उसमें कुछ भाव अभाव की कल्पना नहीं और जीवादिक भी नहीं, हमको तो भेद कल्पना कुछ नहीं भासती, जैसे जेवरी सर्प का अभाव है, ऐसे ब्रह्म में भेद कल्पना का अभाव है, हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से भेद कल्पना भासती है, आत्मा के ज्ञान से भेद कल्पना मिट जाती है, वह सर्व संपत्ति का अन्त है और जब शुद्ध चेतन में चित्त का सम्बन्ध होता है, तब इसी का नाम अविद्या है, जो पुरुष चित्त की उपाधि से रहित

चिन्मात्र है वह शरीर के नाश हुए नाश नहीं होता और शरीर के उत्पन्न हुए उत्पन्न नहीं होता, शरीर के उत्पन्न होने और नाश होने में सदा एकरस ज्यों का त्यों स्थित है, जैसे घट के बनने बिगड़ने में घटाकाश ज्यों का त्यों होता है, ऐसे शरीर के भाव अभाव में आत्मा ज्यों की त्यों है, जैसे बालक दौड़ता है उसको सूर्य भी दौड़ता भासता है और स्थित होने में स्थित भासता है परन्तु सूर्य ज्यों का त्यों है, ऐसे चित्त की चंचलता करके मूर्ख आत्मा को व्याकुल देखते हैं और चित्त की अचलता में अचल देखते हैं और चित्त के उत्पन्न होने में उत्पन्न होता देखते हैं परन्तु आत्मा सदा ज्यों की त्यों है जैसे बबोहा अपनी तन्तु से आप ही वेष्टित होता है, निकल नहीं सकता, ऐसे यह जीव अपनी वासना से आप ही बन्धन में पड़ते हैं। रामजी बोले–हे भगवन्! अत्यन्त मूर्खता को प्राप्त होकर जो स्थावरादिक शरीर को पाकर स्थित हुए हैं, उनकी वासना के विषय में कहिये, आपकी कृपा होगी, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो स्थावर जीव हैं, वे अमन सत्ता को नहीं प्राप्त हुए और केवल मन अवस्था में भी स्थित नहीं होते मध्य की अवस्था में है, उनकी पुर्यष्टका सुषुप्ति रूप है, वह केवल दुःख का कारण है, उसका मन नष्ट नहीं हुआ। सुषुप्ति अवस्था में जड़रूप स्थित है, वे समय पाकर जगेंगे, अब उनकी सत्ता मूक जड़ होकर स्थित है, सत्तामात्र स्थित है, रामजी बोले–हे मुनीश्वर! जब उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकर स्थावर में स्थित है, तब मुक्ति अवस्था उनके निकट हुई यह सिद्ध हुआ, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है, मुक्ति तब होती है जब बुद्धिपूर्वक वस्तु को विचारे। तब यथाभूत अर्थ दृष्टि (समझ में) आता है, जब सत्ता समान बोध हो, तब केवल आत्मपद को प्राप्त हो, हे रामजी! जब ज्यों ज्यों पदार्थ जानकर वासना का त्याग करे वह उत्तम है, तब सत्ता समान पद प्राप्त हो, पहिले अध्यात्म शास्त्र का विचार करे, उसमें जो सार है, उसकी बार बार भावना करे उससे जो प्राप्त हो वह सत्ता समान परब्रह्म कहाता है, स्थावर के अन्तर वासना है, परन्तु ब्रह्म दृष्टि नहीं आती, क्योंकि उनकी

सुषुप्त वासना है, जैसे बीज में अंकुर होता है, पुनः उत्पन्न होता है, ऐसे उनके जन्म होंगे, वासना जगेगी, जो उनके अन्दर जगत् की सत्यता है और बाह्य नहीं दृष्टि आती, वह सुषुप्तवत् जड़ धर्म है, फिर अनन्त जन्म दुःख पायेंगे हे रामजी! स्थावर जो सब जड़ धर्म सुषुप्तपद में स्थित है, वह बारंबार जन्म को पायेंगे, जैसे बीज में पत्र टास फूल फल स्थित होते हैं, जैसे मृत्तिका में घट शक्ति स्थित होती है, ऐसे स्थावर में वासना स्थित है, जहां वासनारूप बीज है, वह सुषुप्तरूप कहाता है, वह सिद्धता (मुक्ति) उसको नहीं प्राप्त करती और जहां निर्बीज वासना है वह तुर्यापद है सिद्धता को प्राप्त करती है, हे रामजी! जब चित्त शक्ति वासना के साथ मिली होती है तब स्थावर होती है, वह फिर जगती है, जैसे कोई काम करता सो जाता है, सुषुप्ति से उठकर फिर वही काम करने लगता है, कर्मरूप वासना उसके अन्दर रहती है, ऐसे स्थावर वासना से फिर जन्म पायेंगे, जब वह वासना अन्दर से दग्ध हो जाय तब जन्म का कारण नहीं होती। आत्मसत्ता घटपटादिक प्रत्येक पदार्थ में समता से स्थित है, जैसे वर्षा काल का मेघ एक ही नाना रूप होकर स्थित होता है, ऐसे आत्मसत्ता एक ही सर्व पदार्थ में स्थित होती है, इसलिये सर्वत्र सब आत्मा ही व्याप्त हो रहा है, ऐसी दृष्टि से जो रहित है, उसको विपर्यय दृष्टि भ्रमदायक होती है, जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती है तब सब दुःख नाश हो जाते हैं। हे रामजी! असम्यक् दृष्टि का नाम अविद्या है, बुद्धिमान् कहते हैं, वह अविद्या जगत् का कारण है, उससे सब पसारा होता है, इससे रहित जब अपना स्वरूप भासे तब अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे बर्फ का कण धूप से नाश हो जाता है, ऐसे शुद्ध स्वरूप के अभ्यास से अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे स्वप्न से रहित जब अपना स्वरूप देखता है तब फिर स्वप्न की ओर नहीं जाता है, शुद्ध स्वरूप के अभ्यास से सम्पूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाता है, हे रामजी! जब वस्तु को वस्तु जानता है तब अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे प्रकाश से अन्धकार नाश हो जाता है, दीपक को हाथ में लेकर देखिये तब अंधकार की मूर्ति

दृष्टि नहीं आती, जैसे उष्णता से घृत पिंड गल जाता है ऐसे आत्मा के दर्शन हुए अविद्या नहीं रहती और वास्तव से अविद्या कुछ वस्तु नहीं, अविचार से सिद्ध है, विचार किये से लीन हो जाती है, जैसे प्रकाश से तम लीन हो जाता है, ऐसे विचार से अविद्या लीन हो जाती है, अज्ञान से अविद्या की प्रतीति होती है, जब तक आत्मतत्व को नहीं देखा, तब तक अविद्या की प्रतीति होती है, जब आत्मा को देखा तब अभाव हो जाता है, पहले यह विचार करे कि यह जो रक्त मांसमय अस्थियंत्ररूप शरीर है इसमें मैं क्या वस्तु हूँ? सत्य क्या है? असत्य क्या है? उसमें जिसका अभाव होता है, वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्य है, फिर अन्वय व्यतिरेक से विचारे, जो कार्य कल्पित के होते भी हो और उसके अभाव में भी हो वह अन्वय सत्य है, जो देहादिक भाव में भी आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभाव में भी निरुपाधि सिद्ध है वह सत्य है और देहादिक व्यतिरेक असत्य है, ऐसे विचार कर आत्मतत्व का अभ्यास करे और असत् देहादिक से वैराग्य करे, तब निश्चय करके अविद्या लीन हो जाती है क्योंकि जो वास्तव नहीं सत्यरूप है, उसके नष्ट हुए जो शेष रहे वह निष्किंचन किंचनरूप है वह सत्य है, ब्रह्म निरन्तर है, वह तत्व वस्तु उपादेय है, हे रामजी! ऐसा विचार करके अविद्या नष्ट हो जाती है जैसे गन्ने का रस जिह्वा में लगता है तब अवश्य ही स्वाद आता है और जब वास्तव से कहें तब अविद्या भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं, सर्व एक अखंडित ब्रह्मतत्व है, घट पर रथ आदिक जैसे कुछ पदार्थ हैं, जिसको भिन्न भिन्न भास आते हैं, उसको अविद्या जान और जिसको सब में एक ब्रह्मभावना है, उसको विद्या जान, इस विद्या से अविद्या नष्ट हो जायेगी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेविद्याचिकित्सावर्णनं
नाम दशमः सर्गः ।।१०।।

एकादशः सर्गः ११

जीवन्मुक्तिनिश्चयोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! बोध के निमित्त में तुझको बारंबार सार कहता हूँ कि आत्मसाक्षात्कार भावना अभ्यास बिना न होगा, यह जो अज्ञान अविद्या है अनन्त जन्म का दृढ़ हुआ है, अन्दर बाहिर से दिखाई देता है, आत्मा सब इन्द्रियों के अगोचर है, जब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव हो जाय, तब केवल शान्ति को प्राप्त होता है, हे रामजी! जितनी कुछ वृत्ति बहिर्मुख फुरती है, वह अविद्या है, क्योंकि आत्मतत्व से इतर जानकर फुरती है और जो अन्तर्मुख आत्मा की ओर फुरती है, वह विद्या है, वह विद्या अविद्या को नाश करेगी, अविद्या के दो रूप हैं, एक प्रधानरूप है, एक निकृष्टरूप है, उस अविद्या से विद्या उत्पन्न होकर अविद्या को नाश करती है फिर आप भी नाश हो जाती है, जैसे बांस से अग्नि उत्पन्न होती है और बांस को जलाकर आप भी शान्त हो जाती है, ऐसे जो अन्तर्मुख है वह प्रधानरूप विद्या है और जो बहिर्मुख है वह अविद्या निष्कृष्टरूप है, अतः अविद्या भाग का नाश करो, हे रामजी! अभ्यास बिना कुछ सिद्ध नहीं होता, जो कुछ किसी को प्राप्त होता है वह अभ्यासरूप वृक्ष का फूल है, चिरकाल जो अविद्या का दृढ़ अभ्यास हुआ है, तब अविद्या दृढ हुई है, जब आत्मज्ञान के निमित्त यत्न करके अभ्यास करेगा तब अविद्या नाश हो जायेगी, हे रामजी! हृदयरूप वृक्ष है, उसके साथ अविद्यारूप कड़वी बेल चिपट गयी है, इसको ज्ञानखड्ग से काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचार है उसको करो तब तुझको दुःख कोई न होगा, जैसे राजा जनक ने ज्ञातज्ञेय होकर व्यवहार किया, ऐसे ही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यास करके तुम भी विचरो, हे रामजी! जैसे पवन निश्चय धारण करके कार्याकार्य में विचरता है और जैसे विष्णुभगवान् को स्वरूप में निश्चय है, सब कार्य करते हैं, जैसे सदाशिव को निश्चय है, गौरी आर्द्धांग में रहती है कभी क्षोभ नहीं करते, सब कार्य करते हैं,

सदाशान्तरूप है, जैसे निश्चय ब्रह्माजी को है, बाहिर से रागद्वेष दृष्टि आता है और अन्दर रागद्वेष कुछ नहीं, जैसा निश्चय देवगुरु बृहस्पतिजी का है, जैसा निश्चय चन्द्रमा और अग्नि का है, जैसा निश्चय बृहस्पतिजी का है, जैसा निश्चय चन्द्रमा और अग्नि का है, जैसा निश्चय नारद, पुलह, पुलस्त्य अंगिरा भृगु शुकदेवजी का है और भी ऋषीश्वर, मुनीश्वर ब्राह्मणों तथा क्षत्रियादिकों का निश्चय श्लाघ्य है क्योंकि यह सब लोग ज्ञातज्ञेय हुए हैं। वह निश्चय तुझको प्राप्त हो, रामजी बोले—हे ऋषीश्वर! जिस निश्चय से बुद्धिमान् लोग विशोक होकर स्थित हुए हैं, वह मुझको कहो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे सब ज्ञानवानों का निश्चय है और वे लोग व्यवहार में जिस प्रकार सम रहे हैं उसे सुनो। विस्ताररूप जितना जगत्जाल तुझको भासता है, निर्मल ब्रह्मसत्ता अपनी महिमा में स्थित है, जैसे तरंग समुद्र में स्थित होते हैं, और नाना प्रकार के उत्पन्न होते हैं, वे एक जलरूप हैं, जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे जितने भी पदार्थ जाल भासते हैं सब ब्रह्मरूप हैं, जो ग्रहण करनेवाला है वह भी ब्रह्म है और जिसको ग्रहण करता है वह भी ब्रह्म है, मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है, यह निश्चय ज्ञानवान् को सदा ही रहता है पुनः कैसा है, ब्रह्म को ब्रह्म स्पर्श करता है, तब उसको स्पर्श किया, हे रामजी! जिनको सदा यही निश्चय रहता है, उनको रागद्वेष कुछ दुःख नहीं दे सकते, ब्रह्म ही ब्रह्म में फुरता है, भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है, इतर कुछ नहीं, फिर रागद्वेष कलना कैसे हो, ब्रह्म ही ब्रह्म को चेतता है, ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है, ब्रह्म ही अहं अस्मि है, ब्रह्म ही सम है, ब्रह्म ही अन्तरात्मा है, घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही विस्तार को प्राप्त हुआ है, हे रामजी! जब सर्वत्र ब्रह्म ही है तब राग विराग कलना कैसे हो? मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, मरता भी ब्रह्म है, मारता भी ब्रह्म है, जैसे जेवरी में सर्प भ्रम से भासता है, ऐसे आत्मा में सुख दुःख मिथ्या है, भोग भी ब्रह्म है, भोगने वाला भी ब्रह्म है, भोक्ता देह भी ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्म ही है, जैसे समुद्र में

तरंग उत्पन्न हो जाते हैं, वह जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे शरीर उत्पन्न होते और मिट जाते हैं, वह ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है, हे रामजी! जल के तरंग जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वह क्या हुआ! वह तो जल ही जल है, ऐसे मृतक ब्रह्म ने जो देह मृतक ब्रह्म को मारा, तब कौन मरा और किसने मारा, जैसे एक तरंग जल से उत्पन्न हुआ और दूसरे तरंग के साथ मिल गया दोनों इकट्ठे होकर मिट गये, वह जल ही जल है, वहाँ दूसरा कुछ नहीं ऐसे आत्मा में जगत् है, वह आत्मा ही अपने आप में स्थित है, तेरा मेरा भिन्न कुछ नहीं, जैसे स्वर्ण में भूषण होते हैं जल में तरंग होते हैं वे अभेदरूप हैं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, हे रामजी! जो पुरुष यथार्थ दर्शी हैं उनको सदा यही निश्चय रहता है और जिनको सम्यग् ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, उनको विपर्ययरूप और का भासता है, वास्तव से सदा एकरूप है परन्तु ज्ञान और अज्ञान का भेद है, जैसे जेवरी एक होती है परन्तु जिसको सम्यग् ज्ञान होता है उसको जेवरी भासती है और जिसको सम्यग् ज्ञान नहीं होता उसे सर्प भासता है, ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उसको सब ब्रह्मसत्ता भासती है और जो अज्ञानी है उनको जगत्‌रूप भासता है, उनको नाना प्रकार का जगत् दुःखदायक होता है और ज्ञानवान् को सुखरूप है, जैसे अन्धे को सब ओर अन्धकार भासता है और चक्षुमान् को प्रकाशरूप होता है, ऐसे सर्व जगत् आत्मस्वरूप है, परन्तु ज्ञानी को आत्मसत्ता सुखरूप भासती है, अज्ञानी को दुःखदायक है, जैसे बालक को अपनी परछाही में बैताल बुद्धि होती है, उससे भीत होता है और बुद्धिमान् निर्भय होता है, ऐसे अज्ञानी को जगत् दुःखदायक है, ज्ञानी को सुखरूप है और जब मेरा निश्चय पूछे तब ऐसे हैं, मैं सर्व ब्रह्म हूँ, नित्य शुद्ध सब में स्थित हूँ, न कोई नाश पाता है न कोई उत्पन्न होता है जैसे जल में तरंग है वह न उत्पन्न हुआ है और न नाश होता है, जल ही जल है, ऐसे भूत भी आत्म में ही है जगत् भी आत्मरूप है, आत्मा ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है, शरीर के नष्ट हुए आत्मा का नाश नहीं होता, मृतरूप भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, ब्रह्म

ही अनेक रूप होकर भासता है, ब्रह्म से भिन्न शरीरादिक सिद्ध नहीं होते, जैसे तरंग फेन बुद्बुदे जलरूप हैं, ऐसे देह कलना इन्द्रिय इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप है, जैसे स्वर्ण से भिन्न भूषण नहीं होता, स्वर्ण ही भूषणरूप होता है ऐसे ब्रह्म से अतिरिक्त जगत् नहीं होता। ब्रह्म ही जगत्रूप है जो मूढ हैं उनको द्वैत कलना भासती है, हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्र इन्द्रिय, सब ब्रह्म ही के नाम हैं, अपर सुख दु:ख कुछ नहीं, अहं ऐसा जो शब्द है उसमें भिन्न भिन्न भावना करनी व्यर्थ है, अपना अनुभव ही अन्य की नाईं हो भासता है, जैसे पहाड़ में शब्द किया जाय तो वहां प्रतिशब्द का भास होता है, वह अपना ही शब्द है, इसमें अपर की कल्पना मिथ्या है, जैसे स्वप्न में अपना सिर कटा देखता है, वह व्यर्थ है, वही भास आता है जिसको असम्यक् ज्ञान होता है, उसको ऐसे है, हे रामजी! ब्रह्म सर्वशक्ति है, उसमें जैसी भावना होती है वही भास आती है, जिसको सम्यग् ज्ञान होता है, वह निरहंकार स्वप्रकाश सर्वशक्त देखता है, कर्ता कर्म करण संप्रदान, अपादान, अधिकरण यह जो षट्कारक बुद्धि हैं वह सब सर्वत्र ब्रह्म ही देखता है, ब्रह्म अर्पण ब्रह्म हवि, ब्रह्म अग्नि, ब्रह्म कर्म, ब्रह्म होमकर्ता, ब्रह्म ही फल देता है, ऐसे जानने वाले का नाम ज्ञानी है, ऐसे न जानने से अज्ञानी है, जानने वाले का नाम ब्रह्मज्ञानी है, हे रामजी! जब चिरकाल का बान्धव हो, उसको देखिये तब जान सकते हैं कि यह बान्धव है और जो देखने में आया हो उसका अभ्यास अर्थात् स्मृति नहीं रहती तब बांधव भी अबांधव की नाईं हो जाता है, ऐसे अपना आप ब्रह्मरूप है जब भावना होती है तब ऐसे भास आता है कि मैं ब्रह्म हूँ और द्वैत कल्पना भी लीन हो जाती है, सब ब्रह्म ही भासता है, जैसे जिसने अमृत पान किया वह अमृतप्राय होता है और जिसने नहीं पान किया वह अमृतमय नहीं होता, ऐसे जिसने जाना कि मैं ब्रह्म हूँ वह ब्रह्म ही होता है, जिसने नहीं जाना, जिसको नानात्व कल्पना जन्म मरण भासता है और ब्रह्म अप्राप्त को नहीं भासता है, हे रामजी! जिसमें ब्रह्मभावना का अभ्यास जगा है वह अभ्यास के बल से शीघ्र ही

ब्रह्म होता है, ब्रह्मरूप बड़े दर्पण में जैसी कोई भावना करता है, ऐसा रूप ही भासता है मन भावना मात्र है, दुर्वासना से इनका स्वरूप आवृत्त हुआ है, जब भावना नष्ट होती है, तब निष्कलंक आत्मतत्व भासता है, जैसे शुद्धवस्त्र पर केसर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है, ऐसे वासनाओं से रहित चित्त में ब्रह्मस्वरूप भास आता है हे रामजी! आत्मा सर्वकलना से रहित है और तीनों कालों में नित्यशुद्ध सम शान्तरूप है, जिसको ज्ञान होता है वह ऐसा जानता है कि मैं ब्रह्म हूँ सर्वकाल सब में सब प्रकार का घटपटादिक जो जगज्जाल है वह मैं ही ब्रह्म आकाशवत् सब में व्याप रहा हूँ। न कोई मुझको दुःख है न कर्म है, न किसी का त्याग करता हूँ, न वांछा करता हूँ, सर्व कलना से रहित निरामय हूँ, मैं ही रक्त हूँ, मैं ही पीत हूँ, मैं ही श्वेत हूँ, मैं ही श्याम हूँ, रक्तमांस अस्थि का वपु भी मैं हूँ, घटपटादिक जगत् भी मैं ही हूँ, तृण वल्ली फूल गुच्छे टास मैं ही हूँ, वन पर्वत समुद्र नदियां मैं ही हूँ, ग्रहण करना त्याग करना, संकुचित होना, भूतशक्ति सब मैं ही हूँ, विस्तार को मैं ही प्राप्त हुआ हूँ, वृक्षवल्ली फूलगुच्छे जिसके आश्रय फुरते हैं, वह चिदात्मा मैं ही हूँ, सब में रसरूप मैं ही हूँ, जिसमें यह सब है, जिससे यह सब है, वह सब है जिसका सब है, ऐसा चिदात्मा ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ, चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्य अमृत ज्ञानरूप इत्यादि जिसके नाम हैं ऐसा सर्वशक्ति चिन्मात्र चैत्य से रहित मैं ही हूँ, प्रकाशमात्र निर्मल सर्व भूत प्रकाशक मैं ही हूँ, मन बुद्धि इन्द्रियों का स्वामी मैं ही हूँ, जितनी भेदकलना है, वह इन्होंने की थी, अब इनकी कलना को त्यागकर अपने प्रकाश में स्थित हूँ, चेतन ब्रह्म निर्दोष हूँ, शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सब जगत् के कारण हैं, इन सबका चेतन आत्मरूप ब्रह्म निरामय मैं ही हूँ। अविनाशी हूँ, निरन्तर स्वच्छ आत्मा प्रकाशरूप मन के उत्थान से रहित मौन रूप मैं हूँ। परम अमृत निरंतर सर्व भूतों के सत्तारूपों से मैं स्थित हूँ, सदा अलिप्त साक्षी सुषुप्त की नाईं हूँ, द्वैत कलना से रहित अक्षोभ रूपानुभव मैं ही हूँ, शान्तरूप सब जगत् में मैं पसारा किये हुए हूँ, सर्व वासना से रहित अक्षोभरूप अनुभव मैं ही हूँ।

सब स्वादों का जिससे अनुभव होता है, वह चेतन ब्रह्म आत्मा मैं ही हूँ, स्त्री से आसक्त है, चित्त जिसका और चन्द्रमा की कांति से जिसको मुदिता अधिक है, स्त्री के स्पर्श और मुदिता का जिससे अनुभव होता है, ऐसा चेतन ब्रह्म मैं ही हूँ, पृथ्वी में स्थित पुरुष की दृष्टि चन्द्रमा के मंडल में जा लगती है उसका अनुभव जिसमें होता है, वह मैं ही हूँ, सुख दुःख की कलना से रहित अमन सत्ता अनुभवरूप जो आत्मा है वह चेतन स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ, खजूर और निंबआदिक में स्वादरूप मैं ही हूँ, खेद और आनन्द लाभ और अलाभ मुझको तुल्य है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति साक्षी तुरीयारूप आदि अन्त से रहित चेतन ब्रह्म निरामय मैं ही हूँ, जैसे क्षेत्र के गन्ने में एक ही रस होता है ऐसे अनेक मूर्तियों में एक ब्रह्म सत्ता स्थित है, वह सत्य शुद्ध, सम शान्तरूप सर्वज्ञ है, प्रकृत जो सूक्ष्म उसका प्रकाशक है, सूर्य की नाईं वह प्रकाशरूप ब्रह्म मैं ही हूँ, सारे शरीर में व्यापक हो रहा हूँ, जैसे मोती में तंतु गुप्त होता है, उसमें मोती पिरोये हैं ऐसे मोती रूप शरीर में तंतुरूप गुप्त मैं ही हूँ और जगत् रूप दूध में ब्रह्मरूप घृत मैं ही व्याप्त हो रहा हूँ, हे रामजी! जैसे सुवर्ण से नाना प्रकार के भूषण बनते हैं, वे सुवर्ण से इतर कुछ नहीं, ऐसे सब पदार्थ आत्मा में स्थित हैं आत्मा से इतर कुछ नहीं। पर्वत समुद्र नदी में सत्तारूप आत्मा ही है, सर्व सकंल्पों का फलदाता और सब पदार्थों का प्रकाशक आत्मा ही है और सब पाने योग्य पदार्थों का अन्त है, उस आत्मा की उपासना हम करते हैं, घट, पट, तट, कंध में स्थित है और जाग्रत में सुषुप्त रूप से स्थित है, जिसमें फुरणा कोई नहीं, ऐसे चेतनरूप आत्मा ही हम उपासना करते हैं, मधुर में जो मधुरता है और तीक्ष्ण में जो तीक्ष्णता है और जगत् में जो चलन शक्ति है उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुर्या, तुर्यातीत में जो सम तत्व है, उसकी हम उपासना करते हैं, त्रिलोकी के देहरूप जो मोती हैं, उनमें जो तंतु की नाई अनुस्यूत है और फैलाव (प्रसारण) और संकोचन का जो कारण है, उस चेतन रूप आत्मा की हम उपासना करते हैं, जो षोडश

कला संयुक्त और षोड़श कला से रहित है और अकिंचन किंचनरूप है, उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। चेतनरूप अमृत है, जो क्षीर समुद्र से निकला है, चन्द्रमा के मंडल में रहता है, ऐसा जो स्वतः सिद्ध अमृत है, जिसको पाकर कदाचित् मृतक न होगा, उस चेतन अमृत की हम उपासना करते हैं, जो अखंड प्रकाश है और सब भूतों को सुन्दर करता है, उस चिदात्मा की उपासना करते हैं, शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध जिससे प्रकाशित होते हैं और आप इनसे रहित हैं, उस चेतन आत्मा की हम उपासना करते हैं। सब कुछ मैं हूँ और मैं कोई नहीं हूँ, इस प्रकार वेध को जानकर अपने अद्वैतरूप में विगत ज्वर होकर स्थित होते हैं, यही निश्चय ज्ञानवान् का है

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेजीवनमुक्ति निश्चयोपदेशवर्णनमं नामैकादशः सर्गः ॥११॥

द्वादशः सर्गः १२

जीवन्मुक्ति निश्चय वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो निष्पाप पुरुष हैं, उनको यही निश्चय रहता है कि सत्यरूप आत्मतत्व ही है, यह पूर्ण बोधवान् का निश्चय है, उनको न किसी से राग होता है न द्वेष होता है, जीना मरना उसको सुख दुःख नहीं देता, एक समान रहते हैं, नारायण विष्णु का अंग है, अर्थात् अभिन्न हैं, सदा अचल हैं, जैसे सुमेरु पर्वत वायु से विचलित नहीं होता, ऐसे वह दुःख से नहीं फिसलते, ऐसे जो ज्ञानवान् हैं, वे वन में विचरते हैं, नगरों दीपों और नाना प्रकार के स्थानों में घूमते हैं परन्तु कहीं दुःख को नहीं प्राप्त होते, स्वर्ग में फूलों से भरे बगीचों में फिरते हैं, कई पर्वत की कन्दरा में रहते हैं, कई राज्य करते हैं, शत्रु को मारकर शिर के ऊपर झुलाते हैं, कई श्रुति स्मृति अनुसार कर्म करते हैं, भोग

भोगते हैं, कई विरक्त होकर स्थित हैं, कई दान यज्ञादिक कर्म करते हैं, कई स्त्रीजन के साथ लीला विनोद करने में मग्न हैं, कई संगीत सेवी हैं, नन्दावन में गन्धर्व गायन करते हैं, कई गृहस्थ हैं, (घरों में ही रहते हैं) कई तीर्थ यज्ञ करते हैं कई नौबत नक्कारे तुरियां आदि सुनने को व्यसनी हैं, इत्यादिक नाना प्रकार के कई स्थानों में रहते हैं, परन्तु आसक्त नहीं होते, जैसे सुमेरु पर्वत ताल में नहीं डूबता, ऐसे ज्ञानवान् किसी पदार्थ में बद्ध नहीं होते, इष्ट को पाकर हर्षवान् नहीं होते, अनिष्ट को पाकर दुःखी नहीं होते, आपत्ति सम्पत्ति में तुल्य रहते हैं, प्रकृत आचार कर्म करते हैं, परन्तु अन्दर सर्वारम्भ से रहित हैं, हे राघव! इस दृष्टि का आश्रय करके तुम भी विचरो, यह दृष्टि सब पापों का नाश करती है, अहंकार से रहित होकर जो इच्छा हो सो करो, जब यथा भूतदर्शी हुए तब निबन्धन हुए, जो कुछ प्रवाहरूप से आकर प्राप्त भी हो जाय उसमें सुमेरु की नाईं तुम अचल रहोगे, हे रामजी! यह सब जगत् चिन्मात्र है, न कुछ सत्य है न असत्य है, वही इस प्रकार होकर भासता है, इस दृष्टि का आश्रय करके अपर तुच्छ दृष्टि को त्यागो, हे रामजी! असंसक्तबुद्धि होकर भाव अभाव में स्थित हो तो राग द्वेष से विचलित न होगा, अब सावधान रहो, रामजी बोले, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है, मैंने आपकी कृपा जानने योग्य पद को जाना है और प्रबुद्ध हुआ हूँ, जैसे सूर्य की किरणों से कमल प्रफुल्लित होते हैं, जैसे शरत्काल में कुहिड़ का अभाव हो जाता है, ऐसे आपके वचनों से मेरा संदेह दूर हो गया है, मान मोह मद मत्सर सब नष्ट हो गये हैं, मैं अब क्षोभ से रहित शांति को प्राप्त हुआ हूँ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जीवन्मुक्तिनिश्चय वर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

त्रयोदशः सर्गः १३

ज्ञानज्ञेय विचार वर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! सम्यग् ज्ञान विलास से वासना उदय होती है, जीवन्मुक्ति पद में किस प्रकार विश्रान्ति प्राप्त हो, कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! संसार तरने की युक्ति है, वह योग नाम की है, दो प्रकार की है, एक सम्यक् ज्ञान करके, दूसरी प्राणों के रोकने से, रामजी बोले–हे भगवन्! इन दोनों में सुगम कौन है? जिससे दुःख भी अधिक न प्राप्त हो और पुनः क्षोभ भी न उत्पन्न हो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! दोनों प्रकार योग शब्द से कहे जाते हैं परन्तु योग नाम प्राणों के रोकने का है, संसार के तरने के यही ज्ञान और योग दोनों उपाय है, इन दोनों का फल सदाशिव ने एक ही कहा है, हे रामजी! किसी को योग करना कठिन है और ज्ञान का निश्चय सुगम है। किसी को ज्ञान का निश्चय कठिन है और योग करना सुगम है और यदि मुझसे पूछो तो दोनों में ज्ञान सुगम है इसमें यत्न कष्ट थोड़ा है, जानने योग्य पदार्थ के जानने से स्वप्न में भी भ्रम नहीं होता, साक्षीभूत होकर दृष्ट देखता है और जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं, उनको भी यत्न कुछ नहीं, स्वाभाविक चले जाते हैं, इनकी एक युक्ति समझकर चित्त शान्त हो जाता है। हे रामजी! दोनों की सिद्धता अभ्यास और यत्न से होती है, अभ्यास बिना कुछ प्राप्त नहीं होता, वह ज्ञान तो मैंने तुझको कहा है जो हृदय में विराजमान ज्ञेय है उसको जानना ज्ञान है और जो प्राण अपान के रथ पर आरूढ़ है, हृदयरूप गुहा में स्थित है, हे रामजी! उस योग का भी क्रम सुनो, जो परमसिद्धता के निमित्त है, प्राणवायु जो नासिका और मुख के मार्ग हो आती जाती है, उसके रोकने का क्रम कहता हूँ, उससे चित्त उपशम हो जाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ज्ञानज्ञेयविचारवर्णनं
नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः १४

सुमेरुशिखरलीलावर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ब्रह्मरूप आकाश है, उसके किसी कोने में यह जगत् रूप स्पंद आभास फुरा है, जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों से मृगतृष्णा का जल फुर आता है, ऐसे ही जगत् ब्रह्म से फुर आया है, उस जगत् के कारण भाव को वही प्राप्त हुआ है और ब्रह्म के नाभिकमल से जिसकी उत्पत्ति है और पितामह नाम से कहा जाता है, उसका मानसिक पुत्र श्रेष्ठ आचार है, जिसका ऐसा जो मैं वसिष्ठ हूँ, नक्षत्र ताराचक्र में मेरा निवास है युग युग प्रति मैं वहाँ रहता हूँ, वह मैं जब नक्षत्र चक्र से उठा तब इन्द्र की सभा में आया, वहां ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे थे जब नारदादिकों में चिरंजीवता का प्रसंग चला तब वहां शातातप नाम एक परम माननीय बुद्धिमान् ऋषीश्वर था कहने लगा, हे सत्पुरुषो! जो इस समय सब से अधिक चिरंजीव है वह सुमेरु पर्वत की एक पद्मराग नाम कंदरा के शिखर पर जो कल्पवृक्ष है वह अति सुन्दर तथा शोभा पूर्ण है, उस वृक्ष का दक्षिण दिशा में एक टास है, वहां पक्षी रहते हैं, उन पक्षियों में बड़ा श्रीमान् एक कौआ (काक) रहता है, भुशुंड उसका नाम है, वह वीतराग है, बुद्धिमान है, उसका आलय (घर) कल्पवृक्ष के टास के ऊपर बना हुआ है, जैसे ब्रह्मा नाभिकमल में रहता है ऐसे वह आलय में रहता है, वह अति उत्तम जीने वाला है, जिस प्रकार वह जिया है ऐसा कोई न जिया होगा, उसका आयुर्बल बहुत दीर्घ है और वह श्रीमान् महा मतिमान् विश्रान्तिमान् शान्तपुरुष और काल का वेत्ता है, हे साधु पुरुषो! उसका बहुत जीना सफल है और पुण्यवान् भी वही है, जिसको आत्मपद में विश्रान्ति हुई है और संसार की आस्था जिसमें से जाती रही है, ऐसा वह विलक्षण है. उसका नाम काक भुशुण्ड है। इस प्रकार जब उस देवताओं के देव ने संपूर्ण सभा में कहा तब ऋषीश्वर ने

दूसरी बार पूछा कि उसका वृत्तान्त फिर कहो, तब उसने फिर वर्णन किया, उस समय सब लोग परम विस्मित हुए, जब इस प्रकार बातचीत हो चुकी तब सब सभा उठ खड़ी हुई और सब अपने अपने आश्रम को गये और मैं अत्यन्त आश्चर्यवान् हुआ कि ऐसे पक्षी को किस प्रकार देखें, ऐसे विचार कर मैं सुमेरु पर्वत की कंदरा में सन्मुख हुआ और चला, तब एक क्षण में जा पहुँचा और देखा कि कंदरा का शिखर महा प्रकाशमय है, रत्नों मणियों से पूर्ण है और गेरू की नाईं रंग है, जैसे अग्नि ज्वाला होती है ऐसे प्रकाशरूप है, मानो प्रलयकाल की अग्निज्वालाएं जग रही हैं, मणियों तथा रत्नों का प्रकाश है और नीलमणि धूम्र के समान है मानों धुंआ निकलता है और सब रंगों की खाने हैं, जितने संध्या के बादल लाल होते हैं, मानों वह आकर इकट्ठे हुए हैं, मानों योगीश्वर के ब्रह्मरंध्र से अग्नि निकलकर इकट्ठी हुई है, मणिमय प्रकाश नहीं मानो बड़वाग्नि समुद्र से निकलकर मेघ को पकड़ने के लिये आकर स्थित हुई है, महा सुन्दर रचना बनी हुई है, फल और रत्नमणियों से मिलकर प्रकाशमय हो रहे हैं, ऊपर गंगा का प्रवाह चला जा रहा है, वह यज्ञोपवीत जैसा बना हुआ है, गन्धर्व गायन कर रहे हैं, देवों के रहने के स्थान हैं, प्रसन्नता उत्पन्न करने के लिये विधाता ने अति उत्तम रचना की है, उसको मैंने देखा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्धे भूशुण्डापाख्याने सुमेरुशिखरलीलावर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ।।१४।।

पंचदशः सर्गः १५

भुशुण्ड वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ऐसे शिखर के ऊपर मैंने कल्पवृक्ष देखा जो महा सुन्दर फूलों से पूर्ण था और जिसमें रत्नों और मणियों के गुच्छे लगे हुए थे, सुवर्ण की लताएं शोभित हो रही थीं, तारों से भी दुगने फूल

दृष्टि आते थे, बादलों से तथा सूर्य की किरणों से तो अद्भुत ही दृश्य बन रहा था, पत्रों पर देवता, किन्नर और विद्याधर आकर बैठते हैं, अप्सराएं आकर नृत्य करती हैं और गाती हैं, जैसे भ्रमर जहाँ वहाँ गूँजते फिरते हैं, हे रामजी! वहाँ रत्नों के गुच्छे नीरन्ध्र, कलियाँ और फूल भी नीरन्ध्र, पत्र फल भी नीरन्ध्र, मणियाँ नीरन्ध्र सब नीरन्ध्र दृष्टि आते हैं और सब स्थान फूलों फलों और गुच्छों से पूर्ण हैं, षटऋतुओं के फूल फल वहां मिलते हैं, महा विचित्र रचना बनी हुई है, इसके एक टास पर पक्षी बैठे हैं, सिंह बैठे हैं, अन्य जीव फल आदिक खाते हैं। कहीं ब्रह्माजी के हंस बैठे हैं, कहीं अग्नि के वाहन तोते बैठे हैं और कहीं अश्विनी कुमार और भगवती के मोर शिखावाले हैं। कहीं बगले कहीं कबूतर कहीं गरुड़ बैठे हैं और ऐसे शब्द करते हैं, मानों ब्रह्म कमल से उत्पन्न हुआ ओंकार का उच्चारण करते हैं, कई ऐसे पक्षी है कि जिनकी दो दो चोंचे हैं, वहां देखकर मैं दक्षिण के कोने की तरफ गया, वहां उस वृक्ष का टास था, उस पर अनेक कौए बैठे हुए थे, जैसे महाप्रलय में मेघ लोकालोक पर्वत पर आकर बैठते हैं, ऐसे वहां अचल आकार कौए बैठे हुए देखे, सोम सूर्य इन्द्र वरुण कुबेर इनकी यज्ञ रक्षा के वहां से लेनेवाले और पुण्यवान स्त्रियों को प्रसन्नता देनेवाले, भर्ता के संदेश पहुँचाने वाले हैं, वे वहाँ बैठे हैं, मैंने उनको वहाँ देखा, उनके मध्य में महाश्रीमान् श्री भुशुण्डजी बैठे हैं ऊँची ग्रीवा किये हुए हैं, बड़ी कान्ति है, जैसे नीलमणि चमकती है, ऐसे उनकी ग्रीवा चमकती है और पूर्ण मन हैं और मानी हैं, अर्थात् माननीय हैं, श्याम हैं, सब अंग सुन्दर हैं, ऐसा प्राणस्पन्द को जीतने वाला नित्य अन्तर्मुख, परम सुखी, चिरजीवी पुरुष वहां बैठा है, जगत् में दीर्घायु, जगत् की अनित्यता जिसने खूब देखी है, जिसने इन्द्र की कई अप्सराएं देखी हैं, लोकपाल वरुण कुबेर यमादिक कई जन्म देखे हैं, देवता और सिद्धों के कई जन्म इस पुरुष ने देखे हैं, प्रसन्न और गंभीर अन्तःकरण पिता के समान है उनको पुत्र की नाईं है और जो पुत्र के समान है, उनको उपदेश करने के निमित्त पिता और गुरु की नाईं समर्थ होता है

और सर्वथा सब प्रकार हर समय विषय में समर्थ है, और प्रसन्न महामति निर्मल हृदय व्यवहार का वेत्ता है, गंभीर और शांतरूप महाज्ञात ज्ञेय हैं, ऐसे पुरुष को मैंने देखा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धभुशुण्डदर्शनवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ।।१५।।

षोडशः सर्गः १६

भुशुण्डसमागमवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! उसके बाद आकाश मार्ग से मैं भी वहाँ आया। महातेजस्वी दीपकवत् मेरा शरीर था, जब मैं उतरा, तब जितने पक्षी बैठे हुए थे, वे सब ऐसे क्षोभ को प्राप्त हुए जैसे वायु से कमलों की पंक्ति क्षोभ पाती है, जैसे भूकम्प से समुद्र क्षोभ पाता है उनके मध्य में भुशुण्ड था, उसने मुझको देखा, मैं यद्यपि अकस्मात् गया था तो भी उसने मुझे जान लिया कि यह वसिष्ठ है, देखकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—हे मुनीश्वर! स्वस्थ तो हो? सकुशल हो? हे रामजी! ऐसा कहकर उसने संकल्प के हाथ रचे और मेरा अर्घ्य पाद्य किया, भाव संयुक्त पूजा की और सेवकों को न कह कर स्वयं ही वृक्ष के पत्र लिये, उनका आसन रचकर मुझको बैठाया और कहा—अहो आश्चर्य है, हे भगवन्! तुमने तुमने बड़ी कृपा की दर्शन दिया, आपके दर्शनामृत से हम वृक्ष सहित पूर्ण हो रहे हैं, हे भगवन्! मेरे जो पुण्य इकट्ठे हुए थे वही इकट्ठे होकर इस प्रसन्नता के लिये तुम्हें प्रेरित कर ले आये हैं, हे मुनीश्वर! देवता पूजने योग्य हैं, उनके भी तुम पूज्य हो, तो आपका आना किस निमित्त से हुआ है इस मोहरूप संसार से तुमने उद्धार प्राप्त किया है, उस अखंड सत्ता समान में स्थित हो, अर्थात् आप तो कृतकृत्य पहिले से ही हो फिर किस निमित्त से आना हुआ यह मुझे कहिये कि आपका मनोरथ क्या है, अर्थात् क्या इच्छा है, आपके चरणों के दर्शन

करके मैंने तो सब कुछ जाना है, जिस निमित्त तुम्हारा आना हुआ है, स्वर्ग की सभा में चिरंजीव का प्रसंग चला था, तब मैं शरण में आया था उससे तुम मुझको पवित्र करने आये हो, यह तुम्हारे चरणों के प्रताप से मैंने जाना है परन्तु प्रभु के वचनामृत स्वाद की मुझको इच्छा है, इस निमित्त से मैं प्रभु के मुख से श्रवण करूं, हे रामजी! इस प्रकार चिरंजीव भुशुण्डनाम पक्षी ने मुझको कहा—हे पक्षियों के महाराज! जो कुछ आपने कहा है सत्य कहा है, मैं अभ्यागत तेरे आश्रम पर इसलिये आया हूँ कि चिरंजीवी की कथा चली थी, तू मुझको शीतल चित्त दृष्टि आता है और कुशल मूर्ति है और संसार रूप जाल से निकला हुआ दृष्टि आता है, इसलिये मेरे संशय को दूर कर कि तू किस समय उत्पन्न हुआ है, ज्ञातज्ञेय कैसे हुआ है, तेरी आयु कितनी है और कौन कौन वृत्तान्त तेरा देखा हुआ तुझे स्मरण है और वहां किस कारण से निवास किया है, भुशुंड ने कहा—हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूछा है सब कुछ कहता हूँ, तुम शनैः शनैः श्रवण करो, तुम साक्षात् त्रिलोकी के पूज्य प्रभु हो, त्रिकालदर्शी हो, परन्तु जो कुछ तुमने आज्ञा की है वह मानने योग्य है, तुम सरीखे महात्मा पुरुष मानने योग्य हैं, तुम सरीखे जो महात्मा पुरुष हैं उनके विद्यमान होते अपने में जो तप्तता होती है कहने से ही मिट जाती है, जैसे मेघ के आगे आये हुए सूर्य की तप्तता मिट जाती है, ऐसे तुम्हारे आगे कहने से तप्तता निवृत्त हो जाती है

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशुण्डसमागमवर्णनं
नाम षोडशः सर्गः ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः १७

भुशुण्डस्वरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ऐसे कहकर वह सर्वज्ञ सुन्दर परमस्निग्ध और समता संयुक्त भुशुण्ड स्निग्ध और गंभीर वाणी से कहने लगा,

जिसने तराजू में ब्रह्माण्ड को तोल लिया है और जगत् जिसको तृण की नाईं तुच्छ भासता है, अर्थात् जो सर्वत्र है जिसने संसार के उत्पत्ति प्रलय बहुत देखे हैं और अपनी मनोवृत्ति कहीं नहीं लगाई जैसे क्षीरसमुद्र से निकला मंदराचल परिपूर्ण समशुद्ध है, ऐसे उसका मन शुद्ध है, जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वल है ऐसे वह आत्मपद में विश्राम पाकर आनन्द से पूर्ण है और जगत् उत्पत्ति विनाश जिसने देखे हैं ऐसा योगीश्वर मुझको मधुर और उचित वचन कहने लगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशुण्डस्वरूप वर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ।।१७।।

अष्टादशः सर्गः १८

भुशुण्डोपाख्याने मातृव्यवहारवर्णनम् ।

भुशुण्ड ने कहा—हे मुनीश्वर! इस जगत् में जो बड़ा है वह सदाशिव सबका नायक देवादिदेव जिसने भगवती गौरी अर्धांग में धारण कर रखी है और जो महासुन्दर मूर्ति तथा त्रिनेत्र हैं उनके सिर पर बड़ी बड़ी जटाएं और मस्तक पर चन्द्रमा है, जिससे अमृत स्रवता है और जिनकी जटाओं के चारों ओर गंगा चलती है, जैसे पुष्पमाला कंठ में होती है, कालकूट विष के पान करने से जो नीलकंठ हो गये हैं, कंठ में रुंडमाला पड़ी है, देह में सब ओर भस्म लगी है, दिशाएं जिनके वस्त्र हैं, श्मशान में जिनका घर है, जो महाशान्तरूप होकर विचर रहे हैं ओर साथ जो सेना है, उसका महाभयानक आकार है, किसी के तो रुद्र की नाईं तीन नेत्र हैं, किसी का तोते की नाईं मुख है, किसी का ऊँट का सा मुख है, किसी की गदर्भ जैसी आकृति है, किसी का बैल का मुख है, भूतपिशाच विचर रहे हैं, कई जीव के अंदर प्रवेश कर जाने वाले हैं, रक्तमांस का भोजन करने वाले बीच में फिरते हैं, कई पहाड़ों में रहते हैं, कई वन में, कई कन्दराओं में, श्मशान में रहते हैं, उनके साथ देवियाँ भी ऐसी है कि जिनकी

महाभयानक चेष्टा और आचार है, उन देवियों में जो मुख्य हैं, उनका जिस जिस दिशा में निवास है सुनो–जया और विजया, जित और अपराजित, वाम दिशा की ओर तुम्बरु रुद्र के आश्रित हैं, सिद्ध और सुख का और रक्त का और उतला भैरव रुद्र के आश्रित हैं सब देवियों में यह अष्टनायिका और शत सहस्र देवियाँ हैं, रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, कौमारी, वासवी, और सौरी इत्यादिक शत सहस्र देवियाँ हैं, इनके साथ मिली हुई, आकाश में उत्तम देव, किन्नर गन्धर्व पुरुषासुर रूप धारिणी हैं, उनमें से पृथ्वी में मिली हुई भूचर कोटि हैं, नाना प्रकार के रूप तथा नाम धारण करने वाली पृथ्वी में जीवों का भोजन करती हैं, किसी का वाहन ऊँट है, किसी का गर्दभ और किसी का काक तथा किसी का वानर है, तोते आदि पक्षी भी कइयों के वाहन हैं, उन देवियों में कई पाशविक धर्मवाली हैं, जो क्षुद्रधर्म में स्थित हैं और कई विदित वेद्य जीवन्मुक्त पद में स्थित हैं, उनके मध्य में नायिका अलम्बुषा देवी है, जैसे विष्णुभगवान् का वाहन गरुड है, ऐसे देवी का वाहन काक है, वह देवी अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य संयुक्त है, वे देवियाँ एक समय मिलकर विचार करने लगी, जगत् के गुरु तुम्बरु और भैरव की पूजा करने लगी और उन्होंने विचार किया कि सदाशिव हमारे साथ भाव संयुक्त नहीं बोलते और हमको तुच्छ समझते हैं, हम इनको अपना कुछ प्रभाव दिखायें, प्रभाव दिखाये बिना कोई किसी को नहीं जानता, ऐसा विचार करके उमा को अपने वश करके उन्होंने छिपा लिया और वहां से ले गयीं

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेभूशुण्डोपाख्याने मातृव्यवहार वर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशः सर्गः १९

भुशुण्डालयलाभवर्णनम् ।

भुशुण्डजी बोले–हे मुनीश्वरो! तब वे देवियाँ मद्यमांस का भोजन करने लगीं, उन्होंने माया करके पार्वती को मार डाला और चावल की नाईं पकाया और नाचने लगीं, उनके कुछ पके हुए अंग सदाशिवजी को लाकर दिये, तब सदाशिव ने जाना कि मेरी प्यारी पार्वती को इन्होंने मार डाला है, ऐसा कहकर कुपित होने लगे, तब उन देवियों ने अपने अपने अंग से उसके अंग निकाले, सौरी से नेत्र निकाले, कौमारी ने नासिका निकाली, इस प्रकार अपने अपने अंग से उसके अंग निकालकर उन्होंने पार्वती की मूर्ति लाकर दे दी और नूतन विवाह कर दिया, तब सदाशिव प्रसन्न हुए, सर्वत्र आनंद उत्साह तथा मंगल होने लगा, तब सब देवियाँ अपने अपने स्थानों को गयीं और चन्द्र नाम काक जो अलम्बुषा देवी का वाहन था, वह ब्रह्माणी की हंसिनी के साथ क्रीड़ा करने लगा। क्रम से सबके साथ रमण क्रीड़ा की तब उन सबके गर्भ प्राप्त हुए और हंसनियाँ ब्रह्माणी के पास गयीं, तब ब्रह्माणी ने कहा अब तुमको मेरे उठाने की शक्ति नहीं, तुम गर्भवती हुई हो, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ, फिर आना। हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुई और नाभिसरोवर जो ब्रह्माजी का उत्पत्ति स्थान है, वहाँ जाकर स्थित हुई, उस ताल के कमल पत्र पर निवास किया, कुछ समय बीतने पर उन हंसनियोंने तीन अंडे दिये, जैसे बल्ली (वेल) से अंकुर उत्पन्न होता है, ऐसे उनके २१ अण्डे क्रम से उत्पन्न हुए, उनको उन्होंने फोड़ा जैसे ब्रह्माण्ड खप्पर को फोड़िये, तीन अंडों से हमारे अंग उत्पन्न हुए हैं, क्रम से हम बढ़े, उड़ने योग्य हुए तब माताएं हमको ब्रह्माणी के पास ले गयीं, उसके आगे हमने मस्तक झुकाया, तब ब्रह्माणी समाधि से उतरी थी, तब उसने हमको देखकर कृपा की वृत्ति धारण की, हमारे शीश पर हाथ रक्खा, उसके हाथ रखने से हमारी अविद्या नष्ट हो गई

और हमारे मन तृप्त और शान्त हो गया। हम जीवन्मुक्त पद में स्थित हुए, तब हमको यह वृत्ति फुर आयी कि किसी प्रकार एकान्त ध्यान स्थित हो, देवी ने आज्ञा की कि अब तुम जाओ, तब देवीजी की आज्ञा से हम पिता के पास आये, पिता ने हमको कंठ से लगाया और माथा चूमा तब हमने अलम्बुषा देवी की पूजा की तब पिता ने हमसे कहा—हे पुत्रो! तुम संसाररूप जाल में तो नहीं फंसे और यदि तुम निकले नहीं, फँसे हो तब मैं भगवती देवीजी की प्रार्थना करता हूँ, वह भृत्य पर दयालु है, जैसे तुम भगवती की उपासना करोगे ऐसे ही वह भी मनोरथ पूर्ण करनेवाली होगी, हे मुनीश्वर! तब हमने कहा हे पिता! हम तो ज्ञातज्ञेय हुए हैं, जो कुछ जानने योग्य है वह जाना है और जो पाने योग्य है वह पाया है ब्रह्माणी देवीजी के प्रसाद से अब हमको एकान्तध्यान की इच्छा है, जहाँ एकान्त हो वहां जाकर स्थित हों तब चन्द्र पिता ने कहा—हे पुत्रो! एकान्त स्थान सुनो, एक स्थान है, जो निर्दोष महापावन जहां सुन्दर, आलय बना हुआ है, निर्भय है, सर्व क्षोभ से रहित निर्मोह है, जहां कोई दुःख नहीं जो सर्व रत्नों की खान है, सर्व देवताओं का आश्रयरूप है, उसका नाम है सुमेरु पर्वत, सूर्य चन्द्र उसके दीपक हैं, चारों ओर फिरते हैं, ब्रह्माण्डरूप मण्डप का वह स्तंभ है और स्वर्ण का है, चन्द्र सूर्य उसके नेत्र हैं और तारों की कंठ में माला पड़ी है, दशों दिशाएं उसके वस्तु है, रत्न मणियां भूषण हैं, वृक्ष वल्ली इसकी रोमावली है, त्रिलोकी म उसकी पूजा है, सोलह हजार योजन पाताल में है, वहां नागदैत्य इसकी पूजा करते हैं और चौरासी हजार यौजन ऊपर को है, वहां गन्धर्व देवता, किन्नर, राक्षस मनुष्य इसकी पूजा करते हैं ऐसा पर्वत जम्बू द्वीप के एक स्थान में स्थित है, चौदह प्रकार के प्राणिवर्ग उसके आश्रय से रहता है, बड़ा ऊंचा पर्वत है उसका पद्मराग नाम एक शिखर है, ऐसा प्रकाशरूप है मानों सूर्य आकर उदय हुआ है, उस शिखर के ऊपर एक बड़ा कल्पवृक्ष है उस कल्पवृक्ष की दक्षिण दिशा की ओर जो टास है, उसके साथ महारत्नों के गुच्छे लगे हुए हैं, स्वर्ण के पत्र हैं, चन्द्रमा के

बिंब के समान जिसके फूल हैं वहां एक आलय बना हुआ है, वहां मैं भी आगे रह आया हूँ, जब देवीजी समाधि में स्थित हुई थीं तब मैं वहां आलय बनाकर रहा था, चिन्तामणि की उसको शलाका लगी है, महारत्न से बना हुआ है, वहां सुन्दर स्वर्ण कुटीर बने हैं वहां जाकर तुम रहो, आगे भी वहां काकपुत्र रहते हैं, उनका अन्तर आत्मज्ञान से शीतल है और बाहिर से फूलों फलों से शीतल है, वहां तुम भी जाकर निवास करो, तुमको वहां भोग भी है मोक्ष भी है, खेद से रहित होकर वहां निवास करो, हे वसिष्ठजी! जब इस प्रकार पिता ने हमको कहा तब हम सब ही पिता के चरणों में जा पड़े। पिता ने हमारा मस्तक चूमा तब हम विन्ध्याचल पर्वत से उड़े आकाश मार्ग से होते मेघों के स्थान भी लांघे नक्षत्र चक्र में से भी गुजरे लोकान्तर के स्थानों में से होते हुए ब्रह्मलोक में जा पहुँचे, देवीजी को प्रणाम किया, उन्होंने भी स्नेह भरे कृपावलोकन से हमें देखा, कंठ से लगाया, मस्तक चूमा हम भी मस्तक झुका कर सुमेरु को चले, सूर्य चन्द्रमा के लोक पहुँचे वहां से तारागण लोकपाल तथा देवताओं के लोकस्थानों में गये, मेघ और पवन के स्थानों में से होकर सुमेरु पर्वत के कल्पवृक्ष पर आकर स्थित हुए, हे मुनीश्वर! जिस प्रकार हम उत्पन्न हुए हैं और जैसे ज्ञान को प्राप्त हुए हैं और जैसे यहां आकर स्थित हुए हैं, वह सब हमने आपके आगे अखण्ड कह दिया है, आगे आपको जो कुछ संशय हो सो कहो—पूछो

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेभुशुण्डोपाख्याने
आभुशुण्डालय लाभवर्णनमं नामैकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

विंशः सर्गः २०

संतमाहात्म्यवर्णनम् ।

भुशुण्ड ने कहा—हे मुनीश्वर! यह बहुत पुरानी बात आपको सुनायी है बहुत कल्प बीत चुके हैं, परन्तु वह सृष्टि से बहुत दूर हो गयी है। बहुत

युग बीत चुके हैं, परन्तु मैंने तुम्हें अभ्यास के बल से वर्तमान की नाईं सुनाया है, हे मुनीश्वर! मेरा कोई पुण्य था जो फलवान् हुआ है, जिससे आपके निर्विघ्न दर्शन हुए यह जो आलय और शाखाएं है, वृक्ष हैं आज पवित्र हुए जो आपके अघमर्षण दर्शन हुए हैं, अब जो कुछ संशय रहता है, पूछिये मैं कहूँगा, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस प्रकार कह कर उसने मेरा भले प्रकार आदर सहित अर्घ्य पाद्य से पूजन किया, तब मैंने उसे कहा हे पक्षियों के ईश्वर! तेरे वे भाई कहां है, जो तेरे समान तत्ववेत्ता थे, वे तो दृष्टि नहीं आते अकेला तू ही दृष्टि आता है, भुशुण्ड बोला हे मुनीश्वर! यहां मुझको बहुतकाल व्यतीत हुआ है, युग की पंक्ति बीत गयी है, जैसे सूर्य को कई दिनरात व्यतीत हो जाते हैं, ऐसे मुझको युग व्यतीत हुए हैं, कितने काल वे भी रहे, समय पाकर उन्होंने शरीर त्याग दिये। तृण की नाईं त्यागकर शिव आत्मपद को प्राप्त हुए, हे मुनीश्वर! कितना बड़ा आयुष्मान् बलवान् हो, अथवा सिद्ध महन्त हो, ऐश्वर्यवान् हो, काल सबको ग्रस लेता है, वसिष्ठजी बोले—हे साधुजनो! जब प्रलयकाल का समय आता है, तब सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ यह अपनी अपनी मर्यादा त्याग देते हैं, तब बड़ा क्षोभ होता है तुझको खेद किसी कारण से नहीं होता, सूर्य की तप्तता से अस्ताचल उदयाचल आदिक पर्वत भस्म हो जाते हैं, उस क्षोभ में तू खेदवान् क्यों नहीं होता, भुशुंड ने कहा हे मुनिवर! एक जीव जगत् में आधार से रहते हैं एक निराधार रहते हैं, जिनके पास ऐश्वर्य सेनादिक पदार्थ होते हैं, वे आधार सहित हैं और जो इन पदार्थों से रहित हैं, वे निराधार हैं, हम दोनों को तुच्छ देखते हैं, सत् कोई नहीं, बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् बली भी हैं परन्तु सत्य कोई नहीं, उनमें पक्षी की जाति महातुच्छ है, उजाड़ वन में उसका निवास है, वहां ही इनका दाना पानी है, यह निरालम्ब हैं, इनकी जीविका दैव ने वैसी बनाई है, हे भगवन्! मैं तो सदा सुखी हूँ, अपने आप में स्थित हूँ, आत्मसन्तोष से मैं तृप्त हूँ। कदाचित् भी इस जगत् के क्षोभ से मैं खेद को प्राप्त नहीं होता, स्वभाव मात्र से मैं संतुष्ट हूँ, कष्ट चेष्ट से मुक्त हूँ, हे मुनिवर! अब हम केवल काल को व्यतीत करते हैं, अपर जगत् के इष्ट

अनिष्ट हमको विचलित नहीं कर सकते, न हम को जीने की इच्छा है न मरने की, क्योंकि जीना मरना शरीर की अवस्थाएं हैं, आत्मा की अवस्था नहीं, हमको जीवन में राग नहीं मरने में द्वेष नहीं, जैसी अवस्था आकर प्राप्त हो उसी में संतुष्ट हैं, हे मुनीश्वर! बड़े बड़े भस्म होते देखे गये हैं, उनकी अवस्था को देखकर हमारे मन की चपलता जाती रही और हम इस कल्पवृक्ष पर बैठे हैं, कैसा कल्पवृक्ष है, रत्नों की वल्लियां (लताएं) जिसको लगी हैं, उस पर बैठकर मैं प्राण अपान की गति को देखता हूँ, इसकी कला की जो सूक्ष्म गति है उसको मैं जानता हूँ और दिन रात्रि को मुझको कुछ ज्ञान नहीं, सत् बुद्धि से मैं काल को जानता हूँ और सार असार को भले प्रकार समझता हूँ, हे मुनीश्वर! जितना विस्तार भासता है, सब झूठा है, सत् कुछ नहीं, इसी कारण से हमें किसी दृश्य पदार्थ की इच्छा नहीं, परम उपशम पद में स्थित हैं, सब जगत् भी हमको शान्तरूप है, जो कोई इस जगत् जाल का आश्रय करता है, वह सुखी नहीं होता, यह जगत् सब चंचल रूप है स्थिर कदाचित् नहीं होता, इसकी अवस्था में हम पत्थरवत् अचल हैं, न किसी का हमको राग फुरता है न किसी का द्वेष न किसी की हमें इच्छा है, सब जगत् हमको तुच्छ भासता है, वह सब भूतरूप नदियाँ कालरूप समुद्र में जा पड़ती हैं और हम कांटे पर खड़े हैं। कदाचित् नहीं डूबते, अपर जितने भी जीव भूत हैं, पड़े डूबते हैं, कई एक तुम सरीखे निकले हुए हैं और तुम्हारी कृपा से हम भी निर्विकार पद को प्राप्त हुए हैं, हे मुनीश्वर! मैं निर्विकार हूँ, सब जगत् के लोभ से रहित हूँ, आत्मपद को पाकर उपशमरूप हूँ, हे मुनीश्वर! आपके दर्शन से पूर्ण आनन्द को प्राप्त हुआ हूँ, सत् पुरुषों की संगति चन्द्रमा की चांदनी के समान शीतल है, अमृत के तुल्य आनन्द देने वाली हैं, ऐसा कौन है जो सत्संग से आनन्द को प्राप्त न हो, सब आनन्दानुभव करते हैं। हे मुनीश्वर! सत्संग चन्द्रमा के अमृत से भी अधिक है, क्योंकि वह शीतल तो है परन्तु गौण है, अन्दर की तप्तता नहीं मिटाता परन्तु सत्संग अन्तःकरण की तप्तता को निर्मूल कर देता

है, वह अमृत क्षीरसमुद्र के मन्थन से क्षोभ के साथ निकला है और सन्तों के संग सुख से प्राप्त होता है। आत्मानंद को प्राप्त करता है, इसलिये यह परम उत्तम है, मैं तो इससे अधिक उत्तम अन्य को नहीं मानता, सत्संग सर्वोत्तम है और सन्त भी वही हैं जिनकी सर्वेच्छायें निवृत्त हुई हैं, अर्थात् विचार के बिना दृश्य पदार्थ सुन्दर भासता है और नाशवान् है, जिनको ऐसे पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं और जो सदा आत्मानन्द में स्थित हैं, ऐसे पुरुष सन्त कहाते हैं, उन सन्तों की संगति ऐसी है, जैसे चिंतामणि होती है, जिसको पालेने से सर्व दुःख निवृत्ति हो जाती है, हे मुनिवर! त्रिलोकी रूप कमल के भ्रमर एक तुम ही दृष्टि आते हो, सब ज्ञानवानों में उत्तम हो, तुम्हारे वचन स्निग्ध सत्य कोमल आत्मरस से पूर्ण प्रिय हृदयगम्य और उचित हैं और हृदय महागंभीर उदार धैर्यवान् और सदा आत्मानन्द से तृप्त है, इसलिये तुम सबसे उत्तम मुझको दृष्टि आये हो, तुम्हारे दर्शन से मेरे दुःख नष्ट हुए हैं, आज मेरा जन्म सफल हुआ है, तुम्हारे समान सन्तों का संग आत्मपद प्राप्ति का कारण है और अखिल दुःखभय को नष्ट करके निर्भयता प्रदान करता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे संतमाहात्म्यवर्णनं
नाम विंशः सर्गः ॥२०॥

एकविंशः सर्गः २१

भुशुण्डोपाख्याने जीवित वृत्तान्त वर्णनम् ।

भुशुण्डजी बोले—हे मुनीश्वर! तुमने पूछा था कि सूर्य वायु जल का क्षोभ होता है तब तू खेदवान् क्यों नहीं होता, उसका उत्तर सुनो, जब जगत् का क्षोभ होता है तब मेरा यह कल्पवृक्ष स्थिर रहता है, क्षोभ को नहीं प्राप्त होता, हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सब लोगों के लिये अगम्य है, पूर्ण प्रलय होने पर भी मैं इससे सुखी रहता हूँ, जब हिरण्यकशिपु द्वीप सहित पृथ्वी को समेट कर पाताल में ले गया था, तब भी मेरा वृक्ष

अचल रहा, जब देवताओं का और दैत्यों का युद्ध हुआ, तब अन्य सब पर्वत विचलित हुए किन्तु मेरा वृक्ष स्थिर रहा और जब क्षीर समुद्र के मन्थन के लिये विष्णुजी सुमेरु को भुजाओं से उखाड़ने लगे तब भी मेरा वृक्ष कम्पित नहीं हुआ, मंदराचल को ले गये और क्षीरसमुद्र को मथने लगे, प्रलयकाल का पवन और मेघ का क्षोभ हुआ तब भी मेरा वृक्ष निष्कम्प ही रहा, एक दैत्य सुमेरु को आकर पटकने लगा, उसने कुछ उखाड़ा परन्तु मेरा वृक्ष कम्पित नहीं हुआ। हे मुनीश्वर! बड़े बड़े उपद्रव हुए, प्रलय काल के बादल बरसे, आंधियां आईं, प्रचण्ड सूर्य तपते रहे, तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है, वसिष्ठजी बोले–हे साधुपुरुष! जब प्रलयकाल के पवन जल आदि क्षोभ उत्पन्न करते हैं तो तुम उस समय क्या करते हो? विगतज्वर कैसे रहते हो? भुशुण्ड बोला–हे साधो! जब प्रलय काल के पवनादि क्षोभ उत्पन्न करते हैं तो मैं कृतघ्न की नाईं अल्हने को छोड़ जाता हूँ, आकाश में जहां कि कोई क्षोभ नहीं, जाकर स्थित हो जाता हूँ और सब अंगों को संकुचित कर लेता हूँ, जैसे वासना के रोकने से मन संकुचित हो जाता है, ऐसे मैं अंगों को सकुचा लेता हूँ, हे मुनीश्वर! जब प्रलयकाल का सूर्य तपता था तब मैं जल की धारणा से जल हो जाता था और जब वायु चलता था तब पर्वत की धारणा बाँधकर स्थिर हो जाता था, जब बहुत तत्वों का क्षोभ होता है तब सबको त्यागकर ब्रह्माण्ड खप्पर के पार जो निर्मल परमपद है, वहां जाकर स्थित होता हूँ, सुषुप्तिवत् अचल गम्भीर हो जाता हूँ, जब ब्रह्मा उत्पन्न होकर पुनः सृष्टि को रचता है, तब मैं सुमेरु के वृक्ष के ऊपर इसी अल्हने में स्थित होता हूँ, वसिष्ठजी बोले–हे पक्षीश्वर! जैसे तुम अखंड स्थित होते हो, ऐसे अपर योगीश्वर स्थित क्यों नहीं होते? भुशुण्ड ने कहा हे मुनीश्वर! यह परमात्मा की नीति है, किसी से उल्लंघित नहीं की जा सकती, उन योगीश्वर की नीति इस प्रकार हुई है और मेरा होना इसी प्रकार हुआ है, ईश्वर की नीति अतुल है, उसकी तुल्यता किसी से नहीं की जा सकती, जहां जैसी नीति हुई है वहां वैसी ही है

अन्यथा किसी को नहीं होती, इस प्रकार हमको हुई है कि कल्प कल्प में इसी पर्वत के वृक्ष पर आल्हना होता है, हम आकर निवास करते हैं, वसिष्ठजी बोले—हे पक्षिनायक! तुम्हारी अत्यन्त दीर्घ आयु है, तुम ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न हो और योगीश्वर हो, तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं, उनमें जो स्मरण आता है वह कहो, भुशुण्ड बोले—हे मुनीश्वर! एक बार ऐसा स्मरण आता है कि पृथ्वी पर तृण और वृक्ष ही थे और कुछ न था, फिर एक बार एकादश सहस्र वर्ष पर्यन्त भस्म ही दृष्टि आती, जो वृक्ष तृण थे जल गये, एक बार ऐसी सृष्टि हुई कि उसमें चन्द्र सूर्य उदय न होते थे। रात दिन की गति कुछ जानी नहीं जाती थी। कुछ कुछ सुमेरु के रत्नों का प्रकाश होता था, एक कल्प ऐसा हुआ है कि देवताओं और दैत्यों का युद्ध हुआ, दैत्यों की विजय हुई, दैत्य लोगों ने देवताओं को मनुष्यों के समान जान मारा। इनका इतना संहार हुआ कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र यह तीनों ही देवता बचे रहे, बाकी सब सृष्टि परास्त कर ली गयी, बीस युग पर्यन्त उनकी (जो विजयी थे) ही आज्ञा मानी जाती रही। फिर एक बार चित्त में ऐसा आता है कि दो युगों तक पृथ्वी पर वृक्ष ही रहे और कोई सृष्टि हीं दीखती थी, एक बार ऐसा भी मालूम होता है कि दो युगों तक पृथ्वी पर सघन पर्वत ही रहे। एक बार ऐसा हुआ कि जल ही हो गया और कुछ न मालूम पड़ता था, एक सुमेरु पर्वत स्तंभ की नाईं भासता था और एक बार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशा से आया और विन्ध्याचल (पर्वत) बड़ा, सब ब्रह्माण्ड चूर्ण कर दिया, यह स्मरण आता है, हे मुनीश्वर! बहुत कुछ स्मरण आता है परंतु संक्षेप में सुनो, एक समय की सृष्टि में केवल देवता ही थे, मनुष्य दैत्यादिक नहीं भासते थे, एक बार ऐसी सृष्टि हुई है कि ब्राह्मण मद्यपान करते थे और शूद्र बड़े बनकर बैठते थे और जीवों में विपर्यय ही धर्म दीखता था, एक बार ऐसी सृष्टि स्मरण में आती है कि पृथ्वी में पर्वत कोई दृष्टि नहीं आता था, उजाड़ सा सब दीखता था, एक बार ऐसी सृष्टि हुई कि सूर्य चन्द्रमा, नक्षत्र लोकपाल कोई उत्पन्न नहीं हुए, एक सृष्टि ऐसी हुई कि उसमें सब

उत्पन्न हुए, एक सृष्टि ऐसी उत्पन्न हुई कि उसमें स्वामी कार्तिक उत्पन्न न हुए, दैत्य बढ़ गये, दैत्यों ही का राज्य हो गया, इत्यादिक मुझको स्मरण है कितना कहूँ, सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र, इन्द्र, उपेन्द्र, लोकपाल, इनके बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं, जब हिरण्यकशिपु को हरि ने मारा है, वह भी चित्त है, जो वेद को चुराकर ले आया है और क्षीरसमुद्र का मन्थन किया गया है, वह भी बहुत स्मरण में आता है, ऐसी सृष्टि भी देखी है कि विष्णुजी का वाहन गरुड़ नहीं हुआ और ब्रह्माजी बिना हंस वाहन के हुए हैं और रुद्र बिना बैल वाहन के हुए, इत्यादि बहुत कुछ देखा है, तुम्हारे आगे क्या क्या वर्णन करूं

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशण्डोपाख्याने जीवितवृत्तान्तवर्णनं नामैकविंशः सर्गः ॥२१॥

द्वाविंशः सर्गः २२

चिरातीतवर्णनम् ।

भुशुण्ड ने कहा—हे मुनीश्वर! जब फिर सृष्टि उत्पन्न हुई तब तुम उत्पन्न हुए, भारद्वाज, पुलस्त्य, फुलह, नारद, इन्द्र, मरीचि, उद्दालक, त्रित, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार, भृगेश आदिक उत्पन्न हुए, अत्रि, व्यासदेव, वाल्मीकि इत्यादि यह अल्पकाल के उत्पन्न हुए हैं, हे मुनीश्वर! तुम ब्राह्मण के पुत्र हो, तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं, कभी तुम आकाश में, कभी जल से, कभी पहाड़ से, कभी वन से और कभी अग्नि से उत्पन्न हुए हो, हे मुनीश्वर! मंदराचल पर्वत को क्षीरसागर में डाल कर जब मथने लगे, तब देवता और दैत्य दोनों को क्षोभ पहुँचा और मंदराचल नीचे जाने लगा, तब विष्णुभगवान्ने कच्छप का रूप धारण कर उस पर्वत को अपनी पीठ पर ठहरा कर अमृत निकाला, वह मुझको द्वादश बार स्मरण आता है और तीन बार हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में ले गया और छे बार परशुराम रेणुका

माता का पुत्र हुआ है, जब दैत्य क्षत्रियों के घरों में उत्पन्न होने लगे, तो विष्णुभगवान् को परशुरास के रूप में प्रगट होना पड़ा, बहुत समय बीत चुका है, हे मुनिवर! एक सृष्टि ऐसी हुई कि पहिली से जो विपरीत हो, उसमें शास्त्रों और पुराणादिकों के अर्थान्तर किये गये हैं, प्रतियुग, पुराणादि शास्त्रों में रूपान्तर देखा गया है, वाल्मीकि ने द्वादश (बारह) बार रामायण रचना की है, वह विस्मरण हो चुकी है, जगत् में व्यास जी ने दो बार महाभारत रचना की है, यह व्यास नाम के मुनि सात बार हुए हैं, हे मुनीश्वर! इस प्रकार आख्यान कथा इतिहास शास्त्र जो जो हुए हैं, मुझको बहुत स्मरण में आते हैं। हे साधु पुरुषो! दैत्यों के मारने के लिये भगवान् विष्णु महाराज ने युग युग में अवतार धारण किये हैं, एकादश बार मुझको रामजी स्मरण आते हैं और वसुदेव के घर में पृथ्वी का भार उतारने के लिये श्रीकृष्ण ने सोलह बार अवतार लिया है, यह मुझे स्मरण है, तीन बार नरसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपु को मारा है, हे मुनीश्वर! इस प्रकार मुझको अनेक सृष्टियाँ स्मरण आती हैं परन्तु सब भ्रममात्र हैं कोई उत्पन्न नहीं हुई, जब आत्मतत्व में देखता हूँ, तब सृष्टि कुछ नहीं भासती, सब सत्ता मात्र है, जैसे जल में बुद्बुदे उत्पन्न होकर लीन हो जाते हैं, ऐसे आत्मामें अनेक (मनके) स्फुरणों से कई सृष्टियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और लीन हो जाती है, उस स्फुरण (फुरने) से कई सृष्टियाँ देखी हैं, कई सदृश्य ही उत्पन्न होती हैं, कई अर्ध सदृश्य, कई विपर्ययरूप उत्पन्न होती हैं, हे मुनीश्वर! कई सृष्टियों में उन ही जैसे आकार और उन ही जैसे कर्म आचार होते हैं, किसी में ऐसा होता है, पुत्र पिता हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है बांधव अबांधव और अबांधव बांधव हो जाते हैं, इस प्रकार विपर्यय होते देखे गये हैं, कभी हेमलतावान् आलय इसी कल्पवृक्ष पर होता है, कभी मंदराचल में कभी हिमालय पर्वत पर कभी मालव पर्वत पर हमारा आलय होता है, इसी प्रकार वन वृक्ष वल्ली के ऊपर हो जाता है, कभी इसी कल्पवृक्ष के ऊपर हो जाता है, अब तो बहुत काल हुआ है जो कि इसी वृक्ष पर होता है और इसी आलय में हमारा निवास होता है, जब सृष्टि नाश हो जाती है

तब भी मेरा यही शरीर रहता है, मैं आसन लगाकर अपनी पुर्यष्टक को ब्रह्मसत्ता में स्थित करता हूँ, इसी कारण मुझको पुनः यही शरीर प्राप्त होता है, हे मुनीश्वर! यह जगत् सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प फुरता है, ऐसा आगे जगत् हो भासता है, यह जगत् सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं केवल भ्रमरूप है, उस जगत् में अनेक आश्चर्य दृष्टि आते हैं, पिता पुत्र हो जाता है मित्र शत्रु हो जाता है, स्त्री पुरुष हो जाती है, पुरुष स्त्री हो जाता है, अनेक बार ऐसे होते हैं, कभी कलियुग में सत्ययुग बीतने लगता है, सत्ययुग में कलियुग बीतने लगता है, द्वापर में त्रेता त्रेता में द्वापर बीतता है, अनेकों आश्चर्य देखने में आते हैं। हे मुनीश्वर! सहस्र चोकड़ी युग की व्यतीत होता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है, दो दिन ब्रह्मा समाधिस्थ रहे, सृष्टि शून्य ही रही यह भी स्मरण आता है और भी कई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त में आते हैं, क्या कहूं?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेचिराततिवर्णनं
नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ।।२२।।

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३

भुशंडोपाख्याने संकल्पनिराकरणम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार जब भुशुण्ड ने कहा तब मैंने जिज्ञासा से फिर पूछा, हे पक्षियों के ईश्वर! तू बहुत समय तक जगत् में व्यवहार करता रहा है तुम्हारा शरीर मृत्युवश क्यों नहीं हुआ, भुशुंड ने कहा मुनीश्वर आप सब जानते हैं, परन्तु आपने ब्रह्म जिज्ञासा से यह प्रश्न किया है, इसलिये जैसे शिष्य वेदार्थ पढकर फिर गुरुओं को ही सुनाते हैं, ऐसे ही मैं आज्ञा मानकर कहता हूं, कि मृत्यु किसी को मारता है और किसी को नहीं मारता, यह सुनो। दुःखरूप मोती वासनारूप तंतु (धागे) में पिरोये हुए हैं, यह माला जिसके गले में पड़ी हुई है उसको मृत्यु मारता है और जिसके कंठ में यह माला नहीं पडी हुई उसको मृत्यु

नहीं मारता, शरीररूप वृक्ष है चित्तरूप सर्प उसपर बैठा है, आशारूप अग्नि जिस वृक्ष को नहीं जलाती, उसको मृत्यु नहीं मारता, रागद्वेषरूप विष से पूर्ण जो चित्तरूप सर्प है, जो तृष्णा से दुःखी होता है, लोभरूप व्याध से नष्ट होता है, उसको मृत्यु मारता है, जिसकी इनका स्पर्श नहीं कर सकता उसको मृत्यु भी नाश नहीं करता, हे मुनीश्वर! शरीररूप समुद्र है, क्रोधरूप वडवाग्नि से जलता है, जिसको क्रोधरूप अग्नि नहीं जलाता उसको मृत्यु भी नहीं मारता जिसका मन परम पावन निर्मलपद में दृढता से स्थित हुआ हैं, उसको मृत्यु नाश नहीं करता,हे मुनीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिन्ता, चंचलता, प्रमाद इत्यादि दोष जिसमें होते हैं उसको मृत्यु मारता है और जिसको क्रोध काम लोभादिक रोग (जो कि संसार के विशेष बन्धन हैं) बाँध नहीं सकते और जो इनसे लिप्त नहीं होता, उसको आधिव्याधिरूप मल स्पर्श नहीं करते और जो लेता है, देता है, सब कार्य करता है और चित्त में अनात्माभिमान स्पर्श नहीं करता और जो पुरुष इष्ट की वांछा नहीं करता, अनिष्ट में दोष नहीं निकालता, दोनों की प्राप्ति में सम रहता है, उसको समाहितचित्त कहते हैं, हे मुनीश्वर! जितने ऐश्वर्यवान् सुन्दर पदार्थ हैं वे सब असत्रूप है, चक्रवर्ती राजा और स्वर्ग में गन्धर्व विद्याद्यर किन्नर देवता तथा उनका स्त्री समाज सबका नाशवान् है, देवता, देवताओं की सेना, मनुष्य, दैत्य, असुर, समुद्र, ताल नदियां, पहाड आदि जितने भी बड़े बड़े पदार्थ हैं, सब नाशरूप हैं, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, लोकादि जितना जगत् और भोग हैं सब असत्रूप हैं और अशुभ हैं, कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं, न पृथ्वीका राज्यश्रेष्ठ है, न देवता का रूप ही श्रेष्ठ है, न नागों का पाताल लोक श्रेष्ठ है, न शास्त्रों का विचारना श्रेष्ठ है, न काव्य का जानना श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाके क्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न इस त्रिलोकीमें और कोई पदार्थ श्रेष्ठ है, जहां संत का मन स्थित है वही श्रेष्ठ है, यह नाना प्रकार का जगत्क्रम चलरूप है, जो

ज्ञानवान् पुरुष हैं वह मूढ़ होकर चल पदार्थ में नहीं रमते, वे बहुत जीने की इच्छा भी नहीं करते।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशुण्डोपाख्याने संकल्प निराकरण नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥

चतुर्विंशः सर्गः २४

भुशुंडोपाख्याने प्राणविचारवर्णनम् ।

भुशुंड ने कहा–हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सबसे उत्तम है, जिसको प्राने से सब दुःख का नाश होते हैं और परमपद की प्राप्ति होती है, आत्मचिन्तन सर्व दुःखों का नाश करने वाला है, अज्ञानी जीव अनेक जन्मों से, आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक, इन तीन तापों से सन्तप्त है, जन्म मृत्यु की दीर्घ यात्रा से थका हुआ है, इस श्रम को और तप्तता को मिटाने वाली आत्मदृष्टि ही परम उत्तम साधन है, जैसे अन्धकार को प्रकाश नाश करता है, ऐसे ही यह इसके अन्दर शीतल प्रकाश उत्पन्न करती है, हे भगवन्! ऐसा जो आत्मचिन्तन है, वह आप जैसे सब संकल्पों से रहित निर्मल चित्तवाले की ही प्राप्त होने की वस्तु है, अन्यथा कठिन है, हे मुनिवर! इस आत्मचिन्तन की सहेली एक और भी शक्ति है, वह है प्राण चिन्ता सब दुःखों का नाश करने वाली परमसौभाग्यदायिनी और जीवन का मूल है वह प्राणचिन्ता मुझको प्राप्त हुई है, हे रामजी! जब इस प्रकार मुझको काक भुशुंड ने कहा, तब मैंने जानते हुए भी विनोद के लिये पूछा कि हे सब संशयों के काटने वाले चिरंजीवी पुरुष! सत्य कहो प्राण चिन्ता किसको कहते हैं? भुशुंड ने कहा हे सब वेदान्त के वेत्ता! सर्व संशय नाशकर्ता! मुझे उपहास के लिये पूछते हो, आप सर्वज्ञ हो आपको पूछने की आवश्यकता नहीं, परन्तु तो भी मैं अपनी शिक्षा के लिये कहता हूं, क्योंकि गुरुओं के आगे कहना भी कल्याणदायी होता है, जो भुशुंड के जीवन का कारण है और जो भुशुंड

को आत्मलाभ पहुँचाने वाली है, उसका नाम प्राणचिन्तन है, हे भगवन्! इसी दृष्टि को आश्रय करके मैं परम पद को प्राप्त हुआ हूं, मुझे कहीं कोई बन्धन नहीं होता, चलते बैठते सोते जागते सब ठौर सब अवस्था में मेरा चित्त सावधान रहता है, इस कारण से बन्धन कोई नहीं होता, हे मुनीश्वर! प्राण और अपान के संसरने की गति मैंने पायी है, उस युक्ति से मुझको आत्मबोध हुआ है, उस बोध से मेरे मद मोहादिक विकार नष्ट हो गये हैं और शान्तरूप होकर स्थित हुआ हूं, हे मुनीश्वर! जिसको प्राण अपान की गति प्राप्त हुई वह सब कर्म करे, अथवा सर्वारंभ परित्याग करे, परन्तु सदा शान्तरूप है, उसका समय सुख से व्यतीत होता है

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेभुशुण्डोपाख्याने
प्राणविचारवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ।।२४।।

पंचविंशः सर्गः २५

समाधिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! फिर मैंने पूछा कि प्राणवायु की गति कैसी होती है, भुशुण्डजी बोले—हे मुनीश्वर! प्राण हृदय से उत्पन्न होता है उत्पन्न होकर बारह अंगुलि पर्यन्त बाहिर जाता है, वहां जाकर स्थित होता है, उस स्थान से अपानरूप होकर अन्दर आता हैं, हृदय में आकर स्थित होता है, हे मुनीश्वर! बाह्य आकाश के सम्मुख जो प्राण जाता है वह अग्निमुखवत् उष्ण होता है और जो हृदयाकाश के सम्मुख आता है वह शीतल नदी के प्रवाहवत् आता है, अपान चन्द्रमारूप है और बाहिर से अन्दर आता है और जो अन्दर से बाहिर जाता है वह प्राण है, अग्नि उष्ण सूर्यरूप है, प्राण वायु हृदयाकाश को तपाता है और अन्न को पचाता है और अपने हृदय को शीतल करता है, चन्द्रमा की नाईं है, हे मुनीश्वर! अपानरूप चन्द्रमा जब प्राणरूप सूर्य में लीन होता है वहां

साठ तत्त्व हैं, उनमें मन स्थित हुआ फिर शोक को नहीं प्राप्त होता और प्राणरूपी सूर्य जब अपान में चन्द्रमा के घर में जाकर लीन होता है, उस अवस्था में मन स्थित हुआ, फिर जन्म का भागी नहीं होता, हे मुनीश्वर! सूर्यरूप जो प्राण है, उसने अपने सूर्य भाव को त्यागा और अपानरूप चन्द्रमा को जब तक नहीं प्राप्त हुआ उस अवस्था के देश काल को विचारे, तो फिर शोक को नहीं प्राप्त होता, सब भ्रम नाश हो जाता है और द्वादश अंगुलि पर्यन्त जो आकाश है, उससे अपानरूप चन्द्रमा उत्पन्न होकर हृदय में प्राणरूप सूर्य में लीन होता है और सूर्यभाव को जब तक प्राप्त नहीं हो जाता, उसके मध्यभाग अवस्था में जिसका मन लगा है वह परम पद को प्राप्त होता है, हृदय में चन्द्रमा और सूर्य के अस्त भाव और उदय भाव का यह ज्ञाता हुआ और इसका आधारभूत जो आत्मा है, उसको जाना, तब मन फिर नहीं उदय होता हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो हृदयाकाश में सूर्य चन्द्रमा उदय और अस्त होते हैं उनके प्रकाश से हृदय में भास्कर देव है उसको जो देखता है वही देखता है, और बाहर जो सूर्य प्रकाशता है, कभी अन्धकार होता है, तब प्रकाश के उदय हुए और तम के क्षीण हुए, कुछ सिद्धि नहीं होती, परन्तु जब हृदय का तम दूर होता है तब परम सिद्धता मिलती है बाहिर का तम नष्ट हुए संसार को प्रकाश होता है और हृदय का तम नष्ट हुए आत्मप्रकाश का उदय होता है और अज्ञान अन्धकार का अभाव हो जाता है, परमपद को जानकर मुक्त होता है, प्राण अपान की युक्ति जानने से तम नष्ट हो जाता है, हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूप जो चन्द्र सूर्य हैं वह यत्न बिना उदय और अस्त होते हैं जब प्राणरूप सूर्य हृदय से उत्पन्न होकर बाहिर से गमन करता है तब उसी समय अपनारूप चन्द्रमा में जाकर लीन होता है, अपानरूप चन्द्रमा उदय हो जाता है और जब अपानरूप चन्द्रमा हृदय में प्राणवायुरूपी सूर्य में आकर स्थित होता है, तब उसी क्षण में प्राणरूप सूर्य उदय होता है, प्राण के अस्त हुए अपान उदय होता है और अपानके अस्त हुए प्राण उदय होता है, जैसे छायाके अस्त हुए धूप

और धूप के अस्त हुए छाया उदय होती है, तब प्राण अपान की गति है, हे मुनीश्वर! जब हृदय से प्राण उदय होता है, तब प्राण का रेचक होने लगता है और अपान का पूरक होने लगता है, जब जानकर अपान में स्थित हुआ, तब अपान का कुंभक होता है, उस कुंभक में जब यह स्थित होता है, तब फिर तीन तापों से नहीं तपता। जब अपान का रेचक होता है, तब प्राण का पूरक होने लगता है, जब अपान जाकर स्थित होता है तब प्राण का कुंभक होता है, उसमें जब स्थित होता है तब पुनः तापत्रय से संतप्त नहीं होता, हे मुनीश्वर! प्राण अपान के अन्दर जो शांतरूप आत्मतत्व है, उसमें जब स्थित होता है तब तप्त न होगा, जब अपान आकर स्थित होता है और प्राण उदय नहीं हुआ, इस अवस्था में जो साक्षीभूत सत्ता है, वह आत्मतत्त्व है, उसमें जब स्थित होता है तब यह कठिन नहीं होता, जब अपान के स्थान में प्राण जाकर स्थित होता है और अपान जब तक उदय नहीं हुआ, वहां जो देश काल अवस्था है उसमें मन स्थित होता है, तब मन का मनत्वभाव नहीं रहता, हे मुनीश्वर! प्राण जो स्थित होता है अपान में और अपान उदय नहीं हुआ, वह कुम्भक है और अपान आकर प्राण में स्थित हुआ है, प्राण जब तक उदय नहीं हुआ, वह जो कुंभक है, उसमें जो शान्त तत्व है, वह आत्मा का स्वरूप है, वह शुद्ध है, परम चैतन्य है जो उसको प्राप्त होता है वह पुनः शोकवान् नहीं होता, जैसे पुष्प में सुगन्धि से प्रयोजन होता है, ऐसे प्राण अपान के अन्तर जो अनुभवतत्व स्थित है, उससे प्रयोजन है, वह न प्राण है न अपान है, उस अनुभव आत्मतत्व की हम उपासना करते हैं, प्राण अपान में क्षय को प्राप्त होता है, अपान प्राण में क्षय को प्राप्त होता है, उस प्राण अपान के मध्य में चिदात्मा है, उसकी हम उपासना करते हैं, हे मुनीश्वर! प्राण का जो प्राण है और अपान का जो अपान है, जीव का जीव है, देह का आधारभूत है, ऐसा चिदात्मा है, उसकी हम उपासना करते है, जिसमें यह सब है, जो यह सब है जिससे यह सब है ऐसे चिदात्मा की हम उपासना करते हैं, जो सब प्रकाशों का प्रकाश है, जो सब

तुम्हारे सामने कही है, उसका सदा ऐसाही प्रवाह चला जाता है, उसमें अयत्न समाधि है, इससे मैं सदा सुखी रहता हूँ, कष्ट कुछ नहीं होता और जिसको यह कला नहीं प्राप्त हुई वह कष्ट पाता है, हे मुनीश्वर! जो अज्ञानी जीव हैं, महाप्रलय पर्यन्त संसार समुद्र में डूबे रहते हैं, निकलकर फिर डूबते हैं, इस प्रकार गोते खाते हैं और जिन पुरुषोंने पुरुषार्थ से आत्मपद पाया है, वे सुख से विचरते हैं, हे मुनीश्वर! भूतकाल की मुझको चिंता नही और भविष्य काल की इच्छा नहीं, वर्तमान में यथा प्राप्त रागद्वेष से रहित होकर विचरता हूं, सुषुप्त की नाईं स्थित हूँ, इसलिये केवल स्वरूप में स्थित हूँ, भाव अभाव पदार्थ से रहित अपने आप में स्थित हूं, इस कारण से चिरकाल तक जीता हूं और दुःख से रहित हूं, प्राण अपान की कला को सम करके स्वरूप में स्थित हूं, इस कारण से निर्दुःख जीता हूं, आज यह कुछ पाया हैं और यह कल पाऊँगा, यह चिंता दूर हुई है, इस कारण से निर्दुःख जीता हूँ, न किसी की स्तुति करता हूँ, न कदाचित् निन्दा करता हूं और सब आत्मस्वरूप देखता हूँ, इस कारण से सुखी जीता हूं, इष्ट की प्राप्ति में मैं हर्षवान् नहीं होता, अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता, इस कारण से देर तक सुखी जीता हूं, मैंने परम त्याग किया है, सबको आत्मभाव से देखता हूं, जीवभाव दूर हो गया है, इस कारण से दुःख रहित जीता हूं, हे मुनीश्वर! मन की चपलता मिट गयी है और रागद्वेग दूर हो गये हैं, मन शान्ति को प्राप्त हुआ है, इस कारण से अरोग जीता हूं, काष्ठ और सुन्दर स्त्री, पहाड़, तृण, अग्नि स्वर्ण सर्वत्र भाव से देखता हूं, तभी तो निर्दुःख जीता हूं, हे मुनीश्वर! जरा मरण के दुःख में और राज्य लाभ के सुख में शोक हर्ष से रहित सम भाव में स्थित हूं, तभी तो निर्दुःख जीता हूं, यह मेरे बांधव हैं, यह अन्य हैं, यह मैं हूं, यह मेरा है, यह कलना मुझको किंचित् भी नहीं, इसलिये सुख से जीता हूं, आहार व्यवहार करता हूं, बैठता चलता सूंघता स्पर्श करता श्वास लेता हूं, परन्तु यह जो अभिमान है कि मैं देह हूं, इस अभिमान से रहित सुखी जीता हूं, इस

पावनों का पावन है और भाव का अभावरूप सब पदार्थों का अपना आप है, उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं, जो पवन परस्पर हृदयमें सम्पुटरूप है, उसमें साक्षीरूप से स्थित उस सर्व व्यापक चिदात्मा की हम उपासना करते हैं, जब अपान अस्त होता है और प्राण उदय नहीं उस समय कलंक से रहित है, उस चेतन तत्त्व की हम उपासना करते हैं, जब प्राण अस्त होता है और अपान उदय नहीं हुआ ऐसा जो नासिक के अग्रभाग में शुद्ध आकाश है उसमें जो सत्यता है, उस चित्सत्यता की हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपान की उत्पत्ति का स्थान है अन्तर बाहिर सब ओर से व्याप्त सबका सहायक सब योग कला का आधारभूत हैं, उस चित्ततत्व की उपासना करते हैं, जो प्राण अपान के रथ पर आरूढ़ है और शक्ति का शक्तिरूप है, उस चित्ततत्व की हम उपासना करते हैं, हे मुनीश्वर! जो सकल कला कलंक से रहित और सर्व कला जिसके आश्रय हैं ऐसा जो अनुभवतत्त्व है, सर्व देवता जिसकी शरण को प्राप्त होते हैं, उस आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुण्डापाख्याने
समाधिवर्णनम् नाम पंचविंशः सर्गः ॥२५॥

षड्विंशः सर्गः २६

चिरंजीवित्व हेतु कथनम् ।

भुशुंडजी बोले हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं प्राणसमाधि को प्राप्त हुआ हूँ, इस क्रम से मैं आत्मपद को प्राप्त हुआ हूं, इस निर्मल दृष्टि को आश्रय करके स्थित हूं, एक निमेष भी विचलित नहीं होता, सुमेरु पर्वत की नाई स्थित हूं, चलता हुआ भी स्थिर हूं, जाग्रत् में भी सुषुप्त हूँ, स्वप्न में भी स्थित हूँ, सर्वदा आत्मसमाधि में लगा रहता हूँ, विक्षेप कभी नहीं होता, हे मुनीश्वर! नित्य अनित्य भाव से जो जगत् स्थित है, उसको त्यागकर मैं अन्तर्मुख अपने आप में स्थित हूँ और प्राण अपान कला जो

संसार की ओर से सुषुप्ति रूप हूं, और इस संसार की गति को देखकर हँसता हूं, जो है नहीं यह आश्चर्य है इस कारण से निर्दुख जीता हूं, हे मुनीश्वर! सर्व काल सब पदार्थों में सम बुद्धि हूं, विषमता मुझको कुछ नहीं भासती, न किसी से सुखी होता हूं, न दुःखी होता हूं, जैसे हाथ पसारिये तो भी शरीर है, संकुचित कीजिये तो भी शरीर है, इस प्रकार मैंने अपने आपको सर्वात्मभाव से जान लिया है, इसलिये मुझे कोई दुःख नहीं, मेरी बोली और निश्चय स्निग्धता और कोमलता सबको हृदय गम्य है सर्वत्र ऐसा देखता हूं, इस कारण से निर्दुःख जीता हूं, चरणों से मस्तक पर्यन्त देह में मुझको ममता नहीं, अहंकाररूप कीचड़ से निकला हुआ हूं, इस कारण से अरोग जीता हूं, कार्यकर्ता भोजन कर्ता भी दृष्टि आता है परन्तु मेरे मन में नैष्कर्म्य दृढ़ है, इस कारण से निर्दुःख जीता हूं, हे मुनीश्वर! सामर्थ्य से काम करूं तो भी मुझको अभिमान नहीं, यदि निर्धन हूं तो भी सम्पत्ति सुख की इच्छा नहीं, किसी में आसक्त नहीं होता, इस कारण से अदुःख जीता हूं, इस असत्यरूप शरीर से नाश हुए अभिमान नाश नहीं होता और यह पांचभौतिक समुदाय सब असत्यरूप हैं, आत्मा सत्यरूप है, ऐसा जानकर मैं स्थित हूं, इस कारण से सुख से जीता हूं, मेरी मनोवृत्ति आशापाश से मुक्त हो जाने से ही समाहित हो गयी है, अनात्म में आत्माभिमान नहीं फुरता, इस कारण से सुखी जीता हूं, हे मुनीश्वर! मैंने जगत् को असत्य जान लिया है और आत्मा को ऐसा सत्य जान लिया है कि हस्ताकमलवत् जिसमें कोई संशय न हो, इस जगत् में सुषुप्त प्रबुद्ध हूं, इस कारण से निर्दुःख जीता हूं, सुख को पाकर सुखी नहीं होता, दुःख को पाकर दुःखी नहीं होता, सबका परम मित्र हूं, इस कारण से मैं निर्दुःख जीता हूं, आपत्तिकाल में अचल चित्त हूं, सम्पत्ति में जगत् मित्र हूं, भाव अभाव से ज्यों का त्यों हूं, इस कारण से सदा सुखी जीता हूं, न परिच्छिन्न अहं मैं हूं न कोई अन्य है न कोई मेरा है न मैं किसी का हूं, यह भावना मेरे चित्त में दृढ़ है, इस कारण से सुखी जीता हूं, फिर कैसा हूं, मैं ही जगत् हूं, मैं ही आकाश हूं, देशकाल क्रिया सब मैं

ही हूँ, यह निश्चय मुझको दृढ़ है, इसलिये अचेतन जीता हूँ, घट भी चेतन है, पट भी चेतन है, रथ भी चेतन है, यह सब चेतन तत्त्व है, यह निश्चय मुझको दृढ़ है, इस कारण से अदुःख जीता हूं, हे मुनिशार्दूल! यह जो कुछ मैंने तुमको कहा है, यह भुशुण्डनाम के कौए ने जो त्रिलोक के कमल का भौंरा है, उसने कहा है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वाध भुशंडोपाख्याने चिरंजीवित्वहेतुकथनं नाम षड् विंशः सर्गः ।।२६।।

सप्तविंशः सर्गः २७

भुशुंडोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

भुशुंड ने कहा–हे मुनीश्वर! जैसा मैं हूं, ऐसा मैंने आपके आगे कहा है यह सब आपके आज्ञापालन के लिये कहा है और क्या आज्ञा है, गुरु आज्ञा के बिना उनके आगे कुछ कहना तो ढिठाई है आप ज्ञानसागर हैं, वसिष्ठजी बोले हे भगवन्! आश्चर्य है, आश्चर्य से भी आश्चर्य है, आपका कथन श्रवण भूषण है, आपके आत्मतत्त्व भरे वचन परम विस्मय के कारण हैं, हे भगवन्! तुम धन्य हो, महापुरुष हो, चिरंजीवियों में तुम मुझे साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हो, आज हम भी धन्य हैं जो आप जैसे महात्माओं के मुखारविन्द से आत्मचर्चा सुनते हैं, जैसे मैंने पूछा वैसे आपने कहा हे साधो! मैंने सब भूमिलोक देखा है और सब दिशाओं से परिचित हूं, आकाशपातालादि लोक देखे हैं त्रिलोकी देखी है, तुम सरीखा कोई विरला है, जैसे बांस बहुत हैं परन्तु मोतीवाला कोई विरला होता है, ऐसे ही आप जैसे विरले हैं, हे साधो आज हम पुण्यरूप हुए हैं, हमारा शरीर पवित्र हुआ है, जो कि आप जैसे मुक्त आत्माओं के दर्शन हुए हैं, हे रामजी! इस प्रकार कहकर फिर कहा, हे साधो! अब हम

जाते हैं हमारे मध्याह्न का समय हुआ हैं अब सप्तर्षि मध्य जाते हैं, जब मैंने ऐसे कहा, तब कल्पवृक्ष की शाखा पर से उठ खड़ा हुआ और संकल्प के हाथ से स्वर्ण का पात्र रचकर रत्नों से भरकर मुझको अर्घ्य पाद्य देकर पूजा की, जैसे त्रिनेत्र सदाशिव की पूजा करता है, ऐसे चरणों से लेकर मस्तक पर्यन्त मेरा पूजन किया और बहुत नम्र होकर प्रणाम किया और मैंने उसको प्रणाम किया, इस प्रकार परस्पर नमस्कार करके मैं वहां से उठ खड़ा हुआ और आकाशमार्ग को चला जैसे पक्षी उड़ता है ऐसे मैं उड़ा, वह भी मेरे साथ हम दोनों परस्पर हाथ पकड़े एक योजन पर्यन्त चले गये, तब मैंने उससे कहा हे साधो! तुम अब आगे नहीं जाओं, बार बार कहकर उसको ठहराया और मैं चला गया, जब तक्र मैं उसको दृष्टि आता रहा, तब तक देखता रहा, जब मैं अदृश्य हुआ, तब वह अपने स्थान में जा बैठा मैं सप्तर्षि मण्डल में आया, अरुंधती ने मेरी पूजा की, हे रामजी! भुशुण्ड के यह आश्चर्यकारी वचन मैंने तुम्हें सुनाये हैं, अब भी सुमेरू के श्रृंग पर उस कल्पवृक्ष की लता में वह कल्याणरूप समतास्वरूप में स्थित है, परमशान्त है, सदा समहित रहनेवाला है, मान करने के योग्य है, ऐसा पुरुष अब तक वहां ही स्थित है हे रामजी! यह हमारा और उसको समागम जब सत्ययुग के दो सौ वर्ष व्यतीत हुए थे, तब हुआ था, अब सत्ययुग समाप्त हुआ है, त्रेता युग वर्तमान है उसमें तुम उत्पन्न हुए हो, हे रामजी! अब भी आठ वर्ष हुए हैं कि हमारा उसका मिलाप हुआ था, उसी वृक्ष की शाखा पर है, हे रामजी! यह मैंने जो तुझको इतिहास कहा है परम उत्तम है, इसका विचार करने से संसारभ्रम निवृत्त हो जायगा, यह मुनिवसिष्ठ और भुशुण्ड की कथा को जो निर्मल बुद्धि से विचरेगा वह भवसागर के भय से मुक्त होगा

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशुण्डोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥२८॥

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे निष्पाप! मैंने तुझे भुशुण्डका वृत्तान्त सब कहा है, इस बोध से भुशुंड के महासंकट का नाश हुआ है तुम भी इसी अवस्था का आश्रय करके प्राणयुक्ति का खूब अभ्यास करो तो तुम भी भुशुंड की नाईं भवसागर से पार हो जाओगे जैसे भुशुंड ने ज्ञान योग से पाने योग्य पद को पा लिया है ऐसे तुम भी पा लोगे, जैसे प्राण अपान के अभ्यास से भुशुंड परम तत्त्व को प्राप्त हुआ है ऐसे तुम भी अभ्यास से प्राप्त करोगे, जो विज्ञान दृष्टि तुमने सुनी है उसकी ओर चित्त लगाकर आत्मपद को प्राप्त करो तदनंतर जैसे इच्छा होगी वैसा करना, रामजी बोले–हे भगवन्! पृथ्वी में तुम्हारे ज्ञानरूप सूर्य की किरणों के प्रकाश से मेरे हृदय से अज्ञानरूप सब अन्धकार दूर हो गया है, अब मैं प्रबुद्ध हुआ हूं, अपने आनन्दरूप में स्थित हुआ हूं, मैंने जानने योग्य पद को जान लिया है, मानों मैं दूसरा वसिष्ठ हो गया हूं, हे भगवन्! यह भुशुण्ड का चरित्र जो आपने कहा है, वह परम विस्मय का कारण है, परमार्थ बोध के निमित्त कहा गया है, उसमें शरीररूप गृह जो कि रक्तमांस अस्थि का है किसने रचा है और कहां से उत्पन्न हुआ है और कैसे स्थित हुआ है और कौन इसमें स्थित है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! परमार्थ तत्त्व के बोधार्थ और दुःख निवृत्ति के लिये यह मेरे वचन हैं, सुनो। अस्थि इस शरीररूप गृह का स्तंभ है और नौ इसके द्वार हैं और रक्तमांस से यह लिपटा हुआ है, किसी ने बनाया नहीं आभास मात्र है, मिथ्या भ्रम से भासता है, जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम करके भासता है, ऐसे असत्यरूप शरीर भ्रम से भासता है, हे रामजी! जब तक अज्ञान है, तब तक देह सत्य भासता है, जब ज्ञान होता है तब देह असत्यरूप भासता है, जैसे स्वप्न काल में स्वप्न के पदार्थ सत्य भासते हैं और जाग्रत् काल में

स्वप्न असत्य भासता है, ऐसे अज्ञान काल में अज्ञान के पदार्थ देहादिक सत्य भासते और ज्ञान काल में असत्य हो जाते हैं, जैसे बुद्बुदा जल में जल के अज्ञान से सत्य भासता है, जल के जानने से बुद्बुदा असत्य भासता है, जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है, ऐसे आत्मा में देह भासता है, हे रामजी! जितना जगत् भासता है, सब आभास मात्र अज्ञान से भासता है, अहं, त्वं आदिक कल्पना सब मनन मात्र मन में फुरती है, तुम कहते हो देह अस्थि मांस का गृह रचा है, वह अस्थि मांस से नहीं रचा संकल्प मात्र है, संकल्प से भासता है, संकल्प के अभाव में देह नहीं पाता, हे रामजी! स्वप्न जो देह धारण कर दिशा तट पर्वत तू देखता फिरता है जाग्रत में वह तेरा देह कहां जाता है, यदि देह सत्य होता तो जाग्रत में भी रहता और मनोराज्य से स्वर्ग को जाता है, सुमेरू पर घूमता है, भूमिलोक में फिरता है, तब यह देह तेरा कहाँ होता है? हे रामजी! इन स्थानों में जैसे मन का फुरना देह होकर भासता है वह असत्यरूप है, ऐसे यह शरीर मन के फुरने मात्र है, इसलिये असत्य जानो यह मेरा धन है यह मेरा गेह है, यह मेरा देश है, इत्यादिक कल्पना मन की रची हुई है सबका बीज चित्त है, हे रामजी! इस जगत् को दीर्घ काल का स्वप्न जान अथवा दीर्घ चित्त का भ्रम जान, अथवा दीर्घ मनोराज्य जान और वास्तव से जगत् कुछ नहीं जब अपने वास्तव परमात्मस्वरूप को अभ्यास से जानता है, तब जगत् असत्य रूप भासता है, हे रामजी! मैंने पूर्व भी तुझको ब्रह्माजी के वचनों से कहा हैं कि जगत् सब मन का रचा हुआ है, इसलिये संकल्प मात्र है, चिरकाल का जो अभ्यास हो रहा है उससे सत् भासता है, जब दृढ़ पुरुष प्रयत्न से आत्माभ्यास हो, तब असत्य भासे, हे रामजी! जो भावना इसके हृदय में दृढ़ होती हैं, उसका अभाव भी सुगम नहीं होता, जब उसकी विपर्यय भावना का अभ्यास करें तब उसका अभाव हो जाता है कि यह मैं हूं, यह और है इत्यादिक कलना हृदय में दृढ़ हो रही है, जब इसकी विपर्यय भावना हो और आत्मभावना करें तो वह मिट जावे, सब आत्मा ही

भासे हे रामजी! जिसकी तीव्र भावना होती है, वही रूप फल उसका हो जाता है, जैसे कामी पुरुष को सुन्दर स्त्री की कामना रहती है, ऐसे इसको आत्मपद की चिन्ता रहे, तब वही रूप होता है, जैसे कीट भृंगी हो जाता है, जैसे दिन में व्यापार का अभ्यास होता है, रात्रि को स्वप्न में भी वही देखता है, ऐसे जिसका इसको दृढ़ अभ्यास होता है, वही अनुभव होता है, जैसे आकाश में सूर्य तपता है और मरुस्थल में जल होकर भासता है, उस जल का अभाव है, ऐसे पृथ्वी आदि पदार्थ भ्रम करके भाव से रहित भावरूप भासते हैं, जैसे आंखों के दोष से आकाश में तरवरे मोरपुच्छवत् भासते हैं, ऐसे अज्ञान से जगज्जाल भासते हैं, हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है, स्वरूप के प्रमाद से भय और दुःख को प्राप्त होता है, जब स्वरूप को जानता है, तब भ्रममय दुःख से रहित होता है, जब स्वप्नपुर में चित्त के भ्रम करके सिंहनी से भय पाता है, जब जाग्रत चित्त में आता है, तब सिंहनी का भय निवृत्त हो जाता है, ऐसे आत्मज्ञान से निर्भय होता है, जब वैराग्य अभ्यास से निर्मल शुद्ध आत्मपद को पाता है, तब फिर क्षोभ को नहीं प्राप्त होता, राग द्वेष रूप मल इसको स्पर्श नहीं करता, जैसे ताम्बा पारस के स्पर्श से स्वर्ण हो जाता है तब ताम्बा भाव को नहीं ग्रहण करता, ऐसे ही वह भी पुनः मलिन नहीं होता, अहं, त्वं, आदि जितना जगत् भासता है, सब आभास मात्र ही है, हे रामजी! प्रथम सत्य असत् को जाने, असत्य का निरादर करे, सत्य का अभ्यास करे, तब चित्त सर्व कलना से रहित होता है और शान्त पद को प्राप्त होता है, जो तत्व ज्ञान सम्यग्दर्शी हुआ है, उसको जगत् के इष्ट पदार्थ पाने से हर्ष नहीं होता और अनिष्ट पाने से शोक नहीं होता, न किसी की स्तुति करता है न किसी की निन्दा करता है, अन्तर से शीतल शान्तरूप हो जाता है, वह किसी बान्धव की मृत्यु का शोक नहीं करता कि यह अवश्य होने वाली बात है वह अपने मरने से भी भय नहीं मानता वह जानता है कि मरना तो अवश्य है ही, संपत्ति के आने पर हर्षवान् नहीं होता क्योंकि जानता है यह मेरा आवश्यक भोग

है, इसी प्रकार आवश्यक भोगरूप कर्म फल जानकर दुःख से भी नहीं घबराता, हे रामजी! जो सत्य है वह असत्य नहीं है, जो असत्य है वह सत्य नहीं, फिर राग द्वेष किसलिये किया जाय? जिसको ऐसा निश्चय हुआ है कि न मैं हूँ न जगत् है न पृथ्वी है तो भी शोक किसका करना और जब देह से अन्य हूँ, चेतन हूँ, चेतन का तो नाश नहीं तब शोक किस निमित्त करना? हे रामजी! दुःख तो कोई नहीं, विचार का अभाव है, विचार करने से दुःख कोई नहीं, सम्यग्दर्शी मुनिवर सत्य को सत्य जानता है, असत्य को असत्य जानता है, इस कारण से दुःख नहीं पाता, जो असम्यग्दर्शी है वह अज्ञान से दुःख पाता है, जैसे दिन के अन्त में मंडल शीतल हो जाता है, ऐसे सम्यग्दर्शी का अन्तर शीतल होता है, जिसको कर्तव्य में कर्तृत्व का अभिमान नहीं वह सम्यग्दर्शी है, हे रामजी! जितने जगत् के पदार्थ हैं उनको अन्तर से आसमात्र जान और बाहर जैसे आचार हो, ऐसे करो, अथवा उस कर्म का त्याग करो, निराभास होकर स्थित हो, मैं चिदाकाश हूँ, नित्य हूँ, सर्वज्ञ हूँ और सबसे रहित हूँ ऐसे अभ्यास से अपने आपको एकान्त निर्मल देखेगा, अथवा ऐसी धारणा कर कि न मैं हूँ, न यह भोग है, न अर्थरूप जगत् आडम्बर है, अथवा ऐसी धारणा रख कि सर्व मैं ही हूँ, नित्य शुद्ध चिदात्मा हूँ, आकाशरूप हूँ, मुझसे इतर कुछ नहीं, मैं ही अपने आप में स्थित हूँ, इन दोनों पक्षों में जो पसन्द है कर, तुझे सफलता (सिद्धि) मिलेगी, जगत् को आभासमात्र जान, परन्तु यह भी कलंकरूप है, इस चिन्ता को भी त्यागकर निराभास हेतु चिदाकाश नित्य है सर्वव्यापी है और सबसे रहित है, आभास को त्यागकर निर्मल अद्वैत होय रहा, अथवा विधि निषेध दोनों दृष्टियों का आश्रय कर, हे रामजी! काम करो परन्तु रागद्वेष से रहित रहो, ब्रह्मानन्द की प्राप्ति भी होगी अन्यथा नहीं सब कुछ समरूप ब्रह्म ही है, हे रामजी! जिसका हृदय रागद्वेष की अग्नि से जलता है, उसको संतोष वैराग्य आदि गुण नहीं प्राप्त होते हैं, जैसे दग्ध भूतल के वन में हरिण नहीं प्रवेश करते, ऐसे रागद्वेषादिक

वाले हृदय में सन्तोषादि गुण नहीं प्रवेश करते, हे रामजी! हृदयरूपी कल्पवृक्ष है जो ऐसा वृक्ष रागद्वेषादि सर्पों से रहित है तो ऐसा कौन पदार्थ जो न प्राप्त हो, शुद्ध हृदय से सब कुछ प्राप्त होता है, अर्थात् हे रामजी! जो बुद्धिमान् भी है और शास्त्र का ज्ञाता भी है, परन्तु रागद्वेष संयुक्त है वह गीदड़ की नाईं नीच है, उसको धिक्कार है, जिन पदार्थों के पाने के लिये यत्न करते हैं, वे तो आते जाते हैं, कोई धन को इकट्ठा करता है, कोई दूसरा ले जाता है, भोक्ता कोई और है, तब रागद्वेष किसका किया जाय जो कुछ प्रारब्ध है वह अवश्य होता है, धन का व्यर्थ यत्न क्यों करे, बांधव और वस्त्र आते हैं, फिर जाते भी हैं, जैसे समुद्र में झष का आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते, ऐसे जगत् के पदार्थ का आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते, भाव अभावरूप परमेश्वर की माया है, संसार की रचना स्वप्न की नाईं है, उसमें जो आसक्त होते हैं उनको सर्पिणीवत् दंश करती है, धन बांधव जगत् वास्तव से मिथ्या है, अज्ञान से सत्य भासते हैं, हे रामजी! जो आदि में नहीं, अन्त में भी न रहे और मध्य में भासे उसको भी असत्य जानिये, जैसे आकाश में फूल असत्य है, ऐसे संसार रचना असत्य है, जैसे संकल्प रचना असत्य है, जैसे गन्धर्व नगर सुंदर भासता है और नाश हो जाता है, जैसा स्वप्नपुर दीर्घकाल का भासता है वह भ्रमरूप है, ऐसे यह जगत् असत्यरूप भ्रममात्र है, संकल्परूप अभ्यास के वश से दृढ़ता को प्राप्त हुआ है, कन्ध जो आकारवान् भासता है, वह आकार से रहित आकाशरूप है और आत्मपद सुषुप्ति की नाईं अद्वैतरूप है, उस सुषुप्तरूप पद से जब गिरता है, तब दीर्घरूप स्वप्न को देखता है, हे रामजी! अज्ञानरूप निद्रा से अपने स्वभाव से जो गिरा है, वह संसाररूप स्वप्न भ्रम को देखता है। जब अज्ञानरूप निद्रा का अभाव हो तब अपने आत्मराज्य पद को प्राप्त होता है और निर्विकल्प मुदिता आत्मपद को प्राप्त होता है, जैसे सूर्य को देख कर कमल प्रफुल्लित होते हैं, ऐसे ज्ञान से शुभगुण फूलते हैं, आत्मारूप सूर्य कैसा है, सर्व दुःख से रहित है, जो पुरुष निद्रा में होता है वह सूक्ष्म वचनों से नहीं जगता, बड़े

शब्द और पानी डालने से जगता है, मैंने तुम पर मेघ की नाईं गर्जकर वचनरूप जल की वर्षा की है, ज्ञानरूप शीतलता भरे वचन है, उन वचनों से तू ज्ञानरूप जाग्रत बोध को प्राप्त हुआ है, ऐसे ज्ञानरूप जगत् को भ्रमरूप देखेगा, हे रामजी! तुझको न जन्म है न मृत्यु है, न कोई दुःख है न कोई भ्रम है, सर्व संकल्प से रहित आत्मपुरुष अपने आप में स्थित है, सम है शान्त है, सुषुप्ति की नाईं तेरी बृत्ति है, अति विस्तृत सम शुद्ध अपने स्वरूप में स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमार्थयोगोपदेशो नामष्टाविंशतितमः सर्गः ।।२८।।

एकोनत्रिंशतमः सर्गः २९

ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मारूप वर्णनम् ।

वाल्मीकि बोले–इस प्रकार जब वसिष्ठजी ने वचन कहे तब रामजी ने सम शान्त चेतन तत्व में विश्राम प्राप्त किया और परमानन्द का अनुभव किया और जो सभा बैठी थी वह भी वसिष्ठजी के वचन सुनकर समतामयी आत्मसमाधि में स्थित हो गयी, बोलना शान्त हुआ, पिंजरों के पक्षी जो बोलते थे वे भी मौन हुए, वन के बानरों ने उन वचनों को सुनकर अपनी स्वाभाविक चंचलता त्याग दी और वे भी शान्त तथा स्थिर प्रकृति हो गये, सब और शान्त वातावरण हो गया, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अब तू सम्यक् प्रबुद्ध हुआ है, अपने आप में स्थित हुआ है, जो कुछ जाना है उसके अभ्यास का त्याग न करना इसी में दृढ़ रहना, हे रामजी! संसाररूप चक्र है, उसका नाभि स्थान चित्त है, इस चित्त नाभि के स्थिर हुए संसार चक्र भी स्थिर हो जाता है, इसी संसाररूप चक्र का तीक्ष्ण वेग है, यद्यपि रोकता है तो भी फुरने लगता है, इसलिये दृढ़ प्रयत्न करके इसको रोकिये, सत्संग शास्त्र के वचन और युक्ति इन तीनों द्वारा रोका जा सकता है, हे रामजी! अज्ञान से जो दैव की

कल्पना की है उसका त्याग कर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो, इससे परम शान्तपद प्राप्त होता है, ब्रह्मा से लेकर च्यूंटी पर्यन्त सब अज्ञानरूप संसार चक्र है, वह असत्यरूप है, भ्रम से सत्य की नाईं भासता है, इसका त्याग करो, हे रामजी! असत्यरूप पदार्थ में जो रागद्वेष करते हैं, वे मूर्ख हैं, उनसे तो चित्र लिखित पुरुष भी श्रेष्ठ है, जब इष्ट विषय प्राप्त होता है तब हर्ष से प्रफुल्लित होते हैं और अनिष्ट प्राप्त होता है तब द्वेष करते हैं और चित्र के पुरुष को राग द्वेष किसी से नहीं है, इस कारण से कहा है कि चित्र का पुरुष इनसे श्रेष्ठ है, यह आधिव्याधियों से पड़े जलते हैं, वह सदा ज्यों का त्यों है और चित्र के पुरुष का तब नाश हो जब आधारभूत का नाश किया जाय, अधिष्ठान के बिना नाश हुए आधारभूत का नाश नहीं होता और यह पुरुष अविनाश के आधार पर है, उसका नाश होता नहीं और मूर्खता से आपको नाश होता मानते हैं, रागद्वेष से युक्त हैं, इसलिये चित्र के पुरुष से भी तुच्छ हैं और मनोराज्य संकल्परूप देह इस देह से श्रेष्ठ है, जितने दुःख इसको होते हैं बड़े कालपर्यन्त रहते हैं और मनोराज्य का दुःख हुआ है, अन्य संकल्प के आने से उसका अभाव हो जाता है, अतः थोड़ा दुःख है, संकल्प के देह से भी स्थूल देह तुच्छ है। हे रामजी! जो शरीर थोड़े काल से हुआ है, उसमें दुःख भी थोड़ा है और जो दीर्घ संकल्परूप देह है, वह दीर्घ दुःख को ग्रहण करता है, इसलिये महानीच है, हे रामजी! यह देह भी संकल्पमात्र है, न सत्य है न असत्य है, उसके भोग निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं और क्लेश पाते हैं और देह अभिमान करके इसके सुख के साथ सुखी होते हैं, दुःख के साथ दुःखी होते हैं, इसके नष्ट हुए आपको नष्ट हुआ मानते हैं, परन्तु देह के नष्ट हुए पुरुष का नाश नहीं होता, जैसे मनोराज्य का नाश हुए पुरुष का नाश नहीं होता, जैसे दूसरे चन्द्रमा के नाश हुए चन्द्रमा का नाश नहीं होता, ऐसे इस देह के नाश हुए देही पुरुष का भी नाश नहीं होता, जैसे सकंल्प पुरुष के नाश हुए पुरुष का नाश नहीं होता, जैसे स्वप्नभ्रम के नाश हुए पुरुष का नाश नहीं होता, ऐसे देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता, जैसे घनी धूप से किरणों में जल भासता है और भली प्रकार

जाकर देखे तो जल का अभाव हो जाता है, परन्तु देखने वाले का अभाव नहीं होता ऐसे संकल्प से विनाशरूप जो देह है, उनके नाश हुए तुम्हारा नाश नहीं होता। हे रामजी! दीर्घ काल का रचा जो स्वप्नमय देह है उसके दुःख और नाश से आत्मा को दुःख और नाश नहीं होता, चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती और स्वरूप से विचलित नहीं होती, न विकार को प्राप्त होती है, सर्वदा शुद्ध अच्युत रूप अपने आप में स्थित है, देह के नाश हुए इसका नाश नहीं होता, अज्ञान का दृढ़ अभ्यास हुआ है, तब देह के धर्म अपने में भासने लगे हैं, जब आत्मा का दृढ़ अभ्यास हो तब देहाभिमान और देह के धमाका अभाव हो जाये, जैसे चक्र के ऊपर कोई चढ़ता है और घूमता है, जब उतरता है तब कितनी देर तक घूमता अनुभव करता है, जब चिरकाल व्यतीत होता है तब स्थित हो जाता है, देहरूप चक्र इसको प्राप्त हुआ है, अज्ञान से भ्रान्त किया हुआ अपने आपको भ्रमता देखता है, जब अज्ञान का वेग निवृत्त होता है, तब भी कुछ समय देह भ्रम भासने लगता है, उससे जानता है कि मेरा नाश होता है, मुझको दुःख होता है इत्यादि कल्पना अज्ञान से भासती है उस भ्रम दृष्टि को धैर्य से निवृत्त करता है, तब अभाव हो जाता है, हे रामजी! जैसे–भ्रम से जेवरी (रस्सी) में सर्प भासता है ऐसे आत्मा में देह भावना असत्य है जड़ है, न कर्म करती है न मुक्त होने की इच्छा करती है और दैव परमात्मा भी कुछ नहीं करता, वह सदा शुद्ध द्रष्टा प्रकाशक है, जैसे निर्वात दीप अपने आप में स्थित है, ऐसे तू शुद्ध स्वरूप अपने आप में स्थित हो, जैसे सूर्य आकाश में स्थित होता है और सर्व जगत् को प्रकाशित करता है, उसके आश्रय लोक चेष्टा करते हैं, परन्तु सूर्य कुछ नहीं करता, सबका साक्षीभूत है, ऐसे आत्मा के आश्रय देहादिक की चेष्टा होती है परन्तु आत्मा साक्षीरूप है, पाप पुण्य से रहित है, हे रामजी! यह देहरूप शून्य गृह है, इसमें अहंकाररूप पिशाच कल्पित है, जैसे बालक परछायी में वेताल की कल्पना करता है और डरता है, ऐसे अहंकाररूप पिशाच की कल्पना करके भय पाता है, अहंकार पिशाच

महानीच है, सब सन्तजनों से निंद्य है, जब अहंकार रूप बेताल निकले तब आनन्द हो देहरूप शून्य घर में इसका निवास है, जो पुरुष इसका सेवक हो रहा है, उसको यह नरक में ले जाता है, इसलिये तुम उसके सेवक न बनाना, इसके नाश का उपाय करोगे तो आनन्द पाओगे, हे रामजी! यह चित्तरूप उन्मत्त बेताल है, जिसको स्पर्श करता है उसी को अशुद्ध कर देता है, अर्थात् यह जिसके धैर्य और आत्मनिश्चय विपरीत कर देता है, उसे दुःखी होना पड़ता है, अपने स्वरूप से उसको गिरा देता है जो बड़े बड़ साधु महात्मा हैं, वे भी इससे डरते हुए ही समाधि में स्थित होते हैं कि किसी प्रकार अहंकार का अभाव हो कि इससे मुक्ति मिले, हे रामजी! अहंकार पिशाच जिसको स्पर्श करता है, उसको आप जैसा कर देता है, जैसा आप तुच्छ है ऐसा ही दूसरे को तुच्छ सा कर देता है और यह अहंकार उजाड़ में रहता है, जहां सत्संग और सच्छास्त्र का विचार नहीं और आत्मज्ञान का निवास यहां नहीं, उस शून्य उजाड़ देह गेह में रहता है, जो कोई ऐसे स्थान में प्रवेश करे उसमें भी प्रवेश कर जाता है। हे रामजी! जिसको अहंकार रूप पिशाच लगा है उसका धन से कल्याण नहीं होता, न बान्धव मित्रों से कल्याण होता है और अहंकार पिशाच से मिला हुआ जितना भी क्रिया कर्म करता है, वह अपने नाश के लिये करता है, विषयों की बल्ली (बेल) बढ़ाता उपजाता जाता है, हे रामजी! जो पुरुष विवेक और धैर्य से रहित है, उसको अहंकार रूपी पिशाच शीघ्र ही खा जाता है, वह कैसा है शव रूप है जिसको छूलेता है शव बना कर छोड़ता है और जिसमें अहंकार रूप पिशाच ने घर बना लिया है, वह नरक रूप अग्नि में काष्ठ के समान जलेगा, यह अहंकार भयंकर सर्प है, जिस देहरूप वृक्ष के छिद्र में विष डालेगा वही मृत्यु के मुख में जायेगा, जो अहं मम भाव को प्राप्त होगा, वह भी मृतक समान होगा, हे रामजी! अहंकार पिशाच विचारवान् पुरुष को भी समय पाकर परास्त कर जाता है और अपना पक्ष प्रबल बना लेता है, इसलिये इसका कभी विश्वास नहीं करना, यह महानीच दुष्ट कभी स्पर्श के योग्य नहीं, स्वरूप से गिरा कर गर्त में डालता है, आपत्ति का घर है, यह

जितना दुःख देता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। हे रामजी! यह जो अभिमान है कि मैं हूँ, मैं मरता हूँ, मैं दग्ध होता हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, इत्यादि कल्पना मलिन सी जो उठती हैं, यह अहंकार पिशाच की शक्ति है, आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध चिदाकाश सर्वगत सच्चिदानन्द है, वह सबका अपना आप है, अहंकार के वश से आपको परिच्छिन्न दुःखी मानता है, जैसे आकाश सर्वगत अलेप है, ऐसे आत्मा सब में अलेप है और सब के सात असंबद्ध है, अहंकार के सम्बन्ध से रहित है, हे रामजी! ग्रहण त्याग चलना बैठना इत्यादि जितनी क्रिया होती है, वे देहरूप यंत्र और वायुरूप रस्सी से अहंकार रूप यंत्री कराता है, आत्मा सदा निर्लेप, सबका अधिष्ठान रूप है, कारण कार्य भाव से रहित है, जैसे वृक्ष की ऊंचाई का कारण आकाश है और निर्लेप है, ऐसे आत्मा सर्व चेष्टा का कारण अधिष्ठान है और निर्लेप है, जैसे आकाश और पृथ्वी का सम्बन्ध नहीं, ऐसे आत्मा और अहंकार का सम्बन्ध नहीं, चित्त को जो आप जानते हैं, मूर्ख हैं, आत्मा प्रकाशरूप है नित्य सर्वगत है, विभू है, चित्त मूर्ख है, जड़ है आवरण करता है, हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ है, चेतनरूप है, चित्तमूढ़ है और पत्थरवत् जड़ है, इसको दूर करो। इसका और तेरा सम्बन्ध कुछ नहीं, तुम मोह को त्यागो, देहरूप शून्य घर में चित्तरूप बेताल का निवास है, जिसको अपने वश में करता है उसे बान्धव भी नहीं छुड़ा सकते, शास्त्र नहीं छुड़ा सकते, जिसका देहाभिमान क्षीण हो गया है उसको गुरुशास्त्र भी छुड़ाने में समर्थ होते हैं, जैसे अल्पकीच से हिरण को निकाला जा सकता है, ऐसे गुरु तथा शास्त्र निकाल देते हैं, हे रामजी! जितने देहरूप शून्य मन्दिर हैं उन सब में अहंकार रूपी पिशाच रहता है, कोई देहरूप गृह अहंकार पिशाच बिना भी है तो उसमें कोई और भय मिला होगा, जैसे पिशाच पवित्र स्थान में नहीं रहता, ऐसे जहां संतोष विचार अभ्यास सत्संग से रहित देह है, इस स्थान में अहंकार निवास करता है और जहां संतोष विचार अभ्यास सत्संग होता है वहां से इसका अभाव हो जाता है, जितने शरीररूप श्मशान हैं वे चित्तरूप वेताल से पूर्ण हैं और अपरिमित मोहरूप वेताल हैं, जगत्रूप महावन में मोह को

प्राप्त होते हैं, जैसे बालक मोह पाता है, हे रामजी! तुम अपना आप उद्धार करो सत्य विचार से धैर्य को प्राप्त करो, यह जगत्‌रूप प्राचीन वन है, उसमें जीवरूप मृग विचरते हैं और भोगरूप तृण का आश्रय करते हैं, वह भोगरूप तृण कैसे हैं, देखने में सुन्दर प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके नीचे गर्त है जैसे हरे तृणसे आच्छादित हुए गर्त में मृग शावक तृण खाते खाते गिर पड़ते हैं, ऐसे ही जीवरूप मृग बालक भोगरूप हरित तृण खाते खाते तृष्णा की अधिकता से नरक देनेवाली योनियों में जन्म लेते हैं, अग्नि के समान जलते हैं, हे रामजी! आपको सावधान होकर इससे बचकर चलना होगा। भोग तृष्णा करने वाला नरक में गिरेगा, इसलिये तुम मृगमति को त्यागकर सिंहमति को धारण करो, मोहरूप हस्ती को सिंहरूप होकर अपने तीखे नखों से फाड़ डालो, भोग की तृष्णा से रहित होने का यही अर्थ है, भोग की तृष्णा वाले जीव जम्बूद्वीपरूप जंगल में मृगों की नाईं भटकते हैं, उनकी नाईं न विचरना, हे रामजी! स्त्री जो रमणीय भासती है, उनका स्पर्श थोड़े समय के लिये शीतल तथा सुखदायक भासता है, परन्तु कीच की नाईं है, जैसे कीच का लेप भी शीतल भासता है, परन्तु तुच्छ है, जैसे भैंसा कीच के दलदलमें फँसा हुआ निकल नहीं सकता, ऐसे यह भोगरूप दलदल में फंसा हुआ निकल नहीं सकता, अतः तुम संतों की वृत्ति ग्रहण करो, ग्रहण त्याग किसको कहते हैं ऐसा विचारकर असत् वृत्ति का त्याग करो और आत्मतत्व का आश्रय करो, हे रामजी! यह देह अपवित्र है, अस्थिमांस रुधिर से पूर्ण है और तुच्छ है, दुराचार है इसी देह के लिये भोगेच्छा की जाती है इससे परमार्थ सिद्धि कुछ नहीं होती, देह रची और ने है, चेष्टा और से करती है और इसमें प्रवेश और ने किया है, दुःख और पाता है, संकल्प ने देह रची है, प्राणों से चेष्टा हो रही है, अहंकार पिशाच ने इसमें प्रवेश किया है और गर्जता है, मन सुख दुःख का अनुभव करता है, जीव दुःखी होता है इसलिये आश्चर्य है, हे रामजी! परमार्थसत्ता एक है और सर्वसमान है, इतर सत्ता उसमें कोई नहीं, जैसे पत्थर घनजड़ होता है उसमें और कुछ

नहीं फुरता, ऐसे सत्तामात्र से इतर अपर द्वैत सत्ता किसी पदार्थ की नहीं, जैसे पत्थर घनरूप है ऐसे परमात्मा घनरूप है, अपर जड़ चेतन भिन्न कोई नहीं, यह मिथ्या संकल्प की रचना है जैसे बालक को परछाई में बेताल भासता है, ऐसे सब कल्पना मन की है जैसे एक गन्ने के रस से गुड़ हो जाता है, कहीं शक्कर खांड होती है, ऐसे एक परमात्मसत्ता सर्व समान है, उसमें जड़ चेतन की कल्पना मिथ्या है, जब तक सम्यक् दृष्टि नहीं प्राप्त हुई तब तक जड़ चेतन की दृष्टि होती है, जब यथार्थ दृष्टि प्राप्त होती है, तब भेद कल्पना मिट जाती है, जैसे सीपी में रूपा भासता है, वह न सत्य होता है न असत्य होता है ऐसे आत्मा में जड़ चेतन सत्यासत्य विलक्षण कल्पना है—हे रामजी! जो सत्य है वह असत्य नहीं होता और जो असत्य है वह सत्य नहीं होता, आत्मा सदा सत्यरूप है और अपने आपमें स्थित है, उसमें द्वैत का अभाव है, जैसे पत्थरमें अन्य सत्ता का अभाव है ऐसे आत्मा में द्वैत सत्ता का अभाव है, नानारूप भासता है है, तो भी द्वैत कुछ नहीं, सदा अनुभवरूप है, विभाग कल्पना इसमें कुछ नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जितनी भेद कल्पना प्रतीत होती है, वह चित्त से प्रतीत होती है, जब चित्त का अभाव होता है, तब जड़ चेतन की कल्पना मिट जाती है, जैसे वंध्या के पुत्र का अभाव है, जैसे आकाश में वृक्ष का अभाव है, ऐसे आत्मा में कल्पना का अभाव है, हे रामजी! यह जो कल्पना है कि यह चेतन है, यह जड़ है, यह उत्पन्न होता है, यह मिट जाता है, इत्यादिक सब कल्पनाएं मिथ्या हैं और गुरुशास्त्र भी जो आत्मा को चेतन कहते हैं, अनात्मा को जड़ कहते हैं, वह भी बोधके निमित्त कहते हैं, दृष्टान्त युक्ति से दृश्य को आत्मस्वरूप में स्थित करते हैं, जब स्वरूप में दृढ़ स्थिति होगी जब जड चेतन की भेद कल्पना जाती रहेगी, केवल अचेत्य चिन्मात्र सत्ता भासेगी, जो तत्व है, गुरु भी जड चेतन के विभाग का उपदेश करते हैं, तो भी मूर्ख नहीं ग्रहण कर सकते तो जब प्रथम ही अचेत्य चिन्मात्र अवाच्य पद का उपदेश करे तब कैसे ग्रहण करे। हे रामजी! और आश्चर्य देखो कि चित्त और है इन्द्रिय और हैं देह और है, देह का कर्ता कोई दृष्टि नहीं आता, अहंकार से वेष्टित किया

हुआ है, जीव की मूर्खता देखो जो देह को अपना आप मानता है और दुःख पाता है, जो विचारवान् पुरुष हैं, आत्मपद में स्थित हुए हैं, उन महानुभावों को कोई क्रिया दुःख बन्धन नहीं कर सकती, जैसे मंत्र जानने वाले को सर्प दुःख नहीं दे सकता, ऐसे ज्ञानवान् को कर्म नहीं बाँध सकता, हे रामजी! न तू सिर है, न नेत्र है, न रक्त है, न मांस है न अस्थि आदिक है न मन है, न तू भूत जात है, तू चित्त से रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप है, शरीर से ममता त्यागकर नित्य शुद्ध सर्वगत आत्मस्वरूप में स्थित हो। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसी दृष्टि का आश्रय करो और भेद कष्ट दृष्टि का त्याग करो, जब कष्ट दृष्टि नष्ट होगी तब आत्मानन्द प्रकट होगा, जिस आनन्द के पाने से अष्ट सिद्धि के ऐश्वर्य को भी अनिष्ट जानकर त्याग देगा, अब और सुनो, जो कि महामोह का नाश करती है और जो आत्मपद पाना कठिन है, वह सुख से मिलेगा और फिर उस दृष्टि का कदाचित् नाश नहीं होता और दुःख से रहित आनन्द रूप है, मैंने शिवजी से सुनी है, पूर्ण कैलास की कन्दरा में संसार दुःख की शान्ति अर्धचन्द्रधारी सदाशिव ने मुझको कही थी हे रामजी! महाचन्द्रमा की नाईं जो शीतल और प्रकावान है ऐसे जो हिमालय पर्वत उसकी कन्दरा कैलास पर्वत है, वहां गौरी के रमणीय स्थान मंदिर है, गंगा का प्रवाह चल रहा है, पक्षियों का कलरव मन को मोहित किये देता है, सुख स्पर्श मन्द मन्द पवन की तो बात ही क्या कहें, कुबेर के मोर विचर रहे हैं, कल्पवृक्ष विराजमान हैं उस उज्ज्वल शीतल महासुन्दर कंदरा में मंदार तमाल वृक्ष शोभा दे रहे हैं, उनके साथ ऐसे फूल फल लगे हुए हैं कि मानों सफेद मेघ हैं। गन्धर्व किन्नर आकर गायन करते हैं, देवताओं के सुन्दर रमणीय स्थान हैं, उस पर्वत पर सदाशिव विराजते हैं त्रिनेत्र हैं और हाथ में त्रिशूल है, गणों से वेष्टित हैं और भगवती अर्धांग में विराजती हैं, ऐसे सर्व लोकेश्वर वहां विराज रहे हैं, इन्होंने कामदेव का दर्पदलन किया है, स्वामि कार्तिक पास विराजते हैं, निवास स्थान को देखिये कैसा भयानक शून्य श्मशान है, उस देव की मैंने

पूजा की, उस पर्वत पर मैं एक बार तप करने लगा था, वहां एक अति पवित्र कुटी बनवायी उसमें यथा शास्त्र पुण्य क्रिया करके मैं तप करने लगा था, एक कमण्डलु अपने पास रक्खा था, पूजा के लिय वृक्षों के पुष्प मालायें रक्खी रहतीं, मैं केवल फल खाता और जल पान करता था, विद्यार्थी पास रहते थे उनको पढ़ाता और स्वयं भी शास्त्र विचार किया करता था। ब्रह्मविद्या की बहुत सी पुस्तकें पास पड़ी रहती थीं उनके देखने विचारने में हमारा समय बीतता था। गण लोग भी वहां थे उनके सहित हम लोग कुञ्ज में विश्राम करते और समाधिस्थ रहते थे, तदनन्तर एक समय श्रावण वदी अष्टमी की आधीरात बीत चुकी थी, मेरा समाधि से उत्थान हुआ, क्या देखता हूँ कि दशों दिशाएँ काष्ट मौनवत् शान्तरूप हैं, इतना प्रगाढ़ अन्धकार है कि शास्त्रों से जो न काटा जा सके, मन्द मन्द पवन चलता था, ओस के कण गिरते थे, मानों पवन हँस रहा है, इसी समय चन्द्रोदय हुआ, महा शीतल अमृत रूप किरणों ने अपना दिव्य प्रकाश फैलाया, औषधियों के रस की पुष्टि होने लगी, चन्द्रमा को देखकर खिलने वाले कमल खिले, चकोरं अमृत पान करने लगे, मानों चन्द्रमारूप हो गये हों, प्रातःकाल तारे मणियों के समान ऊपर पड़ने लगे, सप्तर्षि सिर पर आकर स्थित हुए, मानों मेरा तप देखने आये हों, सप्तर्षियों में जो पिछले तीन तारे हैं उनके मध्य में मेरा मंदिर है, वहाँ मैं सदा विराजता हूँ, तब चन्द्रमा से सब स्थान शीतल हो गये, चन्द्रमा का प्रकाश महाशीतल है, इस कारण से स्थान शीतल हो गये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! अर्ध रात्रि के समय जब मैं समाधि से उतरा तब मुझको तेज प्रकाश दृष्टि आने लगा, जैसे मंदराचल पर्वत के पाने से क्षीर समुद्र उछल आता है, मानों हिमालय पर्वत मूर्ति धारण किये स्थित है, मानों माखन का पिंड पहाड़रूप से स्थित हुआ है, सारांश यह कि

इतना महान् तीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आया कि सब श्वेतमयी हो गयी, उस प्रकाश की शीतलता ने सब दिशा तट पूर्ण कर लिये हैं, तब मैं देखकर आश्चर्यवान् हुआ, अकाल प्रलय होने लगा है तब बोध दृष्टि से विचार किया कि यह क्या है? तब देखा कि देव गुरु ईश्वर सदाशिव चन्द्रकला धारण किये चले आते हैं, गौरी भगवतीका हाथ पकड़े हुए गणों से वेष्टित भगवान् शंकर के कानों में सर्प कुंडल पड़े हुए हैं, कंठ में रुंडों की माला है, शीश पर जटाएँ हैं, ऐसे सदाशिव सबका कल्याण करनेवाले हैं सबको कर्म फल देनेवाले हैं, उनको मैंने मन से देखा, मन ही से मंदार वृक्ष के पुष्प लेकर अर्घ्य दिया और मन ही से प्रणाम किया और मन ही से दक्षिणा दी, ऐसा करके मैं अपने आसनसे उठकर खड़ा हो गया और मैंने अपने शिष्य को जगाया, जगाकर अर्घ्यपाद्य लेकर चला और जाकर श्री त्रिनयन भगवान् को पुष्पाजंली दी, प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया, तब मुझको चन्द्रशेखर प्रभु ने कृपादृष्टि से देखा और कहा हे ब्राह्मण! अर्घ्य पाद्य ले आओ, हम तुम्हारे आश्रम पर अतिथि आये हैं, हे निष्पाप! कल्याण से तो हो? तुम मुझे महाशान्तरूप भासते हो तुम अपने तप की परम उज्ज्वल लक्ष्मी से शोभायमान हो रहे हो, चलो हम तुम्हारे आश्रम में चलेंगे, हे रामजी! फूल के स्थान पर सदाशिव बैठे थे, इतना कहकर उठ खड़े हुए, तब इकट्ठे अपने आश्रम पर कुटी में आकर स्थित हुए, वहां मैंने फिर पुष्प अर्घ्य पूर्वक चरणों की पूजा की, हाथों की पूजा की, इसी प्रकार चरणों से लेकर शीश पर्यन्त सब अंगों की पूजा की उसके अनन्तर वैसी ही श्रीगौरी भगवती का पूजन किया, सखियों का पूजन किया, गणों का पूजन किया, हे रामजी! इस प्रकार भक्ति पूर्वक पार्वती परमेश्वर का जब मैंने पूजन किया तब शशिकलाधारी प्रभु ने शीतलवाणी से मुझे कहा हे ब्राह्मण! अनंत संकल्प विकल्पों भरी चंचल स्वभाव की यह मनोवृत्ति तुम्हारी क्या स्वरूप में विश्रान्ति को प्राप्त हुई है, क्या तुम्हारी संवित् आत्मपद में स्थित हुई है? तुम्हारे शिष्यगण सकुशल तो है? और तुम्हारे पास जो हरिण विचरते हैं, वे सुखसे तो हैं?

और क्या मंदार वृक्ष तुम्हें पूजा के योग्य पुष्पफल भले प्रकार देते हैं? मंदाकिनी भली प्रकार स्नान कराती है? देह की इष्ट अनिष्ट प्राप्ति में तुम खेदवान् तो नहीं होते? इस पर्वत पर कुवेर के अनुचर यक्ष राक्षस रहते हैं, वे तुमको दुःख तो नहीं देते? और मेरे गण जो यक्ष निशाचर हैं तुम्हें कष्ट तो नहीं पहुँचाते? हे रघुनन्दन! जब इस प्रकार देवेश ने वाञ्छित प्रश्न मुझसे पूछे तब मैंने उनसे कहा, वसिष्ठजी बोले–हे महेश्वर! जो आपका कल्याणकारी रूप सदा स्मरण करते हैं, उनके लिये इस संसार में कोई पदार्थ अप्राप्य नहीं और उन्हें भय भी किसी का नहीं, आपने अमोघ स्मरण से जिनका चित्त सर्वथा आनन्द परिपूर्ण रहता है, वे कभी दीन नहीं होते, वही देश तथा वही पर्वत कंदरा और वे ही लोग सर्वथा वन्दनीय हैं, जहां एकान्त बुद्धि बैठकर तुम्हारा स्मरण करते हैं, हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण पूर्व पुण्यरूप वृक्ष का फल है जो कि वर्तमान कर्मों से सींचा जाता है, आप सबके परममित्र हो, सर्व आपत्तियों का हरने वाला आपका स्मरण है, सम्पतिलत्ता के बढ़ाने तथा सफल करनेवाला आपका स्मरण वसन्तऋतु है, हे प्रभो! महा महिमा और बड़े से बड़े कर्मों का कारण तुम्हारा स्मरण है, हे प्रभो! विवेकरूप समुद्र में परमार्थरूप रत्न हैं और ज्ञान रूप अन्धकार का नाशक सूर्य तुम्हारा स्मरण है, ज्ञान अमृत का पूर्ण कलश, धैर्यरूप चान्दनी का चन्द्रमा और मोक्ष का द्वार तुम्हारी शरण में हैं, हे प्रभो! आपका स्मरण एक परम विलक्षण और अत्युत्तम दीपक है, हे प्रभो! आपका स्मरण परम उदार चिंतामणि की नाईं समस्त आपत्तियों को काटने वाला हैं और परम पद को देनेवाला है, हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण एक क्षण भी चित्त में स्थित हो तो सर्व दुःख निवृत्ति करके परम निर्भय बना देता है, वर दायक है, आप ही के समान कर देने की उसमें शक्ति है, वाल्मीकि मुनि बोले–इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब दिन का अन्त हुआ, सभा उठी और सब लोग परस्पर नमस्कार करके अपने अपने स्थान को चले गये और सूर्य भगवान् की किरणों के साथ साथ ही पुनः अपने अपने

आसन पर आकर बैठ गये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने कहा तब जगन्माता श्रीगौरी भगवती जैसे माता पुत्र से कहती है ऐसे मुझसे कहने लगी, भगवती बोली–हे वसिष्ठजी! अरुन्धती कहां है जो पतिव्रताओं में मुख्य है उसको ले आओ, क्योंकि वह मेरी विशेष प्यारी सहेली है, उससे मैं सत्संग तथा शास्त्र चर्चा करूंगी, हे रामजी! जब मुझको इस प्रकार पार्वतीजी ने कहा तब मैं शीघ्र ही जाकर अरुन्धती को ले आया, वे दोनों परस्पर कथा वार्ता करने लगीं और मैं विचारने लगा कि मुझको ईश्वर प्राप्ति हुई है और पूछने का समय मिला है, इसलिये सर्व ज्ञान के सागर से कुछ पूछूं, संदेह दूर करूँ। हे रामजी! ऐसा विचार कर भगवान् शंकर से जो मैंने पूछा और जो कुछ उनसे मुझे उत्तर मिला मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो, वसिष्ठजी बोले–हे भगवन्! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों के ईश्वर! सब कारणों के कारण! तुम्हारे प्रसाद से मैं कुछ पूछने को समर्थ हुआ हूँ, हे महादेव! जो कुछ मैं पूछता हूँ, वह मुझे प्रसन्नता पूर्वक तत्वरूप से शीघ्र ही कहने की कृपा कीजिये, हे सर्व पापनाशक! हे सर्व कल्याण कारक! मुझे देव अर्चन का विधान कहिये, भगवान् शंकर बोले–हे ब्राह्मण! जो उत्तम देवार्चन है जिसके करने से संसार सागर को तर जाता है उसे सुनिये। हे ब्राह्मणोत्तम! पुंडरीकाक्ष विष्णु देव नहीं, त्रिलोचन शिव देव नहीं, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा देव नहीं, सहस्रनयन इन्द्र भी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न तू है, न मैं हूँ, न देह है, न चित्त है न कलनारूप है, अकृत्रिम, अनादि अनंत संवित्‌रूप देवता कहा है, अपर आकारादिक परिच्छिन्न रूप हैं, वह वस्तुतः कुछ नहीं, एक अकृत्रिम अनादि अनन्त चेतनरूप देव है, वह देव शब्द से कहाता है, उसका पूजन ही पूजन है, उस देव को सर्वत्र जानना, जिससे यह सब हुआ है, जो सत्ता शान्त आत्मरूप है, सर्वत्र उसको देखना यही उसका पूजन है और जो उस संवित् तत्व को नहीं जानते उनको आकार की अर्चना कही है, जैसे जो पुरुष योजन पर्यन्त नहीं चल सकता उसको एक

कोस का दो कोस का चलना भी अच्छा है, ऐसे जो पुरुष अकृत्रिम देव की पूजा नहीं कर सकता, उसको आकार का पूजना भी भला है, हे ब्राह्मण! जिसकी भावना कोई करता है, उसके फल को उसी के अनुसार पाता है, जो परिच्छन्न की उपासना करता है उसको फल भी परिच्छन्न ही प्राप्त होता है और अकृत्रिम आनन्द अनन्त देव की उपासना करता है उसको वही परमात्मा रूपी फल प्राप्त होता है, हे साधो! जो अकृत्रिम फल को त्याग कर कृत्रिम को चाहते हैं वे क्या करते हैं, जैसे कोई मंदार वृक्ष के वन को त्याग कर करंजुए के वन को प्राप्त होता है, ऐसा ही वे करते हैं वह देव कैसा है और उसकी पूजन क्या है और कैसे होती है सुनो, तीन फूल हैं, उन फूलों से उसकी पूजा होती है। (१) बोध (२) साम्य (३) सम, यह तीनों पुष्प हैं, बोध नाम सम्यग् ज्ञान का है कि आत्मतत्व को ज्यों का त्यों जानना और साम्य नाम है, सब में पूर्ण देखना, शम का अर्थ यह कि चित्त को निवृत्त करना आत्मतत्व से इतर कुछ न फुरे, इन तीनों फूलों से शिव चिन्मात्र शुद्ध देव की पूजा होती है, हे मुनीश्वर! बोध साम्य, शम इन पुष्पों से आत्मदेव की पूजा करते हैं, यही देवी की पूजा है, आकार अर्चन से अर्चा नहीं होती, जो आत्मसंवित् चिन्मात्र है, उसे त्याग कर अन्य जड़ की जो अर्चना करते हैं, वे चिरतक क्लेश भागी होते हैं। हे ब्राह्मण! जो ज्ञातज्ञेय पुरुष हैं, वे आत्मध्यान से इतर पूजन अर्चन को बालक की क्रीड़ावत् मानते हैं, आत्मा भगवान् एक देव है, वह शिव है, परम कारणरूप है, उसका सर्वदा ही ज्ञान अर्चन से पूजन है, अन्य पूजा कोई नहीं, चेतन आकाश अवयव स्वभाव एक आत्म देव को तू जान, पूज्य–पूजक, पूजा इस त्रिपुटी से आत्मदेव की पूजा नहीं होती, वसिष्ठजी बोले–हे भगवन्! चेतन आकाश मात्र आत्मा को जैसे यह जगत् है और चेतन को जीव कहते हैं, वह कहो, भगवान् ने कहा हे मुनीश्वर! चेतन आकाश प्रसिद्ध है, सर्व प्रकृति से रहित है जो महा कल्प में शेष रहता है, वह आप

ही किंचन रूप होता है, उस किंचन से यह जगत् होता है, जैसे स्वप्न में चिदात्मा ही सर्वगत जगत्रूप होकर भासता है ऐसे जाग्रत् भी चिदाकाश रूप है, आदि सर्ग से लेकर इस कालपर्यन्त आत्मा से इतर का अभाव है, जैसे स्वप्न में जो जगत् भासता है, वह सब चिदाकाशरूप है, इतर कल्पना कोई नहीं, चिन्मात्र ही पहाड़रूप है, चिन्मात्र ही जगत् है, चिन्मात्र ही आकाश है, चिन्मात्र ही सब जीव हैं चिन्मात्र ही सब भूत हैं, चिन्मात्र से इतर कुछ नहीं, सृष्टि के आदि और अन्त पर्यन्त अपर जो कुछ द्वैत कल्पना भासती है, वह भ्रम मात्र है, जैसे स्वप्न में किसी के अंग कट जाते हैं, वह वास्तव में काटे नहीं जाते, निद्रादोष से ऐसे प्रतीत होता हैं ऐसे यह जाग्रत् जगत् भी भ्रम मात्र है, हे मुनीश्वर! आकाश परमाकाश ब्रह्माकाश तीनों एक ही पर्यायरूप है, जैसे स्वप्न में संकल्प से माया द्वारा अनुभव होता है, वह सब चिदाकाश है, ऐसे यह जाग्रत जगत् चिदाकाश है जैसे स्वप्न पुर में आकाश से इतर कुछ नहीं होता ऐसे जाग्रत् स्वप्न भी आत्मतत्व होकर भासता है, आत्मा से इतर दूसरी वस्तु कुछ नहीं, हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में चिदाकाश ही घटपट आदिक होकर भासता है, ऐसे स्थिति प्रलयादि जगत् चिदात्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मा से ऐसे भासता है, जैसे शुद्ध संवित् मात्र से इतर स्वप्न में नगर नहीं पाता, ऐसे जाग्रत् में अनुभव से इतर कुछ नहीं पाता, हे मुनीश्वर! भाव अभावरूप पदार्थ तीनों काल जगत् भासता है, वह सब चिदाकाशरूप है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, हे मुनीश्वर! यह देव मैंने तुझको कहा है, परमार्थ से कहा है, तू मैं और सब भूत जाति सर्व जगत् का देव है वह चिदाकाश परमात्मा है उससे इतर कुछ नहीं, जैसे संकल्पपुर में चिदाकाश ही शरीररूप हो भासता है, इतर कुछ नहीं बना, ऐसे यह सब चिदाकाशरूप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मस्वरूपवर्णनं नामैकोनविंशत्तमः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०

वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारवर्णनम् ।

भगवन् ने कहा–हे ब्राह्मण देवता! इस प्रकार यह सब विश्व केवल परमात्म रूप है, परामात्मकाश ब्रह्म ही एक देवरूप कहाता है उसी ही का पूजन सार है, उस ही से सब फल प्राप्त होते हैं, वह देव सर्वज्ञ हैं और सब उसमें स्थित हैं, अकृत्रिम देव अज परमानन्द अखंडरूप है, उसको साधना करके प्राप्त करना परम आवश्यक काम है, तभी परमसुख की प्राप्ति हो सकती है, हे मुनीश्वर! तुम जगे हुए हो इसलिये इस प्रकार से देव अर्चना मैंने तुझसे कही है, आकार से कल्पिदेव की मिथ्या कल्पना की है, हे मुनीश्वर! अपने संकल्प से जो द्वेव बनाते हैं, उसकी पुष्प धूपदीप आदि से पूजा करते हैं, वह भावना मात्र है, उससे उनको संकल्प रचित फल की प्राप्ति होती है, वह बालक बुद्धि की अर्चना है, तुम्हारे जैसों के लिये यही पूजा है जो तुमको सर्वात्मक भावना से कही है, हे मुनीश्वर! हमारे मत में तो अन्य देव कोई नहीं, एक परमात्म देव तीनों भुवनों में है, उससे अपर देव कोई नहीं, वही शिव है, सर्व पद से अतीत है, सर्व संकल्पों का उल्लंघन करके वर्तता है और सर्व संकल्पों का अधिष्ठान वही है और देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित है, सर्व प्रकार से शान्तरूप है, एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है, उसको देव कहते हैं, हे मुनीश्वर! जो संवित् सत्ता पंचूभतकला से अतीत है, वही सर्वभाव के अन्दर स्थित है और सबको सत्ता देनेवाला देव है और सबकी सत्ता हरने वाला भी वही है, हे विप्रवर! जो ब्रह्म सत्य असत्य के मध्य और असत्य सत्य के परे कहाता है वह परमात्मदेव है। परम स्वतः सत्ता स्वभाव करके सबको प्राप्त हुआ है और महाचित्त कहा जाता है, वह सत्ता परात्मदेव है, ऐसे सब में स्थित है, जैसे सर्व वृक्षों की लताओं के अन्दर रस जल स्थित है, इस प्रकार समान रूप से वह चेतन

परमात्मसत्ता सब ओर स्थित है जो चेतन तत्व अरुंधती का है और जो चेतन तत्व तुझ निष्पाप का है, जो चेतनतत्व पार्वती का है वही चेतन तत्व मेरा है, वही चेतनतत्व जगत् त्रिलोकी का है, वही देव है और देव कोई नहीं और जो हाथों पैरों वाले देव कल्पना किये जाते हैं वह भी चिन्मात्र सार है अन्य कुछ नहीं, चिन्मात्र ही सर्व जगत् का सारभूत है, वही अर्चना करने योग्य है, उसी से सब फल की प्राप्ति होती है, वह देव कहीं दूर स्थित नहीं और किसी प्रकार किसी को प्राप्त होना भी कठिन नहीं, सबके देह में स्थित है और सबका आत्मा है वह दूर कैसे हो और कठिनता से क्यों प्राप्त हो, सब क्रिया वही करता है भोजन भी वही करता है, भरण पोषण भी वही करता है, वही श्वास लेता है, सबका ज्ञाता वही है, पुर्यष्टका में प्रतिबिंबित होकर प्रकाशता वही है, जैसे पर्वत के ऊपर चर अचर की चेष्टा होती है, चलते बैठते स्थित होते हैं, वह सबका आधारभूत पर्वत है, ऐसे ही मन सहित छहों इन्द्रियों की चेष्टा आत्मा के आश्रय होती है, उस देव की संज्ञा (नाम) व्यवहार के निमित्त तत्ववेत्ताओं ने कल्पना की है, वह एक चिन्मात्र देव है, सूक्ष्म है, सर्व व्यापी है, निरंजन है, आत्मा है, ब्रह्म है, इत्यादि नाम ज्ञानवानों ने शास्त्र तथा बुद्धि के अनुसार उपदेशादि व्यवहार सिद्धि के लिये रक्खे हैं, हे मुनीश्वर! जितना यह विस्तार सहित जगत् भासता है, सबका प्रकाशक वही है और सबसे रहित है, वह नित्य शुद्ध अद्वैत रूप है, सब जगत् में अनुस्यूत है, जैसे वसन्त ऋतु में नाना प्रकार के वृक्ष तथा पुष्प सुशोभित होते हैं, सब में एक ही रस व्यापार है, वही अनेक रूप हो भासता है, ऐसे एक ही आत्मसत्ता अनेक रूप होकर भासती है, हे मुनीश्वर! जितना जगत् है आत्मा का चमत्कार भासता है, आत्मतत्व में स्थित है, कहीं आकाशरूप होकर स्थित है, कहीं जीवरूप होकर स्थित है, कहीं चित्तरूप कहीं अहंकार रूप होकर स्थित है, कहीं विशालरूप, कहीं द्रव्यरूप, कहीं भाविकारूप, कहीं तमरूप, कहीं प्रकाशरूप होकर स्थित है, कहीं सूर्य, कहीं पृथ्वी, कहीं जल, कहीं अग्नि, कहीं वायु आदिक स्थावर

जंगमरूप होकर वही स्थित है, जैसे समुद्र में तरंग बुदबुदे होते हैं ऐसे एक परमात्मा देव में त्रैलोक्य हैं, हे मुनीश्वर! देवता दैत्य मनुष्य आदिक सब एक देव में वर्तमान हैं, जैसे जल में तृण बहते हैं ऐसे परमात्मा में जीव बहते हैं, वही चेतन तत्व चतुर्भुज होकर दैत्यों का नाश करता है जैसे जल मेघरूप होकर धूप को रोकता है, वही चेतन तत्व त्रिनेत्र मस्तक पर चन्द्र धारण किये वृषभ पर आरूढ, पार्वतीरूप कमलिनी के मुख का भँवरा रुद्र होकर स्थित होता है और वही चेतन विष्णुरूप सत्ता है, उसके नाभिकमल से उत्पन्न हुआ ब्रह्मा त्रिलोकी वेदरूप कमलिनी की सरसी होकर स्थित हुआ है, हे मुनीश्वर! इस प्रकार एक ही चेतनतत्व अनेक रूप होकर स्थित हुआ है, इसलिये सब देह एक चेतनतत्वज्ञ हैं, जैसे एक वृक्ष के अनेक पत्र होते हैं, ऐसे एक ही तन के सब देह हैं, वही चेतन मस्तक पर चूडाम धारण करनेवाला त्रिलोकपति इन्द्र होकर स्थित हुआ है, देवतारूप होकर भी वही स्थित हुआ है और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित हुआ है, मरने उत्पन्न होने का रूप भी वही धारण करता है, जैसे एक समुद्र में तरंगों के समूह उत्पन्न होते हैं और मिट जाते हैं, वह जल ही जलरूप है, ऐसे उत्पन्न होना और नाश होना चेतन में होता है। वह चेतनरूप परमात्मा एक ही वस्तु है, हे मुनीश्वर! चेतनरूप आदर्श है उसमें जगत्‌रूप प्रतिबिंब होता है, अपनी रची हुई वस्तु को आप ही ग्रहण करके अपने आप में धारण करता है, जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भ को धारण करती है, ऐसे चेतन तत्व जगत् प्रतिबिंब को धारण करता है, हे मुनीश्वर! सब क्रियाएँ उसी देव से सिद्ध होती हैं, देना, लेना, बोलना, चलना उसी से सिद्ध होता है, सूर्यादि प्रकाशक उसी से प्रकाशित होते हैं और उसी से प्रफुल्लित होते हैं, जैसे नील कमल और रक्तकमल सूर्य से प्रफुल्लित होते हैं, ऐसे आत्मा से अन्धकार और प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं और जैसे एक ही रस अनेक रूप होकर स्थित होता है और जैसे एक ही स्वर्ण अनेक भूषण रूप होकर स्थित होता है, ऐसे एक

ही चेतन अनेकरूप होकर स्थित हुआ है, हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूप धूलि चेतनरूप वायु से उड़ती है, जितने जगत् के आरंभ हैं, उन सबको चेतनरूप दीपक प्रकाशित करता है, जैसे सिञ्चन करने से बल्ली प्रफुल्लित होती है और फूलों फलों को प्रकट करती है, ऐसे चेतन सत्ता सब पदार्थों को प्रकट करती है, सबको सत्ता देकर सिद्ध करती है, हे मुनीश्वर! चेतन ही जड की सिद्धि होती है और चेतन ही से जड का अभाव होता है, जैसे प्रकाश ही से अंधकार का अभाव होता है, ऐसे सर्वदेह चेतन से सिद्ध होते हैं और चेतन ही से देहों का अभाव होता है, चेतन भी उसी से होता है, शिव भी उसी से होता है, हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो चेतन बिना सिद्ध हो, जो भी कोई पदार्थ है आत्मा ही से सिद्ध होता है, हे मुनीश्वर! शरीररूप वृक्ष सुन्दर है, बड़े ऊँचे टासों वाला है, परन्तु चेतनरूप मंजरी के बिना शोभा नहीं पाता, जैसे रस बिना वृक्ष की शोभा नहीं रहती उसी प्रकार चेतन बिना शरीर सुशोभित नहीं होता, बढ़ना घटना आदि जो विकार हैं, वे भी एक आत्मा से सिद्ध होते हैं, यह जगत् सब चेतन रूप है, चेतन मात्र ही अपने आपमें स्थित है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतमयी वाणी से भगवान् शंकर ने मुझसे कहा तब मैंने भी परम नम्रता से पूछा–कि भगवन्! जब सर्वगत चेतन देव व्यापक रूप से सर्वत्र स्थित है और यह सब चेतन ही विस्तार को प्राप्त हुआ है, तब यह प्रथम चेतन था, अब यह चेतनता से रहित है यह कल्पना का अनुभव सब लोक में प्रत्यक्ष कैसे होता है? भगवान् शंकर बोले–हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! यह तुमने महान् प्रश्न किया है, इसका उत्तर सुनो। हे ब्राह्मण! इस शरीर में दो चेतन स्थित हैं एक चैतन्योन्मुखत्व रूप है, एक निर्विकल्प आत्मा है, जो चैतन्योन्मुखत्व दृश्य के साथ मिला हुआ है वह जीव है, संकल्प के फुरने से अन्य की नाईं हो गया है और वास्तव से अन्य कुछ नहीं हुआ, परन्तु दृश्य संकल्प के अनुभव को ग्रहण किया है उससे जीव हुआ है, जैसे स्त्री अपने शील धर्म को त्यागकर दुराचारिणी होती है, तब उसकी

शीतलताजाती रहती है, परन्तु स्त्री का स्वरूप नहीं जाता, ऐसे चैतन्योन्मुखत्व होने से अनुभवरूपी जीवरूप हो जाता है, परन्तु चेतनस्वरूप का त्याग नहीं करता, जैसे पुरुष संकल्प के वश से एक क्षण में अपर रूप हो जाता है, ऐसे चित्त सत्ता स्फुरणभाव से अन्य रूप हुई है, जैसे जल दृढ़ जड़ता से पत्थरवत् हो जाता है, ऐसे चेतनकला जीवरूप हुई है, हे मुनीश्वर! आदि जो चित्तकला में चित्तस्पन्द था, तब शब्द के चेतन से आकाश हुआ, पुनः स्पर्श तन्मात्रा का चेतन हुआ, तब वायु प्रकट हुआ, इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा के फुरणे से पंचतत्व हुए, फिर देश आदि का उपाय हुआ उसमें जीव प्रतिबिम्बित हुआ, पुनः निश्चयवृत्ति हुई, उसका नाम बुद्धि हुआ, फिर अहंवृत्ति फुरी, उसका नाम अहंकार हुआ, सकंल्प विकल्पवृत्ति फुरी, उसका नाम मन हुआ, चिंतन करने से चित्त हुआ, संसार की भावना हुई, तब संसार का अनुभव हुआ, अभ्यास के वश से संसार भासने लगा, जैसे विपर्ययभावना से ब्राह्मण अपने आपको चंडाल जाने ऐसे भावना के विपर्यय से अपने आपको जीव मानने लगा है, संकल्प की जड़ता से चेतन रूप जीव को ग्रहण कर संकल्प में वर्तता है, अनंत संकल्प जड़ता तीव्रता को प्राप्त होकर जड़ भाव ग्रहण करके देहभाव को प्राप्त होता है जैसे जल दृढ जडता से बर्फरूप हो जाता है, ऐसे चेतन अनन्त संकल्पों से जड देहभाव को प्राप्त होता है, जब चित्त—मन मोहित हुआ जडता को आश्रय करके संसार में जन्म लेता है, मोह को प्राप्त हुआ तृष्णा से पीडित होता है, काम क्रोध संयुक्त हो भाव अभाव में प्राप्त होता है, अपनी अनन्तता को त्यागकर परिच्छिन्न व्यवहार में वर्तता है, दुःखदायक अग्नि में तप्त हुआ शून्यभाव को प्राप्त होता है, भेदभाव को ग्रहण करके महादीन हो रहता है, हे मुनीश्वर! मोहरूप जो गर्त है उसमें जीवरूप हस्ती फंसा है, भाव अभाव से सदा डोलता रहता है, जैसे जल में तृण घूमता है, ऐसे असाररूप संसार में विकार संयुक्त रागद्वेष से तपता रहता है, शान्ति को कदाचित् प्राप्त नहीं होता, जैसे यूथ से बिछड़ा एक मृग कष्टवान् होता है, ऐसे आवरण भाव जन्म मरण से कष्टवान् होता है, अपने संकल्प से भय पाता है जैसे

बालक अपनी परछायीं में वेताल की कल्पना करके आप ही भय पाता है, ऐसे जीव अपने संकल्प से आप ही भयभीत होता है और संकट को पाता है, आशापाश से बंधा हुआ कष्ट से कष्ट को पाता है, कर्म से सन्तापित हुआ अनेक जन्म पाता है और भय में रहता है, बालक होता है तब महादीन परवश होता है, तदन्तर यौवन कामादि के वश हुआ नारी की आसक्ति में पराधीन रहता है, वृद्धावस्था में अनेकों चिन्ताओं से ग्रस्त किया जाता है, मृत्युवश होकर कर्मानुसार सुगति दुर्गति भोगनी पड़ती है, इस प्रकार पुनः पुनः जन्म और मृत्यु की परम्परा में पड़ा भटकता है, स्वरूप से गिरा हुआ यह जीव पुनः स्वरूप स्थिति अथवा स्वरूप प्राप्ति के कभी दुःख मुक्त नहीं हो सकता, हे मुनीश्वर! एक चित्तसत्ता स्पन्दभाव से अनेक भाव को प्राप्त होती हैं, कभी दुःख से रुदन करती है, कहीं दुःख भोगती है, कहीं स्वर्ग में देवांगना बनती है, पाताल में नागिन होती है, असुरों में असुरी राक्षसों में राक्षसी होती है, वानरों में वानरी सिंहों में सिंहनी, किन्नरों में किन्नरी हरिणों में हरिणी विद्याधरों में विद्याधरी गन्धर्वों में गन्धर्वी देवताओं में देवी इत्यादिक जो रूप धारण करती है वह चेत्योन्मुखतत्व जीवकालरूप धारण करती है, क्षीर समुद्र में विष्णुरूप होकर स्थित होती है, ब्रह्मपुरी में ब्रह्मारूप होकर स्थित होती है, पंचमुख होकर रुद्ररूप स्थित होती है, स्वर्ग में इन्द्ररूप होकर स्थित होती है, तीक्ष्ण कला से सूर्यरूप दिन का कर्ता होती है, क्षण दिन मास वर्ष बनाती है, चन्द्रमा होकर रात्रि का रूप हो जाती है, काल होकर नक्षत्र निर्माण करती है, कहीं प्रकाश कहीं तम हो जाती है, कहीं बीज कहीं पाषाण कहीं मनरूप होती है, कहीं नदी होकर बहती है, कहीं फूल होकर फूलती है, कहीं भँवरा होकर सुगन्ध लेती है, कहीं फल होकर दिखाती है, कहीं वायु होकर चलती है कहीं अग्नि होकर जलाती है कहीं आकाश होकर दिखाती है कहीं बर्फ हो जाती है, हे मुनीश्वर! इस प्रकार सर्वगत सर्व शक्तता से एक ही रूप चित्तशक्ति आकाश से भी निर्मल है जैसे चेता ऐसे होकर स्थित हुई है, जैसी जैसी भावना करती है, शीघ्र ही वैसा रूप हो जाती है, परन्तु स्वरूप से इतर कुछ नहीं होती,

जैसे समुद्र में फेन तरंग हो भासता है परन्तु जल से इतर कुछ नहीं होता जल ही जल है, ऐसे चित्तशक्ति अनेक रूप धारण करती है, परन्तु चेतन से कुछ इतर नहीं होती, कहीं हंस, काक, कहीं शूकर, कहीं मक्खी, इत्यादिक रूप धारण कर संसार में प्रवृत्त होती है, जैसे पानी में पड़कर तिनका घूमता है, ऐसे घूमती है और अपने संकल्प से आप ही भय पाती है, जैसे गधा अपने शब्द से आप ही पड़ा दौड़ता है और भय पाता है, ऐसे जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है, हे मुनीश्वर! जीव शक्ति का आचार मैंने तुझसे कहा है, इस आचार को ग्रहण करके बुद्धि नीच पशु धर्मिणी हुई है, स्वरूप के प्रमाद से जैसा जैसा संकल्प करती है, ऐसी कर्म गति को प्राप्त होती है और शोकवान् होती है, अनन्त दुःख को प्राप्त होती है, अपनी चेत्यता करके मलिन होती है, जैसे चावल का स्वरूप तुष से आवरा जाता है और बड़े सन्ताप को प्राप्त होता है बार बार बोता है उत्पन्न होता है, काटता है, ऐसे स्वरूप के आवरण से जीव कला दुर्भाग्यता से जन्म मरण दुःख को प्राप्त होती है, जैसे भर्ता से रहित स्त्री शोकवती होती है, ऐसे यह कष्ट को पाती है। हे मुनीश्वर! इस अनात्मरूप जड दृश्य के साथ प्रीति करने और अपने स्वरूप के विस्मरण से आशा पाश से बँधा हुआ चित्त जीव को नीच योनि में पहुँचा देता है जिससे जीव सदैव ऊर्ध्व (ऊपर स्वर्गादि) अधः (नीचे पाताल नरकादि) लोकों के ही चक्र काटता रहता है कभी ऊपर जाता है कभी नीचे आता है, स्वरूप साक्षात्कार से वंचित् रहता है जो कि परमपद है और पूर्ण शान्ति का उद्गम स्थान है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेवसिष्ठेश्वरसंवादे
चैतन्योन्मुखत्वविचारो नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१

ईश्वरोपाख्यानेमनः प्राणेक्यप्रतिपादनम् ।

भगवान् बोले–हे मुनीश्वर! स्वरूप के विस्मरण से इस प्रकार होता है कि मैं हंता हूँ, मैं दुःखी हूँ। अनात्मा में अहं प्रतीति से दुःख का अनुभव करता है, जैसे स्वप्न में पुरुष अपने आपको पर्वत से गिरता देखता है, दुःखी होता है, अपने आपको मरा हुआ देखता है, ऐसे स्वरूप के प्रमाद से अनात्म में आत्माभिमान करके अपने आपको दुःखी देखता है, हे मुनीश्वर! शुद्ध चेतन तत्व में जो चित्त भाव हुआ है, उस चित्त कला के फुरणे से जगत् का कारण हुआ है उससे जगत् हुआ है, जैसे जैसे चेतती गयी ऐसे ऐसे जगत् होता गया, वह चित्त का कारण रूप भी नहीं हुआ, जब कारण ही नहीं हुआ तब कार्य किसको कहें, हे मुनीश्वर! न वह चित्त है, न चेतन है, न चेतने वाली है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न दर्शन है, जैसे पत्थर में तेल नहीं होता वह न कारण है न कर्म है, न करण इंद्रिय है, जैसे चन्द्रमा में समता नहीं होती न मन है न मानने योग्य दृश्य वस्तु है, जैसे आकाश में अंकुर नहीं होता, न अहंकार है न तू है न दृश्य है, जैसे शंख को श्यामता नहीं होती हे मुनीश्वर! न नाना है न अनाना है, जैसे अणु में सुमेरु नहीं होता, न शब्द का अर्थ है, जैसे मरुस्थल में वल्ली (लता) नहीं होती, न वस्तु है न अवस्तु है, जैसे बर्फ में उष्णता नहीं होती, न शून्य है न अशून्य है, न जड़ है न चेतन है, जैसे सूर्य मंडल में अन्धकार नहीं होता, हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्द और अर्थ की कल्पना उसमें कुछ नहीं, जैसे अग्नि में शीतलता नहीं होती, केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्व है, स्वरूप से किसी को कुछ भी दुःख नहीं, हे मुनीश्वर! जगत् को असत् जानकर अभावना करनी और आत्मा को सत् जानकर भावना करनी, इस भावना से सर्व अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं, वह अन्य किसी से प्राप्त नहीं होता, अपने आप ही से प्राप्त होता है और अनादि ही सिद्ध है, जब उसकी भावना होती है तब सब भ्रम मिट जाता

है, जब अनात्म भावना होती है, तब पाना कठिन होता है, यत्न बिना वह कैसे पाया जाय। आत्मा निर्विकल्प है, अद्वैत है, सबसे अतीत है, उसको अभ्यास के बिना कैसे प्राप्त किया जाय? आत्मतत्व परम स्वच्छ है, तेज का भी प्रकाशक है, सर्वगत निर्मल नित्य है, सदा उदित निर्मल शक्तिरूप है, निर्विकार निरंजन है, वह घट पट वट वृक्ष में गादी में, वानर में दैत्य देवता समुद्र में, हस्ती में इत्यादिक स्थावर जंगमरूप जितना जगत् है सब में एक आत्मतत्व में साक्षीरूप होकर स्थित है, दीपकवत् सबको प्रकाशित करता है और सर्व क्रिया से अतीत है और उससे सर्वकार्य सिद्धि होती है, सर्व क्रिया संयुक्त भासता है और सर्व विकल्प से रहित भी जड़वत् भासता है, परन्तु परम चेतन है, सर्व चेतनों का सार चेतन है, निर्विकल्प परमसूक्ष्म है और अपने आप में किंचन हो भासता है और अपने प्रमाद से रूप अवलोकन नमस्कार त्रिपुटी भासती है, जब बोध होता है तब ज्यों का त्यों आत्मा भासता है, नित्य शुद्ध निर्मल परमानन्दरूप है, उसके प्रमाद से चित्तभाव को प्राप्त होता है, जैसे साधु भी दुर्जन के संग से असाधु हो जाते हैं, ऐसे अनात्मा के संग से यह नीचता को प्राप्त होता है जैसे सोना अन्य धातुओं के मिलावट से खोटा हो जाता है, जब शोधा जाता है तब शुद्धता को प्राप्त होता है, ऐसे अनात्मा के संग से यह जीव दुःखी होता है, जब अभ्यास यत्न करके अपने शुद्धरूप को पाता है, तब वही रूप हो जाता है, जैसे मुख के श्वास से दर्पण मलिन हो जाता है तब उसमें मुख नहीं भासता, जब मलिनता निवृत्त होती है तब शुद्ध होता है, उसमें मुख स्पष्ट भासता है, ऐसे चित्त संवेदन प्रमाद से फुरणे से जगद्भ्रम भासने लगता है और आत्मस्वरूप नहीं भासता। जब यह जगत् सत्ता फुरने संहित दूर होगी तब आत्मतत्व भासेगा, जगत् की असत्यता भासेगी, हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवित् में चेतन का फुरणा निवृत्त होता है, तब अहंताभाव को प्राप्त होता है, जब अहंकार को प्राप्त हुआ तब अविनाशीरूप को विनाशी जानता है, हे मुनीश्वर! स्वरूप से कुछ भी उत्थान होता है, उससे स्वरूप से गिरकर

कष्ट पाता है, जैसे पहाड़ से गिरा अधः चला जाता है और चूर्ण होता है, ऐसे स्वरूप से उत्थान हुआ और अनात्मा में अभिमान अहं प्रतीति हुई, तब अनेक दुःख को प्राप्त होता है, हे मुनीश्वर! सब पदार्थों का सत्तारूप आत्मा है, उसके अज्ञान से देवत्व भाव को प्राप्त हुआ है, जब उसका बोध होगा तो देवत्व भाव निवृत्त हो जायेगा, वह आत्मा शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप है, उसकी सत्ता से देह इन्द्रियादिक भी चेतन होते हैं और अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश से सब जगत् का व्यवहार होता है, प्रकाश के बिना व्यवहार नहीं होता, ऐसे आत्मा की सत्ता से देह इन्द्रियादिक व्यवहार होता है, अपने अपने विषय को ग्रहण किया जाता है। हे मुनीश्वर! प्राणवायु के किये जो नेत्रों में सुखश्यामता है वह अपने आप में रूप को ग्रहण करती है, उसका बाह्य विषय के साथ संयोग होता है, उस रूप का जिसमें अनुभव होता है वह परम चैतन्यसत्ता है, त्वक् इन्द्रिय और स्पशम जब संयोग होता है, इन जड़ों का जिसमें अनुभव होता है, वह साक्षीभूत परम चेतनसत्ता है और नासिका इन्द्रिय का जब गन्धतन्मात्रा के साथ संयोग होता है, उसके संयोग में जो अनुभव सत्ता है वह परम चेतन हैं, इसी प्रकार शब्द, स्पर्शरूप रस गन्ध वह जो पांचों विषय हैं, श्रोत्र नेत्र त्वक् रसना नासिका इन पांचों इन्द्रियों के साथ मिलकर इनके जाननेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्व है, वह सुख संवित् परम चेतन कहाता है और जो बर्हिमुख फुरकर दृश्य के साथ मिला है, वह मलिन चित्त कहाता है और जब वही मलिनरूप अपने शुद्धस्वरूप में स्थित होता है, तब शुद्ध होता है, हे मुनीश्वर! यह जगत् सब आत्मस्वरूप है, शिला घन की नाईं अद्वैत सर्व विकार से रहित है, न उदय होता है न अस्त होता है, संकल्प के वश से जीवभाव को प्राप्त होता है, संकल्प के निवृत्त हुए परमात्मरूप हो जाता है, हे मुनीश्वर! आदि जो चित्तकला फुरी है, जीवरूप रथ पर आरूढ हुए हैं और जीव अहंकार रूप रथ पर आरूढ हुआ है, अहंकार बुद्धिरूप रथ पर आरूढ है और बुद्धि मनोरथरूप रथ पर आरूढ है, मन प्राणरूप रथ पर चढा है और प्राण इन्द्रियरूप रथ पर चढे हैं, इंद्रियों का

रथ देह है और देह का रथ पदार्थ है, जो कर्म करता है, कर्म ही से जरा मरणरूप संसार पिंजरे में भ्रमता है, इस प्रकार चक्र वर्तमान होता है, उसमें जीव प्रमाद से पड़ा भटकता है, हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्मा का आभास विरूप है, जैसे स्वप्नपुर में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं, वह वास्तव कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् वास्तव कुछ नहीं, जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रम से भासती है, ऐसे यह जगत् भ्रम से भासता है, हे मुनीश्वर! मन का रथ प्राण है, जब प्राण कला फुरणे से रहित होती है, तब मन भी स्थित हो जाता है, प्राण के स्थित हुए मन का मनन शान्त हो जाता है और जब प्राणकला फुरती है तब मन का मनन भी फुरता है, प्राणकला स्थित हुई तब मनन निवृत्त हो जाता है, जैसे प्रकाश के बिना पदार्थ नहीं भासते, जैसे वायु के शान्त हुए धूलि उड़ने से रह जाती है, ऐसे प्राण के फुरने से रहित मन शान्त हो जाता है, जैसे जहां पुष्प होते हैं, वहाँ गन्ध भी होती है, जहां अग्नि है, वहाँ उष्णता भी होती है, ऐसे जहां प्राणस्पन्द होता है, वहां मन भी होता है, संवित् हृदय में जो नाड़ी है उसमें प्राण स्वतः फुरते हैं, उससे मनन होता है, स्वच्छरूप संवित् जड़ अजड़ सर्वत्र भासती है और संवेदन प्राणकला में फुरती है, हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है, परन्तु जहां प्राणकला होती है वहां भासती है, जहां प्राणकला नहीं, वहां नहीं भासती, जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वत्र होता है परन्तु जहां उज्ज्वल स्थान जल अथवा दर्पण होता है, वहां प्रतिबिंब भासता है अन्यत्र नहीं भासता, ऐसे आत्मसत्ता सर्वत्र है, परन्तु जहां प्राणकला पुर्यष्टक होती है, वहां भासती है, दूसरे स्थान पर नहीं भासती, जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिंब भासता है, शिला में नहीं भासता, ऐसे पुर्यष्टक जो मनरूप है सबका कारण है, अहंकार बुद्धि इन्द्रिय उसी के भेद हैं जो आप ही से कल्पित हैं, सर्व दृश्य जाल उसी से उदय होते हैं, अपर वस्तु कोई नहीं, यह भले प्रकार अनुभव किया है, इसलिये मन ही देहादिक को प्रवृत्ति में डालता है, वह परमतत्व वस्तु उस ही में भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने मनःप्राणैक्य प्रतिपादनं नामैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥३१॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारवर्णनम् ।

भगवान् बोले–हे मुनिवर! आत्मसत्ता बिना जीव कंधवत् होता है और आत्मसत्ता से चेतन होकर चेष्टा करता है, जैसे चुम्बक पाषाण की सत्ता से जड़ लोहा चेष्टा करता है, ऐसे सर्वगत आत्मा की सत्ता से जीव फुरता है और आत्मसत्ता भी जीवकला में भासती है, स्थानान्तर पर नहीं भासती, जैसे मुख का प्रतिबिंब दर्पण में भासता है, अन्यत्र नहीं भासता, ऐसे परमात्मा सर्वगत सर्वशक्ति भी है, परन्तु भासता जीवकला में ही है, हे मुनीश्वर! शुद्ध वास्तवरूप से जो इस जीवकला का उत्थान हुआ है और दृश्य की ओर वही है उसमें चित्तभाव को प्राप्त हुई है, जैसे शूद्रों की संगति में ब्राह्मण भी आपको शूद्र मानने लगता है, ऐस स्वरूप के प्रमाद से जीवकला आपको चित्त दृश्यभाव जानने लगी है, अज्ञान से आच्छादित जीव महादीन भाव को प्राप्त हुआ है, जड़ देह के अध्यात्म से कष्ट पाता है, काम क्रोधादि से वात्त पित्तादिक से जलता है, जैसी जैसी भावना होती है, ऐसा ऐसा कर्म करता है, उस कर्म की भावना के साथ मिला हुआ भटकता है, जैसे खंभाणी से चलाया हुआ पत्थर चला जाता है, ऐसे कर्म वासना से प्रेरित जीव भटकता है, जैस रथ पर आरूढ होकर रथी चलता है, ऐसे आत्मा मन और प्राण कर्म को दृढ करके चलता है, हे मुनीश्वर! चेतन ही जड़ दृश्य को अंगीकार करके जीवत्वभाव को प्राप्त होता है, मन प्राणरूप रथ पर चढ़कर पदार्थ की भावना से नाना प्रकार के भेद को प्राप्त हुए की नाईं स्थित होता है, जैसे जल ही तरंगभाव को प्राप्त होता है, ऐसे चेतन नाना प्रकार होकर स्थित होता है, यह जीवकला आत्मसत्ता को पाकर वृत्ति में स्फुरणरूप होती है, जैसे सूर्य की सत्ता पाकर नेत्ररूप को ग्रहण करते हैं, ऐसे परमात्मा की सत्ता पाकर जीववृत्ति में फुरता है, परमात्मा चित्ततत्व में जो स्थित है उससे स्फुरणरूप जीवता है, जैसे घर में दीपक होता है तब प्रकाश होता है,

दीपक बिना प्रकाश नहीं होता, अपने स्वरूप को भुलाकर जीव दृश्य की ओर लगा है, इसलिये आधिव्याधियों से दुःखी होता है, जैसे कमल डोंडी के साथ लगता है, तब भँवरे आकर स्थित होते हैं, ऐसे जब जीव दृश्य की ओर लगता है, तब दुःख आकर स्थित होते हैं, उससे जीव दीन हो जाता है, जैसे जल तरंग भाव को प्राप्त होता है, जैसे घुराण (जीव) अपनी क्रिया से आप बन्धन में आता है, जैसे बालक अपनी परछाईं को देखकर आप ही अविचार से भय पाता है, ऐसे ही अपने स्वरूप के प्रमाद से आप ही दुःख पाता है और दीनता को प्राप्त होता है, हे मुनीश्वर! चिच्छशक्ति सर्वगत अपना आप है उसकी अभावना से दीनता को प्राप्त हुआ है, जैसे सूर्य बादल से आच्छादित हो जाता है, ऐसे मूढ़ता से आत्मा का आवरण हुआ है, जब प्राणों का अभ्यास करे, तब जड़ता निवृत्त हो, अपना आप आत्मस्मरण हो। जिनकी वासना निर्मल हुई है, हृदय से दूर नहीं होती, वह स्थिर हुई एक रूप हो जाती है, तब जीव जीवन्मुक्त होकर चिरपर्यन्त जीता है, हृदयकमल में प्राणों को रोककर शांति को प्राप्त होता है, जैसे काष्ठलोक होता है, ऐसे ही देह गिर पड़ता है, तब पुर्यष्टका आकाश में लीन हो जाती है, जैसे आकाश में पवन लीन होता है, ऐसे उसका मन पुर्यष्टका वहां ही लीन हो जाती है, हे मुनीश्वर! जिसकी वासना शुद्ध नहीं हुई, मृत्युकाल में उनकी पुर्यष्टका आकाश में स्थित होती है, उसके अनन्तर पुनः फुर आती है, वासना के अनुसार स्वर्ग नरक को देखने लगता है, जब शरीर मन पवन से रहित हुआ तब शून्यरूप हो जाता है, जैसे पुरुष घर को त्यागकर दूर जाय रहता है, ऐसे शरीर को त्यागकर मन और प्राण अन्यत्र जाते रहते हैं, तब शरीर शून्य हो जाता है, हे मुनीश्वर! चित्तसत्ता सर्वत्र है, परन्तु जहां जीव पुर्यष्टका होती है वहां भासती है, चेतनता को अनुभव होता है अन्यत्र नहीं होता, हे मुनीश्वर! जब यह शरीर को त्यागता है, तब पंचतन्मात्रा को ग्रहण करके संग ले जाता है, जहां इसकी वासना होती है वहां जाकर प्राप्त होता है तब प्रथम इसका अन्तवाहक शरीर होता है, पुनः दृश्य के दृढ

अभ्यास से स्थूलभाव को प्राप्त हो जाता है, अन्तवाहकता विस्मरण हो जाती है, जैसे स्वप्न भ्रम से स्थूल आकार देखता है, मोह से मरता है, तब अपने साथ स्थूल आकार देखता है, स्थूल देह में अहं प्रतीति करता है उससे मिलकर क्रिया करता है, तब असत्य को सत्य जानता है और सत्य को असत्य जानता है, इस प्रकार भ्रम को प्राप्त होता है जब सर्वगत चिदंश से जीव मन होता है तब जगत् भाव को प्राप्त होता है, जब देह से पुर्यष्टका निकलती है तब आकाश में जाकर लीन हो जाती है, तब देह फुरने से रहित होता है, उसको मृतक कहते हैं, अपनी स्वरूप शक्ति को विस्मरण करके जर्जरी भाव को प्राप्त होता है, जब जीव शक्ति हृदय कमल में मूर्छित होती है, प्राण रोके जाते हैं, तब यह मृतक होता है, फिर जन्म लेता है फिर मर जाता है फिर उत्पन्न होता है, हे मुनीश्वर! जैसे वृक्ष के साथ पत्र लगते हैं, काल पाकर नष्ट हो जाते हैं, फिर नये लगते हैं, ऐसे यह जीव शरीर को धारण करता है, वह शरीर नष्ट ही जाता है और धारण करता है, वह भी नष्ट हो जाता है, वृक्ष के पत्तों की नाईं कहीं सूखे कहीं नये पत्र जैसे बदलते रहते हैं, इस प्रकार शरीर उत्पन्न होते हैं, नाश हो जाते हैं, उन पर शोक करना व्यर्थ है, हे मुनीश्वर! चेतनरूप समुद्र में शरीररूप तरंग बुदबुदे अनेक पैदा होते और नष्ट होते हैं उनका शोक करना व्यर्थ है, जैसे दर्पण में अनेक पदार्थों का प्रतिबिंब होता है वह दर्पण से इतर कुछ नहीं, ऐसे चेतन में अनेक पदार्थ भासते हैं, चेतन निर्मल आकाश की नाईं विस्तीर्णरूप है, उसमें जो पदार्थ फुरते हैं अनन्य रूप हैं, विधि शरीर भी वही रूप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

ईश्वरोपाख्याने द्वैतैक्यप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे भगवन्! जो चेतन तत्व परमात्मा पुरुष है वह अनन्त है, उसको यह द्वैत कहां से प्राप्त हुआ है? और भूत भविष्यत् काल कहां से दृढ हो रहा है? एक में अनेकता कहां से प्राप्त हुई और बुद्धिमान् दुःख को कैसे निवृत्त करते हैं और कैसे निवृत्त होता है? ईश्वर उवाच–भगवान् बोले–हे ब्राह्मण! ब्रह्म चेतन सर्वशक्त है, जब वह एक ही अद्वैत होता है, तब निर्मलता को प्राप्त होता है, एक के भाव से द्वैत कहाता है, द्वैत की अपेक्षा से एक कहाता है, वे दोनों कल्पना मात्र हैं, जब चित्त फुरता है तब एक ओर दोनों की कल्पना होती है और चित्त स्पंद के अभाव हुए दोनों की कल्पना मिट जाती है और कारण से जो कार्य भासता है वह भी एक रूप है, जैसे बीज से लेकर फल पर्यन्त वृक्ष का विस्तार है, वह एकरूप और बढ़ना घटना उसमें कल्पना होती है ऐसे चेतन में चित्त कल्पना होती है, तब जगत्रूप हो भासता है, परन्तु उस काल में भी वही रूप है, हे मुनीश्वर! वृक्ष के समय भी वस्तु बीज एक रूप है, कुछ अपर नहीं हुआ, परन्तु जब बीज फुरता है तब वृक्ष ही भासता हैं, ऐसे जब शुद्ध चेतन में चेतन कला फुरती है, तब जगत्रूप हो भासती हैं, हे मुनीश्वर! यह जो कारण कार्य विकार रूप जगत् भासता है वह असम्यक् दृष्टि से भासता है, जैसे जल में तरंग भासते हैं वे जलरूप हैं, जल से इतर कुछ नहीं, जैसे शशे के सींग असत् हैं, जैसे जल में द्वैत तरंग कलना असत् है, अज्ञान से भासते हैं, ऐसे आत्मा में अज्ञान से जगत् भासता है, जैसे द्रवता से जल ही तरंग रूप हो भासता है, ऐसे फुरणे से आत्मतत्व जगत्रूप हो भासता है, अपर द्वैत कुछ नहीं, चेतनरूप वल्ली (वेल,लता) फैली है, उसमें पत्र फूल फल एक ही रूप हैं, एक वल्ली अनेक रूप हो भासती है, ऐसे एक ही चेतन अहं त्वं देश काल आदिक विकार होकर भासता है, वही रूप है, हे मुनीश्वर! जब सब ही चेतन है, तब तुम्हारे प्रश्न का अवसर कहां हो, देश काल क्रिया नीति आदिक जो

शक्ति पदार्थ हैं वह एक ही चिदात्मा है, जैसे जल में जब द्रवता होती है तब तरंग रूप हो भासता है, उसका नाम तरंग होता है, ऐसे ब्रह्म में जगत् फुरता है, तब अहं त्वं आदिक नाना प्रकार के नाम होते हैं, परम ब्रह्म, शिव, परमात्मा, चेतनसत्ता द्वैत अद्वैत आदिक नाम भी, फुरणे से कहते हैं, जो इन नामों से अतीत है, वह वाणी का विषय नहीं, ऐसा निर्विकल्प, निर्विषय तत्व है, सदा अपने आप में स्थित है, यह जगत् जो कुछ भासता है, वह भी वही चेतनतत्व है, जैसे लता फूल पत्र होकर फैलती है, ऐसे चेतन सर्वरूप होकर प्रसार करता है वह भी वही रूप है, हे मुनीश्वर! महा चेतन में जब किंचन होता है, तब जीवरूप होकर स्थित होता है, आगे द्वैत कलना को देखता है, जैसे स्वप्न में अपना स्वरूप त्यागकर अपर परिच्छिन्न वपु को धारण करता है और आगे द्वैतरूप जगत् को देखता है, जब जगता है तब अपने अद्वैतरूप को देखता है, परन्तु जगे बिना भी द्वैत कुछ हुआ नहीं, ऐसे यह जाग्रत जगत् भी कुछ हुआ नहीं, भ्रम से भासता है, जब यह जीव अपने वास्तव स्वरूप की ओर सावधान होता है तब उसके अभ्यास से वही रूप हो जाता है, हे मुनीश्वर! इस जीव का जो आदि वपु है वह अन्त वाहक है, संकल्प ही उसका रूप होता है जब उसमें अहं भावना तीव्र होती है, तब वही आधिभौतिक होकर भासता है, उसमें सत्यता दृढ हो जाती है तब वही आधिभौतिक होकर भासता है, उसमें सत्यता दृढ़ हो जाती है, उसकी सत्यता से राग द्वेष से क्षोभवान् होता है, जब काकतालीयवत् अकस्मात् हृदय में विचार उत्पन्न होता है, तब संकल्परूप आवरण दूर हो जाता है और अपने वास्तव स्वरूप को प्राप्त होता है, जैसे बालक अपनी परछायी में बेताल की कल्पना करके भय पाता है, ऐसे यह जीव अपने संकल्प से आप ही भय पाता है, हे मुनीश्वर! यह जितना जगत् भासता है, सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प इसके हृदय में दृढ होता है वैसा ही भासने लगता है, प्रत्यक्ष देखो—पुरुष जो कार्य करता है, वह कर्तृत्वभाव उसके हृदय में दृढ़ होता है, फिर कहता है यह काम में न करूंगा, जब यही संकल्प दृढ़ होता है, तब उस कार्य से आपको अकर्ता जानता है, ऐसे दृश्य

की भावना से जगत् सत्य दृढ हो गया है, जब दृश्य का संकल्प निवृत्त करता है और आत्मभावना में जुड़ता है, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, आत्मा ही भासता है, हे मुनीश्वर! परमार्थ से द्वैत है ही नहीं, सब संकल्प रचना है, संकल्प से रचा हुआ दृश्य संकल्प के अभाव से अभावरूप हो जाता है, जैसे मनोराज्य, गन्धर्वनगर मन से रचे होते हैं, संकल्प के अभाव में इनका भी अभाव हो जाता है, तब क्लेश कुछ नहीं रहता, हे मुनीश्वर! यह जीव जगत् संकल्प की पुष्टता से दुःख का भागी होता है, जैसे स्वप्न में संकल्प करके दुःखी होता है, इस संकल्पमात्र की इच्छा त्यागने में क्या कृपणता है और स्वप्न में जो सुख भोगता है वह सुख भी कुछ वस्तु नहीं, भ्रममात्र है, ऐसे यह सुख भ्रममात्र है, हे मुनीश्वर! संकल्प विकल्प ने इसको दीन किया है, जब संकल्प विकल्प का त्याग करता है तब चित्त अचित्त हो जाता है और परम उच्च पद पर विराजमान होता है, जिस पुरुष ने विवेकरूप वायु से संकल्परूप मेघ को दूर किया है वह परम निर्मलता को प्राप्त होता है, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है ऐसे संकल्प विकल्परूप मल से रहित उज्ज्वल भाव को प्राप्त होता है, संकल्प के त्यागने के पीछे जो शेष रहता है, वह सत्तामात्र परमानन्द तुम्हारा स्वरूप है, हे मुनीश्वर! आत्मा सर्वशक्तिरूप है, जैसी भावना होती है ऐसा ही अपनी भावना से देखता है, इसलिये सब संकल्पमात्र है, भ्रम से उदय हुआ है, संकल्प के लीन हुए सब लीन हो जाता है, हे मुनीश्वर! संकल्परूप लकड़ी और तृष्णारूप घृत के योग से जन्म परम्परारूप अग्नि को यह जीव बढ़ाता जाता है, इन पौनः पुण्य का अन्त कदाचित् नहीं होता, जब असंकल्परूप वायुजल से इसका अभाव करे तो शान्ति संभव है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, ऐसे जन्मरूप अग्नि का अभाव हो जाता है और संकल्परूप वायु से तृण के समान घूमता है, हे मुनीश्वर! तृष्णारूप करंजुए की बेल को संकल्प जल से सींचता है, विचाररूप खड्ग से काटे तब उसका अभाव हो जो आभास

मात्र है, आभास के क्षय हुए अभाव हो जाता है, गन्धर्व नगर के समान यह जगत् असत्यक् ज्ञान से भासता है, सम्यग् ज्ञान से लीन हो जाता है, जैसे कोई राजा स्वप्न में रंक हो जाय, पूर्व का स्वरूप विस्मरण हो जाय और दीनता को प्राप्त हो, जब पूर्व का स्वरूप स्मरण आ जाय तब आपको राजा जाने और दुःख मिट जाय तथा निर्दुःख पद की प्राप्ति हो, ऐसे ही इस जीवन का अपना पूर्व का स्वरूप विस्मरण हो गया है, उससे अपने आपको परिच्छिन्न दुःखी जानता है, जब स्वरूप का ज्ञान हो तब सुख दुःख का अभाव हो जाय, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है ऐसा निर्मल हो जाय, जैसे वर्षा काल के मेघों ने न रहने पर आकाश निर्मल हो जाता है, ऐसे अज्ञान रूप मेघ के न रहने से जीव निर्मल होता है और शुद्ध पद को प्राप्त हो जाता है, जो ऐसी युक्ति से भावना करता है कि मैं आत्मा हूँ, एक हूँ, द्वैत से रहित हूँ, जब ऐसी भावना करेगा तब वही रूप हो जायेगा, द्वैत का नाश होगा, उत्तमपद ब्रह्मदेव ही पूज्य पूजक भाव से एक रूप ज्ञात होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने द्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम त्रयास्त्रंशः सर्गः ।।३३।।

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशवर्णनम् ।

भगवान् बोले–हे मुनीश्वर! देव निरन्तर स्थित है और द्वैत और एक्य पद से रहित है और द्वैत एक संयुक्त भी वही है, संकल्प के साथ मिलकर चेतन रूप संसार को प्राप्त हुआ है, और जो संकल्प मल से रहित है, वह संसार से रहित है, जब ऐसे जानता है कि मैं हूँ, तब संकल्प से बांधा जाता है, जब इसके भाव से मुक्त होता है, तब सुख दुःख का अभाव हो जाता है, शुद्ध निरंजन एक सत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होता है इसी का नाम मुक्ति है, आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होता है, वसिष्ठजी

बोले–हे प्रभो! जब मन में क्षीण होता है और इन्द्रिय मन में लीन होते हैं, द्वितीय और तृतीय पद किसकी नाईं शेष रहता है, जो महासत्ता आत्मसत्ता सबको लीन करता है, वह किसकी नाईं है, भगवान् बोले–हे मुनिवर! जब मन से मन छिदता है, इंद्रिय जिसके अंग हैं, विचार करके अथवा अन्य उपासना करके जब इसको आत्मबोध प्राप्त होता है तब एक द्वैत की कलना नष्ट हो जाती है, जगत् जाल की सत्यता नष्ट हो जाती है, उसके पीछे जो शेष रहता है, वह आत्मतत्व प्रकाशित है, जैसे भुने बीज से अंकुर नहीं उत्पन्न होते हैं ऐसे जब मन उपशम होता है, तब उसमें जगत् सत्ता का अभाव हो जाता है, चेतन सत्ता चित्त सत्ता को भक्षण कर लेती है, जब मन रूप मेघ की सत्ता नष्ट हो जाती है, तब शरत्काल के आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है, चित्त की चपलता मिट जाती है, तब परम पावन निर्मल चिन्मात्र तत्व प्राप्त होता है, अपर द्वैत एक भाव अभाव रूप संसार की कल्पना मिट जाती है, समतारूप तत्व जो सर्वव्यापक है और संसार समुद्र से पार करने हारा है, वह प्राप्त होता है, सुषुप्ति की नाईं बोध निर्मय हो जाता है, शान्तिरूप आत्मा को पाकर शान्तिरूप हो जाता है, हे मुनीश्वर! मन की क्षीणता का प्रथम पद यह तुझको कहा है, अब द्वितीय पद सुनो। हे मुनीश्वर! जब यह चित्त शक्ति मन के मनन से मुक्त होती है, कैसी मनन वृत्ति है? जो चारों ओर दौड़ती है, उससे जब मुक्त होता है, तब चन्द्रमा के प्रकाशवत् शीतल हो जाता है और आकाशवत् विस्तृत रूप अपना आप भासता है और घन सुषुप्त रूप हो जाता है, जैसे पत्थर की शिला पोल से रहित होती है, ऐसे दृश्य से रहित घन सुषुप्त इसका रूप होता है, लोणवत् रसमय ब्रह्म हो जाता है, जैसे आकाश में शब्द लीन हो जाता है, ऐसे इसका चित्त आत्मा में लीन हो जाता है, जैसे वायु चलने से रहित अचल होता है, ऐसे चित्त अचल हो जाता है, जैसे गन्ध पुष्प में स्थित होता है, ऐसे चित्तवृत्ति आत्मतत्व में विश्राम पाती है, वह आत्मसत्ता कैसी है, न जड़ है, न चेतन है, सर्व कलना से रहित अचेत्य

चिन्मात्र है, अंकुर रूप सर्व सत्ता के धारण करने वाली देश काल के परिच्छेद से रहित है, जिसको वह प्राप्त होती है, उसको तुरीया पद भी कहते हैं, सर्व दुःख कलंक से रहित पद है, उस सत्ता को पाकर साक्षी की नाईं स्थित होता है, सर्वत्र सर्वकाल समस्थित है, सर्व प्रकाश वही है और शान्तिरूप है, इस आत्मसत्ता का जिसको आत्मतत्व से अनुभव होता है, उसको द्वितीय पद प्राप्त होता है, हे मुनीश्वर! यह द्वितीय पद तुझको कहा है, अब तृतीय पद श्रवण करो, जब वृत्ति का अत्यन्त परिणाम आत्मतत्व में होता है, तब ब्रह्म आत्मा आदि नाम की वहां निवृत्ति हो जाती है, भाव अभाव की कलना कोई नहीं फुरती, स्थाणु की नाईं अचल वृत्ति हो जाती है, परम शान्त निष्कलंक तुरीयातीत सबसे जो उल्लंघित पद है, उसको प्राप्त होता है, सबका अन्त और सबका आधाररूप है, एक अद्वैत नित्य चिन्मात्रतत्व है, तुरीया से भी आगे पद है, जिसमें वाणी की गम नहीं, उस पद को प्राप्त होता है, हे मुनीश्वर! सर्व कलना से रहित अतीत पद मैंने तुझको कहा है, उसमें स्थित हो जाईये, वही सनातन देव है और विश्व भी वही रूप है, वही तत्व संवेदन के वश से ऐसे रूप होकर भासता है और वास्तव से न कुछ प्रवृत्त है न निवृत्त है, समसत्ता प्रकाशरूप अद्वैत तत्व अपने आप में स्थित है, आकाशवत् निर्मल है, उसमें द्वैत का अभाव है, एक चिद्घन सत्ता पाषाणवत् अपने आप में स्थित है, उसमें और जगत् में किंचित् भी भेद नहीं, जैसे जल और तरंग में कुछ भी भेद नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, सम सत्य सत्ता शिवशक्ति रूप है और सब वाणी के विलास से अतीत है, इसकी चार मात्राएं हैं, तुरीया शान्त परम है, वाल्मीकि बोले—हे भरद्वाज! इस प्रकार जब ईश्वर ने कहा और परमशान्तिरूप आत्मतत्व का प्रसंग वसिष्ठजी ने श्रवण किया तब दोनों की वृत्ति आत्मतत्व में स्थित हो गयी और तूष्णीं हो गये, मानों मूर्ति लिखी गयी है, एक मुहूर्त पर्यन्त चित्त की वृत्ति ऐसी रही, पुनः ईश्वर जगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेश वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥

पंचत्रिंश सर्गः ३५

ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णय वर्णनम् ।

श्रीवाल्मीकि मुनि बोले—एक मुहूर्त के अनन्तर श्री सदाशिव ने तीनों नेत्र खोल दिये, जैसे पृथ्वीरूप डिब्बे से सूर्य निकले, ऐसे नेत्र निकले, द्वादश सूर्यों का प्रकाश जैसे इकट्ठा हो गया हो, ऐसा नेत्रों का प्रकाश हुआ और देखा कि वसिष्ठजी के नेत्र मुंदे हुए हैं, तब कहा—हे मुनीश्वर! जगो! अब नेत्र क्यों निमीलित किये हैं, जो कुछ देखना था, देख लिया। अब समाधिस्थ होने का श्रम किस लिये करते हो, तुम्हारे तुल्य तत्ववेत्ताओं को हेयोपादेयता कहीं नहीं होती, आप जैसे बुद्धिमान् हो, ऐसे ही आत्मदर्शी हो, आपने पाने योग्य वस्तु को पा लिया है, जानने योग्य को जान लिया है और बालक के बोध के निमित्त जो तुमने मुझे पूछा था वह मैंने कहा है, अब तुमको तूष्णीं के साथ क्या प्रयोजन है? हे रामजी! इस प्रकार कहकर मेरे अन्तर में प्रवेश करके चित्त वृत्ति के साथ जगाया, जब मैं जागा, तब फिर भगवान् ने कहा—हे वसिष्ठजी! इस शरीर की क्रिया का कारण प्राणस्पंद है, प्राणों से शरीर की चेष्टा होती है, उसमें आत्मा उदासीन की नाईं स्थित है, न कुछ करता है न भोगता है, जब जीव को अपने स्वरूप का प्रमाद होता है तब देह में अभिमान होता है, अपने आपको कर्ता मानता है और भोक्त जानता है, इससे दुःखभागी होता है, इस लोक में तथा परलोक में भटकता है, जब आत्मविचार उत्पन्न होता है, तब आत्मा का अभ्यास होता है, देह अभिमान मिट जाता है, दुःख से मुक्त होता है, शरीर का नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता और शरीर जो चेतन होकर फुरता है, वह प्राणों से फुरता है, जब बीज से प्राण निकल जाते हैं, तब शरीर मूक जड़रूप हो जाता है, और जो चलाने वाली और पवित्र करनेवाली संवित् शक्ति है, वह आकाश से भी सूक्ष्मरूप है, वह शरीर के नाश हुए नाश नहीं होती, जब नाश नहीं होती, तो नाश का भ्रम कैसे हो, हे

मुनीश्वर! आत्मतत्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है, परन्तु भासती वहां है, जहां सात्विक गुण का अंशमन होता है और प्राण होते हैं, मन और प्राणों सहित देह में भासती है, जैसे निर्मल दर्पण में मुख का प्रतिबिंब भासता है और आदर्श मलिन होता है तब मुख विद्यमान भी होता है, परन्तु नहीं भासता, ऐसे मन और प्राण जब देह में होते हैं तब आत्मा भासता है, जब मन और प्राण निकल जाते हैं, तब मलिन शरीर में आत्मसत्ता नहीं भासती। हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, परन्तु भासती नहीं, जब उसका अभ्यास हो तब सर्वात्मरूप होकर भासती है, सर्व कलना से रहित शुद्ध शिवरूप सब की सत्तारूप वही है, विष्णु भी वही है, ब्रह्मा भी वही है, देवता जात भी वही है, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्यादिक सब जगत् का आदि, वपु वही है, वह एक देव है, शुद्ध चेतनरूप है, सर्व देवन का देव है, अन्य सब उसके सेवक हैं और सब उसके चित्त उल्लास हैं, हे मुनीश्वर! हम जो इस जगत् में बड़े ब्रह्मा विष्णु रुद्र हैं, उसी तत्व से प्रकट हुए हैं, जैसे अग्नि से चिंगारे उत्पन्न होते हैं, जैसे समुद्र से तरंग प्रकट होते हैं, ऐसे हम उससे प्रकट हुए हैं, यह अविद्या भी उससे प्रकट हुई है और अनेक शाखाओं को प्राप्त हुई है, देव अदेव वेद और वेद के अर्थ और जीव सब उस अविद्या की जटाएं हैं और अनन्त भाव को प्राप्त हुई हैं, बार बार उत्पन्न होती और मिटती हैं, देशकाल पृथ्वी आदिक सब उसी से सम्पन्न हैं, परन्तु सबका सत्तारूप वही आत्मदेव है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, हम तीनों का परमपिता आत्मा है, सबका मूल बीज वही (देव) है, सब उससे उत्पन्न हुए हैं, जैसे वृक्ष से पत्र उत्पन्न होते हैं, ऐसे सब महादेव से उत्पन्न होते हैं, सबका अनुभव कर्ता वही है, सबको सत्ता देनेवाला वही है, सब प्रकाश का प्रकाश वही है, वह तत्ववेताओं से पूजने योग्य है, सब में प्रत्यक्ष है, सर्वदा प्रकार सब में उदित आकार चेतन अनुभवरूप है, उसके आह्वान में मंत्र आसन आदि सामग्री नहीं चाहिये क्योंकि सर्वदा अनुभवरूप से प्रत्यक्ष है और सर्वत्र सर्वथा विद्यमान है, जहाँ जहाँ उसके पाने का यत्न किया जाये, वहां आगे ही विद्यमान है,

वह शिवतत्व आदि से सिद्ध है, मनवाणी में तीनों रूप वही हो भासता है, सबका आदि और पूजन के योग्य है और नमस्कार करने योग्य भी वही है और जानने योग्य भी वही है, हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्व है, वह जरा, मृत्यु शोक भय के काटने हारा है, उसका स्वयं साक्षात्कार करता है, उसके साक्षात्कार से चित्त भुने बीज की नाईं हो जाता है, पुनः जन्म नहीं लेता, वह शिवत्व जीव का जीव है, सब पदों का पद वही है, अनुभव रूप है, आत्मा है, परमपद है, इतर दृष्टि का त्याग करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णय वर्णनं नाम पञ्चत्रिंशः सर्गः ।।३५।।

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

महेश्वरवर्णनम् ।

भगवान् ने कहा—हे मुनिवर! वह चिद्रूप तत्व सबके अन्दर स्थित है और अनुभवमय शुद्धदेव ईश्वर है, सब बीजों का बीज वही है, सब सारों का सार वही है, कर्म का कर्म और धर्म का धर्म वही है, वह चेतन धातु निर्मल रूप सब कारणों का कारण वही है और आप अपना कारण है, सर्वभाव अभाव का प्रकाशक यही है, सब चेतनों का चेतन वही है, परम प्रकाश रूप है, भौतिक प्रकाश से रहित है, अलौकिक प्रकाशक है, सब जीवों का जीव वही है, चेतन घन निर्मल आत्मा अस्ति तन्मयरूप है, सत् असत् से रहित महा सत्रूप है, सर्व सत्ता की सत्ता वही चिन्मात्र तत्व है, वही नाना रूप हो रहा है, जैसे एक ही आत्मसत्ता स्वप्न में आकाश कंध पहाड़ होकर भासती है, ऐसे नाना रंग रंजना रूप से वही भासता है, जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है, अनन्त कोटि किरणों से अनेक तरंग बनकर भासते हैं, ऐसे यह जगत् उसमें भासता है,

हे मुनीश्वर! उसी आत्मतत्व का यह आभास प्रकाश है, उससे इतर कुछ नहीं, जैसे अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं, वही रूप है, ऐसे आत्मा से जगत् कुछ भिन्न नहीं, वही स्वरूप है और सुमेरु भी उसके परमाणुरूप है और संपूर्ण काल उसका निमेषरूप है, निमेष उन्मेषवत् कल्प के उदय और लय होते हैं और सप्त समुद्र संयुक्त पृथ्वी उसके रोमाग्रवत् तुच्छ है, वह ऐसा देव है, पुनः कैसा है कि संसार की रचना तो करता नहीं, परन्तु कर्तृत्वभाव को प्राप्त होता है, बड़े बंड़े कर्मों को करता हुआ प्रतीत होता है, तो भी कुछ नहीं करता है, द्रव्यरूप दृष्टि आता है तो भी द्रव्य से रहित है निर्द्रव्य है, तो भी द्रव्यमान् है, देहवान् नहीं तो भी देहवान् है और बड़ा देहवान् है, तो भी अदेह है, सब का सत्ता रूप वही देव है, हंढी, भोलि, घड़े, मतचुल, पिंढली, वागले, वेली, घिलमिला, लोवलाग, युगुल, सभस इत्यादि वाक्य निरर्थक है, इनका अर्थ कुछ नहीं, वह भी देह से सिद्ध होते हैं, ऐसा कुछ नहीं, जो देव में असत् नहीं और ऐसा भी कुछ नहीं, जो देव से सत नहीं, हे मुनीश्वर! जिससे यह सर्व है और जो यह सर्व है, जो सब में नित्य है, उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे महेश्वरवर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ।।३६।।

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

ईश्वरोपाख्याने नियत्तिनृत्यवर्णनम् ।

भगवान् बोले–हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्दों का सत्तारूप वही है, सर्वसत्तारूप रत्नों का डिब्बा वही है, तत्व चमत्कार से फुरता है, जैसे जल तरंग बुद्‌बुदा फेन आदिक आकार से फुरता है, ऐसे देव नाना प्रकार के आकार होकर फुरता है, वही फूल गुच्छे रूप होकर स्थित होता है, आप ही सुगंधरूप होकर स्थित होता है, घ्राण इंद्रिय में स्थित होकर आप ही सूंघता है, आप ही त्वक् (त्वचा) इंद्रिय होता है, आप ही पवन

होकर चलता है, आप ही स्पर्श से ग्रहण करता है, आप ही जलरूप होता है, आप ही वायु होकर सूखाता है, आप ही श्रवणेन्द्रिय होकर, आप ही शब्द होकर आप ही ग्रहण करता है, इसी प्रकार जिह्वा, त्वचा, नासिका, कर्ण, नेत्र, होकर, आप ही स्पर्श, रूप, रस गन्ध शब्द को ग्रहण करता है, उसी ने पदार्थ रचे हैं, उसी ने नीति रची है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, ईश्वर सदा शिव वही देव इस प्रकार हुआ है, आप ही साक्षीवत् स्थित होता है, जैसे दीपक के प्रकाश से मंदिर की सब क्रिया होती है, ऐसे संसार रूप मंडप की सब क्रिया साक्षी से होती है, उसमें उसकी शक्ति नृत्य करती है और आप साक्षीरूप होकर देखता है। वसिष्ठजी बोले–हे जगन्नाथ! शिव की शक्ति क्या है और कैसे स्थित है तथा देव का साक्षात् कैसे है और उसका नृत्य कैसा होता है? भगवान् बोले–हे मुनीश्वर! आत्मतत्व स्वभाव से अचल है और शान्तरूप है, शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्र निराकार है, उसकी आसक्ति इच्छा शक्ति है, काल शक्ति है, नीति शक्ति है, मोह शक्ति है, ज्ञान शक्ति है, क्रिया शक्ति है, कर्त्ता शक्ति है, परन्तु स्वरूप से सदा अकर्ता है। इत्यादिक आत्मा की शक्तियाँ हैं, उन शक्तियों का अन्त नहीं, अनन्तरूप चिन्मात्र देव है, यह जो मैंने तुम्हें शक्ति कही है, वह भी शिव रूप है, भिन्न नहीं, जो कर्तृत्व भोक्तृत्व साक्षिता आदिक भावना से शक्ति ने विविधरूप धारण किया है, शिव और भक्ति एक रूप है और बहुत भासती है, पदार्थ में अर्थ शक्ति है, आत्मा में साक्षी शक्ति कल्पित है, ऐसी काल शक्ति है, नृत्य की नाईं ब्रह्माण्डरूप नृत्य मण्डल में नृत्य करती है, क्रिया शक्ति कर्तृत्व से नृत्य करती है, इत्यादिक शक्तियाँ कहाती हैं, जैसे आदि नीति हुई हैं, ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त ऐसे ही स्थित है, अन्यथा नहीं होती, हे मुनीश्वर! यह संपूर्ण जगत् नृत्य करता है, संसाररूपिनी नटिनी है, उसकी प्ररणा करनेवाली नीति है और परमेश्वर परमात्मा है, वह साक्षी रूप है, सदा उदित प्रकाशरूप है, एकरस देव स्थित है और नीति आदि शक्ति

भी उससे भिन्न नहीं, वही रूप है, इसलिये देव ही जानो, अपर द्वैत कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने
नियत्तिनृत्यवर्णनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ।।३७।।

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

ईश्वरोपाख्याने बाह्यपूजावर्णनम् ।

भगवान् बोले–हे मुनिवर! वह एक परम देव परमात्मा सत् पुरुषों से पूजने योग्य है, सर्वत्र है सबका आधार है, घट पट आदि में, घर बाहिर तथा दीवारों में ब्रह्मा में तथा इन्द्र से लेकर समस्त देवताओं में अन्य सब जीवों में विद्यमान है, सर्वात्मा शान्तरूप देवता का पूजन दो प्रकार का होता है, वह सुनो! इष्ट देवता का पूजन ध्यान है और जो ध्यान है, वह पूजन है, त्रिभुवन का आधारभूत आत्मा है, उसके ध्यान से उसकी पूजा करो, जहाँ जहाँ मन जावे वहां वहां चिद्रूप आत्मा को देखो, सबका प्रकाश आत्मा ही है, वह चिद्रूप अनुभव से जाना सकता है कि अन्दर स्थित है, अहंता से सिद्ध है, वह सबका साररूप है और सबका आश्रयरूप है, उसका विराट्रूप सुनो, उसको जानकर पूजा करो, बाह्य कैसा है, अनन्त है, पारावार से रहित है, जो परमाकाश है, वह उसकी ग्रीवा है, और अनन्त पाताल उसके चरण हैं, अनन्त दिशाएं उसकी भुजाएं हैं, सब प्रकाश उसके शस्त्र हैं, हृदय कोश के कोण में स्थित हैं, ब्रह्माण्ड समूहों की परम्परा को प्रकाशित करता है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता जीव समूह उसकी रोमावली हैं, त्रिलोकी में जो देहरूप यंत्र हैं, उनमें इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्याप्त हुआ है, उससे सब चेष्टा करते हैं, वह देव एक ही है और अनन्त है, सत्तामात्र स्वरूप है, सब जगज्जाल उसका निवृत्त है और काल उसका द्वारपाल है, पर्वतादिक ब्रह्माण्ड जगत् उसके देह में किसी कोण में स्थित है, उस देव का चिन्तन करो, वह देव कैसा

है, जिसके सहस्त्र चरण हैं, सहस्त्रों नेत्र और सहस्त्रों शीश हैं, सहस्त्रों भुजाएं हैं और उन सहस्त्रों ही भुजाओं में भूषण हैं, जिनकी सर्वत्र नासिका इन्द्रिय है, सर्वत्र जिसकी रसनाएं हैं, सर्वत्र कान हैं, उसका सब ओर मन है और सब मन कलनाओं से अतीत है सब ओर वही शिवरूप है, सदा सबका कर्ता है और सब संकल्पों के अर्थ का फलदायक है, सबके अन्दर स्थित है, सब साधनों का साधक है, ऐसा जो देव है वह सब में सर्व प्रकार सर्वदा काल स्थित है, उस देव का चिन्तन करो, ऐसे देव के ध्यान में सावधान रहो, सदा तदाकार मनोवृत्ति रखना, यही उस देव का पूजन है, अब मानसिक पूजन सुनो, हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! संवित् मात्र जो देव है वह सदा अनुभव से प्रकाशित होता है, उसका पूजन दीपक से नहीं होता, धूप से या पुष्पों से नहीं होता, चन्दनादि के लेप और दान आदि से भी उसका पूजन नहीं होता, पूजा की अर्घ्यपाद्यादिक सामग्री से उस देव का पूजन नहीं होता, उसका पूजन अनायास और नित्य होता है, हे मुनीश्वर! एक अमृतरूप बोध (ज्ञान) से उस देव का सजातीय जानकर ध्यान करना, परम पूजन है, हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र देव जो कि अनुभव रूप है, उसका सर्वकाल में सर्व प्रकार से पूजन करो, देखता है, स्पर्श करता है, सूंघता है, सुनता है, बोलता है, लेता है, देता है, चलता है, बैठता है और बाकी जितनी और भी क्रिया करता है, उन सबको साक्षी में अर्पण करो और तत्परायण हो जाओ, इस प्रकार आत्मदेव का पूजन करो, हे मुनीश्वर! आत्मदेव का ध्यान करना ही, उसका आगे धूपदीप अर्पण के समान है और सब सामग्री पूजन की यही है, ध्यान ही देव को प्रसन्न करता है उससे परमानन्द मिलता है, अन्य उपाय से देव की प्राप्ति नहीं होती, हे मुनीश्वर! मूढ़ हो और इस प्रकार ध्यान कर ईश्वर की पूजा करे तो त्रयोदश निमेष में गोदान का फल प्राप्त होता है। आँख के एक बार झपकने का नाम निमेष है, सौ निमेष तक भगवान् की इस प्रकार पूजा करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता है, आधी घड़ी भर भी भगवान् का जो कोई आत्मरूप से पूजा करे तो हजार

अश्वमेध का फल मिलता है, ध्यान के बल से आत्मदेव का एक घड़ी पर्यन्त पूजन करे तो राजसूय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है, मध्याह्नकाल तक जो इसी प्रकार पूजन करे उसको एक लक्ष राजसूय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है, यदि सम्पूर्ण अर्थात् प्रातःकाल से लेकर सांयकाल तक ऐसे ही पूजन करे तो परम धाम की प्राप्ति होती है, हे मुनीश्वर! यही परम योग है, यही परम क्रिया है, यही परम प्रयोजन है, हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैंने तुम्हें कही हैं, जिसको यह परम पूजा प्राप्त होती है, वह परम पद पाता है, सब देवता उसको नमस्कार करते हैं, वह सर्व मान्य होते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ईश्वरोपाख्याने बाह्यपूजावर्णनं नामाष्टत्रिंशः सर्गः ।।३८।।

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

देवार्चनविधानवर्णनम् ।

भगवान् ने कहा–हे मुनीश्वर! अब आभ्यन्तर पूजन के विषय में सुनिये, जो पावन को भी पावन कर देता है, अज्ञान अन्धकार को निर्मूल कर देता है, ऐसा आत्म पूजन तुम्हें कहता हूँ, यह आत्मदेव का पूजन हर प्रकार से हर समय किया जा सकता है, कभी व्यवधान नहीं पड़ता, चलते, बैठते, सोते, जगते सब व्यवहार में नित्य ध्यान में रहता है, हे मुनीश्वर! इस संसार में नित्यस्थित संवित् रूप चिन्मात्र है, उसका पूजन करो जो सर्व प्रत्यय का कर्ता है, सदा अनुभव से प्रकाशित है, उस अपने आपका पूजन आप करो, वह तुम्हीं हो, उठते बैठते, चलते खाते पीते, लेते देते, सब काम करते हुए भी उस देव की पूजा करो, हे मुनीश्वर! शरीर में जो शिवलिङ्ग है, चिह्न से रहित वह बोधरूप (ज्ञानरूप) चिह्न है, वह देव है, यथा प्राप्त में सम रहता है, उस देव का पूजन है, यथा प्राप्त में सम भाव में स्थित होकर स्नान करके शुद्ध होकर

बोधरूप लिङ्ग का पूजन करो, जो कुछ आकर प्राप्त हो उसमें राग द्वेष से रहित होना सर्वदा साक्षीरूप अनुभव में स्थित रहना यही उसका पूजन है, हे मुनीश्वर! सूर्य के भुवन आकाश में वही सूर्य होकर प्रकाशित होता है, चन्द्रमा में भुवन में वही चन्द्रमा होकर स्थित होता है, इत्यादि जो भी पदार्थ समूह हैं, जैसी जैसी भावना से फुरणा हुआ है, वही रूप होकर देव वहां स्थित है, हे मुनीश्वर! नित्य शुद्ध बोधरूप अद्वैत है, उसको देखना वस्त्वन्तर में वृत्ति न लगाना, यही देव का पूजन है, प्राण अपान रूप रथ पर आरूढ़ हुआ, अन्तर गुहा में जो स्थित है, उसका जो ज्ञान है और जितने कुछ कर्म हैं, उन सबका कर्ता वही है, सर्व भोग का भोक्ता वही है, शब्द का स्मरण करनेवाला वही है और भागवत रूप है, सबकी भावना करने वाला परम प्रकाशरूप है, ऐसा जो संवित् तत्व है, उसको सर्वज्ञ जानकर चिन्तन करना उसका पूजन है, पुनः देव कैसा है, देह में स्थित होने पर भी आकाशवत् निर्मल है, जाता भी वही है और न जाता भी वही है, प्राणरूप आलय में प्रकाशित होता है, हृदय, कंठ, तालु, जिह्वा, नासिका पीठ में व्यापक है, शब्द आदि विषय का कर्ता मन को प्रेरित करता है, जैसे तिलों के तेल आश्रय भूत है, ऐसे आत्मा सब में आश्रय भूत है, कलनारूप कलंक से रहित है और कलनागण से संयुक्त भी वही है, सम्पूर्ण देहों में एक ही देव व्याप्त हो रहा है, परन्तु प्रत्यक्ष हृदय में होता है, वह निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है, कलनारूप कलंक से रहित सदा प्रत्यक्ष है, अपने आप ही से अनुभव होता है, सर्वदा पदार्थ का प्रकाश प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्व अपने आप में स्थित है, वह अपने फुरणे से शीघ्र ही द्वैत की नाईं हो जाता है। हे मुनीश्वर! जितना साकार जगत् दृष्टि आता है वह सब विराट् आत्मा है, इसलिये अपने आप में विराट् की भावना करो, हस्तपादादि अङ्गोंयुक्त यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा देह है, मैं ही प्रकाशरूप एक देव हूँ और नीति इच्छादिक मेरी शक्ति है, सब शक्तियाँ मेरी उपासना करती हैं, पुनः मैं कैसा हूँ कि मन मेरा द्वारपाल है, त्रिलोकी का निवेदन करनेवाला है और मेरा चिन्तन

मेरा आने जाने वाला प्रतिहार है। नाना प्रकार के ज्ञान मेरे अंगों के भूषण हैं, कर्म इन्द्रिय मेरे द्वार हैं, ज्ञानेन्द्रिय मेरे गण हैं, ऐसा मैं एक अनन्त आत्मा अखंडरूप हूँ, व्यवच्छेद भेद से रहित अपने आप से स्थित हूँ, सब में परिपूर्ण एक मैं ही हूँ, हे मुनीश्वर! इसी भावना से जो एक देव की पूजा करता है वह परमात्म देव को प्राप्त होता है, तब दानता आदि सब क्लेश नष्ट हो जाते हैं, अनिष्ट की प्राप्ति में शोक नहीं उत्पन्न होता और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष नहीं पैदा होता। न तोषवान् होता है न कोपवान् होता है। विषयों की प्राप्ति से न तृप्ति मानता है, न इनके वियोग में खेद मानता है, न तो अप्राप्त की इच्छा करता है, न प्राप्त के त्याग की इच्छा करता है, सब पदार्थों में सम भाव रहता है, ऐसा जो पुरुष है वह देव का परम उपासक है, ग्रहण त्याग से रहित सब में तुल्य है, भेद भाव को प्राप्त नहीं होता, देव का उत्तम अर्चन है, हे मुनीश्वर! चेतन तत्व देव मैंने तुझसे जो इसी देह में स्थित है, जो प्राप्त वस्तु हो, उससे उसकी चर्चा करना, उसी के आगे अर्पण रूप से उसको रखना, सब के साक्षी आत्मा को देखना, किसी से खेदवान् न होना, अहं प्रतीति उसमें रखना, इतर दृश्यभावना नहीं करनी, यही देव की अर्चा है (पूजा है), हे मुनीश्वर! जो कुछ आकर प्राप्त हो बिना यत्न के उसी में सम रहना जो भक्ष्य, भोज्य चोष्य, लेह्य आकर प्राप्त हो, उसको देव के अर्पण करना, ग्रहण त्याग की बुद्धि उसमें न करनी, यह देव का पूजन है, प्रत्येक पदार्थ की प्राप्ति में देव की पूजा करनी चाहिये, इससे अनिष्ट भी इष्ट हो जाता है, मृत्यु के आने पर भी देव की पूजा से जीवन की प्राप्ति हो, तब भी देव की पूजा, दरिद्रता आवे तब देव की पूजा, राज्य प्राप्त हो तब भी देव की पूजा करनी चाहिये, विचित्र और नाना प्रकार की जो चेष्टाएं होती हैं, वे देव के आगे पुष्प हैं, रागद्वेष से सम रहना, यह समतारूप से देव की पूजा है, सन्तों के हृदय में रहनेवाली जो मैत्री है, उस मैत्री से सम्पूर्ण विश्व के साथ मित्रता का व्यवहार करना, उस मित्रता से देव का पूजन है, भोग से, त्याग से, राग से जो कुछ प्राप्त हो, उससे देव का पूजन करो, हन्ता, अहन्ता कुछ भी युक्ति करो, अयुक्ति करो, हेयोपादेय से

रहित होकर उस देव का पूजन करो, जो नष्ट हुआ वह हुआ, जो प्राप्त हुआ वह हुआ, दोनों में निर्विकार रहना है, इसलिये उचितानुचित विचार के साथ देव का पूजन करो, यह भोग आपात रमणीय हैं, होते भी हैं, नष्ट भी हो जाते हैं, इनकी इच्छा न करना, सदा संतुष्ट रहना जैसी अवस्था आकर प्राप्त हो, उसमें रागद्वेष से रहित होना ही देव का अर्चन है, हे मुनीश्वर! जो कुछ प्रारब्ध के अनुसार आकर प्राप्त हो उससे आत्मा का अर्चन करो, इच्छा अनिच्छा को त्यागकर जो प्राप्त हो उससे आत्मा का अर्चन करो, हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसी की इच्छा करता है, न त्याग करता है, जो कुछ अनिच्छित रूप से प्राप्त हो, उसको भोगता है, जैसे समुद्र में नदी जाकर मिलती है, उससे न कुछ हर्ष करता है, न शोक करता है, ऐसे ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष से रहित यथा प्राप्त को भोगता है, वह देव का पूजन है, देश, काल, क्रिया, शुभ अथवा अशुभ प्राप्त हो, उसमें संसरण विकार को न प्राप्त होना देव का अर्चन है, जब द्रव्य अनर्थ रूप हो, तब भी समता अमृत से मिला हुआ अमृत हो जाता है, जैसे षट्‌रस स्वाद हैं वे खांड से मिले हुए मधुर हो जाते हैं, ऐसे अनर्थ रूप रस मिले हुए अमृत हो जाते हैं, खेद नहीं करते अनन्त रूप हो जाते हैं, चन्द्रमा की नाईं सब भावना अमृतमय हो जाती है, जैसे आकाश निर्लेप है ऐसे समता भाव से चित्त रागद्वेष से रहित निर्मल हो जाता है। द्रष्टा को दृश्य से मिला न देखना साक्षीरूप रहना, यह देव की अर्चना है, जैसे पत्थर की शिला निस्पंद होती है, ऐसे विकल्प से रहित चित्त अचल हो जाता है, यह देव की अर्चना है, हे मुनीश्वर! अन्तर से आकाशवत् असंग रहना और बाह्य प्रकृत आचार में रहना, किसी का संग अन्तर स्पर्श न करते हुए सदा समभाव के विज्ञान से परिपूर्ण रहना, उस देव की उपासना है, जिसके हृदय रूप आकाश से अज्ञानरूप मेघ नष्ट हो गया है, उसको स्वप्न में भी विकार नहीं प्राप्त होता और जिसके हृदयरूप आकाश से अहंता रूप कुहिड़ारा शान्त हो गयी है, वह शरत्काल के आकाशवत् उज्ज्वल होता है, हे मुनीश्वर! जिसको समत्व मिला है उसने देव को प्राप्त किया है वह पुरुष ऐसा हो

जाता है, जैसा नूतन बालक रागद्वेष से रहित होता है, जीवरूप चेतनत्व का उल्लङ्घन करके वह परम चेतनतत्व को प्राप्त होता है, सकल इच्छा भ्रम से रहित सुख दुःख भ्रम से मुक्त शरीर का नायक नियत होता है, यह देव की परम अर्चना है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे
देवार्चनविधान नवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ।।३९।।

चत्वारिंशः सर्गः ४०

ईश्वरोपाख्याने देवत्वविचारवर्णनम् ।

भगवान् बोले–हे मुनीश्वर! जैसी कल्पना हो, जो कुछ आरम्भ करे, अथवा न करे, अपने आपमें सावधान होकर एकाग्रता से निश्चल ध्यान के साथ चिन्मात्र संवित् तत्व की पूर्ण ब्रह्मपरमात्मा की अर्चना बहुत श्रद्धा से करे, प्रेम के मधुर भावों से भरी प्रार्थनाएं करे, ऐसा करने से (देव) भगवान् प्रसन्न होते हैं, भगवान् प्रसन्न हों तो प्रकट होते हैं, जब उसको पाया तब रागद्वेष इस प्रकार भागता है, जैसे अग्नि में बर्फ का कण लुप्त हो जाता है, ऐसे इसमें रागद्वेष का नाश हो जाता है। इसलिये उस देव की अर्चना करना परम आवश्यक है, चाहे राज्य मिले अथवा दारिद्रय आ पड़े, सुख हो, दुःख हो, सर्वथा सम रहना ही उचित है क्योंकि यह तो उस देव की अर्चना है, हे मुनीश्वर! उस शुद्ध चिन्मात्र से प्रमादी न होना ही उस देवकी अर्चना है, जितना कुछ घट पट आदिक जगत् भासता है सब आत्मरूप है, उससे इतर कुछ नहीं, वह आत्मा शिव शान्तिरूप अनाभास है। एक ही प्रकाशरूप है, सम्पूर्ण जगत् प्रतीतिमात्र है, आत्मा से इतर कुछ द्वैत वस्तु आभास नहीं, सर्वात्मरूप अद्वैत रूप जब भासे तब उसमें हुआ जानता है, जो बड़ा आश्चर्य है, घट पट आदिक सब वही रूप है, अपर तो कुछ नहीं, हे मुनीश्वर! यह सर्वात्मा अनन्तरूप शिवतत्व है जिसके ऐसा निश्चय प्राप्त हुआ है, उसने देव की पूजा को

जान लिया। घट पट आदिक जो पदार्थ हैं और पूज्य पूजा पूजक भाव आदि ब्रह्मरूप हैं, निर्मल देव आत्मा में कुछ भेदभाव नहीं है, हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्तिरूप अनन्तरूप है, जगत्‌यात्री में उससे भिन्न कुछ नहीं, निर्मल प्रकाश संवित्‌रूप आत्मा स्थित है, हमको तो ईश्वर देव से इतर कुछ नहीं भासता, सर्वत्र सर्वप्रकार सर्वात्मा सम्पूर्ण दृष्टि आता है और जिनको देशकाल के परिच्छेद सहित ईश्वर भासता है, वे हमारे उपदेश के पात्र नहीं, वे ज्ञान बन्धु नीच है, उनकी दृष्टि को त्यागकर मेरी दृष्टि का आश्रय लो जो कि मैंने तुम्हें कही है, उससे स्वस्थ, वीतराग, निरामय हो जाओ। यथा प्रारब्ध जो कुछ सुख दुःख आकर प्राप्त हो, उनसे खेद न मानकर प्रसन्नता से देव का अर्चन करो, तब शान्ति को प्राप्त करोगे, हे मुनीश्वर! उस देव की सर्व प्रकार से सर्वात्मभाव के साथ भावना करो, यही उसका पूजन है, जो वृत्ति सदा अनुभवरूप में स्थित रहे और यथा प्राप्त में खेद से रहित होकर रहा जा सके तो यही देव की अर्चना है, जैसे स्फटिक (बिलौर) के मन्दिर प्रतिबिंब भासते हैं, परन्तु यथार्थ रूप से वह कुछ भी नहीं केवल निर्मल स्फटिक है, ऐसे सब ओर से जन्मादि दुःखों से रहित निर्मल आत्मा है, उसकी प्राप्ति हो जाने पर किसी प्रकार का दोष कलंक शंका संशय मन में रह न पायेगा किन्तु परम आनन्द की प्राप्ति होगी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेईश्वरोपाख्याने देवत्व विचरो नाम चत्वारिंशः सर्गः ।।४०।।

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

जगन्मिथ्यात्व प्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे देव! शिव किसको कहते हैं और ब्रह्म किसको कहते हैं, आत्मा किसको कहते हैं और परमात्मा किसको कहते हैं, तत्सत् किसको कहते हैं, निष्किंचन शून्य विज्ञान किसको कहते हैं, इत्यादिक भेद संज्ञाएं किस निमित्त हुई हैं, कृपा करके कहो, भगवान्

बोले–मुनिवर! जब सब का अभाव होता है, तब अनादि अनन्त अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है, जो इन्द्रियों का विषय नहीं, उसको निष्किंचन कहते हैं, वसिष्ठजी ने कहा–हे ईश्वर! जो इन्द्रियों और बुद्धि आदि का विषय नहीं, उसको पाना किससे होता है, भगवान् बोले–हे मुनीवर! जो मुमुक्ष है, वेद के आश्रित है जिसको वृत्ति सात्विक है, उसको सात्विक गुरु और सात्विक विद्या प्राप्त होती है, उससे अविद्या का भाग नष्ट हो जाता है और आत्मतत्व प्रकाशित होता है, जैसे साबुन धोबी वस्त्र का मैल उतारता है, ऐसे सात्विक वृत्ति वाले विद्या के समुद्र गुरु तथा अविद्या का नाश करने वाली अध्यात्म विद्या, इनके द्वारा जब अविद्या का भाग नष्ट हो जाता है तब आत्मतत्व प्रकाशित हो आता है, जब कुछ समय के अनन्तर अविद्या का आवरण दूर हो जाता है, तब स्वयं आत्मसाक्षात्कार करता है, जैसे वायु से बादल दूर होते हैं, नेत्रों से सूर्य को देखता है, जैसे किसी के हाथ को स्याही लगे, वह मिट्टी और पानी के साथ धोने से दूर होती है, क्योंकि मैल से मैल दूर होती है, ऐसे ही हे मुनीश्वर! जब गुरु और शास्त्र के मेल से विचार होता है, तब विचार द्वारा स्वरूप की प्राप्ति होती है और द्वैत भ्रम मिट जाता है, सर्वत्र आत्मा भासता है, इतर कुछ नहीं, ऐसा निश्चय जहां होता है वहां से अविद्या भाग जाती है, हे मुनिवर! आत्मा की प्राप्ति में गुरु शास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं, क्योंकि जो वस्तु जिनके क्षय हुए प्राप्त होती हो वह अनेक विद्यमान रहते कैसे पायी जा सके, इन्द्रियों के समूह का नाम गुरु है और ब्रह्म सब इन्द्रियों से अतीत है, इनसे कैसे प्राप्त हो, अकारण है, परन्तु कारण भी है, क्योंकि गुरु शास्त्र के क्रम से अज्ञान की सिद्धता होती है, गुरु शास्त्र के बिना बोध की सिद्धता नहीं होती, आत्म प्राप्ति गुरु शास्त्र से होती है, अथवा न गुरु से होती है न शास्त्र से होती है किन्तु आत्म प्राप्ति अपने आप से होती है, जैसे अंधकार में रस पदार्थ पड़ा हो, दीपक प्रकाश कर दे, तो वह दीपक से प्राप्त हुआ मान जायेगा, अपने आप द्वारा प्राप्त हुआ माना जायेगा, जब दीपक हो और नेत्र न हों तो

कैसे प्राप्ति हो और दीपक न हो तो भी नहीं पदार्थ की प्राप्ति होती, जब दोनों हों तब पदार्थ की प्राप्ति होती है, ऐसे ही गुरु शास्त्र भी हों और अपना पुरुषार्थ तीक्ष्ण बुद्धि भी हो, तब आत्मतत्व की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती, गुरु शास्त्र और शुद्ध बुद्धि शिष्य को तीनों इकट्ठे मिलते हैं, तब संसार के सुख दुःख दूर होते हैं और आत्मपद की प्राप्ति होती है, गुरु शास्त्र द्वारा आवरण दूर हो जाता है तब स्वयंमेव अपने आपको पा लेता है, जैसे जब वायु बादल को दूर कर देता है तब नेत्रों से सूर्य दीखने लगता है। अब नाम के भेद सुनो। हे मुनीश्वर! जब बोध के वश से कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, क्षय हो जाते हैं, उनके पीछे जो शेष रहता है, उसका नाम संवित् तत्व आत्मसत्ता आदि नाम से कहा जाता है, जहां यह सम्पूर्ण नहीं, इनकी वृत्ति भी नहीं, उसके पीछे जो शेष सत्ता रहती है, वह आकाश से भी सूक्ष्म और निर्मल है, अनन्त है, परम शून्यरूप है, जहां शून्य का भी अभाव है हे मुनीश्वर! अब शान्तरूप जो है मुमुक्ष और जो मन कलना से संयुक्त है, उनकी जीवन मुक्ति पद के बोध के निमित्त शास्त्र मोक्षोपाय रचे हैं, उनमें मैंने यह तीन नाम कहे हैं, चेतन ब्रह्म, शिव, आत्मा, परमात्मा ईश्वर सत् चित् आनन्द आदिक संज्ञाएँ अनेक कही हैं, शिव आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिक भिन्न भिन्न नाम शास्त्र विकारों ने कल्पित किये हैं और ज्ञानी को कुछ भेद नहीं, हे मुनीश्वर! ऐसा जो देव है, उसका ज्ञानवान् इस प्रकार अर्चन करते हैं, जिस पद के हमारे जैसे सेवक हैं, उस परम पद को प्राप्त होते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे भगवन्! यह जगत् सब अविद्यमान है और विद्यमान की नाईं स्थित है वह कैसे हुआ है, इस बात को पूर्णरूप से आप ही कह सकते हो, भगवान् बोले–हे मुनिवर! जो ब्रह्म आदि नामों से पुकारा जाता है, वह शुद्ध केवल संवित् मात्र है, आकाश से भी सूक्ष्म है, जिससे आकाश भी ऐसा स्थूल जैसा होता है, अणु के आगे सुमेरु स्थल होता है, उसमें जब वेदना शक्ति आभास होकर फुरी तब उसका नाम चेतन हुआ, फिर अहंता भाव को प्राप्त हुआ, जो अहं अस्मि, जैसे स्वप्न में पुरुष अपने

को हस्ती देखे, ऐसे अपने आपको अहं मानने लगा, तदनन्तर देशकाल आकाश आदिक देखने लगा, तब चेतना कला जीव अवस्था को प्राप्त हुई और वासना करने वाली बनी, जब जीव भाव हुआ, तब बुद्धि निश्चयात्मक होकर स्थित हुई, शब्द और क्रिया ज्ञान संयुक्त हुई एक साथ मिलकर शीघ्र ही कल्पित हुई, तब मन हुआ, जो मन संकल्प रूपी भाषा का बीज है, तब अन्तवाहक शरीर में आत्मस्वरूप होकर ब्रह्मसत्ता स्थित हुई, इस प्रकार यह उत्पन्न हुई है, पुनः वायुसत्ता स्पन्दित हुई, उसने स्पर्श सत्ता त्वचा प्रगट हुई, पुनः तेजः सत्ता उत्पन्न हुई, उससे प्रकाशसत्ता हुई, प्रकाश से नेत्र सत्ता प्रकट हुई, पुनः जलसत्ता जल से स्वाद सत्ता, स्वाद से रससत्ता, उससे जिह्वा प्रकट हुई, पुनः गन्धसत्ता गंध से भूमिसत्ता भूमि से, घ्राणसत्ता पिंडसत्ता प्रगट हुई, देश सत्ता कालसत्ता हुई, सर्वसत्ता इनको इकट्ठा करके फुरी, जैसे बीज पत्र फूल फलादिक का आश्रय होता है, ऐसे यह पुर्यष्टका जानो, यही अन्तवाहक देह है। वास्तव में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, परमात्मसत्ता अपने आप में फुरती है, जैसे जल में जल फुरता है, ऐसे आत्मसत्ता अपने आप में फुरती है, हे मुनीश्वर! संवित् में जो संवेदन पृथक रूप होकर फिरे उसको करके जब स्वरूप को जाना, तब नष्ट हो जाती है, जैसे संकल्प का रचा नगर संकल्प के अभाव हुए अभावरूप हो जाता है, ऐसे आत्मा के ज्ञान से संवेदन का अभाव हो जाता है, हे मुनीश्वर! संवेदन तब भासता है, जब तक इसको जाना नहीं, जानता तब है जब संवेदन का अभाव हो जाता है, संवित् में लीन हो जाती है, भिन्न सत्ता इसकी कुछ नहीं रहती, हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी, वह भावना के वश से स्थूल देह को प्राप्त हुई है, स्थूल देह होकर भासने लगी, आगे जैसे जैसे देशकाल पदार्थ की भावना हुई, ऐसे ऐसे भासने लगे, जैसे गन्धर्व नगर भासता है, जैसे स्वप्नपुर भासता है, ऐसे भावना के वश से यह पदार्थ भासने लगे हैं, वसिष्ठजी बोले—हे भगवन्! गंधर्व नगर और स्वप्नपुर के समान इसको कैसे कहते हो, यह जगत् तो प्रत्यक्ष देखने में आता है, भगवान् बोले—हे

मुनिवर! संसार दुःख इसको वासना के वश से दीखता है, क्योंकि स्वरूप के प्रमाद से अविद्यमान में विद्यमान बुद्धि हुई है, जगत् के पदार्थ को सत् जानकर जो वासना फुरती है उस वासना से दुःख होता है, हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है, जैसे मृगतृष्णा का जल असत्य होता है, ऐसे यह जगत् असत्य है, उसमें वासना और वासक तथा वासना करने योग्य यह तीनों वृथा हैं, जैसे मृगतृष्णा का जल पान करने से तृप्त कोई नहीं होता, क्योंकि जल ही असत् है, ऐसे यह जगत् ही असत् है, इसके पदार्थ की वासना करनी वृथा है, ब्रह्मा से लेकर आदि क्रम पर्यन्त सब जगत् मिथ्यारूप है, वासना वासक वासना करने योग्य पदार्थ इनके अभाव होने पर केवल आत्मतत्व रहता है, सब भ्रम शान्त हो जाता है, हे मुनीश्वर! यह जगत् भ्रान्तिमात्र है, वास्तव से कुछ नहीं, जैसे बालक को अज्ञान से अपनी परछाईं में वेताल भासता है, जब विचार करके देखे तो वेताल का अभाव हो जाता है, ऐसे अज्ञान से यह जगत् भासता है, आत्म विचार से इसका अभाव हो जाता है, जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है, जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है, ऐसे अज्ञान से आत्मा में देह भासता है, जिसकी देहादिक में स्थिर बुद्धि है, वह हमारे उपदेश के योग्य नहीं है, हे मुनीश्वर! जो विचारवान् हैं, उसको उपदेश करना योग्य हैं और जो मूर्ख भ्रमी है, असत्यवादी, सत्कर्म से रहित आर्जव से हीन है, उसको ज्ञानवान् उपदेश न करें, जिसमें विचार हो, वैराग्य हो कोमलता और शुभ आचार हो, उसको उपदेश करना योग्य है और जो इन गुणों से रहित विपरीत है, उसको उपदेश करना ऐसे वृथा है, जैसे किसी की महा सुन्दरा सोने के समान कान्तिवाली कन्या हो, उसको वह स्वप्न कल्पित पुरुष को देने की इच्छा हो, ऐसे ही अपात्र को उपदेश करना मूर्खता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जगन्मिथ्यात्व प्रतिपादनं नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

परमार्थविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे भगवन्! वह जीव जो आदि सर्ग से उत्पन्न हुआ और जिसने देह भ्रम को अपने साथ देखा, उसके अनन्तर कैसे स्थित हुआ? भगवान् बोले–हे मुनीश्वर! परमाकाश से उत्पन्न हुआ जैसे तुमको कहा है, उसने अपने साथ शरीर को देखा। स्वप्न नगर की नाईं सर्वगत चिद्घन आत्मा के आश्रय उत्पन्न होकर जीव ने शरीर को देखा, हे मुनीश्वर! आदि में जो जीव स्फुरण हुआ है और प्रमाद को नहीं प्राप्त हुआ, अपने स्वरूप ही अहंप्रत्यय रहा, इस कारण से ईश्वर होकर स्थित हुआ, इसको निश्चय रहा कि मैं सनातन हूँ, नित्य हूँ, शुद्ध परमानन्द स्वरूप हूँ, अव्यक्तरूप परम पुरुष हूँ, इस प्रकार आदि जीव का निश्चय रहा, आत्मा की अपेक्षा करके उसको जीव कहा है और सृष्टि जगत् की अपेक्षा करके उसको ईश्वर कहा है, हे मुनीश्वर! वह जो आदिजीव है, उसने कभी विष्णुरूप होकर नाभि कमल से ब्रह्मा को उत्पन्न किया है, किसी सृष्टि में प्रथम ब्रह्मा हुआ है, उससे विष्णु हुए, रुद्र हुए हैं, किसी सृष्टि में प्रथम रुद्र हुआ है, विष्णु ब्रह्मा उससे हुए हैं, चेतन आकाश में जैसा जैसा संकल्प फुरा है, ऐसा होकर स्थित हुआ है, आदिजीव ने उत्पन्न होकर जिस जिस प्रकार का संकल्प किया है ऐसा ऐसा होकर स्थित हुआ है, वास्तव से सब असत् रूप है, अज्ञान भ्रम से हुआ है, जैसे परछाईं में वेताल भासता है, ऐसे अज्ञान करके सत्‌रूप होकर भासताहै, आदि पुरुष से लेकर जो सृष्टि है, वह परमाकाश से एक निमेष से हुई है और उन्मेषमें लय हो जाती है, एक निमेष के प्रमाद से कल्पों के समूह व्यतीत होते हैं और परमाणु परमाणु में सृष्टि फुरती है, कल्प और महाकल्प उनमें भासते हैं, कई सृष्टियाँ परस्पर दीखती हैं, कई अन्योन्य अदृश्य रूप हैं, इसी प्रकार सृष्टि उसकी स्पंदकला में फुरी है, चमत्कार होता है और जब स्पंदकला स्वरूप की ओर जाती है, तब

लीन हो जाती है, जैसे स्वप्न का पर्वत जगने से लीन हो जाता है, ऐसे जाग्रत की सृष्टि अफुर हुए लीन हो जाती है, हे मुनीश्वर! जीव जीव के प्रति अपनी सृष्टि है, उन सृष्टियों को कोई देशकाल रोक नहीं सकता, क्योंकि अपने अपने संकल्प में स्थित हैं और आत्मा का चमत्कार है, जैसा फुरना फुरता है, ऐसा चमत्कार हो भासता है, हे मुनीश्वर! न कुछ उत्पन्न हुआ है, न कुछ नाश होता है, स्वतः चेतनतत्व अपने आप में चमकता है, जैसे स्वप्न नगर उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं, जैसे संकल्प का पहाड़ पैदा होकर मिट जाता है, ऐसे जगत् उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्न और संकल्प के पहाड़ को कोई नहीं रोक सकता, ऐसे अपनी अपनी सृष्टि को देशकाल रोक नहीं सकता, क्योंकि अन्यत्र इनका सद्भाव नहीं, इसलिये यह जगत् अपने अपने काल में सत्‌रूप हैं, आत्मा में सद्भाव नहीं, संकल्परूप है, हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्व से जीव ईश्वर फुरे हैं, ऐसे क्रम से फुरे हैं, रुद्र से लेकर वृक्ष पर्यन्त सब एक क्षण में उसी तत्व से फुर आये हैं, सुमेरु आदिक भी अपनी स्थिति में रोकते हैं, अन्य अणु को नहीं रोक सकते, क्योंकि वहां है ही नहीं, अतः आत्मा में सृष्टि आभा आभासरूप है, हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब जगत् मायामात्र है, भावना से भासता है, जब आत्मा का अभ्यास होता है तब भेद कल्पना मिट जाती है, केवल उपशमरूप शिव तत्व भासता है, हे मुनीश्वर! निमेष के अर्धभाग में भी प्रमाद होने से नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, सत् असत्‌रूप जगत् मनरूप विश्वकर्मा बनाता है, आत्मतत्व न दूर है न निकट है, न अधः है न ऊर्ध्व है, न पूर्व है, न पश्चिम है, सत् असत् के मध्य अनुभवरूप सबका ज्ञाता है, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों का वहां बल नहीं चल सकता, जैसे जल में अग्नि नहीं निकलता, हे मुनिवर! जो कुछ तुमने पूछा था, वह मैंने कहा है, उसमें चित्त को भले प्रकार से लगाना तुम्हारा कल्याण हो, अब हम अपना मनोवाञ्छित स्थान को जायेंगे, चलो पार्वती! अपने स्थान को चलें, हे रामजी! इस प्रकार जब ईश्वर ने कहा तब मैंने अर्घ्य पाद्य से पूजन किया, पार्वती

और गणों को साथ लेकर भगवान् आकाशमार्ग से चले गये, जब तक मुझे दृष्टि आते रहे तब तक मैं उनकी ओर देखता रहा, जब अदृश्य हो गये तब मैं अपने कुशासन पर बैठकर भगवान् के दिये हुए उपदेश पर विचार करने लगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमार्थविचारो नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

विश्रान्त्यागमन वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो कुछ मुझसे ईश्वर ने कहा, वह मैं आप भी जानता था और तुम भी जानते हो, यह जगत् भी असत् है, देखनेवाला भी असत् है, उस मायारूप जगत् में तुमको सत् क्या कहूँ और असत् क्या कहूँ? जैसे जल में द्रवता होती है, ऐसे आत्मा में जगत् है, जैसे पवन में स्पंद होता है, जैसे आकाश में शून्यता है, ऐसे आत्मा में जगत् है, हे रामजी! जो कुछ प्रवाहरूप से आकर प्राप्त होता है, उसमें मैं देव अर्चन करता हूँ, इस क्रम से में निर्वासनिक हूँ, जगत् की क्रिया में भी दुःखहीन होकर चेष्टा करता हूँ, व्यवहार करता दृष्टि आता हूँ, तो भी सदा शान्तिरूप हूँ, यथा प्राप्त आचाररूप पुष्पों से मैं आत्मदेव की अर्चना करता हूँ, छेद भेद मुझको कोई नहीं होता, हे रामजी! विषयों और इन्द्रियों का सम्बन्ध सब जीवों को तुल्य हैं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे सावधान रहते हैं, जो कुछ देखते , सुनते, बोलते, खाते, सूंघते, स्पर्श करते हैं, उससे आत्मतत्व की अर्चना करते हैं। आत्मा से इतर नहीं जानते, इस प्रकार सावधान रहते हैं और जो अज्ञानी हैं, उनको कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभिमान होता है, उससे दुःखी होते हैं, हे रामजी! तुम भी ऐसी दृष्टि को आश्रित होकर संसार वन में विचरो, निःसंग होकर ऐसा करने से

तुम्हें खेद न होगा, जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान हो गयी है उसको कितना बड़ा भी कष्ट आ पड़े, खेद नहीं होता, इस मेरी कही हुई दृष्टि का आश्रय करेगा, तब तुझे कोई कष्ट न होगा, हे रामजी! सुख दुःख धन बांधव का वियोग यह सब पदार्थ अनित्य हैं, आते भी हैं और जाते भी हैं, इनको आगमापयी जानकर विचरो, यह संसार विषमरूप है, एकरस कदाचित् नहीं रहता, इसको स्थिर जानकर दुःखी न होना। हे रामजी! समय के निरन्तर चलते रहने में व्यवहार सम्बन्धी अनुकूलता प्रतिकूलता बनती ही रहती है, परन्तु अनासक्ति से रहने वाले पर किसी का असर नहीं पड़ता, सांसारिक सब पदार्थ आगमापायी हैं, आते भी हैं और जाते भी हैं, इष्ट की प्राप्ति में और अनिष्ट की निवृत्ति में हर्षवान् न होना और अनिष्ट की प्राप्ति में इष्ट के वियोग में दुःखी न होना, समय जैसे आता है ऐसे चला जाता है, यह सुख दुःख प्रवाहरूप है, इनमें आस्था करके संतप्त नहीं होना चाहिये, हे रामजी! यह सब जगत् तू ही है और तू ही जगद्रूप है और चिन्मात्र विस्तृत आकार तू है, जब तू ही तब बार बार हर्षशोक किस निमित्त करता है, इसी दृष्टि का अवलम्बन लेकर जगत् में सुषुप्त की नाईं विचरो, तदनन्तर तुर्यातीत अवस्था को प्राप्त हो जाओगे जो सम है, प्रकाशरूप है, हे रामजी! जो कुछ मुझे तुम्हें कहना था, कह दिया है, आगे जो तुम्हारी इच्छा हो करो, तुमने पहिले पूछा था कि ब्रह्म अनन्त रूप में मैं कलंक कैसे प्राप्त हुआ, अब फिर यही प्रश्न करो मैं उत्तर दूँगा, रामजी बोले–हे मुनिवर! अब तो मुझको संशय ही कोई नहीं रहा, मेरे सब संशय निवृत्त हो गये हैं, जो कुछ जानने योग्य था, जान लिया है, अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तता को प्राप्त हुआ हूँ, हे मुनीश्वर! आत्मा में न मैल है, न द्वैत है, न एक है, कोई कल्पना नहीं, मुझे पूर्व अज्ञान था, तब मैंने पूछा था, अब तुम्हारे वचनों से मेरा अज्ञान नष्ट हुआ है, कोई कलंक नहीं भासता है, आत्मा में न जन्म है, न मृत्यु है सब ब्रह्म ही है, हे मुनीश्वर! प्रश्न संशय से उत्पन्न होता है, संशय मेरा नष्ट हो चुका है, जैसे यंत्री की पुतली हिलाने से रहित होने पर अचल होती है, ऐसे मैं संशय से रहित अचल चित्त स्थित हूँ, सब सारों का सार

मुझको प्राप्त हुआ है, जैसे सुमेरु अचल होता है, ऐसे अचल हूँ, कोई क्षोभ मुझको नहीं, ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागने योग्य हो और ऐसा भी कोई नहीं जो ग्रहण करने योग्य हो, न किसी पदार्थ की मुझे इच्छा है, न अनिच्छा है, शान्तरूप में स्थित हूँ, न स्वर्ग की मुझको कामना है, न नरक से मुझे द्वेष है, मुझको सर्व जगत् ब्रह्मरूप भासता है, मन्दराचल पर्वत की नाईं आत्मतत्व में स्थित हूँ, हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तु में वस्तु बुद्धि होती है और कलना कला हृदय में स्थित होती है, वह किसी का ग्रहण करता त्याग करता है और दीनता को प्राप्त होता है, हे मुनीश्वर! यह संसार महा समुद्ररूप है, रागद्वेषरूप इसमें कल्लोल हैं और शुभ अशुभरूप इसमें मत्स्य रहते हैं, ऐसे भयानक संसार समुद्र से अब मैं तुम्हारे प्रसाद से तर गया हूँ, सर्व सम्पत्ति के अन्त को प्राप्त हुआ हूँ, सब दुःख नष्ट हो गये हैं, सर्व सार को प्राप्त हुआ हूँ, अब पूर्ण आत्मरूप से स्थित हूँ, मैंने अदीन पद को प्राप्त किया है और परम शान्त अभेदसत्ता को प्राप्त हुआ हूँ, आशारूपी हस्ती को मैंने सिंह होकर माना है, आत्मा से इतर मुझको कुछ नहीं भासता, सब विकल्प जाल गलत हो गये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट हो गये हैं, दीनता जाती रही है, जगतत्रयी में मेरी जय है, सदा उदित रूप हूँ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्रान्त्यागमनवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ।।४३।।

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

चित्तसत्तासूचन वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! देह और इन्द्रियों से जो केवल करता है और मन में असंगता है, वह जो कुछ करता है, कुछ नहीं करता, जो कुछ इन्द्रियों से इष्ट प्राप्त होता है, वह क्षण मात्र सुख है, क्षणमात्र सुख के

लिये जो बन्धन में पड़े वह बालकवत् मूर्ख है, ज्ञानवान् उस बन्धन में नहीं पड़ता, हे रामजी! वांछा ही इसको दुःखी करती है, सुन्दर विषय की इच्छा करता है, उसकी प्राप्ति होती है, यत्न से और सुख मिलता है, क्षणिक, क्षणभर के बाद फिर वही वियोग दुःख देता है, इसलिये इनकी वांछा त्यागनी योग्य है, इनकी वांछा होती कब है? जब स्वरूप का अज्ञान होता है और देहादिक में अहंभाव और ममत्व होता है, जब देहादिक में अहंभाव होता है तब अनेक अनर्थों की प्राप्ति होती है, इसलिये हे रामजी! ज्ञानरूप पर्वत पर आरूढ़ हुए रहना चाहिये, अहंता के गड्ढे (गर्त) में नहीं गिरना चाहिये, जब दृश्यभाव को त्यागोगे तब अपनी स्वभाव सत्ता को प्राप्त होगा, हे रामजी! आत्मज्ञानरूप सुमेरु पर्वत है, उस पर चढ़ना और अभिमान के गर्त में गिरना बड़ी मूर्खता है, इसलिये गर्त में गिरना दृश्यभाव को त्यागकर स्वभाव सत्ता को प्राप्त करो, जो कि सम और शान्तरूप है, ऐसा करने से ही विकल्प जाल मिटेगा, समुद्रवत् पूर्ण होगा, परम सुख की प्राप्ति होगी, द्वैतरूप फुरणा कोई न फुरेगा, हे रामजी! जब अन्तर से विषयों को विष जाने तब मन भी नीरस हो जाता है, चित्त निस्संग हो जाता है, वास्तव से देखें तो सब में समानरूप से वही चिद्घन ब्रह्म स्थित है, उससे इतर जो कुछ द्वैत भासता है, वह सब स्वरूप के प्रमाद से भासता है, हे रामजी! आत्मा का अज्ञान ही बन्धनरूप है, आत्मा का बोध ही मुक्तिरूप है, इसलिये यत्न करके अपने आप को आप ही जगाओ, तब इस बन्धन से मुक्ति पाओगे। हे रामजी! ज़िसमें विषय का स्वान नहीं और जिसमें इनका अनुभव होता है, वह तत्व आकाशवत् निर्मल सत्ता वासना से रहित है, जो वासना से रहित होकर पुरुष कुछ क्रिया करता है, वह विकार को नहीं प्राप्त होता, यद्यपि अनेक क्षोभ आकर प्राप्त हों तो भी उसको कुछ विकार नहीं होता। ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय यह तीनों आत्मरूप भासते हैं, जब ऐसा जान लिया तब भय किसी का नहीं रहता। चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है, चित्त के स्फुरण रहित हुए लीन हो जाता है, जब वासना

सहित प्राण उदय होते हैं, तब जगत् उदय होता है, जब वासना सहित प्राण लीन होते हैं, तब जगत् लीन होता है, अभ्यास करके वासना और प्राणों को स्थित करो, जब मूर्खता उदय होती है, तब कर्म उदय होते हैं और मूर्खता के लीन हुए कर्म भी लीन होते हैं, इसलिये सत्संग और सच्छास्त्र के विचार से मूर्खता का नाश करो, जैसे वायु के संग से धूलि उड़कर बादल आकार होती है, ऐसे चित्त के फुरने से जगत् स्थित होता है, हे रामजी! जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् फुर आता है और चित्त शुद्ध हुए जगत्लीन हो जाता है, हे रामजी! वासना शान्त हो अथवा प्राणों का निरोध हो तब चित्त अचित्त हो जाता है, वासना के क्षय हुए अथवा प्राणों के रोकने से चित्त अचित्त हो जाता है, जब चित्त अचित्त हुआ तब परम पद की प्राप्ति हो जाती है, हे रामजी! दृश्य दर्शन सम्बन्ध के मध्य में जो सुख है, वह परमात्म सुख है, जो एकान्त का सुख है, वह संवित् ब्रह्मरूप है, उसके साक्षात्कार हुए मन क्षय हो जाता है, जहां चित्त नहीं उत्पन्न होता, वह चित्त से रहित अकृत्रिम सुख है, ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं, जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता, ऐसे चित्त सहित विषय के विष से सुख नहीं होता, चित्त के उपशम में जो सुख है, वह अवाच्य है वाणी से नहीं कहा जा सकता, उसके समान अन्य सुख कोई नहीं और उससे अधिक भी कोई नहीं, अन्य सुख नाश हो जाता है, आत्मसुख नाश नहीं होता, अविनाशी है, उत्पत्ति और नाश इन दोनों से रहित है, हे रामजी! अबोध करके चित्त का उदय होता है और आत्मबोध से शान्त हो जाता है, जैसे मोह से बालक को बेताल दिखाई देता है, मोह के नष्ट हुए बेताल नष्ट हो जाता है, ऐसे अज्ञान से चित्त उदय होता है, अज्ञान के नष्ट हुए चित्त नष्ट हो जाता है, जब विद्यमान भी चित्त भासता है तब भी बोध से निर्बीज होता है, जैसे लोहा पारस के साथ मिलकर स्वर्ण हो जाता है, आकार तो वही दृष्टि आता है, परन्तु लोहापन नहीं रहता, ऐसे अज्ञान से जगत् भासता है और ज्ञान से चित्त अचित्त हो जाता है और जड़ जगत् नहीं भासता है वही ब्रह्मसत्ता होकर

भासता है, सत्पद को प्राप्त होता है, परन्तु नामरूप ऐसे ही भासता है, हे रामजी! ज्ञानी का चित्त भी क्रिया करता दृष्टि आता है, परन्तु चित्त अचित्त हो जाता है, जो अज्ञान से भासता है, ज्ञान करके शून्य हो जाता है, जितना कुछ जगत् अबोध करके भासता था, वह बोध करके शान्त हो जाता है, फिर नहीं उत्पन्न होता, वह चित्त शान्त पद को प्राप्त होता है, कोई समय तो तुर्यावस्था में स्थित हुआ विचरता है, तदनन्तर तुर्यातीव पद को प्राप्त होता है, नीचे, ऊपर, मध्य, सब ब्रह्म ही सदा इस प्रकार अनेक होकर स्थित हुआ है, अनेक भ्रम करके भी एक ही है, सर्वात्मा ही है, अपर चित्तादिक कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चित्तसत्तासूचनवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

बिल्वोपाख्यान वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अब तू संक्षेप से एक आश्चर्यरूप बोध का कारण अज्ञान सुन, एक बेल फल है और अनन्त योजन पर्यन्त उसका विस्तार है और अनन्त युग बीत गये हैं, वह जर्जरीभाव को कदाचित् नहीं प्राप्त होता और अनादि है, उसमें अविनाशी रस है, कभी नाश नहीं होता, रस से पूर्ण है और चन्द्रमा की नाई सुन्दर है, महा प्रलय का वह पवन जो कि सुमेरु आदि पहाड़ों को तिनके के समान उड़ा ले जाता है, वह पवन भी इसको हिला नहीं सकता, हे रामजी! करोड़ों योजनों तक उसकी संख्या नहीं की जा सकती, ऐसा वह बेल फल है। पुनः कैसा है, बहुत बड़ा है, जैसे सुमेरु के निकट राई का दाना सूक्ष्म, तुच्छ भासता है, ऐसे उस बेल फल के आगे ब्रह्माण्ड सूक्ष्म तुच्छ भासता है, वह बेलफल रस से पूर्ण है, गिरता कभी नहीं और पुरातन है, उसके आदि अन्त मध्य

को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक भी नहीं जान सकते, न उसके मूल को कोई जान सकता है, न मध्य को कोई जान सकता है, अदृष्ट उसका आकार है और अदृष्ट फल है, अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है फिर कैसा है, एक घन है, आकार जिसका और जो सदा अचल है, किसी विकार को प्राप्त नहीं होती, सत् है, निर्मल निर्विकार निरन्तररूप है, नीरंध्र है और चन्द्रमा की नाईं शीतल सुन्दर है और अज्ञान संवित् रूपी उसमें रस है, वह अपना रस आप ही लेता है और सबको रस देने वाली वही है, सबका प्रकाश भी वही है, उसमें अनेकों चित्र रेखाओं ने आकर निवास किया हैं, परन्तु अपने स्वरूप को नहीं त्यागता, अनेक रूप होकर भासता है, उसमें स्पंदरूप रस फुरता है, तत्, त्वम्, इदम्, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत–भविष्यत्, काल, प्रकाश विद्या, अविद्या, इत्यादिक कलना जाल इसने फुरने से फुरते हैं, वह बिम्ब आत्मरूप है, अनुभवरूप उसमें रस है, वह सदा अपने आप में स्थित नित्य शान्त रूप है, उसको जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विल्वोपाख्याने
नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ।।४५।।

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६
शिलाकोशोपदेश वर्णनम् ।

रामजी बोले–हे सर्व धर्मों के वेत्ता भगवन्! आपने जो यह बेलरूप महाचिद्घन सत्ता कही है, उससे मुझे ऐसा निश्चय हुआ है कि इस स्थूलरूप अहंतादि जगत् में और सूक्ष्म चेतन तत्व में भेद किंचित् भी नहीं है, द्वैत, एक कलना सब वही है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे ब्रह्माण्ड की मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है, इसी प्रकार चेतन दिल की मज्जा यह ब्रह्माण्ड है, सब जगत् चेतन बेलरूप है, इतर कुछ नहीं, उस

सर्व जगत् चेतन का विनाश असंभव है, हे रामजी! चेतनरूप मिर्च बीज है, उसमें जगत्‌रूप चमत्कार तीक्ष्णता है, वह सुषुप्तवत् निर्मल है, शिला के अन्तरवत् अमिश्रित है, हे रामजी! अब अपर आश्चर्यरूप आख्यान सुन, चन्द्रवत् महासुन्दर प्रकाश और स्निग्ध शीतल स्पर्श है तथा विस्तृतरूप शिला है, महानीरन्ध्र है, घनरूप है, उसमें कमल उत्पन्न होते हैं, उसकी बल्ली ऊपर है, मूल नीचे हैं, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ऐसे तुम जानते हो और देखा भी है, परन्तु ऐसी सब उसके अन्तर हैं, जो शिला मैं कहता हूँ, वह अपूर्व शिला है, उसके अन्तर ब्रह्माण्डों के समूह हैं और कुछ भी नहीं, हे रामजी! चेतनरूप शिला मैंने तुमको कही, उसमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड है, वह घन चेतनता के रूप में शिला वर्णन की है, अनन्त घन है और नीरन्ध्र है, वह परब्रह्म आकाशवत् शिला है, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियाँ, समुद्र इत्यादि सब ही विश्व इस शिला के अन्तर स्थित है और कुछ नहीं है, जैसे शिला के ऊपर कमल लिखे होते हैं, वह शिलारूप हैं, शिला से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् आत्मरूप शिला में है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान जो तीनों काल हैं, वे उस शिला की पुतलियां है, जैसे शिल्पी पुतलियों की कल्पना करता है कि इतनी पुतलियाँ इस शिला से निकलें, ऐसे यह जगत् आत्मा में है, उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि जो मनरूप शिल्पी कामना करता है, उससे नाना प्रकार का जगत् भासता है, आत्मा में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे सुषुप्तिरूप शिला के ऊपर कमल रेखा लिखी होती है—वह शिला से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् आत्मा में है, आत्मा से भिन्न नहीं, जैसे शिला में पुतली होती है, वह न उदय न अस्त होती है, ज्यों की त्यों शिला है, ऐसे आत्मा में जगत् न उदय न अस्त होता है, क्योंकि वास्तव कुछ नहीं और आत्मा से इतर जो कुछ द्वैत कल्पना होती है, वह अज्ञान से भासती है, बोध हो जाने पर शान्त हो जाती है, जैसे जल बिन्दु समुद्र में पड़ा समुद्ररूप हो जाता है, ऐसे बोध से कल्पना आत्मा में लीन हो जाती है, हे रामजी! चेतन आत्मा अनन्त है, उसमें विकार कल्पना कोई

नहीं, अज्ञान से कल्पना भासती है, ज्ञान करके लीन हो जाती है, विकार भी आत्मा के आश्रय भासते हैं और आत्मा निर्विकार है, ब्रह्म से विकार उत्पन्न होते हैं और ब्रह्म ही में स्थित है और वास्तव से हुए ही नहीं, सब आभासमात्र है, जैसे किरणों में जलाभास होता है ऐसे ब्रह्मम जगद्विकार आभास होता है, जैसे बीज में वृक्ष होता है, पत्र टास फूल फल का विस्तार एक ही बीज के अन्दर होता है और बीज सत्ता सब में अनुस्यूत होती है, बीज से इतर कुछ नहीं होता, ऐसे चिद्घन आत्मा के अन्तर (अन्दर) जगद्विस्तार है, वह चिद्घन आत्मा से इतर कुछ नहीं, वही अपने आप में स्थित है और जगत् भी वही रूप है, जब एक माने तब द्वैत भी होता है, जब एक कहना भी नहीं, तब द्वैत कहाँ हो? जगत् और आत्मा में भेद कुछ नहीं आत्मा ही अद्वैत अपने आप में स्थित है, जैसे शिला में मूर्ति लिखी होती है, वह शिलारूप है, ऐसे यह जगत् आत्मरूप है, जैसे शिला में भिन्न भिन्न विषमरूप मूर्तियाँ होती हैं, आधाररूप शिला अभिन्न है ऐसे आत्मा में जगन्मूर्तियां भिन्न भिन्न विषमरूप भासती हैं और आधार चेतन अभिन्न है, ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् सम स्थित है, बड़े विकार भी उसमें दृष्टि आते हैं, परन्तु वस्तुतः सुषुप्तवत् विकार से रहित स्थित हैं, फुरने से रहित चेतन शिला स्थित हैं, उस नित्य शान्त चिद्घन रूप सत्ता में यह जगत् कल्पित है, अधिष्ठान सत्ता सदा सर्वदा शान्तरूप है, कदाचित् भेद को नहीं प्राप्त होती, जैसे जल में तरंग अभिन्नरूप हैं, जैसे स्वर्ण में भूषण अभिन्नरूप हैं, ऐसे आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे शिलाकोशोपदेशवर्णनं नाम षट् चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

सत्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे बीज के अन्दर फूल फल सहित वृक्ष सम्पूर्ण होता है, वह आदि में भी बीज है और अन्त में भी बीज है, जब फल परिपक्व होता है तब बीज ही होता है, ऐसे आत्मा भी जगत् में है, परन्तु सदा अच्युत है और सम है कदाचित् भेद विकार परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ, अपनी सत्ता से स्थित है, जगत् के आदिभी वही है,मध्य में भी वही है, कुछ अपरभाव को प्राप्त नहीं हुआ, देश, काल कर्म आदिक जितनी कलना भासती है, वही रूप है, जितने शब्द और अर्थ हैं, आत्मा से भिन्न नहीं होते, जैसे वृक्ष के आदि भी बीज है, अन्त में भी बीज है, मध्य में जो कुछ विस्तार भासता है, वह भी वही रूप है, भिन्न कुछ नहीं, ऐसे ही जगत् के आदि भी आत्मसत्ता है, अन्त में भी आत्मसत्ता है, मध्य में जो कुछ भासता है, वह भी वही रूप है, हे रामजी! चेतनरूप महान् आदर्श है, उसमें सम्पूर्ण जगत् प्रतिबिंबित होता है और सम्पूर्ण जगत् संकल्प मात्र है, जैसा जैसा किसी में फुरना दृढ़ होता है, ऐसा ऐसा ही आत्मसत्ता के आश्रित होकर भासता है, जैसे चिंतामणि में जैसा कोई संकल्प धारण करे, ऐसा ही प्रकट होता है, वह संकल्प मात्र ही होता है, जैसी जैसी भावना कोई करता है, ऐसी ऐसी आत्मा के आश्रित होकर भासती है, अनन्तजगत् आत्मरूप मणि के स्थित होते हैं, जैसी कोई भावना करता है, ऐसी ही उसको हो भासती है, हे रामजी! आत्मरूप डिब्बा है, इससे जगत्‌रूप रत्न मोती पन्ने निकलते हैं, जैसा फुरना होता है, ऐसा जगत् भास आता है, जैसे शिला के अन्तर (अन्दर) रेखा होती है, वह नानारूप से भासती है, ऐसे आत्मा में जगत् अनन्यरूप है, जैसे शिला के अन्तर (अन्दर) शंख चक्रादिक रेखा भासती है, ऐसे यह जगत् आत्मा में भासता है, आत्मरूप

है, आत्मरूप शिला नीरन्ध्र है, उसमें छिद्र कोई नहीं, जैसे जल में तरंग जलरूप होते हैं, ऐसे ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है, वह ब्रह्म कैसा है? सम है, शान्तरूप है, सुषुप्तवत् स्थित है, उसमें जगत् कुछ फुरा नहीं, शिला की रेखावत् है, जैसे बिल के अन्तर मज्जा स्थित होती है, ऐसे ब्रह्म में जगत् स्थित है, जैसे आकाश में शून्यता होती है, जैसे जल में द्रवता होती है, जैसे वायु में स्पन्दता होती है, ऐसे ब्रह्म में जगत् है, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, जैसे तरु और वृक्ष में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, ब्रह्म ही जगत् है, जगत् ही ब्रह्म है, हे रामजी! भाव अभाव भेद कल्पना कोई नहीं, ब्रह्मसत्ता ही प्रकाशित होती है, ब्रह्मसत्ता ही जगद्रूप होकर भासती है, जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणें जलरूप होकर भासती है, ऐसे ब्रह्म जगद् रूप होकर भासता है, हे रामजी! सुमेरु आदि पर्वत और तृण वन और चित्त जगत् देखिये तो परमसत्ता ही भासती है, समपदार्थ में स्थूल और सूक्ष्मभाव से वही सत्ता व्यापी है, जैसे जल का रस वनस्पति में व्यापा हुआ है, ऐसे सब जगत् में सूक्ष्मता करके आत्मसत्ता व्यापी हुई है, जैसे एक ही रस सत्ता वृक्ष तृण गुच्छों में व्यापी हुई है और एक ही अनेकरूप होकर भासती है, ऐसे एक ही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है, हे रामजी! जैसे मोर के अंडे में अनेक रंग होते हैं, जब वह फूटता है तब शनैः शनैः अनेक रंग उससे प्रकट होते हैं, वह एक ही रस अनेकरूप होकर भासता है, ऐसे एक ही आत्मा अनेक रूप जगत् रस होकर भासती है, जैसे मोर के अंडे में एक ही रस होता है, परन्तु जो दीर्घ सूत्री अज्ञानी है, उसको भविष्यत् में अनेक रंग उसमें भासते हैं, बिना उत्पन्न हुए ही उत्पन्न हुए भासते हैं, ऐसे यह न उत्पन्न हुआ ही जगत् नानात्व अज्ञानी के हृदय में स्थित होता है और जो ज्ञानवान् हैं, उनको एकरस ब्रह्मसत्ता भासती है, जैसे मोर का रस परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ एकरस है और जब परिणाम को प्राप्त होकर नानारूप हुआ तब भी एकरस है, ऐसे यह जगत् परमात्मा में गुह्य है, तो भी परमात्मा ही है और जब नानारूप होकर भासता है तो भी

वही है, परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु अज्ञानी को नानात्व भासता है, ज्ञानवान् को एक सत्ता भासती है, अथवा इस दृष्टान्त का दूसरा अर्थ है, जैसे मयूराण्डम नानात्व कुछ हुआ नहीं, जिसको दिव्यदृष्टि है, उसको उसमें अनुत्पन्न नानात्व भासता है और जिसको दिव्यदृष्टि नहीं उसको बीज ही भासता है, नानात्व नहीं भासता, जैसे जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है, उनको अन्न उपजा जगत् नानात्व हो भासता है और जो अज्ञानदृष्टि से रहित हैं उनको एक ही ब्रह्म भासता है, अपर कुछ नहीं भासता, हे रामजी! नानात्व भासता है, तो भी नानात्व है नहीं, जैसे मयूराण्ड में नाना रंग भासते हैं, तो भी एकरूप है, ऐसे यह जगत् भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, तो भी एक ब्रह्मसत्ता है, द्वैत कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सत्तोपदेश वर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ।।४७।।

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

ब्रह्मैकताप्रतिपादम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे अनुत्पन्न कान्ति और रंग मयूराण्ड में होते हैं, वह बीज से इतर कुछ नहीं, ऐसे अहम्, त्वम् आदिक जगत् आत्मा में अनुदय ही उदयरूप हो भासता है, जैसे बीज में उन रंगों का उदय भी अनुदयरूप है, ऐसे आत्मा में जगत् का उदय भी अनुदयरूप है और आत्मसत्ता अशब्द पद है, वाणी से कुछ कहा नहीं जाता, ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख आत्मा में स्थित होकर पाता है, हे रामजी! आत्मा में विश्रान्ति पाने के लिये मुनीश्वर, देवतागण, सिद्ध, महर्षि दृश्य दर्शन सम्बन्ध फुरणे को त्यागकर स्थित होते हैं, इसलिये उत्तम सुख है, संवित् में जो संवदन का फुरना है, वह जिनका निवृत्त हुआ है, उसका जिन्होंने त्याग किया है, उन पुरुषों को दृश्य भावना कोई नहीं

फुरती, न कोई उनको कर्म स्पर्श करता है और प्राण भी उनके निस्पंद होते हैं, चित्त चेतन के सम्बन्ध से रहित चित्र की मूर्तिवत् स्थित होते हैं और शान्तरूप स्थित होते हैं, हे रामजी! जब चित्त कला फुरती है, तब इसको संसार भ्रम प्राप्त होता है और जब चित्त का फुरना मिट जाता है, तब यह शान्तरूप अद्वैत स्थित होता है, जैसे राजा की सेना युद्ध करती है, जीत हार राजा की होती है, ऐसे चित्त के फुरणे द्वारा आत्मा में बध मोक्ष होता है, यद्यपि आत्मा सत्‌रूप अच्युत है, परन्तु मन बुद्धि अन्तःकरण द्वारा आत्मा में बन्ध मोक्ष भासता है, आत्मा सबका प्रकाशक है, जैसे चन्द्रमा की चांदनी वृक्षादिक को प्रकाशित करती है, ऐसे आत्मा प्रत्येक पदार्थ को प्रकाशित करता है, वह कैसा है? न दृश्य है, न उपदेश का विषय है, न विस्ताररूप है न दूर है, केवल अनुभव चेतनरूप आत्मा से सिद्ध है, न देह है न इन्द्रिय है, न चित्त है, न वासना है, न जीव है, न स्पन्द है, न अपर को स्पर्श करता है, न आकाश है, न सत् है, न असत् है, न मध्य है, न शून्य है, न अशून्य है, न देशकाल वस्तु है, न अहं है न इतर है, इत्यादिक सर्व शब्दों से रहित हृदय स्थान में प्रकाशित होता है, अनुभवरूप है, उसका न आदि है, न अन्त है, उसे न शस्त्र काट सकते हैं न आग जला सकती है, न जल गला सकता है, न यह है, न वह है, न वायु सुखा सकता है, अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं कि उसकी किसी प्रकार हानि कर सके, वह चित्तरूप आत्मतत्व है, न जन्मता न मरता है, देहरूप घट कई उत्पन्न होते हैं और कई नष्ट होते हैं, आत्मरूप आकाश सबके अन्दर बाहिर अखंड अविनाशी है, जैसे अनेक घट में एक ही आकाश स्थित होता है, ऐसे अनेको पदार्थों में एक ही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप से स्थित है, हे रामजी! जितना स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है सब ब्रह्मरूप है, कैसा ब्रह्म है? निधर्म निर्गुण निरवयव, निराकार है, निर्मल निर्विकार है, आदि अन्त से सम शान्तरूप है, ऐसी दृष्टि जिसमें हो ऐसी स्थिति तुम भी प्राप्त करो, हे रामजी! इस दृष्टि को आश्रय बनाओगे

तो बड़े आरंभ कार्य भी तुमको स्पर्श न करेंगे, जैसे आकाश को बादल स्पर्श नहीं करते हैं, ऐसे तुमको कर्म न कर सकेंगे, काल क्रिया कारण कार्य जन्म स्थिति संहार आदिक जो संसरणरूप संसार है वह सब ब्रह्मरूप है, इसी दृष्टि को आश्रय करके विचरो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ब्रह्मकताप्रतिपादनवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ।।४८।।

एकोनपंचाशः सर्गः ४९

संसृतिविचारयोगवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! जब प्रत्यक् ब्रह्म में कोई विकार नहीं, तब भाव अभावरूप जगत् किससे भासता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! पहिले यह सुनो कि विकार किसको कहते हैं, जो वस्तु अपने पूर्वरूप को त्यागकर विपरीतरूप को प्राप्त हो और पुनः पूर्वरूप को प्राप्त न हो उसको विकार कहते हैं, जैसे दूध से दही होता है, वह फिर दूध नहीं होता और जैसे बालक अवस्था बीत जाती है, फिर नहीं आती, युवा अवस्था भी बीत कर वापिस नहीं आती, इसका नाम विकार है, ब्रह्म निर्मल है, आदि निर्विकार है, अन्त निर्विकार है, मध्य में जो उसमें कुछ विकार मल भासता है, वह अज्ञान से भासता है, मध्य में भी ब्रह्म अविकारी ज्यों का त्यों है, हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप हो जाता है, वह फिर अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों अद्वैतरूप आत्मानुभव से प्रकाशित होती है, जो कभी अन्यथारूप को प्राप्त न हो उसको विकार कैसे कहें, हे रामजी! जो वस्तु विचार और ज्ञान द्वारा निवृत्त हो जाती है, उसको भ्रममात्र जानना चाहिये, वह वास्तव में कुछ नहीं, जितने विकार हैं, सब अज्ञान से भासते हैं, जब आत्मबोध होता है तब निवृत्त हो जाते हैं, जिसके बोध से विकार नष्ट हो जाते हैं उसको विकारी कैसे कहा जा सकता है, जो ब्रह्मशब्द से कहा

जाता है, वह निर्वेदरूप आत्मा है जो आदि अन्त में सत् हो उसे मध्य में भी जानिये कि सत् है, इससे इतर हो तो अज्ञानरूप जानिये। आत्मरूप सदा सर्वदा यमरूप है, आकाश पवन भी अन्यभाव को प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु आत्मतत्व कभी अन्यभाव को प्राप्त नहीं होता, प्रकाशरूप है, एक है, नित्य है, निर्विकार है, ईश्वर है, भाव अभाव विकार को कभी प्राप्त नहीं होता, रामजी बोले–हे भगवन्! विद्यमान एक तत्व है, वह ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है, उस संवित् ब्रह्म में यह अविद्या कहां से आई है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह सब ब्रह्म है, आगे भी ब्रह्म था, पीछे भी ब्रह्म होगा, उस निर्विकार आदि अन्त से रहित ब्रह्म में अविद्या कोई नहीं, यह निश्चित है, उसको वाच्य वाचक कर्म से उपदेश के निमित्त ब्रह्म कहा जाता है, उसमें अविद्या कहाँ है, हे रामजी! अहं त्वम् आदिक जगत् अग्नि वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है, अपर अविद्या किंचिन्मात्र भी नहीं, जिसका नाम ही अविद्या है उसको केवल भ्रममात्र असत् जानिये, जो विद्यमान नहीं उसको नाम कोई क्या कहे, रामजी बोले–हे भगवन्! उपशम प्रकरण में तुमने क्यों कहा कि अविद्या है अब इस प्रकार कैसे कहते हो? कि विद्यमान नहीं है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इतने समय तक तुम अबोध थे, इसलिये मैंने तुम्हें युक्ति कही थी और अब तू प्रबुद्ध हुआ है, तब मैंने कहा अविद्या अविद्यमान् है, हे रामजी! अविद्या और जीवजगत् आदिक का क्रम अप्रबुद्ध को जगाने के लिये वेद वाणी ने वर्णन किया है, जब तक मन अप्रबुद्ध होता है, तब तक इसको अविद्या भ्रम है, बिना युक्ति के अनेक उपाय करने से भी बोधवान् कभी नहीं होता, जब बोधवान् होता है, तब सिद्धान्त के उपदेश से बिना युक्ति पा लेता है, अप्रबुद्ध मन बिना युक्ति नहीं पा सकता, हे रामजी! जो कार्य युक्ति से सिद्ध होता है, अन्य यत्न से नहीं हो सकता, जैसे अन्धकार युक्तिरूप दीपक से दूर होता है, दूसरे यत्न से नहीं हो सकता, अप्रबुद्ध को सम्पूर्ण ब्रह्मसिद्धान्त का उपदेश करना भी व्यर्थ होता है, जैसे कोई दुःखी अपना दुःख स्थान के आगे कहे तो वह उसका कहा नहीं सुनता,

किन्तु उसका कहना ही वृथा होता है, ऐसे अप्रबुद्ध को सर्व ब्रह्म का उपदेश व्यर्थ होता है, इसलिये मूढ को युक्ति से जगाया जाता है और बोधवान् को प्रत्यक्ष तत्व का उपदेश किया जाता है, हे रामजी! इतने समय तुम अप्रबोध थे, इसलिये मैंने तुम्हें नाना प्रकार की युक्तियों से जगाया है, अब तुम जगे हो, जब मैंने तुम्हें प्रत्यक्ष तत्त्व का उपदेश किया है। हे रामजी! अब तुम ऐसी भावना करो कि मैं ब्रह्म हूँ, यह तीनों जगत् ब्रह्म हैं, अहम् त्वम् आदिक सब ब्रह्म हैं द्वैत कल्पना कुछ नहीं ऐसी भावना करके जो तेरी इच्छा हो कर, इस प्रकार स्वरूप स्थित होकर सब व्यवहार करता हुआ भी किसी कार्य में भी लिप्त न होगा, हे रामजी! वह चेतन रूप परमात्मा प्रकाशमय है वह सदा अहंभाव से फुरता है, ऐसा जो अनुभवरूप है, चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टा करते उसीमें स्थित रहो, तब तेरा अहंभाव मनभाव निवृत्त होगा, अवेदन जो शान्तरूप ब्रह्म सर्व भूतों में स्थित है, उसको प्राप्त होगा, तब अपने आपको आदि अन्त से रहित प्रकाशरूप देखेगा, आत्म को शुद्ध संवित्मात्र देखेगा, जैसे मृत्तिका के पात्र टिंड, दोली, घट आदि सब मृत्तिका का अपना आप है, ऐसे तुम सर्व भूतात्मा को देखोगे, जैसे मृत्तिका से घट भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा से जगत् भिन्न नहीं, जैसे वायु और स्पन्द भिन्न नहीं, जल से तरंग भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा से प्रकृति भिन्न नहीं, जैसे जल और तरंग शब्द मात्र ही हैं, ऐसे आत्मा और प्रकृति शब्दमात्र दो हैं, भेद भाव कुछ नहीं, अज्ञान से भेद भासता है, ज्ञान से नष्ट हो जाता है, जैसे रस्सी में सर्प भासता है, ऐसे आत्मा में प्रकृति है, हे रामजी! चित्तरूप वृक्ष है और कल्पना रूप बीज है, जब कल्पनारूप बीज बोया जाता है, तब चित्तरूप अंकुर उत्पन्न होता है, उससे भावरूप संसार उत्पन्न होता है, जब आत्म ज्ञान से कल्पनारूप बीज दग्ध होता है, तब चित्तरूप अंकुर नष्ट हो जाता है, हे रामजी! चित्तरूप अंकुर से सुख दु:खरूप वृक्ष उत्पन्न होता है, जब चित्तरूप अंकुर नष्ट हो जाय तब सुख दु:खरूप वृक्ष कहाँ उत्पन्न हो, हे रामजी! जितना द्वैत भ्रम है वह अबोध

से उत्पन्न होता है बोध से नष्ट हो जाता है, आत्मा परमार्थ का सार है उसकी भावना करो, संसार भ्रम से मुक्त हो जाओगो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेसंसृतिविचार योगवर्णनं नामैकोन पञ्चाशः सर्गः ।।४९।।

पञ्चाशः सर्गः ५०

अक्षसंवेदनविचारवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे मुनीश्वर! जो कुछ जानने योग्य था मैंने जान लिया है और देखने योग्य को देख लिया है, अब मैं तुम्हारे ज्ञानरूप अमृत के सिंचन से पूर्णात्मारूप से परम पद में स्थित हुआ हूं, हे मुनीश्वर! पूर्ण ने सब विश्व को पूर्ण किया है, पूर्ण से पूर्णता निश्चित हुई है, पूर्ण में पूर्ण सही स्थित है, अन्य द्वैत कुछ नहीं, यह मुझको अब अनुभव हुआ है, हे मुनिवर! ऐसा जानकर लीला के निमित्त और बोध बुद्धि के लिये आपसे पूछता हूँ, जैसे बालक पिता से जब पूछता है तब पिता उद्वेग नहीं करता ऐसे ही आप भी उद्वेग न होना, हे मुनीश्वर! श्रवण, नेत्र, त्वक् (चा) रसना, घ्राण, पांचों इन्द्रिय प्रत्यक्ष दृष्टि आते हैं, जब यह मर जाता है, उस समय विषयों को ग्रहण क्यों नहीं करते, जीवित अवस्था में कैसे ग्रहण करते थे, अब मृतावस्था में क्यों ग्रहण नहीं करते और घटादि की नाईं जड बाह्य स्थित है, अन्तर इनका अनुभव कैसे होता है, लोहे की शलकावत् यह भिन्न भिन्न है, इनका इकट्ठा होना कैसे हुआ, परस्पर जो एकात्मता से अनुभव होता है मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, इत्यादिक इकट्ठी वृत्ति क्यों कर हुई है, मैं सामान्यरूप से जानता हूं, परन्तु विशेष के लिये आपसे पूछता हूं, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इन्द्रिय और चित्त और घट पट आदिक पदार्थ हैं वह निर्मल चेतनरूप आत्मा से भिन्न नहीं आत्मतत्व आकाश से भी सूक्ष्म स्वच्छ है, हे रामजी! जब चेतन तत्व से चेत्यता पूर्यष्टका की भावना फुरी है तब आगे इन्द्रिय गण सहित उसने

देखा तब चित्त के आगे इन्द्रियगण हुए हैं, इनकी घनता चेतन तत्व पुर्यष्टका भाव को प्राप्त हुआ है, इसमें सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिंबित हुए पर्यष्टा में भासते हैं, रामजी बोले–हे मुनीश्वर! अनन्त जगत् जो रचे हैं और महा आदर्श में प्रतिबिंबित हैं, उस पुर्यष्टका क्या रूप है और किस प्रकार हुई है, वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि अन्त से रहित जो जगत् का बीजरूप अनादिब्रह्म है, वह निरामय है और प्रकाश रूप है, कल्पना से रहित जो जगत् का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, कलना से रहित शुद्ध चिन्मात्र अचेतन है, वह सब कलना के सन्मुख हुआ तब उसको जीव कहा, उस जीव ने देह को चेता जब अहंभाव फुरा तब अहंकार हुआ, जब मनन करने लगा तब मन हुआ, जब निश्चय करने लगा तब बुद्धि हुई और जब परमात्मा के देखनेवाली इन्द्रियों की भावना हुई, तब इन्द्रिय हुए, जब देह की भावना करने लगा तब देह हुई, जब घट पट की भावना हुई तब घट पट हुए, इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गयी, ऐसे ही पदार्थ होते गये, हे रामजी! यह स्वभाव जिसका है, उसको पुर्यष्टका कहते हैं, स्वरूप से विपर्यय रूप जो दृश्य की ओर भावना हुई है और कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दुःख आदिक की भावना कलना अभिमान जो चित्तकला में हुआ, इससे उसको जीव कहते हैं, जैसी जैसी भावना का आकार हुआ, ऐसी ऐसी वासना करने लगा, जैसे जल में सिंचा बीज टास पत्र फूल भाव को प्राप्त होता है, ऐसे वासना से सिंचा हुआ स्वरूप के प्रमाद से महाभ्रम ज़ाल में गिरता है, ऐसे जानता है कि मैं मनुष्य देह सहित हूँ, अथवा देवता हूँ, स्थावर हूँ, इत्यादिक देह को पाकर देह के साथ मिला हुआ जानता है, ऐसे नहीं जानता कि मैं चिदात्मा हूँ, देह के साथ मिला हुआ परिच्छिन्न तुच्छरूप अपने आपको देखता है, इस मिथ्या ज्ञान से डूबता है, देह में अभिमान करके वासना के वश हुआ चिरपर्यन्त नीचे ऊपर मध्य में यह जीव घूमता है, जैसे महासमुद्र में आया हुआ काष्ठ तरंग से उछलता है, नीचे ऊपर जाता है, जैसे घटीयंत्र (अरहट) के टिंड (मट्टी के पात्र) नीचे ऊपर को जाते हैं, ऐसे ही जीव वासना के

वश से, नीचे ऊपर फिरता है और जब विचार तथा अभ्यास से आत्मबोध को पा जाता है तब संसार बंधन से मुक्त हो जाता है, आदि अन्त से रहित जो आत्मपद है उसको प्राप्त होता है, बहुत समय तक अनेक योनियों के भोग भोगकर आत्मज्ञान के वश से परमपद को प्राप्त होता है, हे रामज़ी! स्वरूप से गिरे हुए जीव इस प्रकार भ्रमते हैं और शरीर को पाते हैं अब यह सुनो कि मृत हो जाने पर इन्द्रिय विषय ग्रहण क्यों नहीं करते? हे रामजी! जब शुद्धतत्व में चित्तकलना फुरती है तब वह जीवरूप होती है, फिर मन सहित छहों इन्द्रियों को लेकर देहरूप घर में स्थित होती है तब बाह्य विषय को ग्रहण करती है, मन सहित छहों इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषय का ग्रहण होता है, इनसे रहित विषय को कदाचित् नहीं ग्रहण करती, इस प्रकार इनमें स्थिर होकर जीवकला विषय को ग्रहण करती है, यद्यपि इन्द्रिय भिन्न भिन्न है तो भी इनको एकत्र कर लेती हैं, इनका इकट्ठा होना अहंकार रूप धागे से होता है, देह और इन्द्रिय माणिक्य की नाईं है, इनको इकट्ठा करके जीव कहता है—मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं सूंघता हूँ, मैं बोलता हूँ, इत्यादिक इनके अभिमान से विषय को ग्रहण करता है, हे रामजी! देह इन्द्रिय, मन आदि जड़ हैं परन्तु आत्मा की सत्ता पाकर अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं, जब तक पुर्यष्टका देह में होती है, तब तक इन्द्रिय विषयों को ग्रहण करते हैं, हे रामजी! यह जो प्रत्यक्ष नेत्र नासिका कान जिह्वा, त्वचा भासती है, यह इन्द्रिय नहीं, सूक्ष्म तन्मात्रा है, यह उनके रहने के स्थान हैं, जैसे घर में झरोखे होते हैं, ऐसे यह स्थान हैं, जीव का रूप सुनो, हे रामजी! आत्मतत्व सर्वत्र पूर्ण है, परन्तु उसका प्रतिबिंब वहां भासता है जहां निर्मल स्थान होता है जैसे निर्मल जल में प्रतिबिंब दीखता है, जैसे दो कुण्ड हों, एक जल से रहित हो, दूसरा जल से भरा हो, सूर्य का प्रकाश दोनों में तुल्य होता है परन्तु प्रतिबिम्ब वहाँ ही होता है, जहां जल होता है, जल के हिलने से प्रतिबिंब भी हिलता है, जहां जल नहीं वहां प्रतिबिंब भी नहीं, ऐसे जहां सात्विक अंश अन्तःकरण होता है, वहां

आत्मा का प्रतिबिंब जीव भी होता है, वह जब तक शरीर में होता है, तब तक शरीर चेतन भासता है, जब वह जीवकला पुर्यष्टका रूप शरीर को त्याग जाती है तब शरीर जड़ भासता है, जैसे कुण्ड से जल निकल जाने पर कुंड सूर्य के प्रतिबिंब हीन भासता है, ऐसे अन्त:करण और तन्मात्रा, पुर्यष्टका में आत्मा का प्रतिबिंब होता है, जब पुर्यष्टका शरीर को त्याग जाती है तब शरीर जड भासता है, हे रामजी! जैसे झरोखे के आगे कोई पदार्थ रक्खें तो झरोखे को पदार्थ का ज्ञान नहीं होता, जब उसका स्वामी आकर देखता है, तब पदार्थ को ग्रहण करता है, ऐसे इन्द्रियों के स्थान में सूक्ष्म तन्मात्राएं ग्रहण करने वाली होती हैं, तब विषय को ग्रहण करती हैं, जब तन्मात्राएं नहीं होती तब इन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकते, हे रामजी! प्रत्यक्ष देखो, जो कोई कथा का श्रोता पुरुष कथा में बैठा होता है और चित्त उसका, दूसरे स्थान पर चला जाता है। तब प्रत्यक्ष बैठा है परन्तु सुनता कुछ नहीं, क्योंकि श्रवणेन्द्रिय तो मन के साथ गया है, जैसे जब पुर्यष्टका निकल जाती है, तब मर जाता है, इन्द्रिय विषय को ग्रहण नहीं करते ,हे रामजी, अहं मम आदि से लेकर जो दृश्य है वह भी और स्वर्ग के आदि में आत्मरूप समुद्र से तरंगवत् फुरी है, उससे आगे दृश्य कलना हुई है, वह न देश है, न काल है, न क्रिया है, यह सब असत् रूप है, वास्तव से कुछ नहीं, ऐसा जानकर असंगरूप में विचरो तब माया को तर जायेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेअक्षसंवेदन
विचारवर्णनं नाम पञ्चाशः सर्गः ।।५०।।

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वास्तव से इन्द्रियगण उत्पन्न नहीं हुए, जैसे कमलजन्य ब्रह्मा की उत्पत्ति मैंने तुमसे कही है, वह तुमने सुनी है,

जैसे आदि जीव पुर्यष्टका रूप ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, ऐसे और भी उत्पन्न हुए हैं, हे रामजी! जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी भावना करता गया ऐसा प्रतीत होने लगा, फिर उसकी सत्ता पाकर अपने अपने विषय को ग्रहण करने लगे हैं और वास्तव से इन्द्रिय भी कुछ वस्तु नहीं हैं, सब आत्मा के आभास से फुरती है इन्द्रिय और इन्द्रियों के अर्थ यह संवेद से उत्पन्न हुए हैं, जैसे उत्पन्न हुए हैं ऐसे तुमसे कहे हैं, हे रामजी! शुद्ध संवित् सत्तामात्र में जो अहं उल्लेख हुआ है वह संवेदन हुई है, वही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टका भाव को प्राप्त होकर बुद्धि मन और पंच तन्मात्रा को उत्पन्न करके जीवकला आप ही उनमें प्रविष्ट होकर स्थित हुई है, उसको पुर्यष्टका कहते हैं, परन्तु यह उत्पन्न भी स्पन्द में हुई है, आत्मा में उत्पन्न होना कुछ नहीं, वह आत्मा न एक है न अनेक है, परमात्मतत्व अस्ति अनामय है और वेदना भी उसमें अनन्यरूप है, हे रामजी! उसमें न कोई द्वैत कलना है न कुछ मन:शक्ति है केवल शान्तसत्ता है, उसको परमात्मा कहते हैं, वह मन सहित षट् इन्द्रियों से आती है, चिन्मात्र है उससे जीव उत्पन्न हुआ है, यह भी उपदेश के लिये कहता हूं, वास्तव से कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, केवल भ्रममात्र है, जहां जीव उत्पन्न हुआ है वहां उसको अहंभाव विपर्यय हुआ है, यही अविद्या है, वह उपदेश द्वारा लीन हो जाती है, तब भ्रमरूप आकार शान्त हो जाते हैं, ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है, जिसमें आकाश भी स्थूल है, जैसे परमाणु के आगे सुमेरु स्थल होता है, ऐसे आत्मा के आगे आकाश स्थूल है, हे रामजी! आत्मा के आगे जो स्थूलता भासती है, वह भ्रममात्र है, जो बड़े उदार आरम्भ प्रतीत होते हैं, वे असत् हैं, तब अन्य पदार्थ की तो बात ही क्या है, हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ नहीं पाया जाता, क्योंकि जो वस्तु असम्यग् ज्ञान से प्रतीत होती है, वह सम्यग् ज्ञान से नहीं पायी जाती, जितने जगत् जाल प्रतीत हो रहे हैं सब मायामात्र हैं, इनसे कोई अर्थ सिद्धि नहीं होती जैसे मृगतृष्णा का जल किंचिनमात्र भी पिया नहीं

जाता, ऐसे ही जगत् के पदार्थों से कुछ अर्थ सिद्धि नहीं होती, सब अज्ञान से प्रतीत हो रहे हैं हे रामजी! जो वस्तु सम्यक् ज्ञान से हो उसे सत् जानिये, जो सम्यक् ज्ञान से न रहे उसे भ्रम मात्र जानिये, यह जीव पुर्यष्टक अविद्धक भ्रम है असत् ही सत् प्रतीत हो रहा है जब गुरु और शास्त्रों का विचार होता है, तब जगत्भ्रम मिट जाता है और पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसे भावना करता है, ऐसी सिद्धि होती है, जैसे बालक अपनी परछाईंमें बेताल की कल्पना करता है, ऐसे जीव कला अपने आपमें देशकाल तत्व आदि की कल्पना करती है, भावना के अनुसार उसको भासते हैं, जैसे बीज से पत्र टास फूल फलादिक विस्तार होता है, ऐसे तन्मात्राओं से अन्य भूत जात सब अंतर बाहर देशकाल क्रिया कर्म हुआ है, आदि जीवन स्फुरित होकर जैसा संकल्प धारण किया ऐसा ही प्रतीत हुआ है, यह संवेदन भी आत्मा के साथ अनन्यरूप है, जैसे मिर्च और तीक्ष्णता अनन्यरूप है, जैसे आकाश में शून्यता अनन्तरूप है, ऐसे आत्मा में संवेदन अनन्यरूप है, उस संवेदन ने उत्पन्न होकर निश्चय किया कि यह पदार्थ ऐसे हैं, यह ऐसे होते हैं, ऐसी ही स्थित हैं, अन्यथा कभी न होते, आदि जीव ने उत्पन्न होकर जैसे निश्चय किया है, उसी का नाम नीति है और स्वरूप से सब आत्मसत्ता है, आत्मसत्ता ही रूप धारण कर स्थित हुई है, जैसे एक ही गन्ने का रस शक्कर खांड गुड़ आदि आकारों को पाता है, जैसे एक ही मृतिका घट मठ टिंडा आदिक आकारों को धारण करती है, ऐसे एक ही आत्मसत्ता सर्व ज्ञान को प्राप्त करती है, जैसे एक ही जल का रस पत्र टास फूल फलादिक होकर प्रतीत होता है, ऐसे एक ही आत्मसत्ता घट पट कंध आदिक आकर हो भासती है, हे रामजी! जैसे आदि जीव ने निश्चय किया है ऐसे ही स्थित है, अन्यथा कदाचित् नहीं होता, परंतु जगत् काल में ऐसे है, वास्तव से न बिंब है, न प्रतिबिंब है, यह द्वैत में होते हैं वह द्वैत कुछ नहीं, केवल चिदानन्द ब्रह्म आत्मतंत्व अपने आपमें स्थित है, देहादिक भी सब चिन्मात्र हैं, हे रामजी! जितना यह जगत् प्रतीत होता है आत्मा का अकिंचन रूप है, जैसे जेवरी सर्परूप प्रतीत होती है, ऐसे आत्मा जगत् रूप हो प्रतीत होता है, जैसे स्वर्ण

भूषण हो प्रतीत होता है, ऐसे आत्मा दृश्यरूप होकर प्रतीत होता है, जैसे स्वर्ण में भूषण कुछ वास्तव नहीं, ऐसे ही आत्मा में दृश्य वास्तव नहीं, जैसे स्वप्न में पतन असत् ही सत् हो प्रतीत होता है, ऐसे जीव को देह अन्य प्रतीत होता है, हे रामजी! आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है, परंतु फुरणे से अनेकरूप धारण करती है, जैसे एक नटवा अनेक स्वांग धारण करता है, ऐसे आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकारों को धारण करती है, जैसे स्वप्न में एक ही अनेक रूपधारी चेष्टा करता है, ऐसे जगत् में नानारूप धारण करता है, हे रामजी! आत्मा नित्य शुद्ध सबका अपना आप है, अपने स्वरूप के प्रमाद से अपने आप ही के कारण अपना जन्म मरण जानता है, वह जन्म मरण असत्रूप है, कोई पुरुष जैसे स्वप्न में अपने आपको श्वानरूप देखे, ऐसे यह अपने आपको जन्मता मरता देखता है जैसे जैसे इसकी पूर्व भावना है, भ्रम से असत् को सत् जानता है, जैसे स्वप्न में वस्तु को अवस्तु और अवस्तु को वस्तु देखता है, ऐसे जाग्रत् में विपर्यय देखता है, जैसे जाग्रत् के ज्ञान से स्वप्न भ्रम निवृत्त हो जाता है, ऐसे आत्माधिष्ठान के ज्ञान से जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे पूर्व का दुष्कृत कर्म किया है और उसके पीछे सुकृत कर्म करे, तब वह आच्छादित हो जाता है, ऐसे पूर्व संस्कार के कारण जब नीच वासना होती है और उसके बाद आत्मतत्त्व का अभ्यास करे तब उसके पुरुष प्रयत्न से मलिन वासना नष्ट हो जाती है, जब तक वासना मलिन होती है, तब तक जन्मता मरता नाश पाता गोता खाता रहता है, जब सत् पुरुषों के संग और सत् शास्त्रों के विचार से आत्मज्ञान उत्पन्न होता है, तब संसार बन्धन से छूटता है, अन्यथा नहीं छूटता, हे रामजी! देहरूप मंदिर में जीव अनेक भ्रम देखता है, अपने सर्वरूप को त्यागकर अनात्म भ्रम को देखता है, जैसे बालक परछाई में भूत आदिक की कल्पना करता है, इस प्रकार की कल्पना करके जैसी भावना की ऐसा भासने लगा, आदि जीव पुर्यष्टका में स्थित हुआ है,(मन बुद्धि अहंकार और पञ्च तन्मात्रा को पुर्यष्टका कहते हैं) और अन्तवाहक देह है, चैतन्य आत्मा अमूर्त है,

आकाश भी उसके निकट स्थूल है, प्राण वायु गुच्छे के समान हैं, देह सुमेरू के समान है, ऐसा सूक्ष्म जीव है, सुषुप्ति जडरूप और स्वप्नभ्रम और दोनों अवस्थाओं मे स्थावर जंगमरूप जीव भटकते हैं, कभी सुषुप्ति में स्थित होते हैं कभी स्वप्न में स्थित होते हैं, इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में जीव भटकते हैं, हे रामजी! सबका देह अन्तवाहका है, उसी देह से चेष्टा करते हैं, कभी स्थावर में जाते हैं तब वृक्ष पत्थर आदि योनियों को प्राप्त होते हैं, जब स्वप्न में होते हैं तब जंगम योनि को पाते हैं, वह भी कर्मवासना के अनुसार ही पाते हैं, जब तामस वासना, घन अधिक होती है, तब कल्पवृक्ष चिन्तामणि आदिक स्वरूप को प्राप्त होते हैं। जब वासना केवल तामस घन मोहरूप होती है, तंब अन्य वृक्ष पत्थरादि योनियों की प्राप्ति होती है, इसका नाम सुषुप्ति है, वह लय घन मोहरूप है और इससे इतर विक्षेपरूप स्वप्न अवस्था है, कभी उसमें होता है, कभी सुषुप्तिरूप स्थावर होता है, हे रामजी! सुषुप्ति अवस्था में वासना सुषुप्तिरूप होती है वह फिर उदय होती है, इसलिये मोहरूप है और उस सुषुप्ति से जब उतरता है, तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है, जब बोध हो तब जाग्रतावस्था मिले, वह जाग्रत् दो प्रकार की है, वही जाग्रत् है जो लय और विक्षेपता से रहित चेतन अवस्था है, उससे रहित अन्य मनोराज्य सब स्वप्न रूप है। एक जीवन्मुक्ति जाग्रत् है, दूसरीं विदेह मुक्ति है, जीवन्मुक्ति तुरीया रूप है, विदेहमुक्ति तुरीयातीत है, यह अवस्था जीव को ज्ञान से प्राप्त होती है और ज्ञान पुरुष प्रयत्न से होता है, अन्यथा नहीं होता है रामजी! जीव का स्फुरण ज्ञानरूप है, जब दृश्य की ओर लगती है तब वही रूप हो जाता है और यदि सत् की ओर लगता है तब सत्रूप हो जाता है, जब दृश्य के सन्मुख होता है, तब दीर्घभ्रम को देखता है, जीव के अन्दर जो सृष्टिरूप से स्फुरण होता है वह भी आत्मसत्ता से इतर कुछ नहीं, जैसे बटलोही में दाने के समान जल उछलता है, वह जल से इतर कुछ अन्य वस्तु नहीं, आत्मा के बिना जी के अन्दर कोई वस्तु नहीं, अपर सृष्टि जो प्रतीति होती है वह मायामात्र है, हे रामजी! जीव

को स्वरूप के प्रमाद से सृष्टि भासती है, जो सत्सत् हो गयी है, उससे नाना प्रकार का विश्व प्रतीत होता है और नाना प्रकार की वासना फुरती है, उससे बन्धन में पड़ता है, जब वासना क्षय हो, तब मुक्तिरूप है, हे रामजी! घन वासना मोहरूप का नाम सुषुप्ति जड अवस्था है और तीण स्वप्नरूप है, जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब दृश्य में सद्बुद्धि होती है, उसमें प्रतीति होती है, तब नाना प्रकार की वासना उदय होती है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब संसार सत्यता नाश हो जाती है, पुनः वासना नहीं फुरतीं हे रामजी! घन वासना तब तक फुरती है जब तक दृश्य की सद्बुद्धि होती है, जब जगत् का अत्यन्ताअभाव हुआ तब वासना भी नहीं रहती, जब भूषण को पिघलाकर स्वर्णकर दिया तब वह भूषण नहीं रहा, जो वस्तु अज्ञान से उत्पन्न हुई है, वह ज्ञान से लीन हो जाती है, अबोध से उत्पन्न वासना भ्रम बोध से लीन हो जाता है, हे रामजी! घनवासना से सुषुप्ति जड अवस्था होती है और सूक्ष्म वासना से स्वप्न देखता है घनवासना के मोह से जीव स्थावर अवस्था को प्राप्त होता है और मध्यवासना से तिर्यग् योनि पशुपक्षी सर्पादिक को प्राप्त होता है और तनु वासना से मनुष्यादिक शरीर को पाता है और नष्ट वासना से मोक्ष मिलता है, हे रामजी! यह जगत् सब संकल्प की रचना है, जो बाहिर के घर पर आदि देखता है और ग्रहण करता है, वह एक आन्तरदेह में स्थित होकर वही बाह्य घट पटादिरूप में स्थित होता है उनको ग्रहण करता है, ग्राह्य ग्राहक का सम्बन्ध देखता है, यह मैंने ग्रहण किया है, यह मैंने लिया है और जो ज्ञानवान् है वह न ग्रहण करने का अभिमान करता है न कुछ त्यागने का अभिमान करता है, उसको अंदर बाहिर सब चिदाकाश प्रतीत होता है, चेतन सत्ता का यह चमत्कार है, तीनों जगत् रूप होकर वही प्रकाशित होता है, किंचित् मात्र भी कुछ अन्य नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, जैसे समुद्र में तरंग बुदबुदे होकर

भासते हैं, परन्तु जल ही जल है, जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे ही आत्मा जगत् रूप होकर प्रतीत होता है, अन्य द्वैत वस्तु कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे
यथार्थोपदेशवर्णनं नामैकपञ्चाशः सर्गः ।।५१।।

द्विपंचाशः सर्गः ५२

नारायणावतारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस जीव को स्वप्न में संसार का उदय दीखता है, वह कल्पना मात्र होता है, न सत् है न असत् है, जीव को एक स्फुरण से भ्रम प्रतीत होता है, ऐसे यह जगत् अवस्था भ्रम मात्र है, स्वप्न और जाग्रत् एकरूप है, जैसे स्वप्न में जाग्रत् का एक क्षण भी दीर्घकाल होता है, ऐसे स्वरूप के प्रमाद से जाग्रत् भी दीर्घकाल भ्रम हुआ है, सत् को असत् जानता है, और असत् को सत् जानता है, जड को चेतन जानता है और चेतन को जड जानता है, विपर्यय ज्ञान करके इस प्रकार जानता है, जैसे स्वप्न में एक ही जीव अनेकता को प्राप्त होता है, ऐसे जीव एक से अनेक प्रकार होकर प्रतीत होता है, जैसे स्थानु चोर भ्रम प्रतीत होता है ऐसे आत्मा में तीनों जगद्भ्रम भासते हैं, जैसे सुषुप्ति से स्वप्नभ्रम उदय होता है, ऐसे अद्वैत तत्व आत्मा में जगद्भ्रम होता है, आत्मा अनंत सर्वगत है, जीव का बीजरूप है, जैसा उसके आश्रय फुरना होता है, ऐसा सिद्ध होकर प्रतीत होता है, हे रामजी! जिन पुरुषों को स्वरूप की स्थिति हुई है, वे सदा निःसंग होकर विचरते हैं, जैसे--पुंडरीकाक्ष विष्णु भगवान् उपदेश करेंगे, उसको पाकर अर्जुन मुक्त होकर विचरेगा, ऐसे हे महाबाहो! तुम भी विचरो, हे रामजी! पाण्डव पुत्र अर्जुन जैसे सुख के साथ ज़ीवन व्यतीत करेगा सब व्यवहारों में भी सुखी और स्वस्थ रहेगा, ऐसे तुम भी निःसंग होकर विचरो, रामजी बोले—हे मुनिवर! पांडव पुत्र अर्जुन कब होगा और विष्णु भगवान्

उसको निःसंगता का उपदेश किस प्रकार करेंगे, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अस्ति मात्र जो तत्व है जिसमें आत्मादि संज्ञा कल्पना से कही है वह आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, आदि अन्त से रहित है, जैसे आकाश में आकाश स्थित है, ऐसे निर्मल तत्व अपने आपमें स्थित हैं उसमें जगत् भ्रम मात्र स्फुरण होता है, जैसे सुवर्ण में भूषण और जल में तरङ्ग स्फुरण होता है, ऐसे इस संसार जाल में चौदह प्रकार का प्राणिवर्ग जाल में पड़े पक्षियों की नाईं प्रस्फुरित हो रहा है, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रादिक, लोक, पाल होकर स्थित हैं और इन्होनें पांच भौतिक कर्म की रचना की है, यह पुण्य है ग्रहण करने योग्य है, यह पाप है त्याग करने योग्य है, पुण्य से स्वर्गादि सुख मिलता है, पाप से नरक की प्राप्ति होती है, यह मर्यादा लोकपालों ने स्थापित की है, इस प्रकार संसाररूप नदी में प्राणी बहते जा रहे हैं, यह संसाररूप नदी अविच्छिन्नरूप से बह रही है और नाशरूप है, जैसे नदी का वेग समान प्रवाह से वही भासता है परन्तु होता और है, क्षण क्षण में वह प्रथम जाता रहता है, ऐसे संसार अपने काल में अविच्छिन्नरूप सत् प्रतीत होता है और आत्मा की अपेक्षा नाशरूप है, क्षण क्षण में नष्ट होता है, इस जगत् में वैवस्वत सूर्य का पुत्र यमराज लोकपाल बड़ा प्रतापवान् स्थित है, वह परम तेजस्वी है, सब जीवों का अन्त कर देता है, ऐसा नियम धारण कर प्रजामें स्थित है, आदि प्रवाह इस प्रकार हुआ है, प्रति प्रवाह नियत कर्म में स्थित है, जीवों को दण्ड देना और मारना यह उसका नियम है, इस प्रकार चारों युगों के बीतने पर यह यमराज जीव नाशरूप पाप के प्रायश्चित के लिये व्रत करता है, कभी आठ वर्ष कभी दस कभी बारह, सोलह और कभी पांच या सात ही वर्ष का नियम धारण कर जीवों का मारना छोड़ देता है, जब यह इस प्रकार उदासीन की नाई रहने लगा, तब किसी जीव की मृत्यु नहीं होने से प्राणि वर्ग इतना बढ़ गया कि पृथ्वी पर कोई थोड़ा सा स्थान भी खाली नहीं रहता अर्थात् चलना फिरना बन्द हो जाता है, तब जीवों को अत्यन्त दुःख देते हैं, उनके दुःख का भार धरणी से नहीं सहा जाता,

इसलिए उनका भार उतारने के निमित्त भगवान् विष्णु अवतार धारण करते हैं और दुष्ट जीवों का नाश करते हैं तथा धर्म मार्ग को दृढ़ करते हैं। हे रामजी! इस प्रकार का नियम धारण किये यमराज को अपना व्यवहार करते अनन्त युग बीत गये हैं जीव सृष्टि अनन्त हो गयी है, इस सृष्टि का जो अब वैवस्वत यम है, वह आगे नियम करेगा, द्वादश वर्ष पर्यन्त किसी को मारेगा, ऐसा नियम करेगा, तब जीव क्रूर कर्म करने लगेंगे, पृथ्वी भूतों (प्राणियों) से नीरन्ध्र (जहां कोई स्थान खाली न रहे) हो जायगी, जैसे वृक्षों के साथ गुच्छे संघट्टित हो जाते हैं, ऐसे पृथ्वी प्राणियों से संघट्टमयी हो जायगी और दुःखी होकर विष्णुभगवान् की शरण में जायगी, जैसे चोर से डरकर स्त्री भर्ता की शरण में जाती है, ऐसे पृथ्वी भगवत् की शरण में जायगी, तब विष्णु भगवान् दोरूप धारण करेंगे, पृथ्वी का भार उतारकर सन्मार्ग अर्थात् लोकमर्यादा जो कि टूट गयी थी, पुनः स्थापित करेंगे और सब देवता अवतार धारण करके साथ आयेंगे, नरों में नायक भाव प्राप्त होगा, एक देह से वसुदेव के घर में भगवान् पुत्ररूप धारण करके कृष्ण नाम से प्रकट होंगे और दूसरे देह से पाण्डु के घर अर्जुन रूप में प्रकट होंगे, युधिष्ठिर नाम धर्म का पुत्र होगा, जो समुद्रमेखला पृथ्वी का राज्य करेगा, धृतराष्ट्र के बड़े बेटे का नाम दुर्योधन था, उसका और भीम का बड़ा युद्ध होगा, दोनों ओर से संग्राम की इच्छा होगी, अठारह अक्षौहिणी सेनाएं इकट्ठी होगीं उनका महान् युद्ध होगा, उनके द्वारा भगवान् पृथ्वी का भार उतारेंगे। हे रामजी! उस महायुद्ध में भगवान् का अर्जुन नाम का शरीर गांडीव धनुष धारण करेगा, उसका प्राकृत स्वभाव होगा, हर्षशोकादि विकारों से युक्त होगा, युद्ध में अपने बन्धु बान्धवों को मरते मरते देखकर वह मोह में पड़ेगा और एकदम उसके विचार बदल जायँगे जो पहिले बैरभाव से पूर्ण रहने पर भी मोह के कारण उसके हाथों से धनुष गिर पड़ेगा और वह शोक और मोह से परमव्याकुल होगा, तब ज्ञानरूप से भगवान् उसको उपदेश

करेंगें, दोनों सेनाओं के बीच में जब वह मोहित होकर गिर पड़ेगा तब भगवान् कृष्ण उसको कहेंगे, हे राजसिंह अर्जुन! तुम मनुष्यभाव को क्यों प्राप्त हुए हो, तुम्हें इस प्रकार मोह करना शोभा नहीं देता, इस कायरता का त्याग करो, तुम परम प्रकाशरूप आत्मतत्व हो, आनन्दस्वरूप अविनाशी है सर्वात्मा हो, आदि अंतमध्य से रहित हो, वृथा कायर क्यों कहलाते हो, सर्वव्यापी परमअंकुररूप हो, निर्मल हो दुःख के स्पर्श से रहित है, नित्य शुद्ध निरामय हो, हे अर्जुन! आत्मा न जन्म लेता है न मरता है, होकर फिर और नहीं होता, क्योंकि जो अज है नित्य है निरन्तर पुरातन है, सबका आदि है, उसका शरीर के नाश हुए नाश नहीं होता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे नारायणावतारवर्णनं नाम द्विपंचाशः सर्गः ।।५२।।

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

अर्जुनोपदेश वर्णनम् ।

भगवान् ने कहा–हे अर्जुन! जो इस आत्मा को हन्ता मानते हैं, कई हनन क्रिया का कर्ता कहते हैं और इस आत्मा को हत होता मानते हैं, वे आत्मा को नहीं जानते, न यह आत्मा मारती है, न मरती है, क्योंक अक्षयरूप, और निराकार है, आकाश से भी सूक्ष्म है, उस आत्मा परमेश्वर को कौन किस प्रकार मारे? हे अर्जुन! तू अहंकाररूप नहीं, इस अनात्म अभिमानरूप मल का त्याग कर तू जन्म मरण से रहित मुक्तिरूप है, जिस पुरुष को अनात्म में अहंभाव नहीं और जिसकी बुद्धि कर्तृत्व भोक्तृत्व में लिप्त नहीं होती, वह पुरुष सब विश्व को मारे तो भी नहीं मारता, न बन्धन में आता है, हे अर्जुन! जिसको जैसा दृढ़ निश्चय होता है ऐसा ही उसको अनुभव होता है, इसलिये यह मैं मेरा जो मलिन संवित् निश्चय होता है, उसका त्याग करके स्वरूप में स्थित हो, जो ऐसी

भावना में स्थित नहीं होते और अपने आपको नष्ट होता मानते हैं, वे सुख दुःख से राग द्वेष में जलते हैं, हे अर्जुन! अपने गुणों के असंख्य कर्मों में वर्तते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध इन पांचों तत्वों से आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी उत्पन्न हुए हैं, उन भूतों के अंश श्रवण त्वचा, नेत्र जिह्वा, नासिका विषयों में स्थित हैं, अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं। नेत्ररूप को ग्रहण हैं, त्वचा, स्पर्श को जिह्वा रस को नासिका गन्ध को श्रवण शब्द को ग्रहण करते हैं, उसमें जो मूढ़ अहंकार करता है आपको कर्ता मानता है मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, स्पर्श करता हूँ, स्वाद लेता हूँ, गन्ध लेता हूँ, हे अर्जुन! यह सब कर्म कलना करके रचे हैं। कर्म, इन्द्रियों से होते हैं और यह वृथा ही अहंभाव से क्लेश का भागी होता है, कर्म तो अनेकों ने मिलकर किया और उसमें अभिमानी होकर दुःख एक ही पाता है यह महान् आश्चर्य है, देह और इन्द्रियों से कर्म होते हैं और अभिमानी होकर सुख दुःख में जीव राग द्वेष से जलता है, इसलिये इनका संग अभिमान छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो, मन से बुद्धि से केवल इन्द्रियों से योगी कर्म करता है और उनमें अभिमान वृत्ति नहीं करता, निःसंग होकर आचरण करता है, ऐसा करना ही उसकी आत्मपद की सिद्धि का द्योतक है, हे अर्जुन! इस जीव के लिये अहंकार ही दुःख का कारण है, अनात्मा में आत्माभिमान करते हुए जो कुछ कर्म करता है, सब दुःखदायक हो जाता है और जो अभिमानरूप विष के चूर्ण से रहित होकर चेष्टा करता है, लेता है, देता है, वह दुःख का कारण नहीं होता, सदा सुखरूप होता है, हे अर्जुन! जैसे सुन्दर शरीर हो और मल मूत्रादि से प्रलिप्त हुआ हो तो उसकी शोभा जाती रहती है, ऐसे ही बुद्धिमान् हो और शास्त्र का वेत्ता भी हो, इत्यादि गुणों से सम्पन्न होने पर भी अनात्म में आत्माभिमान हो तो उसकी शोभा जाती रहती है और जो निर्मम निरहंकार और सुख दुःख में सम है, क्षमावान है, वह शुभ कर्म करे अथवा अशुभ करे, उसको किसी कर्म का स्पर्श नहीं होता, हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान् होकर कर्म करो, इसलिये यह युद्धकर्म तेरा धर्म है, उसे

ग्रहण करो, अपना धर्म अति क्रूर भी हो तो कल्याण करता है, पराया धर्म सर्वथा उत्तम भी दु:खदायक है, अपना धर्म अमृत के समान अल्प भी सुखदायक है, हे अर्जुन! जो इच्छा हो करो, परन्तु यह स्मरण रखो कि जब तुम्हारे अन्दर अहंभाव न होगा, तो कोई कर्म स्पर्श न करेगा, संग और अभिमान को त्यागकर योगस्थ होकर कर्म करो, नि:संग पुरुष को कोई भी कर्म आ पड़े, बन्धन में नहीं डाल सकता, इसलिये ब्रह्मरूप होकर ब्रह्ममय कर्म को करो, तब शीघ्र ही ब्रह्मरूप हो जाओगे। जो कुछ आचरण है, कर्मकाण्ड है, सब ब्रह्मार्पण करो, हे अर्जुन! सर्व कर्म ईश्वरार्पण करो, वह ईश्वर आत्मा है, निर्मल है, निर्दु:ख है, ईश्वरात्मा की भावना से भावित हुआ पृथ्वी का भूषण होकर विचर, संन्यास संयोग से युक्त होकर कर्म करता हुआ मुक्त होगा, सर्व संकल्पों का सन्यासी (त्यागी) सम शान्त होकर विचर, अर्जुन बोला–हे भगवन्! संगत्याग किसको कहते हैं और ब्रह्म अर्पण तथा ईश्वरार्पण का क्या अर्थ है, संन्यास किसको कहते हैं और योग किसको कहते हैं, मोह निवृत्ति के लिये उनको विभागपूर्वक कहिये, श्री भगवान् बोले–हे अर्जुन! पहले तुम यह सुनो कि ब्रह्म किसको कहते हैं, जहां सर्व संकल्प शान्त है, एक घनसत्ता है, किसी अन्य भावना का उत्थान नहीं, चिन्मात्र सत्ता है, उसको परब्रह्म कहते हैं, ऐसा जानकर उसको पाने का उपाय उद्यम करना चाहिये जिस विचार के साथ उसको प्राप्त किया जा सके, उसको ज्ञान कहते हैं और जिस में स्थित होना है, उसको योग कहते हैं। यह सब ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूँ, सब जगत् मैं ही हूँ, ब्रह्म से इतर कुछ भावना नहीं करनी, इसका नाम ब्रह्मार्पण है और जो नाना प्रकार का जगत् भासता है, वह क्या है? अन्तर भी शून्य, बाहिर भी शून्य, जिसको शिला की उपमा है, ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है, वह शून्य है न शिलावत् है, उसके आश्रय स्पन्दकला स्फुरणरूप सी होकर अन्यवत् प्रतीत होती है, वह जगत्‌रूप होकर स्थित हुई है, परन्तु कैसी है, आकाश की नाईं शून्य है, उसमें जो विभाग कलना हुई है, वह कोटि कोटि अंश जीवकला होती

गयी है, एक ही अपृथक् अनेक भूत पृथक् पृथक् होकर स्थित हुई है, जैसे समुद्र में तरंग बुदबुदे अनेक रूप होकर स्थित होते हैं, वह जल ही जल है अन्य कुछ नहीं, एक ही जल अनेक रूप होकर प्रतीत होता है, ऐसे एक ही वस्तुसत्ता घट पट आदिक आकार होकर प्रतीत होती है, आत्मा में भेदकलना कुछ नहीं, यह अनेकरूप भेदकलना और विकल्प जाल अज्ञान से प्रतीत होते हैं। अनेक भाव को एक देखना भी अज्ञान है और एक को अनेक देखना भी अज्ञान है, वह एक अनेक देखना क्या है और अनेक एक देखना क्या है? आत्मा एक है, उसको अनेक (नामरूप) देखना अज्ञान है और देह इन्द्रिय, प्राण मन बुद्धि आदिक अनेक हैं, उनमें अहं प्रतीति से एकत्र भाव देखना अज्ञान है, ज्ञान से दूर हो जाता है, हे अर्जुन! जितने कुछ संकल्प जाल हैं, उनके त्याग को संग से रहित होना कहते हैं, इस सब कलना जाल का ईश्वर से इतर भाव न करना, इस भावना से द्वैत भाव गलित हो जायेगा, इसी का नाम ईश्वर समर्पण है, हे अर्जुन! जब ऐसी अभेद भावना होती है, तब आत्मबोध प्राप्त होता है और बोध से सब शब्द अर्थ एकरूप प्रतीत होते हैं, सब शब्दों का एक ही शब्द प्रतीत होता है और सब शब्दों में एक ही अर्थ प्रतीत होता है, हे अर्जुन! सब जगत् मैं हूँ, मैं ही दिशा हूँ, मैं ही आकाश हूँ, मैं ही कर्म हूँ, मैं ही काल हूँ, द्वैत भी मैं ही हूँ, अद्वैत भी मैं हूँ, ऐसे मुझे सर्वात्मा में तू मन लगा कर मेरा ही भजन कर, मुझ ही को नमस्कार कर, ऐसा करने से मुझे ही प्राप्त होगा, हे अर्जुन! मैं आत्मा हूँ, तू मेरे परायण हो, अर्जुन बोला—हे देव! ऐसे तेरे दो रूप हैं, एक पररूप है, एक अपररूप है, उन दोनों रूपों में मैं किसका आश्रय करूँ, जिससे मुझे परम सिद्धान्त की प्राप्ति हो जाय, श्री भगवान् बोले—हे अनघ! एक समान रूप है और एक परमरूप है, यह जो शंख चक्र गदादि संयुक्त है, वह समान रूप है और परमरूप मेरा आदि अन्त से रहित एक अनामय है, वह ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा आदि शब्दों से कहा जाता है, जब तक अप्रबोध है, अनात्मदेहादि में तुझको आत्माभिमान है, तब तक तेरे मेरे चतुर्भुज रूप की पूजा करने में तत्पर

रहा कर और कर्म करता चल, जब प्रबुद्ध होगा, तब तक मेरे परमरूप को प्राप्त होगा जो कि आदि मध्य अन्त से रहित मेरा रूप है, उसको पाकर आवागमन से मुक्त होगा, जब तू शत्रु को नाश करता हुआ ज्ञानवान् हुआ है, आत्मरूप जो मैं हूँ, आत्मा से मेरा पूजन कर मैं सबकी आत्मा हूँ, यह मैं हूँ, ऐसा जो मैं कहता हूँ, वह मैं आत्मतत्व ही पुनः पुनः कहता हूँ, हे अर्जुन! मैं मानता हूँ कि तू अब प्रबुद्ध हुआ है और आत्मपद में विश्रामवान् हुआ है और संकल्प कलना से रहित मुक्त हुआ है, एक आत्मसत्ता में स्थित हुआ है, ऐसे योग से सर्व भूतों में स्थित आत्मा को देखेगा और आत्मा में स्थित सर्व भूतों को देखेगा और सब में तुमको सम बुद्धि होगी, स्वरूप में तुम्हें दृढ़ स्थिति प्राप्त होगी, हे अर्जुन! जो सर्वभूतों में स्थित आत्मा को देखता है और एकत्वभाव से भजन करता है, आत्मा से इतर जिनको अन्य भावना नहीं फुरती, ऐसे एकत्वभाव में जो स्थित है, वे सर्व प्रकार से वर्तमान भी हैं, तो भी पुनः जन्म मरण में नहीं आते, हे अर्जुन! जिसमें सर्व शब्दों का अर्थ है और सब शब्दों में जो एक अर्थरूप है, ऐसी जो आत्मसत्ता है, वह न सत् है, न असत् है, सत् असत् से जो रहित सत्ता है वह आत्मसत्ता है, वह सर्व लोक के चित्त में प्रकाशरूप करके स्थित है, वह आत्मा है, हे भारत! जैसे सारे दूध में घृत स्थित होता है और जल में रस स्थित होता है, ऐसे मैं सर्व लोक के अन्तर तत्वरूप से स्थित हूँ, सब शरीरों में जो चेतन है, उसकी जो सूक्ष्म अनुभव सत्ता है, वह मैं हूँ, सब में आत्मरूप से स्थित हूँ, जैसे समग्र दूध में घृत स्थित है, ऐसे सब पदार्थों के अन्दर में आत्मरूप से स्थित हूँ, जैसे रत्न के अन्दर बाहिर प्रकाश होता है, ऐसे मैं सब पदार्थों के अन्दर बाहिर आत्मरूप से हूँ, जैसे अनेक घड़ों के अन्दर बाहिर एक ही आकाश स्थित है, ऐसे मैं अनेक देहों के अन्दर बाहिर अव्यक्त स्वरूप से स्थित हूँ, हे अर्जुन! ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सत्ता समानता से मैं स्थित हूँ और नित्य हूँ, अजन्मा हूँ, मेरे अन्दर जो चित्त संवेदन स्फुरण हुआ है, वह ब्रह्मसत्ता समानता से हुआ है और फुरणे से जगत्‌रूप हो भासता है, आत्मतत्व अपने आप में स्थित है, अन्य द्वैत कुछ नहीं, हे अर्जुन! आत्मा

सबकी साक्षीरूप है, उसको जगत् का सुख दुःख स्पर्श नहीं, जैसे दर्पण प्रतिबिंब को ग्रहण करता है, परन्तु सब में सम है, किसी से खेदवान् नहीं होता, ऐसे सब पदार्थों का तथा अवस्था का साक्षीभूत आत्मा है। परन्तु किसी को स्पर्श नहीं करता और शरीर का नाश होने पर उसका नाश नहीं होता, जो ऐसा देखता है वह यथार्थ देखता है, हे अर्जुन! पृथ्वी में गंध मैं हूँ, जल में रस मैं हूँ, पवन में स्पर्श और स्पन्द शक्ति मैं हूँ, अग्नि में प्रकाश शक्ति, आकाश में शब्द शक्ति मैं हूँ और तुझको क्या कहूँ कि यह मैं हूँ, सर्वात्मा–सबका आत्मा मैं हूँ, मुझसे इतर कुछ नहीं, हे पांडव! यह जो वर्तमान सृष्टि है, उत्पन्न और प्रलय होती दृष्टि आती है, वह मुझमें ऐसे है, जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं, जैसे पहाड़ पत्थर रूप हैं और वृक्ष काष्ठरूप है, तरंग जलरूप है, ऐसे सब पदार्थों में मैं आत्मरूप हूँ, जो सर्वभूतों को आत्मा में देखता है, वह आत्मा को अकर्ता देखता है, जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग और स्वर्ण में भूषण प्रतीत होते हैं, ऐसे यह नाना आकार आत्मा में प्रतीत हो रहे हैं, हे अर्जुन! यह नाना प्रकार के पदार्थ ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं, तब अन्य क्या कहें, भाव विकार क्या कहें, जगद्द्वैत क्या कहें, यदि वही है तो वृथा मोहित क्यों होता है, इस प्रकार बुद्धिमान् भले प्रकार समझकर जीवन्मुक्त हुए, इस लोक में सम चित्त विचरते हैं, हे अर्जुन! इस पद को तू क्यों नहीं प्राप्त होगा, जो पुरुष निर्मान और निर्मोह हुए हैं और अभिलाषा दोष जिनका निवृत्त हुआ है, जो सर्व कामनाओं से मुक्त हुए हैं, वे अव्यय पद को प्राप्त हुए हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अर्जुनोपदेश वर्णनं
नाम त्रिपंचाशः सर्गः ।।५३।।

चतुष्पंचाशः सर्गः ५४

अर्जुनोपदेश सर्व ब्रह्मप्रतिपादनम् ।

श्री भगवान् बोले–हे महाबाहो! मैं तेरी प्रसन्नता के लिये फिर कहता हूँ, क्योंकि तुम्हारा हितकारी हूँ, मेरे परम कल्याणकारी वचन फिर सुन। यह जो सर्दी गर्मी और सुख तथा दुःख के देनेवाले विषय हैं, आने जाने वाले हैं, अनित्य हैं, इनको सहन करो, यह आत्मा को स्पर्श नहीं करते, तुम तो आत्मरूप हो, एक हो आदि अन्त मध्य से रहित हो, निराकार अखंड पूर्ण हो, तुम्हें शीत उष्ण सुख दुःख खंडित नहीं कर सकते, यह कलना से रचे हुए हैं, जैसे स्वर्ण में भूषण का निवास है, ऐसे आत्मा में इनका असत् निवास है, हे भारत! जिसको इन्द्रियों के भाग स्पर्श भ्रमरूप विचलित नहीं कर सकते तथा सुख दुःख जिनको सम हैं, उन पुरुषों को मोक्ष की प्राप्ति होती है, हे अर्जुन! आत्मा नित्य शुद्ध सर्व रूप है और इन्द्रियों के स्पर्श असत् रूप हैं, अतः असत् रूप में सत्रूप आत्मा को मोहित नहीं कर सकते, यह तुच्छ है, अल्पमात्र हैं, कुछ वस्तु नहीं और बोधरूप आत्मतत्व सर्वगत शुद्धरूप है उसको इनका स्पर्श कैसे हो, सत् को असत् नहीं स्पर्श कर सकता, जैसे जेवरी (रस्सी) में सर्प आभास होता है, वह जेवरी को स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे मूर्ति की अग्नि कागज को नहीं जला सकते और जैसे स्वप्न के क्षोभ जाग्रत पुरुष को स्पर्श नहीं कर सकते, ऐसे इन्द्रिय और उनके विषय आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते, हे अर्जुन! जो सत् है, वह असत् नहीं होता और जो असत् है वह सत् नहीं होता, सुख दुःखादिक असत्रूप हैं, कुछ है नहीं और परमात्मा सत्रूप है, जगत् के सत् वस्तु घटादिक और आकाश के असत् फूल आदिक, उन दोनों के त्याग से पीछे जो निष्किंचन महासत् पद है उसमें स्थित होने का यत्न करो, हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्ट में विचलित नहीं होता, इष्ट सुखदायी है, उससे प्रसन्न नहीं होता, अनिष्ट दुःखदायी है उससे शोकवान् नहीं होता और चेतन

पाषाणवत् शरीर में स्थित होता है, हे साधो! यह चित्त भी जड़ है और देह इंद्रियादिक भी जड़ है, आत्मा चेतन है इनके साथ मिला हुआ अपने आपको देह क्यों देखता है, चित्त और देह भी परस्पर भिन्न हैं, देह के नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता और चित्त के नष्ट हुए देह नष्ट नहीं होता, इनके नष्ट हुए जो अपने आपको नाश होता मानता है और इनके सुख दुःख के साथ सुखी दुःखी होता है वह महामूर्ख है, हे अर्जुन! स्वरूप के प्रमाद से देहादिक में अहं प्रतीति करता है और अपने आपको कर्ता भोक्ता मानता है, जब आत्म का बोध होता है तब अपने आप को अकर्ता अभोक्ता अद्वैत देखता है, जैसे जेवरी के अज्ञान से सर्प भासता है और जेवरी के बोध से सर्प का अभाव होता है, ऐसे ही आत्मा के अज्ञान से देह इंद्रियों के सुख दुःख भासते हैं और आत्मज्ञान से सुख दुःख का अभाव हो जाता है, हे अर्जुन! यह विश्व एक अज ब्रह्म स्वरूप है, न कोई जन्म लेता है न कोई मरता है, सत् उपदेश है, प्रबोध से ऐसे जानता है, हे अर्जुन! ब्रह्मरूप समुद्र में तू एक तरंग फुरा है, कुछ समय रहकर फिर इसी में लीन हो जायेगा, इसलिये तेरा स्वरूप निरामय ब्रह्म है, सब जगत् ब्रह्म का स्पन्द है, समय पाकर दृष्टि आता है, इसलिये मान मद शोक सुख दुःख सब असत् रूप हैं, तुम शान्ति प्राप्त करो, हे अर्जुन! पहिले तो तू ब्रह्ममय युद्ध कर, जितनी अक्षौहिणी सेना है अपने आत्मैक्यानुभव से सब नाश कर कि यह द्वैत कुछ नहीं, एक परब्रह्म ही सर्वत्र सर्वदा सर्वरूप हो स्थित है, सार्वत्रि की ब्रह्म भावना से ही ब्रह्मेतर भावना को निर्मूल करके स्वरूप स्थित हो, यही ब्रह्ममय युद्ध है, आत्म साक्षात्कार ही इस महायुद्ध में विजय का रूप है, सुख दुःख लाभ अलाभ जय पराजय इन सब में समता दृष्टि का अभ्यास परिपक्व हो, ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है, सब ब्रह्म ही है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, ऐसा जानकर लाभ अलाभ में सम होकर स्थित हो, अन्य किसी प्रकार का चिन्तन न करो, हे अर्जुन! जड़ शरीर के साथ कर्म स्वाभाविक होते हैं, जैसे वायु स्पन्द का (फुरणा) स्वाभाविक होता है ऐसे शरीर से कर्म स्वाभाविक होते हैं, हे

अर्जुन! जो कुछ कार्य करे, भोजन करे, दान करे, यज्ञ करे, सब आत्मा को ही अर्पण करे और सदा आत्मसत्ता में स्थित रहो और सबको आत्मरूप देखो, हे अर्जुन! जो किसी के अन्दर दृढ़ निश्चय होता है, वही रूप उसको भासता है, जब तू इस प्रकार अभ्यास करेगा तब ब्रह्मरूप हो जावेगा, इसमें संशय कुछ नहीं, हे अर्जुन! कर्मों में जो आत्मा को अकर्ता देखता है और अकर्ता जो है अकरणा अभिमान सहित उसको कर्ता देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और सम्पूर्ण कर्मों का कर्ता भी है, कर्तव्य कुछ न रहे ऐसा अर्थ है, हे अर्जुन! कर्मों के फल की इच्छा भी न हो और कर्मो में विरसता भी न हो, मैं न करूं, योग में स्थित होकर कर्म करो, हे धनंजय! कर्तृत्व अभिमान और फल की वांछा को त्यागकर कर्म करो, जो मानव कर्मों के फल और संग को त्यागकर नित्य तृप्त हुआ है, वह कर्ता हुआ भी कुछ नहीं करता, कार्य अकार्य को कर्ता भी नहीं करता, हे अर्जुन! कर्मों के फल की इच्छा भी न हो और कर्मों के फल और संगम को त्यागकर नित्य तृप्त हुआ है, वह कर्ता हुआ भी कुछ नहीं करता, कार्य अकार्य को कर्ता भी नहीं करता, हे अर्जुन! जिसने सर्व आरंभ में कामना, संकल्प का त्याग किया है, ज्ञानाग्नि से कर्म जलाये हैं, उसको बुद्धिमान् पंडित कहते हैं, जो सम आत्मा में स्थित है, सर्व अर्थ में निःस्पृह है, निर्द्वन्द्व सत्ता स्थित यथा प्राप्त वर्तता है, वह पृथ्वी का भूषण है, समुद्र की नाईं अचल है और अपने आप में तृप्त है, जैसे अनिच्छ समुद्र में जल प्रवेश करता है, ऐसे ज्ञानवान् में सुख प्रवेश करते हैं, वह शान्तरूप सब कामनाओं से रहित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्म प्रतिपादन वर्णन नाम चतुष्पंचाशः सर्गः ।।५४।।

पंचपंचाशः सर्गः ५५

जीवतत्वनिर्णय वर्णनम्।

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! तुम आत्मा हो, वह कैसे आत्मा जो देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित अविनाशी है और अजर है, अजर—अर्थात् परिणाम से रहित है, हे अर्जुन! तू शोक मत कर, यह जो तुझको जगत् भासता है, अज्ञान से भासता है, अज्ञान है अपना प्रमाद और प्रमाद है अनात्म में आत्माभिमान, इसका नाम अज्ञान है, हे अर्जुन! यह जो संसाररूप तेरा देह है इसमें अभिमान मत कर, यह मिथ्या है, इससे दुःख होता है और तू असंग है, अविनाशी है, तेरा नाश कदाचित् नहीं होता, हें अर्जुन! जो विनाशरूप है, उसका होना कदाचित् नहीं और सत्य है, उसका अभाव कदाचित् नहीं, तत्ववेताओं ने इन दोनों का निर्णय किया है, हे अर्जुन! उसको अविनाशी जान जिससे यह सब कुछ प्रकाशित है, उसके विनाश करने को कोई समर्थ नहीं, हे अर्जुन! तुम ऐसे हो और यह आत्मा सबका अपना आप है, उसका विनाश कैसे हो, अज्ञानी मनुष्य उसका नाश होना मानते हैं, अर्जुन ने कहा—हे भगवन्! आप कहते हैं आत्मा अविनाशी हैं और सबका अपना आप है, तो उसका नाश कैसे हो सकता है, श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन! तुम सच कहते हो, परमार्थ से किसी का नाश नहीं होता, परन्तु अज्ञान से उसका नाश होता है जिनको मृत्यु ग्रस लेता है, हे अर्जुन! तुम आत्मवेत्ता बनो, वह आत्मा एक है, अद्वैत है, जिसमें एक कहने का भी अवकाश नहीं, वहां द्वैत कहां हो, अर्जुन बोला—हे भगवन्! आपने कहा आत्मा एक है, तब मृत्यु भी द्वितीय न हुआ और लोक मरते हैं, मरकर स्वर्ग नरक भोगते हैं, जब मृत्यु नहीं तब लोक क्यों मरते हैं और पाप पुण्य क्यों भोगते हैं, श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन! न कोई मरता है न कोई जन्म लेता है, यह स्वप्न की नाईं मिथ्या कल्पना है, जैसे निद्रा दोष से जन्म और मरण भासता है, ऐसे संसार में यह जन्म मरण भासता है,

वह अज्ञान से प्रतीत होता है, अज्ञान नाम फुरणे का है, उस फुरने ही ने स्वर्ग और नरक की कल्पना की है, हे अर्जुन! जैसे यह जीव भोगता है, वह तू श्रवण कर, अपने स्वरूप के प्रमाद से आगे संकल्प के शरीर रचे हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश मन बुद्धि, अहंकार यह पुर्यष्टका है, इसमें जीव प्रवेश करता है, उसके साथ मिलकर जैसी वासना करता है वैसी ही आगे भोगता है। वासना तीन प्रकार की है, एक सात्विकी, एक राजसी, एक तामसी, जैसी वासना होती है, ऐसा स्वर्ग नरक बन जाता है, सात्विकी वासना से स्वर्ग बन जाता है, इतर वासनाओं से नरकादिक बन जाते हैं, स्वर्ग नरक केवल वासना मात्र है, वास्तव से न कोई स्वर्ग है, न कोई नरक है, न कोई मरता है, न कोई जन्म लेता है, केवल एक आत्मा ही ज्यों का त्यों स्थित है, परन्तु यह जगत् भास भ्रम से भासता है, अज्ञान से चिरकाल तक वासना का अभ्यास किया है, इसी कारण से भ्रम देखता है, अर्जुन बोला—हे जगत्पते! नरक स्वर्गादि योनियों का जगत् में यह जीव देखता है, उस नाना प्रकार से देखने में कारण कौन हैं? श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन! अज्ञान से जो अनात्म में आत्माभिमान हुआ है, उससे जगत् को सत् जानने लगा है, सत् जानकर वासना करने लगता है, जैसे जैसे जगत् को सत् जानकर वासना करता है, ऐसे जगत् भ्रम को देखता है, जब इसको आत्मविचार उत्पन्न होता है, तब जगत् को स्वप्न की नाईं देखता है और वासना भी क्षय हो जाती है, जब वासना क्षय होती है तब कल्याण को प्राप्त होता है, अर्जुन ने कहा—हे भगवन्! दीर्घकाल के अभ्यास से जो जो संसार भ्रम दृढ हो रहा है, वह किस प्रकार उत्पन्न होता है और किस प्रकार लीन होगा? श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! मूर्खता और अज्ञान से अनात्म देहादिक में आत्म भावना होती है, उससे जगत् को सत् जानकर वासना करता है, उस वासना के अनुसार जगद्भ्रम को देखता है, जब स्वरूप का अभ्यास करता है तब वासना नष्ट हो जाती है, इसलिये हे अर्जुन! तू स्वरूप का अभ्यास कर, अहं मम आदिक वासना को त्याग कर केवल आत्मा की वासना कर, हे

अर्जुन! यह देह वासनारूप हैं, जब वासना निवृत्त होगी तब देह भी लीन हो जायगा, जब देह लीन हुआ, तब देशकाल क्रिया, जन्म, मरण भी रहेंगे। यह अपने ही संकल्प से उठे हैं, भ्रमरूप हैं, उनकी वासना से वेष्टित हुआ जीव भटकता है, जब आत्मबोध होता है, तब वासना से मुक्त होता है, निरालम्ब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्व को पाता है, उसी को मोक्ष कहते हैं, उसकी वासना क्षय हुई है, हे अर्जुन! जब जीव को तत्व बोध होता है, तब वासनारूप जालं से मुक्त होता है, जो वासना से मुक्त हुआ, वह मुक्त हुआ, जो पुरुष सर्व धर्म परायण भी है और सर्वज्ञ है शास्त्रों का वेत्ता भी है, परन्तु वासना से मुक्त नहीं हुआ, वह सर्व ओर से बद्ध है, जैसे दृष्टि के दोष में निर्मल आकाश में मोर के पुच्छवत् तरवरे भासते हैं, ऐसे मूर्ख को शुद्ध आत्मा में वासना रूप मल जगत् भासता है, जैसे पिंजरे में पक्षी बांधा होता है, ऐसे वह बद्ध होता है, जिसके अन्दर वासना है, वह बद्ध है, जिसके अन्दर वासना नहीं, उसको मुक्त ज़ानो, हे अर्जुन! जिसके अन्दर जगत् की वासना है और बड़ा प्रभुता संयुक्त दृष्टि आता है तो भी निर्धन है, दुःखी है और जिसकी वासना नष्ट हुई है और प्रभुता रहित दृष्टि आता है, तो भी बड़ा प्रभुतावान् है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अजुर्नोपदेश जीवत्वनिर्णय वर्णनं नाम पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६
चित्तवर्णनम् ।

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! इस प्रकार तुम निर्वासन जीवन्मुक्त होकर विचरो! तुम्हारा अन्तःकरण शीतल हो जायेगा और जरा मरण मुक्त होकर आकाशवत् निःसंग हो जाओगे। इष्ट अनिष्ट को त्यागकर वीतराग होकर स्थित हो जाओगे। हे अर्जुन! प्रवाह पतित जो कार्य आन पड़े उसको करो, युद्ध में भीरु मत बनो, आत्मा अविनाशी है और देह नाशवान् है, देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता, हे अर्जुन! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे राग द्वेष से रहित होकर प्रवाह पतित कार्य को करते हैं, तू भी जीवन्मुक्त स्वभाव होकर विचर और यह मैं करूँ, यह न करूँ, इस ग्रहण त्याग के संकल्प का त्याग कर, ऐसा करने से ज्ञानवान् बन्धन में नहीं पड़ते, मूर्ख बन्धन में आ जाते हैं, जीवन्मुक्त पुरुष सुषुप्त की नाईं स्थित होकर प्रवाह पतित कार्य को करते हैं और प्रबुद्ध की नाईं वासना से रहित हुए कार्य करते हैं, जैसे कच्छप अपने अंग खींच लेता है, ऐसे ज्ञानवान् वासना को संकुचित कर लेता है और अपने आपको चिन्मात्र रूप जानता है और ऐसा समझता है कि जगत् मेरे में मणि के समान पिरोया हुआ है और सब्र जगह मेरे अंग है, जैसे अपने हाथ पसारे और खैंचे, जैसे समुद्र से तरंग उठते और लीन होते हैं, ऐसे विश्वात्मा से उत्पन्न होता है और लीन होता है, भिन्न कुछ नहीं, हे अर्जुन! चंदोए के ऊपर नाना प्रकार के चित्र लिखे होते हैं, परन्तु वह रंग वस्त्र से भिन्न नहीं होते, ऐसे आत्मा में मन रूप चितेरे ने जगत् रचा है और न हुआ सा प्रतीत होता है, जैसे स्तंभ में चितेरा कल्पना करता है कि इतनी पुतलियाँ निकलेंगी, आकाशरूप पुतलियां उसके मन में फुरती हैं, ऐसे यह तीनों जगत् काल संयुक्त चित्त में फुरते हैं, चितेरा भी मूर्तियाँ तब लिखता है जब भीत होती है, यह आश्चर्य है कि आकाश में मन मूर्तियों

की कल्पना करता है, हे अर्जुन! यह मूर्तियां स्पष्ट भासती हैं, तो भी आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, ऐसे यह भी है, जैसे मनोराज्य स्वप्नपुर में, जगत् मन के फुरने से भासता है और अस्फुरण हुए लय हो जाता है, वह मनोमात्र है, ऐसे यह जगत् मनोमात्र है, आकाश से भी शून्यरूप है, जैसे स्वप्नपुर और मनोराज्य में एक क्षण में बड़े काल का अनुभव होता है, पूर्वरूप के विस्मरण से सत् हो भासता है ऐसे ऐसे यह जगत् सत् हो भासता है, जब तक प्रमाद होता है, तब तक भासता है, जब इस क्रम से आत्मा को देखता है, तब जगत् भ्रम निवृत्त हो जाता है, प्रकट देखता है परन्तु लीन हो जाता है, शरत्काल के आकाशवत् निर्मल हो भासता है जैसे चितेरे के चित्त में चित्र फुरते हैं, वे आकाशरूप हैं, ऐसे यह जगत् आकाशरूप है, हे अर्जुन! भाव और अभाव वृत्ति को त्यागकर स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो, तब आकाशवत् निर्मल हो जावोगे, जैसे मेघ की प्रवृत्ति में भी आकाश निर्मल होता है और निवृत्ति में भी निर्मल होता है ऐसे तुम पदार्थ के भाव अभाव में निर्मल हो, जितने पदार्थ भासते हैं सब आकाशरूप हैं, जैसे–चितेरे के मन में पुतलियाँ प्रतीत होती हैं, ऐसे यह जगत् आकाशरूप है, जैसे मन के संकल्प से एक क्षण में नाना प्रकार के पदार्थ भास आते हैं, अफुरण से लीन हो जाते हैं, ऐसे प्रमाद से जगत् भासता है, आत्माके जानने से हो जाता है और आत्मा में निर्वाणरूप है, आत्म में निमेष के फुरणे से प्रमाद से वज्रसार की नाईं दृढ़ हो भासता है और चित्त के फुरणे से यह सत् भासता है, सब जगत् आकाशरूप है, द्वैत कुछ हुआ नहीं, बड़ा आश्चर्य है कि आकाश पर मूर्तियां लिखी हैं और नाना रूपों से रमणीय प्रतीत होती हैं और मन को मोहित करती हैं, हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि कुछ नहीं और नाना प्रकार के रंग प्रतीत होते हैं, आकाशरूप नीला–तालाब है, चन्द्रमा तारे आदि उसमें फूल खिले हैं और मेघरूप उनको पत्र लगे हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अर्जुनोपदेश चित्त वर्णनं नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥५६॥

सप्तपंचाशः सर्गः ५७

अर्जुन विश्रान्ति वर्णनम् ।

श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन! और आश्चर्य देखो, चित्र भी तब बनता है जब उसका प्रथम आधार भीत अथवा वस्तु हो जाता है, यहां चित्र पहिले बनते हैं और उसकी आधारभूत भित्ति उसके पीछे बनती है, हे अर्जुन! यह माया की प्रधानता है जो वास्तव आकाशरूप चितेरे ने आकाशरूप पुतली रची है, आकाश में आकाशरूप पुतलियां उत्पन्न हुई हैं, आकाश में लीन हो जाती हैं, आकाश ही का भोजन करती हैं, आकाश ही को आकाश देखता है, आकाश ही यह सृष्टि है, आकाश ही रूप आकाश आत्मा में आकाशरूप स्थित है, हे अर्जुन! वास्तव से आत्मा ऐसा है, उस ऐसे अद्वैतरूप आत्मा में जो उत्थान हुआ है, उस उत्थान से उसको स्वरूप का प्रमाद हुआ है, उससे आगे दृश्य भ्रम को देखता है और अनेक वासनाएं होती हैं, वासनारूप जेवरी से बंधा हुआ भटकता है, वासना से ही अहंत्वं आदि शब्दों को जानने लगता है और नाना प्रकार का भ्रम देखता है, तो भी स्वरूप ज्यों का त्यों है, जैसे दर्पण में प्रतिबिंब पड़ता है और दर्पण ज्यों का त्यों रहता है, ऐसे आत्मा में जगत् प्रतिबिंबित होता है और आत्मा छेद भेद से रहित है, ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है, जब सर्व वही है, तब छेद भेद किसका हो, जैसे जल में तरंग बुदबुदे होते हैं, वे जलरूप हैं, ऐसे यह सब ब्रह्म ही से पूर्ण हैं, उसमें द्वैत कुछ नहीं, जैसे आकाश में आकाश स्थित है, ऐसे आत्मा में आत्मा स्थित है, उसमें वास्य वासक कल्पना कोई नहीं, परन्तु स्वरूप के प्रमाद से वास्यवासक भेद होता है, जब स्वरूप का ज्ञान होता है, तब वासना नष्ट हो जाती है, हे अर्जुन! जो वासना से मुक्त है, वही मुक्त होता है, जो वासनाओं से बन्धा है वही बन्धन में है, जो सर्व शास्त्रों का वेत्ता भी है, सर्व धर्मों से पूर्ण भी है, यदि वासनाओं से मुक्त नहीं हुआ तो वह बन्धन में पड़ा है, जैसे पिंजरे में पक्षी बन्धा हुआ होता है, ऐसे ही वह पुरुष

वासनाओं से बन्धा हुआ है, हे अर्जुन! जिसके अन्दर वासना का बीज रहा है और बाहिर से नहीं दीखता, वह बीज भी बड़े विस्तार को प्राप्त होता है, जैसे वट का बीज बड़े विस्तार को पाता है, ऐसे वह वासना बहुत विस्तार को पायेगी और जिस पुरुष ने आत्मा का अभ्यास किया है, उससे ज्ञान अग्नि उत्पन्न की है और उससे वासना बीज जलाया है, उसको पुनः संसार भ्रम नहीं होता और वस्तु बुद्धि से पदार्थ की ग्रहण नहीं करता और सुख दुःखादिक में नहीं डूबता, सदा निर्लेप रहता है, जैसे तूम्बिका जल के ऊपर ही रहती है, ऐसे वह सुख दुःख के ऊपर ही रहता है, हे अर्जुन! तू शान्तात्मा है, तेरा भ्रम अब दूर हुआ है, तुम्हें आत्पपद की प्राप्ति हुई है, तेरा मोह दूर हो गया है, मन शान्त हुआ है अब तू ज्ञानवान् हो गया है, समाधि और व्यत्थान तुम्हें समान हो गया है। मैं यह जानता हूँ कि तू शान्तरूप निःशंकपद को प्राप्त हुआ है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
अर्जुन विश्रान्ति वर्णनं नाम सप्तपंचाशः सर्गः ।।५७।।

अष्टपंचाशः सर्गः ५८

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यद्गीता समाप्ति वर्णनम् ।

अर्जुन ने कहा—हे अच्युत! अब मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैं आत्म स्मृति को प्राप्त हुआ हूँ, आपके प्रसाद से मैं अब निःसन्देह होकर स्थित हुआ हूँ, अब जो कुछ कहो, मैं करूं, श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन! मन की जो पांच वृत्तियाँ हैं, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव, स्मृति, जब यह पांचों हृदय से निवृत्त हो जायँ, तब संभव है कि चित्त शान्त हो, उसके पीछे जो शेष रहता है, चैत्य से रहित चेतन, उसको प्रत्यक् चेतन कहते हैं, वह वस्तुरूप है, सर्व उपाधि से रहित सर्व है, सर्वरूप है, जो उस पद को प्राप्त हुआ है, उसको आधिव्याधि आदिक दुःख दुःखी नहीं कर सकते, जैसे पक्षी जाल से निकलकर आकाश मार्ग की ओर उड़ता है, उसी प्रकार वह देह अभिमान से मुक्त होकर आत्मपद को प्राप्त होता है, उसको दुःख बाधा नहीं पहुँचा सकते, हे अर्जुन! प्रत्यक् चेतन् सत्ता परम प्रकाशरूप शुद्ध है, संकल्प विकल्प से रहित है, इन्द्रियों के विषयों में नहीं आता, इन्द्रियों से अतीत है, जो पुरुष सब से अतीत पद को प्राप्त हुआ है, उसको वासना नहीं स्पर्श कर सकती, उसके प्राप्त हुए यह घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य हो जाते हैं, वहां तुच्छ वासना का बल कुछ नहीं चलता, जैसे अग्नि समूह के निकट बर्फ गल जाती है, उसकी शीतलता नहीं रहती, ऐसे ही शुद्ध पद का साक्षात्कार हुए चित्तवृत्ति नष्ट हो जाती है और वासना का भी अभाव हो जाता है, हे अर्जुन! वासना तब तक फुरती है जब तक संसार को सत्य जानता है, जब आत्मपद की प्राप्ति होती है, तब संसार और वासना का अभाव हो जाता है, इस कारण से विरक्त पुरुष को सत्य जानने से कुछ वासना नहीं रहती, तब तक नाना प्रकार के आकार विकार संयुक्त विद्या फुरती है, जब तक शुद्ध आत्मा को अपने आप से नहीं जाना, शुद्ध आत्मा को प्राप्त हुए,

जगद्भ्रम सब नष्ट हो जाता है, आत्मतत्व स्वच्छपद में स्थित होता है, आकाशवत् निर्मल भाव को प्राप्त होता है और अपने आप से सबको पूर्ण देखता है, वही आत्मसत्ता सर्व आकार रूप है और सब आकार रूप से रहित है, हे अर्जुन! जो शब्द से अतीत परम वस्तु है उसको किसी की उपमा दीजिये, जो वासनारूप विषूचिका को त्यागकर अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुआ पृथ्वी पर विचरता है, वह त्रिलोकी का नाथ है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार त्रिलोकी का नाथ कहेगा, तब अर्जुन एक क्षण भर मौन होकर स्थित हो जाएगा और उसके बाद कहेगा–हे भगवन्! मेरे सब शोक नष्ट हो गये हैं, तुम्हारे वचनों से बोध उदय हुआ है, जैसे सूर्य के उदय हुए कमल खिल आते हैं, ऐसे तुम्हारे वचनरूप सूर्य के प्रसाद से मेरे हृदयरूप सरोवर में बोधरूप कमल खिला है, अब जो कुछ आपकी आज्ञा होगी वह मैं करूँगा, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार कहकर अर्जुन गाण्डीव धनुष को ग्रहण करेगा, भगवान् को सारथी बनाकर निस्संदेह निश्शंक होकर रणलीला रचायेगा, ऐसा घोर संग्राम होगा जिसमें रक्त के प्रवाह चलेंगे, तो भी वह वीर आत्मतत्व में स्थित रहेगा, स्वरूप से विचलित न होगा, शूरों को नष्ट कर देगा परन्तु स्वयं यथावत् रहेगा, जैसे पवन मेघ का नाश करता है ऐसे अर्जुन योधाओं का नाश करेगा। परन्तु स्वरूपस्थ रहेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भविष्यद्गीता समाप्तिर्नामाष्ट पंचाशः सर्गः ।।५८।।

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

प्रत्यगात्मबोध वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ऐसी दृष्टि का आश्रय लेकर संन्यासी बनो जो दुःख का निर्मूल नाश कर देती है और जो भी कर्म चेष्टा हो

ब्रह्मार्पण हो, जिसमें यह सब है और जिससे यह सब है, ऐसी सत्ता को तू परमात्मा जान, अनुभवरूप आत्मा है, उसकी भावना से उसी को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं, जो सत्ता संवेदन फुरणे से रहित है, चेतन से रहित जो चेतन प्रकाशित होता है उसको परमपद जानो, वह सबका परम दृष्टारूप है और सबका प्रकाशक है, वह परमोत्तम गुरुओं का गुरु है, वह आत्मरूप है, शून्यवादी जिसको शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, ब्रह्मवादी जिसको ब्रह्म कहते हैं, वह परम साररूप है, वह शिवरूप है, शान्तरूप है, अपने आप में स्थित है, वह आत्मा इस जगत्रूप मंदिर को प्रकाशित करनेवाला अखंड ज्योति दीपक है, वह जगद्रूप वृक्ष का रस है, जगत्‌रूप पशुओं का पालक गोपाल है और जीव समूहरूप मोतियों को एकत्र करनेवाला आत्मारूप धागा है, हृदय आकाश में स्थित है, जीवरूप मिरच में आत्मरूप तीक्ष्णता है और सब पदार्थों में पदार्थरूप सत्ता वही है, सत्य में सत्यता वही है, असत्य में असत्यता वही है, जगत् रूप घर में पदार्थों का प्रकाशक दीपक वही है, उससे सब सिद्ध होते हैं, चन्द्रमा, सूर्य, तारे आदिक जो प्रकाशरूप दिखाई दे रहे हैं, इनका प्रकाश क वही है, यह जड़ प्रकाश है वह चेतन प्रकाश है, उससे यह सिद्ध होते हैं, उसीसे सब प्रकाश प्रकट हुए हैं, वह आत्मसंवित् अपने विचार से पाता है, हे रामजी! जितने कुछ भाव अभाव पदार्थ भासते हैं वे असत् हैं, वास्तव से हुए ही नहीं, प्रसाद दोष से नानारूप भासते हैं, जब विचार उत्पन्न होता है, तब यह नष्ट हो जाते हैं, हे रामजी! अहंभाव जिसके अंदर है, ऐसा जो जगज्जाल है, वह मिथ्या भ्रम से भासता है, इसको उत्पन्न हुआ क्या कहें और सत्य क्या कहें और किसकी आस्था की जाय, यह जगत् कुछ वस्तु नहीं, आदि अन्त मध्य की कल्पना से रहित जो देव है वह ब्रह्मसत्ता समान अपने आपमें स्थित है, अपर द्वैत कुछ बना नहीं जब यह निश्चय तुझको दृढ होगा तब तू व्यवहार करता भी अंदर से निस्संग शान्तरूप होगा, हे रामजी! जिस पुरुष की उस समान सत्ता में स्थिति हुई है, वह इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति

में राग द्वेष से रहित अन्दर से सदा शान्तरूप रहता है, वह न उदय होता है, न अस्त होता है, सदा समता भाव में स्थित रहता है, स्वस्थरूप अद्वैत तत्व में स्थित होता है, जगत् की ओर से सुषुप्तवत् हो जाता है, व्यवहार भी करता है परन्तु क्षोभवान् नहीं होता, दर्पण की नाईं जैसे मणि सब प्रतिबिंबों को ग्रहण करती है, परन्तु उसको अन्तर संग नहीं होता, ऐसे ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलना कलंक को नहीं प्राप्त होता उसका चित्त व्यवहार में सदा निर्मल रहता है, ज्ञानवान् को जगत् आत्मा का चमत्कार प्रतीत होता है, न एक है न अनेक है, आत्मतत्व सदा अपने आपमें स्थित है, चित्त में यह जो चेतन भाव भासता है, उस चित्त फुरणे का नाम संसार है और फुरणे से रहित शुद्ध का नाम परम पद है, हे रामजी! महाचेतन में जो निज का अभाव है कि मैं आत्मा को नहीं जानता इसी का नाम चित्तस्पंद संसार का कारण है जब यह भावना क्षय हो तब चित्त अस्फुर होता है, हे रामजी! जहां निजभाव होता है, वहां पदार्थ का अभाव होता है, वह सब जगह अपने अर्थ को सिद्ध करता है, परन्तु आत्मा में प्रवृत्त नहीं हो सकता, जब यह कहता है कि मैं आत्मा को नहीं जानता, तब भी आत्मा का अभाव नहीं होता, अभाव को जानने वाला भी आत्मा ही है, यदि–आत्मतत्व न हो तब अभाव क्यों न कहे, वह आत्मा परम शून्य है परम कैसा शून्य है, जो अजडरूप परम चेतन है, हे रामजी! निज का अर्थ तू आत्मा में कर, जो आत्मा को निज की भावना नहीं होती, अर्थात् आत्मा का अभाव न मानो और अनात्म में जो निज का भाव है, उसका अभाव करे, अर्थात् अनात्मा को अभावरूप मानो, जब इस प्रकार दृढ भावना करोगे तो संसार भ्रम निवृत्त हो जायगा, केवल आत्मभाव शेष रहेगा, हे रामजी! चित्त के फुरने का नाम संसार है, चित्त के फुरणे से संसार चक्र वर्तमान होता है, माता, मान, मेय, त्रिपुटीरूप चित्त ही होता है, जैसे स्वर्ण से भूषण प्रकट होते हैं, ऐसे चित्त से त्रिपुटी होती है और चित्तस्पन्द भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं, आत्मा का आभासरूप है, अज्ञान से चित्तस्पंद होता है, ज्ञान से लीन हो जाता है,

जैसे स्वर्ण के भूषणों को पिघलाने से भूषण बुद्धि नहीं रहती, ऐसे ही चित्त अचल हुए चित्त संज्ञा जाती रहती है, जैसे भूषण के अभाव हुए स्वर्ण ही रहता है, ऐसे ज्ञानद्वारा चित्त जगत् के लीन हुए शुद्ध चेतन सत्ता शेष रहती है, भोगतृष्णा लीन हो जाती है, जब भोग भावना निवृत्त हुई, तब ज्ञान का परप लक्षण सिद्ध होता है, हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है, जिसने सत् स्वरूप को जाना है, उसको भोगों की इच्छा नहीं रहती, जैसे जो परम अमृत पीने से तृप्त रहता है, उसको खल आदि तुच्छ भोजन की इच्छा नहीं रहती, ऐसे जो आत्मज्ञान से सन्तुष्ट हुआ है, उसको विषयों के भोग की तृष्णा नहीं रहती यह निश्चित बात है, जब चित्त फुरता है तब जगद्भ्रम हो भासता है और सत्य जानकर भोग की इच्छा होती है, जब बोध होता है, तब जगद्भ्रम लीन हो जाता है, फिर तृष्णा किसकी की जाय और जब इन्द्रियों के विषय आकर प्राप्त हों और हठ से उनको न भोगे तो वह मूर्ख है, मानो शस्त्र से आकाश को काटता है, हे रामजी! मन जो वश में होता है गुरु और शास्त्र की युक्ति से होता है, उनकी युक्ति के बिना शुद्धता नहीं प्राप्त होती, जब कोई अपने अंग को ही काटे और उससे चित्त को स्थिर किया चाहे, तो चित्त स्थिर नहीं होता और संसार भ्रम नहीं मिटता, जब तक चित्त कोटि में स्थित है, तब तक जगद्भ्रमको देखता है, जब गुरु और शास्त्र की युक्ति को ग्रहण करके चित्त का अभाव करता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, चित्त अचल हो जाता है, जैसे बालक को अन्धकार में पिशाच भासता है और दीपक जलाकर देखने से अंधकार निवृत्त हुए पिशाच भ्रम नष्ट हो जाता है, तब बालक निर्भय होता है, ऐसे ही आत्मज्ञान से युक्तिपूर्वक अज्ञान निवृत्त होता है, असम्यक् बुद्धि से जगद्भ्रम हुआ है, सम्यग् बोध से निवृत्त हो जाता है, फिर जाना नहीं जाता कि अज्ञान का जगद्भ्रमकहां गया जैसे दीपक के निर्वाण हुए नहीं जानता कि प्रकाश कहां गया, ऐसे अज्ञान नष्ट हुए नहीं जानता कि कहां गया, चित्त के फुरणे से बन्ध होता है अस्फुरण हुए मोक्ष होता है, परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, आत्मसत्ता ज्यों की

त्यों है, उसमें न बन्ध है, न मोक्ष है, हे रामजी! जब इसको मोक्ष की इच्छा होती है तब भी इसकी पूर्णता का क्षय होता है और निःसंवेदन हुए कल्याण होता है, जो अनाभास अजड़रूप परम पद है चैतन्योन्मुखत्व से रहित है, हे रामजी! बन्धमोक्ष आदिक भी कलना में होते हैं, जब कलना से रहित बोध होता है, तब बन्ध मोक्ष दोनों नहीं रहते, जब तक विचारकर नहीं देखा तब तक बन्ध और मोक्ष भासता है विचार करने से दोनों का अभाव हो जाता है, जब अहं त्वम् इदं आदिक भावना का अभाव हुआ तब कौन किसको बद्ध कहे और कौन किसको मुक्त कहे, सब कलना चित्त के फुरने से होती है, जब चित्त का स्फुरण नष्ट होता है तब सब कलना का अभाव हो जाता है, तब शान्तिमान् होता है अन्यथा नहीं होता, इसलिये चित्त को आत्मपद में लीन करो। जिसके आश्रय यह जगत् उत्पन्न होता है और लीन होता है, ऐसा जो ज्ञान रूप आत्मा है उसी अनुभवरूप प्रत्यक् आत्म प्रकाश में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे प्रत्यगात्मबोधवर्णनं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ।।५९।।

षष्टितमः सर्गः ६०

विभूतियोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! परमतत्व जो परम आत्म पद है वह हमें सदा प्रत्यक्ष है, वस्तुरूप वही है, उससे इतर कुछ नहीं, यह प्रत्यक् आत्मा है, सर्वसत्ता का दर्पण है, सर्वसत्ता इसी से प्रकट होती है, जैसे बीज से वृक्ष की सत्ता प्रकट होती है, ऐसे आत्मा से जगत् सत्ता प्रकट होती है, हे रामजी! मन बुद्धि चित्त अहंकार जडात्मक हैं उनसे जो रहित है वह परम पद है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक सब उसमें स्थित हैं, उस सत्ता को पाकर बड़ी ऊँची प्रभुता से शोभा पाते हैं, जैसे चक्रवर्ती राजा एक निर्धन से कितना अधिक शोभावान् होता है, ऐसे ही यह सब लोकों से ऊँचे

होकर सुशोभित होते हैं, यह सब आत्मज्ञान की महिमा है, उस आत्म धन को पाकर मनुष्य अमर हो जाता है, मृत्यु उसको स्पर्श नहीं कर सकती। वह कभी शोकवान् न होता, एक क्षण भर भी जो अप्रमादी होकर आतमा को ज्यों का त्यों जानता है, वह संसार कलना को त्यागकर मुक्त हो जाता है, भगवान् बोले–हे मुनिवर! मन बुद्धि, चित्त, अहंकार के अभाव हुए सत्ता सामान्य शेष रहती है, उसका भान कैसे हो, वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! सब देहों में स्थित होकर भोजन करता है, जलपान करता है, देखता सुनता बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है, वह आदि अन्त से रहित संवित् सत्ता है, सर्वगत् अपने आपमें स्थित है और सर्व विश्व ही रूप है, आकाश में आकाश रूप वही है, शब्द में शब्द रूप वही है, स्पर्श में स्पर्श नासिका में गन्धरूप वही है, शून्यता में शून्य, रूप में रूप, नेत्रों में नेत्र वही है, पृथ्वी में पृथ्वी, जल में जल, तेज में तेज, वृक्ष में रस वही है, मन में मन, बुद्धि में बुद्धि, अहंकार में अहंकार रूप वही है, अग्नि में अग्नि, उष्णता में उष्णता, घट में घट, पट में पट रूप वही है, बट में बट, स्थावर में स्थावर, जंगम में जंगम रूप चेतन में चेतन, जड में जडरूप वही है, काल में काल, नाश में नाश उत्पन्न होकर स्थित होता है, बालक में बालक, जवानों में जवान, वृद्ध में वृद्ध, मृत्यु में मृत्यु होकर वही परमेश्वर स्थित है, नानात्व भी दृष्टि आता है परन्तु अनाना है, भ्रम से नानात्व भासता है, जैसे परछाईं में भ्रम से बैताल भासता है, ऐसे आत्मा में नानात्व भासता है, सबमें सब जगह सब प्रकार से सर्वात्मा ही स्थित है, ऐसे आत्म देव में स्थिति प्राप्त करो, बाल्मीकिजी बोले–इस प्रकार जब वसिष्ठजी ने कहा तब दिन अस्त हुआ, सर्व सभा के लोग परस्पर नमस्कार करके स्नानार्थ गये, दिनकर करों के साथ ही प्रणाम करके पुनः अपने अपने आसन पर आ बैठे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विभूतियोगोपदेशो नाम षष्टितमः सर्गः ।।६०।।

एकषष्टितमः सर्गः ६१

जगत्स्वप्नविचारवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! जैसे हमारे स्वप्न में पुर नगर मंडल होते हैं, ऐसे ब्रह्मादिक ने देव को ग्रहण किया है, उनको असत् में प्रतीति है, हमको दृढ प्रतीति कैसे उत्पन्न होती है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! पहिले ब्रह्मा को सर्ग असत्वत् प्रतीत होता है, वास्तव नहीं प्रतीत होता, सर्वगत चेतन संवित् को जब संसार के दर्शन से जब सम्यग् दर्शन का अभाव हुआ, स्वप्न रूंप में आपसे अहं प्रतीति उत्पन्न हुई, तब दृढ होकर देखने लगा, जैसे अपने स्वप्न में जगत् दृढ भासता है, स्वप्न नहीं जानता ऐसे ब्रह्मा का जगत् भी दृढ भासता है स्वप्न नहीं भासता, जो स्वप्न पुरुष से उत्पन्न हुआ है, वह स्वप्न है, हे रामजी! ऐसा जो सर्ग है वह जीव के प्रति उदय हुआ है, जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं, ऐसे चेतन तत्व का आभास जगत् फुरते हैं, जैसे स्वप्न पुर में अवास्तव पदार्थ होते हैं, ऐसे यह पदार्थ भी अवास्तव हैं, भ्रममात्र ही मन के संकल्प से प्रतीत होते हैं, हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो इस जगत् में सिद्ध नहीं होता और अपर का अपर नहीं भासता और मर्यादा को नहीं त्यागता, क्योंकि मन के संकल्प मात्र उत्पन्न हुए हैं, तुम देखो जैसे जल में अग्नि स्थित है, अथवा समुद्र में वडवाग्नि है, क्या विपर्यय है इसी कारण से मैं कहता हूँ, जो मनोमात्र है, जो आकाश में नगर वसते हैं, विमान प्रत्यक्ष चलते हैं और शिला जो हैं चिन्तामणि आदिक उनसे कमल उत्पन्न होते हैं, जैसे हिमालय पर्वत पर बर्फ उत्पन्न होती है और सब ऋतुओं के पुष्प एक ही समय उत्पन्न होते हैं, जैसे संकल्प वृक्ष से पत्थर निकल आते हैं, रत्नों के गुच्छे लगते हैं, शिलाओं से जल निकलता है, चन्द्रकान्त से अमृत द्रवता है, एक निमेष में घट पट हो जाते हैं और पट घट हो जाते हैं, स्वरूप के विस्मरण से सत् को असत् देखता है, जैसे स्वप्न में अपनी मृत्यु देखता है जल ऊर्ध्व को चल देखता है, मेघ बनकर स्वर्ग का चंदोआ बनकर गंगा

बहती है, पत्थर उड़ते हैं जैसे पंखों सहित पहाड उड़ते थे, शिलारूप चिन्तामणि सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं इत्यादिक भ्रम से नानात्व विपर्ययरूप हुए फुरते हैं, इसलिये तुम देखो जो मनोमात्र हैं और का और हो जाते हैं, हे रामजी! यह इन्द्रजाल गन्धर्व नगर शंबर मायावत् हैं असत् ही भ्रम से सत् होकर भासते हैं, ऐसे पदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं ओर असत् भी नहीं, मन में फुरते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जगत्स्वप्नविचारो नामैकषष्टितमः सर्गः ।।६१।।

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

भिक्षुसंसारोदाहरणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, जो पुरुष इसको सत्य जानता है, वह महामूर्ख है और भ्रम को देखता है तथा महामोह को प्राप्त होता है, जैसे कोई मृग गर्त में गिर पड़ने से महादुःखी होता है, फिर उससे भी बड़े गड्ढे में गिरता है, तब अति दुःखी होता है, ऐसे ही जो मूर्ख पुरुष है, वह आत्मा के अज्ञान से संसाररूप गड्ढे में गिरता है, उसमें और भ्रम देखता है, स्वप्न से स्वप्नान्तर देखता है इसी विषय में एक इतिहास कहता हूं, हे रामजी! सुनो! एक ममनशील संन्यासी था, योग के आठवें अंग समाधि में उसकी स्थिति थी, समाधि के निरन्तर अभ्यास से उसका हृदय शुद्ध हो गया था, वह समाधि में ही दिन को व्यतीत करता था, इसी प्रकार के महान् अभ्यास में लगे हुए उसको बहुत समय बीत गया, एक दिन समाधि से उठकर विचार करने लगा, कि जैसे प्रकृत पुरुष विचरते हैं और चेष्टा करते हैं, ऐसे मैं भी करूं, ऐसा विचारकर मन के संकल्प से उसने विश्व की कल्पना की, उसमें एक आपभी बना, उसका नाम झीवट नियत हुआ, वह मद्यपान करता था और ब्राह्मण की सेवा भी करता था, उस झीवट शरीर में वसने लगा, एक समय चेष्टा

करते हुए सो गया, तब स्वप्न देखा, स्वप्न में ब्राह्मण का शरीर उसको भान हुआ कि मैं ब्राह्मण हूं, तब ब्राह्मण के शरीर में वेद का अध्ययन करने लगा, तब पाठ बहुत किया करता, ऐसी चेष्टा करते बहुत समय बीत गया, तब सोये हुए को फिर स्वप्न आया, उस स्वप्न में अपने आपको राजा देखा कि मैं राजा हूं, बहुत बडी सेना को साथ लिये राजा बनकर विचरने लगा, इसी प्रकार कुछ समय बीतने पर सोये हुए उसने फिर स्वप्न देखा, उस स्वप्न में उसने अपने आपको चक्रवर्ती राजा देखा कि मैं चक्रवर्ती राजा हूं, तब चक्रवर्ती होकर सारी पृथ्वी पर आज्ञा चलाने लगा, इस प्रकार के व्यवहार में भी कितना ही समय बीत गया एक दिन स्वप्न आयां उसमें उसने अपने आपको देवांगना देखा कि मैं देवता की स्त्री हूं, तब देवांगना होकर देवताओं के साथ बागों में विचरने लगा, जैसे वल्ली वृक्ष के शोभा पाती है, ऐसे देवता के साथ शोभा पाने लगा, ऐसे ही कुछ समय देवताओं के साथ बीता, तब फिर स्वप्न देखा, उस स्वप्न में अपने आपको हरिणी देखा कि मैं हरिणी हूं, हरिणी होकर बन में विचरने लगा, कुछ समय ऐसे भी बीता, पुनः स्वप्न आया, उसमें अपने आपको बल्ली देखा कि मैं वन की बल्ली हूं, जब इसमें भी कुछ समय बीत गया तब फिर स्वप्न आया, उस स्वप्न में उसने अपने आपको भँवरी देखा कि मैं भ्रमरी हूं, भ्रमरी होकर सुगन्ध ग्रहण करने लगा उसके बाद फिर स्वप्न आया, तब देखा कि मैं कमलिनी हूं, कमलिनी हुआ, वहां एक हस्ती आकर बल्ली को खा गया, जैसे कोई मूर्ख बालक भली वस्तु को तोड़ डालता है, ऐसे वह मूर्ख हस्ती बल्ली को तोड़कर खा गया, उसके अनन्तर उस बल्ली में हस्ती का शरीर पाकर बड़ा दुःखी हुआ, एक गड्ढे में गिर पड़ा, कितना काल बीत गया, तब फिर हस्ती का स्वप्न आया फिर भँवरी होकर कमल में विचरने लगा, कितना ही समय बीत गया, फिर बल्ली हुआ, उस बल्ली के पास एक हस्ती आया, हस्ती के पाद से वह बल्ली चूर्णित हुई, तब उस बल्ली को एक हंस ने खाया, वह बल्ली हंस हुई, हंस होकर बड़े मानसरोवर में विचरने लगा, फिर हंस के मन में

आया कि ब्रह्मा का हंस बनूं, तब संकल्प से ब्रह्मा का हंस बन गया, जैसे जल का तरंग बन जाय, ऐसे वह ब्रह्मा का हंस बन गया, तब ब्रह्मा के उपदेश से हंस को ज्ञान प्राप्त हुआ, हे रामजी! अज्ञान से ऐसे भ्रम को प्राप्त हुआ था वह भ्रम ज्ञान द्वारा शान्त हुआ, अनंतर विदेह मुक्त होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भिक्षुसंसारोदाहरणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ।।६२।।

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

स्वप्नशतरुद्रीयवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वह हंस सुमेरु पर्वत पर उड़ा जाता था, उसके मन में आया कि मैं रुद्र बन जाऊं, तब संकल्प के प्रभाव से वह रुद्र हो गया, जैसे शुद्ध दर्पण में प्रतिबिंब शीघ्र ही पड़ता है, ऐसे शुद्ध अन्तःकरण के संकल्प से रुद्र हुआ, रुद्र उसको कहते हैं, जिसको अनुत्तर ज्ञान हो अनुत्तर ज्ञान वह है जिसके जानने से अपर जानना कुछ न रहे सबसे श्रेष्ठ ज्ञान, रुद्र को अनुत्तर ज्ञान है, इस अनुत्तर ज्ञान से शोभित होकर रुद्र चेष्टा करने लगा और अपने गुण को देखने लगा, रुद्र के मन में विचार हुआ कि बड़ा आश्चर्य है, मैं अज्ञान से इतने बड़े भ्रम को प्राप्त हुआ था, ऐसी आश्चर्य माया, मैं तो एक रूप पडा हूं और यह विश्व मेरा स्वरूप है, मेरे जो अपने शरीर हैं, उनको जाकर जगाऊँ, तब रुद्र उठा और अपने स्थान को चला, प्रथम जो संन्यासी का शरीर था, उसको आकर देखा, उसको देखकर चित्त शक्ति से जगाया, तब संन्यासी के शरीर में ज्ञान हुआ, कि सब मैं ही खड़ा हूं, परन्तु संन्यासी ने जाना कि मुझे रुद्र ने जगाया है, तब जान सका कि इतने शरीर मेरे और भी हैं, तब वहां से रुद्र और संन्यासी चले, झीवट के स्थान में आये देखा कि झीवट शव की नाईं पड़ा है और मदिरा के पात्र पड़े हैं और चेतना वहीं

पड़ी भ्रमण कर रही हैं, नानाप्रकार के स्थान देखती है, जैसे झरणे के छिद्र में कीड़ी घूमती है, तब झीवट को चित्त शक्ति से जगाया, वह उठ खड़ा हुआ, उसको ऐसे स्मरण हुआ कि मुझको इन्होंने जगा है, तब झीवट के मन में विचार हुआ कि इतने शरीर मेरे और हैं, तब रुद्र संन्यासी और झीवट तीनों चले, फिर इन्होंने विचार किया कि हमने इतने शरीर क्यों पाये, जो आदि एक परमात्मा में चैत्योन्मुखत्व करके मैं संन्यासी हुआ, संन्यासी से झीवट हुआ, मद्यपान करने लगा, तदनन्तर ब्राह्मण हुआ, वहां वेद का पाठ करने लगा, उस वेद के पाठ करने के पुण्य से राजा का शरीर धारण किया, उससे आगे जो बड़ा पुण्य प्राप्त हुआ उससे चक्रवर्ती राजा हुआ, जब चक्रवर्ती राजा के शरीर में काम बहुत हुआ, उससे देवताओं की स्त्री बना तब स्त्री शरीर में बहुत प्रीति नेत्रों में थी, उससे हरिणी हुआ भ्रमरी हुआ, उसके बाद बल्ली हुआ, इससे लेकर जितने शरीर धारण किये, मिथ्या धारण किये हैं और अज्ञान से मैं बहुत काल तक भटकता रहा हूं, अनेको वर्ष और सहस्रों युग व्यतीत हुए हैं, संन्यासी से लेकर रुद्र पर्यन्त वासना से जन्म पाये हैं, एक जन्म पाकर भी ब्रह्मा का हंस हुआ, वहाँ ज्ञान की प्राप्ति हुई, क्योंकि पूर्ण अभ्यास किया था, इस कारण से अकस्मात् सत्संग की प्राप्ति हुई, ऐसा विचार करते वहां से चले, तब चेतन आकाश में उड़े, वेद पाठ करने वाले ब्राह्मण की सृष्टि में गये, तब उसको देखा कि सोया पड़ा है, चित्त शक्ति से उसको जगाया, तब रुद्र संन्यासी झीवट मद्यपान करनेवाला और ब्राह्मण चारों वहां से चले, चित्ताकाश में उड़े, राजा की सृष्टि में गये, तब देखा कि राजा की सृष्टि चेष्टा करती है और राजा अपने मंदिर में शय्या पर सोया है और रानी भी साथ सोयी है, राजा का देह स्वर्ण की नाईं शोभा पा रहा है, ऐसा ही रानी का देह है, दोनों सोये पड़े हैं सहेलियां चमर करतीं हैं तब राजा को चित्त शक्ति से जगाया जब राजा ने देखा कि सब विश्व मेरा ही स्वरूप है और देखा कि इतने शरीर मैंने अज्ञान से धारण किये हैं, आश्चर्य है? माया है? राजा स्वरूप में जगा, तब रुद्र संन्यासी,

झीवट मद्यपान करने वाला ब्राह्मण और राजा वहां से चले और हस्ती से आदि लेकर जो शरीर धारण किये थे सब जगाये गये, उनमें यही निश्चय हुआ कि हम चिन्मात्र रूप हैं और आवरण (अज्ञान) से रहित है, हे रामजी! उनके शरीर देखने में सब आते परन्तु चेष्टा सबकी एक जैसी और निश्चय भी एक जैसा उनका नाम शतरुद्र हुआ, वे शतरुद्र हुए, इसलिये हे रामजी! यह सम्पूर्ण विश्व अज्ञानरूप फुरने से होता है और ज्ञान द्वारा देखने से बिलकुल अभावरूप हो जाता है, ऐसे ही इनका संवेदन और निश्चय एक जैसा हुआ, एक देखे तो समझे कि सब मेरा ही स्वरूप है, दूसरा देखे तो वह भी जाने कि सब मेरा ही रूप है। संवेदन निश्चय एक जैसा हुआ, सबने ऐसा करके देख लिया कि सब अपना ही स्वरूप है उस पर दृष्टान्त है, जैसे समुद्र से तरंग होते हैं, आकार उनके भिन्न भिन्न होते हैं और वस्तुता उनकी एक जैसे होती है, ऐसे ज्ञानवान् सर्व विश्व को अपना ही स्वरूप देखते हैं और अज्ञानी उसको भिन्न भिन्न जानते है और आपको भिन्न मानते हैं, एक को दूसरा नहीं जानता, दूसरे को प्रथम नहीं जानता, वे क्या नहीं जानते, जो अपना स्वरूप है उसको नहीं जानते, जैसे पत्थर के दो बटे पड़े हों न आपको जानते हैं न दूसरे को जानते हैं कि मेरा स्वरूप क्या है, ऐसे अज्ञानी न आपको जानते हैं, न अपर को अपना स्वरूप जानते हैं, हे रामजी! यह विश्व अपना ही स्वरूप है, अज्ञान करके भिन्न भासता है, चिन्मात्र में स्फुरण अज्ञान है, उस स्फुरण में संसार है और अस्फुरण में अपना ही आप है इसलिये हे रामजी! फुरणे का त्याग करो और कुछ नहीं, जिस प्रकार शत्रु मरे उसी प्रकार मारने चाहिये, यत्न करो, मैं तुझे उपाय भी ऐसा कहता हूं जिसमें यत्न भी न करना पड़े और शत्रु भी मर जाय, वह उपाय यही कि चिन्तन कुछ न कीजिये, इसमें यत्न भी कोई नहीं सुगम उपाय है, हे रामजी! यह चिन्तन ही दुःख है और चिन्तन से रहित होना ही सुख है, आगे जो तेरी इच्छा हो कर इस चित्त के फुरने से संसार है और निवृत्त होने से स्वरूप ही है, जैसे पत्थर में पुतलियों की कल्पना पुरुष करता है,

तब पत्थर से भिन्न पुतलियों का अभाव है, ऐसे चित ने विष कल्पित किया है, जब चित्त निवृत्त हो तब विश्व अपना स्वरूप है; अपर भिन्न कुछ नहीं और चित्त के साथ जहां जहां जाय वहां वहां पंच भूत ही दृष्टि आते हैं, आत्मा दृष्टि नहीं आती और चित्त से रहित ज्ञानी जहां जाय वहां आत्मा ही दृष्टि आती है, जब चित्तवृत्ति बहिर्मुख होती है, तब संसार होता है, पञ्चभूत ही दृष्टि आते हैं और जब चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब ज्ञानरूप अपना आप ही भासता है, जितने पदार्थ हैं, आत्मा के बिना अज्ञानरूप सिद्ध नहीं होते, पहिले अपने आपको जानता है, तत्पश्चात् अन्य पदार्थ जाने जाते हैं, इसीसे ज्ञानवान् सब अपना आप जानता है, हे रामजी! यह जितने पदार्थ हैं, सब स्फुरण से कल्पित हुए हैं और जितने जीव हैं, उनका संवेदन भिन्न भिन्न है और संवेदन में अपनी अपनी सृष्टि है, जैसे कोई पुरुष सोता है, उसको अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है और कोई उसके पास बैठा होता है उसको नहीं भासती, उसकी बुद्धि स्वप्न को नहीं जानती और जो ज्ञानी है उसको अपना आप ही भासता है, यह जगत् सब अपना रूप जानता है, ज्ञानी जिस ओर देखता है उस ओर उसको पांच भौतिकता दृष्टि आती है, जैसे पृथ्वी के खोदने से आकाश ही दृष्टि आता है, ऐसे ज्ञानी चित्त सहित जहां देखता है, वहां पंचभूत ही दृष्टि आते हैं इसलिये हे रामजी! तुम स्फुरण से रहित हो जाओ, फुरणे से ही बन्ध है उसके अभाव में मोक्ष है, आगे जैसी इच्छा हो करो, हे रामजी! जो अस्फुरण से अस्त हो जाय उसके ना र में कृपणता क्या है? और जो अस्फुरण से प्राप्त हो उसको प्राप्तरूप जानो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे स्वप्नशतरुद्रयिवर्णनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

गणत्वप्राप्तिवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे मुनीश्वर! यह झीवट ब्राह्मण से लेकर संन्यासी के रूप स्वप्न में हुए, उसके बाद फिर क्या हुआ? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ब्राह्मण से लेकर जितने शरीर था, रुद्र से जगाये हुए सुखी हुए, जब सब इकट्ठे हुए तब रुद्र ने उनको कहा हे साधुओ! तुम अपने अपने स्थान को जाओ और कुछ समय तक अपना गृहस्थ भोग भोगो, उसके बाद तुम मेरे गण होकर मुझे प्राप्त करोगे, महाकल्प में हम सब विदेह मुक्त होंगे, हे रामजी! जब ऐसे रुद्र ने कहा, तब सब अपने अपने स्थान को चले गये और रुद्रजी अन्तर्धान हो गये। वह अब भी तारे का आकार धारण किये हुए भी कभी आकाश में दृष्टि आते हैं, रामजी ने कहा—हे भगवन्! आपने कहा है कि संन्यासी ने झीवटादि सब शरीर धारण किये, वे सत् कैसे हुए और उनकी सृष्टि कैसे सत् हुई, यह कहिये, वसिष्ठजी ने कहा—हे राम! आत्मा सबका अपना आप है, शुद्ध है और चेतन आकाश है और अनुभवरूप है; उस अपने आप में जैसे देशकाल वस्तु का निश्चय होता है, ऐसे ही आगे बन जाता है, जैसे जैसे फुरता है ऐसे ऐसे आगे हो जाता है, जिसका मन शुद्ध होता है, वह सत्संकल्प होता है, जैसा संकल्प करता है ऐसा ही होता है और जब तू कहे संन्यासी का अन्तःकरण शुद्ध था, उसने नीच उच्च जन्म कैसे पाये, नीच से मतलब मद्यपान करनेवाला और भँवरी बल्ली आदि से लेकर तथा उच्च अर्थात् ब्राह्मण राजा आदि से लेकर शुद्ध अन्तःकरण में ऐसे जन्मों को न चाहा। इसका उत्तर यह है कि संवेदना में जैसा फुरणा होता है ऐसा ही भासता हैं, जैसे एक पुरुष कर अन्तःकरण शुद्ध हो, उसको मन में फुरे कि एक शरीर मेरा विद्याधर हो और एक शरीर मेरा भेड़ का हो, उसके दोनों हो जाते हैं, भला भी और बुरा भी और यदि तुम कहो बुरा क्यों बना?

भला ही बनता, इसका उत्तर सुनो–जैसे भले पंडित के घर पुत्र हो और संस्कार करके चोर हो जावे (संस्कार क्यों जो वासना मलिन हो) तो दुःख होता है, इसलिये हे रामजी! सब स्फुरण से ही उच्चता नीचता होती है, जब अभ्यास और परमयोग होता है, तब शुद्ध होता है, अभ्यास कहते हैं, मंत्र का जप और योग है चित्त का स्थिर करना, इनके द्वारा जैसा जैसा यत्न होता है, ऐसी ही सफलता होती है और अज्ञानी की नहीं होती, जैसे वस्तु निकट पड़ी है, परन्तु भावना नहीं, तब दूर है ऐसे अज्ञानी की भावना नहीं, तब न दूर वाली प्राप्त होती है, न निकटवाली प्राप्त होती है क्यों नहीं सिद्ध होती? कि उसकी भावना दृढ नहीं और हृदय शुद्ध नहीं, संकल्प भी तब सिद्ध होता है जब हृदय होता है, शुद्ध हृदयवाला जिसका चिन्तन करे, वह दूर होने पर भी सिद्ध हो जाता है और निकट है तो भी सिद्ध होता है और यदि तुम कहो कि सन्यासी तो एक था, बहुत शरीर चेतन कैसे हुए? इसका उत्तर सुनो–जो कोई योगीश्वर है या योगिनी अर्थात् पुरुष या स्त्री, उनका संकल्प सत्य है, जैसा संकल्प होता है वैसा ही फुरता है, ऐसे सत्संकल्पवाले अनेकों मैंने आगे देखे हैं, एक सहस्र बाहु अर्जुन राजा था, वह घर में बैठा हुआ रहता था और उसके शिर पर छत्र झूमता और चमर होता था, उसके मन में संकल्प हुआ कि मैं मेघ होकर बरसूं, ऐसा संकल्प करने से उसका एक शरीर राजा का रहा और दूसरा शरीर मेघ होकर बरसने लगा, विष्णु भगवान् एक स्वरूप से क्षीर सागर में शयन करते हैं और दूसरा शरीर प्रजा की रक्षा के लिये धारण करते हैं और यज्ञ देवियां अपने स्थानों में होती है, बड़े आश्चर्य से देशों में विचरती हैं और इन्द्र भी एक शरीर से स्वर्ग में रहता है और अन्य शरीरों से जगत् में भी बैठा रहता है। योगीश्वरों का जैसा संकल्प होता है वैसी ही सिद्धि होती है और जो अज्ञानी मूर्ख हैं, उनका मन बड़े भ्रम को प्राप्त होता है, वे बड़े मोह में पड़ते हैं, मोह से अधिक मोह करते हुए नीच गति को प्राप्त होते हैं, जैसे

बड़े पर्वत पर से पत्थर गिरता है तो नीचे स्थान में जा पहुँचता है, ऐसी ही मूर्ख आत्मपदसे गिरकर नीचे से नीचे अर्थात् महान् अनर्थकारी नीच दशा में पहुँचता है और परम दुःखी होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे
गणत्वप्राप्तिर्नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ।।६४।।

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

विद्योत्तरविस्मय वर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! आपने जो कहा कि संसार स्वप्न मात्र है, वह मैंने जान लिया है, मोहरूप विषमता अनन्त है, आत्म चेतनरूप आनन्द के प्रमाद से अपने आपको दुःखी जानता है, बड़ा आश्चर्य है और हे भगवन्! यह जो आपने संन्यासी कहा उसके समान कोई और भी है अथवा नहीं, यह कहिये। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! संसाररूप मठिका में आज रात को समाधिस्थ होकर देखूंगा जो कुछ होगा, तुम्हें प्रातःकाल कहूँगा, हे राजन् मुनि वसिष्ठजी जब यह बात कह रहे थे तब बाहिर मध्याह्न के समय का सूचक नक्कारा बजने लगा, उसका ऐसा महान् शब्द हुआ जिस प्रकार प्रलयकाल का मेघ गरजता है, तब देवताओं और राजा लोगों ने वसिष्ठजी के चरणों पर पुष्प चढ़ाये, परम आदर भाव से सबने उनकी पूजा की, जैसे तीव्र वायु के चलने से वृक्षों से पुष्प नीचे गिर पड़ते हैं, इस प्रकार की पुष्पवृष्टि करनेवाली वह पूजा हो चुकी, तब सब लोग मुनि वसिष्ठजी को प्रणाम करके उठ खड़े हुए और सबने परस्पर नमस्कार किये और अपने अपने स्थान को जाने का संकल्प किया, जैसे मंदराचल पर्वत पर से सूर्य उदय होता है, ऐसे ही वसिष्ठजी को लेकर तथा राजा दशरथ आदि तक सब उठे और जो पृथ्वी के राजा थे, वे पृथ्वी को, आकाश के सिद्ध आकाश को चले और जाकर सब अपने अपने काम में लग गये, सब लोग शास्त्रोक्त व्यवहार में स्थित हुए, जब रात

हुई तब अपने चित्त में विचार करने लगे कि वसिष्ठजी ने क्या उपदेश दिया था, उस विचार में रात्रि एक क्षण के समान बीत गयी, जब भगवान् भास्कर उदय होने पर आये तो उनकी किरणों के साथ ही सब लोग अर्थात् श्रीराम लक्ष्मणजी आदि आ आकर विराजमान होने लगे, आपस में प्रणाम नमस्कारें कहकर सब अपने अपने आसन पर बैठ गये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विद्योत्तरविस्मयवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ।।६५।।

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

भिक्षुसंसृतिवर्णनम् ।

वाल्मीकि मुनि बोले–जब सब प्रकार से शान्त वातावरण था, जैसे पवन से रहित कमल स्थित होते हैं ऐसे ही सब लोग स्फुरण से रहित शान्तरूप स्थित थे, तब श्रीमुनिवर वसिष्ठजी परम अनुग्रह करके कहने लगे कि हे राम! तेरे प्रेमवश होकर मैंने संसाररूप मढी की बहुत खोज की, आकाश पाताल और सप्तद्वीप देखे हैं परन्तु ऐसा संन्यासी कोई दृष्टि नहीं आया, जैसे अन्य का संकल्प प्रतीत नहीं होता, जब रात का अन्तिम प्रहर शेष रहा तब मैंने पुनः खोज की, उत्तर दिशा में चिन्माचीन नामक नगर में एक स्थान है, वहां एक मढी देखी, दरवाजे सब बन्द थे, उसमें एक पके केशोंवाला संन्यासी बैठा देखा और बाहिर उसके चेले बैठे हुए हैं, वे दरवाजे इसलिये नहीं खोलते कि कहीं हमारे गुरुजी की समाधि न खुल जाय, ऐसे उस स्थान में वह संन्यासी महात्मा बैठा है, मानों दूसरा ब्रह्मा बैठा है, उसके वहां बैठे इक्कीस दिन हो गये हैं, इक्कीस दिन की समाधि में उसको सहस्रों वर्षों का अनुभव हुआ है और बहुत जन्म भी पाये हैं, जन्म भी कैसे जो प्रत्यक्ष देखे और सृष्टि भी

प्रत्यक्ष देखी, उसमें विचरा, हे रामजी! इसी जैसा एक और भी पूर्वकल्प में था, यह तीन ही थे, एक को बहुत देख रहा हूँ, कोई दृष्टि नहीं आता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भिक्षुसंसृतिवर्णनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

ब्रह्मैक्यप्रतिपादनम् ।

तब राजा दशरथ ने कहा–हे महामुने–जब तुम आज्ञा करो तब मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगर भेजूं, वहां जाकर उस संन्यासी को जगाया जाये, तब वसिष्ठजी ने कहा–हे राजन्! वह संन्यासी अब ब्रह्मा का हंस होकर ब्रह्मा के उपदेश से हंस होकर जीवन्मुक्त हुआ है और जो उसका शरीर था, समाप्त हो चुका है, उसमें अब पुर्यष्टका (जीव) नहीं है, उसको क्या जगाना है, एक महीने के बाद उसका दरवाजा खोलेंगे, तब नगर के लोग देखेंगे, जो मृतक पड़ा है, इसलिये हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र ही है, यदि तुम कहो, एक जैसे कैसे हुए तो सुनो। जैसे यह मुनीश्वर, ऋषि, राजा और अन्य जो संसार में लोग हैं कई बार एक जैसा शरीर धारण करते हैं, कई मध्यरूप और कई कुछ थोड़ा सा परिवर्तन करते हैं, कई विलक्षण रूप धारण करते हैं, वह सुनो, यह जो नारद है इसके समान और भी नारद होगा, उसकी चेष्टा भी ऐसी होगी और शरीर भी ऐसा होगा, श्रीव्यास शुक देव, भृगु–भृगु के पिता, जनक, करकरी और अत्रि आदि ऋषिवर्ग जैसा अब है फिर होगा, अत्रिमुनि की स्त्री जैसी अब है और अत्रि जैसे हैं ऐसे ही होंगे, इनको छोड़कर अन्य भी अनेको होंगे, जैसे समुद्र में तरंग एक जैसे भी होते हैं और न्यूनाधिक भी

होते हैं। हे रामजी! यह संसार ब्रह्मा से लेकर पाताल पर्यन्त सब मन का रचा हुआ है, इसलिये सब मिथ्या है, जब यह चित्तकला बर्हिमुख होती है, तब संसार देशकाल होता है, जब अर्न्तमुख होती है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, जब तक बर्हिमुख होती है तब तक दुःख पाता है, अपना स्वरूप आनन्द रूप है, उसमें चित्तकला जाती है कि मैं सदा सुखी हूँ, देह और इन्द्रियों के साथ मिलकर दुःखी होता है, इसलिये हे रामजी! इस अज्ञानरूप फुरने से रहित होने का यत्न करो। फुरने से यह अवस्था प्राप्त होती है, जैसे चन्द्रमा अमृत से पूर्ण है, उसमें चर्म दृष्टि से कलंकता भासती है, ऐसे ही अमृतपूर्ण चन्द्रमारूप आत्मा में अज्ञान दृष्टि से जन्म—मरण शोक दुःख भय कलंक देखता है, महा आश्चर्य माया है, जैसे चन्द्रमा एक है, नेत्रदोष से बहुत भासते हैं, ऐसे एक अद्वैत आत्मा में, विश्व नानात्व अज्ञान से भान होता है, यही माया है। हे रामजी! तू एक रूप आत्मा है उसमें फुरणे से विश्व की कल्पना दर्द है, इसलिये तुम फुरणे से रहित हो जाओ। फुरणे से रहित बिना आत्मा का दर्शन नहीं होता, जैसे सूर्य के उदय हुए बादल के होते शुद्ध नहीं भासता, ऐसे स्फुरणरूप बादल के दूर हुए आत्मसूर्य शुद्ध प्रतीत होता है और यह दृश्यदर्शन द्रष्टा फुरणे से कल्पित हुए हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ब्रह्मैक्य प्रतिपादनं
नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ।।६७।।

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

महामौनयत्नोपदेश वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह संसार सार जो आत्मा है, उसमें सुषुप्त की नाईं मौन हो जाइये, रामजी बोले—हे भगवन्! तीन मौन मैं जानता हूँ, वे कौन हैं, एक वाणी मौन, चुप हो जाना और दूसरा इंद्रिय

मौन, एक कष्ट मौन कष्ट मौन है जिसमें मन और इन्द्रियों को हठ के साथ वश में किया जाय चाहे कितना कष्ट क्यों न प्रतीत हो, यह तीनों मौन में जानता हूँ, सुषुप्त मौन आप कहें कि क्या है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! तीन मौन कष्ट तपस्वी के हैं और सुषुप्त मौन ज्ञानी जीवन्मुक्त का है और तीनों मौन अज्ञानी तपस्वी के पुनः सुनो, एक मौन है–वाणी से नहीं बोलना और एक मौन समाधि, जो नेत्रों को मूंद लेना, देखना कुछ नहीं, एक मौन–हठ से स्थित होना, इन्द्रिय और मन को स्थिर करना और एक मौन इन्द्रियों की चेष्टा से रहित होना, यह तीनों मौन कष्ट तपस्वी के हैं और सुषुप्त मौन हैं ज्ञानी का, उसे सुनो–सुषुप्त मौन उसे कहते हैं जिसमें इन्द्रियों से और वाणी से चेष्टा भी हो और आत्म से इतर और कुछ न भासे, यह उत्तम मौन है, अथवा ऐसे हो कि न मैं हूँ, न जगत् है, ऐसे निश्चय में स्थित होना, यह बड़ा उत्तम मौन है, हे रामजी! विधि से भी आत्मा की सिद्धि होती है और निषेध से भी आत्मा की सिद्धि होती है, उस आत्मा में स्थित होना बड़ा मौन है, यह जो सुषुप्त मौन मैंने कहा है यह क्या है? सुनो–संसार द्वैतरूप के फुरणे से सुषुप्त होना और आत्मा में जगना, यही सुषुप्त मौन है, द्वैत के फुरणे से रहित होना ही सुषुप्ति है और आत्मा में जगना यही तेरे लिये मैंने कहा है और ऐसे देखना कि न मुझमें जाग्रत है न स्वप्न है न सुषुप्ति है इस निश्चय में स्थित होना, यह पांचवीं मौनावस्या है, तुर्यातीत पद यही है, यह अनादि है, अनन्त है, जरा से रहित है, शुद्ध है और निर्दोष है, इस निश्चय में स्थित होना ही उत्तम मौन है, हे रामजी! ज्ञानी इन्द्रियों के रोकने की इच्छा भी नहीं करता और न विचरने की इच्छा करता है, जैसी स्वाभाविक अवस्था होती है, उसी में स्थित होता है, यह परम मौन है, हे रामजी! तुम रघुकुल के चन्द्रमा हो, अपने स्वभाव में स्थित होना परम मौन है, संसार भ्रम मन के फुरने से होता है वह मिथ्या है, वास्तव में कुछ नहीं, न शरीर सत्य है न माया सत्य है, हे राम! तेरा

स्वरूप ओंकार है, ओंकार को अंगीकार करके स्थित होना परम मौन है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे महामौन यत्नोपदेशवर्णनं नामाष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

प्राणमनःसंयोगविचारवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! यह जो सौ रुद्र आपने कहे, यह रुद्र थे अथवा रुद्रगण थे? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिसको रुद्र कहते हैं उसीको गण कहते हैं, यह सबही रुद्र हैं, रामजी बोले—हे भगवन्! यह जो तुमने कहा सब रुद्र हुए, यह तो एक चित्त थे सब कैसे हुए? जैसे दीपक से दीपक होता है क्या इसी प्रकार हुए? वसिष्ठजी बोले—हे राम! एक सावरण है, एक निरावरण है, जहां शुद्ध अंतःकरण है, वह निरावरण है और जहां मलिन अन्तःकरण है वह सावरण है, शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होता है ऐसा तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरण फुरणा सिद्ध नहीं होता, इसलिये शुद्ध जो निरावरण रुद्र है वह आत्मा है और सर्वव्यापी है, जैसा उसका निश्चय होता है, वह सत्य है, रामचन्द्र महाराज ने कहा—भगवन्! रुद्र सदाशिव की चेष्टा तो मलिन है, जो रुंडों की माला गले में धारण करते हैं, विभूति लगायी हुई है और श्मशान में विचरते हैं और स्त्री वाम पार्श्व में रहती है उनको कैसे कहते हो कि शुद्ध अन्तःकरण हैं, वसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो! यह शुद्ध अशुद्ध अज्ञानी के लिये सविवेक रहने को लिखा है, जो शुद्ध में व्यवहार करे, अशुद्ध में न करे ऐसा जो ज्ञानी है, वह अपने आप में क्रिया का सर्वथा अभाव देखता है, उसको शुद्ध अशुद्ध तथा मलिन से राग द्वेष कुछ नहीं होता, ऐसा जो सदाशिव ग्रहण करता है, न त्याग करता है, जो

स्वाभाविक चेष्टा होती है वह होती रहे, वह कैसी होती है? उसे श्रवण कीजिये। आदि परमात्मा में विष्णु भगवान् का स्फुरण हुआ, चतुर्भुज स्वरूप, संसार तथा धर्म की रक्षा के लिये अवतार धारण, शुद्ध चेष्टाएं, पापियों का संहार, यह आदि फुरणा हुआ है, हे रामजी! यह क्रिया स्वाभाविक ही जो आकर प्राप्त हुई है इस क्रिया के प्रति इनको राग द्वेष से हेयोपादेय कुछ नहीं और क्रिया का इनको अभिमान भी नहीं, जो हम करते हैं, इसी से कोई क्रिया इनको बन्धन में नहीं डाल सकती, इसलिये यह संसार स्फुरण मात्र है, जब तुम फुरणे से रहित हो जाओगे तब तुम्हें त्रिपुटी न भासेगी। आत्मा से इतर कुछ न प्रतीत होगा, इसलिये तुम अज्ञान रूप फुरणे से रहित हो जाओ, जब तुमको आत्मपद का साक्षात्कार होगा, तब तुम जानोगे कि आत्मपद ही आत्मपद है इससे इतर कुछ नहीं, तब द्वैत कहां से हो? हे रामजी! दृश्य अदृश्य फुरणा अफुरणा विद्या अविद्या, यह सब जतलाने के लिये कहे जाते हैं, आत्मा के विषय में कुछ कहना नहीं बनता, आत्मा एक है जिसमें द्वैत का अभाव है, जब चित्तपरिणाम बर्हिमुख होते हैं, तब विश्व का भान होता है और जब चित्त अन्तर्मुख परिणाम पाता है, तब अहंता ममता का नाश होता है और चेतन मय शेष रहता है और जब अतिशय अन्तर्मुख परिणाम पाता है, तब चेतन कहना भी नहीं रहता और जब इससे भी अतिशय परिणाम पाता है, तब नहीं कहना भी नहीं रहता, हे रामजी! ऐसा आत्मा तेरा अपना आप (स्वरूप) है और शान्तपद है जिसमें वाणी की गमन नहीं कि ऐसा कहें और वैसा कहें, ऐसा कहिये कि इन्द्रियों का विषय है और ऐसा कहिये कि इन्द्रियों से परे है, जब तू अपने में स्थित होगा, तब जानेगा कि मेरे अन्दर अहं फुरणा कुछ नहीं, आत्मरूप सूर्य के साक्षात्कार हुए दृश्यरूप अन्धकार का अभाव हो जावेगा, क्योंकि जो तेरा आत्मा अपना आप है, केवल शान्तरूप है और निर्मल है, जैसे गंभीर समुद्र वायु से रहित होता है, ऐसे आत्मारूपी समुद्र संकल्परूप वायु से रहित शुद्ध गंभीर होता है और यह संसार चित्त का चमत्कार है, वह चित्त निरंश है, उसमें अंशाशीभाव नहीं, अद्वैत है, हे रामजी! जब ऐसे बोध में स्थित

होगा, तब इस विश्व को भी आत्मरूप देखेगा, बोध के बिना देखेगा तब विश्व का भान होगा, इसलिये हे रामजी! बोध में स्थिति प्राप्त करो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सदाशिव का आदिस्फुरण हुआ है कि विश्व का संहार करना तथा मुंडमाला धारण, चतुर्मख ब्रह्मा के हाथों में चारों वेद, संसार की उत्पत्ति करना, ऐसा स्फुरण हुआ है, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीनों एकरूप हैं और स्वभाव से ही इनकी चेष्टा यही बनी है, न राग से किसी को अंगीकार किया है, न द्वेष से त्याग करते हैं और यह संज्ञा भी केवल लोक दिखावा मात्र है, अपने ज्ञान में कुछ नहीं करते, बोध में जाग्रत का क्या रूप है और कैसे होता है, सुनो–एक सांख्यमार्ग से होता है और एक योगमार्ग से होता है, सांख्य अर्थात् तत्व का और मिथ्या दृश्य प्रपंच का विचार। मैं आत्मरूप हूँ, सत् हूँ, चेतन हूँ और यह सब दृश्य सब मिथ्या है, जड़ है, मुझमें अज्ञान से कल्पित है, मैं अद्वैत आत्मा हूँ, मेरे अन्दर अज्ञान और दृश्य दोनों नहीं, ऐसे निश्चय में स्थित होना ही सांख्य विचार है और योग है प्राणों का स्थित करना, जब प्राण स्थित होते हैं तब मन भी स्थित हो जाता है और जब मन स्थित होता है तब प्राण भी स्थित हो जाते हैं, इनका परस्पर सम्बन्ध है, रामजी बोले–हे भगवन्! यदि प्राण स्थित हुए मुक्त होता है तो मृतक के प्राण नहीं रहते, निवृत्त हो जाते हैं, तब सब मुक्त होने चाहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! पहिले तो वर्णाश्रम धारण करो कि क्या है, यह जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी वासना करता है तदनुसार फिर शरीर को त्यागकर आकाश में स्थित होता है, इसका नाम मरणा है, उस वासना रूप प्राण से फिर इसको संसार भान होता है और जब प्राणों की वासना क्षय होती है तब मुक्त होता है, ज्ञानी की वासना क्षय हो जाती है, इसलिये जन्म मरण से रहित होता है, जैसे भूना बीज फिर उत्पन्न नहीं होता, ऐसे ही ज्ञानी का वासना के अभाव से जन्ममरण नहीं होता, हे रामजी! ज्ञान से चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है और योग से प्राणवायु स्थित होता है तब वासना क्षय हो जाती है, जब स्वरूप की

प्राप्ति होती है, तब सांसारिक पदार्थों का अभाव हो जाता है, जैसे रसायन से ताम्बा सोना हो जाता है तो तांबा भाव नहीं रहता, ऐसे ज्ञान द्वारा जब चित्त सत्यरूप हुआ तो वह फिर संसारी नहीं रहता, आत्मा में न बन्ध है न मोक्ष है, एक अद्वैत परमात्मा में बन्ध मोक्ष कथन भी असंगत है। बन्ध और मोक्ष चित्त के कल्पना किये हुए हैं, यह चित्त शान्त करने का उपाय कहा है, आप स्वयं विचार कर लें कि बन्ध और मोक्ष एक अद्वैत सत्ता के कैसे कहे जायं। इस उपाय से चित्त शान्त होता है, इसी को मोक्ष कह देते हैं, चित्त के उदय होने का नाम बन्ध है, हे राम! जब मन अपने वश में होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है, यह संसार मृग तृष्णा के जलवत् मिथ्या है, वासना निवृत्त होने पर आत्मपद में स्थिति होती है, जैसे मेघ सजल होते हैं तब गर्जते हैं और वर्षा करते हैं, जब वर्षा से रहित होते हैं तब शान्त हो जाते हैं, ऐसे ही जब वासना क्षय होती है तब चित्त शान्त हो जाता है, जैसे शरत्काल में बादल और कुहिड़ (ओस) निवृत्त हो जाते हैं और शुद्ध निर्मल आकाश ही रहता है, ऐसे वासना रूप बादल और कुहिड़ के निवृत्त हुए केवल शुद्ध चेतन आत्मा ही प्रतीत होता है, एक मुहूर्त भी चित्त के बिना स्थित हो तब तुझे आत्पपद की प्राप्ति हो, जब तक मनोवासना क्षय नहीं होती तब तक महान् भ्रम को देखता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे प्राणमनःसंयोगविचारणं नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

बेतालप्रथमप्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! संसार मृगतृष्णा जलरूप है असत् आभास मात्र फुरता है, उस पर एक आख्यान जो कि भूतकाल में हुआ है कहता हूँ, सुनो। दक्षिण में मंदराचल है, उसके जंगल में एक बेताल रहता था, उसका आकार महाभयानक था और वह मनुष्य का आहार किया

करता था, उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि किसी नर का आहार करूं, परन्तु वह क्षण भर के लिये इस कारण रुक गया कि वह सत्संगी भी था, साधु संग के प्रभाव से उसके मन में यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि मेरी क्या गति होगी, मैं मनुष्य का आहार करता हूँ, यह बड़ी हत्या का काम है, इसलिये मैं एक युक्ति करूं कि जो अज्ञानी मूर्ख मनुष्य हैं, उनका भोजन किया करूं और उत्तम पुरुषों को न मारा करूं, हे राम! उस बेताल ने यही वृत्ति बना ली। वह यद्यपि क्षुधा से व्याकुल भी होता तो भी भले पुरुषों के पास आने जाने पर कुछ नहीं कहता था, एक समय उसको बड़ी भूख लगी थी, रात के समय घर से बाहर निकला, तो उसने देखा कि नगर का राजा वीर यात्रा को निकला था, उसको देखकर बेताल ने कहा—राजन्! आज तुम मुझे भोजन के रूप में मिले हो, मैं तुम्हें खा जाऊंगा, तुम कहां जा रहे हो? तब राजा ने कहा ओ बेताल! जब तुम अन्याय से मेरे पास आओगे तब तुम्हारा सिर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा, बेताल ने कहा—राजन्! मैं तुमसे डरता नहीं, ऐ आत्महत्यारे! मैं तुम्हें खा जाऊंगा तू चाहे कितना बलवान् क्यों न हो परन्तु मेरी एक प्रतिज्ञा है कि अज्ञानी को खाता हूँ, ज्ञानवान् को कभी नहीं मारता, यदि तू ज्ञानी है तो न मारूंगा, यदि अज्ञानी है तो मारूंगा, जैसे बाज चिड़ी को मारता है, इस प्रकार तुझे मारूंगा, यदि ज्ञानवान् है तो मेरे प्रश्न का उत्तर दें, एक प्रश्न यह है कि जिसमें ब्रह्माण्डरूप अणु हैं, वह सूर्य कौन है, दूसरा प्रश्न यह है कि जिस पवन में आकाशरूप अणु उड़ते हैं, वह पवन कौन है? तीसरा प्रश्न यह है कि केले के वृक्षवत् है, जिसमें और कुछ नहीं निकलता, जैसे केले के छीलने से और कुछ नहीं निकलता, वह कौनसा वृक्ष है और चौथा प्रश्न यह है कि वह पुरुष कौन है जो स्वप्न से स्वप्न उसमें और स्वप्न देखता है और एक रहता है? परिणाम को नहीं प्राप्त होता, इन प्रश्नों का उत्तर कहो, यदि प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुझे खा जाऊंगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे बेतालप्रथमप्रश्नोत्तरवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ।।७०।।

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

वेतालप्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

राजा ने कहा—वेताल इन प्रश्नों का उत्तर सुनो—ब्रह्माण्ड एक मिर्च बीज है, आत्मा चेतन सत्पद उसमें तीक्ष्णता है, ऐसे यह मिर्चफल एक शाखा के साथ कई सहस्त्र लगे हुए हैं, ऐसी शाखाएं एक वृक्ष के साथ कई लगी हुई हैं, ऐसे वृक्ष एक वन में कई सहस्त्र हैं, ऐसे कई सहस्त्र वन एक शिखर पर स्थित हैं, ऐसे कई सहस्त्र शिखर एक पर्वत पर स्थित है, ऐसे कई पर्वत एक नगर में हैं और ऐसे कई सहस्त्र नगर एक द्वीप में हैं। ऐसे सहस्त्रों द्वीप एक पृथ्वी में हैं और ऐसी सहस्त्रों पृथ्वियां एक अंड में हैं, ऐसे कई सहस्त्र अंड समुद्र में लहरें हैं ऐसे कई सहस्त्र समुद्र एक पुरुष के उदर में हैं और ऐसे कई पुरुष एक पुरुष के गले में मालायें पिरोयी हुई हैं, ऐसे कई लाख कोटि सूर्य के अणु हैं, जिस सूर्य से सब प्रकाशमान् हैं, वह सूर्य आत्मा है, जिसमें अनन्त सृष्टियां स्थित हैं, हे वेताल! जैसे यह सृष्टि भासती है, ऐसे सब सृष्टियों को जान ले। यदि यह सृष्टि सत् है तो सब सृष्टियां सत् जान, यदि यह सृष्टि स्वप्न है तो सब सृष्टि स्वप्न जान। आत्मा ऐसा सूर्य है जिससे अन्य् अणु मात्र भी कुछ नहीं और सदा अपने आप में स्थित है और क्या पूछते हो, ऐसे आत्मा में स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे वेतालप्रश्नोत्तरवर्णनं नामैक सप्ततितमः सर्गः ।।७१।।

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

वेतालप्रश्नभेदवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो आत्मा सत्ता मात्र पद है, जिस सत्तामात्र पद से काल सत्ता हुई है, उसी से आकाश सत्ता हुई है, उस ऐसे सत् पद से सब सत्ताएँ प्रकट हुई हैं, वह सबका संकल्प से उदय हुआ है, संकल्प के लय हुए सब लय हो जाता है और तुमने जो प्रश्न किया था, वह कौन सूर्य है, जिससे ब्रह्माण्ड रूप अणु होते हैं, वह ब्रह्म सूर्य है, जिससे इतर और कुछ नहीं और केले का वृक्ष तुमने जो पूछा था वह केले की नाईं विश्व के अन्दर बाहिर आत्मा स्थित है, जैसे केले के अन्दर को फोलने से आकाश ही निकलता है, ऐसे विश्व के अन्दर बाहिर आत्मा से इतर अपर सार कुछ नहीं निकलता, जो अद्वैत है, उससे इतर द्वैत कुछ नहीं और वह पवन ब्रह्म है, जिस पवन में ब्रह्माण्ड समूह उड़ते हैं और वह पुरुष स्वप्न से स्वप्न आगे और स्वप्न देखता है और एक अपने स्वतः में स्थित है, चित्तकला का स्फुरण स्वप्न है तब अनन्त ब्रह्माण्ड भान होते हैं, तो भी अन्य कुछ हुआ नहीं, एक ही रूप नटवत् रहता है, यह सब उसकी आज्ञानुसार वर्तते हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं, स्थूल से स्थूल हैं, जिसमें मन्दराचल भी अणु है, ऐसा स्थूल है और जिसमें वाणी की गम नहीं। अपने आप ही में स्थित हैं, इन्द्रियों के अगोचर सूक्ष्म से सूक्ष्म है और पूर्णता से स्थूल से स्थूल है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे वेतालप्रश्नभेदवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ।।७२।।

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

वेतालब्रह्मपदवर्णनम् ।

हे मूर्ख वेताल! तू किसका आहार करता है और क्षुधा से व्याकुल क्यों है, तू तो अद्वैतरूप आत्मा है, आनन्दरूप है, तुझे स्वस्थरूप होना चाहिये, जब ऐसे प्रश्न का उत्तर देकर राजा ने उपदेश किया तब वेताल वहाँ से चला कि एकान्त स्थान में कहीं जाकर स्वरूप स्थित हो जाऊं, मृगतृष्णा के जलरूप ऐसे मिथ्या संसार में मेरा क्या प्रयोजन है? तब एकान्त स्थान में जाकर स्थित हुआ और ध्यान लगाया, आत्माकार वृत्ति से निरन्तर स्थित रहने का नाम ही ध्यान है जिसमें आत्मा से इतर अन्य किसी वस्तु का स्फुरण न हो, ऐसे ध्यान में स्थित होकर वेताल आत्मपद को प्राप्त हुआ, हे राम! यह राजा और वेताल का आख्यान तुम्हें सुनाया है, उस निर्विकल्प आत्मा में स्थिति प्राप्त करो जिसमें ब्रह्माण्ड अणु की नाईं स्थित है, इन्द्रियों का बाहिर से संकोच करके अन्तर्धान करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे राजवेताल संवादे
वेतालब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम त्रिसप्ततितः सर्गः ।।७३।।

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

भगीरथोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! एक प्राचीन आख्यान सुनो–एक भागीरथ नाम का राजा था, उसने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये बड़ा परिश्रम किया तब उसका सब मनोमालिन्य जाता रहा और उसने स्वस्थता प्राप्त की और अभ्यास के बल से वह आत्मपद में स्थित हुआ और अपने पुरुषार्थ गंगा को स्वर्गलोक से मध्य लोक में ले आया, ऐसे तुम

भी विचरो, उस राजा का स्वभाव था कि जो कोई अर्थी उसके पास आता था वह उसका मनोरथ पूर्ण करता था, जिस पदार्थ का कोई संकल्प लेकर आता था, उसकी इच्छा राजा अवश्य पूर्ण करता था और अगर कोई पुरुष राजा से मित्र भाव करता था उसके लिये वह चन्द्रमा हो जाता था, जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्त अमृत बहाता है ऐसे मित्र के लिये राजा किया करता था और जो कोई राजा से शत्रुभाव करता उसके नाश करने में देर नहीं लगाता था, शत्रुओं पर इस प्रकार की शस्त्र वर्षा करता जैसे अङ्गार बरसते हों, जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार का नाश होता है ऐसे ही शत्रुओं का नाश करता था, सुख दुःख में सदा समान रहता था, रामजी बोले—हे भगवन्! भगीरथ के मन में क्या आई? जो गंगा ले आया। वसिष्ठजी ने कहा—राम! एक समय उसने अपने नगर को देखा कि सब लोग भलाई छोड़कर बुराई कर रहे हैं, तब राजा लोगों के उपकारार्थ तप करने लगा, ब्रह्मा रुद्र और यज्ञ ऋषि उनका तप करके आराधना करने लगे, गंगा के लाने के लिये मंत्र जाप भी आरम्भ कराया, गंगा कैसी है कि जिसका एक प्रवाह स्वर्ग मे चलता है और एक प्रवाह पाताल में भी चलता है और एक प्रवाह राजा ने मध्य लोक में चलाया है और भागीरथ राजा ने गंगा को लाकर समुद्र पर भी उपकार किया है, कैसा समुद्र जो अगस्त्य मुनि से सुखाया गया, उस गंगा के आने से समुद्र का दारिद्‌य भी निवृत्त हुआ, ऐसे उस राजा के मन में विचार उत्पन्न हुआ और संसार को देखकर कहने लगा कि एक ही काम बार बार करना उचित नहीं है, नित्य वही भोगना, वही खाना, इत्यादि कर्मों का बार बार करना और जिस कर्म करने से मंगल हो जिसका परिणाम अच्छा निकले ऐसा काम करने में कोई दोष नहीं, इस प्रकार राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ और विचार आने लगा कि यह संसार क्या है, वह राजा उस समय यौवन अवस्था में था, जैसे मरुस्थल में कमल का उत्पन्न होना आश्चर्य है ऐसे ही यौवन अवस्था में वैराग्य विचार उत्पन्न होना आश्चर्य है, हे राम! जब राजा को यह विचार

उत्पन्न हुआ तब घर से निकला और त्रितल ऋषीश्वर जो गुरु था उसके समीप जाकर प्रश्न करने लगा। राजा बोला–हे भगवन्! वह कौनसा सुख है जिसके पालने से जरा मृत्यु से निवृत्त हो जाते हैं और यह संसार के सुख अन्दर से शून्य कैसे हैं और किस प्रकार इनके परिणाम में दुःख है, त्रितल ऋषि बोले–राजन्! एक जानने योग्य (ज्ञेय) तत्व है, जिसके जानने से शान्त पद को प्राप्त होता है, वह क्या है? वह है आत्मज्ञान, वह आत्मसुख कैसा है, न उदय होता है न अस्त होता है, ज्यों का त्यों अपने आप में है, हे राजा! यह जरा मृत्यु तब तक प्रतीत होते हैं जब तक अज्ञान है, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होगा, तब अज्ञानरूप अन्धकार निवृत्त हो जाँयेगा, केवल शान्तपद में स्थित होगा, आत्मज्ञानी सर्वज्ञ है, जिसके जानने से चित् जड़ ग्रन्थी टूट जाती है (अनात्म देहादिकों में आत्माभिमान करने को चिज्जड़ ग्रन्थी कहते हैं) यह सब दोष निवृत्त हो जाते हैं और सब कर्म भी निवृत्त हो जाते हैं, सब संशय नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध स्वरूप को पाकर ज्ञानी स्थित होते हैं, वह सत्ता सर्वगत है, सर्व है, नित्य स्थित है, उदय अस्त से रहित है, राजा ने कहा–हे भगवन्! मैं ऐसे जानता हूँ कि आत्मा चिन्मात्र सत्ता है और देहादिक मिथ्या है और आत्मा सर्वज्ञ है और शांत रूप है, निर्मल अच्युत रूप है, ऐसा जानता भी हूं, परन्तु मुझे शांति नहीं प्राप्त हुई, मुझे चिन्मात्र आत्मा का भान नहीं होता और मुझे स्वरूप की स्थिति नहीं मिली, इसलिये कृपा करके कहो, जिससे मैं स्थित हो जाऊं। ऋषिवर बोले–हे राजन्! तुम्हें ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिसके जान लेने से कोई दुःख शेष न रहेगा, उस ज्ञान से तुम्हारी ज्ञेय में निष्ठा होगी, तब तू सर्वात्मरूप होकर स्थित होगा, तेरा जीवभाव नष्ट हो जायेगा। श्लोक–"असक्ति रनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृह-दिषु। नित्यंच समचित्तत्व मिष्टानिष्ठोपपत्तिषु," आसक्त न होगा और अनभिष्वङ्गः होगा आसक्ति–आसक्त न होना–अर्थात् देह इन्द्रियादिक में आत्माभिमान न करना इनको अपना आप न जानना। अनभिष्वंग अर्थात् पुत्र स्त्री कुटुम्ब के दुःख से अपने आपको दुःखी न मानना और नित्य ही समचित्त रहना, इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में एकरस रहना और

चित्त को आत्मपद में जोड़ना, आत्मा से इतर वस्तु में चित्तवृत्ति न जाय और एकान्त देश में स्थित होना और अज्ञानी का संग न करना और ब्रह्मविद्या का सदा विचार करना तत्वज्ञानी की प्राप्ति के लिये तुझे यह ज्ञान के लक्षण कहे हैं, इससे विपरीत सब अज्ञान है, हे राजा! यही (ज्ञेय) जानने योग्य है, केवल इसके जानने से शान्तपद को प्राप्त होगा और देह का अहंकार भी निवृत्त होगा, हे राजन्! पहिले अहं होता है, पीछे मम होता है, इसलिये तुम अहं मम का त्याग करो, जब अहं मम का त्याग करेगा तब आत्मपद अहं प्रत्यय से भासेगा, वह आत्मा सर्वज्ञ है और सर्व भी आप है, स्वतः प्रकाश है, आनन्द रूप है, कैसा आनन्दरूप है? जो संसार के आनंद से रहित है, जब गुरु ने इस प्रकार कहा तब राजा बोला—हे भगवन्! यह अहंकार तो बहुत चिरकाल से देह में रहता है और अभिमानी है, जैसे पर्वत पर चिरकाल का वृक्ष स्थित होता है और उसका नाम प्रसिद्ध होता है, ऐसे ही अहंकार चिरकाल का देह में अभिमानी है, उसका त्याग कैसे करूं, यह कहिये। महर्षि ने कहा—हे राजा! अहंकार पुरुष प्रयत्न से निवृत्त होता है, सुनिये। पहिले भोगों में दोषदृष्टि करनी, भोग की वासना न करनी और बार बार अपने स्वरूप की भावना करनी, विचार करना, इससे तेरा जीव अहंकार निवृत्त हो जायेगा, जब तेरा जीव अहंकार निवृत्त होगा तब तुझे सर्वत्र परमात्मा भासेगा और तू दुःख से रहित शान्तरूप स्वप्रकाश होगा, हे राजन्! यह लज्जारूप फांसी जब तक निवृत्त नहीं होती, तब तक आत्मपद की प्राप्ति असंभव है, लज्जा क्या है मोह के ही रूपान्तर है, यह मेरी वस्तु है, मैं ऐसा हूँ, मेरे लिये यह होना चाहिये वह न होना चाहिये, शोक दुःख भला कहलाने की इच्छा, इत्यादि जो मोह के स्थान हैं, वही लज्जा है, इसलिये तुम अहं मम से रहित हो जाओ, तेरे शत्रु जो तेरा राज्य लेने की इच्छा करते हैं उनको राज्य देकर क्षोभ से रहित होकर स्त्री पुत्र बाँधव, इनके मोह को भी त्याग कर, मेरा मोह भी छोड़ दे राज्य का त्याग करो

एकान्त देश में स्थित हो और शत्रु के घर से भिक्षा मांग जिससे भः कहलाने की इच्छा न रहेगी, इसलिये उठ खड़ा हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भगीरथोपाख्यावर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ।।७४।।

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५

भगीरथोपाख्यानम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस प्रकार जब त्रितल ऋषिवर ने उपदेश किया तब राजा उठ खड़ा हुआ, घर चला गया, गुरुवर के उपदेश को हृदय में धारण कर अपने राज्य में आया और राज्य करने लगा, राज्य कार्य में लगा हुआ साथ साथ विचार भी करता था, जब कितना ही समय बीत गया तो उस राजा ने अग्निष्टोम यज्ञ का आरम्भ किया, धन का त्याग करना अग्निष्टोम यज्ञ है, राजा धन का त्याग करने लगा, तीन दिन में धन का त्याग किया, हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, भूषण इत्यादिक जितना ऐश्वर्य था, सब लोगों को दे दिया, ब्राह्मणों और याचकों को यथेष्ट धन दिया, स्त्री पुत्र को धन दिया, यहां तक कि जो अपने शत्रु थे उनको पृथ्वी का राज्य दे दिया, तब जो राजा लोग उसके शत्रु थे, उन्होंने देखा कि अब राजा भागीरथ में कुछ पराक्रम नहीं रहा, इसलिये उन लोगों ने आकर उसके देश पर अधिकार कर लिया, उसके महलों (रहने के प्रासादों पर) आ गये। राजा के सब स्थान रोक लिये, यहां तक कि राजा के तन के साथ लगे हुए धोती अंगोछा आदि एक दो वस्त्र ही रह गये, अन्य कोई भी वस्तु उन्होंने नहीं छोड़ी, राजा का सर्वस्व छीन लिया, तब राजा वहां से निकला, हे रामजी! इस प्रकार राजा वहां से निकल कर वन को चला गया, एक वन से दूसरे वन में जाने विचरने लगा और चरते हुए शान्तपद आत्मा में स्थित हुआ, अनिच्छित विचरा किया (विचरता रहा) कुछ काल बीतने पर राजा भगीरथ

अपने देश में आया और जो राजा लोग उसके शत्रु थे उनके घरों से भिक्षा मांगने लगा, तब उन लोगों ने राजा के महत्व को देखकर अपने मन से शत्रुता का भाव निकाल कर राजा की पूजा की, अत्यन्त सत्कार मान किया और राजा से कहने लगे भगवन्! आप अपना राज्य ग्रहण करें परन्तु राजा ने राज्य ग्रहण नहीं किया। जैसे पृथ्वी पर पड़े तृण को कोई नहीं उठाता, इस प्रकार राज्य ग्रहण नहीं किया। कुछ समय वहां रहकर चला और अपने गुरु त्रितल महर्षि के पास अनिच्छित चला आया, तब गुरु महाराज ने उसे आत्मतत्व से ग्रहण किया और शिष्य ने भी गुरु को आत्मतत्व से ग्रहण कियां, दोनों गुरु शिष्य भावना से रहित थे, कुछ काल वहां रहकर दोनों वनं में विचरने लगे और आत्मपद में स्थित रहे, राग द्वेष से रहित होकर केवल एक रस स्थित रहे, उनको न देह त्याग की इच्छा, न देह रखने की इच्छा थी, अनिच्छा प्रारब्ध में स्थित थे, उनकी स्वर्गलोक के सिद्धों के आकर पूजा की। बड़े ऐश्वर्य पदार्थ चढ़ाये (भेंट किये) और बहुत अप्सराएं आईं, जितने ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे आकर स्थित हुए, उन सबको उन्होंने तुच्छ जाना, जो आत्म सुख से तृप्त थे और केवल आकाशवत् निर्मल थे, कलंकता रूप मल से रहित प्रकाशरूप और समचित्त रहा करते थे, हे राम! जैसा राजा भगीरथ स्थित हुआ है ऐसे तुम भी स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भगीरथोपाख्यानं
नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ।।७५।।

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

भगीरथोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ महर्षि बोले–हे रामजी! कितना ही समय बीतने के बाद भगीरथ वहां से चला, एक देश का राजा मर गया था, उसकी लक्ष्मी को राजा की आवश्यकता थी, राजा भगीरथ अनिच्छित ही भिक्षा मांगने

वहां आये, राजमन्त्री ने उनको देखकर मालूम कर लिया कि राजा के सब लक्षण प्रकट दिखाई दे रहे हैं, इसलिये भागीरथ को कहा–भगवन्! आप इस राज्य को अंगीकार करें, क्योंकि यह आपको अनिच्छित प्राप्त हुआ है, तब राजा ने राज्य को ग्रहण कर लिया, न कुछ भला जाना न बुरा इस प्रकार ग्रहण किया, तब राजा हस्ती पर आरूढ हुआ और सेना से सुशोभित हुआ, सारा देश और सब स्थान सेनाओं से पूर्ण हो गये, जैसे मेघ से ताल पूर्ण होते हैं, ऐसे ही देश और स्थान सेना से भर गये, जब नौबत नक्कारे बजने लगे तब राजा घर में गया, महलों से स्त्रियाँ आयीं, तब राजा भगीरथ को जो पहिला देश था, वहां से लोग आये, तब मन्त्री और प्रजा ने आकर कहा–हे भगवन्! जिन शत्रुओं को तुमने राज्य दिया था, उनको मृत्यु ने समाप्त कर दिया है, जैसे मछली मलमांस को ग्रस लेती है, इस प्रकार मृत्यु के उनको ग्रस लिया है, अतः तुम राज्य करो, यद्यपि तुम्हें इच्छा नहीं तो भी राज्य करो, क्योंकि जो वस्तु अनिच्छित प्राप्त हो, उसका त्याग करना श्रेष्ठ नहीं, इसलिये राज्य करो, तब राजा ने उस राज्य को भी अंगीकार कर लिया और राज्य करने लगा, जब पीछे का वृत्तान्त राजा ने सुना कि मेरे पितर कपिल मुनि के शाप से भस्म हुए हैं और कूप में पड़े हैं, तब राजा ने विचार किया कि मैं उनका उद्धार करूं, तब राजा मंत्री को राज्य देकर अकेला वन को चला और विचार किया कि तप करूं, बस फिर क्या था एक स्थान पर स्थित होकर तप करने लगा, ब्रह्मा, रुद्र और जगत् ऋषि का गंगा लाने के लिये आराधन किया, यह तपःक्रम सहस्रवर्ष पर्यन्त चलता रहा, तब गंगा मध्य मंडल में आयी वह कैसी गंगा है, जो विष्णुभगवान् के चरणों से प्रकट हुई है, उस गंगा के प्रवाह को पितरों के उद्धार निमित्त राजा ले आया, फिर राजा भगीरथ समचित्त और शान्तपद में स्थित होकर विचरने लगा, जिसमें न कोई क्षोभ है, न भय है न कोई इच्छा है, केवल शान्त आत्मपद है, उसमें स्थित हुआ, जैसे पवन से रहित समुद्र अचल होता है, ऐसे ही संकल्प विकल्प से रहित होकर स्थित हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भागीरथोपाख्याने समाप्तिर्नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

शिखिध्वजचूडालाप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह जो भगीरथ की दृष्टि तुझे कही है, उसका आश्रय लेकर विचरो, यह दृष्टि सर्व दुःख विनाशिनी है, ऐसा एक आख्यान पूर्व काल में हुआ है, शिखिध्वज नाम का एक राजा था, रामजी बोले–भगवन्! वह शिखिध्वज कौन था और उसने किस प्रकार की चेष्टाएं कीं, कृपा करके कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! राजा शिखिध्वज पूर्वकाल में था और फिर भी होगा। सप्तमवन्तर बीते थे और चौकड़ी द्वापर युग की थी, उस समय हुआ वह कैसा राजा था कि समस्त पृथ्वी का तिलक था और शूरवीरों के परम उत्तम था, अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न था, परन्तु उसमें बद्ध न था और सम्पूर्ण भोगों को भोगने में समर्थ था, बड़े ओज से सम्पन्न था, उदार और धैर्यवान् था, किसी पर अन्याय अत्याचार नहीं करता था, समचित्त और शान्तपद में स्थित था, सम्पूर्ण दुःखों से मुक्त था, जो कोई अर्थी उसके पास जाता पूर्ण मनोरथ होकर लौटता था, ऐसा था और फिर भी होगा, रामजी बोले–हे भगवन्! ऐसा जो ज्ञानवान् राजा था वह फिर क्यों जन्म लेगा, ज्ञानी तो पुर्नजन्म नहीं पाता, वह कैसे पायेगा, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे एक समुद्र में कई तरंग उठते हैं, कई अर्धसम, कई विलक्षण भाव से फुरते हैं, ऐसे आत्मसमुद्रमें कई आकार एक जैसे फुरते हैं, कई अर्धभाग से फुरते हैं, कई विलक्षण भाव से फुरते हैं जो समान फुरते हैं उनकी चेष्टा और आकार एक जैसे दृष्टि आते हैं इसलिये जाना जाता है कि वही हैं, ऐसे शिखिध्वज की आगे जैसी प्रतिमा होगी, हे रामजी! इस सर्ग में सप्तमन्वन्तर बीते और चतुर चौकड़ी द्वापर युग की बीती, तब जम्बूद्वीप के मालवदेश में श्रीमान् राजा शिखिध्वज हुआ, परन्तु उस जैसा शिखिध्वज और होगा, वह न होगा, जब षोडश वर्ष की आयु में मैं राजकुमार था, तब एक समय राजा शिकार को निकला, वसन्त का समय था, तब राजा अपने बाग में जाकर

ठहरा, वहां पुष्पों से विचित्र स्थान बने हुए थे, कमलिनियाँ मानों स्त्रियाँ हैं, धूल के कण उनके भूषण हैं और पुष्प उनके समीप वृक्ष हैं, इसी प्रकार भँवरी भँवरे की सुन्दर लीला देखने लगा, तब राजा के मन में संकल्प हुआ कि स्त्री प्राप्त हो, तब मैं चेष्टा करूं, अधिक चिन्तन होने लगा कि मुझे स्त्री कब मिलेगी और कब पुष्प शय्या पर शयन करूंगा, इत्यादिक भोगवृत्तियाँ मन में उदित हुईं तब मंत्री ने देखा कि हमारे राजा का मन स्त्री की इच्छा करता है, ऐसा हो कि राजा का विवाह करें। राजा के मन्त्री त्रिकाल ज्ञान रखते थे, शरीर की अवस्था जानते थे, इसी से उन्होंने जान लिया। तब एक राजा था उसकी कन्या बहुत सुन्दरी थी और वर प्राप्ति करना चाहती थी, उस राजा की पुत्री के साथ राजा शिखिध्वज का शास्त्र विधि के अनुसार विवाह सम्पन्न हुआ, तब राजा बहुत प्रसन्न होकर घर में आया, उसकी स्त्री का नाम चूडाला था, बहुत सुन्दरी थी, उसमें राजा का बहुत प्रेम हुआ और स्त्री का भी राजा में बहुत प्रेम हुआ। राजा के मन की बात रानी पहिले ही कह देती थी, परस्पर बहुत प्रीति बढ़ गयी, जैसे भ्रमर और भ्रमरी की परस्पर प्रीति होती है, तब एक समय मन्त्रियों को राज्य सौंपकर राजा वन को गया, वन में उसने अनेक चेष्टाएं करते हुए विचरण किया, जैसे सदाशिव और पार्वती जैसे विष्णु भगवान् और लक्ष्मी विचरें ऐसे राजा और रानी वन में विचरने लगे, तब योगकला सीखने लगे, तब रानी राजा को योग सिखाती थी, सम्पूर्ण कला से उत्पन्न हुए, परन्तु चूड़ाला की बुद्धि राजा की बुद्धि से तीक्ष्ण थी, वह शीघ्र ही जानकर राजा को सिखाती थी। इसी प्रकार बहुत चेष्टा करती और विचरती थी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे शिखिध्वजचूडाला प्राप्तिर्नामसप्ततितमः सर्गः ।।७७।।

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

चूडालाप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसी प्रकार राजा और रानी ने अनन्त भोग भोगे जैसे कुम्भ के छिद्र से धीरे धीरे जल निकलता है, ऐसे शनैः शनैः यौवन के चले जाने पर वृद्ध अवस्था आ पहुँची तब राजा और रानी को वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब विरक्त होकर यह विचार करने लगे कि यह संसार मिथ्या है नाशवान् है, एक सा नहीं रहता, यह विषय भोग सब मिथ्या है, नाशवान् है, एक सा नहीं रहता, यह विषय भोग सब मिथ्या है, जिनको इतने समय तक हम भोगते रहे तब तृष्णा पूर्ण न हुई बढ़ती गयी, इस प्रकार राजा और रानी वैराग्य से विचारने लगे कि यह भोग मिथ्या हैं और हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत हो गयी है, जैसे बिजली का चमत्कार क्षणमात्र होकर बीत जाता है, ऐसे यौवन बीत गया और मृत्यु निकट आयी जैसे नदी का वेग तले को चला जाता है, ऐसे आयुबल व्यतीत हो जाता है, जैसे—हाथ के ऊपर जल डाला हुआ बाहिर जाता है, ऐसे यौवनावस्था निवृत्त हो गयी है और यह शरीर कैसा है, जैसे जल में तरंग बुद्बुदे उत्पन्न होकर लीन हो जाते हैं, ऐसे ही शरीर क्षण भंगुर है और जहां चित्त जाता है, वहां दुःख भी इसके साथ चले जाते हैं निवृत्त नहीं होते, जैसे मांस के टुकड़े के पीछे ईल पक्षी चला जाता है ऐसे जहां अज्ञान है वहां दुःखभी पीछे जाते हैं और यह शरीर भी निवृत्त हो जाता है, जैसे आम का पका फल वृक्ष के साथ नहीं रहता गिर पड़ता है, ऐसे यह शरीर गिर पड़ता है, इसलिये हम चाहते हैं कि ऐसा कुछ करें कि जिससे संसार विषूचिका निवृत्त हो जावे, वह संसार रूप विषूचिका ब्रह्मविद्या के मन्त्र से निवृत्त होती है, ब्रह्म विद्या से ज्ञान उत्पन्न होता है और आत्मज्ञान से सर्व दुःख निवृत्त हो जाते हैं, इससे अन्य उपाय कोई नहीं, अतः हमें चाहिये कि आत्मज्ञान के लिये सन्तों के पास जायें, हे रामजी! ऐसा विचार करके राजा और चडाला

आत्मज्ञानी सन्तों के पास जाने लगे और आत्मचर्चा होने लगी, आत्मज्ञान में उनका चित्त लगने लगा और वह आत्मपरायण होकर सन्तों से आत्म चर्चा करने लगे, सन्त भी समर्थ हैं, आत्मज्ञान के सागर हैं, अज्ञानी मनुष्य को करामलकवत् इस विश्व की नश्वरता समझाकर क्षणमात्र स्वरूपस्थ कर देनेवाले ज्ञातज्ञेय महात्मा हैं, उनके लिये यह संसार नाटचशाला है वह अज्ञानी मनुष्य को यही समझाते हैं कि भाई तू अपने आपको जो कुछ समझ रहा है वह तेरा वास्तव रूप नहीं किन्तु मायामय संसार लीला है, वास्तव में तू अजर अमर अरूप अभेद्य अखण्ड अविनाशी आत्मदेव है अनेक रूप होता हुआ भी एक है, अभ्यास द्वारा स्वरूप साक्षात्कार हो जाने पर तेरे सब दुःख संशय निवृत्त हो जायेंगे, इत्यादि यथार्थ वचनों से मूढ़ जीवों को अपने स्थान पर लाने वाले हैं, उन आत्मवेत्ता सन्तों की राजा रानी ने पूजा की और उनसे ब्रह्मचर्चा सुनने लगे कि आत्मा शुद्ध है आनन्द रूप है जिसके पाने से दुःख निवृत्त हो जाते हैं, वह आत्मा चेतन है एक है। रानी चूडाला की वृत्ति इस विचार में रहती कि मैं क्या हूँ और यह संसार क्या है, तथा संसार की उत्पत्ति किससे है? ऐसे विचारकर जानने लगी कि यह पंच तत्व का शरीर है यह भी मैं नहीं, क्योंकि शरीर जड़ है और यह कर्म इन्द्रिय भी जड़ है, जैसा शरीर है ऐसे शरीर के अंग हैं, यह जो चेष्टा करते हैं, वह ज्ञानेन्द्रियों से करते हैं, वे ज्ञानेन्द्रिय भी मैं नहीं, क्योंकि यह भी जड़ हैं, मन से मन की चेष्टा होती है, वह मन भी जड़ है, उसमें संकल्प विकल्प चेतन है, वह बुद्धि से है और बुद्धि भी जड़ है, जो उसमें निश्चय चेतना है, वह अहंकार से होता है और अहंकार भी जड़ है, जो उसमें अहं चेतना करके होती है वह चेतनता भी जीव से होती है, वह जीव भी मैं नहीं, क्योंकि यह जीवत्व स्फुरणरूप है और मेरा स्वरूप स्फुरण से रहित है, सदा उदयरूप है और सन्मात्र है, बड़ा कल्याण है जो चिरकाल से मैंने अपने स्वरूप को पाया है, वह कैसा पद है, अविनाशी है अनन्त है और आत्मा है, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, ऐसे मैं निर्मल हूँ

और विगत ज्वर हूँ, राग द्वेष रूप ताप से रहित हूँ और चिन्मात्र पद और अहं त्वं से रहित हूँ मेरे अन्दर फुरणा कोई नहीं, इसी से शान्त रूप हूँ, जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल से रहित शान्तरूप है, ऐसे चित्त से रहित अचल हूँ, अद्वैत हूँ, कदाचित् स्वरूप से परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ, ऐसा जो चिन्मात्र पद है उसकी ब्रह्मवेत्ता ने संज्ञा कही है कि ब्रह्म चेतन है और परमात्मा है, इत्यादिक नाम आचार्य ने रक्खे हैं और यह आत्मा ही मन बुद्धि आदिक और दृश्य संसाररूप होकर फैला है और स्वरूप से अच्युत है, गिरा कदाचित् नहीं और फुरणे से आकार भासते हैं, तो भी आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे बड़ा पर्वत होता है, उसके पत्थर बड़े होते हैं तो भी पर्वत से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह दृश्य आत्मा से इतर कुछ नहीं और यह आकार कैसे हैं? जैसे गन्धर्व नगर नाना आकार हो भासता है, ऐसे यह संसार है, ज्ञानवान् को एक रस है और अज्ञानी को भेद भावना है, जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने कल्पता है, हस्ती घोड़ा, राजा, प्रजा से आदि लेकर नाम रखता है और जिसको मृत्तिका का ज्ञान है उसको मृत्तिका ही भासती है, इतर कुछ नहीं भासता, ऐसे अज्ञान से नाना रंग भासते हैं, अब मैंने जान लिया है मैं एक रस हूँ, हे रामजी! इस प्रकार चूडाला ने अपने आपको मालूम किया कि मैं सन्मात्र हूँ, अच्छेद्य हूँ, अदाह्य हूँ, स्वच्छ हूँ, अक्षर हूँ, निर्मल हूँ, मेरे अन्दर अहं त्वं एक और द्वैत कोई शब्द नहीं और जन्म मृत्यु भी कोई नहीं, यह संसार चित्त से भासता है और आत्मस्वरूप है, देवता, यक्ष और राक्षस स्थावर जंगम आदिक सब आत्मरूप हैं, जैसे तरंग बुदबुद् समुद्र से भिन्न कुछ नहीं, ऐसे आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, दृश्य द्रष्टा, दर्शन, यह भी आत्मसत्ता से चेतन है, इनकी स्वयं सत्ता कुछ नहीं, मेरे अन्दर अहंकार उत्थान का अभाव है, स्वस्थरूप हूँ, अब इसी पद का आश्रय लिये संसार में विचरूंगी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालाप्रबोधो नामाष्टसप्ततितमः सर्गः ।।७८।।

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९

चूडालात्मलाभवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार चूडाला ने विचार द्वारा आत्म जागृति प्राप्त की, उसकी तृष्णा निर्मूल हो गयी, दुःख भय और भोगवासना यह सब बातें उसे छोड़ गयी, वह केवल शान्त आत्मपद में स्थित होकर शोभा पाने लगी जो पाने योग्य पद है उसको पाकर उसने जाना कि मैं इतना समय अपने स्वरूप से गिरी रही, अब मुझे शान्ति मिली है और मेरे सब दुःख मिट गये हैं, अब मेरे लिये ग्रहण त्याग कुछ नहीं। हे रामजी! इस प्रकार चूडाला आत्म स्वभाव में स्थित होकर एकान्त में समाधिस्थ हो गयी, जैसे वृद्ध गौ पर्वत की कन्दरा को पाकर बहुत से सुन्दर घास से प्रसन्न होती है, ऐसे ही अपने आनन्द रूप को पाकर चूडाला स्थित हुई, हे रामजी! ऐसे आनन्द को प्राप्त हुई, जिसका वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, तब राजा शिखिध्वज आकर रानी को इस प्रकार की ज्ञानावस्था में देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए और बोले–हे अङ्गने! तू पुनः यौवनस्था को प्राप्त हुई है, तुम्हें कोई महान् आनन्द प्राप्त हुआ है, क्या तुमने अमृत का सार पान किया है उससे अमर हो गयी है अथवा किसी अप्राप्त तथा पाने योग्य वस्तु को तुमने पा लिया? क्या तुमने त्रिलोकी के राज्य से भी अधिक पदार्थ प्राप्त किया है? जिससे तू इतने आनन्द को प्राप्त हुई प्रतीत होती है, जिस आनन्द का आदि अन्त कोई नहीं दीख पड़ता और तुम्हारे मन में भोग वासना भी नहीं दीखती, वह अभ्यास और आत्मचिन्तन द्वारा शान्त हो गयी है, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, ऐसे तुम्हारे अन्दर निर्मलता दीखती है और तेरे श्वेत बाल भी बड़े सुन्दर दृष्टि आते हैं, इसलिये कहा कि तुम्हें क्या वस्तु प्राप्त हुई है, चूडाला बोली हे राजन्! यह जो कुछ दृश्य है तुच्छ है, इससे रहित जो निष्किंचन पद है, मैं उसको प्राप्त

हुई हूँ, उसका आकार निष्किंचन है और वहां दूसरे का अभाव है, उसी को पाकर मैं श्रीमान् हुई हूँ और जितने भोग हैं उनसे रहित अभोग (आत्मज्ञान) को मैंने भोगा है अर्थात् मुझे आत्मसाक्षात्कार हुआ है, आत्मा में विश्राम है सदा शान्तरूप श्रीमान् (श्रीमती) हूँ, उस परम सुखरूप भोग को मैंने भोगा है, उस भोग से तृप्त हूँ, हे राजन्! जितने यह राजभोग सुख हैं, उनको त्यागकर परम सुख को भोगती हूँ, राग द्वेष से रहित होकर मैं कैसी हूँ, जो मैं नहीं और मैं ही स्थित हूँ, जितना कुछ नेत्रों से दीखता है और इन्द्रियों से जाना जाता है, मन से चिंतन किया जाता है वह सब स्वप्नवत् मिथ्या है और मैं वहाँ स्थित हुई हूँ, जहां इन्द्रिय और मन की गम नहीं और अहंकार जिसमें उत्थान नहीं, उस पद को प्राप्त हुई हूँ, जो सबका आधार है और सबका आत्मा है, उस अमृत का सार अमृत मैंने पान किया है, इसलिये मेरा कभी नाश नहीं हो सकता, मैं सदा निर्भय हूँ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेचूडालात्मलाभवर्णनं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ।।७९।।

अशीतितमः सर्गः ८०

पंचकविलासवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! रानी ने जब इस प्रकार जब कहा तब राजा शिखिरध्वज हँसने लगे, उसकी बातों को उन्होंने यथार्थ नहीं समझा और बोले—हे मूर्ख स्त्री! यह क्या कहती है, कि मैं नहीं देखती, झूठ कहती है प्रत्यक्ष वस्तु को देखती हुई भी कहती है कि मैं नहीं देखती और जो असत् है दीखता नहीं उसको सत् कहती है मैं देखती हूं, तेरे यह वचन कौन मानेगा, ऐसी बात करने वाला शोभा नहीं पाता और कहती है कि ऐश्वर्य को त्यागकर श्रीमान् (श्रीमती) हुई हूं और कहती है इन

भोगों का त्याग किया है और इनसे जो रहित अभोग है, उसको मैं भोगती हूं, इसलिये तू मूर्ख है, जो कहती है कुछ मैं नहीं फिर कहती है मैं ईश्वर हूं इससे महामूर्ख देखने में आती है, यदि तुम्हारा चित्त इसीमें प्रसन्न है तो इसीमें विचरो परन्तु इन बातों को सुनकर कोई सत्य न मानेगा, जैसे इच्छा है वैसे करो परन्तु तुम्हारे लिये यह शोभाजनक नहीं, हे रामजी! ऐसा कहकर राजा उठकर खड़े हो गये, मध्याह्न का समय था इसलिये स्नानार्थ चले गये, तब रानी मन में अति शोकवती हुई और विचार करने लगी कि बड़ा कष्ट है कि राजा ने आत्मपद में स्थिति प्राप्त नहीं की और मेरे वचनों पर विश्वास नहीं किया, ऐसा मन में कह कर अपने आचार में प्रवृत्त हुई और इसके बाद उसने अपने विचार या सिद्धान्त राजा से नहीं कहे, जिस प्रकार अज्ञान दशा में चेष्टा करती थी ज्ञान को पाकर भी उन्हीं चेष्टाओं से रहने लगी, एक समय रानी के मन में इच्छा हुई कि मैं प्राणों को ऊपर चढाऊं और उदान अपान को अपने वश करूं, इसलिये कि आकाश की ओर भी उड़ सकूं और अधः (नीचे) को भी जा संकू, ऐसा चिन्तन करके रानी समाधिस्थ हुई श्रीराम भगवान् बोले–हे भगवन्! यह संसार संकल्प से उत्पन्न हुआ है, स्थावर जंगमरूप संसार वृक्ष है, संकल्प इसका बीज है, वह प्राणायाम जिससे आकाश को उड़ते हैं और नीचे आते हैं पवन है और अज्ञानी पुरुष यत्न करके सिद्ध करते हैं और ज्ञानवान् लीला से ही कैसे विचरते हैं। इसका उत्तर दो। वसिष्ठजी बोले–हे राम! तीन प्रकार की सिद्धि होती है, उसको सुनो। एक तो उपादेय है कि यह वस्तु मुझे मिले उसके लिये अज्ञानी यत्न करते हैं और एक यह कि मेरा अमुक दुःख निवृत्त हो मैं सुखी हो जाऊँ, महा अज्ञानी को यह चिन्ता रहती है, एक यह कि मैं कर्म करता हूं, मुझे इसका फल मिले, यह भी अज्ञानी है क्योंकि अपने आपको कर्ता मानता है और ज्ञानवान् इनका उल्लङ्घन करके वर्तता है, ज्ञानवान् कदाचित् इसमें वर्तता भी है तो भी उसके निश्चयमें यह है कि मैं न कर्ता हूँ, न भोक्ता हूं और योग करके इस प्रकार सिद्ध होते हैं, जो देश, काल,

वस्तु, क्रिया, उनके अधीन हो जाते हैं, क्रिया—मुख में गुटिका रखना, उससे जहां चाहे चला जाय, और अंजन नेत्रों में लगाना—जिसको देखना चाहे उससे देख सकता है और खड्ग हाथ में लेकर सारी पृथ्वी को वश में कर लेना यह तो क्रिया पदार्थ हैं और देश यह कि सब पर्वत हैं उनमें—कितने पीठ हैं, जिस प्रकार यह सिद्ध होते हैं, सुनो! एक कुंडलिनी शक्ति है, आधार चक्र में नाभि के नीचे सर्पिणी की नाईं उसमें कुंडल है, कुंडल मारकर बैठी है और वासना ही उसमें विष है और जितनी नाड़ियां हैं उनकी समष्टि नहीं है उस कुंडलिनी में जब मनन होता है, तब मन होकर प्रकट होता है और निश्चय होता है तब बुद्धि प्रकट होती है, जब अहंभाव होता है तब अहंकार प्रकट होता है, जब स्मरण होता है तब चित्त प्रकट होता है और जब उसमें स्पर्श की इच्छा होती है, तब पवन प्रकट होता है, इसी प्रकार पंचतन्मात्रा और चारों अन्त:करण प्रकट होते हैं और जितनी नाड़िया हैं सब कुंडलिनी से प्रकट होती हैं और आत्मा का प्रकट होना भी इसी से जानता हूं, रामजी बोले—हे भगवन्! आत्मा का प्रकट होना उससे कैसे जाना जाता है, आत्मा तो देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित है, सर्व देश सर्वकाल सर्व वस्तु से पूर्ण है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे सूर्य का प्रतिबिंब जल में दिखाई देता है और धूप सर्वत्र देखी जाती है ऐसे ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है और प्रकट सात्विक गुण में देखा जाता है, जितनी नाड़ियां और इन्द्रिय हैं, उनका उदय होना कुंडलिनी शक्ति से है और जब यह जीव कुंडलिनी शक्ति में स्थित होकर पवन को स्थिर करता है, तब जितनी अन्दर प्राण वायु है वह सब इसके वश में होती है, जैसे सर्व सेना राजा के वश में होती है, उसी प्रकार सब इन्द्रिय इसके वश में होती हैं और यदि प्राणवायु इसके वश में न हो, तो इसको आधिव्याधिरोग उत्पन्न होते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेचूडालात्मलाभे
पंचकविलासो नामाशीतितमः सर्गः ।।८०।।

एकाशीतितमः सर्गः ८१

अग्नीषोमविचारवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! आधिव्याधि कैसे होती है? कहिये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मन की पीडा का नाम आधि और देह के दुःख का नाम व्याधि है, आधि तब होती है जब इसको संकल्प होता है, कि यह वस्तु मुझे मिले परन्तु वह वस्तु इसको नहीं मिलती तब उस चिन्ता से दुःख पाता है, तब मन और शरीर का दुःख इकट्ठा होता है तब आधिव्याधि दुःख इकट्ठे हो जाते हैं, जब भिन्न भिन्न होते हैं तब दुःख भिन्न भिन्न हो जाते हैं, ज्ञानवान् को न आधि होती है न व्याधि होती है, यह योग कला मैंने विस्तार से नहीं कही, क्योंकि पूर्व के ज्ञान क्रम का प्रसंग रह जाता है और जितनी कलाएं हैं उन सबको मैं जानता हूं, परन्तु यह कला ज्ञान मार्ग को रोकने वाली है, इसलिये विस्तार से नहीं कहता, वासना चार प्रकार की है, उसे सुनिये! एक वासना सुषुप्ति है और एक वासना स्वप्न है और एक वासना जाग्रत् है और एक क्षीण वासना है, स्थावर योनि की सुषुप्त वासना है, वह आगे फुरेगी और तिर्यक् योनि की स्वप्न वासना है जो उनको वासना का ज्ञान भी नहीं और जंगम जो है मनुष्य और देवता आदिक उनको जाग्रत् वासना है जो वासना में लगे हैं, यह तीन वासनाएं अज्ञानी को हैं और क्षीण वासना ज्ञानी को है, जिसकी वासना की सत्यता नष्ट हुई है, उसको वासना कोई नहीं रहती जब इस प्रकार वासना निवृत्त हुई तब आगे संसार भी नहीं रहता और जब कुंडलनी शक्ति से वासना फुरती है तप पंचतन्मात्रा द्वारा संसार भान होता है, संसाररूप वृक्ष का बीज वासना है, दश दिशाएं संसार वृक्ष के पत्र हैं, शुभ अशुभ कर्म उसके फूल हैं और स्थावर जंगम उसके फल हैं, जैसी वासना पुर्यष्टका के साथ मिलकर जीव करता है ऐसा ही आगे फल होता है, हे रामजी! इसलिये वासना का त्याग करो, वासना ही संसार वृक्ष का बीज है, यही पुरुष प्रयत्न है कि निर्वासनिक होना, तब विश्व

कदाचित् न भासेगा, जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार रूप रात्रि नहीं रहती है ऐसे ज्ञान के सूर्य के उदय हुए संसाररूप अन्धकार निवृत्त हो जाता है, हे रामजी! आधिव्याधि बड़े रोग हैं, वे मनसे होते हैं। रामजी बोले–हे भगवन्! आधिरोग तो मन का होता है व्याधि तो शरीर का रोग है, मन से कैसे होता है कहिये, वसिष्ठजी ने कहा हे रामजी! व्याधि दो प्रकार की है–एक लघु है एक दीर्घ है, लघु व्याधि वह है जो शरीर का छोटा सा दुःख जो पुण्य से स्नान से अथवा जप से निवृत हो जाय, यह लघुव्याधि कही गयी है, दीर्घ व्याधि वह है जो जन्म मरण का रोग है, वह बड़ा रोग है, मन के शान्त हुए बिना निवृत्त नहीं होता, इसलिये आधिव्याधि दोनों मन से ही होते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब चित्त शान्त होता है तब कोई रोग नहीं रहता और जब तक चित्त शांत नहीं होता तब तक आधिव्याधि होती है, उसे सुनिये कि कैसे होती है, जो कुछ बाहिर अग्नि से परिपक्व होता है उसको पुरुष भोजन करते हैं, तब अन्तर कुण्डलनी में पुर्यष्टका के साथ मिली हुई जीवकला और प्राणों की समष्टिता उससे उदान पवन ऊर्ध्वमुख हो फुरता है और अपान पवन उससे अधः को फुरता है उदान और अपान का आपस में विरोध है उनके क्षोभ से अग्नि उठता है वह हृदय कमल में आकर स्थित होता है, तब बाहिर अग्नि का पका हुआ भोजन हृदय की अग्नि से फिर पकाता है और सब नाडियां अपने अपने भाग के रस को ले जाती हैं, तब वीर्यवाहिनी नाडी उसको वीर्य बना देती है, रुधिरवाली रुधिर रूप से उसको संभाले रखती है, जब राग द्वेष के वश से चित्त कुण्डलनी शक्ति में क्षोभ होता है, तब नाडियां अपने स्थानों को छोड़ देती हैं, अन्दर अन्न का परिपाक भी नहीं होता, उस कच्चे रस से रोग उठते हैं जैसे–राजा को क्षोभ होता है तब सेना को भी क्षोभ हो जाता है और जब राजा को शान्ति होती है, तब सेना की भी शांति स्वाभाविक है, ऐसे ही जब मन में क्षोभ होता है तब रोग होता है, जब मन में शांति होती है, तब नाडियां अपने अपने स्थानों में स्थित होती हैं, रोग कोई नहीं होता,

इसलिये हे रामजी! आधि व्याधि दोष तब होते हैं, जब पुरुष का चित्त निर्वास नहीं होता जब चित्त शान्त होता है, तब रोग कोई नहीं रहता, इसलिये निर्वासन पद में स्थिति प्राप्त करो, तब रामजी ने कहा—हे भगवन्! पीछे आपने कहा कि मन्त्रों से भी रोग निवृत्त होता है, वह कैसे निवृत्त होता है कहिये, तब वसिष्ठजी बोले हे रामजी! प्रथम पुरुष को श्रद्धा होता है कि इस मन्त्र से रोग निवृत होगा और दानादि पुण्य कर्मों से सत्संग से और जप से सब व्याधि तथा रोग निर्मूल हो जाते हैं, जप करने के मन्त्रों में यरलव आदि अक्षर मन्त्रों में विशेष करके आते हैं, इनसे सिद्ध होने वाले मन्त्रों का जप करने से व्याधि तथा रोग निवृत हो जाते हैं, अब योगेश्वर का जो अणु स्थूल रूप उसे सुनिये, जब वे प्राण और अपान कुंडलनी शक्ति में स्थित होते हैं और इनको वश करके योग गम्भीर होते हैं, जैसे मशक में पवन हो, इसी प्रकार पवन को स्थिर करके कुण्डलनी सुषुम्न में प्रवेश करती है तब ब्रह्मरंध्र में जाकर स्थित होता है, एक मूहूर्त पर्यन्त वहां स्थित हो तो आकाश में सिद्धि देखता है, जैसा क्रम है तुम्हें कहता हूं सुनो, हे रामजी! सुषुम्ना के अन्दर जो ब्रह्मरंध्र है, उसमें पूरक से जब कुंडलनी शक्ति जब जाकर स्थित होता है वहां अथवा रेचक प्राण वायु के प्रयोग से द्वादश अंगुलिपर्यन्तमुख से बाहिर अथवा अन्दर ऊर्ध्वभूत मूहूर्त एक स्थित होता है तब आकाश में सिद्धों का दर्शन होता है, रामजी बोले—हे ब्राह्मणोत्तम! जब ब्रह्मरंध्र में जीवकला जाकर स्थित होती है, तब वहां सिद्धों का दर्शन कैसे होता है, दर्शन तो नेत्रों से होता है वह नेत्र आदिक इन्द्रियाँ वहां कोई नहीं होते, नेत्रों बिना दर्शन कैसे होता है, वसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो! रामजी! भूचर जो है पृथ्वी पर विचरनेवाले, इंद्रियगण नभश्वर जो हैं, आकाश में विचरनेवाले, उनका दर्शन नहीं होता, परन्तु दिव्य दृष्टि से दृष्टि आते हैं, चर्म दृष्टि से दृष्टि नहीं आते, विज्ञान के निकट जो निर्मल बुद्धि नेत्र होते हैं, उनके साथ दर्शन होता है, जैसे स्वप्न में चर्म नेत्रों बिना भी सर्व पदार्थ दृष्टि आते हैं, ऐसे सिद्धों का दर्शन होता है, परन्तु इतनी विशेषता

है कि स्वप्न के पदार्थ जाग्रत में नहीं भासते, अर्थ सिद्धि नहीं होती और सिद्धों के समागम की चेष्टा जाग्रत में भी स्थिर प्रतीत होती है, मुख के बाह्य जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपान का स्थान है, जो रेचक प्राणायाम का अभ्यास होता है और चिरपर्यन्त प्राण स्थिर भूत होता है तब और पुरिया और दिशा के स्थान में प्राप्त होने को सामर्थ्य होता है, रामजी बोले—मुनिवर! जो पदार्थ चंचलरूप हैं, उनका स्थिर होना कैसे होता है, वक्ता जो गुरु हैं, वह कृपा करके कहते हैं, दुष्ट प्रश्न जो तर्क रूप हैं, उन करके भी खेदवान् नहीं होते, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसी जैसी वस्तु है, ऐसी उसकी शक्ति स्वाभाविक होती है, यह आदि जगत् के फुरने से नीति हुई है, ऐसे अब तक आत्मा में स्वभाव शक्ति का फुरना होता है, यह जो अविद्या है असत्‌रूप है, जो कहूँ, वस्तुरूप होकर भासती है तो जैसे वसन्त ऋतु में भी शरत्काल के फूल दृष्टि आते हैं और वसन्तऋतु के शरत्काल में भासते हैं और यह भी एक नीति है कि इससे यह द्रव्य की शक्ति ऐसे हो जाये, परन्तु स्वरूप से सब ब्रह्मरूप है और द्वैत नानात्व कुछ नहीं, केवल ब्रह्मतत्व अपने आप में स्थित है, व्यवहार के लिये नानात्व की कल्पना हुई है, वास्तव से द्वैत कुछ नहीं, राम बोले—हे भगवन्! सूक्ष्मरंध्र से स्थूल रूप कैसे निकल जाता है और अणु सूक्ष्म रूप होकर फिर स्थूल भाव को कैसे प्राप्त होता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे आरे से काष्ठ कटता है, उसके दो टुकड़ों को शीघ्र ही घर्षण करने पर उनमें स्वाभाविक आग निकलती है, ऐसे उदर में मांसमय जो मल है, उसके मध्य हृदय कमल है, उसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति है, उस कमल के अन्दर दो कमल हैं, एक अधः दूसरा ऊर्ध्व, अधः चन्द्रमा की स्थिति है, ऊर्ध्व सूर्य की स्थिति है, उसके मध्य में कुण्डलनी लक्ष्मी स्थित है, जैसे पद्मराग मणि का डिब्बा हो, जैसे मोतियों का भण्डार हो, ऐसे उसका महा उज्ज्वल रूप है, जैसे आवर्त फेन के मिलने से शल शल शब्द प्रकट होता है ऐसे उससे शब्द निकलता है, कुण्डलनी से प्रणव शब्द उदय होता है, हे रामजी! आकाश और पृथ्वी

जो हैं, ऊर्ध्व और अधोरूप इनमें दो कमल हैं, उनके मध्य में कुण्डलिनी शक्ति स्पन्द रूपिणी स्थित है, जीवकला पुर्यष्टक अनुभवरूप अति प्रकाश सूर्य की नाईं हृदय रूप कमल की भ्रमरी है, वह सबका अधिष्ठान आदि शक्ति है, हृदय कमल में विराजमान है, इस हृदयाकाश में कुंडलिनी शक्ति से स्वाभाविक वायु निकलती है, वह कोमल मृदुरूप है, वही पवन निकलकर दो रूप होता है, एक प्राण और दूसरा अपान वह अन्योय मिलकर स्फुरणरूप होता है, जैसे वृक्षके पत्र हिलते हैं उनसे शीघ्र ही आग निकलती है और बांसों के घर्षण से आग निकलती है, ऐसे प्राण अपान से अग्नि प्रकट होकर आकाश में उदय होती है, तब सब ओर से प्रकाश होता है, जैसे सूर्य के उदय हुए सब ओर से भुवन प्रकाशरूप होता है, ऐसे सब ओरसे प्रकाश होता है, सूर्य रूप तारा अग्निवत् तेज आकार है, हृदय कमल का स्वर्ण रूप भ्रमर है, उसके चिन्तनसे योगी तद्गत होते हैं, वह प्रकाश ज्ञानरूप है, उस तेजके साथ योग की वृत्ति तद्गत होती है, अर्थात् एकत्व भाव को प्राप्त होती है, तब लक्ष योजन पर्यन्त जो पदार्थ हो उनका ज्ञान हो आता है प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, उस अग्नि का हृदय रूप ताल स्थान है, जैसे बड़वाग्नि समुद्र में रहता है और जल ही उसके लिये ईंधन है, जल को दग्ध करता है, जैसे हृदय रूप ताल में उसका निवास है, जल को पचता है, उस हृदय कमल से जो अपान रूप शीतल वायु उदय होता है उसका नाम चन्द्रमा है और प्राणरूप उष्ण पवन उदय होता है, वह सूर्यरूप है, वही उष्ण और शीतल सूर्य चन्द्रमा नाम से देह में स्थित है, आदि प्राणवायु सूर्य से अपानरूप चन्द्रमा से सूर्यरूप होकर स्थित होता है, सूर्य उष्ण और चन्द्रमा शीतल है, इन दोनोंसे गत् हुआ है, विद्या अविद्या सत्य असत्यरूप जगत् दोनों से युक्त है, सत् चित् प्रकाश विद्या उत्तरायण सूर्य अग्नि आदिक नामों से बुद्धिमान् निर्मल भाव कहते हैं और असत् जड़ अविद्या तमस् दक्षिणायन आदिक मार्ग यह चन्द्रमारूप मलिन भाव कहते हैं, रामजी बोले–हे भगवन्! अग्नि सूर्यरूप जो प्राणवायु है, उससे शीतल जलरूप चन्द्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता

है और अपान जल चन्द्रमा रूप से सूर्य कैसे उत्पन्न होता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! सूर्य चन्द्रमा जो हैं अग्नि सोम से परस्पर कार्य कारण रूप हैं, जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से वृक्ष तथा वृक्ष से बीज होता है, जैसे दिन से रात्रि और रात्रि से दिन होता है, छाया से धूप और धूप से छाया होती है, ऐसे सूर्य चन्द्रमा परस्पर कार्य कारण होते हैं। कभी इनकी इकट्ठी भी उपलब्धि होती है जैसे सूर्य के उदय हुए धूप और छाया दोनों इकट्ठे आते हैं और कार्य कारण भी दो प्रकार का है, एक कार्य सत्यरूप परिणाम करके होता है, एक विनाशरूप परिणाम करके होता है, एक से दूसरा होता है, जैसे बीज नष्ट हो गया उससे अंकुर होता है, वह विनाशरूप परिणाम होता है और जैसे मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है, वह सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कार्य कारण में भावाभाव में भी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष पाया जाय उसका नाम सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कार्य में इन्द्रियों से प्रत्यक्ष पाया जाय उसका नाम सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कार्य में इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता, दिन में रात्रि और रात में दिन की नाईं वह विनाशरूप परिणाम कहाता है, जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, ऐसे अभाव भी प्रमाण है, इसलिये एक विनाश भाव भी कारण रूप है, जो कहते हैं, अपना संवित् में कर्तव्य नहीं बनता इत्यादि युक्तिवादी इस अथ की अवज्ञा करते हैं, अपने अनुभव को नहीं जानते, अनुभव की युक्ति उनको नहीं आती, यह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रकट होता है और शीतलता प्रमाण है, जैसे अग्नि के अभाव से शीतलता के अभाव में उष्णता पायी जाती है, दिन के अभाव में रात्रि छाया के अभाव में इत्यादिक का नाम अभाव प्रमाण कारण है और अग्नि से धूम भाग निकलता है, वह जाकर मेघ होता है, इस प्रकार सत्वरूप प्रमाण से सोम जो है चन्द्रमा उसका कारण अग्नि होता है और अग्नि नाश होकर शीतल भाव को प्राप्त होता है तब इसका नाम विनाश प्रमाण से अग्नि सोम चन्द्रमा का कारण होता है, सात समुद्रों का जलपान करके बड़वाग्नि धूम को उद्गीर्ण करता है, वह धूम मेघ को प्राप्त होकर अत्यर्थ जल का कारण होता है और सूर्य विनाशार्थ चन्द्रमा को पान करता है,

अमावस्या पर्यन्त बार बार भक्षण करता है, पुनः शुक्लपक्ष में उदीर्ण रूप है, जैसे सारस पक्षी भेक को भक्षण करके उद्गीर्ण कर डालता है, हे रामजी! अमृत के समान शीतल जो अपान वायु चन्द्रमा रूप है, वह मुख की अग्नि में रहता है, वह जल कण का रूप जब शरीर में जाता है, तब वह जल का अणु अपानरूप सूर्यरूप प्राणी फुरने से प्राप्त होता है, इस प्रकार सत्यरूप परिणाम से जल अग्नि का कण होता है और जब जल का नाश हो जाता है तब वह उष्णभाव अग्नि को प्राप्त होता है, इसका नाम विनाश परिणाम है, इस प्रकार जल अग्नि का कारण कहाता है, अग्नि के नाश हुए चन्द्रमा उत्पन्न होता है, इसका नाम विनाश परिणाम है और चन्द्रमा का अभाव हुए अग्नि का होना होता है इसका नाम भी विनाश परिणाम है, जैसे तम के अभाव से प्रकाश उदय होता है और प्रकाश के अभाव से तम होता है, दिन के अभाव से रात्रि और रात्रि के अभाव से दिन होता है, इसके मध्य में जो विलक्षण रूप है, वह बुद्धिमानों से भी नहीं पाया जाता, तम और प्रकाश दोनों रूपों से युक्त है, इनके मध्य में जो सन्धि है वह आत्मरूप है, उसमें स्थिति प्राप्त करो चेतन और जड़ दोनों रूपों से भूत स्फुरण होते हैं, जैसे दिन और रात्रि तम और प्रकाश से पृथ्वी में चेष्टा करते हैं, चेतन और जड़रूप सूर्य और चन्द्रमा दोनों रूप से युक्त है, निर्मल रूप जो प्रकाश चिद्रूप है, उसका नाम सूर्य है और जो जड़ात्मक तमोरूप है वह चन्द्रमा का शरीर है, जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्मा के दर्शन होते हैं तब संसार का दुःखरूप जो तम है वह नष्ट होता है, जैसे बाह्य आकाश में सूर्य उदय होने से श्याम रात्रि का तम नष्ट हो जाता है और जड़ चन्द्रमारूप जो देह है जब उसको देखता है, तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता, असत्य की नाईं हो जाता है और चेतन की ओर देखता है, तब देह नहीं भासता, केवल लक्ष में दूसरे की उपलब्धि नहीं होती, केवल चेतन पद को पाने से द्वैत से रहित निर्वाण भाव होता है और जडभाव को प्राप्त होने से चेतन नहीं भासता, इसलिये संसार के दर्शन का कारण दोनों हैं, सूर्य चेतन से चन्द्रमा जड़

की उपलब्धि होती है और जड़ चन्द्रमा से सूर्य चेतन की उपलब्धि होती है, जैसे दीपक अग्नि का अन्धकार के बिना प्रकाश नहीं होता, ऐसे इन दोनों बिना आत्मा की उपलब्धि नहीं और प्रकाश बिना केवल जड़ की उपलब्धि नहीं होती, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब कन्धे (दीवार) पर प्रकाशित होता है, वह कंध (दीवार) प्रकाश से प्रतीयमान है और प्रकाश कंध (दीवार) से प्रतीयमान है, ऐसे चित्त फुरता है, तब चेतन को जगत् भासता है और स्फुरण जगत् से होता है, फुरने से रहित अचेत, चिन्मात्र निर्वाण होता है, इसलिये हे रामजी! जगत् को अग्नि और सोम जानो, देह, देह में सम्बन्ध है, परन्तु जिसका अतिशय हो उसकी विजय होती है, प्राण अग्नि उष्णरूप है और अपान शीतल चन्द्रमारूप है और प्रकाश छायारूप है, इनको जानना सुख का मार्ग है, हे राम! जब बाहर से शीतलरूप अपान अंदर को आता है, तब उष्णरूप प्राण में जाकर स्थित होता है और जो हृदय स्थान से निकलकर उष्णरूप प्राण बाहिर द्वादश अंगुलि पर्यन्त जाता है तब अपान चन्द्रमंडल को प्राप्त होता है, वह अपानरूप होकर उदय होता है और प्राण अपानरूप होकर उदय होता है, जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब पड़ता है, ऐसे आपसमें इनका प्रतिबिंब पड़ता है, जहां षोडश कला चन्द्रमा को सूर्य ग्रस लेता है, उस मध्य भाव में स्थिति प्राप्त करो, जब अपान प्राणों के स्थान में आकर स्थित होता है और प्राणरूप होकर हृदय नहीं हुआ, वह शान्तिरूप अभाव है, उसमें स्थित हो जाओ और प्राणमुख से निकलकर जब द्वादश अंगुलि पर्यन्त बाहिर स्थित होता है और जब तक अपान भाव को प्राप्त होकर उदय नहीं हुआ, वह जो मध्यभाव है, उसी में स्थिति करो और मेष आदि जो बारह राशियाँ हैं उस एक को त्यागकर दूसरी राशि को संक्राति नहीं प्राप्त हुई, उसका नाम संक्रान्ति है, उनके मध्य में जो संधि होती है, उसका नाम पुण्यकाल है, वह पुण्य समय अंतर और बाह्य प्राण अपान की संधि के समय में तृणवत् है और उन संक्रांतियों में जो विषुवती संक्रांति वैशाख की है जो शिवरात्रि चैत्र की संक्रान्ति त्रयोदशवें दिन

होती है और अस्त की संक्रान्ति त्रयोदशवें दिन होती है, इनका नाम विषुवती है, जहां दिन और रात्रि सम होते हैं, दक्षिणायन और उत्तरायण की जो संधि होती है, इनके अन्तर और बाह्य भेद को जाने तब जन्म से रहित परम बोध को प्राप्त हो, हे राम! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरों का है, वे क्रम से मुक्त होते हैं और दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालों का है, उससे बहुत से लोग संसार भागी होते हैं, उनके मध्य में जो सन्धि है उसमें स्थित होने से परम पद की प्राप्ति होती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने अग्निषोम विचारवर्णनं नामैकशीतितमः सर्गः ।।८१।।

व्यशीतितमः सर्गः ८२

अणिमादिलाभवर्णनम् ।

महर्षि वसिष्ठ बोले–हे राम! यह योग की सर्वकला विस्तार से कही है, उसमें अति उत्तम वर्णन हुआ है, प्रयोजन यही है कि निर्वाण पद में स्थिति प्राप्त हो, आत्म ब्रह्म की एकता हो, जिससे पुनर्जन्मादिक दुःख न हों, ब्रह्म सत् चित् आनंद स्वभाव मानता है, जो पुरुष उस परब्रह्म में एकत्व भाव से लीन हो जाता है वह सदैव उसी भाव में रहता है, वह परम शक्ति का धनी होता है, उसकी अविद्या नाश हो जाती है, इस प्रकार वही चूडाला रानी योग के अभ्यास और ज्ञान के बल से पूर्ण हुई उस सर्वशक्ति से संयुक्त होकर अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त किया।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्द्धे चूडालोपाख्याने अणिमदिलाभवर्णनं नाम व्यशीतितमः सर्गः ।।८२।।

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३
किराटोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! वह चूडाला तब मध्य आकाश को उड़ी, आकाश के बहुत से स्थानों में विचरने लगी, देवलोक में गयी उड़ती जा रही है, उसके शरीर के भूषण बिजली के समान चमकते हैं, इस प्रकार समस्त पृथ्वी में मेघमाला के समान आकाश मार्ग से उड़ रही है, मेरु के शिखर पर जो लोकपालों के पुर हैं, उसमें तथा दिशाओं और आकाश के मध्य जो रन्ध्र है उनमें पक्षियों, भूतों, पिशाचों, राक्षसों, नागों, देवताओं, असुरों, विद्याधरों, अप्सराओं और सिद्धों के निवास स्थानोंमें विचरती हुई राजाके पास आकर उसको आत्मज्ञानका उपदेश करने लगी, परन्तु उसके बहुत समझाने पर भी राजा ने कुंछ भी नहीं समझा। इतनी ज्ञानवती होने पर भी राजा शिखिध्वज ने उसको सामान्य चूडाला ही जाना। उसको कहने लगा कि तुम वृथा की बातें करती हो, राजा को उसके बाहिर जाने का भी कोई ज्ञान न था, रात बीत गयी, प्रातःकाल हुआ, राजा स्नान शाला में जाकर स्नान करने लगा, उस समय भी रानी मधुर वाणी से राजा को शनैः शनैः ज्ञानोपदेश करने लगी, जैसे पिता पुत्र को मीठी वाणी से उपदेश करता है और पंडितों को कहने लगी कि तुम भी राजा को उपदेश करो कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम है और दीर्घ रोग है, दुःख का कारण है, यह आत्मज्ञान रूप औषध के सेवन से दूर हो सकता है, इसकी और कोई औषधि नहीं, इसी प्रकार पंडित लोग राजा को उपदेश करें परन्तु राजा किसी की न सुनता, उसने ज्ञान प्राप्त नहीं किया, किन्तु विक्षेप में रहने लगा, उसने उत्तम पद में विश्राम नहीं पाया, जो अपना आप है और केवल चित्तरूप प्रत्यक् आत्मा है, रामजी बोले–हे महामुने! वह रानी तो सर्वशक्ति सम्पन्न हो गयी थी, योगकला में अति चतुर और ज्ञानकला में आत्मरूप थी और राजा भी

कोई ऐसा अति मूढ नहीं था परन्तु फिर भी उसको रानी के उपदेश करने पर भी शांति क्यों नहीं मिली? रानी उसको बड़े प्रेम से उपदेश करती थी, फिर कारण क्या था कि उसको स्वरूप स्थिति प्राप्त न हुई, वसिष्ठजी बोले—हे राम! जैसे अच्छिद्र मोती में धागा प्रवेश नहीं करता, ऐसे चूडाला का उपदेश राजा को न लग सका, जब तक विचार न किया जाय और दृढ अभ्यास न हो तब तक ब्रह्मा के किये हुए उपदेश से भी ज्ञानप्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि आत्मा अपने आप से ही जाना जा सकता है, इन्द्रियों का विषय नहीं है जो अधिष्ठान रूप है और स्वभाव मात्र है, आप ही आपको देखता है और किसी मन यह इन्द्रिय का विषय नहीं, सबका अपना आप है, रामजी बोले—हे भगवन्! जब अपने आपसे देखा जाता है तब गुरु और शास्त्र किसलिये उपदेश करते हैं, वसिष्ठजी ने कहा—हे राम! गुरु और शास्त्र जता देते हैं कि तेरा स्वरूप आत्मा है, परन्तु इदं करके नहीं दिखाते, विचार नेत्र से आपको आप ही देखता है, विचार से रहित उसको नहीं देख सकता, जैसे किसी पुरुष को चन्द्रमा कोई चक्षु दिखाता है कि अमुक स्थान में देख उदय हुआ है, यदि वह सचक्षु होता है तो देखता है और मन्द दृष्टि होता है तो नहीं देखता, ऐसे गुरु और शास्त्र आत्मा का रूप वर्णन करते हैं और दिखाते हैं जब वह विचार नेत्रसे देखता है तो कहता है कि मैंने देखा और दूसरेको दिखाने योग्य हो जाता है हे राम! आत्मा किसी इन्द्रिय का विषय नहीं जो अपना आप मूल रूप है और इन्द्रिय कल्पित है और यदि तुम कहो कि आप भी तो उपदेश इन्द्रियों ही से करते हो सब इन्द्रियों का विस्मरण कर कि अपना मूल तुझे भासे, (और अभाववृत्ति इन्द्रिय किसी को तेरा अभाव न होगा) हे राम! इसपर एक क्रान्त का इतिहास है उसे सुनिये! एक क्रान्त था, उसके पास धन और अनाज भी बहुत था, परन्तु कृपण था, किसी को देता कुछ न था और धन की तृष्णा करता रहता था किस प्रकार मुझे चिन्तामणि मिले, सदा यही वांछा करे, इसी वांछा से एक दिन घर से बाहिर निकला और पृथ्वी की ओर देखता जावे एक स्थान

पर घास फूस पड़ा था, उसमें एक कौड़ी पड़ी हुई दृष्टि पड़ी, तब कौड़ी को उठा लिया फिर देखने लगा कि कुछ और भी निकले तब दूसरी कौड़ी मिली, इस प्रकार ढूंढ़ते हुए दिन व्यतीत हुए चार कौड़ियां निकली, फिर आठ निकली जब ढूंढते ढूंढते ३ दिन बीते चन्द्रमा की नाईं चमकती हुई चिन्तामणि देखी, मणि लेकर अपने घर आया और बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ। हे राम! ऐसे गुरु और शास्त्र द्वारा तत्वमसि अहं ब्रह्मास्मिका पाना वह कौड़ियों का खोजना है और आत्मा चिन्तामणि रूप है, परन्तु जैसे कौड़ियों के खोजते चिन्तामणि प्राप्त हुई बिना खोजे नहीं मिली, इसी प्रकार गुरु और शास्त्र द्वारा ही आत्मपद की प्राप्ति होती है इनके बिना नहीं होती, धन से तप से कर्म से आत्मा नहीं मिलता केवल अपने आप से प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने
किराटोपाख्यानवर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ।।८३।।

चतुरशीतितमः सर्गः ८४

शिखिध्वजप्रव्रज्यावर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे राम! राजा शिखिध्वज चूडाला के पास से उठकर स्नान करने गया, तब राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ कि यह संसार मिथ्या है, हमने बहुत भोग भोगे हैं तो भी हृदय को शान्ति न हुई, जब मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि इन भोगों का परिणाम दुःखदायक है तब राजा ने गौएं, पृथ्वी, सुवर्ण मकान तथा अन्य सामग्री का बहुत दान किया, जितने ऐश्वर्य के पदार्थ हैं, ब्राह्मणों को दान किये, अन्य गरीबों अतिथियों को बहुत कुछ दिया, जैसा जैसा किसी का अधिकार देखा ऐसा दिया, रानी ने मंत्रियों तथा ब्राह्मणों से कहा कि तुम लोग राजा को यही उपदेश करो कि यह भोग मिथ्या हैं, इनमें सुख

कुछ नहीं, आत्म सुख महान् सुख है, जिसके पाने से मनुष्य जन्म मृत्यु से मुक्त होता है, इस प्रकार राजा ने ब्राह्मणों का सदुपदेश सुना और स्वयं भी उसके अन्दर वैराग्य हो रहा था, इसलिये कहने लगा कि मैं चाहता हूँ, संसार दुःख से मुक्त हो जाऊँ, इस संसार में बड़ा दुःख है यहां सदा जन्म मरण है, इसके बाद राजा के मन में विचार हुआ कि मैं तीर्थ यात्रा करूं और वहां स्नान दानादिक से शान्ति मिलेगी, तदनुसार राजा तीर्थ स्नानार्थ के लिये चले गये, वहां स्नान करते दान करते, तीर्थों की पवित्र भूमि पर देवताओं तथा सिद्धों के दर्शन किये, तीर्थ स्नान करके राजा घर पर आये, रात को जब आराम करने का समय आया, तब राजा ने रानी से कहा, अङ्गने! अब मैं तप करने को जाता हूँ, यह सब भोग मुझे दुःखदायक प्रतीत होते हैं और राज्य भी बन की नाई उजाड़ भासता है, इस कारण से मैं तप करने के लिये वन को जाता हूँ, इन भोगों को बहुत समय तक हमने भोगा तो भी इनमें सुख नहीं प्रतीत हुआ, इसलिये मुझे अब रोकना नहीं, मैं वन को जाता हूँ, तब रानी ने कहा—हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वन को जाता है, अब तो हम राज्य भोगें, जैसे वसन्त में फूल शोभा पाते हैं और शरत्काल में शोभा नहीं पाते, ऐसे ही हम भी जब वृद्ध होंगे, तब वन को जायेंगे और वन में ही शोभा पायेंगे, जैसे वन में श्वेत फूल हों ऐसे हमारे केश श्वेत होंगे, तब शोभा पायेंगे, अब तो राज्य करो, हे राम! इस प्रकार जब रानी ने कहा तब भी राजा का चित्त वैराग्य ही में रहा, उसने रानी का कहना स्वीकार न किया, तीर्थों के स्नान से और दान से तथा राज्य सुख से राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ, परन्तु शान्ति प्राप्त न हुई, जैसे चन्द्रमा बिना कमलिनी शान्ति नहीं पाती, ऐसे ही ज्ञान के बिना राजा को शान्ति नहीं मिली, परन्तु वैराग्य से कहने लगा—हे रानी! अब मेरे लिये विघ्न न करना, मुझे फीका लगा है, मैं वन को जाता हूँ, मुझसे यहां नहीं ठहरा जाता, यदि तुम कहो कि हम तुम्हारी सेवा करते थे अब कौन करेगा, पृथ्वी ही हमारी सेवा करेगी, वन की वीथियाँ ही स्त्रियाँ होंगी और मृगशावक ही

पुत्र होंगे, आकाश हमारे वस्त्र हैं, पुष्प गुच्छ ही भूषण हैं, जब राजा ने इस प्रकार कहा तब रात्रि का समय आ गया, तब राजा वहां से चला, तब रानी और कुछ सेना भी पीछे चली, बड़ी भयानक रात्रि में चले, कोट के बीच ही जाकर स्थित हुए, तब राजा रानी सो गये, जैसे भ्रमर भ्रमरी सोते हैं, सेना के लोग तथा अन्य कर्मचारी भी सो गये, सब लोग कर्म निद्रा से जड़ हो गये, जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है, जब आधीरात बीती तब राजा जगा, उसने देखा कि सब सोये हैं, तब उठा और हाथ में खड्ग लेकर निकला जैसे क्षीरसागर से विष्णु भगवान् लक्ष्मी से उठते हैं ऐसे उठा सब स्थान से निकलता जब कोट के दरवाजे पर आया तब अर्ध मनुष्य जगे थे और आधे सोये थे, उन्होंने राजा को देखा तब राजा ने कहा—हे द्वारपालो! तुम यहां ही बैठे रहो मैं अकेला ही वीर यात्रा के लिये जाता हूं, यह कहकर तीखे वेग के साथ चला गया और बाहिर निकलकर बोला—हे राजलक्ष्मि! तुझको नमस्कार है, अब मैं वन को चला हूं, इतना कहकर चला और एक वन में आया जहाँ सिंह, सर्प, तथा अन्य भयानक जीव बहुत हैं, उनके शब्द सुनता हुआ आगे चला गया, उसके आगे और वेला आया, उसको भी पार किया जब आठ प्रहर राजा चला तब एक स्थान पर जाकर ठहर गया, जब सूर्योदय हुआ तब स्नान करके सन्ध्यादिक कर्म से निवृत्त हुए और वन के फल लेकर भोजन किया और फिर आगे चला कि कोई पीछे से आकर मुझे रोक न लेवे, इस कारण से तेज गति से चलनें लगा, बड़े बड़े पहाड़ों नदियों जङ्गलों को लांघता हुआ बारह दिन के बाद मंदराचल के निकट चला गया, वहाँ एक वन में जाकर ठहरा स्नान करके फलाहार किया और पत्ते इकट्ठे करके झोपड़ी बनाई, वर्षा और धूप से बचने के लिये उसमें रहने लगा, कुछ पात्र भी बनाये उनमें फूल आदि रक्खे जाते, जब प्रातः काल होता तब स्नान करके प्रहर पर्यन्त जप करता था, तदन्तर देवताओं के पूजन निमित्त फूल चुने और स्नान करके दूसरा प्रहर ऐसे ही व्यतीत करे, तीसरे प्रहर फल खायें, चौथे प्रहर फिर सन्ध्या जप करे, इसीप्रकार दिन और

रात व्यतीत करे, कुछ समय रात्रि को जप करके शयन करे। यही कालक्रम था।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजप्रव्रज्यावर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५
सुखविचार योगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! राजा की तो यह अवस्था हुई, अब रानी की सुनो। जब आधीरात के बाद रानी जगी तब क्या देखती है कि राजा वहां नहीं है, शय्या खाली पड़ी है, वन को चला गया, तब रानी ने अपनी परिचारिकाओं (दासियों) जो जगाया और कहने लगी बड़ा कष्ट है, राजा वन को निकल गया है, वह बड़े भयानक वन में जायेगा, ऐसा कह कर मन में विचार किया कि राजा को देखना चाहिये, तब योग में स्थित होकर आकाश को उड़ी, आकाश की नाईं देह को अन्तर्धान करके जैसे योगीश्वरी भवानी उड़ती है, ऐसे उड़ी और आकाश में स्थित होकर देखा कि राजा चला जाता है, तब रानी के मन में आया कि इसका मार्ग रोकूं, फिर एक क्षण भर ठहरकर भविष्य को विचारने लगी कि मेरा और राजा का संयोग नीति कैसे रचा है? तब उसने देखा कि मेरा और राजा का मिलाप होने मे बहुत काल शेष है, मिलाप अवश्य होगा, उसको उपदेश करके मुझे जगाना है, परन्तु कुछ समय के बाद। अभी इसके कषाय परिपक्व नहीं हुए, इसलिये इसका अभी मार्ग नहीं रोकूंगी, तब रानी फिर अपने घर आयी और शय्या पर आकर सो गयी, बहुत प्रसन्न हुई, जब रात बीती तब मंत्री से कहने लगी कि राजा एक तीर्थ पर गये हैं, दर्शन करके आयेंगे, इस प्रकार मंत्री को और प्रजा को

कहा और मंत्री को आज्ञा दी कि तुम अपने काम में प्रवृत्त रहो, तब मंत्री अपनी चेष्टा में वर्तने लगे, इसी प्रकार रानी ने आठ वर्ष तक राज्य किया और प्रजा को परम सुख में रक्खा जैसे बागवान् कमलों की क्यारी को सुख से पालते हैं, ऐसे रानी ने प्रजा को सुख दिया और वहाँ राजा को आठ वर्ष तप करते बीत गये और राजा के अंग दुर्बल पड़ गये और वहां रानी ने राज्य किया, रानी ने विचारा कि राजा अब मेरे वचन श्रवण का अधिकारी हुआ है, तप करने से राजा का अन्तःकरण शुद्ध हुआ है, अब राजा को देखना चाहिये। रानी आकाश को उड़ी और आकाश में जो नन्दन वन है उसको देखा, वहां का जो दिव्य पवन है उसका स्पर्श हुआ तब रानी के चित्त में आया कि मुझे भर्ता कब मिलेगा, फिर कहने लगी कि बड़ा आश्चर्य है मैं तो सत् पद को प्राप्त हुई थी, तो भी मेरा मन चलायमान् हुआ है तो जीवोंकी क्या कथा है, तब वहां से चली आगे कमल फूल देखे, देखकर कहने लगी कि मुझे भर्ता कब मिलेगा, मैं भर्ता को कैसे पाऊँ, मैं कामातुर हुई हूँ, फिर मन को कहने लगी हे दुष्ट मन! तू तो सत् पद को प्राप्त हुआ था, तेरा भर्ता आत्मा है, अब तू मिथ्या पदार्थों की अभिलाषा क्यों करता है, फिर कहने लगी जब तक देह है, तब तक देह के स्वभाव भी साथ रहते हैं, तभी तो मेरी यह दशा हुई है, तो भी मन विचलित होता है, अन्य जीवों की क्या बात करनी है? तब रानी मेघों के स्थान लांघ गयी, महा बिजली के स्थान भी पार कर गयी, बड़े पर्वतों नदियों समुद्रों भयानक स्थानों को पारकर गयी, मंदराचल के पवित्र वन में आकर ठहरी और कहने लगी कि मेरा भर्ता कहाँ हैं तदनन्तर समाधिस्थ होकर उसने देखा कि अमुक स्थान में बैठा है। तप से शरीर निर्बल हो गया है और ऐसे स्थान पर प्राप्त हुआ है जहां दूसरे किसी जीव की गम नहीं और महा वैताल की नाईं रात्रि को चला आया है, इसलिये अज्ञान महा दुष्ट है, जो ऐसा राजा तप करने लगा है, स्वरूप के प्रमाद से जड़ है, अब ऐसा हो कि किसी प्रकार अपने स्वरूप को प्राप्त हो, परन्तु मेरे इस शरीर से इसको ज्ञान उत्पन्न न होगा

क्योंकि राजा को प्रथम अभिमान होगा कि मेरी स्त्री है और फिर कहेगा मैंने इसीलिये राज्य छोड़ा है फिर मेरे लिये दुःख देने को आयी है, इसलिये और शरीर धारण करती हूँ, ऐसा विचार कर रानी ने ब्रह्मचारी शरीर धारण कर लिया जैसे जल का तरंग एक स्वरूप को छोड़कर दूसरा हो जाता है ऐसे ही महासुन्दर शरीर को धारण कर एक बालिपूत पृथ्वी के ऊपर चलने लगी, हाथ में रुद्राक्ष की माला और कमण्डलु धारण किये तथा मृग चर्म बगल में दबाये। मस्तक पर विभूति लगाये हुए थी, जैसे सदाशिव के मस्तक पर चन्द्रमा विराजता है ऐसे विभूति को लगाये थी, श्वेत यज्ञोपवीत धारण किया था, ऐसे चिह्न धारण कर चली। राजा देखकर उठ खड़ा हुआ और उसने प्रेम से नमस्कार किया, चरणों पर पुष्प चढ़ाये और अपने स्थान पर बैठाया और कहने लगा हे देवपुत्र! आज मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपका दर्शन हुआ, हे देवपुत्र! तुम्हारा आना कैसे हुआ? देवपुत्र बोले–हे राजन्! हम बड़े बड़े पर्वत देखते आये हैं और तीर्थ स्नान करते आये हैं, परन्तु जैसी भावना तुम्हारे अन्दर देखी है; ऐसी किसी में नहीं देखी, हे राजन्! तुमने बड़ा तप किया है, तुम इंद्रियजित दृष्टि आते हो और मैं जानता हूँ कि मेरा तप खडधारावत् तीक्ष्ण है, इसलिये तुम धन्य हो, तुम्हें नमस्कार है, परन्तु हे राजन्! आत्मयोग के लिये भी कुछ तप किया है अथवा नहीं किया, कहिये। तब राजाने जो पुष्पमाला देव पूजनके लिये रखी थी, वह देवपुत्र के गले में डाल दी और पूजा की और कहा हे देवपुत्र! तुम्हारे जैसे मनुष्य का दर्शन दुर्लभ है और अतिथि का पूजन देव पूजन से भी अधिक है, हे देवपुत्र! तुम्हारे अंग बहुत सुन्दर दृष्टि आते हैं, ऐसे ही मेरे स्त्रीके अंग थे, नख शिख पर्यन्त मेरे वही अंग दृष्टि आते हैं परन्तु तुम तो तपस्वी हो, तेरी मूर्ति शान्ति के लिये हुई है, मैं कैसे कहूँ कि वही है, इसलिये हे देवपुत्र! कहो तुम किसके पुत्र हो और यहां किस निमित्त आये हो और आगे कहां तक जाओगे। यह संशय मेरा निवृत्त करो, तब देवपुत्रने कहा–हे राजन्! एक समय नारद मुनि सुमेरु पर्वतकी कंदरा में

आया था, वह अति सुन्दर कन्दरा है, जहां आश्चर्य के वृक्ष और मंजरियां फूलों से पूर्ण हैं, ब्राह्मणों के कुटीर वहां बने हुए हैं, उस स्थान को देखकर ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि समाधि लगाये बैठा और गंगा का प्रवाह चलता है, जहां सिद्धों की ही पहुँच है और जीवों की नहीं, तब कुछ समय तक समाधिस्थ रही जब समाधि से उतरा तब भूषण का शब्द हुआ, इससे नारदजी के मन में महान् आश्चर्य हुआ कि यहां तो आने की शक्ति किसी की नहीं, यह भूषणों का शब्द कहां से आया, तब उठकर देखने लगा कि गंगा का प्रवाह चला आता है, वहां उर्वशी आदिक अप्सराएं स्नान करती हैं, वस्त्रों को उतारकर नहाती हैं, महासुन्दरियां हैं, जब उनको देखा तब नारदजी के विवेक पर आवरण आ गया और उनका वीर्य स्खलित हुआ, उसके पास सुन्दर वल्ली थी, उसके पत्र पर जाकर स्थित हुआ, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था, इस प्रकार सुनकर शिखिध्वज ने कहा, हे देवपुत्र! ऐसा ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि सर्वज्ञ और मननशील उसका वीर्य किस निमित्त चला? तब देवपुत्र ने कहा–हे राजन्! जब तक शरीर है तब तक अज्ञानी का और ज्ञानी का भी शरीर स्वभाव निवृत्त नहीं होता, परन्तु एक भेद है, जब ज्ञानवान् को दुःख आकर प्राप्त होता है तो वह दुःख नहीं मानता और जब सुख आकर प्राप्त होता है तब सुख नहीं मानता, हर्षवान् नहीं होता और जब अज्ञानी को दुःख सुख आकर प्राप्त होता है तब हर्षशोक करता है, जैसे श्वेत वस्त्र पर केसर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है, ऐसे अज्ञानी को सुख दुःख का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है और जैसे मोम के वस्त्र को जल का स्पर्श नहीं होता है, ऐसे ही ज्ञानवान् को सुख दुःख का स्पर्श नहीं होता और जिसके अन्तःकरणरूप वस्त्र को ज्ञानरूप मोम नहीं चढ़ा, उसका दुःख सुखरूप जल स्पर्श कर जाता है और ज्ञानवान् मोमवत् है, उसके अन्तःकरण को दुःख सुख नहीं होता, अज्ञानी को होता है, दुःख की नाड़ी भिन्न है और सुख की नाड़ी भिन्न है, जब सुख की नाड़ी में स्थित होता है, तब दुःख नहीं देखता, जब दुःख की नाडी में स्थित होता है तब सुख नहीं

देखता, अज्ञानी के लिये कोई दुःख का और कोई सुख का स्थान है और ज्ञानी को एक आभास मात्र दिखाई देता है, वह बन्धन में नहीं आता, तब राजा ने कहा जो वीर्य गिरता है वह कैसे निवृत्त होता है तब देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! जब इसका चित्त वासना से क्षोभवान् होता है, तब नाडियाँ भी क्षोभ करती हैं और अपने स्थानों को त्यागने लगती हैं तब वीर्य वाहिनी नाड़ी से स्वाभाविक ही वीर्य नीचे को चला आता है फिर राजा ने कहा—हे देवपुत्र! स्वाभाविक किसे कहते हैं, देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! आदि शुद्धपरमात्म चेतन में जो स्फुरण हुआ है उस क्षणमात्र शक्ति के उत्थान से आगे प्रपंच बन गया, उसमें आदि नीति हुई है कि यह घट है, यह पट है, यह अग्नि है, इसमें उष्णता है, यह जल है, इसमें शीतलता है, ऐसे ही नीति है, जो वीर्य ऊपर से नीचे को आता है जैसे पर्वत से पत्थर गिरता है वह नीचे को चला आता है, ऐसे वीर्य भी नीचे को आता है, तब राजा ने प्रश्न किया हे देवपुत्र! इसको दुःख कैसे होता है और सुख कैसे होता है ओर दुःख सुख का अभाव कैसे होता है, तब देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! जब यह जीव कुंडलिनी शक्ति में स्थित होता है और दृश्य जो हैं चार अन्तःकरण, इन्द्रियवर्ग तथा देह इनमें अभिमान करके दुःखी होता है, इनके दुःख के साथ दुःखी और सुख के साथ सुखी होता है, जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब होता है, ऐसा ऐसा दुःख सुख भासता है, जैसे शुद्ध मणि में प्रतिबिंब पड़ता है वह अज्ञान करके भासता है। ज्ञान से इनका अभाव हो जाता है और जब उसको ज्ञानरूप का आवरण करके आगे पटल होता है तब प्रतिबिंब नहीं पड़ता। (देहादिक के अभिमान से रहित होने का नाम ज्ञान है) न देहादिक हैं न मैं इनसे कुछ करता हूँ, जब ऐसा निश्चय हो तब दुःख सुख का भान नहीं होता क्योंकि संसार का दुःख सुख इसकी भावना में होता है, जब वासना से रहित हुआ, तब दुःख सुख भी नष्ट हो जाते हैं, जैसे जब वृक्ष ही जल जाता है तब पत्र फूल फल क़हां रहें, ऐसे अज्ञानरूप वासना से दग्ध हुए दुःख सुख कहां रहे?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने सुखविचार योगोपदेशोनाम पंचाशातितमः सर्गः ॥८५॥

षडशीतितमः सर्गः ८६

कुंभजजननवर्णनम् ।

राजा ने कहा–हे भगवन्! आपके वचन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती, जैसे मेघ का शब्द सुनते ही मोर तृप्त नहीं होता, इसीलिये कहो कि आपकी उत्पत्ति कैसे हुई, तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जो कोई प्रश्न करता है तब बड़े (चतुर पुरुष) उसका निरादर नहीं करते, इसलिये तुम जो कुछ मुझे पूछते हो मैं कहता हूँ, हे राजर्षि! वह वीर्य था, उसको नारद मुनि ने एक मटकी में डाला, वह कैसी मटकी थी, स्वर्णवत् जिसका उज्ज्वल चमत्कार था, उसमें वीर्य रखकर उसके ऊपर दूध डाला और मटकी को पूर्ण किया और वीर्य को एक कोने की ओर किया, तदनन्तर मंत्रों का उच्चारण किया और आहुति दी, भले प्रकार से पूजन किया, जब एकमास बीता, तब मटकी से बालक प्रकट हुआ, वह कैसा बालक था कि जैसे चन्द्रमा क्षीर समुद्र से निकला हो, उस बालक को लेकर नारद जी आकाश को उड़े और उसको ब्रह्माजी के पास ले आये और नमस्कार किया, तब बालक को पितामह ने गोद में बैठाया और आर्शीवाद दिया कि तू सर्वज्ञ होगा और शीघ्र ही तुझे अपने स्वरूप का साक्षात्कार होगा, कुंभ से उत्पन्न होने के कारण उस बालक का नाम कुंभज रक्खा, वह कुंभज सर्वज्ञ मैं हूँ। नारदजी का पुत्र और ब्रह्माजी का पौत्र हूँ, सरस्वती मेरी माता है, गायत्री मेरी मौसी है, मेरे लिये सर्वज्ञान है, तब राजा ने कहा हे देवपुत्र! तुम सर्वत्र दृष्टि आते हो, तुम्हारे वचनों से मैं जानता हूँ और यहां किस निमित्त आये हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्द्धे चूडालोपाख्याने
कुंभजजननवर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ।।८६।।

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७

शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

तब देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! तुमने जो पूछा मैंने कहा अब कहो कि तुम कौन हो और यहां क्या काम करते हो, तब राजा ने कहा—हे देवपुत्र! आज मेरा भाग्योदय हुआ है, जो कि आपका अतिपवित्र दर्शन हुआ क्योंकि आपका दर्शन दुर्लभ है, यज्ञ और तप से तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है, तब देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! अपना वृत्तान्त कहो कि तुम कौन हो? राजा ने कहा—हे देवपुत्र! मैं राजा हूँ और शिखिध्वज मेरा नाम है, मैंने राज्य का त्याग किया है, मुझे संसार दुःखदायक प्रतीत हुआ, उस दुःख के भय से त्याग किया है, संसार में बार बार जन्ममृत्यु दृष्टि आता है, इसलिये राज्य का त्याग करके यहां तप करने लगा हूँ, तुम त्रिकालज्ञ हो और जानते हो तो भी तुम्हारे पूछने पर कुछ कहना चाहिये, मैं त्रिकाल सन्ध्या करता हूँ, जप करता हूँ, तो भी मुझे शान्ति नहीं मिली, अतः वह उपाय बतलाइये जिससे मेरा दुःख निवृत्त हो, हे देवपुत्र! मैंने तीर्थयात्रा बहुत की है, अनेको स्थानों में घूमा हूँ, अब इस वन में आकर बैठा हूँ तो भी मेरे मन में शान्ति नहीं, इसलिये जिस प्रकार मेरा दुःख निवृत्त हो और शांति प्राप्त हो ऐसा उपाय कहिये, तब देव पुत्र ने कहा—हे राजर्षि! तुमने राज्य का त्याग किया और अब अपरूप गर्त में आ पड़ा है; जिस निमित्त से राज्य त्याग किया उसको न जाना और यहां आकर मृगछाला लाठी और फूल रखकर बैठाये, इनसे तो शांति नहीं मिलती, इसलिये अपने स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो स्वरूप में जागोगे तो सर्वदुःख निवृत्ति होगी। इसी विषय में एक समय ब्रह्माजी से मैंने प्रश्न किया था कि हे पितामहजी! कर्म श्रेष्ठ है या ज्ञान श्रेष्ठ है मुझे दोनों में से किसका सेवन करना चाहिये, पितामह बोले—ज्ञान प्राप्ति से कोई दुःख शेष नहीं रहता, सर्व आनन्दों का स्रोत परमानन्द ज्ञान है, इससे आगे और कोई आनन्द नहीं है, अज्ञानी के लिये कर्मश्रेष्ठ हैं, क्योंकि

अन्तःकरण की शुद्धि के बिना ज्ञान का अधिकारी नहीं होता और निष्काम कर्म के बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती और सकाम करने में तो कभी शांति नहीं प्राप्त होती इसलिये हे राजन्! कर्म के जाल से निकलने के लिये और ज्ञान प्राप्ति के लिये वही निष्काम कर्मयोग परमसाधन है, ज्ञान साधन कर्म से इतर कर्म बन्धनरूप होने से अनुष्ठेय नहीं। हे राजन्! तू इस गर्त में क्यों पड़ा है, पहिले राज्यवासी था अब वनवासी हुआ है, यह तुमने क्या किया है, जो कि अज्ञान में पड़ा है, जब तक तुम्हें क्रिया भान होता है कि मैं यह करूं तब तक प्रमाद है, इससे दुःख निवृत्त न होंगे, इसलिये निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में जगो, निर्वासनिक होना ही मुक्ति है और वासना सहित होना ही बन्धन है, निर्वासनिक होना ही पुरुष प्रयत्न है, जब तक वासना सहित है तब तक अज्ञानी है, जब निर्वासनिक हो तब ज्ञेयरूप है, सदा ज्ञेय की भावना करना ही निर्वासनिक होना है, जानने योग्य को ज्ञेय कहते हैं, आत्मस्वरूप ही ज्ञेय है, उसको जानकर कोई इच्छा नहीं रहती केवल चिन्मात्र पद में स्थित होने का नाम ही ज्ञेय है, जब जानने योग्य को जान लिया हो तो अन्य वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ अपना आप ही होता है। हे राजन्! तुझे अपने स्वरूप को जाना था तू अन्य जंजाल में किस लिये पड़ा है, आत्मज्ञान बिना अन्य अनेक यत्न करे तो शान्ति नहीं प्राप्त होगी, जैसे पवन से रहित वृक्ष शान्तरूप होता है, जब पवन होता है तब क्षोभ को प्राप्त होता है ऐसे जब वासना निवृत्त होगी तब शान्त पद प्राप्त होगा और क्षोभ कोई न रहेगा, जब देव पुत्र ने ऐसे कहा तब राजा बोले–हे भगवन्! तुम मेरे पिता हो, तुम ही गुरु हो, तुम ही कृतार्थ करने हारे हो, मैंने वासनाओं से बड़ा दुःख पाया है जैसे किसी वृक्ष के पत्र फूल फल सूख जायँ और ठूँठसा रह जाय ऐसे मैं भी ठूंठसा हो रहा हूं, इसलिये कृपापूर्वक मेरे हृदय में शान्ति उत्पन्न करो, तब देवपुत्र ने कहा–हे राजन्! तुम्हें त्याग करके सत्संग करना चाहिये था और ज्ञानवान् महात्माओं से यह प्रश्न करना चाहिये था कि हे भगवन्! बंध क्या है

और मोक्ष क्या है, मैं क्या हूं, यह संसार क्या है और संसार की उत्पत्ति किससे होती है और यह लीन कैसे होता है तुमने यह क्या किया है? जो बिना सन्तों के इस खाली वन का सेवन किया है, अब तुम सन्तजनों की शरण में जाकर निर्वासन होने का यत्न करो, ब्रह्मादिकों ने भी ऐसे कहा है, जब निर्वासन होता है तब सुखी होता है, राजा ने फिर कहा—हे भगवन्! तुम ही सन्त हो और तुम ही मेरे गुरु हो, तुम ही मेरे पिता हो, मुझे प्रकार किस प्रकार शान्ति मिले, यह कहिये, तब कुंभज ने कहा—हे रामजी! मैं तुम्हें उपदेश करता हूं तुम हृदय में धारण करो, यदि तुम हृदय में धारण न करोगे तो मेरे कहने से क्या होगा, जैसे वृक्ष की शाखा पर कौआ हो, वह शब्द भी श्रवण करे तो भी काक अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता, ऐसा ही यदि तुम भी करो तो मेरे कहने से क्या होगा, जैसे तोते पक्षी को जितना सिखाओ उतना ही कहता है, इसलिये तुम भी क्या तोते की नाईं होना चाहते हो, तब शिखिध्वज ने कहा—हे भगवन्! जो आप आज्ञा करेंगे मैं वही करूंगा, जैसे वेद शास्त्रोक्त कर्म करता हूं, ऐसे ही आपका कथन पूर्ण करूंगा, यह मेरा नियम होगा कि आपकी आज्ञा का यथावत् पालन करना, तब देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! पहिले तुम ऐसा निश्चय करो कि मेरा कल्याण इन वचनों से होगा और ऐसा जानो कि जो पिता पुत्र को कहता है शुभ ही कहता है, इसलिये मैं तुम्हें जो कुछ कहूंगा शुभ ही कहूंगा और तेरा कल्याण होगा, इसलिये निश्चय जान कि इन वचनों से मेरा कल्याण होगा इसलिये एक पहिले का आख्यान कहता हूँ, सुनो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधवर्णनं नाम सप्तशीतितमः सर्गः ॥८७॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

चिन्तामणिवृत्तान्तवर्णनम् ।

चूडाला बोली–एक पंडित था, वह धनगुण सम्पन्न था और सर्वदा चिन्तामणि पाने की इच्छा करता था, जैसे शास्त्रों में उपाय कहे हैं वही करता था, जब कुछ समय बीता तब जैसे–चन्द्रमा का प्रकाश होता है ऐसी प्रकाशयुक्त चिन्तामणि आकर प्राप्त हुई, इतनी समीप प्रतीत हुई कि हाथ से ली जा सके, जैसे उदयाचल के पास चन्द्रमा उदय होता है ऐसे चिन्तामणि निकट आय प्राप्त हुई, तब पंडित के मन में विचार पैदा हुआ, कि यह चिन्तामणि है, अथवा कुछ और है, यदि चिन्मामणि हो तो उठा लूं, यदि न हो तो किस लिये हाथ लगाऊं, फिर कहने लगा ले लेता हूँ, मणि ही होगी, मणि न होगी तो क्या पकड़ूं यह मणि नहीं क्योंकि मणि बड़े यत्न से प्राप्त होती है, मुझे सुख से कैसे मिल सकती है, इससे मालूम होता है कि चिन्मामणि नहीं, क्योंकि इस प्रकार सुख से चिन्तामणि मिला करे तो सब लोग धनी क्यों न हो जायँ परन्तु सुख से कोई नहीं पाता, इसलिये यह चिन्तामणि नहीं जब ऐसे संकल्प विकल्प से पंडित विचार करने लगा, तो इसीसे उसके चित्तपर आवरण पड़ा तब मणि लुप्त हो गयी, क्योंकि सिद्धि का यदि आदर न किया जाय तो वह उलटा शाप देती है, जिस वस्तु का आवाहन किया जाता है उसका पूजन न किया जाय तो वह त्याग जाती है और शाप देती है, जब वह चिन्तामणि अंतर्धान हो गयी तब वह बहुत दुःखी हुआ कि चिन्तामणि चली गयी, फिर यत्न करने लगा, जब बहुत उपाय किया तब किसी ने हँसी करने के लिये काँच की मणि उसके आगे लाकर डाल दी, वह उसके पास जाकर पड़ी उसको देखकर कहने लगा कि यह चिन्तामणि है, उसको उठा लिया और अपने घर आया, अबोध के कारण उसको चिन्तामणि जाना, जैसे मोह से असत् को सत् जानता है और रज्जु को सर्प जानता है, जैसे दो चन्द्रमा देखता है, जैसे शत्रु को मित्र और विष को

अमृत जानता है, ऐसे उसने काँच को चिंतामणि जान लिया और जितना कुछ अपना धन था सब लुटा लिया और कुटुम्ब का त्याग किया और कहा करता कि मुझे चिन्तामणि मिली है, अब कुटुम्ब के साथ क्या प्रयोजन है बस फिर क्या था घर से निकलकर वन को चला गया और वहां परम दुःखी हुआ, क्योंकि काँच की मणि के साथ कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ, इस प्रकार हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु हो उसको मूर्ख त्यागते हैं उसका माहात्म्य नहीं जानते और उसको प्राप्त नहीं करते।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चिंतामणिवृत्तवर्णनं नामाष्टशीतितमः सर्गः ॥८८॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९

हस्तत्याख्यानवर्णनम् ।

देवपुत्र ने कहा–हे राजन्! इसी पर एक आख्यान कहता हूँ सुनिये, मंदराचल के वन में एक हाथी रहा करता था, वह सब हाथियों का राजा था, उसका शरीर था मानो साक्षात् मंदराचल हो, जिस मंदराचल को अगस्त्य मुनि ने रोका था उसमें रहता था, उसके बड़े २ दांत थे, जो इन्द्र के वज्र के समान तीक्ष्ण थे। बड़ा बलवान् और प्रलयकाल की बडवाग्नि के समान प्रकाशवान् था, उसके बल से तो अनुमान होता कि अगर यह चाहे तो सुमेरु पर्वत को दांतों पर उठा सकता था, उस हाथी को उस महावन से बल छल के साथ बड़ी कठिनाई से बांधा गया, जैसे वलि राजा को विष्णु भगवान् ने बांधा था, ऐसे लोहे की जंजीर से पकड़ कर बांधा गया, हस्ती को अपने वश में लाकर महावत पास के एक वृक्ष पर चढ़ बैठा ताकि कूदकर हाथी के ऊपर चढ़ बैठेगा हाथी को उस लोहश्रृंखला से बहुत दुःख हुआ, इतना अपार कष्ट कि जिसका वर्णन करना कठिन है, जब उसको असह्य दुःख मिला तब उसके चित्त में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं यदि बल के साथ इस सांकल को न तोडूंगा तो

इस दुःख से कब छूटूंगा, इस प्रकार उसने श्रृंखला को तोड़ दिया और वह महावत जो वृक्ष पर था गिरकर हाथी के चरणों के आगे आकर पड़ा और बहुत डरा, उसको गिरे हुए देखकर हाथी ने विचार किया कि यह मृतक समान है, मरे को मारना उचित नहीं, यद्यपि मेरा शत्रु है तो भी मैं नहीं मारता इसको मारने से मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध हो सकता है? हे राजन्! इस प्रकार दया करके हाथी ने महावत को नहीं मारा, हाथी धन्य है पशुयोनि में जिसने दया भाव दिखा दिया, तब महावत को छोड़कर हाथी वन में चला जैसे पानी बांध को तोड़कर वेग के साथ चलता है, इस प्रकार सांकल तोड़कर हाथी वन को चला, जैसे स्वर्ग के द्वार तोड़कर दैत्य प्रवेश करते हैं, ऐसे सांकल तोड़कर हाथी ने वन में जा प्रवेश किया, हाथी को देखकर जो महावत गिर पड़ा था उठ बैठा और अपने स्वभाव में स्थित फिर हाथी के पीछे चला और उसको खोज ही लिया, जैसे–चन्द्रमा को राहु खोज लेता है, ऐसे वन में हाथी को खोज लिया, देखा कि वृक्ष के नीचे सोया पड़ा है, जैसे शूर वीर संग्राम को जीतकर निश्चिंत होता है, ऐसे हाथी को निश्चिन्त सोया पड़ा देखा, जो कि सांकल को तोड़कर आकर सोया है तब महावत ने विचार किया कि इसको वश किया जाय, इस प्रकार विचारकर उस वन के चारों ओर एक खाई निकलवाई जैसे ब्रह्मा ने विश्व को उत्पन्न करके पृथ्वी के चारों ओर समुद्र चक्र किया ऐसे ही बेले के चारों ओर खाई का चक्र कर लिया और खाई के ऊपर कुछ तृण घास डाल दिया जैसे शरतकाल के बादल देखने मात्र होता है, ऐसे तृण घास खाई के ऊपर देखने मात्र दृष्टि आता था, एक समय हाथी उठकर चला और खाई के बीच गिर पड़ा, तब महावत उसके पास आया और उसको उसने सांकलों से बाँधा, जैसे दैत्य छल करके देवताओं को वश करते हैं, जैसे अगस्त्य मुनि ने छल करके मंदराचल को रोका था, ऐसे ही महावत ने हस्ती को वश में कर लिया, हस्ती गिर पड़ा जैसे सूखे समुद्र में पर्वत गिर पड़ता है ऐसे खाई में हस्ती गिर पड़ा और परम दुःखी हुआ, जो अब तक वन में पड़ा दुःख पाता है, क्योंकि उसने भविष्य का विचार न किया, अज्ञानी को भविष्य

का विचार नहीं होता, इसलिये दुःख पाता है, वर्तमान काल में विचार नहीं करता, कि आगे क्या होना है, इसलिये अज्ञानी हस्ती दुःख को प्राप्त हुआ, हे राजन्! यह जो आख्यान तुझे मैंने सुनाये हैं, जिनमें एक मणिका दूसरा हाथी का है, इनको जब तू समझेगा, तब मैं आगे उपदेश करूंगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे हस्त्याख्यानवर्णनं नामोकोननवतितमः सर्गः ॥८९॥

नवतितमः सर्गः ९०

चिंतामणिसाधकवृत्तांतवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब देवपुत्र ने ऐसे कहा तब राजा कहने लगा हे देवपुत्र! यह दो आख्यान तुमने कहे हैं, तुम जानते हो मैं तो कुछ नहीं समझा इसलिये खोलकर तुम ही कहो, तब देवपुत्र ने कहा हे राजन्! तुम शास्त्रों के ज्ञाता हो परन्तु स्वरूप स्थिति तुमको प्राप्त नहीं, जैसे आकाश में पर्वत नहीं ठहरता, इसलिये जो कुछ मैं कहता हूँ उसको बुद्धि से ग्रहण करो, कि हस्ती क्या है और चिन्तामणि क्या है, पहिले जो सर्वत्याग तुमने किया था वह चिन्तामणि थी, उसके पास पहुँचकर तुम सुखी हुए, यदि उसको तुम अपने पास रखते हो सर्व दुःख निवृत्ति हो जाती, तुमने तो मणि का निरादर किया जो उसको त्याग दिया कांच की मणिरूप तपः क्रिया को स्वीकार किया जिससे दरिद्र ही रहा, हे राजन्! सर्व त्यागरूप चिन्तामणि थी और यह जो क्रिया का आरम्भ है कांच की मणि है, जिसे तुमने ग्रहण किया है, इससे दारिद्र्य की निवृत्ति नहीं होती, दुःख ही रहता है, त्यागरूप कार्य चिन्तामणि का आवाहन था और क्रियारम्भ उसका निरादर है, हे राजन्! तुमने सर्व त्याग भी नहीं किया था परन्तु अधूरा था, अधूरा रहने से बिगाड़ अधिक हो गया, जैसे बड़ा बादल वायु से क्षीण होता है और सूक्ष्म रह जाता है, पवन के रहने से फिर विस्तृत हो जाता है और सूर्य को छिपा लेता है, वह बादल क्या है

और सूर्य क्या है और थोड़ा रहना क्या है, यह सुनो! स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब का त्याग किया, इसमें जो अहंकार है वह बड़ा बादल है। वैराग्यरूप वायु से राज्य और कुटुम्ब त्याग का अहंकाररूप बड़ा बादल निवृत्त हुआ और देहादिक में जो अहंकार रहा वह सूक्ष्म बादलरूप था, वह पुनः बढ़ गया, जो अनात्म अभिमान करके क्रिया का आरम्भ किया इससे आत्मरूप सूर्य (अपना आप) अहंकाररूप बादल से आच्छादित हुआ, ज्ञानरूप चिन्तामणि अज्ञानरूप कांच की मणि से लुप्त हो गयी। जब ज्ञान से आत्मा को जानेगा तब आत्मसाक्षात्कार होगा अन्यथा नहीं होगा, जैसे कोई पुरुष घोड़े पर चढ़कर दौड़ता है उसकी वृत्ति घोड़े में होती है, ऐसे ही जिस पुरुष का आत्मा में दृढ़ निश्चय होता है उसको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता, हे राजन्! आत्मा का पाना सुगम है, जो सुख नहीं पाता है और बड़े आनंद की प्राप्ति होती है और तप आदि क्रियाओं की कष्ट से सिद्धि होती है और स्वरूप सुख की प्राप्ति नहीं होती, हे राजन्! मैं जानता हूँ, तू मूर्ख नहीं है, शास्त्रों का ज्ञाता है और बहुत चतुर है, तथापि तुझे स्वरूपस्थिति प्राप्त नहीं , जैसे आकाश में पत्थर नहीं ठहरता, इसलिये मैं तुझे उपदेश करता हूँ कि उसको ग्रहण कर, तेरे दुःख निवृत्त हो जायेंगे और पीछे जो राज्य को त्याग आया है जैसे ब्रह्मा की रात्रि में संसार का अभाव हो जाता है, ऐसा त्याग किया था, हे राजन्! यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहता हूँ तुमने जो तप क्रिया का आरम्भ किया है और उसका जो फल जाना है, उस ज्ञान से श्रेष्ठ ज्ञान कहा है और कहता हूँ, तेरा भ्रम निवृत्त हो जायगा। हे राजन्! चिन्तामणि का तात्पर्य सम्पूर्ण तुझे कहा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चिन्तामणिसाधकवृत्तान्त विवरणंनामनवतितमः सर्गः ॥९०॥

एकनवतितमः सर्गः ९१

हस्तिकाख्यान तात्पर्यवर्णनम् ।

देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! अब हस्ती का वृत्तान्त जो आश्चर्य रूप है सुनो, जिसके समझने से अज्ञान निवृत्त हो जायगा, मन्दराचल का हाथी तू है और अज्ञान तेरे लिये महावत है, इसी अज्ञान रूप महावत ने तुझको बांधा है, बांधने के लिये आशा रूप सांकल है, उनसे बांधा था और तुम तो सांकल से भी अधिक बांधे हुए हो, क्योंकि सांकल तो घटते भी हैं परन्तु आशा रूप पाश (सांकल) घटते नहीं किन्तु बढ़ते हैं, हे राजन्! आशा रूप फांसी से तू महा दुःखी है, हाथी के जो बड़े बड़े दांत थे जिनसे उसने सांकलों को तोड़ा था, वे तेरे दांत, विवेक वैराग्य हैं, तुमने विचार किया मैं बल करके छूटूं और राज्यकुटुम्ब, पृथ्वी का त्याग कर दिया और फांसी को काटा तब आशा रूप रस्से कट गये अज्ञान रूप महावत भयभीत हुआ और तेरे चरणोंके नीचे आ पड़ा, जैसे वृक्ष के ऊपर वेताल रहता हो, और कोई वृक्ष को काटने लगे तब वेताल डरता है, ऐसे ही तुमने तुमने वैराग्य विवेकरूप दांतों से आशारूप पाश काट दिये तब अज्ञान रूप महावत गिरा तुमने उस पर प्रहार तो किया परन्तु मार न डाला, इसलिये महावत तुमसे भाग गया, जैसे वृक्ष पर बेताल रहता है, वृक्ष को कोई काटने लगे तो बेताल भाग जाता है, हे राजन्! इसी प्रकार वृक्ष को तुमने वृक्षरूप शास्त्र से काटा तब अज्ञान रूप बेताल भागा और मूर्खता से उसको तुमने न मारा, उसको छोड़कर तू बन में गया, जब तू वन में आया तब अज्ञानरूप महावत तेरे पीछे चला आया आकर उसने तेरे चारों ओर खाई कर दी, (जो तप आदि क्रिया का आरम्भ था वही खाई थी) उस खाई में तू गिर पड़ा और महादुःखी हुआ, तब तुझको सांकल से फिर बांधा और देखने लगा कि अब तक दुःख पाता है अब तू कैसी खाई में गिरा है, जो अनात्माभिमान करके यहां तप आदिक क्रिया का आरंभ किया है, जो मैं कहता हूँ ऐसी ही खाई में तू पड़ा है हे राजन्! तू

जानकर खाई में नहीं पड़ा, खाई के ऊपर घास तृण पड़ा था, छल से तू गिर पड़ा है, वह छल और तृण क्या हैं, सुनो, प्रथम तो यह कि अज्ञान रूप शत्रु को न मारा और सांकलों के भय से भागा कि वन मेरा कल्याण करेगा, संतों और शास्त्रों के वचनों को न जाना, जो तेरे दुःख को निवृत्त करते, मूर्खता से तू गिरा,जैसे बली राजा पातालमें छल करके बांधा हुआ है, ऐसे ही भविष्य का विचार भी तुमने नहीं किया कि अज्ञान शत्रु बचा हुआ मेरा नाश करेगा, इस विचार के बिना तू फिर दुःखी हुआ, सर्व त्याग तो किया परन्तु ऐसा न जाना कि मैं अक्रिय हूँ, यह क्रिया का आरंभ किसलिये करता हूँ, इसीसे तू फिर फांसी से बँधा है, हे राजन्! जो पुरुष इस फांसी से मुक्त हुआ वह मुक्त है और जिसका चित्त अनात्म अभिमान से बँधा है कि यह मुझे प्राप्त हो, इससे दुःख पाता है, जिस पुरुष ने वैराग्य विवेक रूप दांतों से आशारूप जंजीर को नहीं काटा, वह कदाचित् सुख नहीं पाता, विवेक से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य से विवेक होता है, सत्य को तथा असत्य को जानना विवेक है, जब इस प्रकार जान लिया जाय तो असत् की ओर भावना नहीं जाती, यह वैराग्य है और वैराग्य से विवेक उत्पन्न होता है, विवेक से वैराग्य होता है, इन विवेक और वैराग्यरूप दोनों से आशारूप सांकल को तोड़ो, हे राजन्! यह हस्ती का वृत्तान्त जो तुम्हें कहा है इसके विचारने से तेरा भी मोहनिवृत्त हो जायगा, हे राजन्! हस्ती बड़ा बली था और महावत छोटा बली था, उस अज्ञान रूप महावत को मूर्खता से न मारा, उसी से दुःख पाता है, इसलिये अब विवेक वैराग्य रूप दातों से आशारूप फांसी को तोड़ तब सब दुःख मिट जायँगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे हास्त्याख्यानतात्पर्य विवरणं नामैकनवतितमः सर्गः ॥९१॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२

शिखिध्वजसर्वत्यागवर्णनम् ।

देवपुत्र ने कहा—हे राजन्! तेरी स्त्री ब्रह्मवेत्री थी वह सर्व ज्ञानवानों में परमश्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ साक्षात् ब्रह्मस्वरूप और सत्यवादिनी सत्यमूर्ति थी, उसने तुम्हें उपदेश किया था, तुमने उसके वचनों का निरादर क्यों किया, मैं तो त्रिकालज्ञ हूँ, सब कुछ जानता हूँ तो भी तुम अपने मुख से कहो कि उसका उपदेश अंगीकार क्यों नहीं किया, एक को यह मूर्खता की कि उपदेश नहीं अङ्गीकार किया और दूसरी मूर्खता यह कि सर्व त्याग न करके फिर वन अङ्गीकार किया, यदि त्याग करता तो सब दुःख मिट जाते, जब देवपुत्र ने ऐसा कहा तब राजा बोला, हे देवपुत्र! मैंने तो सर्व त्याग किया है, स्त्री, पृथ्वी, मंदिर, हस्ती इत्यादिक जो ऐश्वर्य और कुटुम्ब है उस सबका त्याग किया है, तुम कैसे कहते हो कि त्याग नहीं किया, तब देवपुत्र ने कहा हे राजन्! तुमने क्या त्यागा है, राज्य में तेरा क्या था, जो ऐश्वर्य आगे था अब भी है और स्त्रियां भी जैसे अपर मनुष्य थे, ऐसे स्त्रियां थीं, इसमें तेरा क्या था जो त्याग किया, पृथ्वी मंदिर और हस्ती जैसे आगे थे ऐसे अब भी हैं उनमें तेरा क्या था, जो त्याग किया है, हे राजन्! सर्व त्याग तुमने अब भी नहीं किया, जो तेरा हो उसका तू त्याग करे, जिससे निर्दुःख पद की प्राप्ति हो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तो शरीर इंद्रियजित् राजा मन से विचारने लगा, कि यह वन मेरा है और वृक्ष फूल फल मेरे हैं, इनका त्याग करूं, कहने लगा, हे देवपुत्र! वन और वृक्ष फूल फल आदि जो मेरे थे उनका मैंने त्याग किया, क्यों अब तो सर्व त्याग हुआ? देवपुत्र ने कहा—राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं हुआ, जो वन और वृक्ष फूल फल तुझसे आगे भी थे इनमें तेरा क्या है, जो तेरा है उसको त्याग, तब सुखी हो सके, हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा मन में विचारने लगा कि मेरी जलपान की बावली है और मेरे बगीचे हैं, इनका त्याग करूं, जो सर्व त्याग सिद्ध हो जाय, कहने लगा—हे भगवन्! मेरी यह बावली और

बगीचे हैं, उनका त्याग किया, क्यों? अब तो मेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ? तब देवपुत्र ने कहा–हे राजन्! सर्व त्याग अब भी नहीं हुआ, जो तेरा है उसको त्यागेगा तो शान्त पद को प्राप्त होगा हे रामजी! अब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब राजा विचारने लगा कि मेरी मृगछाला और कुटी है, इसका त्याग करूं और बोला–हे देवपुत्र! मेरे पास एक मृगछाला और एक कुटी है, इसका त्याग करूं और कहने लगा, इसका त्याग किया क्यों? अब सर्व त्यागी हुआ? तब देवपुत्र ने कहा–हे राजन्! मृगछाला में तेरा क्या है यह तो मृग की त्वचा है और कुटी में तेरा क्या है, कुटी तो माटी ओर शिला की है, इससे तो सर्व त्याग सिद्ध नहीं होता, जो कुछ तेरा है उसको त्यागे सब सर्व त्याग सिद्ध हो और तू भी दुःख से रहित हो, हे रामजी! जब ऐसा कुंभज ने कहा तब राजा ने मन में विचार किया, कि अब मेरा एक कंमडलु है और एक माला है, एक लाठी है, इनका त्याग करूं, ऐसा विचार कर राजा ने कहा–हे देवपुत्र! मेरी लाठी कमंडलु और एक माला है इनका भी त्याग किया क्यों? अब मैं सर्वत्यागी हुआ, तब देवपुत्र ने कहा–हे राजन्! कमंडलु में तेरा क्या है, कंमडलु तो वन का तुम्बा है, उसमें तेरा कुछ नहीं और लाठी भी वन के बांस की है और माला भी काष्ठ की है, इनमें तेरा क्या है, जो कुछ तेरा है, उसका त्याग कर जब उसका त्याग करेगा तब दुःख से मुक्त होगा, हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभज ने कहा तब राज शिखिध्वज मन में विचारने लगा कि अब मेरा क्या रहता है, तब देखा कि एक आसन रहता है और कुछ बासन (पात्र) हैं जिनमें फूल फल रखते हैं, अब इनका त्याग करूं, तब राजा ने कहे हे भगवन्! आसन और बासन यह मेरे पास रहते हैं, इनका भी त्याग किया, क्यों अब तो सर्व त्यागी हुआ? तब कुंभज ने कहा हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं हुआ, आसन तो भेड़ की ऊन का है और बासन मृत्तिका के हैं, इनमें तेरा कुछ नहीं तो कुछ तेरा है उसका त्यागकर कि सर्व त्याग हो और दुःख निवृत्त हो, हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभज ने कहा तब राजा उठ खड़ा हुआ और

वन की लकड़ी इकट्ठी की और आग लगा दी, जब आग लगी तब लाठी को हाथ में ले कर कहने लगा, हे लाठी! मैंने तुम्हारे साथ बहुत देशों का पर्यटन किया है परन्तु मेरे साथ उपकार कुछ नहीं किया, अब मैं कुंभ मुनि की कृपा से तरूंगा तुझको नमस्कार है, ऐसा कहकर लाठी को अग्नि में डाल दिया, इसके बाद मृगछाला को हाथ में लेकर कहा, हे मृग की त्वचा! मैंने बहुत काल तक तुझ पर आसन लगाया परन्तु तुमने मुझ पर कोई उपकार नहीं किया, अब मैं कुंभमुनि की कृपा से तरूंगा तुझको नमस्कार है, ऐसा कहकर मृगछाला को अग्नि में डाल दिया, फिर कंमडलु को लेकर कहने लगा, हे कमंडलु! तू धन्य है, मैंने तुम्हें धारण किया तुमने मेरे जल को धारण किये रखा, तुमने कोई लाभ हानि नहीं पहुँचाई तो भी कमंडलु की जैसे प्रवृत्ति त्यागनी है ऐसे निवृत्त की कल्पना भी त्यागनी है, इसलिये तुझे नमस्कार है, तुम जाओ ऐसा कहकर कमंडलु भी अग्नि में जला दिया अब माला को हाथ में लेकर कहने लगा, हे माला! तेरे मनके जो मैंने घुमाये हैं, वह मानों मैंने अपने जन्म गिने हैं, तेरे सम्बन्ध से जप किया है और दिशाओं विदिशाओं में गया हूँ, अब तुझको नमस्कार है, ऐसा कहकर माला को भी अग्नि में डाल दिया, इसी प्रकार फल, फूल, कुटी आसन सब जला दिये, बड़ी अग्नि जगी बड़ा प्रकाश हुआ, जैसे सुमेरु पर्वत के पास सूर्योदय हो और मणिका भी चमत्कार हो तो बड़ा प्रकाश होता है, ऐसे बड़ी आग लगी और राजा ने सम्पूर्ण सामग्री का त्याग किया, जैसे पके फल को वृक्ष त्यागता है, जैसे पवन चलने से ठहरता है तब धूलि से रहित होता है, ऐसे ही राजा सर्व सामग्री का त्याग करके निर्विघ्न हुआ और सब सामग्री अग्नि में डाली हुई अग्निरूप हो गयी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज सर्वत्यागवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥९२॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३

चित्तत्यागवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब सम्पूर्ण सामग्री जलाकर भस्म कर दी गयी, जैसे सदाशिव के गण ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ को स्वाहा कर दिया था, ऐसे ही जितनी सामग्री थी सब स्वाहा हो गयी और वन बड़ा प्रज्वलित हुआ, जितने वृक्षों पर रहने वाले पक्षी थे भाग गये, मृग पशु जो घास पत्ते खा रहे या कई जुगाली कर रहे थे सब भाग गये। जैसे नगर में आग लगने से नगर निवासी निकल जाते हैं निकल गये, तब राजा मन में विचारने लगा कि कुंभ की कृपा से मैं बड़े आनन्द को प्राप्त हुआ हूँ, अब मेरे दुःख मिट गये हैं, जितनी वस्तुएं मन के संकल्प से रची गयी थीं कि मेरी हैं सब जलाकर भस्म कर दी गयीं, उनका न मुझे हर्ष है न शोक है, जितने दुःख होते हैं, ममत्व से होते हैं, अब मेरा ममत्व किसी में नहीं, इसीलिये दुःख भी कोई नहीं, अब मैं ज्ञानवान् हुआ हूं, अब मेरी जय है, अब मैं निर्मल हुआ हूँ और सर्व त्याग किया है, ऐसा विचार कर राजा उठ खड़ा हुआ हाथ जोड़कर कहने लगा—हे देवपुत्र! क्यों अब मैंने सर्वत्याग किया है, क्योंकि आकाश ही मेरे वस्तु हैं, पृथ्वी मेरी शय्या है, जब राजा ने इस प्रकार कहा तब कुंभ मुनि बोले—हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं किया, जो तेरा है उसको त्याग कर तब तेरे दुःख निवृत्त हों, तब राजा ने फिर कहा, हे भगवन्! और तो मेरे पास कुछ नहीं रहा नंगा होकर तुम्हारे आगे खड़ा हूँ, अब इन्द्रियों का धारण करनेवाला एक देह है यदि कहो तो इसका भी त्याग करूं। पर्वत के ऊपर जाकर डाल दूं, ऐसा कहकर राजा पर्वत को दौड़ा कि देह को डाल दूं, तब कुंभ मुनि ने कहा—हे राजन्! ऐसे पुण्य देह को क्यों त्यागते हो इसके त्यागने से सर्वत्याग नहीं होता, जिसके त्यागने से सर्वत्याग हो उसका त्याग कर, इस देह में क्या दूषण है? जैसे वृक्ष के साथ फूल फल होते हैं जब वायु चलता है तब गिरते हैं, तो उन फूलों के गिरने का कारण वायु है, वृक्ष में

दूषण कुछ नहीं, ऐसे ही देह में दूषण कुछ नहीं, जो देह का पालनेवाला अभिमान है उसका त्यागकर, जिससे सर्वत्याग सिद्ध हो और देह तो गुण है, जो कुछ इसको देता है वही लेता है, आप बोलता नहीं जड़ है, इसके त्याग से क्या होता है, जैसे पवन से वृक्ष हिलता है और भूकम्प से पर्वत कांपते हैं, ऐसे देह आप कुछ नहीं करता, अन्य की प्रेरित चेष्टा करता है, जैसे पवन से समुद्र में तरंग होते हैं और तिनकों को जहां जल ले जाता है वहां ले जाते हैं, ऐसे देह आपसे कुछ नहीं करता इसका जो प्रेरक है उससे चेष्टा करता है, इसलिये देह के प्रेरनेवाले का त्यागकर सुखी होगा, हे राजन्! जिससे सर्व है और जिसमें सर्व शब्द है और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है उसका त्याग कर कि तेरे सब दुःख मिट जायँ, तब राजा ने कहा कि हे भगवन्! वह कौन है जो सर्व है ओर जिसमें सर्व शब्द है और जो सब ओर से त्यागने योग्य है, हे तत्त्वतेत्ताओं में श्रेष्ठ! जिसके त्याग से जरा मृत्यु का अभाव हो वह कहो, तब कुंभ ने कहा हे राजा! जिसका नाम चित्त है और प्राण है और देह है ऐसा जो चित्त है उसका त्यागकर और बाहिर जो नाना प्रकार के आकार दृष्टि आते हैं वह चित्त ही दृष्टि आते हैं इसलिये चित्त का त्यागकर, हे राजा! जैसे सर्प खुद में बैठा हो तो खुद का दूषण कुछ नहीं, विष सर्प में है, जिससे मारता है, उसके नाश करने का उपाय करो और सर्व शब्द भी इस चित्त में है और आत्मा है जो मात्रपद है, जिसमें न एक कहना है न द्वैत कहना है और सब ओर से इसी चित्त का त्याग करना योग्य है, जब इस चित्त का त्याग करेगा तब त्यागरूप अमृत से अमर हो जायगा और मृत्यु से रहित होगा और यदि चित्त का त्याग न करेगा तो फिर देह धारण करेगा और दुःख भोगेगा और जैसे एक खेत में अनेक दाने उत्पन्न होते हैं और जब क्षेत्र ही जल ज़ाता है, तब अन्न नहीं उत्पन्न नहीं होता, ऐसे यह देह है और जरा मृत्यु दुःख संसार का कारण चित्त है, इसलिये हे राजा! चित्त का त्याग करो, जब इसका त्याग करेगा तब सुखी होगा, हे राजा! जिसने सर्वत्याग किया है वह सुखी हुआ है, जैसे आकाश सब पदार्थों से रहित है,

किसी का स्पर्श नहीं करता और सबसे बड़ा है और सुखरूप है और सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तो भी ज्यों का त्यों रहता है, आकाश ने सर्वत्याग किया है, हे राजा! तू भी सर्वत्यागी हो, राज्य देह और कुटुम्ब गृहस्थ आदि जो आश्रम हैं, सब चित्त ने कल्पना किये हैं और यदि गृह का त्याग नहीं होता तो कुछ नही त्यागा, जब चित्त का त्याग करे तो सर्वत्याग हो, हे राजा! यह धर्म बैराग्य और ऐश्वर्य तीनों चित्त की कल्पना हैं जब चित्त पुण्य क्रिया से लगता है तब पुण्य ही प्राप्त होता है, जब पाप क्रिया से लगता है, तब पाप ही प्राप्त होता है, जिससे अधर्म अवैराग्य और दारिद्य होता है, जब पुण्य का फल उदय होता है, तब सुख प्राप्त होता है और जब पाप का फल उदित होता है, तब दुःख प्राप्त होता है, इसलिये जन्म मृत्यु दुःख नहीं मिटते जब चित्त का त्याग होता है तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, हे राजन्! जो कोई पुरुष किसी वस्तु को नहीं चाहता जो मैं नहीं लेता तब उसकी पूजा बहुत होती है और कोई कहता है कि यह वस्तु मुझे मिले तो उसे कोई देता नहीं, इसलिये सर्व त्यागकर और सुखी हो, सर्वत्याग किये सब तू ही होगा, सर्वात्मा होगा और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपने में देखेगा, जैसे माला मे मनके में धागा होता है और मनके भी सूत्र के आधार होते हैं, उनमें अपर कुछ नहीं होता, ऐसे देखेगा कि सब मैं ही हूँ और एकरस हूँ, मुझमें ही ब्रह्माण्ड स्थित है और मैं ही हूँ, मुझसे इतर कुछ नहीं, हे राजन्! जिसने सर्वत्याग किया है, वह सुखी है और समुद्र की नाईं स्थित है उसको दुःख कोई नहीं इसलिये तुम चित्त का त्याग करो कि राज्य दोष मिट जाय और इस चित्त के इतने नाम हैं, चित्त, मन, अहंकार, माया, यह सब चित्त ही के नाम हैं, हे राजन्! त्यागने और आपकी भिक्षा लेने से तो चित्त वश नहीं होता, चित्त तब ही वश होता है, जब पुरुष निर्वासनिक होता है, जब तक चित्त फुरता है, तब तक सर्व त्याग नहीं होता, जब यही फुरना निवृत्त होता है, तब चित्त का त्याग होता है और चित्त को त्याग कर भी त्याग के अभिमान से रहित होना ऐसा शून्य पीछे जब तू रहेगा, तब सर्वात्मा होगा, जब चित्त को

त्यागेगा तब उस पद को प्राप्त होगा कि जितने ऐश्वर्य सुख हैं, उनका आश्रय है और जितने दुःख हैं उनका नाश करनेवाला है और जिसके जानने से किसी पदार्थ की इच्छा न रहेगी, क्यों न रहेगी, कि सब आनन्दों का धारण करने देने हारा तेरा स्वरूप है फिर इच्छा किसकी रहे, जैसे आकाश के आश्रय से देवलोक से आदि सर्व विश्व रहता है और आकाश की इच्छा कुछ नहीं जो इच्छा नहीं करता तो भी सर्व आकाश ही में है अब सबका धारण करने हारा है, हे राजन्! जब तू भी किसी की इच्छा न करेगा तब निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में स्थित होगा और जानेगा कि सबका आत्मा मैं ही हूँ सबको धारण कर रहा हूँ और भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं, जैसे समुद्र के आश्रय तरंग है ऐसे मेरे आश्रय काल है और चित्त का सम्बन्ध तेरे लिये प्रमाद से है और प्रमाद यही है कि चिन्मात्र पद में चित्त होकर फुरता है और चित्त कैसा है कि जड भी है और चेतन भी है इसीका नाम चिज्जड ग्रन्थि है, जब यह ग्रन्थी खुल जायगी तब अपने आपको वासुदेव रूप जानेगा, जब निर्वासनिक होगा तब संसाररूप वृक्ष नष्ट हो जायगा जैसे बीज में वृक्ष होता है जैसे चित्त में संसार है, जैसे बीज के जलने से वृक्ष भी जल जाता है, जैसे वासना के दग्ध होने से संसार भी दग्ध होता है हे राजन्! जैसे एक डिब्बे के नाश होने पर रत्नों का नाश होता है, वह डिब्बा नाश नहीं होता, और डिब्बे के नाश होने पर रत्नों का नाश होता है, वह डिब्बा क्या है और रत्न क्या है सुनो, डिब्बा चित्त है और रत्न देह है, इसलिये चित्त नष्ट होने का उपाय करो, जब चित्त नष्ट होगा तब देह से रहित होगा देह के नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता और चित्त के नष्ट हुए देह नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूप धूल से रहित होगा तब केवल शुद्ध आकाश होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने
चित्तत्यागवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ।।९३।।

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४

राजविश्रान्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभ ने कहा कि चित्त का त्याग ही सर्वत्याग है तब शिखिध्वज ने कहा–हे भगवन्! मैं चित्त को स्थित कैसे करूं? संसार रूप आकाश की चित्त रूपी धूलि है और संसाररूपी वृक्ष का चित्तरूपी वानर है, जो कहीं स्थित नहीं होता, इसलिये ऐसे चित्त को कैसे स्थित करूं? तब कुंभ ने कहा–हे राजन्! चित्त का रोकना तो सुगम है, नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है परन्तु चित्त के रोकने में कुछ यत्न नहीं, परन्तु सुगम किसको है जो दीर्घ दर्शी है और अज्ञानी को चित्त का रोकना कठिन है, जैसे चाण्डाल को पृथ्वी का राजा होना कठिन है और जैसे तृण को सुमेरु होना कठिन है, ऐसे अज्ञानी को चित्त रोकना कठिन है, राजा ने कहा–हे देवपुत्र! चित्त का तोड़ना कठिन है तो भी टूट जाता है, परन्तु मन का रोकना कठिन है, जैसे बड़े मच्छ को बालक रोक नहीं सकता, ऐसे मैं चित्त को रोक नहीं सकता, हे देवपुत्र! तुम कहते हो कि मन का रोकना सुगम है और मुझको ऐसे कठिन भासता है, जैसे लिखी हुई मूर्ति अन्धे पुरुष को दृष्टि नहीं आती तो वह हाथ में कैसे ले? ऐसे चित्त को वश करना मेरे लिये कठिन भासता है, प्रथम चित्त का रूप मुझे कहो कि क्या है, कुम्भ ने कहा–हे राजन्! इस चित्त का रूप वासना है, जब वासना नष्ट हो तो तब चित्त का नाश हो जाता है, इसलिये तुम चित्त का बीज नाश करो तब चित्तरूप वृक्ष भी नाश होगा, परन्तु चित्तवृक्ष का ऐसा निर्मूल नाश हो कि कोई टास फूल फल न रहे, यह तभी हो सकेगा, जब उसके बीज का नाश होगा, राजा ने कहा–हे भगवन्! संसार रूप सुगन्धि है, उसका चित्त रूप फूल है, देह रूप तृण है उसके उगने उडावनेवाला चित्त रूप पवन है, जरा मृत्यु आध्यात्मिक आधिभौतिक तेल हैं, उनका यह तिल है, जिससे तेल

निकलता है और संसार रूप अन्धेरी है, उसका चित्त रूप आकाश है, क्यों कि आकाश में कई अन्धेरियां उठती हैं और हृदय रूप कमल का चित्त रूप भँवरा है, उसका बीज भी कहो और टास भी कहो जो क्या है और टास का काटना क्या है और वृक्ष क्या है और फूल फल क्या हैं यह कृपा करके कहो, कुम्भ ने कहा–हे राजन्! चेतन रूप स्वच्छ निर्मल क्षेत्र है, उसमें अहंभाव बीज है इसीको अहंकार कहते हैं और इसीको चित्त कहते हैं, इसीको मन कहते हैं, इसीको जड़ कहते हैं, इसीको मिथ्या कहते हैं, उस अहं में जो संवेदन है, वही देह इंद्रिय रूप हो प्रसूत हुई है, उसमें जो निश्चय बुद्धि है, उस बुद्धि में जो निश्चय है, यह मैं हूँ, यह संसार है, वही जीव अहंकार है, अहंकार इस वृक्ष का बीज है और वासना इस चित्तरूप वृक्ष के टास हैं और सुख दुःख इस चित्तरूप वृक्ष के फल है, हे राजन्! इसका जो काटना है उसे सुन लीजिये, एकान्त में बैठकर चिन्तन से रहित होना, एक आश्रय को त्यागकर दूसरे का अंगीकार करना, इस प्रकार स्थित होना कि मैं ऐसा त्यागी हूँ, इसका चिन्तन ही टास को काटना है, हे राजन्! इस टास (शाखा) के काटने से वृक्ष नष्ट नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा विचारकर स्थित हो कि मैं हूँ और वासनाओं का त्याग करे कुछ न फुरे, जब इस प्रकार अहंरूप बीज नाश होता है तब चित्तरूप वृक्ष नष्ट हो जाता है, क्योंकि इसका बीज अहं है, जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्ष भी नष्ट हो जाता है, इसलिये चित्त का बीज तुम नष्ट कर दो, राजा ने कहा–हे देवपुत्र! तुम्हारा निश्चय मैंने जान लिया कि चित्त के त्याग से चित्त का बीज नष्ट करना श्रेष्ठ है, हे भगवन्! इतने समय तक मैं टास काटता रहा हूँ, इसीसे मेरे दुःख नहीं मिटे और आपने कहा कि अहं ही दुःखदाई है, उस अहं का उत्पन्न होना कैसे होता है? कुम्भ बोला–हे राजन्! शुद्ध चेतन में जो चैत्योन्मुख अहंकार फुरता है कि मैं हूँ, वह दृश्य रूप हुआ है, मिथ्या संवेदन से हुआ हैं, जैसे शान्त समुद्र में पवन से लहरें तरङ्ग होते हैं, ऐसे शुद्ध आत्मा में अहं फुरणा है उससे संसार हुआ है, अतः अहंभाव को नष्टकर, जिससे शान्त पद में स्थिति प्राप्त हो, जो दुःखदायक वस्तु है उसको नष्ट करे वह शान्त हो, राजा ने कहा–भगवन्! वह कौन वस्तु है जो जलाने योग्य

है और वह कौन अग्नि है जिसमें जलती है, कुम्भ बोला–हे त्यागवानों में श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपना स्वरूप है उसका विचार कर कि मैं क्या हूँ, यह संसार क्या है इसका दृढ़ विचार करना ही अग्नि है, अनात्म देह इन्द्रियादिक में जो मिथ्या अहंभाव है, उसको वास्तव रूप से विचार रूप अग्नि से जलाओ, जब विचार अग्नि से अहंकार बीज को जलायगा तब केवल चिन्मात्र होगा, हे राजन्! मेरे उपदेश से तुमने आपको क्या समझा है, यह मुझे कहो, तब राजा ने कहा मैं राजा भी नहीं, पृथ्वी भी मैं नहीं, पर्वत भी मैं नहीं और आकाश भी मैं नहीं, दशों दिशायें भी मैं नहीं और मैं रुधिर मांस की देह भी नहीं और कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय भी मैं नहीं, मन बुद्धि भी मैं नहीं और मैं अहंकार भी नहीं, इनसे रहित शुद्ध आत्मा हूँ, परन्तु हे भगवन्! अहं रूप कलंकता मुझे कहां लगी है, इस कलंक को दूर करने में मैं समर्थ नहीं, तब कुम्भ ने कहा–हे राजा! इसी अहं का त्याग कर, यह फुरना भी न फुरे कि मैंने त्याग किया है शून्य हो रहो, जब इसका त्या करेगा तब चेतन आकाश होगा, हे राजन्! तू अपने स्वरूप में जानकर देख कि कौन है, तब राजा ने कहा– हे भगवन्! मैं यह जानता हूँ कि मेरा स्वरूप आत्मा है, वह सबका आत्मा है, मैं आनन्दरूप हूँ, सब मेरा प्रकाश है, परन्तु यह नहीं जानता कि अहंभाव कलना कहां से लगी इसके नाश करने को मैं समर्थ नहीं और यह मैंने जान लिया कि संसार का बीज चित्त है और चित्त का बीज अहंकार है, तुम्हारी कृपा से मैंने जाना है कि मेरा स्वरूप आत्मा है, अहं त्वं मेरे अन्दर कोई नहीं, तुम भी इस अहंरूप कलंकता को दूर कर रहे हो, मुझसे दूर नहीं होता, बारबार आकर फुरता है कि मैं शिखिध्वज हूँ, इस अहं से मैं संसारी हूँ, इसके नाश करने का उपाय तुम कहो, कुम्भ बोला हे राजन्! कारण बिना कार्य नहीं होता और जो कारण बिना कार्य भासे तो जानिये कि भ्रममात्र है और मिथ्या है और जिस कारण हो उसे समझिये कि सत्य है, इसलिये तुम कहो कि इस अहंकार का कारण क्या है, तब मैं उत्तर कहूंगा, राजा बोला–हे भगवन् अहंकार का कारण शुद्ध

आत्मा शुद्धआत्मा में जानना हुआ है, जानने मात्र में जानने का उत्थान हुआ है जो दृश्य की ओर लगा है, वह जानना संवेदन ही अहंकार का कारण है। कुंभ ने कहा–हे राजन्! इस जानने का क्या कारण है? प्रथम तुम यह कहो पीछे दूर करने का उपाय मैं कहूंगा हे राजन्! जिसका कारण सत् होता है तो कार्य भी सत् होता है और यदि कारण झूंठ होता है कार्य भी झूंठ होता है, जैसे भ्रमयुक्त दृष्टि से आकाश में दूसरा चन्द्रमा देखता है, तो उसका कारण भ्रम है, इसलिये इस जानने संवेदन का कारण कहो कि क्या है, राजा ने कहा–हे देवपुत्र! जानने का कारण देहादिक दृश्य है क्योंकि जानना तब होता है जब जानने योग्य वस्तु आगे होती है, आगे वस्तु नहीं होती तो उसका जानना भी नहीं होता, इसलिये जानने का कारण देहादिक वस्तु, कुंभ बोला–हे राजन्! यह देहादिक मिथ्या है, भ्रम से हुए हैं, इनका कारण जो कोई नहीं। राजा बोला हे देवपुत्र देह का कारण तो प्रत्यक्ष है, खाता है, पीता है और पिता से इसकी उत्पत्ति हुई है और प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्टि आता है, तुम कैसे कहते हो कि कारण बिना है और मिथ्या है, कुंभ ने कहा–हे राजन्! पिता का कारण कौन है पिता भी मिथ्या है, जैसे स्वप्न में पिता और पुत्र देखे जायं दोनों मिथ्या हैं, इसलिये कहो पिता का कारण क्या है? राजा ने कहा–हे भगवन्! पुत्र का कारण पिता और पिता का कारण पितामह है, इसी प्रकार परम्परा से सबका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष जाना जाता है, कि सबकी उत्पत्ति ब्रह्माजी से हुई है कुंभ बोला–हे राजन्! ब्रह्मा से आदि काष्ठ पर्यन्त सर्वसृष्टि संकल्प की रची है और देह भी भ्रम से भासता है, ऐसे आत्मा में देह भासता है जैसे मृगतृष्णा का जल भासता है, जैसे सीपी में रूपा भासता है, ऐसे आत्म में देह भासता है, जैसे आकाश में दो चन्द्रमा भ्रम करके भासते हैं ऐसे आत्मा में संसार भ्रम करके भासता है और यदि तुम कहो क्रिया कैसे दृष्टि आती है, तो सुनो–जैसे कोई कहे कि बंध्या के पुत्र को भूषण पहिराये हैं, यदि बन्ध्या का पुत्र ही नहीं तो भूषण किसने पहने, भ्रम से यह सब भासता है, जैसे

स्वप्न में सब क्रियाएं होती हैं, वे भ्रम मात्र हैं, ऐसे संसार तेरे भ्रम में है, जब भ्रम निवृत्त होगा तब केवल आत्मा ही भासेगा, हे राजन्! जैसे तू अपना देह जानता है, ऐसे ब्रह्मा का भी जान, ब्रह्मा का कारण कौन है, इसलिये इस भ्रम से जाग, जो तेरा भ्रम नष्ट हो जाय, राजा बोला–हे भगवन्! मैं जगा हूँ, अब मेरा भ्रम नष्ट हुआ है और मैंने यह संसार मिथ्या जाना है कि केवल संकल्प मात्र है, जो कुछ दृश्य है मिथ्या है और एक आत्मा ही मेरे निश्चय में सत् है, हे भगवन्! ब्रह्मा का कारण भी ब्रह्म है, अद्वैत है, अविनाशी है और सर्वात्मा है, ब्रह्मा का कारण यह हुआ, कुंभ ने कहा–हे राजन्! कारण और कार्य द्वैत में होते हैं, वे असत् हैं, उस कारण का देश से भी अन्त होता है, वस्तु से भी और काल से भी अन्त हो जाता है और परिणामी होता है, जो वस्तु परिणामी हो वह मिथ्या है। हे राजन्! आत्मा अद्वैत है, जिसमें न एक कहना है न द्वैत कहना है, न भोक्ता है न भोग है, न कर्म है, अद्वैत है, जो स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ और सर्वात्मा है जो सर्व देश है और सर्व काल भी है, जो सर्व वस्तु में पूर्ण है और अद्वैत है, जो अद्वैत है तो कारण कार्य किसका हो, कारण कार्य का सम्बन्ध द्वैत में होता है और परिणामी होता है और जिसमें देशकाल का अंत है, वह आत्मा अद्वैत है, उसमें न कोई देश है, न काल है, न कोई वस्तु है, चिन्मात्रपद है, हे राजन्! मैं जानता हूँ कि तू जाग्रत होगा, भ्रम तेरा नष्ट हो जाता है जैसे बर्फ की पुतली सूर्य की किरणों से क्षीण हो जाती है, ऐसे तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञान के बिना नष्ट हुए तू आत्मा ही होगा, तू अपने प्रत्येक चेतन स्वरूप में स्थित हो और देख कि ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्मा का किंचन है, परमात्मा ही ऐसे होकर स्थित हुआ है और जो दृष्टि पड़ता उस सबका अपना आप आत्मा है, जो जगे तो जाने जगे बिना नहीं जानता, रामने कहा–हे भगवन्! आपकी कृपा से मैं जगा हूँ और जानता हूँ कि मेरा स्वरूप आत्मा है और मैं निर्मल हूँ अब मेरा मुझको नमस्कार है, एक मैं ही हूँ मेरे में इतर कुछ नहीं और आपको जाना है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने राज
विश्रान्तिवर्णनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ।।९४।।

पंचनवतितमः सर्गः ९५

शिखिरध्वजविश्रान्तिवर्णनम् ।

राजा ने कहा—हे भगवन्! आप कैसे कहते हैं कि ब्रह्मा का कारण कोई नहीं, आत्मा ऐसा ईश्वर है जो अनन्त है और अच्युत अव्यक्त और अद्वैत है, परमाणु का विषय नहीं और परब्रह्म है, वही ब्रह्मा का कारण है, कुंभ बोला हे राजन्! तू ही कहता है कि आत्मा अनन्त है, जो अनन्त है, उसको देशकाल वस्तु का परिच्छेद नहीं, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु है वह कारण किसका हो, कारण तब हो जब प्रथम द्वैत हो आत्मा अद्वैत है और कारण उसको कहते हैं जो कार्य से पूर्व हो और पीछे भी वही हो, जैसे घट के आदि मृत्तिका है, अन्त भी मृत्तिका होती है उसको कारण कहते हैं, वह आत्मा में न आदि है न अन्त है, आत्मा अनंत है और कारण तब होता है, जब परिणाम होता है, परिणाम नहीं होता है, वह आत्मा अच्युत है, अपने स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा और भोक्ता भी द्वैत में होता है, वह आत्मा अद्वैत है, भोग भोक्ता दोनों नहीं और आत्मा में कर्म भी नहीं, कि आत्मा से आदि कौन है, जिससे आत्मा सिद्ध हो और किसी का कार्य भी नहीं, किसलिये कि जो कार्य होता है, वह इन्द्रियों का विषय होता है, वह आत्मा अव्यक्त है और जो कार्य होता है उसका कारण भी होता है, वह आत्मा सबका आदि है, उसका कारण कौन हो, जो सर्वात्मा है और स्वच्छ है, आकाशवत् निर्मल तेरा स्वरूप है, राजा ने कहा—हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है, मैंने जान लिया कि आत्मा अद्वैत है, वह न किसी का कारण है न कार्य है, अनुभवरूप है, वह मैं हूँ, निर्मल हूँ, विद्या अविद्या के कार्य से रहित हूँ और निर्वाण पद हूँ, निर्विकल्प हूँ, मुझमें फुरणा कोई नहीं, फिर कैसा हूँ, सब मैं ही हूँ, ऐसा जो सर्वात्मा हूँ, मुझको मेरा नमस्कार है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजाविश्रान्ति वर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥९५॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६

शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! राजा शिखिध्वज कुंभ मुनि को प्रबोध हुआ ऐसे वचन कहकर केवल निर्वाण पद में स्थित हुआ, जब निर्विकल्प रूप से एक मुहूर्त पर्यन्त स्थित रहा जैसे दीपक वायु से रहित स्थित होता है तब कुंभ ने जगाकर कहा हे राजन्! तेरा समाधि के साथ क्या है और उत्थान से क्या है, तुम तो केवल आत्मरूप हो और मैं जानता हूँ कि तुम परम ज्ञान से सुशोभित हुए हो, जैसे डिब्बे में रत्न होता है, उसका प्रकाश बाहिर पूर्णरूप से नहीं आता और जब डिब्बे से निकालकर देखिये तब बड़ा प्रकाश होता है, ऐसे अविद्या रूप डिब्बे से तुम निकले हो और परम ज्ञान से सुशोभित हुए हो, राजन्! तुममें न कोई क्षोभ है, न कोई उपाधि है, संसार के राग द्वेष से तू रहित हुआ है, शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर विचरो, तुम्हें कोई उपाधि स्पर्श न करेगी, वसिष्ठजी बोले–हे राम! जब इस प्रकार कुंभ मुनि ने कहा तब राजा शान्तरूप हो गया और बोला हे भगवन्! जो कुछ आपने आज्ञा की वह सब मैंने भले प्रकार जान लिया है, अब एक प्रश्न और है, उसका उत्तर कृपा करके कहिये, जिससे मैं दृढ़ता से स्थित हो जाऊं, हे भगवन्! आत्मा तो एक है शुद्ध है, केवल आकाशरूप है, चेतन मात्र है, उसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, त्रिपुटी कहाँ से उत्पन्न हुई है, कृपा करके कहिये। कुंभ ने कहा–हे राजन्! जो कुछ स्थावर जंगम संसार है, वह महाप्रलय पर्यन्त है, जब महाप्रलय होता है तब केवल आत्मा ही शेष रहता है और स्वच्छ निर्मल होता है, वहां न तेज होता है, न अन्धकार होता है, केवल अपने आपमें स्थित होता है और जितना कुछ आनन्द है, उसका अधिष्ठानआत्माहै और सत् असत् से रहित है, अर्थात् अनुभव गम्य है और सर्व लक्ष्मी से संयुक्त जो अपना स्वभाव मात्र है, जिसमें उपाधि कोई नहीं और सर्वदा प्रकाशवान् है सर्वदा उदयरूप है, उस परात् पर

आत्मा का यह संसार चमत्कार है, जैसे रत्न का चमत्कार उसका प्रकाश है, ऐसे ब्रह्म का चमत्कार यह संसार है, इसलिये ब्रह्मरूप है, इतर कुछ नहीं हुआ, केवल ब्रह्मरूप है, ब्रह्म से इतर सब मिथ्या जानना, जो कुछ आकार भासते हैं, वह असत् हैं, हे राजन्! यदि सब आकार मिथ्या हैं, तो तेरी संवेदना भी मिथ्या है, आत्मा में अहं त्वं का उत्थान कोई नहीं, केवल ज्ञानमात्र है और केवल सत्रूप है, आनन्दरूप है और अविद्या तम से रहित प्रकाशरूप है, प्राणों से नहीं जाना जाता, जो इन्द्रियों का विषय नहीं और मन के उस चिन्तन से रहित है, क्यों कि सबका द्रष्टा है और सबका अपना आप अनुभव है, हे राजन्! उसमें स्थित हो, पुनः आत्मा कैसा है बड़े से बड़ा है और सूक्ष्म से सूक्ष्म है, स्थूल से स्थूल है, जिसमें आकाश भी किसी ओर अणु जैसे प्रतीत होता है और ब्रह्मांड भी तृण समान पाते हैं और अपने आपसे पूर्ण है किंचित् भी उससे कहीं उत्पन्न नहीं हुआ और नाना प्रकार से स्थित हुआ है, फुरने से जगत् भासता है, फुरने से निवृत्त होने पर केवल शुद्ध आत्मा है, राजा बोला–हे भगवन्! आप कहते हैं कि संसार फुरणे मात्र है और आत्मा शुद्ध शान्तिरूप है और निर्विकल्प है तो उसमें संवेदन फुरणा कहां से आया है? कुंभ बोला–हे राजन्! फुरणा भी आत्मा का चमत्कार है, जैसे पवन में सस्पंद फुरना शक्ति भी है, जब फुरता है तब स्पर्श चलना प्रगट होता है, जब ठहर जाता है तब प्रगट नहीं होता ऐसे संवेदन जब फुरता है तब नाना प्रकार होते हैं और जगत् भासता है, जब फुरना मिट जाता है तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है, हे राजन्! आत्मसत्ता मात्र है और संसार भी सन्मात्र आत्मा ही है, यदि सम्यक् दृष्टि से देखे तो आत्मा ही भासता है और असम्यक् दृष्टि करके दुःखदायक जगत् भासता है, जिसके मन में संसार भावना है, उसको दुःख दायक भासता है और जिसके हृदय में आत्मभावना होती है उसको आत्मा ही भासता है और सुखरूप होता है, क्योंकि आत्मा नाम अपने आपका है जिसने जगत् को अपना आप जाना उसको दुःख कहां हो? हे राजन्! यह संसार भावना मात्र है, जैसी

भावना होती है ऐसा ही भासता है, जिसकी भावना विष में अमृत की होती है, जो विष भी अमृत हो जाता है और जिसकी भावना अमृत में विष की होती है तो अमृत भी विष हो जाता है, क्योंकि संसार भावना मात्र है, जैसे भावना दृढ़ करती है, यद्यपि वह वस्तु आगे न हो तो भी जाती है, इसलिये संसार भावना मात्र है मिथ्या है, ज्ञानवान् को कभी दुःख नहीं देता और अज्ञानी को कभी सुख नहीं देता, हे राजन्! अहंता और संवेदन चित्त और चैत्य यह भी आत्मा की संज्ञा है, जैसे आकाश कहो, शून्य कहो, नभ कहो, सब संज्ञाएं आकाश की ही हैं, ऐसे सर्व संज्ञाएं आत्मा की हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, अहं त्वं सब आत्मा के आश्रय हैं, जैसे भूषण स्वर्ण के आश्रय होते हैं परन्तु स्वर्ण परिणाम से भूषण होता है, जो पूर्वरूप को त्यागता है आत्मा ऐसे भी नहीं केवल एक रस है और अपने आप में स्थित है कदाचित् भी परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ, यह संवेदन आत्मा का चमत्कार है और सत् असत् से आत्मा पर है, जितना कुछ दृश्य है, वह आत्मा में नहीं चित्त से रचा है, इसीसे पर है, हे राजन्! वह कारण कार्य किसका हो, कारण कार्य तब होता है जब दृश्य होता है, वह आत्मा किसी का विषय नहीं, कारण कार्य किसका हो? विश्व का आदि भी आत्मा है अन्त भी आत्मा है और मध्य में भी आत्मा ही है, जो कुछ और प्रतीत होता है वह भ्रममात्र है, जैसे आकाश में घर मण्डल पुर दृष्टि आते हैं, उनका आदि भी आकाश है मध्य भी आकाश है और अन्त भी आकाश है, जो घर मंडल पुर भासते हैं वे मिथ्या हैं, जैसे अग्नि नाना प्रकार से दृष्टि आता है वह मिथ्या आकार है,एक अग्निस्थान ही है, ऐसे सबका आदि मध्य अन्त एक आत्मा ही सार है, हे राजन्! जैसे जल में भी देशकाल होता है, किस प्रकार कि दृश्य है वह इंद्रियों का विषय है यह तरंग अमुक स ान से उठा है और अमुक स्थान में जाकर लीन हुआ, तो स्थान देश हुआ और उत्पन्न होकर होकर इतने समय तक रहा यह काल हुआ और जिसको इंद्रिय विषय न कर सकें उसमें देशकाल कैसे हों? राजा ने कहा–हे भगवन्! मैंने भले प्रकार जाना है कि आत्मा चिन्मात्र है, ज्ञान इंद्रिय कर्मेन्द्रियों से परे हैं और देशकाल

इंद्रिय मन से जानता है कि अमुक देश है, अमुक काल है, जहां इंद्रिय और मन ही न हो, वहां देशकाल कहां है? कुम्भ बोला—हे राजन्! यदि तुमने इस प्रकार जाना है तो तुमने जाना है, आत्मा में देशकाल कोई नहीं, यह मन इंद्रियों से जाना जाता है कि यह देश है यह काल है, जो इनसे रहित होकर देखे तो आत्मा ही प्रतीत हो और यदि इनके सहित काल देखे तो संसार ही दृष्टि आयेगा, हे राजन्! इनसे रहित होकर देख कि संसार तुझमें कुछ न रहे, संसार तब तक होता है जब तक इनका संयोग अपने साथ होता है, हे राजन्! ब्रह्म से ब्रह्म को पूर्ण देखे और पूर्ण को देखे यदि तू भी पूर्ण हो, जब पूर्ण होगा तब सब ओर अपने आपको जानेगा और सब संज्ञाएं तेरी ही होंगी और अनिर्वाच्यपद को प्राप्त होगा। जहां इन्द्रियों की गति नहीं केवल आकाश रूप है, जैसे आकाश अपनी शून्यता से पूर्ण हैं, ऐसे तू अपने चेतन स्वभाव से पूर्ण होगा, जब मनसहित षट् इन्द्रियों से रहित होकर देखेगा, अपने आपको पुनः इस सहित देखेगा, तो भी तेरे लिये चेतन आत्मा ही भासेगा। संसार का शब्द अर्थ तेरे हृदय से उठ जायेगा, शब्द यह जो संसार है और उसको सत् जानना यह अर्थ है, वह भावना निवृत्त हो जायेगी, केवल आकाशरूप आत्मा ही भासेगा और संसार संवेदन मात्र है, चित्तशक्ति के चमत्कार को संवेदन कहते हैं, यही चित्त शक्ति ब्रह्मा होकर स्थित हुई है और संसार को देखने लगी है, जब अन्तर्मुख होती है, तब आत्मा ही दृष्टि आता है, आत्मा सदा एक रस है, जब बर्हिमुखी होती है, तब संसार दृष्टि आता है, जैसी यह भावना करता है ऐसे ही आगे दृष्टि आता है, जब संसार की भावना होती है तो संसार ही भासता है, जब आत्मा की भावना होती है, तब आत्मा ही भासता है, आत्मा सदा एकरस है और असंसारी है, इसलिये हे राजन्! तुम आत्मा की भावना करो कि तुम्हारे लिये आत्मा ही भासे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्यानने शिखिध्वजबोधेन नामाषण्णवतितमः सर्गः ।।९६।।

सप्तनवतितमः सर्गः ९७

शिखिध्वजप्रथमबोधवर्णनम् ।

कुम्भ ने कहा—हे राजन्! यह संसार जो तुम्हें प्रतीत हो रहा है आत्मा में नहीं, केवल शुद्ध आत्मा में जो अहंकार उत्थान है, वही संसार है, वह अहं का चमत्कार न सत् है न असत् है, न अन्तर है न बाहिर है, न शून्य है न अशून्य है, केवल अपने आप में स्थित है और संसार का प्रध्वंसाभाव भी नहीं, जो पहिले हो पीछे नाश हो जाये, वहप्रध्वंसाभाव है। संसार का उदय और अस्त होना आत्मा में नहीं केवल अपने आप में स्थित है, उससे इतर कुछ नहीं, यह कहना भी आत्मा में नहीं, जो केवल अपने आप में स्वाभाविक स्थित है, उसमें वाणी की गति नहीं, वाणी उसको कहते हैं, जहां दूसरा होता है, जहां दूसरा न हो, वहां वाणी क्या कहे, यह कहना भी तेरे उपदेश निमित्त कहा है, आत्मा में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं, हे राजन्! ऐसा आत्मा का कारण कार्य किसका हो, आत्मा शुद्ध है, निर्विकार है, प्रमाणों से रहित है, जो किसी लक्ष्मण से प्रमाणित नहीं किया जाता, आकार होकर स्थित हुआ है और शान्तरूप है, हे राजन्! ऐसा आत्मा है, कारण कार्य किसका हो, कारण कार्य तब होता है, जब प्रथम परिणाम को प्राप्त होता है और क्षोभ को प्राप्त होता है, वह आत्मा शान्तरूप है और कारण तब हो जब क्रिया करके कार्य को उत्पन्न करे, वह आत्मा अक्रिय है, क्रिया से रहित है और कारण को कार्य से जानना है आत्मा चिह्न से रहित है और प्रमाणों का विषय नहीं, इसलिये कारण कार्य आत्मा किसी का नहीं और आत्मा को कारण कार्य मानना मुझे परम विस्मय कारण प्रतीत होता है, हे राजन्! जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह नष्ट भी होती है और जो नष्ट होती है वह उत्पन्न भी होती है, आत्मा सबका आदि है, अजन्मा है और निर्विकार है, उसमें स्थित हो, जो तेरा संसार निवृत्त हो जाये, यह संसार अज्ञान से भासता

है, जब तू स्वरूप में स्थित होकर देखेगा, तब संसार न भासेगा और ऐसे भी न भासेगा कि संसार आगे था, अब निवृत्त हुआ है, एक रस आत्मा ही भासेगा, केवल शून्य आकाश हो जायेगा, अर्थात् संसार से रहित हो जायेगा, स्वरूप चेतन नाना करके भी वही है और एक भी वही है, शून्य है और शून्य से रहित है, द्वैत रूप भी वही है, अद्वैतरूप भी वही है, ऐसा प्रतीत होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज प्रथमबोधो नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥९७॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८

शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

कुंभ ने कहा—हे राजन्! जो कुछ देख रहे हो, चेतन घन है, उसमें अहं त्वं शब्द कोई नहीं और अहं त्वं शब्द प्रमाद से होते हैं, जब आत्मा में स्थित होकर देखोगे तो आत्मा से इतर कुछ न भासेगा तो अहं त्वं कहाँ भासे? हे राजन्! यह नाना प्रकार की संज्ञाएँ चित्त की कल्पना हैं, जब चित्त से रहित होगा तब नाना और एक संज्ञा कोई न रहेगी, हे राजन्! सर्व ब्रह्म है, यह वाक्य वेद का सार है, जब इस वाक्य में दृढ़ भावना से दत्तचित्त होगा तब एक रस आत्मा ही दृष्टि आयेगा और चित्त नष्ट हो जायेगा, जब चित्त नष्ट हुआ तब केवल महाशुद्ध आकाश की नाईं स्थित होगा, निर्दुःख पद को प्राप्त होगा, जो पद सबका आदि है और सर्वदा मुक्तरूप है, राजा ने कहा—हे भगवन्! आपने कहा कि चित्त के न रहने पर कोई दुःख न रहेगा, यद्यपि चित्त के नाश का उपाय आपने कहा है परन्तु मैं उसको दृढ़ता से नहीं समझ सका, इसलिये मेरे दृढ़ बोध के वास्ते कृपा करके फिर कहिये कि चित्त कैसे नष्ट होता है? कुंभ ने कहा—हे राजन्! चित्त है ही नहीं तो मैं तुझे क्या कहूँ और यदि तुझे चित्त दृष्टि आता है तो तू उसको आत्मा जान, आत्मा से इतर कुछ नहीं,

हे राजन्! महासर्ग के आदि और अन्त में सृष्टि कोई नहीं केवल आत्मा है और यह कहना भी आत्मामें नहीं, मैंने तो तेरे समझाने के लिये कहा है, मध्य में जो कुछ दृष्टि आता है, वह अज्ञानी की दृष्टि में है, आत्मा में सृष्टि कोई नहीं, आत्मा किसी का उपादान कारण और निमित्त नहीं क्योंकि अच्युत है, परिणाम को नहीं प्राप्त हुआ और उपादान भी परिणाम से होता है, आत्मा शुद्ध है, निराकार है, आकाशरूप है, वह कारण कार्य किसका हो और चित्त वासना रूप है, वासना तब होती है जब वास्य हो, वासना करने योग्य आगे सृष्टि भी नहीं तो वासना किसकी फुरे और चित्त में ससांर की स्थिति कैसे हो, इसलिये चित्त कुछ नहीं, यह विश्व आत्मा का चमत्कार है और सृष्टि आत्मा में कोई नहीं, निरालंब केवल अपने आप में स्थित है, हे राजन्! संसार भी नहीं हुआ और चित्त भी नहीं हुआ, तो अहं त्वं आदिक शब्द भी आत्मा में कोई नहीं, यह शब्द तब होते हैं जब चित्त होता है और चित्त तब तक है, जब तक वासना है, जब निर्वासनिक पद को प्राप्त हुआ तब कल्पना कोई नहीं रहती। हे राजन्! यह संसार महा प्रलय में नष्ट हो जायेगा, सत् असत् संसार कुछ न रहेगा, एक आत्मा ही शेष रहेगी, जो निराकार और शुद्ध है, जब तक महाप्रलय नहीं हुआ तब तक संसार है, वह महाप्रलय क्या है? सुनिये! एक क्षण आत्मा का साक्षात्कार होना, उससे सृष्टि का शेष भी न रहेगा, वह ज्ञान ही महाप्रलय है और अब जो दृष्टि आता है, वह मिथ्या है, यह क्रिया भी मिथ्या है, इसका भान होना भी मिथ्या है, जैसे स्वप्न की क्रिया भी मिथ्या है, उसका भान होना भी मिथ्या है, ऐसे जाग्रत संसार स्वप्नमात्र है, कारण बिना ही भासता है, जो कारण बिना है वह मिथ्या है, इसका कारण अज्ञान ही है, जो कि अपने आपको न जानना है, जब आपको जाना तब अपना आप ही प्रतीत होता है, जैसे स्वप्न में अपने आपको न जानने से भिन्न आकार भासते हैं, जगने पर अपना आप ही प्रतीत होता है कि मैं ही था, हे राजन्! मुझे तो एक आत्मा ही दृष्टि आती है, आत्मा ही है, आत्मा से इतर संसार कोई नहीं और इस संसार को स्थित मानना मूर्खता है, सदा चलरूप है, वेद शास्त्र

और लोक भी कहता है कि संसार मिथ्या है, आप भी जानता है कि नष्ट हो जाता है, दृष्टि आता है, उसमें आस्था करनी मूर्खता है, आत्मा में संसार नाना अनाना कुछ नहीं, आत्मा सदा अपने आप में स्थित है, शुद्ध है और अच्युत ज्यों की त्यों है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने
शिखिध्वजबोधो नामाष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥

एकोनशततमः सर्गः ९९

शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

शिखिध्वज ने कहा–हे भगवन्! अब मेरा मोह नाश हो गया है और मैंने अपना आप जान लिया है, आपकी कृपा से मेरा संसार निवृत्त हुआ है, मैंने शोकसागर को पार कर लिया है, अब शान्त पद को प्राप्त हुआ हूँ, अहं त्वं शब्द मेरे में कोई नहीं, निर्वाणपद में स्थित हुआ हूँ, अच्युत हूँ, चिन्मात्र हूँ, केवल हूँ और शून्य हूँ, कुंभ बोला–हे राजन्! आत्मा शुद्ध आकाश की नाईं निर्मल है, आकाश से भी अति निर्मल है; उसमें अहं मल है, उस अहं की उत्पत्ति मोह से हुई है, अविचार का नाम ही मोह है, जब विचार होता है, तब अहं को नहीं पाता, यह विश्व संवेदन में है, संवेदन सबके आदि होकर स्थित हुई है, जब संवेदन अन्तर्मुख होती है तब सर्व विश्व लीन हो जाता है, संवेदन में ही बंध और मुक्ति है, जब बहिर्मुख होती है, तब बंध है, जब अन्तर्मुख होती है तब मोक्ष है, जिसने मन और इन्द्रियोंसे रहित होकर अपना आप देखा है, उसको ज्यों का त्यों दृष्टि आता है और जो मोह संयुक्त देखता है, उसको विपर्यय भासता है, जैसे सम्यग् दृष्टि से भूषण में स्वर्ण भासता है, जब भूषणों के आकार बदल जाते हैं, तब भी स्वर्ण ही है, मुख को सुवर्ण में भूषण दृष्टि आते हैं, चिरकाल के अध्यात्म से जो बुद्धि इनमें फुरती है, तो भी प्रारब्ध के वेगपर्यन्त चेष्टा होती है, तब चेष्टा में भी आत्मा ही दृष्टि आता है,

इसलिये केवल आत्मा ही का किंचन होता है, जैसे सोने में भूषण और आकाश में नीलता देखने मात्र है, वास्तव कुछ नहीं, ऐसे ही आत्मा में सृष्टि वास्तव में कुछ नहीं, भ्रान्ति मात्र ही है, जब भ्रान्ति निवृत्त होगी तब जगत् का शब्द अर्थ सब ओर से निर्मल होगा और शब्द अर्थ की भावना से जो चेष्टा होती है उससे जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती है, तब दुःख कोई नहीं होता, इसी को मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं, जब ऐसा निश्चय निर्वाण पद का हुआ तब शान्तरूप शून्य पद को पाकर स्थित होता है। हे राजन्! अहं का उत्थान होना यही बंधन है और अहं का निर्वाण होना यही मुक्ति है, अहं के होने से संसार दुःख है, जब तक अहं का उत्थान है, तब तक संसार है और जब तक संसार है तब तक अहं का उत्थान है, जब संसार की सत्ता जाती रहे, तब अहं का फुरना भी नष्ट हो जायेगा, जब अहं नष्ट हुआ तब केवल शुद्ध आत्मा ही शेष रहेगा और अनामय एक ही एक निर्दुःख ही भान हो अहं ब्रह्म का उत्थान भी शान्त हो जायेगा और चेतन मात्र ही रहेगा, हे राजन्! जिसको सर्व ब्रह्म की बुद्धि हुई है, उसको संसार की बुद्धि नहीं और जिसको संसार बुद्धि हुई है उसको ब्रह्मबुद्धि नहीं, जैसी जैसी भावना दृढ़ होती है वैसा ही आगे भासता है जिसको ब्रह्म भावना दृढ़ होती है वह ब्रह्मरूप हो जाता है और जिसको जगत् की भावना दृढ़ होती है उसको जगत् भासता है, हे राजन्! तू अब जगा है और ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध निर्मल है और प्रत्यक् है, जो किसी शब्द और लक्षण का विषय नहीं और इन्द्रियों का विषय नहीं, हे राजन्! ऐसा आत्मा कारण कार्य जिसका हो, जो केवल अद्वैत है और विश्व आत्मा का चमत्कार है, जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग पवन से उत्पन्न होते हैं, तो भी समुद्र से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मा में नाना प्रकार का विश्व सम्वेदन स्फुरण से उत्पन्न होता है तो भी समुद्र से इतर कुछ नहीं, स्फुरण मात्र है, जैसे स्तंभ में मनोराज्य से कोई पुरुष पुतलियों की कल्पना करता है और नाना प्रकार की चेष्टा करता है, इनकी चेष्टा तब तक है, जब तक संकल्प है, जब संकल्प निवृत्त हुआ, तब

शून्य स्तंभ ही रहता है, जैसा आगे भी शून्य था और उसकी संवेदन में सृष्टि थी, ऐसे यह संसार संकल्प मात्र है, जब संकल्प अन्तर्मुख हुआ तब संसार की सत्ता जाती रहती है, हे राजन्! संसार सत्ता जाती तब है, जो आगे ही असत् है और जो वस्तु सत् होती है उसका नाश कदाचित्त नहीं होता, इसलिये केवल संवेदन कल्पना हुई है, जैसे एक शिला में पुरुष पुतलियों की कल्पना करता है, शिला में तो पुतली कोई नहीं, ज्यों की त्यों शिला ही है ऐसे स्फुरण से आकार दृष्टि आते हैं, जब चित्त फुरणे से रहित होगा तब आत्मा को अपना आप जानेगा और अशब्द पद को प्राप्त होगा, जो शान्ति पद है और शुद्ध आकाशरूप है, हे राजन्! सर्व शब्द और सर्व अर्थ की अभावना यह ब्रह्म अर्थ है, जहां कोई कल्पना नहीं, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब शेष आत्मा ही भासती है और यह भावना भी उठ जाती है कि यह संसार है, यह ब्रह्म है, केवल ज्ञेय मात्र ही होकर रहता है, कैसा ज्ञेय मात्र ही है, जो शिला की नाईं ज्ञान है ऐसा शेष रहता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज बोधवर्णनं नामैकोनशततमः सर्गः ।।९९।।

शततमः सर्गः १००

परमार्थोपदेशवर्णनम् ।

राजा ने कहा–हे भगवन्! जैसे तुम कहते हो वह सत्य है और मैं ऐसे जानता हूँ कि संसार आत्मा का कार्य है और आत्मा कारण है जो आत्मा का कार्य हुआ तो आत्मस्वरूप हुआ, आत्मा से इतर कुछ नहीं, कुंभ ने कहा–हे राजन्! आत्मा चेतन मात्र है कारण कार्य किसी का नहीं, जो आत्मा प्रत्यक् है, अक्रिय है, अच्युत है, निरस है, जो अशब्द पद है वह कारण कार्य किसका हो और कारण को कार्य द्वारा जानता है और आत्मा किसी प्रमाण का विषय नहीं, जो प्रत्यक् है, अरूप है, कारण तब

होता है, जब क्रिया होती है, न किसी का कारण कार्य है, न कर्म है, केवल ज्यों का त्यों अपने आप में स्थित है, चेतन मात्र है, शिवरूप है, शुद्ध है, यह विश्व भी चेतनमात्र है, जैसे आकाश में आकाश स्थित है, ऐसे आत्मा में विश्व आत्मरूप से स्थित है, विश्व चेतनमात्र है, उसमें असम्यक् दर्शी अज्ञान से नाना प्रकार की कल्पना करता है, वस्तु का न जानना अज्ञान है, परमात्मरूप सत्य वस्तु से प्रमाद करके वासनारूप चित्त के विश्व की कल्पना करता है, वह विश्व शब्द मात्र है, अर्थ कुछ नहीं, जैसे दूसरा चन्द्रमा आकाश में, जैसे तरंग समुद्र में, जैसे जल मृगतृष्णा में जैसे वेताल परछाईं में, ऐसे असम्यक् दृष्टि आत्मा में विश्व कल्पना करता है और सम्यक्दर्शी ऐसे जानता है कि आत्मा शुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी है, परम निरंजन है, हे राजन्! जब तू सम्यक् दृष्टि से देखेगा तब संसार का प्रध्वंसाभाव भी न देखेगा, क्योंकि चित्त का कल्पना किया हुआ है और चित्त अज्ञान से उत्पन्न हुआ है, स्वरूप में चित्त है न अज्ञान है, न संसार है, केवल अद्वैत मात्र है, वहां एक कहां और अद्वैत कहां, केवलमात्र पद है जब अज्ञान नष्ट हुआ तब अहं त्वं सब नष्ट हो जायेगा, पुनः भ्रम देखने में नहीं आवेगा, हे राजन्! आत्मा से इतर जो कुछ भासता है, वह अज्ञान से है, विचार करने पर नहीं रहता, राजा ने कहा—हे भगवन्! अज्ञान क्या है और नाश कैसे हो, यह कहिये, कुम्भ बोला—हे राजन्! एक ज्ञान है एक अज्ञान है। ज्ञान यह कि पदार्थ को प्रत्यक्ष जानना और अज्ञान यह है कि पदार्थ को न जानना और एक ज्ञान भी अज्ञान है, उसको सुनिये। मृगतृष्णा का जल देखकर आस्था करनी कि है, और जेवरी (रस्सी) में सर्प और सीपी में रूपा देखना और उसको सत्य जानना, यह ज्ञान भी अज्ञान है क्योंकि सम्यक्दर्शी होकर नहीं देखता, यह दृष्टान्त है, और दृष्टान्त यह है, जो शुद्ध आत्मा निराकार अच्युत है, उसमें मैं हूँ और मेरा अमुक वर्णाश्रम है और नाना प्रकार विश्व जानना, यह ज्ञान भी अज्ञान है और मूर्खता है, हे राजन्! न कोई जन्मता है, न कोई मरता है, ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है, उसमें जन्म मरण आदिक विकार देखना रूप जो ज्ञान है, वह अज्ञान है, हे राजन्, जैसे कोई

ब्राह्मण हो और ऊंची बाहें करके कहे कि मैं शुद्ध हूँ, मेरे लिये वेद का अधिकार नहीं और जैसे कोई पुरुष कहे कि मैं मरा हुआ हूँ, मृत अपने आपको जानता हूँ, ऐसे कुछ वर्णाश्रम का अभिमान लेकर कहना यह मूर्खता है, क्योंकि असम्यक् दर्शन है, जब ज्यों का त्यों जानें तब दुःखी न हो, हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यग् दर्शन से नष्ट हो जाये, वह अज्ञान है, जैसे सूर्य की किरणों में जल बुद्धि होती है, किरण के ज्ञान से जल का ज्ञान नष्ट हो जाता है, वह जल का जानना अज्ञान था, जैसे जेवरी में सर्प जानना। सर्प का ज्ञान जेवरी के ज्ञान से नष्ट हो जाता है यह अज्ञान है, सम्यग्दर्शन से नष्ट होता है, जब ऐसा सम्यगदर्शी होगा तब आध्यात्मिक ताप निवृत्त हो जायेगा और शुद्ध होगा, जो आत्मा है अज है और शान्तरूप है, सत् असत् सब आत्मा है, उससे इतर कुछ नहीं और प्रकाशरूप है, ऐसा तू है, हे राजन्! अज्ञान भी अपर कोई नहीं, इस चित्त के उदय होने का नाम अज्ञान है, अज्ञान का कारण चित्त है और जो पदार्थ चित्त से उदय हुआ है, वह नष्ट भी चित्त से होता है, इसलिये तू चित्त से चित्त को नाश कर जैसे आग वायु से उत्पन्न होती है और वायु से ही शांत होती है, अतः चित्त से नष्टकर, हे राजन्! न तू है न मैं हूँ, न इंद्रिय है न संसार है, न यह जगत् है केवल शुद्ध आत्मा है, हे राजन् यदि चित्त ही नहीं तो चित्त का कार्य विश्व कहां हो, यह अज्ञानी को भासता है कि चित्त है और विश्व है, केवल अपने आप में आत्मा स्थित है, हे राजन्! चित्त का उदय होना अज्ञान से है, जब अज्ञान नष्ट हुआ तब चित्त और अहं त्वं नष्ट हो जाते हैं, हे राजन्! तू शुद्ध आत्मा है, एक है और प्रकाशरूप है, अच्युत है और निरन्तर है और देह इंद्रियादिक रूप होकर भी तू ही स्थित हुआ है इच्छा से अनिच्छा भी तू ही है और जैसे चन्द्रमा किरणें चन्द्रमा से भिन्न नहीं, ऐसे ही तू है और निर्विकल्प है, कुछ स्फुरण तुझ में नहीं तू केवल ज्यों का त्यों स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्द्धे चूडालोपाख्याने
परमार्थोपदेशो नाम शततमः सर्गः ।।१००।।

एकाधिकशततमः सर्गः १०१

शिखिध्वजबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार कुम्भ मुनि ने कहा तब शिखिध्वज सुनकर शांति को प्राप्त हुआ, नेत्र मूंदकर सब अंगो की चेष्टा से रहित हुआ और जैसे शिला पर पुतली लिखी हुई हो ऐसा स्थित हुआ, एक मुहूर्त पर्यन्त निर्विकल्प स्थित रहा और फिर उठा, कुम्भ ने कहा–हे राजन्! आत्मा निर्विकल्प है, उस निर्विकल्प शिला में तुमने शयन किया, परन्तु ज्ञेय (जो जानने योग्य है) के विषय में क्या जाना, तुम्हारा अज्ञान नष्ट हुआ या नहीं, तुम्हें शान्ति मिली कि नहीं कहो, राजा ने कहा–हे भगवन्! आपकी कृपा से मैं परम उत्तम पद को प्राप्त हुआ हूँ, हे भगवन्! तत्ववेत्ता संग से जिस अमृत को मनुष्य प्राप्त करता है, क्षीर सागर से भी उसको प्राप्ति नहीं होती, देवताओं से भी उसकी प्राप्ति नहीं होती, आपकी कृपा से वह अमृत मैंने प्राप्त किया है, जिसका कोई आदि अन्त नहीं, अनन्त है और अमृतसार है, अब मेरे सब दुःख नष्ट हो गये हैं, अब मैं जगा हूँ और मैंने अपने आपको जान लिया है, मैं आत्मा हूँ मेरे साथ चित्त कोई नहीं, मैं केवल अपने आप में स्थित हूँ, अब मुझे कोई इच्छा नहीं, अपने स्वभाव को प्राप्त हूँ, जिसमें कोई क्षोभ नहीं, ऐसे सब के आदि पद को प्राप्त हुआ हूँ, वह निर्विकल्पपद मेरा अपना आप है, जिससे सब प्रकाश पाते हैं, उसके जाने बिना कोटि जन्म पाये थे, अब मेरे दुःख समाप्त हुए हैं, निर्मल हुए हैं, आपकी कृपा से एक क्षण में मैंने उसको जान लिया जिसको जानना ही परम कर्तव्य है, वह कारण कौन था जो पहिले न जाना और अब जाना है, कुम्भ ने कहा–हे राजन्! तेरे कषाय अब परिपक्व हुए हैं, जैसे फल परिपक्व होता है, तब यत्न बिना वृक्ष से गिर पड़ता है, ऐसे तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है। अब अज्ञान तेरा नष्ट हो गया है, जब अन्तःकरण मलिन होता है तब ज्ञानवानों (सन्तों) के वचन नहीं लगते, जब अन्तःकरण शुद्ध होता है तब सन्तों के वचन

लगते हैं, जैसे कोमल मिह को बाण लगे तब शीघ्र ही वेधा जाता है, ऐसे शुद्ध अन्तःकरण में शीघ्र उपदेश प्रवेश करता है, हे राजन्! अब तेरी भोगवासना निर्मूल नाश हो चुकी है और स्वरूप जानने की इच्छा हुई है, इसलिये तुम जगे हो, हे राजन्! मैंने उपदेश तब किया है जब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और प्रतिबन्ध भी वहां पड़ता है जहां स्थान की निर्मलता हो, जैसे श्वेत वस्त्र के ऊपर केसर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है और रङ्ग भी उज्ज्वल होता है, ऐसे शुद्ध अन्तःकरण में सन्तों के वचन शीघ्र ही प्रवेश करते हैं और शोभा पाते हैं, हे राजन्! जब तक अन्तःकरण मलिन होता है चाहे कितना उपदेश किया जाय सफल नहीं होता, जब भोग से वैराग्य होता है, तब वासना कोई नहीं रहती, केवल आत्मपद की इच्छा होती है तब स्वरूप का साक्षात्कार होता है, हे अर्जुन अब तेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट हुआ है, अन्य उपाधि कोई नहीं, चित्त की बड़ी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ तब दुःख कोई नहीं रहता, अब तुम सुख से विचरो, तुम्हें दुःख कोई नहीं, शोक और भय कोई नहीं, तुम शान्तिपद को प्राप्त हुए हो, राजा बोला–हे भगवन्! अज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध है, ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता, यदि स्वरूप में स्थित है तो चित्त बिना जीवन्मुक्ति क्रिया में कैसे वर्तता है? कुम्भ ने कहा–हे राजन्! तुम सत्य कहते हो कि ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं, जैसे पत्थर की शिला में अंगुरी नहीं होती, ऐसे ज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध नहीं होता, हे राजन्! चित्त वासना रूप है, वह वासना जन्म मरण का कारण है और जीवन्मुक्ति की वासना नहीं रहती, ज्ञानवान् का चित्त सत्यपद को प्राप्त है और अज्ञानी चित्त के विषय में बद्ध है, इस कारण से जन्म लेता है, मरता है और ज्ञानी का चित्त शान्ति में स्थित है, उसको न बन्ध है न मोक्ष है, प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है और सर्व आत्ममय देखता है, इन्द्रियों से चेष्टा करता हुआ भी सर्व ब्रह्म ही देखता है और क्रिया करने में अभिमान से रहित होता है कि मैं करता हूँ और भोगता हूँ और अज्ञानी अपने आपको कर्ता मानता है,

उसको संसार सत्य भासता है, सत्य जानकर संकल्प विकल्प करता है और ज्ञानवान् को संसार की सत्यता नहीं भासती, अपने आपको अकर्ता अभोक्ता देखता है और निरभिलाष चेष्टा करता है, हे राजन्! संसार को सत्य जानना और अपने में क्रिया देखनी तब तक होती है, जब तक चित्त का सम्बन्ध होता है जब चित्त ही नष्ट हो गया तब संसार और फुरना कहां रहे? हे राजन्! अब चित्त का तुमने त्याग किया है, इसलिये सर्व त्यागी हुआ है और आगे सर्व त्याग न किया था, जिससे अज्ञान नष्ट न हुआ था, अब तेरा अहंभाव दूर हुआ है, जो अज्ञान का कार्य था, जब अज्ञान नष्ट हुआ तब अहंभाव न रहा, अहं के त्याग करने से सर्व त्याग सिद्ध हुआ, आगे तुमने राज्य का त्याग किया था तब राज्य में तुम्हारा कुछ न था, पुनः तमस का त्याग किया, उसके बाद वन आदि सब सामग्री का त्याग किया जो कि त्यागने योग्य अहंभाव है, इससे सर्व त्याग हुआ और जो कुछ जानने योग्य है वह जाना है और शान्त पद को प्राप्त हुआ है, हे राजन्! तू आत्मा है, सर्व दुःख से रहित है, जैसे मंदराचल से रहित क्षीरसागर शान्त पद को प्राप्त हुआ है, ऐसे तू अज्ञान से रहित शान्त पद को प्राप्त हुआ है, अब तुम जगे हो और चित्त का त्याग किया है, इसलिये सर्वात्मदृष्टि तथा अद्वैत दृढ़ हुआ है, हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं, तब उनकी संज्ञा नाना प्रकार की होती है कि अमृत विष और सुख दुःख धर्म, अधर्म यह होते हैं, जब एक अक्षर रूप होता है तब सबका आत्मा है ऐसे दूसरा अज्ञान नष्ट हुआ है और सत्य पद को प्राप्त हुआ है और शुद्ध निर्मल है, हे राजन्! जो ज्ञानवान् है, सम्यक् दृष्टि करके उस चित्त का त्याग किया है, पुनः उसको कोई दुःख नहीं होता, इसलिये तू इस पद को प्राप्त हुआ है, जहां स्वर्गादिक सुख तुच्छ हैं, स्वर्ग में भी क्षय अतिशय होता है जो बड़े पुण्योंवाला अपने से ऊंचा दीखता हो, उसे देखकर चाहता है, मैं भी ऐसा हो जाऊँ इसको अतिशय कहते हैं, वर्तमान सुख से कहीं गिर न जाऊं, उस भय को क्षय कहते हैं, तुमने पुण्य पाप दोनों को त्याग किया है, इसलिये तुम सर्व त्यागी हो और अज्ञानी जो पापी जीव हैं, उनको स्वर्ग भी भला है, जैसे स्वर्णपात्र न मिले तो पीतल का भी

भला है, ऐसे स्वर्ण का पात्र जो ज्ञान है जब तक न मिले तब तक पीतल का पात्र जो है स्वर्गादिक वह नरक से भले हैं और तुम सरीखे को कुछ न चाहिये, क्योंकि आत्मा में सब पदार्थों की पूर्णता है और सबकी उत्पत्ति आत्मा से है, हे राजन्! वर्णाश्रम में क्या अवस्था करनी है, जहां से इनकी उत्पत्ति है और जहां लीन होते हैं और मध्य में जिसके अज्ञान से दृष्टि आते हैं, उसमें स्थित हो जाइये जिसके ज्ञान से सब लीन हो जाते हैं, हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं, उनमें स्थित मत हो, जिसमें उत्पन्न और लीन होते हैं उसमें स्थित हो, तप आदिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है जिससे तब आदिक सिद्ध होते हैं उसमें स्थिति हो, बूंद में क्या स्थित होना है जिस मेघ से बूंद उत्पन्न होता है, उसमें स्थिति पाइये, हे राजन्! जैसे स्त्री हो और भर्ता से कोई पदार्थ चाहे और आप न कहे, ऐसे तप आदिक क्रिया से क्या सिद्ध होता है? यदि उनसे आत्मपद की इच्छा करे तो वह प्राप्त नहीं होता, वह तो अपने आप से प्राप्त होता है, हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आप है, उससे सब कुछ सिद्ध होता है, जिस वस्तु का पीछे से त्याग करना पड़े, बुद्धिमान् पुरुष पहिले ही उसको अंगीकार नहीं करता, जितना कुछ तप आदिक धन्धा है, उसको चित्त से क्या रचता है, अपने आपको देख जो अनुभव रूप है और सर्वदा निरन्तर अपने आप में स्थित है, जब तू अपने आप को देखेगा तब तब आदिक क्रिया को दूर करके शोभा प्राप्त करेगा, जैसे बादल के दूर हुए चन्द्रमा प्रकाशवान् होकर शोभा पाता है, ऐसे तुम भी भोग की चपलता को त्यागकर सुशोभित होगा, जब इन्द्रियों पर विजय पाकर किसी पदार्थ में आसक्ति न रक्खेगा और समस्त वासनाओं का त्याग करेगा, तब ज्ञानवान् होगा और जिसने सब वासनाओं का त्याग किया है उसको विष्णु जानना, जो सब राज्य का स्वामी है, जिसने मन को जीता है, वह चेष्टा में भी ज्यों का त्यों रहता है और समाधि में भी ज्यों का त्यों है, जैसे पवन चलने और ठहरने में तुल्य है, ऐसे ज्ञानवान् को कहीं खेद नहीं होता, राजा ने कहा—हे सर्व संशय छेत्ता! स्पन्द और निस्पंद में ज्ञानी

ज्यों का त्यों कैसे रहता है, कृपा करके कहो, कुम्भ बोला—हे राजन्! चेतन आकाश है वह आकाश से भी निर्मल है, जब उसका साक्षात्कार हुआ, तब जहां देखो वहां चेतन हो भासता है, जैसे समुद्र के जानने से तरंग बुद्बुदे सब जल ही भासता है, ऐसे चित्त बिना आत्मा के देखे हुए फुरणे में भी आत्मा ही दृष्टि आता है और जिसने आत्मा को नहीं जाना उसको नाना प्रकार का जगत् ही भासता है जैसे जल के जाने बिना तरंग बुदबुदे भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं और जल के जानने से तरंग भी जलमय भासते हैं, हे राजन्! सम्यक्दर्शी को जगत् आत्मस्वरूप है, असम्यक्दर्शी को जगत् है। इसलिये तुम सम्यग्दर्शी देखो कि जगत् भी आत्मरूप है और सम्यक् दर्शन जैसे प्राप्त होता है उसे सुनिये, सत् पुरुषों (संतों) का संग करना और सत् शास्त्रों का विचार करना, जब दृढ़ भावना की जाय तब कुछ समय के बाद स्वरूप का साक्षात्कार होता है, काल की अपेक्षा दृढ़ विचार के निमित्त कही है, जब दृढ़ विचार होता है तब साक्षात्कार होता है, जब स्वरूप का साक्षात्कार हुआ, तब स्पंद निस्पंद में एक समान होता है, हे राजन्! जिसके समीप मधु हो वह मधु के लिये पर्वत पर क्यों जाये, ऐसे ही तेरे घर में ब्रह्मवेत्ती चूड़ाला थी उसका त्याग करके तुम ने वन में आकर तप का आंरभ किया, उससे बहुत कष्ट हुआ, परंतु अब तू जगा है और दुःख तेरे नष्ट हुए हैं, अब तू शान्ति पद को प्राप्त हुआ है, जैसे जेवरी के न जानने से सर्प भासता है और भले प्रकार जानने से जेवरी भासती है, ऐसे जिसने भले प्रकार निस्पंद होकर अपने आप देखा है, उसको फुरने में भी आत्मा ही भासता है, जब मन की चपलता मिटती है, तब तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है, जिस पद को वाणी विषय नहीं कर सकती, हे राजन्! तुम भी उसी पद को प्राप्त हुए हो, जो मन और वाणी से रहित है और तुरीयातीत पद है, जहां क्षोभ कोई नहीं, शान्ति पद है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधवर्णनं नामैकोधिकशततमः सर्गः ॥१०१॥

व्यधिकशतमः सर्गः १०२

शिखिध्वजसमाधानवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब राजा को कुंभ मुनि ने ऐसे उपदेश किया। इसके बाद कहा—हे राजन्! अब हम स्वर्ग को ब्रह्माजी के पास जाते हैं वहां देवताओं की सभा में नारद मुनि आये हैं जो मेरे लिये न देखेगा तो क्रोध करेगा, हे राजन्! जो कल्याण कृत पुरुष हैं वे बड़ों की प्रसन्नता लेते हैं, इसलिये अब मैं जाता हूँ और जो तुझे उपदेश किया गया है, उसको भले प्रकार विचारना और सर्व शास्त्रों का सार यही है कि सम्पूर्ण वासना का त्याग करना, किसी में चित्त को बद्ध न होने देना, मेरे आने तक स्वरूप में स्थित रहना, किसी अन्य चेष्टा में प्रविष्ट न होना और स्वरूप स्थिति का अभ्यास चलाये रखना, ऐसे कहकर कुंभ मुनि उठकर खड़े हो गये, तब राजा ने अर्घ्य देने के लिये जल फूल हाथ में लिये, परन्तु वे जल फूल हाथ में ही रहे, कुंभ मुनि अन्तर्धान हो गये, जब राजा ने मुनि को अपने आगे न देखा तो विचार करने लगा कि देखो ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि नारद मुनि कहां था और उसका पुत्र कुंभ मुनि कहां और मैं राजा शिखिध्वज कहाँ। नीति ने ही कुंभज मुनि का रूप बनाकर मुझे आकर जगाया है और कुंभ तो बड़े महापुरुष हैं जिन्होंने उपदेश से मुझे जगाया, अब मैं अज्ञानरूप गर्त से निकला हूँ और स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ, मेरे सम्पूर्ण संशय नष्ट हुए हैं और मैं निर्दुःख पद में स्थित हुआ हूँ, अज्ञान निद्रा से जागा हूँ, महान् आश्चर्य है। हे रामजी! ऐसा कहकर राजा शिखिध्वज ने संपूर्ण इन्द्रियों प्राणों और मन को स्थित किया और चेष्टा से रहित हुआ, जैसे शिला के ऊपर पुतली लिखी होती है, जैसे पर्वत का शिखर स्थित होता है, ऐसे स्थित हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजसमाचारवर्णनं नाम व्यधिकशततमः सर्गः ॥१०२॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः १०३

कुम्भपुनरागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वहां चूडाला कुम्भरूप शरीर का त्याग करके और चूडाला का सुन्दरी रूप धारण करके उड़ी, आकाश को लांघकर अपने नगर में आयी और अन्तःपुर में जहाँ स्त्रियाँ रहती थीं वहां प्रवेश किया और मंत्री को सकल प्रबन्ध की आज्ञा दी कि सब कर्मचारी लोग अपने स्थान में स्थित होकर यथानिर्दिष्ट कार्य करें। स्वयं राजा के स्थान पर स्थित हुई और प्रजा की भली प्रकार खबर ली, किसी की कोई भी तकलीफ देखी, तत्काल दूर करा दी गयी, तीन दिन तक राज्य की देखभाल करने के बाद रानी फिर उड़ी जहां वन में राजा था, वहां आयी और कुम्भ का रूप धारण करके देखा कि राजा समाधिस्थ है, देखकर बहुत प्रसन्न हुई। हे रामजी! ऐसे प्रसन्न हो रानी विचारने लगी कि बड़ा सुख कार्य हुआ जो राजा ने स्वरूप में स्थिति पायी है और शान्ति को प्राप्त हुआ, फिर विचार किया किसको जगाऊं, तब सिंह की नाईं गर्जा और बड़ा शब्द किया, उस शब्द से वन के पशु भी भीत से हो गये परन्तु राजा न जगा। फिर हाथ से रानी ने बहुत हिलाया तो भी राजा न जगा, जैसे मेघ के शब्द से पर्वत का शिखर विचलित नहीं होता, इसी प्रकार राजा काष्ठ पाषाण की नाईं स्थित रहा तब रानी ने विचार किया कि राजा शरीर को न त्याग देवें। उसके शरीर त्यागने पर तो मैं भी त्याग दूँगी, हे रामजी! चूडाला ने शरीर न त्यागा परन्तु आरंभ करने लगी कि इसका भविष्यत् क्या होना है, राजा के नेत्रों पर हाथ लगाया और देह के साथ देह का स्पर्श किया, तब देखा कि राजा के शरीर में प्राण हैं और भविष्यत् का भी विचार किया कि इसका सत्व शेष रहा है, जीवन्मुक्त होकर राज्य में विचरना है, रामजी बोले–हे भगवन्! आपने कहा कि राजा काष्ठ और पाषाण की नाईं स्थित हुआ

है और फिर कहा है कि इसमें प्राण हैं जीता है तो कुंभ ने क्यों कर जाना, यह मुझको संशय है दूर कीजिये। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस शरीर में पुर्यष्टका होती है उसमें हरियावल होती है, हे रामजी! अज्ञानी का चित्त रहता है और ज्ञानी का सत्व रहता है, जो प्रारब्ध वेग से फुरता है और ब्रह्माकार वृत्ति होती है और अज्ञानी का चित्त फुरणे से फिर शरीर पाता है और ज्ञानी इष्ट अनिष्ट में समान रहता है और अज्ञानी एक समान नहीं रहता, इष्ट में प्रसन्न और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् होता है, हे रामजी! ज्ञानी जब शरीर को त्यागता है, तब ब्रह्म समुद्र में स्थित होता है और जब तक सत्व शेष है तब तक फुरता है और अज्ञानी शरीर को त्यागता है तब उसमें सूक्ष्म संसार होता है, जैसे बीज में वृक्ष फूल फल सूक्ष्मता से स्थित होते हैं, समय पाकर पुनः निकलता है, उसी प्रकार राजा का सत्व शेष रहाथा उससे पुनः फुरेगा, तब कुम्भरूप चूडाला ने विचार किया कि इसके अन्दर प्रविष्ट होकर इसे जगाऊँ, यदि मैं न जगाऊँगी तो भी नीति से इसको जागना है, इसलिये मैं ही जगाऊँ, ऐसा विचार कर अपने शरीर का त्याग्र किया। चेतना में स्थित होकर और फुरने को लेकर उसमें जाकर प्रवेश किया। प्रवेश कर उसका जो चेतनता सत्य शेष था, उसको छोड़ दिया बड़ा क्षोभ किया, तब राजा वहां से हिला तब आप निकल आयीं और अपने शरीर में प्रवेश किया, जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है, फिर अपने नीड़ में जाकर प्रवेश करता है, ऐसे अपने शरीर में प्रविष्ट हुई और मधुर सुन्दर स्वर के साथ सामवेद का गायन करने लगी। तब राजा ने सुना और समझा कोई साम गायन कर रहा है, ऐसा सुनकर जगा और देखा कि कुम्भ मुनि बैठे हैं, देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फूल जल चढ़ाया और कहा–हे भगवन्! मेरे बड़े भाग्य हैं जो कि आपका दर्शन हुआ, देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, हे भगवन्! कुल रूप जो कुलाचल पर्वत है, उसमें जो देहरूप वृक्ष है, वह अब फूला है, आपने हमको पावन किया है, हे भगवन्! किसी की सामर्थ्य नहीं जो तुम्हारे जैसे के चित्त में प्रवेश करे, जिसमें सर्वदा आत्मा का निवास है, उस चित्त में मेरी स्मृति हुई है तथा दर्शन किया है,

अतः मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ, हे भगवन्! अमृत सम वचनों से आपने मुझे पहिले भी पवित्र किया था और अब मुझे जो स्मरण किया है यह तो अतिपावन कर दिया है, कुम्भ बोला–हे राजन्! तेरे दर्शन से मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और तुम्हारे जैसा प्रेम किसी अन्य में नहीं देखा, तुम परम प्रेमी हो, हे राजन्! तेरे लिये मैं स्वर्ग से आया हूँ, मुझे स्वर्ग के सुख भले नहीं भाये, तुम मेरे परम प्रेमी हो, इसीलिये मैं आया हूँ, अब स्वर्ग में भी नहीं जाता, तेरे पास ही रहूँगा, राजा बोला–हे भगवन्! जिसके ऊपर आप जैसों की कृपा होती है वे स्वर्ग सुख को नहीं चाहते तो आपकी तो बात ही क्या कही जाय, यह वन कुटिया है इसमें विश्राम करें, मेरे अहोभाग्य हैं जो कि आपका चित्त यहां रहना चाहता है, कुम्भ बोला–हे राजन्! अब तुझे शांति मिली है और संकल्प बीज नष्ट हुआ है, जैसे नदी के किनारे पर वल्ली होती है और जल के प्रवाह से समूल गिरती है, ऐसे ही तेरा संकल्प बीज नष्ट हुआ है, अब तू यथा प्राप्त में सन्तुष्ट हुआ है कि नहीं, हेयोपादेय से रहित हुआ है कि नहीं हुआ और जो पाने योग्य पद है वह पाया है कि नहीं पाया, अपना अनुभव कहो, राजा ने कहा–हे भगवन्! आपकी कृपा से मैंने सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम परम पद पाया है, जहां संसार मीमांसा का अन्त है, अब मेरे लिये उपदेश का अधिकार नहीं रहा, मेरे सम्पूर्ण संशय नष्ट हुए हैं, हेयोपादेय से रहित हूँ, इसलिये सुखी विचरता हूँ, जो कुछ जानने योग्य था, मैंने जान लिया है, अब मुझ में दुःख कोई नहीं, सर्व प्रकार से मैं तृप्त हूँ, आत्मरूप हूँ, निर्मल हूँ, अपने स्वभाव में स्थित हूँ, सर्वात्मा हूँ, निर्विकल्प हूँ, मुझमें फुरणा कोई नहीं, मैं शान्तरूप हूँ और चिरपर्यन्त सुखी हूँ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने
कुम्भपुनरागमनवर्णनंनाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥१०३॥

चतुरधिकशततमः सर्गः १०४

जीवन्मुक्तव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार राजा और कुंभ का तीन मुहूर्त संवाद हुआ, उसके अनन्तर दोनों उठ खड़े हुए और चले निकट ही एक तालाब था, जहां बहुत कमलिनी थीं, वहां दोनों ने स्नान किया, संध्या गायत्री जप और पूजा पाठ करके वहां से चले, बन कुंजों में आये, तब कुम्भ ने कहा चलिये, राजा ने कहा–भली बात है, चलिये, तब चले बहुत नगर देश ग्राम और तीर्थ देखे और नाना प्रकार के वनों में विचरे। फूले फले बागों में भी गये और मरुस्थल में भी विचरे, हे रामजी! ऐसे राजसी सात्विकी तामसी स्थानों में विचरे, जहां तीर्थादिक सात्विक स्थान हैं, सुन्दर वन आदिक राजसी स्थान है और मरुस्थल आदि के तामसी स्थान हैं, उनमें विचरे तो भी हर्ष शोक को न प्राप्त हुए, समता में रहे, हे रामजी! कुम्भ का प्रयोजन फिरने का यह था कि राजा शुभ अशुभ स्थानों को देखकर हर्ष शोक करेगा अथवा न करेगा, तो भी राजा हर्ष शोक को न प्राप्त हुआ, उसके बाद बड़ी पर्वत कन्दरा देखी और वन के कुंज बड़े कष्ट के स्थान देखे और एक वन में जाकर स्थित हुए, कुछ समय के लिये राजा और कुम्भ एक जैसे हो गये, एक जैसा जप और एक जैसी पूजा करें, इकट्ठे स्नान करना, एक जैसी मूर्तियाँ और एक जैसी पूजा करें। बिना उपकार के अपने आपको उपकृत माने, दोनों एक जैसे शुद्ध हुए, दोनों शरीर के किसी स्थान में मिट्टी लगावें,किसी स्थान पर चन्दन का लेप करें, किसी स्थान पर भस्म लगावें, किसी स्थान पर दिव्य वस्तु धारण करें, किसी समय केले के पत्रों पर शयन करें, किसी समय पुष्पों की शय्या पर शयन करें, किसी समय क्रूर स्थानों पर शयन करते हैं, हे रामजी! ऐसे शुभ अशुभ स्थान पर भी ज्यों के त्यों रहें, हर्ष शोक को न प्राप्त होकर केवल शुद्ध सत्व में स्थित रहें, आत्मा बिना अन्य कुछ नहीं फुरा, एक वन में जाकर स्थित हुए, तब रानी के मन में विचार उत्पन्न

कि यह मेरा भर्ता है, मुझे उचित है कि मैं इसको भोगूं भले कुल की स्त्रियां भर्ताओं का प्रसन्न करती हैं और राजा का शरीर भी भर्ता जैसा हुआ है और स्थान भी शुभ है, जब तक शरीर है तब शरीर के स्वभाव भी साथ हैं और फिर विचार किया कि राजा क्या कहेगा, तब कुंभ ने कहा—हे राजन्! अब हम स्वर्ग को जाते हैं, जो चैत्र शुक्ल प्रतिपाद को ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न की है, इसी दिन वर्ष के वर्ष उत्सव होता है, तब नारदजी भी आयेंगे, इसलिये हम जाते हैं, आज ही फिर आयेंगे, मेरे आने तक आपको ध्यान से रहना होगा, और ध्यान से उतरो तो फूल को देखना। ऐसा कहकर राजा को पुष्प मंजरी दी और राजा ने भी कुंभ को पुष्प मंजरी दी, जैसे नन्दनवन में स्त्री भर्ता के हाथ में दे और भर्ता स्त्री के हाथ में दे, ऐसे दोनों का परस्पर देना लेना हुआ, कुंभ आकाश को उड़ा और पीछे राजा देखता रहा, जैसे मेघ को मोर देखता है, ऐसे राजा देखता रहे, जहां तक राजा की दृष्टि पड़ती थी, वहां तक तो कुंभ का शरीर रखा जब दृष्टि से आकाश में अगोचर हुआ, तब गले में पड़ी पुष्प माला तोड़कर राजा के शरीर पर डाल दी, और चूडाला का शरीर धारण करके आकाश को लांघकर अन्तःपुर में जाकर प्रवेश किया जहां कि स्त्रियों के ठहरने की जगह थी, वहां राजा के स्थान पर बैठकर अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि कार्य यथावत् चालू किये जायें, फिर उड़ी और सूर्य के मार्ग से मेघ मंडल को लांघती हुई जहां राजा का स्थान था वहां आकर देखा कि राजा वियोग से शोकवान् है और कुंभ भी उदास जैसा राजा के आगे जाकर स्थित हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने जीवन्मुक्त व्यवहारवर्णनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ।।१०४।।

पञ्चाधिकशततमः सर्गः १०५
कुम्भस्त्रीत्वलाभवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तब राजा ने कहा—हे भगवन्! तुम्हें शोक किस कारण से हुआ, ऐसा कौनसा कष्ट प्राप्त हुआ, सब दुःखों का नाशक, यदि तुम जैसे ज्ञानी को भी शोक हो तो और की बात ही क्या है? हमको तुम्हें दुःख मिले ऐसा कोई दुःख का कारण प्रतीत नहीं होता, तुम क्यों शोकवान् हो, तुम्हें ऐसा कौनसा अनिष्ट प्राप्त हुआ है, तब कुंभ ने कहा—हे राजन्! मुझे एक दुःख है, कहता हूं जो कुछ मित्र पूछे तो सच कहना चाहिये। हे राजन्! जब सभास्थित थी, तब मैं नारद के पास था, जब सभा उठी तब नारद मुनि भी उठे, और मुझे कहा जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां जाओ और मैं भी जाता हूं, क्योंकि नारदजी एकही स्थान पर नहीं ठहरते, विश्व में भ्रमण करते रहते हैं, कि तुम भी जाओ, तब मैं आकाश से चला, एक स्थान पर सूर्य से मिलाप हुआ, फिर आगे को चला, मेघ के मार्ग से तीखे वेग से चला आया हूं, जैसे नदी पर्वत पर से तीखे वेग के साथ आती है, ऐसे तीखे वेग से मैं चला आ रहा था, तब देखा कि दुर्वासा ऋषि उड़ते चले आ रहे हैं, महामेघ की नाईं श्याम वस्त्र धारण किये हुए हैं, भूषण संयुक्त हैं जैसे बिजली का चमत्कार होता है, ऐसे प्रकाश युक्त शरीर को देखकर मैंने दंडवत् करके कहा—हे मुनीश्वर! आपने यह क्या विचित्र रूप बनाया है, जो कि स्त्री की नाईं भासता है, तब दुर्वासा ने मुझे कहा हे ब्रह्म पौत्र! तुम कैसे वचन कहते हो, मुनियों के प्रति यह वचन कहने उचित नहीं हैं, हम क्षेत्र हैं, जैसा बीज क्षेत्र में वपन किया जाये वैसा उत्पन्न होता हैं, इसलिये तुमने मुझे स्त्री कहा है, तुम भी स्त्री हो जाओगे, रात को तुम्हारे सब अंग स्त्री के होंगे। हे मुनीश्वर! ऐसा कहना उचित नहीं ज्ञानवान् पुरुष नम्र होते हैं, ऐसा वचन आपको कभी नहीं कहना चाहिये था, हे राजन्! ऐसा सुनकर

मैं तुम्हारे पास आया हूं, मुझे लज्जा आती है कि देवताओं में कैसे विचरूगा यही मुझको शोक है, तब राजा ने कहा क्या हुआ यदि दुर्वासाजी ने कह दिया और स्त्री का शरीर हो गया तुम तो शरीर नहीं हो, निर्लेप आत्मा हो, हे मुनिवर! तुम अपनी समता में स्थित रहते हो, और ज्ञानवान् पुरुष को हेयोपदेय किसीका नहीं रहता, अपनी समता में स्थित रहता है, तब कुंभ ने कहा–हे राजन्! तुम सत्य कहते हो, मुझे क्या दुःख है, जो शरीर का प्रारब्ध होता है, उसके साथ हमारा क्या प्रयोजन है, यह ईश्वर की नीति है, जब तक शरीर होता है, तब तक शरीर के स्वभाव भी रहते हैं और शरीर का स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है, जिस स्थान पर ज्ञान की प्राप्ति हो उसी चेष्टा में रहना चाहिये, यह भी मूर्खता है कि इन्द्रियों से तो रुके रहना और मन से विषयों का चिंतन करते रहना। इन्द्रियों और देह की चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं, परन्तु उसके बन्धन में नहीं आते, इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्त होते हैं, इसी प्रकार ईश्वर नीति है, नीति का त्याग किसी से नहीं किया जाता, इसलिये नीति का त्याग क्यों किया जाय, यह नीति है कि जब तक शरीर है, तब शरीर के स्वभाव भी होते हैं जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वह देह और इन्द्रियों से चेष्टा भी करते हैं और बन्धन में नहीं पड़ते, अज्ञानी बंधन में आ जाते हैं, चेष्टा ज्ञानी भी करते हैं अज्ञानी भी करते हैं, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आदिसे लेकर सब चेष्टा करते हैं, परन्तु बद्ध नहीं होते, हे राजन्! ऐसे जो अनिच्छित आकर प्राप्त हो और शास्त्रानुकूल हो, उसके भोग में कुछ दूषण नहीं, राजा ने कहा–हे भगवन्! जो समान सत्ता में स्थित है उस ज्ञानवान् को दूषण कुछ नहीं लगता, अज्ञानी शरीर के दुःख अपने में देखता है इसलिये दुःखी होता है, ज्ञानवान् शरीर के दुःख अपने में नहीं देखता है, हे रामजी! ऐसा कहते कहते सूर्य अस्त हो गया, तब राजा और कुंभ दोनों ने सायंकाल की संध्या की और जप किया, जब रात्रि हुई तब सूर्यमुखी कमलों के मुख मुंद गये, तब कुम्भ ने कहा–हे राजन्! देख कि मेरे शिर के बाल बढ़ते जाते हैं और वस्त्र भी

लम्बे हो गये है, और स्तन भी स्त्री की नाईं हो गये हैं, इत्यादिक वस्त्र भूषण चेष्टा आदिक सब चेष्टाएं स्त्री की सी हो गयीं, जब राजा को इस बात का अति शोक हुआ और वह महासुन्दरी स्त्री लक्ष्मी की नाईं शोभावाली चूडाला हो गयी, उसको देखकर राजा को एक मुहूर्त तक शोक रहा, तदनन्तर सावधान हुआ और कहने लगा, हे मुन! क्या हुआ यदि शरीर स्त्रीका हुआ तो क्या हुआ, तुम तो शरीर नहीं हो, तुम तो आत्मरूप हो, शोक क्यों किया जाये, तुम अपनी समान सत्ता में स्थित हो, तब रात्रि हुई और रानी ने महा सुन्दर रूप धारण किया और पुष्पशय्या बिछाकर उस पर दोनों सो गये, हे रामजी! इस प्रकार रात्रि व्यतीत हुई कि कोई स्फुरण (फुरणा) न हुआ (नफुरा) दोनों समान सत्ता में स्थिर रहे और मुख से कोई बात नहीं की, जाकर सो गये, जब प्रातःकाल हुआ तब फिर कुम्भ का शरीर धारण करके स्नान किया, गायत्री आदि जो कर्म हैं किये, इसी प्रकार रात को स्त्री का और दिन को कुम्भ (पुरुष) का शरीर धारण किये कुछ काल व्यतीत हुआ, वहां से चलकर सुमेरु पर्वत पर गये, इसी प्रकार दिन को कुम्भ का शरीर और रात्रि को स्त्री का शरीर धारण करके कुछ समय बिताया, सुमेरु पर्वत पर से चलकर मंदराचल अस्ताचल आदि सब सुखदायक स्थानों को देखते हुए चले, हे रामजी! एक दृष्टि उनकी स्थिति थी, बड़े से बड़ा दृश्य क्यों ना उपस्थित हो परन्तु वह अपने लक्ष्य पर से विचलित होने वाली जोड़ी नहीं थी, जैसे पवन से सुमेरु विचलित नहीं हो सकता, इसीप्रकार शुभ अशुभ स्थानों को देखकर भी हर्ष शोक को न प्राप्त होकर समता में ही स्थिति रहे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेचूडालोपाख्याने कुम्भस्त्रीत्वलाभवर्णनं नाम पंचाधिकशततमः सर्गः ॥१०५॥

षडधिकशततमः सर्गः १०६

विवाहलीलावर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले-हे रामजी! इस प्रकार विचरते मंदराचल की कंदरा में जाकर स्थित हुए, तब कुम्भरूप चूड़ाला राजा की परीक्षा के लिये कहने लगी, हे राजन्! मैं रात्रि को स्त्री होती हूँ, तब मुझे भोग के लिये भर्ता की इच्छा होती है क्योंकि ईश्वर की नीति ऐसे ही है कि स्त्री को अवश्यमेव पुरुष चाहता है, उत्तम कुल के पुरुष को कन्या का पिता मुन! विवाह कर देता है, अथवा जिसको वह चाहे स्वयं कर लेती है, इसलिये हे राजन्! मुझे तुम्हारे समान अन्य कोई अच्छा नहीं प्रतीत होता, इसलिये तुम मेरे पति हो मैं तुम्हारी स्त्री हूँ,-तुम अपनी भार्या जानकर जो कुछ स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं किया करो। मैं युवती हूँ तुम भी सुंदर हो,ज्ञानवान् अनिच्छित प्राप्त हुए का त्याग नहीं करते यदि तुमको इच्छा भी न हो तो भी ईश्वर की नीति इसी प्रकार है, उसका उल्लंघन करके क्या सिद्ध होता है, जो अपनी समान स्वरूप सत्ता में स्थित है उसको ग्रहण त्याग की इच्छा नहीं, परंतु नीति पालन तो करना चाहिये। राजा ने कहा-हे साधो! जो तुम्हारी इच्छा है वह कीजिये मुझे तो तीनों जगत् आकाशरूप भासते हैं, प्राप्ति में मुझे सुख कुछ नहीं, अप्राप्ति में दुःख नहीं, न मुझे हर्ष है, न मुझे शोक है, जो तुम्हारी इच्छा हो, वही तुम करो, कुम्भ ने कहा-राजन्! आज ही परम मंगल पूर्णमासी का भला दिन है और मैंने लग्न पहिले ही गिनकर और विचारकर निश्चित कर लिया है, कि मंदराचल की कन्दरा में बैठकर विवाह कर लीजिये, अब सामग्री इकट्ठी कीजिये, तब राजा और कुम्भ दोनों उठे और जो शास्त्रोक्त सामग्री है, सब इकट्ठी की और दोनों ने गंगा पर स्नान किया, आवश्यक पूजन करके पुष्प फलादि से लेकर विवाह की यावत् सामग्री कल्पवृक्ष से ली और फलाहार किया, इतने में सूर्यदेव अस्ताचल चले गये, दोनों ने नियमानुसार सन्ध्योपासना की, राजा को

दिव्य वस्त्र भूषण पहिरवाये, सिर पर मुकुट धारण करवाया, उसके बाद कुम्भ के शरीर को छोड़कर "स्त्री का" रूप हो गयी, तब स्त्री ने कहा हे राजन्! अब तुम मुझे पहिरावओ, तब राजा ने सब सुन्दर भूषण तथा वस्त्र पहिराये अर्थात् धारण करवाये और रानी को पार्वती के समान सुन्दर बनाया, तब चूडाला ने कहा–राजन्! मैं अब तेरी स्त्री हूँ, मेरा नाम मदनिका है अब तू मेरा भर्ता है, कामदेव से भी तू अधिक सुन्दर प्रतीत होता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसी प्रकार चूडाला ने भी बहुत कुछ कहा पर राजा का चित्त नहीं पसीजा अर्थात् राजा हर्ष को प्राप्त न हुआ और वैराग्य से शोकवान् भी न हुआ, ज्यों का त्यों रहा, इन बातों के बाद विवाह होना प्रारम्भ हुआ चन्दोवा आदि वस्तु तथा अन्य सामान सब कल्पवृक्ष से लिया गया। स्वर्ण के कलश रक्खे गये, देवताओं का पूजन किया गया, शास्त्र की समग्र विधि पूरी की गयी, इसके अनन्तर दोनों ने संकल्प किये रानी ने राजा को संकल्प यह कहकर (मैंने सम्पूर्ण ज्ञान निष्ठा तुमको दी) दिया, राजा ने भी रानी को 'यह पढ़कर' कि सम्पूर्ण ज्ञान निष्ठा तुमको दी, संकल्प दिया, जब रात एक पहरी रही तब राजा और रानी ने पुष्पों की शय्या बिछाई, उस पर शयन करके चर्चा ही करते रहे और मैथुन आदि कुछ न किया, जब प्रात:काल हुआ तब स्त्री शरीर त्यागकर कुम्भ शरीर धारण किया और स्नान किया, सन्ध्यादिक कर्म किये, हे रामजी! इसी प्रकार एक मास पर्यन्त मंदराचल पर्वत पर रहे, रात्रि को स्त्री का शरीर और दिन को 'कुम्भ' का शरीर धारण करते थे, जब तीसरा दिन होता तो राजा को सुख में सुलाकर राज्य का कामकाज स्वयं देख जाती थी और फिर राजा के पास जाकर शयन किया करती थी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्यानेविवाहलीला वर्णनं नाम षड़धिकशततमः सर्गः ।।१०६।।

सप्ताधिकशततमः सर्गः १०७

मायाशक्रागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब वहां से चले तब अस्ताचल पर भी रहे, उदयाचल सुमेरु, कैलास पर्वत; आदि पर्वतों में जो कन्दराएं तथा विचित्र वन स्थान हैं, वहां कहीं एक दो महीना, कहीं आठ दस महीने कहीं सप्ताह भर कहीं दो चार दिन निवास किया, जब एक वन में आये तब रानी ने विचार किया कि इतने स्थान राजा को दिखाये हैं, इसका मन किसी स्थान में बद्ध नहीं होता, इसलिये अब और परीक्षा लूं, ऐसा विचारकर उसने अपनी माया का प्रसार किया, तब देखा कि देवताओं के राजा इन्द्र तैंतीस करोड़ देवता साथ लिये, किन्नर गन्धर्व और सिद्ध लोग साथ हैं, तथा अप्सराएं भी साथ नृत्य करती हुई आ रही हैं और भी जो इन्द्र की सामग्री है, उससे संयुक्त इन्द्र को आते देखकर राजा उठा और बड़े प्रेम से इन्द्र की पूजा की और कहा–हे त्रिलोकीपते! आज आप का वन में कैसे आगमन हुआ, कहिये। इन्द्र ने कहा–हे राजन्! जैसे पक्षी ऊपर को उड़ता है, उसमें धागा आदि बन्धन हो तो उड़ता हुआ भी नीचे आता है, ऐसे हम ऊपर के रहने वाले हैं, तुम्हारे तप पुण्य आदि अनेक शुभ गुणों से भरा हुआ जो धर्मरूप धागा है, उससे खिंचे नीचे चले आये हैं, यही कारण है कि इस वन में हमारा आना हुआ है। इसलिये हे राजन्! अब तुम स्वर्ग में चलो और वहां के दिव्य भोग भोगो, ऐरावत जैसे हस्ती और उच्चैःश्रवा जैसे घोड़े की सवारी करो और सिद्धियाँ हैं, एक तो यह सिद्धि है कि जिस पर पाँव रक्खो जहाँ चाहो, वहाँ पहुँचा दे, एक खड्ग सिद्धि है, खड्ग केवल हाथ में जहाँ चाहे चला जावे, एक गुटिका है उसको मुख में रक्खे हुए जहां चाहे वहाँ पहुँच जावे, इनसे अन्य अष्टसिद्धियाँ भी मौजूद हैं, उनसे जो तुम्हारी इच्छा हो वही लो परन्तु चलो, स्वर्ग में चलो, राजन्! तुम तत्ववेत्ता हो। तुम्हारे लिये कुछ भी ग्रहण त्याग करना बाकी नहीं रहा, परन्तु जो अनिच्छित आकर प्राप्त हो, उसका

त्याग करना तो उचित नहीं, इसलिये स्वर्ग में चलो, राजा ने कहा–हे देवराज! जाना वहां होता है जहां आगे नहीं होता, जहां आगे आना जाना हो वहां कैसे जाइये, हे देवराज! हमें सब जगह स्वर्ग ही दृष्टि आता है, यदि वहां हो और यहां न हो तो वहाँ जायें, यदि यहां बैठे भी हमें स्वर्ग ही प्रतीत होता है तो हम कहाँ जायें, हमको तीनों लोक स्वर्ग दृष्टि आते हैं और हम सदा उस स्वर्ग रूप आत्मा में ही स्थित हैं, हमारे लिये सदा स्वर्ग प्रतीत होता है, हम सदा तृप्त हैं, आनन्द रूप हैं, अतः हम कहाँ जायँ, इन्द्र ने कहा–हे राजन्! जो विदित वेद्य हैं, पूर्ण बोध हैं वे भी यथा प्राप्त भोग को सेवन करते हैं, तुम क्यों सेवन नहीं करते, ऐसा जब इन्द्र ने कहा–तब राजा मौन ही रहा, कुछ ठहरकर इन्द्र ने कहा, यदि तुम नहीं आते तो हम जाते हैं, तुम्हारा और कुम्भ का कल्याण हो। हे रामजी! ऐसा कहकर उठ खड़ा हुआ और चला, जब तक दृष्टि आता था तब तक देवता भी साथ दृष्टि आते थे, जब दूर चले गये तब अन्तर्धान हो गये, जैसे समुद्र से तरंग उठकर लीन हो जाते हैं और मालूम नहीं होता कि कहां गये, ऐसे ही इन्द्र अन्तर्धान हो गया, वह इन्द्र कुंभरूप चूडाला के संकल्प में उड़ा था, जब संकल्प लीन हुआ तब अन्तर्धान होगा, तब चूडाला ने देखा कि ऐसे ऐश्वर्य और सिद्धि अप्सरा के प्राप्त हुए भी राजा का चित्त समता में रहा और किसी पदार्थ में बद्ध नहीं हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूडालोपाख्याने मायाशक्रागमनवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमः सर्गः ।।१०७।।

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८

मायापंजरवर्णनम् ।

वसिष्ठ बोले–हे रामजी! जब चूड़ाला ने इन्द्र का छल करके एक बार परीक्षा लेकर देखा कि राजा के मोहित करने के लिये इतना बड़ा चरित्र करना भी निष्फल हुआ, राजा बन्धन में नहीं आ सका ज्यों का

त्यों रहा अब और चरित्र राजा को क्रोध में लाने के लिये किया जाता है, सायंकाल का समय था, राजा गंगा के किनारे संध्या करने लगा और कुंभ बन में रहा, तब वन में संकल्प का मंदिर रचा गया। जैसे देवस्थान की रचना होती है, मंदिर के पास एक पुष्प वाटिका लगा दी, कल्प वृक्षादि सब वृक्ष लगाये गये, ऐसे वन के उस स्थान में एक संकल्प की शय्या रची गयी और एक संकल्प का महासुन्दर पुरुष रचा गया, रानी उसके साथ सोयी हुई है, दोनों के अंग प्रत्यंग आपस में मिले हुए हैं, गलें में पुष्प मालाएं हैं, काम चेष्टा हो रही हैं, अब राजा संध्या से उठकर आया तो क्या देखे कि मदनिका किसी परपुरुष के साथ सोयी हुई है, राजा देखकर कहने लगा कि यहां से चले जाना ठीक नहीं तो इन दोनों के सुख में भंग पड़ेगा, यह सोये रहें, इनके आनन्द में विघ्न नहीं डालूँगा, हे रामजी! इस प्रकार स्त्री को देखकर भी राजा शोकवान् अथवा क्रोधवान् न हुआ, ज्यों का त्यों शान्तपद में स्थित रहा, क्षोभ को नहीं प्राप्त हुआ और जब राजा मंदिर से बाहिर निकला, वहां एक स्वर्ण की शिला पड़ी थी, उस पर बैठ गया और समाधि में स्थित हुआ परन्तु लोचन उन्मीलित थे, दो घड़ी समय के बाद ही मदनिका कामी पुरुष को त्यागकर बाहिर आई और राजा के निकट आकर अंगों को नग्न किया फिर वस्त्रों से ढांपकर जैसे अन्य स्त्रियाँ काम से व्याकुल होती हैं, ऐसे चूड़ाला को देख राजा ने कहा–हे मदनिका! तू ऐसे सुख को त्यागकर क्यों आई है, तू तो बड़े आनन्द में मग्न थी, अब फिर वहीं चली जाओ, मेरे लिये तो हर्ष शोक कुछ नहीं, ज्यों का त्यों है, परन्तु मेरी और कामी पुरुष की प्रीति परस्पर देखी है, परस्पर प्रीति जगत् में नहीं होती और तुम्हारी देखी है, इसलिये तुम उसको सुख दो वह तुम्हें सुख दे, अब जाओ, तब मदनिका लज्जा से सिर नीचा किये बोली–हे भगवन्! क्षमा करो मुझ पर क्रोध न करो, मुझसे बड़ी अवज्ञा हुई है, परन्तु मैंने जान बूझकर ऐसा नहीं किया, जैसे वृत्तान्त है आद्योपान्त सुनिये, जब आप संध्या करने लगे तब मैं वन में आयी थी, वहां एक पुरुष मिला, मैं निर्बल

थी वह बलवान् था, उसने मुझे पकड़ लिया, मैंने पतिव्रता स्त्री की मर्यादा के अनुसार उस पर क्रोध किया, निरादर किया, पुकार भी की, जो कुछ पतिव्रताएँ करती हैं किया परन्तु उस बलवान् पुरुष से मेरा वश न चला आप दूर थे, उसने मुझे पकड़कर गोद में बैठा लिया, उसकी जो भावना थी, तदनुसार उसने किया, हे भगवन्! मुझ में दूषण नहीं इसलिये आप मुझे क्षमा करें और क्रोध न करें, राजा ने कहा—हे मदनिका! मुझे क्रोध कभी नहीं आता, सर्वदा आत्मदर्शन होता है, क्रोध किस पर करूँ, मुझे न कुछ ग्रहण करना है, न त्याग करना है, तो भी यह कर्म साधुओं से निन्दित हैं, इसलिये अब तेरा त्याग किया है, सुख से विचरूंगा और जो हमारा गुरु कुंभ है वह और हमारे पास ही है वह और हम सदा नीरागरूप हैं और तू दुर्वासा के शाप से उत्पन्न हुई है, तेरे साथ हमारा क्या प्रयोजन है, तू अब उसी के पास जा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्द्धे चूड़ालोपाख्याने मायापञ्जरवर्णनं नामष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥१०८॥

नवोत्तरशततमः सर्गः १०९

चूड़ालाप्राकटचवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तब उस मदनिका नाम वाली चूड़ाला ने विचार किया कि बड़ा आश्चर्य हुआ है कि राजा आत्मपद को प्राप्त हुआ ऐसे ऐश्वर्य और सिद्धियाँ और क्रूर स्थान दिखाने पर भी राजा शुभ अशुभ में ज्यों का त्यों रहा, इसलिये परम कल्याण हुआ कि राजा को शान्ति प्राप्ति हुई और रागद्वेष से रहित हुआ, अब पहिला रूप चूड़ाला का है वह दिखाऊं और संपूर्ण वृत्तान्त राजा को अवगत करा दूँ, ऐसा विचारकर मदनिका शरीर से चूड़ाला रूप होकर प्रकट हुई तब राजा भूषणों और वस्त्रों सहित चूड़ाला के रूप में प्रकट हुई देखकर महान्

आश्चर्य को प्राप्त हुआ और उसने ध्यान स्थित होकर देखा तो बोला–यह चूड़ाला कहां से आई है, पूछा–हे देवि! तू कहां से आई है? तुझे देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ हूँ कि तू मेरी स्त्री चूड़ाला है और तू यहां किस लिये आयी है, कब से आयी है, चूड़ाला बोली–भगवान्! मैं तुम्हारी स्त्री चूड़ाला हूँ और तुम मेरे स्वामी हो, हे राजन्! कुम्भ से लेकर चूड़ाला शरीर तक आपको जगाने के लिये सब चरित्र मेरे किये हुए हैं, ध्यान में स्थित होकर देखो कि यह चरित्र किसने किये हैं, मैंने इस समय पूर्व का शरीर चूड़ाला धारण किया हुआ है, हे रामजी! जब ऐसे चूड़ाला ने कहा तब राजा ध्यान में स्थित होकर देखने लगा, एक मुहूर्त भर में सब वृत्तान्त जान लिया। उसके बाद आश्चर्ययुक्त होकर आंखें खोलीं और रानी को देखकर परम प्रसन्नता के साथ गले से लगा लिया और बातें करने लगा, उस समय राजा रानी को जो परम सुख मिला उसका वर्णन हजार वर्ष पर्यन्त शेष भगवान् भी करते रहें तो पूरा नहीं कर सकते, ऐसे सत्ता समान में स्थित हुए और शान्ति को प्राप्त हुए जिसमें कदाचित् किंचित् भी क्षोभ नहीं होता। राजा रानी परस्पर ऐसे मिले कि शरीर में उष्णता आ गयी, राजा का शरीर रोमांचित हो गया, नेत्रों से जल चलने लगा, ऐसी गद्गद अवस्था में राजा ने कहा–हे देवि! तुमने मुझ पर परम अनुग्रह किया है, मैं तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हूँ, क्या गुण वर्णन करूं? अनन्त गुण और एक निर्मल वाक्, जितने संसार के पदार्थ हैं, सब मिथ्या हैं और तुमने तो मुझे उस परम पावन त्रिविध दुःख नाशवान पद का प्रदान किया है, इसलिये मैं परम अनुगृहीत हूँ, मेरे लिये तुमने अनेक कष्ट सहन किये हैं और बड़े यत्न किये हैं, आने जाने और बार बार शरीर के स्वांग धारने से, उड़ने से कितना भारी कष्ट तुमने प्राप्त किया और बड़े यत्न से मुझे संसार सागर से पार किया है, तुम्हारा यह बहुत बड़ा उपकार है, तुम धन्य हो, जितनी भी अन्य बड़ी बड़ी देवियाँ हैं उन सबमें तुम अधिक प्रभावशालिनी हो, वह कौन सी देवियाँ हैं, जिन सबसे तुम अधिक हो सुनो–अरुन्धती, ब्रह्माणी, इन्द्राणी,

पार्वती और सरस्वती इत्यादिक देवियों की महिमा को आपने न्यून कर दिया है, हे देवि! जो श्रेष्ठ कुल की कन्या और पतिव्रता है वह जिस पुरुष को प्राप्त होती है, उसका सर्व कार्य सिद्ध होता है, वे कौन कौन श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं, सुनिये–बुद्धि, शान्ति, दया, शक्ति, कोमलता, मैत्री, आदिक जो शुभ लक्षण हैं, वह पतिव्रता स्त्री के रूप में प्राप्त होती है, हे देवि! मैं तेरे प्रसाद से शान्त पद को प्राप्त हुआ हूँ, अब मुझे किसी प्रकार का क्षोभ नहीं, ऐसा पद शास्त्रों से भी नहीं प्राप्त होता, तप करने से भी मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता, जैसा कि पतिव्रता स्त्री से प्राप्त होता है, चूड़ाला बोली–हे राजन्! आप मेरी स्तुति क्यों करते हैं, मैंने तो अपना कर्तव्य पालन किया है, हे राजन्! जब तुम राज्य का त्याग करके वन में आये तब मोह (अज्ञान) को अपने साथ ही ले आये, उसके कारण नीच स्थान में पड़े जैसे कोई, गंगाजल को त्यागकर कीचड़वाले पानी को अंगीकार करे, ऐसे तुमने आत्मज्ञान के अक्रिय पद को त्यागकर तप को अंगीकार किया, हे राजन्! मैंने देखा है कि तुम कीचड़ में जा पड़े हो, इसलिये मैंने तुमको निकलवाने के लिये यत्न किये, हे राजन्! मैंने अपना काम किया है, राजा ने कहा–हे देवि! मेरा यही आर्शीवाद है कि जो कोई पविव्रता स्त्री हो, ऐसा ही कार्य करे जैसा तुमने क्रिया है, जो काम पतिव्रता स्त्री से होता है अन्य स्त्रियों से नहीं हो सकता, हे देवि! जैसी अरुंधती आदि पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उनमें तुम प्रथम गिनी जाओगी और मैं जानता हूँ कि ब्रह्माजी ने क्रोध के साथ इसलिये तुम्हें उत्पन्न किया है कि अरुन्धती आदिक देवियों ने कहीं गर्व किया होगा, उनका गर्व मिटाने के लिये तुमको उनसे अधिक उत्पन्न किया है, इसलिये हे देवि! तू धन्य है, तुमने मुझ पर बड़ा उपकार किया है, हे देवि! तू पुनः मेरे अंगों से मिलो, तुमने मुझ पर जो उपकार किया है, अतीव महान् है, हे रामजी! ऐसा कहकर राजा ने रानी को फिर गले से लगा लिया, जैसे न्योला और न्योली आपस में मिलते लोट पोट होते हैं, इस प्रकार राजा रानी प्रसन्नता से मिले, चूड़ाला बोली–मुझे यह कहो कि यदि ज्ञानरूप

आत्मा के एक अंश में जगत् लीन हो जाता है तो तुम अपने को अब क्या जानते हो और अब तुम्हारी स्थिति कहां है और क्या राज्य कुछ दिखायी देता है या नहीं देता, अब तुम्हारी क्या इच्छा है? शिखिध्वज ने कहा—हे देवि! जो स्वरूप तुमने ज्ञान से निश्चय किया है, उसको मैं अपना आप जानता हूँ और शान्तरूप हूँ, हे देवि! जिस पद की अपेक्षा करके ब्रह्मा विष्णु रुद्र की मूर्तियाँ भी शोक संयुक्त भासती हैं, उस पद को मैं प्राप्त हुआ हूँ, जहां उत्थान कोई नहीं और निष्किंचित है जिसमें किंचित् मात्र भी जगत् नहीं और मैं जो था वही हुआ हूँ, इससे इतर क्या कहूँ? हे देवि! तुमने मुझे संसार समुद्र से पार किया है इसलिये तुम मेरी गुरु हो, ऐसा कहकर राजा चूड़ाला के चरणों में गिर पड़ा और बोला कि अब अज्ञान मुझे कभी स्पर्श न करेगा, जैसे तांबा पारस के संग से सोना बनकर नहीं बदलता, इसी प्रकार ज्ञानवान् होकर पुनः अज्ञानी नहीं हो सकता, अर्थात् मोहरूप कीचड़ से निकलकर फिर उसमें न गिरूँगा और अब इस जगत् के सुख दुःख से न तुष्ट होता हूँ न रुष्ट होता हूँ, ज्यों का त्यों स्थित हूँ। राग द्वेष को उठानेवाला जो चित्त है वह मेरा नष्ट हो चुका है, अब मैं प्रकाशरूप अपने आप में स्थित हूँ, जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिंब पड़ता है और जल नष्ट हुए प्रतिबिंब भी सूर्य रूप हो जाता है, ऐसे मेरा चित्त भी आत्मरूप हुआ है, अब मैं निर्वाण पद को प्राप्त हुआ हूँ, सब से अतीत हुआ हूँ और सब में स्थित हूँ, जैसे आकाश सब पदार्थों में स्थित है और सब पदार्थों से अतीत है, ऐसे मैं भी हूँ, अहं, त्वं आदिक शब्द मेरे नष्ट हुए हैं और शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ, अब मेरे विषय में ऐसा वैसा शब्द कोई नहीं, मैं अद्वैत हूँ, चिन्मात्र हूँ, न सूक्ष्म हूँ, न स्थूल हूँ, चूड़ाला बोली—हे राजन्! जो तू ऐसे स्थित हुआ है तो तू अब क्या करेगा, अब तुम्हारी इच्छा क्या है, राजा बोला हे देवि! न मुझे अंगीकार करने की इच्छा है न त्याग करने की, इच्छा यही है कि जो कुछ तुम कहोगी वही करूंगा। तुम्हारा कहना अंगीकार करूंगा, जैसे मणि प्रतिबिंब को ग्रहण करती है, ऐसे मैं तेरे वचनों को ग्रहण करूंगा, चूड़ाला

बोली–हे प्राणपति! हृदय के प्रियतम राजा! अब तू विष्णु हुआ है और बहुत अच्छा काम हुआ जो कि तुम्हारी इच्छा का नाश हुआ है, हे राजन्! अब तू और मैं मोहजाल से निकलकर प्रकृत आचार में विचरें, अखेद जीवन्मुक्त हुए अपने प्रकृत आचार को हम क्यों त्यागें, हे राजन्! जो अपने आचार को त्यागेंगे तो और किस को ग्रहण करेंगे, इसलिये हम अपने आचार में विचरें और भोग मोक्ष दोनों भोगा करें, हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत हुआ और राजा ने सायंकाल की सन्ध्या की, तदनन्तर शय्या का प्रबन्ध करके दोनों ने शयन किया और रात्रि को परस्पर चर्चा ही करते रहे, एक क्षण की नाईं रात्रि व्यतीत हुई।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चूड़ालोपाख्याने
चूड़ालाप्राकटचेवर्णनं नाम नवोत्तरशततमः सर्गः ॥१०९॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ११०

चूड़ालाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब से रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य की किरणें फैल गयीं और सूर्यमुखी कमल खिल आये, तब राजा ने स्नान आरम्भ किया, चूडाला ने मन से संकल्प द्वारा रत्नों की एक मटकी की रचना की और उसमें गंगा आदि नदियों का जल डाला और उसको हाथों में लेकर राजा को स्नान कराकर शुद्ध किया और सन्ध्यादिक सर्व कर्म किये तब चूड़ाला ने कहा–हे राजन्! मोह का नाश करके आनन्द से भोग भोगते हुए सुख से राज्य करो, चूड़ाला ने कहा–राजन्! इच्छा थी, तो स्वर्ग में भी हमारा राज्य है और सिद्धों में भी हमारा राज्य है, इसलिये स्वर्ग में ही विचरें, चूड़ाला बोली–हे राजन्! हमको न सुख भोगने की इच्छा है न त्यागने की इच्छा है, हम ज्यों के त्यों हैं, हे राजन्! इच्छा अनिच्छा तब होती है जब आगे कुछ पदार्थ भासता है,

हमको तो केवल आकाश आत्मा दृष्टि आता है, स्वर्ग कहां और नरक कहां, हम सर्वदा एकरस स्थित हैं, हे राजन्! यद्यपि हमको कुछ नहीं तो भी जब तक शरीर का प्रारब्ध है, तब तक शरीर रहता है तो चेष्टा भी होनी चाहिये, अन्य चेष्टा करनी हो तो अपने प्राकृतिक आचार को क्यों करें, जो रागद्वेष से रहित होकर अपना राज्य भोगें, इसलिये अब उठो, अष्ट वसुओं के तेज को धारण करके राज्य करने को सावधान हो जाओ, हे रामजी! जब चूड़ाला ने ऐसा कहा तब राजा ने कहा, ऐसा ही हो और आठों वसुओं के तेज से युक्त हुआ, जब ऐसा तेज राजा को प्राप्त हुआ तब कहने लगा हे देवि! तू मेरी पटरानी है और मैं तेरा भर्ता हूँ तो भी एक तू है एक मैं हूँ और राज्य तब होता है जब सेना भी हो, इसलिये तुम सेना रचो तब चूड़ाला ने सम्पूर्ण सेना रची, हाथी, घोड़े, रथ, नौवत, नक्कारे, निशान आदि जो राज्य की सामग्री होती है, रची गयी और वह सारी प्रत्यक्ष आकर सामने टिक गयी, नौवत, नक्कारे, तुरियां, शहनाई आदि बाजे बजने लगे, जो कुछ राज काज का सामान होता है, उसकी प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्थान में टिक गयी, राजा के सिर पर छत्र झूमने लगा और श्रृँगारित हाथी घोड़े आदि तैयार हैं, तब राजा और रानी हस्ती पर आरूढ़ होकर चले। मन्दराचल पर्वत के ऊपर आगे पीछे सब सेना इकट्ठी हुई और वहां राजा ने जिस जिस स्थान पर तप किया हुआ था, वह वह स्थान रानी को दिखाता जाता था कि इस स्थान पर मैं इतनी देर रहा, इतनी देर यहां रहा वह सारे स्थान दिखाये। तब मंत्री नगरवासी आदि सब लोग राजा के स्वागत के लिये आगे आकर मिले और बड़े आदर के साथ पूजन किया। आठ दिन पर्यन्त राजा को मिलने के लिये लोकपाल मंडलेश्वर आते रहे, उसके अनन्तर राजा सिंहासन पर बैठा और राज्य करने लगा, एक सम दृष्टि को लिये राजा और चूड़ाला ने दस सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य किया और सत्ता समान में स्थित रहे, किसी पदार्थ में रागवान् न हुए और द्वेष भी न किया, ज्यों के त्यों शान्तपद में स्थित रहे, जितनी राजा की चेष्टाएँ हैं, परन्तु अन्तःकरण

से किसी में बद्ध नहीं होते, केवल आत्मपद में अचल रहे, तदनन्तर राजा और चूड़ाला विदेह मुक्ति को प्राप्त हुए, जैसे आपको जानते थे, उसी केवल परमाकाश अक्षोभ्यपद में जाकर स्थित हुए, जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण होता है, ऐसे प्रारब्ध वेग के क्षय हुए निर्वाण पद में प्राप्त हुए, हे रामजी! जैसे शिखिध्वज और चूड़ाला जीवन्मुक्त होकर भोग भोगते विचरे हैं ऐसे तुम भी राग द्वेष से रहित होकर विचरो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे शिखिध्वज चूड़ालोपाख्यान समाप्तिवर्णनं नाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥११०॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः १११

कचप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शिखिध्वज का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुनाया, ऐसी दृष्टि का आश्रय करो जो पाप का नाश करने वाली है और जिसका आश्रय लेकर शिखिध्वज ने उस पद को प्राप्त किया है और जीवन्मुक्त होकर राज्य का व्यवहार चलाया है, ऐसे तुम भी तत्पद का आश्रय करो और तत्परायण हो जाओ और भोग मोक्ष दोनों वस्तुओं को प्राप्त करो, बृहस्पति का पुत्र कच बोधवान् हुआ है, वह प्रकार पूर्ण रूप से परन्तु संक्षेप से मुझको कहो, वसिष्ठजी ने कहा—हे रामजी! कच यद्यपि इतना छोटा बालक था कि जिसको कुछ मालूम न हो, परन्तु कच ऐसा विशिष्ट बालक था कि जिसने बचपन के अज्ञान को त्यागकर पद पदार्थ का पूरा ज्ञान प्राप्त किया और उसने अपने पिता बृहस्पति से प्रश्न किया है, हे पितः! मैं इस संसार पंजर से कैसे निकलूँ? जितना संसार है सब अनात्मदेहादिकों में मिथ्या अभिमान रूप जीवन से बँधा हुआ है, जो अहं त्वं को मानता हूँ तो इस संसार से मुक्त कैसे हो सकता हूँ? बृहस्पतिजी ने कहा—हे तात! जब सर्वत्याग करता है तब इस

अनर्थरूप संसार से मुक्त होता है, सर्व त्याग किये बिना मुक्ति नहीं होती, इसलिये तुम सर्वत्याग करो जिससे मुक्ति हो, वसिष्ठजी ने कहा—हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने कहा तब कच ऐसे पावन वचनों को सुनकर ऐश्वर्य का त्यागकर वन को चला गया, वन में जाकर एक कन्दरा में आसन लगाकर तप करने लगा, पुत्र के चले जाने से हे रामजी! बृहस्पति को कुछ खेद न हुआ क्योंकि ज्ञानवान् पुरुष को मोहजनित हर्ष शोक कभी नहीं प्राप्त होता, वे संयोग वियोग में सम रहते हैं, आठ वर्ष पर्यन्त जब तप किया तब बृहस्पति जी आये और उन्होंने देखा कि कच एक कन्दरा में विराजमान है, पितृदेव भी उसके पास आकर बैठ गये तब कच ने गुरु के समान पिता का पूजन किया और बृहस्पति ने कच को कंठ से लगाया, तब दुःख से गद्‌गद वाणी द्वारा कच ने प्रश्न किया, हे पिता! आठ वर्ष बीते हैं, मैंने सर्व त्याग किया, फिर भी शान्ति को नहीं प्राप्त हुआ, जिससे मुझे शान्ति मिले ऐसा उपाय कहिये, तब बृहस्पतिजी ने कहा—बेटा! सर्व त्यागकर जिससे शान्ति हो, ऐसा कहकर बृहस्पतिजी उठकर आकाश को चले गये, हे रामजी! जब इस प्रकार कहकर बृहस्पतिजी चले गये तब कच ने आसन मृगछाला और वन को भी छोड़ा और आगे चला और एक कंदरा में फिर समाधि लगाई। तीन वर्ष बीते फिर बृहस्पतिजी आये और देखा कि कच समाधिस्थ है, कच ने भली प्रकार गुरु की नाईं पिता का पूजन किया तब बृहस्पति ने कच को कंठ से लगा लिया, तब कच ने कहा हे पिता! अब तक मुझे शान्ति नहीं मिली, मैंने सर्व त्याग भी किया, अपने पास कुछ न रक्खा, इसलिये जिससे मेरा कल्याण हो वही कहो, तब बृहस्पति ने कहा—पुत्र! अब भी सर्व त्याग नहीं हुआ, सर्वपद चित्त का नाम है, जब चित्त का त्याग करेगा तब सर्व त्याग होगा, इसलिये चित्त का त्याग करो, वसिष्ठजी ने कहा—हे रामजी! ऐसा कहकर बृहस्पति आकाश को चला गया, तब कच विचारने लगा कि पिता ने सर्वपद चित्त को कहा है, वह चित्त क्या है? प्रथम वन के पदार्थों को देखकर विचारने लगा कि यह

चित्त है, तब देखा कि यह भिन्न भिन्न है, इसलिये यह चित्त नहीं और नेत्र भी चित्त नहीं, श्रवण भी चित्त नहीं, इसी प्रकार सब इन्द्रिय चित्त नहीं, जो एक में दूसरे का अभाव है, इसलिये चित्त क्या है, जिसको जानकर त्याग करूं, पुनः विचार किया कि पिता के पास स्वर्ग में जाऊं, हे रामजी! ऐसे विचार कर उठ खड़ा हुआ, दिगम्बर आकार आकाश को चला जब पिता के पास पहुँचा तब पिता का पूजन किया और कहा–हे तैंतीस कोटि देवताओं के गुरु! चित्त का रूप क्या है उसका रूप कहो मैं उसका त्याग करूं, बृहस्पति महाराज बोले–हे पुत्र! चित्त अहंकार का नाम है, वह अज्ञान से उत्पन्न हुआ है और आत्मज्ञान से इसका नाश होता है, जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प प्रतीत होता है और रस्सी के ज्ञान से सर्पभ्रम मिट जाता है, इसलिये अहंभाव त्यागकर और स्वरूप में स्थित हो, कच बोला–हे पिता! अहंभाव का त्याग कैसे करूं? अहं तो मैं हूँ, फिर अपना करके स्थित कैसे हो सकूं? इसका त्याग करना महा कठिन है, बृहस्पतिजी ने कहा–हे तात! अहंकार का त्याग करना तो महा सुगम है, फल के मिलने में भी कुछ यत्न है, आंखों के खोलने बंद करने में भी कुछ यत्न है परन्तु अहंकार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं, हे पुत्र! अहंकार कुछ वस्तु नहीं, भ्रम से उठा है जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाई में बेताल की कल्पना करता है और रस्सी में जैसे सर्प की भ्रान्ति होती है, मरुस्थल में जल प्रतीत होता, आकाश में भ्रम से दो चन्द्रमा भासते हैं, ऐसे परिच्छिन्न अहंकार प्रमाद से उत्पन्न होता है और आत्मशुद्ध है, आकाश से भी निर्मल है और देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है, सत्ता समान चिन्मात्र है, उसमें स्थित हो, जो तेरा स्वरूप है और तू आत्मा है, तेरे अन्दर अहंकार कदाचित् नहीं, हे साधो! आत्मा सदा सर्वप्रकार सब में स्थित है, उसमें अहंभाव ऐसे है जैसे धूड समुद्र में कदाचित् नहीं, ऐसे उसमें अहंकार कदाचित् नहीं, आत्मा कैसा है, जिसमें न एक कहना है न दो कहना है, केवल अपने आप में स्थित है और जो आकार दृष्टि आते हैं वे चित्त के स्फुरण मात्र से हैं, चित्त के

नष्ट हुए आत्मा ही शेष रहता है, इसलिये अपने स्वरूप स्थित हो, जिससे तुम्हारा दुःख दूर हो और जो कुछ यह दृष्टि आता है, उसमें भी आत्मा है, जैसे पत्र फूल फल सब बीज से उत्पन्न होते हैं ऐसे सब आत्मा का चमत्कार है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे कचप्रबोधवर्णनं नामैकोदशोत्तर शततमः सर्गः ॥१११॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ११२

मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने उत्तम उपदेश किया तब कच श्रवण करके स्वरूप स्थित हुआ, अर्थात् जीवन्मुक्त होकर विचरने लगा, हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकर विचरा है, उसी प्रकार तू भी निरहंकार निराश हुआ विचर, केवल अद्वैत पद में स्थित होकर सुखी हो सकेगा, क्योंकि अद्वैत पद ही शुद्ध है निर्मल है, जिसमें न एक कहना है न दो कहना है, उसी पद में स्थिति प्राप्त कर, तुझ में कोई दुःख नहीं है, तू आत्मा है, तुझमें अहंकार नहीं है, तू ग्रहण त्याग किसका करे, जो पदार्थ हो ही नहीं, उसका ग्रहण त्याग क्या किया जाय? हे रामजी! जैसे आकाश के वन में फूल हैं ही नहीं तो उनका ग्रहण क्या और त्याग क्या किया जाय, ऐसे ही आत्मा में अहंकार नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे अहंकार का ग्रहण त्याग नहीं करते और मूर्खों को एक आत्मा में नाना प्रकार के आकार भासते हैं, इसलिये किसी का शोक करना, किसी पर प्रसन्न होना, उनकी ही काम है, तू दुःख का नाश कैसे चाहता है, दुःख तेरे अन्दर है ही नहीं, तू उनका नाश करने में कैसे समर्थ है? जितने आकार भासते हैं सब मिथ्या हैं, उनमें जो अधिष्ठान है वह सत् है और मूर्ख मिथ्या करके सत् की रक्षा करते हैं कि

हमारे दुःख नाश हों, रामजी ने कहा—हे भगवन्! आपकी कृपा से मैं तृप्त हुआ हूँ, तुम्हारे वचन रूप अमृत से सन्तुष्ट हुआ हूँ, जैसे चातक एक जल बिन्दु मांगता है, मेघ उसके लिये वर्षा करते हैं जिससे वह तृप्त हो जाता है ऐसे ही मैंने आपके दर्शनामृत के बिन्दु मात्र की इच्छा की थी, परन्तु आपने ज्ञानामृत् की अमोघ वर्षा से मेरे सम्पूर्ण सन्ताप दूर करके मेरे हृदय को आनन्दामृत से सरावोर कर दिया है, अब मैं परम पद को प्राप्त हुआ हूँ, मेरे तीनों ताप मिट गये हैं, मेरे अन्दर कोई स्फुरण (फुरना) शेष नहीं रहा, आपके वचनामृत के पान से मन ऊबता नहीं, जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणों को देख देख कर तृप्त नहीं होता, इसी प्रकार आपके वचनामृत पान से मेरा चित्त तृप्त नहीं होता, इसलिये एक प्रश्न करता हूँ कृपा करके उसका उत्तर दीजिये, हे भगवन्! मिथ्या क्या है और सत् क्या है, जिसकी रक्षा करते हैं, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस पर एक आख्यान है उसे कहता हूँ, जिसके सुनने से हँसी आ जाय, आकाश में एक शून्य वन है, उसमें एक मूर्ख बालक है, जो आप मिथ्या है और सत्य के रखने की इच्छा करता है, कि मैं इसकी रक्षा करूंगा, अधिष्ठान जो सत्य है उसको नहीं जानता और मूर्खता करके दुःख पाता है क्या जानता है सुनिये! यह आकाश है, मैं भी आकाश हूँ, मेरा आकाश है, मैं आकाश की रक्षा करूंगा, ऐसे विचार कर एक गृह बनाया, गृह में जो आकाश है उसकी रक्षा करेगा कि इसका नाश न हो इस निमित्त गृह बनाया, हे रामजी! ऐसा विचार करके गृह की बनावट बहुत की गयी, किसी स्थान से टूटने पर उसे फिर बनाता, जब कितना समय इसी प्रकार व्यतीत हुआ तब समय पाकर घर गिर पड़ा, तब रुदन करने लगा हाय हाय! मेरा आकाश नष्ट हो गया, जैसे एक ऋतु बीते, दूसरा आये, ऐसे ही समय पाकर गृह फिर गिर पड़ा, उसके बाद एक कुआँ बनवाया और कहने लगा कि यह आकाश न जायेगा क्योंकि इसकी भली भांति रक्षा करूँगा, हे रामजी! इस प्रकार कुएँ को बनवाकर सुख माना, जब कुछ समय बीता तब जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है, ऐसे

कुंआ भी गिर पड़ा तब बड़े शोक को प्राप्त हुआ कि मेरा आकाश गिर पड़ा, नष्ट हो गया, मैं क्या करूंगा? ऐसे शोक में पड़े कुछ समय बीता तब एक कुटी बनवायी जैसे अनाज रखने के लिये बनवाते हैं, ऐसे बनाकर कहने लगा कि अब मेरा आकाश कहां जावेगा, मैं अब इसकी भली भांति रक्षा करूंगा, ऐसे कुटी बनवाकर बहुत सुख माना, कुछ समय बीतने पर वह कुटी भी टूट पड़ी। उत्पन्न हुई वस्तु का नाश अवश्य होता है फिर रोने लगा कि मेरा आकाश नष्ट हो गया, जब शोक में कुछ काल चला गया तब एक घट बनवाया और घटाकाश की रक्षा करने लगा समय आने पर घट भी टूट गया, पुनः एक कुंड बनवाया और कुंडाकाश की रक्षा करने लगा, कुछ समय के बाद कुंड भी नष्ट हो गया, बहुत शोकवान् हुआ तब एक हवेली बनवायी और कहने लगा अब मेरा आकाश कहां जायेगा, मैं इसकी ठीक ठीक रक्षा करूंगा, बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु कालबली ने उस हवेली को भी समाप्त कर दिया, हवेली गिर पड़ी बड़ा दुःखी हुआ, हाय हाय! मेरा आकाश नष्ट हो गया मेरे लिये बहुत कष्ट आया है, हे रामजी! इस प्रकार आत्मज्ञान में चित्त दिये बिना और आकाश के जाने बिना मूर्ख बालक दुःख पाता रहा जो आपको भी यथार्थ जानता और आकाश को भी ज्यों का त्यों पहिचानता तो यह कष्ट क्यों पाता?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकारणं नाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११२॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ११३

मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! मिथ्या पुरुष कौन था ओर जिसकी रक्षा करता था वह आकाश क्या था और जो गृह कूप आदि बनवाता था वे क्या थे, यह प्रकट रूप से कहो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मिथ्या

पुरुष जो संवेदन फुरने से उत्पन्न हुआ अंहकार है और आकाश चिदाकाश है, उससे उत्पन्न हुआ फिर भी जानता है कि मैं आकाश की रक्षा करूं और आकाश गृह घटादिक जो कहा वह देह है, उसमें जो आत्मा अधिष्ठान है उस आत्मा की रक्षा करने की इच्छा करना मूर्खता है, अपने आपको नहीं जानता कि मेरा स्वरूप क्या है, उस अपने स्वरूप को न जानने से दुःख पाता है, आप मिथ्या है और मिथ्या होकर आगे आकाश की कल्पना करके रखने की इच्छा करता है, जो देह से देही के रखने की इच्छा करता है कि मैं जीता रहूं और देह तो काल से उत्पन्न हुआ है फिर देह के नष्ट होने से शोकवान् होता है और अपने वास्तव स्वरूप वस्तु को नहीं जानता, जिसका नाश कदाचित् नहीं होता, ऐसे विचार से रहित क्लेश पाता है, हे रामजी! जिसमें भ्रम उत्पन्न होता है उसकी अधिष्ठान सत्ता नहीं होती, सबका अपना आप आत्मा है वह कदाचित् नाश नहीं होता उसमें मूर्खता से अहंरूप संसार की कल्पना करता है और इतने इसके नाम हैं, अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति, दृश्य यह सब इसके नाम हैं और मिथ्या हैं, इसका अत्यन्त अभाव है, अन होता उदय हुआ है कि मैं हूं, क्षत्रिय हूं, ब्राह्मण हूं, वर्ण, आश्रम और मनुष्य, देवता, दैत्य, इत्यादिक कल्पनाएँ करता है, हे रामजी! यह कभी हुआ नहीं न होगा, अविचार सिद्ध है, विचार से नष्ट हो जाता है वही एक आत्मतत्व सबका आधारादि सब कुछ है, जैसे जेवरी के अज्ञान से सर्प की कल्पना करता है और जानने से नष्ट हो ऐसे स्वरूप के प्रमाद से अहंकार का उदय हुआ है वह तेरा स्वरूप कैसा है, सुन आत्मा प्रकाश रूप है और निर्मल है जो विद्या अविद्या के कार्य से रहित चेतन मात्र है और निर्विकल्प है, ज्यों का त्यों स्थित है, अद्वैत है और प्राण को कदाचित् नहीं प्राप्त होता आत्मतत्वमात्र है, उसमें संसार कैसे हो और अहंकार कैसे हो, सम्यग्दर्शी को आत्मा से इतर नहीं भासता और असम्यग्दर्शी को संसार भासता है पदार्थ को सत् जानता है और संसार को वास्तव जानता है, जो अपने वास्तव स्वरूप को नहीं

जानता है कि मैं कौन हूं, जानने से अहंकार नष्ट हो जाता है और जितनी भी आपत्तियां हैं–उनका उत्पत्तिस्थान अहंकार है, सर्व ताप अहंकार से उत्पन्न होते हैं, इसके नष्ट हो जाने पर अपने स्वरूप में स्थित होता है और विश्व भी आत्मा का चमत्कार है, इतर नहीं जैसे समुद्र में पवन से नाना प्रकार के तरंग प्रतीत होते हैं और स्वर्ण में अनेकों प्रकार के भूषणों का भान होता है, वह वही रूप हैं भिन्न कुछ नहीं, ऐसे आत्मा से भिन्न विश्व कुछ नहीं, स्वर्ण भी परिणाम से भूषण होता है और समुद्र भी परिणाम से तरंग होता है आत्मा अच्युत है परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये समुद्र ओर स्वर्ण से विलक्षण है, आत्मा में संवेदन से चमत्कार मात्र विश्व है, वह आत्म मात्र स्वरूप है, न कदाचित् जन्म लेता है न मरता है, ज्यों का त्यों स्थित है, जन्म मृत्यु तब हो जब दूसरा हो, आत्मा तो अद्वैत है, जिसमें एक कहना भी नहीं तो दूसरा कहां से हो? इसलिये प्रत्येक आत्मा अपना अनुभव रूप है, उसमें स्थित हो, कि सब दुःसन्ताप नष्ट हो जावें, आत्मा शुद्ध है निराकार है, हे रामजी! यदि निराकार है, तो किससे ग्रहण किया जाय, रक्षा कैसे की जाय, कौन समर्थ है जो रक्षा करे। जैसे घट के नष्ट हुए घटाकाश नष्ट नहीं होता, ऐसे देह के नष्ट हुए देही आत्मा का नाश नहीं होता, आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और जन्म मरण पुर्यष्टका से भासते हैं, जब पुर्यष्टका देह से, निकल जाती है तब मरा हुआ प्रतीत होता है जब पुर्यष्टका संयुक्त होता है तब जीवित प्रतीत होता है, आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म है, स्थूल से स्थूल उसका ग्रहण कैसे हो और रक्षा कैसे –जब है ही वही, स्थूल सूक्ष्म आदि शब्दों का प्रयोग भी आत्मतत्व के उपदेश के लिये है, आत्मा वाणी के अगोचर है और भाव अभाव रूप संसार से रहित है, सबका अनुभव रूप है, उसमें स्थित अहंकार का त्याग कर, और अपने स्वरूप प्रत्यक् आत्मा में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मिथ्यापुरुषोपाख्यान समाप्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ।।११३।।

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ११४

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संसार आत्मरूप है, जैसे इसकी उत्पत्ति हुई है सुनो–निर्विकल्प शुद्ध आत्मा में चेतन लक्षण विवर्त मन से स्थित हुआ है और आगे उसने जगत्कल्पना की है, वह मन कैसा है, जैसे समुद्र में तरंग और सुवर्ण में भूषण, जेवरी में सर्प, सूर्य की किरणों में जलाभास, ऐसे आत्मा में विवर्त मन है, वह आत्मा से इतर कुछ नहीं, जिसको तरंग का ज्ञान है उसको समुद्र बुद्धि नहीं होती और तरंग को अपर जानता है, जिसको भूषण का ज्ञान है वह सुवर्ण को नहीं जानता और सर्प के ज्ञान से रस्सी को नहीं जानता और जल के ज्ञान से किरणों को नहीं जानता, ऐंसे नाना प्रकार के इस विश्व के ज्ञान से परमात्मा को नहीं जानता, जैसे जिस पुरुष ने समुद्र को जाना है जो कि जल ही जल है, उसको तरंग बुद्बुदे भी जल ही भासते हैं, भिन्न कुछ नहीं भासता वह पुरुष निर्विकल्प है और जिसको रस्सी का ज्ञान है, उसको सर्पबुद्धि नहीं होती, वह पुरुष निर्विकल्प है, जिसको स्वर्ण का ज्ञान हुआ है उसको भूषण बुद्धि नहीं होती, ऐसा पुरुष निर्विकल्प है, जिसको किरणों का ज्ञान हुआ है, उसको जलबुद्धि नहीं होती, ऐसे जिस पुरुष को निर्विकल्प आत्मा का ज्ञान हुआ है, उसको संसार भावना नहीं होती, उसको ब्रह्म ही भासता है ऐसा जो मुनीश्वर है, वह ज्ञानवान् है, हे रामजी! मन भी आत्मा से इतर कुछ नहीं, आदि काल में मन परमात्मा से अहं त्वं होकर फुरा है। बहिर्मुख होने से अपने निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूप का प्रमाद हुआ है, उस प्रमाद के होने से आगे विश्व हुआ है और मन भी कैसा है जो कदाचित् उदय नहीं हुआ और आत्म स्वरूप है, उदय हुए की नाईं भासता है, मन और संसार सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं, जो दूसरी वस्तु हो तो सत् असत् कहें आत्मा अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित है उसका विवर्त मन होकर फुरा है वह मन कीट है, वही मन ब्रह्मा है और फिर

ब्रह्मा ने मनोराज्य से स्थावर जंगम सृष्टि की कल्पना की है, वह सत्य है न असत्य है, हे रामजी! सब प्रंपच मन की कल्पना है, उसी ने नाना प्रकार के विचार रचे हैं, मन बुद्धि चित्त अहंकार जीव सब मन के नाम हैं, जब मन नष्ट हो जावे तब न संसार है न कोई विकार है और जब तक मन दृश्य के साथ मिलकर कहे कि मैं संसार का अन्त लूं तो कदाचित् अन्त का पता न मिलेगा, क्योंकि संसरण ही संसार है, संसरण सहित संसार का अन्त कैसे आवे अन्त होने वाला बनकर आगे देखता है तो अन्त कहां से आवे, जैसे कोई पुरुष दौड़ता जावे कि मैं अपनी परछाईं का अन्त लूं कि अन्त कहां तक जाती है हे रामजी! जब तक पुरुष चला जा रहा हो तो तब तक परछाईं का अन्त नहीं आता, जब फुरणा नष्ट हो तब संसार का भी अन्त आत्मा ही दृष्टि गोचर हो संसार का अत्यन्त अभाव हो और यदि फुरने से युक्त देखेगा तो संसार ही भासेगा। हे रामजी! जिस पदार्थ को यह देखता है वह पदार्थ पूर्व कोई नहीं, चित्त के फुरने से उदय होता है, जब चित्त फुरा कि यह पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ और फुरने से रहित होकर देखे तो पदार्थ कोई नहीं भासता, केवल शान्तपद है हे रामजी! यह जो नाना प्रकार की कल्पना है उससे रहित निर्विकल्प ब्रह्म पद में अहंकार का त्यागकर स्थित हो जाओ अहंकार जो कि नाम रूप वर्णाश्रम देह में माया से कल्पित है, जब इससे रहित होकर देखेगा, तब केवल सच्चिदानन्द आत्मपद शेष रहेगा, जब उस पद को अपना आप जानेगा, तब तू ही सर्वात्मा होकर विचरेगा, तुम्हें कोई दुःख न रहेगा, हे रामजी! मन ही संसार है, मन ही ब्रह्मा है और मन ही कीट है मन ही सुमेरु है, मन ही तृण है मन ही सर्व विश्वरूप होकर स्थित हुआ है। वह मन कैसा है कि आत्मा से इतर जो कुछ नहीं, जैसे फलहीन सम्पूर्ण वृक्ष है ऐसे मन आत्मास्वरूप है, आत्मा से इतर मन कुछ नहीं, ऐसा जानने से आत्मस्वरूप होगा बंध और मोक्ष का त्याग करो बन्ध की और मोक्ष की इच्छा न करो इस कल्पना से रहित हो जाओ और ऐसे न हो जो मुक्त हो यह अपर बन्ध है, केवल सत्ता समान आत्मपद में स्थित

हो, यही भावना कर कि तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावें, ऐसा जो पुरुष है उसका चित्त भाव नहीं रहता उसको सर्वात्मा भासता है, जैसे जिस पुरुष ने सूर्य को जाना है उसको किरणें भी सूर्य ही दृष्टि आती हैं ऐसे जिसको आत्म साक्षात्कार हुआ है उसको जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमार्थयोगोपदेशवर्णनं नाम चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ।।११४।।

पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ११५

महाकर्त्राद्युपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! महाकर्ता बनो। महाभोक्ता और महात्यागी बनो, सब शंकाओं को त्याग कर निरन्तर धैर्य धारण कर स्थित हो, रामजी बोले—हे भगवन्! महाकर्ता, महाभोक्ता, महात्यागी किसे कहते हैं कृपा करके कहिये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तुम्हारे प्रश्न पर एक आख्यान है उसे सुनिये! एक समय सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा के शिखर से सदा शिव भगवान् महादेव सुमेरु के शिखर पर आकर स्थित हुए उनके साथ वाम पार्श्व में पार्वतीजी साथ विराज रही थीं शंकर भगवान् के मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है और श्रृंगी आदि गणोंसहित आकर वहां ठहरे। तब भृङ्गी (एक गण का नाम है) ने हाथ जोड़कर प्रश्न किया क्योंकि वह बड़ा तेजस्वी और आत्म जिज्ञासु भक्त था, इसलिये उस ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! देव देव! यह संसार मिथ्या भ्रम है, उसमें मुझे कोई सत्य पदार्थ प्रतीत नहीं होता, सब कुछ चल रूप भासता है और जो सत् पदार्थ हैं उसको मैं नहीं जानता। मेरे ताप नष्ट नहीं हुए, मुझे शान्ति नहीं मिली, मैं दुःखी हूँ, इसलिये कृपा करके जैसे मुझे शान्ति

मिले ऐसा उपाय कहिये, जिससे खेद रहित होकर प्रसन्न विचरूं, बिना किसी विशेष आश्रयके खेद रहित नहीं हुआ जाता, जितना यह संसार है मिथ्या है, मैं किसका आश्रय करूं, इसलिये मुझे वही कहो जिसके आश्रय से मेरे दुःख नष्ट हो जावें, शंकर बोले—हे भृंगी! तू महाकर्ता महाभोक्ता और महात्यागी बन! निरन्तर धैर्य का आश्रय लेकर उक्त साधन कर, तेरे सब दुःख नष्ट हो जायेंगे, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! उस भृंगी नाम के गण को शंकर भगवान् ने पुत्र बना रक्खा है, भृंगी ने भगवान् से प्रश्न किया है परमेश्वर! महाकर्ता महात्यागी किसको कहते हैं, कृपा करके मुझे यथावत् कहो, शंकर भगवान् ने कहा—हे पुत्र! उस अनुभवरूप सर्वात्मा का आश्रय करके विचरो कि दुःख से रहित हो जाओ और इन पूवोक्त तीनों वृत्तियों द्वारा तेरे दुःख नष्ट हो जावेंगे, जो कुछ शुभ क्रिया आकर प्राप्त होवे, उसको शंका त्याग कर करे, ऐसा पुरुष महाकर्ता है, धर्म अधर्म क्रिया अनिच्छित आकर प्राप्त हो, उसको राग द्वेष से रहित होकर करे, ऐसा पुरुष महाकर्ता है, जो पुरुष मौनी, निरहंकार, निर्मान है, मत्सर से रहित होकर ऐसा पुरुष महाकर्ता है। अनिच्छित प्राप्त हुए का त्याग न करे और जो नहीं प्राप्त हुआ उसकी वांछा न करे, ऐसा पुरुष महा कर्ता है, पुण्य पाप किया जो अनिच्छित आकर प्राप्त हो, उसको अहंकार से रहित होकर करे, पुण्य क्रिया करने से अपने आपको पुण्यवान् न मानें, पाप के किये पापी न समझे किन्तु अपने आपको जो सदा अकर्ता मानता है ऐसा पुरुष महाकर्ता है और जो सर्वत्र अर्थात् हर जगह (सब में) जो विगत स्नेह है, सत्यवत् स्थित है, निरिच्छ वर्तता है, कार्य में वह महाकर्ता है, जो दुःख के प्राप्त होने पर शोक नहीं करता और सुख के प्राप्त होने पर हर्षवान् नहीं होता, स्वाभाविक चित्त समता को देखता है, कदाचित् विषमता को प्राप्त नहीं होता, जो सुख की भिन्न भिन्न विषमता है उससे रहित है, वह पुरुष महाकर्ता है और जिस पुरुष ने सुख दुःख का त्याग किया है, (जो सुख दुःख की भावना नहीं फुरती यही त्याग है) जो अपर कुछ नहीं करता है ऐसा पुरुष महा त्यागी है, हे भृंगी! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तु को राग द्वेष से रहित होकर भोगता है,

वह महाभोक्ता है और जो बड़ा कष्ट आकर प्राप्त हो, उसमें दुःखी नहीं रहता और बड़े सुख की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता, वह पुरुष महाभोक्ता है और जो बड़े राज्य के सुख भोगने में अपने आपको सुखी नहीं मानता, सदा स्वरूप में स्थित है, वह महा भोक्ता है और जो मान अहंकार आदि से रहित केवल समता में स्थित है, वह महाभोक्ता है और जो कोई कुछ दे तो अपने आपको लेनेवाला नहीं मानता तथा अपने को किसी रूप से भी कर्तृत्व भोक्तृत्व की उपाधि को अपने ऊपर सवार नहीं होने देता, अर्थात् किसी प्रकार भी अपने आपको कर्ता भोक्ता नहीं मानता, वह पुरुष महाभोक्ता है और जो मीठा खट्टा तीक्ष्ण सलोना, कटु यह रस प्राप्त होते हैं, उनके भोगने में समचित रहता है और सम जानता है, वह महाभोक्ता है, जो रसवान् पदार्थ प्राप्त होने से हर्षवान् नहीं होता और विरस के प्राप्त हुए दुःखी नहीं होता, ज्यों का त्यों रहता है, भला बुरा जो भी आकर प्राप्त है, उसको भोगता है, ऐसा पुरुष महाभोक्ता है और जितनी भी शुभ अशुभ अभावरूप क्रियाएं हैं, उनके सुख दुःख से विचलित नहीं होता, वह पुरुष महाभोक्ता है और जिसको मृत्यु का भय नहीं और जीवन की आस्था नहीं, उदय अस्त में समान है, वह महाभोक्ता है, जो महान् सुख की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता और दुःख की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता, ज्यों का त्यों रहता है, वह महाभोक्ता है, जो कुछ अनिच्छित आकर प्राप्त हो उसको करता हुआ अहंकार से रहित है, वह पुरुष महाभोक्ता है, जो पुरुष शत्रु मित्र सुहृद् में समबुद्धि रहता है, विषमता को कदाचित् प्राप्त नहीं होता वह पुरुष महाभोक्ता है, जितना कुछ शुभ अशुभ दुःख सुख आकर प्राप्त हो उसको धारण कर लेता है, कभी विषमता को प्राप्त नहीं होता, जैसे समुद्र में नदियां आकर प्राप्त होती हैं, तो भी वह सम रहता है, इसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष अशुभ को पाकर सम रहता है जो संसार, देह इन्द्रिय और अहंकार की सत्ता को त्यागकर स्थित हुआ है और जानता है कि न मैं देह हूं, न मेरा देह है, इनका साक्षी हूं,

इस वृत्ति को धारण किये रहे वह महात्यागी है और जो मन से इंन्द्रियों से, देह से इच्छा से रहित हुआ सर्व चेष्टा करता है वह महात्यागी है और जो पुरुष समचित इन्द्रियजित् है और क्षमावान् है वह महात्यागी है, हे रामजी! जिस पुरुष ने धर्म अधर्म से बने संसार का तथा मदमान मनन इत्यादिक कल्पना का त्याग किया है वह महात्यागी है, हे रामजी! इस प्रकार भृंगी गण को भगवान् सदाशिव ने उपदेश किया, भगवान् का उस समय वह स्वरूप था, वह हाथ पर खप्पर लिये हुए हैं, व्याघ्राम्बर से शरीर आच्छादिक है मस्तक पर चन्द्रमा चमक रहा है, ऐसे शंकर महादेव सुमेरु के शिखर पर स्थित थे, हे रामजी! तुम भी इसी वृत्ति को धारण कर विचरो सर्व दुःख नष्ट हो जायँगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धेमहाकर्त्राद्युपदेश
वर्णनं नाम पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ।।११५।।

षोडशोत्तरशततमः सर्गः ११६

कलना निषेधवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे मुनीश्वर! जो आपने उपदेश किया वह मैंने जान लिया, इससे पहले आपने उपशम प्रकरण में उपदेश किया था कि आत्मा अनन्त है और शुद्ध है, तब मैंने प्रश्न किया था यदि आत्मा अनन्त है और शुद्ध है तो यह कलना कैसे उत्पन्न हुई है, जैसे समुद्र निर्मल है, उसमें धूलि कैसे हो, आपने फिर कहा इस प्रश्न का उत्तर सिद्धान्त काल में कहेंगे, अब मैं सिद्धान्त का पात्र हूं मुझे कहिये। जैसे स्त्री भर्ता से प्रश्न करती है और भर्ता कृपा करके उपदेश करता है, ऐसे मैं तुम्हारी शरण हूं, कृपा करके मुझे उत्तर दो मेरे आशा और तृष्णा के पाश टूट गये हैं, मैं मोह जाल से निकल चुका हूं, केवल अब मेरे हृदय में संशय रूप धूलि उठी है, उसको अपनी वचन वर्षा से शान्त करो, मेरे हृदय में संशय रूप अंन्धकार

है, हे ज्ञानसूर्य! अपनी वचन रूप किरणों से उसे निवृत्त करो, आपका वचनामृत पान करते तृप्ति नहीं होती, हे भगवन्! हे भगवन्! अपना विचार गुरु के उपदेश किये बिना शोभा नहीं देता, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो पुरुष शान्तिमान् क्षमावान् और जितेन्द्रिय है और मन की संकल्प विकल्प रूप क्रिया को जिसने जीता है, वह सिद्धान्त का पात्र है, हे रामजी! तुम तो सिद्धान्त के पात्र हो तभी तो उपदेश करता हूं और जो पुरुष रागद्वेष सहित क्रिया में स्थित है और इन्द्रियों के सुख से जिसको आराम हो, वह सिद्धान्त के वाक्य अहं वाक्य अहं ब्रह्म अस्मि, संर्व खल्विदं ब्रह्म, इनको सुनकर भी भोग में स्थित होता है और अद्योगति को प्राप्त होता है क्योंकि उसको निश्चय नहीं होता उसका हृदय मलिन है, इसलिये इन्द्रियों के सुख से अपने आपको सुखी मानता है इसीलिये नीच स्थानों को प्राप्त होता है और जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुआ है, उसको 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'सर्व खल्विदंब्रह्म' इत्यादि वाक्यों के श्रवण करने से ही शीघ्र ही भावना से आत्मपद की प्राप्ति होती है और तुम सरीखे जो पुरुष क्षमा आदि साधनों से पवित्र हुए हैं उनको स्वरूप की प्राप्ति सुगम होती है और जिसका अन्त:करण मलिन है उनको स्वरूप का पाना कठिन है। जैसे भूना बीज कलर भूमि में बोया जाये तो उसका अंकुर नहीं निकलता, ऐसे ही इन्द्रियारागी पुरुष को आत्मा की प्राप्ति नहीं होती और तुमारे जैसे जिनके हृदय शुद्ध ज्ञानवान् हो जाते हैं और इन वचनों से शोभा पाते हैं, जैसे वर्षाकाल में धान वर्षा होने से पृथ्वी पर शोभा पाते हैं, ऐसे ही सिद्धान्त वचनों को पाकर जो लोग उनके तत्व को प्राप्त कर लेते हैं, उनका आदर ही आदर सर्वत्र होता है सब लोग उनका यश गाते हैं, उनके ज्ञानदीपकसे संसार प्रकाश पाता है और जिन सब शास्त्रों के सार को ऊँची भुजाओं को उठाकर विद्वान लोग कहते हैं और सब शास्त्र स्वयं गाते हैं उन सर्व शास्त्रों के सार को सिद्धान्त को उनके दृष्टान्त को मैं जानता हूं इसलिये सर्व सिद्धान्तों के सार को मैं कहता हूं सुनो–जिससे अपने स्वरूप को

जानेगा, हे रामजी! जिसको अभ्यास से एक क्षण भर भी साक्षात्कार हुआ है वह फिर गर्भ में नहीं आता और सत् असत् में भेद कुछ नहीं, उसके संवेदन में भेद है, जैसे जाग्रत् का सूर्य और स्वप्न का सूर्य, प्रकाश दोनों का समान होता है जाग्रत् में जाग्रत् सूर्य का प्रकाश अर्थाकार होता है और स्वप्न का सूर्य अर्थाकार होता है, प्रकाश दोनों का सम है और संवित् भिन्न है, स्वप्न को मिथ्या जानता है और जाग्रत् को सत्य जानता है, संवेदन से भेद हुआ स्वरूप से भेद कुछ न हुआ जैसे एक बड़ा पर्वत मन से रचना कीजिये तो संकल्प से देखता है और एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्ष देखता है तो संवित् करके भेद हुआ स्वरूप दोनों का तुल्य हैं, जैसे समुद्र में तरंग है स्वरूप में जल तरंगों का भेद कुछ नहीं, जिसको जल का ज्ञान नहीं वह तरंग ही जानता है, इसलिये संवित् में भेद है, ऐसे स्वरूप में सत् असत् तुल्य है वास्तव कुछ नहीं, केवल शान्तरूप आत्मा है और शब्द अर्थ संवेदन में है, शब्द है, नाम और अर्थ है नामी वह संवेदन फुरने से है, जब फुरणा नष्ट हो जाय तब सब अर्थ भी आत्मा है ऐसा भासेगा। जगत् की सत्ता तब तक है जब तक आत्माका प्रमाद है और प्रमाद तब तक है जब तक अहं भाव है, जब अहंभाव नष्ट हो जावे तब केवल आत्मा शेष रहे वह आत्मा शुद्ध है, विद्या अविद्या के कार्य से रहित है, कदाचित् स्पर्श नहीं किया, हे रामजी! अविद्या को दो शक्तियां हैं, एक आवरण, एक विक्षेप आत्मा के न जानने को आवरण कहते हैं और विपरीत ज्ञान को विक्षेप कहते हैं, अर्थात् और का और जानना। आत्मा सदा ज्ञान रूप है, उसको आवरण कदाचित् नहीं, आत्मा अद्वैत है उससे इतर कुछ नहीं बना, इसीसे आत्मा शुद्ध है, केवल ज्ञानमात्र है, हे राम! उसमें कलना रूप धूलि कहां से हो जो आत्ममात्र है, चिन्मात्र है, जिसमें अहंकार उत्थान नहीं है, केवल निर्वाण पद है, जहां एक और द्वैत कहना भी नहीं, केवल अपने आपमें स्थित है, रामजी बोले—हे भगवन्! यदि सर्व ब्रह्म है तो मनबुद्धि आदिक यह कौन हैं, जिससे तुम यह शास्त्र उपदेश करते हो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शास्त्र के व्यवहार के

लिये यह शब्द है परमार्थ से कल्पना है नहीं, यह मन बुद्धि आदिक कुछ वस्तु नहीं, ब्रह्म सत्ता ही अपने आप में स्थित है, जैसे तरंग जल से इतर वस्तु नहीं, ऐसे मन आदिक हैं, आत्मतत्व कैसा है, नित्य है, शुद्ध है, सन्मात्र है, नहीं की नाईं स्थित है, हे रामजी! ऐसे आत्मा में संसार अविद्या का नाम आदिक कैसे हो? आत्मा ब्रह्म है, जिससे इतर कुछ नहीं, सर्व अधिष्ठान है और अविनाशी है, देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित है, इसी से ब्रह्म है, हे रामजी! ऐसा जो अपना आप आत्मा है, उसमें स्थित हो जाओ और यह जगत् जो दृष्टि आता है, सर्व चिदाकाश है इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में विश्व देखता है, वह अनुभव मात्र है, जैसे जाग्रत् विश्व आत्मरूप है, ऐसा जो तेरा शुद्ध और नित्य उदित अविनाशीरूप है, उसमें जब स्थित होगा तब कलना जो तुझे भासती है, वह नष्ट हो जायगी, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! संसार का बीज अहंकार है, जब अहंभाव होता है तब संसार होता है, वह अहंकार कुछ वस्तु नहीं, भ्रम से सिद्ध हुआ है, जैसे मूर्ख बालक परछाईं में पिशाच की कल्पना करता है, वह पिशाच कुछ वस्तु नहीं उसके भ्रम में होता है, ऐसे अहंकार कुछ वस्तु नहीं स्वरूप के भ्रम में होता है, हे रामजी! जो वास्तव में कुछ वस्तु न हो उसके त्यागने में यत्न कुछ नहीं, तुझमें अहंकार वास्तव नहीं। तू केवल शान्तरूप चेतनमात्र है, उसमें अहं भाव होना उपाधि है, उससे सुमेरु पर्वत आदि जगत् बन जाता है, वह संवेदन रूप है चित्त रूप पुरुष चेतन के आश्रय से फिरता है और विश्व की कल्पना करता है, जेवरी के आश्रय से सर्प फुरता है, ऐसे चेतन के आश्रय विश्व और चित्त फुरते हैं, वह आत्मा से इतर नहीं और अहंकार हुए की नाईं हुआ है जो मैं हुआ हूं ऐसा जो अहंभाव है, वह दुःख की खान है, सर्व आपत्तियां अहंकार से होती हैं, जब अहंकार नष्ट होगा तब सब दुःख नष्ट हो जायेंगे, हे रामजी! जैसे सूर्य के आगे बादल होते हैं, तो प्रकाश नहीं होता जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाशवान् होता है और सूर्य के प्रकाश से अहंकार है, कमल प्रफुल्लित होते हैं, ऐसे आत्मरूप सूर्य को अहंकार का आवरण हुआ, माया के किसी

गुण के साथ मिलकर अपने आपको कुछ मानने का नाम जब अहंकाररूप बादल नष्ट होगा तब आत्मरूप सूर्य का प्रकाश होगा और ज्ञानवान्‌रूप कमल उसको पाकर परम प्रसन्न होंगें, हे रामजी! इसलिये अहंकार के नाश का उपाय करो कि तुम्हारे दुःख नाश हो जायँ, वह कौन पदार्थ है जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता यदि अहंकार के नाश का उपाय करें तो नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार अहंकार नाश हो वह सुनो। ब्रह्मविद्या के निरन्तर अभ्यास से और सत्संग के प्रताप से अहंकार का नाश हो जाता है, जैसे नित्य पानी भरनेवाली रस्सी को रगड़ के अभ्यास से शिलाएं कट जाती हैं ऐसे ब्रह्मविद्या के अभ्यास से अहंकार नष्ट हो जाता है, शिला के पिसने में भी कुछ यत्न होता होगा परन्तु अहंकार के त्यागने में यत्न कुछ नहीं, हे रामजी! सदा अनुभवरूप आत्मा है उसका विचार करो कि मैं कौन हूं, इंद्रिय क्या है सत्व रजस तमस्‌ यह गुण क्या हैं, संसार क्या है, ऐसे विचार से इनके साक्षीभूत बनो कि मेरे में अहंत्वं कोई नहीं फुरेगी, अहंकार का नाश करो तुम शुद्ध हो मेरा भी आशीर्वाद है कि तू सुखी हो जाये, जब अहंकार नष्ट होगा तब कलना कोई न फुरेगी, केवल सुषुप्ति की नाईं स्थित होगा, रामजी बोले—हे भगवन्‌! यदि आपका अहंकार नष्ट हुआ है तो हम आपको प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे देखते हैं, अहंकार नहीं तो सर्व शास्त्र ब्रह्मविद्या कहां से उत्पन्न हुए हैं और उपदेश कैसे होता है उपदेश में चारों सिद्ध होते हैं अन्तःकरण में जो प्रथम उपदेश करने की इच्छा पैदा होती है और जब स्मरण होता है जो उपदेश करूं तब चित्त भी चैत्य से सिद्ध होता है और यह उपदेश करो, यह न करो, ऐसा सकंल्प करने से मन की भी सिद्धि होती है, फिर निश्चय किया जाता है कि यही उपदेश किया जाय तब बुद्धि की सिद्धि होती है, इसलिये चारों अन्तःकरण (मन बुद्धि चित्त अहंकार) सिद्ध होते हैं, तुम कैसे कहते हो कि अहंकार नष्ट हो जाता है और सर्व चेष्टाएं होती हैं, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! आत्मस्वरूप में अहंकार आदिक अन्तःकरण और इन्द्रिय कल्पित हैं वास्तव कुछ नहीं और शास्त्र शास्त्र उपदेश भी

कल्पनाएं हैं आत्मा केवल आत्मतत्व मात्र है उसमें संवेदन करके अहंकारादि दृश्य फुरे हैं उसके निवृत्त करने को प्रवृत होते हैं, जैसे जेवरी में सर्प भासता है, तब भय से दुःख पाता है, जब किसी ने कहा कि यह वह है तू भय मत कर। इसको भले प्रकार देख यह सर्प नहीं, उसके उपदेश से वह भले प्रकार देखता है, तब भय शोक उसका निवृत्त हो जाता है, जो भ्रम करके उसको सर्प भान हुआ था, वह भी मिथ्या है और उसको उपदेश करना जेवरी का वह भी मिथ्या है क्योंकि जेवरी तो आगे ही सिद्ध है, उपदेश से सिद्ध नहीं होती, ऐसे जेवरी की नाईं आत्मा है उसका निवृत्त जो चेतन लक्षण उसको अहंभाव है, उस अहंकार से निवृत्त करने को शास्त्र हुए हैं जो आत्मारूपी जेवरी के प्रमाद अहंकार रूप सर्प फुरा है उसके निवृत्त करने के लिये शास्त्र के उपदेश हुए हैं, आत्मा को बतला देते हैं, जब भले प्रकार जेवरी की नाईं आत्मा को जाना तब सर्प की नाईं जो परिच्छिन्न अहंकार है वह नष्ट हो जाता है, जैसे नेत्र में मैल होता है ओर अंजन डालने से नष्ट हो जाता है, तब ज्यों के त्यों नेत्र निर्मल होते हैं, ऐसे अज्ञानरूप मैल गुरु शास्त्र के उपदेशरूप शूर से नष्ट हो जाता है वास्तव में न कोई अहंकार है न शास्त्र है न शास्त्र है, क्योंकि आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है, परंतु तो भी गुरु शास्त्र से जाना जाता है, हे रामजी! ज्ञानवान् के साथ चारों अन्तःकरण और इन्द्रिय भी दृष्टि आते हैं, उनमें सत्यता नहीं होती, जैसे भूनाबीज दृष्टि आता है परन्तु उत्पन्न होने की सत्यता नहीं रखता, जैसा जला हुआ वस्त्र देखने मात्र होता है, सत्यता उसमें कुछ नहीं, ऐसे ज्ञानवान् को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता उससे कष्ट नहीं पाता, जैसे सूर्य की किरणों से मरुस्थल में जलाभास होता है उसको देखकर जल पीने के लिये मृग दौड़ता है और दुःखी होता है, ऐसे दृश्य रूप मरुस्थल में पदार्थरूप जलाभास है, उसको देखकर अज्ञानी पुरुषरूप मृग दौड़ते हैं और दुःख पाते हैं, जब ज्ञानरूप वर्षा से आत्मरूप जल चढ़ा तब चित्त रूप मृग कहां दौड़े? जब ज्ञानरूप वर्षा होती है तब अनुभवरूप जल चढ़ता है

तब चित्तरूप मृग का यत्नरूप फुरणा नष्ट हो जाता है, हे रामजी! अहंकार अविचार से सिद्ध है विचार से क्षीण हो जाता है, जैसे बर्फ की पुतली सूर्य की किरणों से क्षीण होती है, जब अधिक तेज होता है तब जलरूप हो जाती है, बर्फ की संज्ञा नहीं रहती, ऐसे अहंकार रूप बर्फ विचार रूप किरणों से क्षीण हो जाता है, जब दृढ़ विचार होता है, तब अहंकार संज्ञा ही नष्ट हो जाती है, केवल आत्मा ही रहता है रामजी बोले–हे सर्व तत्वज्ञ भगवन्! जिसका अहंकार नष्ट हुआ है उसका लक्षण क्या है कहिये वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानरूप इस संसार में पदार्थ की भावना से नहीं गिरता और क्षमा शान्ति आदिक शुभाशुभ उसको स्वाभाविक आकर प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्र में नदियां स्वाभाविक आ प्राप्त होती हैं और क्रोध भी उसका नष्ट हो जाता है, देखने मात्र भासता है तो भी अर्थाकार नहीं होता कि विषमता से भिन्न भावना अन्तर से नहीं फुरती केवल सत्ता समान में स्थित होता है, जैसे शरतकाल का मेघ गर्जता है और वर्षा से रहित होता है, ऐसे इन्द्रियों की चेष्टा अभिमान से रहित होकर करता है, जैसे वर्षा ऋतु के जाने से कुहिड नहीं रहती ऐसे अभिमान चेष्टा उसकी नष्ट हो जाती है और लोभ भी उसके मन से जाता रहता है, जैसे बन में आग लगती है तो पक्षी उस वन को त्याग जाते हैं, ऐसे लोभरूप मृग उसको त्याग जाते हैं, उसके मन में कामना नहीं रहती, जैसे दिन में उलूक पिशाच नहीं विचरते, जहां ज्ञान रूप सूर्य उदय होता है, वहां से कामना रूप तामस भाव (अन्धेरा) नष्ट हो जाता है, शान्तरूप आत्मा में स्थिति पाता है, जैसे पैंदोई दो पोटों का ज्येष्ठ आषाढ की धूप में उठाता है और गरमी होती है थकता भी है, उसको डालकर वृक्ष के नीचे सुख में स्थित होता है ऐसे वासनारूप पोट है, अज्ञानरूप धूप है उससे दुःखी होता है, ज्ञानरूप बल से वासना रूप पोट को डालकर सुख से स्थित होता है, हे रामजी! उस पुरुष को भोग वासना मिट जाती है, फिर दुःख नहीं देती, जैसे गरुड को देखकर सर्प भागता है पुनः निकट नहीं आता ऐसे ज्ञानरूप गरुड को देखकर भोगरूप सर्प भागते हैं, फिर पास नहीं आते, आत्मपद

को पाकर शान्ति रूप हुए दीपक के समान प्रकाशवान् होते हैं, भाव अभाव पदार्थ उनको स्पर्श नहीं करते संसार भ्रम निवृत्त हो जाते हैं, वह ज्ञान समझने मात्र है, कुछ यत्न नहीं सन्तों के पास जाकर प्रश्न करना कि मैं कौन हूं, जगत् क्या है, परमात्मा क्या है और भोग क्या है? इनको तरकर परम पद की प्राप्ति कैसे हो, ऐसा पूछने पर वे ज्ञानवान् महात्मा जो मार्ग बतलाएंगें उसी पर चलने से आत्मपद की प्राप्ति होगी अन्यथा नहीं होगी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे कलनानिषेदवर्णनं नाम षोडशोत्तरशततमः सर्गः ।।११६।।

सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ११७

इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारा पूर्वज इक्ष्वाकु नामक राजा जीवन्मुक्त होकर विचरा है ऐसे तुम भी विचरो, तुम भी उसी कुल में उत्पन्न हुए हो, हे रामजी! इक्ष्वाकु सूर्यवंशी राजा था, वह मनु का पुत्र और सूर्य का पौत्र सर्वश्रेष्ठ राजा था, जैसे पितरों का राजा धर्म है, उसका बर्फ की नाईं अत्यन्त शीतल स्वभाव था, जैसे सूर्य को देखकर मणि से तेज प्रकट होता है ऐसे ही उसको देखकर शत्रु को संताप पैदा होता था वह ऐसा परन्तु यथा साधुपुरुषों और प्रिय प्रजा को बड़ा प्यारा लगता था, उसको देखकर सब लोग शान्तिमान् होते थे। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं, ऐसे उसको देखकर लोग प्रसन्न होते थे, वह पापवृक्ष के लिये तीक्ष्ण कुठार तथा, मित्र सुखदायी था, जैसे मोरों के लिये मेघ सुखदायी है, उसकी सुन्दरता पर ही लुब्ध हुई लक्ष्मी स्थिरता से विराज रही थी, दारिद्य का चिन्ह भी कहीं न था समस्त पृथ्वी उसके यश से पूर्ण हो रही थी, जैसे चन्द्रमा की

चांदनी से निशा पूर्ण होती है, इस प्रकार वह राजा सर्वप्रिय बनकर प्रजापालन कर रहा था, एक समय उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ, कि जरा मरण आदिक दु:खों से भरे इस संसार में बड़ा क्षोभ है, इस संसार दु:ख के तरने का क्या उपाय है यह विचार करने लगा, कि शंभु मुनि ब्रह्मलोक से चलकर विचरते हुए आ निकले, राजा ने उनका बड़े आदर से पूजन किया और कहा हे भगवन्! आपकी कृपा का बल मेरे हृदय को प्रश्न करने की प्रेरणा कर रहा है, इसलिये मैं प्रश्न करता हूं, हे भगवन्! मेरे हृदय में संसार फुरण होता है, जैसे समुद्र को बडवानल जलाता है, ऐसे मुझे संसार जलाता है, इसलिये कोई उपाय कहो जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो। हे भगवन्! यह संसार कहां से उत्पन्न हुआ है और दृश्य का स्वरूप क्या है और कैसे निवृत्त होता है, जैसे जाल से पक्षी निकल जाता है ऐसे जन्म मरण वाला संसार महाजाल है इससे निकलने का उपाय मुझको कहो जैसे वरुण सब स्थान समुद्र के जानता है ऐसे तुम जगत् के सब व्यवहारों को जानते हो और संशय वृक्ष के काटने को आप कुठार रूप हैं और अज्ञान अन्धकार के नाशक तुम सूर्य हो, तुम्हारे अमृतरूप वचनों से मैं शान्ति पाऊँगा, मनुमहाराज ने कहा हे साधुपुरुष! मैं चिरकाल से जगत् में विचरा करता हूं, परन्तु ऐसा प्रश्न किसी ने नहीं किया, तुमने परमसाररूप प्रश्न किया है, यह सब अनर्थों का नाशक प्रश्न है, तेरी बुद्धि विवेक से विकसित हुई मालूम पड़ती है, हे राजन्! जो कुछ जगत् तुझको भासता है सब असत् है जैसे रस्सी में सांप, जैसे मरुस्थल में जल जैसे गन्धर्व नगर जैसे सीपी में रूपा, जैसे आकाश में नीलता, दूसरा चन्द्रमा, भ्रम से भासता है, ऐसे यह जगत् असत्यरूप है, जैसे जल में चक्र तरंग असत् रूप है ऐसे जगत् असत् रूप है और जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है और शून्य भी नहीं, वह सत् अविनाशी आत्मा कहाता है, वह निर्मल परमब्रह्म सब ओर से पूर्ण अनन्त है उसमें जगत् कल्पित है, हे राजन्! जैसे सब वृक्षों में एक ही रस व्यापक है ऐसे सब पदार्थों में एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है, जैसे अचल समुद्र में द्रवता से

तरंग फुरते हैं ऐसे परमात्मा में जगत् फुरते हैं, उस महादर्पण में सब वस्तु जात प्रतिबिंबित होते हैं, जैसे समुद्र में कोई तरंगरूप कोई बुद्‌बुदे चक्रादिक होते हैं, ऐसे आत्मा में जीवादिक आभास होते हैं, प्रथम स्फुरण रूप होते हैं, पीछे कारणरूप होते हैं, वह चित्तशक्ति अपने संकल्प से भूतादिक देह रचकर उसमें स्वरूप के प्रमाद से आत्माभिमान करता है, जैसे घुराण को अपनी क्रिया अपने बन्धन के निमित्त होती है, ऐसे इसको अपना संकल्प अपने बंधन का कारण होता है हे राजन्! जीवकाल को स्वरूप का अज्ञान हुआ है, जैसे बालक को अपनी परछाईं यक्षरूप होकर भय देती है, ऐसे यह नाना प्रकार के आरम्भ को प्राप्त हुआ है, अकारण ही ब्रह्मशक्ति फुरने से कारण भाव को प्राप्त हुआ है, उससे बन्ध और मोक्ष भासते हैं, वास्तव से न बन्ध है न मोक्ष है निरामय ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है उसमें एक और अनेक कहना कुछ नहीं इसलिये बंध मोक्ष की कल्पना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ।।११७।।

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ११८

इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशवर्णनम् ।

मनुमहाराज बोले—हे राजन्! जैसे द्रवता से जल ही तरंग भाव को प्राप्त होता है, ऐसे ही चिन्मात्र ही संकल्प के फुरने से जीव होता है, वह जीव संसार मे कर्मों के वश से भटकता हुआ अपने आपको कर्ता देखता है और सर्वात्मा परब्रह्म कर्ता हुआ भी कुछ नहीं करता, जैसे सूर्य से सब चेष्टा होती है और सूर्य अकर्ता है, ऐसे आत्मा की शक्ति से जगत् चेष्टा करता है, जैसे चुम्बका पत्थर के निकट लोहा करता है, ऐसे आत्मा की चेतना से देह चेष्टा करता है और आत्मा सदा

अकर्ता है, जैसे जल में तरंग फुरते हैं ऐसे आत्मा में देहादिक फुरते हैं, जैसे स्वर्ण में भूषण कल्पना होती है, ऐसे आत्मा में मोह से दुःख सुख कल्पना किये जाते हैं, आत्मा में कल्पना कुछ नहीं, शुद्ध आत्मा में मूढ़ ने सुख दुःख की कल्पना की है और जो ज्ञानवान् हैं, उनको मन चित् सुख दुःख सब आकाशरूप हैं, वह देह से रहित केवल चिदाकाश भाव को प्राप्त होते हैं, जरा मरण को नहीं प्राप्त होते, सब काम करते दृष्टि आते हैं और अंतर से सदा अकर्ता रूप हैं जैसे जल और दर्पण में पर्वत का प्रतिबिंब पड़ता है, परन्तु स्पर्श नहीं करता, ऐसे ही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती, शरीर के व्यवहार में भी वह सदा निर्मल भाव है, हे राजन्! आत्मा सदास्थित रूप हैं, परंतु भ्रम से चंचल भासता है, जैसे जल की चंचलता से पर्वत का प्रतिबिंब भी चंचल प्रतीत होता है, ऐसे देहादिक से आत्मा चलता भासता है, आत्मा नित्य शुद्ध अपने आपमें स्थित है, जैसे घट के नाश हुए घट का नाश नहीं होता ऐसे देह के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता, जैसे शुद्धमणि में नाना प्रकार के प्रतिबिंब होते हैं, उनसे रंजित नहीं होती, ऐसे आत्मा में मन इन्द्रिय, देह दृष्टि आते हैं, वे स्पर्श नहीं करते, जैसे मिष्ट पदार्थ में मिठास एक ही व्याप्त है, ऐसे ही सब से चलरूप प्रतीत होता है, जैसे दौड़ते हुए बालक को सूर्य दौड़ता भासता है,ऐसे प्रतीत होता है, जैसे दौड़ते हुए बालक को सूर्य दौड़ता भासता है, ऐसे आत्मा देह के संग से अज्ञान के कारण विकारवान् भासता है, जैसे प्रतिबिंब विकार आदर्श को स्पर्श नहीं करता ऐसे देह को विकार आत्मा को स्पर्श नहीं करता, जैसे अग्नि में सुवर्ण डारिये तब मैल दग्ध हो जाता है, स्वर्ण का नाश नहीं होता ऐसे देह का नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मा नित्य शुद्ध अवाक् अचिन्त्य रूप है, हे राजन्! चिन्तन में नहीं आता परन्तु चेतन वृत्ति द्वारा देखा जाता है, जैसे राहु अदृष्ट हैं, परन्तु चेतनवृत्ति से जाना जा सकता है, जैसे शुद्ध दर्पण में प्रतिबिंब होता है ऐसे निर्मल बुद्धि में आत्मा साक्षात् भासता है। वह संकल्प से रहित

अपने आपमें स्थित है, जब बुद्धि निर्मल होती है तब अपने आपमें उसको पाती है, हे राजन्! शास्त्रों से परमेश्वर नहीं पाया जाता और गुरु से भी नहीं पाया जाता जब तक अपनी बुद्धि निर्मल न हो तथा उस सत् पद पर स्थित होने की योग्यता न मिले तब तक आत्मप्राप्ति नहीं, जब संसार की सत्यता हृदय से दूर हो और आत्माकर वृत्ति रखने का अभ्यास हो तब बुद्धि निर्मल (सूक्ष्म) होती है, (दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः—श्रीमद्भगवदगीता अ० श्लो० हे राजन्! सब भाव अभाव रूप जो देहादिक पदार्थ हैं, असत् हैं, केवल भ्रममात्र हैं, उनकी आस्था का त्याग करो, जैसे कोई मार्ग में चलता है तो रास्ते में अनेक मिलते हैं परन्तु उनमें रागद्वेष कुछ नहीं होता, ऐसे देह तथा इन्द्रियों के साथ स्नेह से रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है, उसमें देहादिक इन्द्रजाल की नाईं मिथ्या है, उनकी भावना दूर से त्यागकर नित्य आत्मरूप शीतल चित्त में स्थित हो, हे राजन्! अपना आपही अपना मित्र है, अपना आप ही अपना शत्रु है, क्योंकि आत्मा में अन्य को स्थान नहीं हैं, आत्मा में आत्मा का भाव है अपर द्वैत कुछ नहीं, इसलिये आप ही अपना शत्रु है और मित्र है, अपना आप जो मित्र है वह कौनसा है जो अपने चित्त को अनात्मधर्म रूप इन विषयों की ओर से खींचकर अपने आपमें स्थित करता है, वह अपना मित्र है और जो चित्त को विषयों के नरक का कीट बनाने में ही लगा रहता है वही अपना शत्रु है वास्तव से जितना यह दृश्य जाल है सब आत्मरूप है, आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, जैसे समुद्र जल से इतर कुछ वस्तु नहीं, जल ही जल हैं, ऐसे आत्मा से इतर जगत् कुछ वस्तु नहीं सबमें अनुस्यूत एक आत्मसत्ता ही स्थित है, जैसे अनेक घड़ों के जल में एक ही सूर्य का प्रकाश प्रतिबिंब होता है, ऐसे अनेक देहों में एक ही आत्मा व्याप्त रहा है, वह न अस्त होता है न उदय होता है, सदा एक रस अविनाशी पुरुष ज्यों का त्यों स्थित है उसमें अहंभावना करके संसार भासता है, जैसे सीपी में रूपे की बुद्धि होती है ऐसे आत्मा में अहंबुद्धि संसार का कारण है इस बुद्धि से

सर्व दुःखभागी होता है, जैसे वर्षाकाल में सब नदियां समुद्र में आकर प्रवेश करती हैं, ऐसे अनात्म अभिमान से सब आपत्तियां आकर प्राप्त होती हैं, वास्तव से चिन्मात्र और जीव में किंचित् भी भेद नहीं, एक ही रूप हैं, ऐसी बुद्धि बन्धन मुक्ति का कारण है, आत्मा सबमें अनुस्यूत है, सर्वत्र सबमें सर्व रूप वही है जैसे सूर्य का प्रकाश सब स्थानों में होता है, परन्तु जहां शुद्धजल है वहां भासता है, ऐसे आत्मा सब स्थानों में पूर्ण है, परन्तु शुद्ध बुद्धि में प्रतीत होता है, (दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) श्रीम०भ०गीता०। जैसे तरंग बुद्‌बुदे में जल ही व्याप रहा है, ऐसे आत्मा अविनाशी दृश्य कलना से रहित, सर्वत्र व्याप्त है, जैसे स्वर्ण में भूषण नहीं ऐसे आत्मा में जगत् का अभाव है, हे राजन्! यहां संसार आत्मा में नहीं केवल आत्मा ही है, जो एक वस्तु पात्र के समान हो उसमें दूसरी वस्तु का आ जाना भी संभव है, आत्मा तो अद्वैत है दूसरी वस्तु संसार कहां हो, स्वर्ण में भूषण जैसे चित्त से कल्पित हैं वास्तव कुछ नहीं ऐसे आत्मा में संसार अज्ञान से कल्पित है वास्तव कुछ नहीं, केवल चिदाकाश है जैसे नदियां और समुद्र नाममात्र हैं, क्योंकि जल ही जल है, ऐसे केवल चिदाकाश में विश्व नाममात्र है और जितने आकार भासते हैं, उनका काल भक्षण करता है जैसे नदियों को समुद्र भक्षण करके तृप्त नहीं होती, ऐसे ही पदार्थ समूह को भक्षण करता हुआ काल तृप्त नहीं होता, हे राजन्! ऐसे पदार्थों में अभिलाषा ही क्या करती है, अनन्त सृष्टि को निरन्तर काल भक्षण करता ही चला आ रहा है, जैसे समुद्र में तरंग बुद्‌बुदे कई उत्पन्न होते और कई नष्ट हो जाते हैं, इसलिये तुम काल से अतीत पद की भावना करो, जो काल को भी भक्षण करे। उसकी भावना कैसे की जाय और वह काल को भी कैसे भक्षण करे, यह सुनिये। जैसे मन्दराचल ने अगस्त्य मुनि के आने की भावना की है ऐसे तू अपने स्वरूप की भावना कर, तब काल को भक्षण करेगा, जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र का भक्षण (पान) किया था ऐसे आत्मरूप अगस्त्य कालरूप समुद्र को भक्षण करेगा, हे राजन्! जन्ममरण आदिक जो विकार हैं, वे भ्रम से हैं आत्मा के प्रमाद से भासते हैं, जब आत्मा को

रचे गये हैं, आकाश में कोई नहीं, जैसे जेवरी में भ्रम संयुक्त सर्प भासता है, वह तब तक है जब तक जेवरीको नहीं जाना, जब जेवरी को जाने तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है, ऐसे जन्म मरण आदिक विकार आत्मा में तब तक भासते हैं जब तक आत्मा को नहीं जाना, जब आत्मा को जानेगा तब सर्व विकार नष्ट हो जावेंगे। हे राजन्! ऐसा विकार से रहित आत्मा तेरा स्वरूप है उसकी भावना कर कि तेरे दुःख नष्ट हो जावें, आत्मपद को कहीं खोजने नहीं जाना और किसी वस्तु को जाकर ग्रहण नहीं करना कि यह आत्मा है और किसी काल की अपेक्षा भी नहीं कि इस काल से प्राप्त करेगा, आत्मा तेरा अपना स्वरूप है और सर्वदा अनुभवरूप है, तुझसे इतर कुछ वस्तु नहीं, तू आपको ज्यों का त्यों जान आत्मा को न जानने से अपने आपको दुःखी जानता है, कि मैं मर जाऊंगा, मैं निर्धन हूं, मैं दास हूं, इत्यादिक दुःख तब तक होते हैं जब तक आत्मा को नहीं जाना, जब आत्मा को जानेगा तब आनन्द रूप हो जावेगा, जैसे किसी स्त्री की गोद में पुत्र हो और स्वप्न में देखे कि मेरे पास बालक नहीं और रोने लगे तब जगने पर ही उसके भ्रम की निवृत्ति होती है। जगने पर वह प्रसन्न होकर कहती है कि मैंने इतना दुःख वृथा ही पाया है, बड़े आनन्द को प्राप्त हुई सब दुःख शोक उसका नष्ट हो गया, हे राजन्! उसी प्रकार आत्मा तेरा अपना आप है और सदा अनुभव रूप है, उसके प्रमाद से तू अपने आपको दुःखी जानता है, जब अज्ञान से निद्रा से जगेगा, तब अपने आपको जानेगा और तेरे सब दुःख शोक नष्ट हो जाऐंगे, अज्ञानरूप निद्रा क्या है;' सुनो देह इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं उनके साथ मिलकर अपने आपको जानना कि मैं हूं, यह अज्ञान निद्रा है, इससे रहित होकर देखो कि जिससे आनन्द की प्राप्ति हो और जितने यह पदार्थ भासते हैं, मिथ्या हैं, जैसे बालक मट्टी में खेलता हुआ राजा, सेना, हाथी ओर घोड़े आदिक की कल्पना करते हैं, परन्तु वहां न कोई राजा है न सेना है न

कोई हाथी है न घोड़ा है, केवल मट्टी है, ऐसे चित्तरूप बालक ने आत्मरूप मृत्तिका में राजा और सेना आदि सम्पूर्ण विश्व कल्पित किया है, वह मिथ्या है, हे राजन्! एक उपाय तुम्हें कहता हूं, वह कीजिये कि तुम्हारे दुःख नष्ट हो जायें। एक वस्तु का त्याग करो, वह क्या है? अहं अभिलाषा सहित जो फुरना है उसका त्याग करो, जहां इच्छा है वहां विचरो तुम्हें दुःख का स्पर्श न होगा संकल्प ही उपाधि है अन्य कोई उपाधि नहीं, जैसे मणि तृण से आच्छादित होती है जब तृण दूर न कर दिया जाय तो मणि प्रकट होती है, ऐसे आत्मरूप मणि वासना रूप तृण से आच्छादित है जब वासना रूप तृण दूर हो तब आत्मरूप मणि प्रकट हो जाती है हे राजन्! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति से रहित जो आत्मपद है, जब उसको प्राप्त होगा तब जानेगा कि मैं मुक्त हूं, वह तेरा स्वरूप हैं, उस पद में स्थित हो, जो केवल आत्मरूप है और अजन्मा है नित्य है, चेतन मात्र है, सबका अपना आप है, उसके प्रमाद से दुःख होता है, जैसे बालक मट्टी के खिलौने बनाते हैं, हाथी, घोड़ा, आदि नाम कल्पना करते हैं, अभिमान करते हैं, ऐसे बालकरूप अज्ञानी स्वरूप के प्रमाद से अभिमान करता, यह मेरे हैं मैं इनका हूं, इनके नाश होने से दुःखी होता है, ऐसे नहीं जानता कि सत् का नाश नहीं होता, असत् का नाश होने से सत् का नाश मानता है, जैसे घट के नाश होने से घटाकाश का नाश मानना मूर्खता है ओर दुःख पाना पड़ता है, हे राजन्! तुम अपने आपको आत्मा जानो, आत्मा आदिक संज्ञाएं भी शास्त्रों की कल्पनाएं हैं, केवल दिखाने के लिये, नहीं तो आत्मा अनिर्वाच्य पद है, जिसमें वाणी की गति नहीं और इन ही से जानता है क्योंकि मनवाणी में भी आत्मसत्ता है इसी से आत्मादिक संज्ञाएँ सिद्ध होती.हैं, जैसे जितने कुछ स्वप्न के पदार्थ हैं, उनमें अनुभवसत्ता है, उसी से पदार्थ सिद्ध होते हैं, ऐसे जितनी अर्थ संज्ञाएँ हैं, वे सब आत्मा से सिद्ध होती हैं, ऐसा जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो कि तेरे जरा मरण आदिक दुःख नष्ट होवें, हे राजन! जब निस्पन्द होकर देखेगा तब स्पंद में भी वही भासेगा, पंद निस्पन्दतुल्य

होकर भासेंगे, यदि समाधि में होगा अथवा ऐसे ही चेष्टा करेगा तो भी तुल्य होगी, न समाधि में शान्ति भासेगी न चेष्टा में दु:ख भासेगा, दोनों में एकरस रहेगा, विषमता कुछ न भासेगी, हे राजन्! जो कुछ प्रकृत आचार आकर प्राप्त हो, देना लेना तथा यज्ञदान आदिक क्रियाएं हैं उनको मर्यादा सहित शास्त्रविधि के अनुसार करो और आत्मस्वरूप में निश्चय रखो, जैसे नट स्वांग बनाकर सब चेष्टाएँ करता है और नटत्व ही को निश्चय रखता है, ऐसे ही तुम भी सब चेष्टाएँ करो, उनके अभिमान और संकल्प से रहित होकर रहो, ग्रहण अथवा त्याग जो कुछ स्वाभाविक आकर प्राप्त हो उसमें ज्यों के त्यों रहो, जब निर्विकल्प होकर अपने स्वरूप को देखोगे तब उत्थान काल में भी तुझे आत्मा ही भासेगा, जैसे जल के जानने से तरंग फेन बुद्‌बुदा सब जल ही भासते हैं, ऐसे जब तू आत्मा को जानेगा तब तुझको संसार भी आत्मरूप भासेगा और जो आत्मा को नहीं जानता उसको जगत् ही दृष्टि आता है, उससे दु:ख पाता है इसलिये तुम पहिले अन्तर्मुख हो जाओ संकल्प को त्यागकर परम निर्वाण अच्युत पद में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे
इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नामाष्टादशोत्तरतमः सर्गः ॥११८॥

एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ११९

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

मनुमहाराज बोले–हे राजन्! यह जो संकल्प पुरुष है संकल्प से आप बँधता है और आप ही मुक्त होता है, जब संकल्प से दृश्य की भावना करता है तब जन्ममृत्यु को पाता है और दु:खी होता है आप ही संकल्प करता है आप ही दु:खबन्धन को प्राप्त होता है, जैसे घुराणकीट आपही गुहा बनाता है और उसमें स्वयं प्रविष्ट होकर प्रवेशमार्ग को भी बन्द कर देता है, ऐसे अपने संकल्प से आप ही दु:ख पाता है और जब संकल्प

को अन्तर्मुख करता है तब मुक्त होता है और मुक्ति ही मानता है, इसलिये हे राजन्! संकल्प को त्यागकर आत्मा जो सबका अपना आप है उसकी भावना कर सुखी हो जाय, हे राजन्! आत्मा के प्रमाद से देह आस्था की भावना हुई है, उससे दुःख पाता है, इसलिये आत्मस्वरूप की भावना कर किन्तु आत्मा है चिद्रूप है, महा आश्चर्यरूप माया है, जिसने संसार को मोह लिया है, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है और अंगअंग में व्याप्त होनेवाला है, उसको नहीं जानते यही आश्चर्य है, हे राजन्! आत्मा सदा अनुभव रूप है, उसमें स्थित हो और संसार आत्मा के प्रमाद के फुरणे से हुआ है, वह सत् भी नहीं असत् भी नहीं, आत्मा से भिन्न करके देखे तो मिथ्या है, इसलिये सत् नहीं और आत्मा के बिना दूसरा है नहीं, सर्वात्मा है इसलिये असत् भी नहीं, तू आत्मा की भावना कर, जो कुछ पदार्थ भासते हैं, वे आत्मा से भिन्न न जान, सर्वात्मा ही हैं जो आत्मा बिना अपर भावना है, उसका त्याग कर, हे राजन्! जैसे जल में तरंग बुद्बुदे होते हैं वे जल से इतर कुछ नहीं जल ही ऐसे भासता है, ऐसे जगत् जो दृष्टि आता है वह आत्मा है ऐसे भासता है जैसे सूर्य और किरणों में भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद नहीं, आत्मा ही जगत्रूप है और भिन्न भिन्न जो आकर भासते हैं, वे चित्तशक्ति करके हैं, इतर नहीं आत्मसत्ता है, जैसे लोहा तप्त हुआ वस्त्रादिक को जलाता है, वह लोहे की अपनी सत्ता नहीं, अग्नि की है। ऐसे चेतन की सत्ता जगत् रूप स्थित हुई है और आत्मा सदा केवल रूप है, जिसमें प्रकाश और तम दोनों नहीं, न सत् है, न असत् है, न कोई देश है, न काल है, न कोई पदार्थ है, केवल चेतन मात्र गुणातीत है न कोई गुण है न माया है, केवल शान्तरूप है, हे राजन्! न शास्त्रों से पाया जाता है न गुरु के वचन से और न तप से ही पाया जाता है केवल अपने आपसे जाना जाता है शास्त्रादिक उसका निर्देश कर देते हैं प्रत्यक्ष हाथ की हथेली पर नहीं रख देते द्रष्टा पुरुष अपने आपसे जानता है जैसे सूर्य की ज्योति नेत्रों में है, वही सूर्य को देखती है, ऐसे आत्मा ही आत्मा को देखता है, अन्तर्मुख होकर संकल्प सें

रहित हुआ, अपने आपको देखता है, जब संकल्प बहिर्मुख होता है, तब वही दृढ़ होकर स्थित होता है, पुनः उसकी भावना होती है, जब संकल्परूप जगत् दृढ़ता से स्थित होता है, तब दुःखदायी होता है, हे राजन्! अन्य दुःखदायी इसका कोई नहीं, अपने ही संकल्प से असम्यग्दर्शी दुःखी होता है और सम्यग्दर्शी को जगत् दृष्टि आने पर भी दुःखदायी नहीं होता, जैसे जेवरी (रस्सी) में सर्प की भावना होती है तब डरता है जब जेवरी के जानने से सर्प की भावना दूर हुई कि भय भावना भी नहीं रहती, ऐसे जिस पुरुष को संसार की भावना होती है वह दुःखदायी है, अतः आत्मा की भावना करो कि सब दुःख नष्ट हो जावें, हे राजन्! तू सर्वदा आनंदरूप है और अद्वैत है, तुझमें कल्पना कोई नहीं तू आत्मरूप है और आत्मा षड् विकार से रहित है, विकार मिथ्या देह है आत्मा शुद्ध है, आत्मा के प्रमाद से विकार भासते हैं, जब आत्मा को जानेगा तब विकार कोई दृष्टि न पड़ेगा क्योंकि आत्मा अद्वैत है, राजा ने कहा—भगवन्! तुम कहते हो आत्मा अद्वैत है यदि इस प्रकार है तो पर्वत आदिक विश्व कैसे भान होता है, पत्थर आदि आकारवान् वस्तुएं कहां से आईं, उसका रूप क्या है, कृपा करके कहो मुनिवर बोले—हे राजन्! आत्मा में संसार कोई नहीं सदा शान्त रूप है, निराकार है उसमें स्पंद निस्पंद दोनों शक्तियां हैं। जब निस्पन्द शक्ति होती है तब केवल अद्वैत भासता है जब स्पंद शक्ति फुरती है, तब जगत् के नाना प्रकार के आकार भासते हैं, वास्तव से आत्मा ही है, इतर कुछ नहीं, जैसे समुद्र में तरंग कुछ अपर नहीं वही रूप हैं पवन के संयोग से फुरते हैं, तो भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं, ऐसे फुरण शक्ति से अहंकार भिन्न भिन्न भासते हैं वास्तव में आत्मस्वरूप है, इतर कुछ नहीं, केवल आत्मा अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित है और सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है और पर्वत आदिक जो विश्व भासता है, वह आत्मा का चमत्कार है, जैसे स्वप्न में पर्वत वृक्षादिक नाना प्रकार के आकार भान होते हैं तो अनुभव रूप हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, इक्ष्वाकु बोले—हे भगवन्! यदि आत्मा सूक्ष्म है तो पर्वतादिक स्थूल होकर कैसे भासता है, कृपा करके कहिये। मुनि

महाराज बोले–हे राजन्! आत्मा अनन्त शक्ति है वह शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है, जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं ऐसे आत्मा की शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं जैसे पवन में दो शक्तियां हैं स्पंद और निःस्पन्द, वही रूप हैं, स्पंद शक्ति से प्रकट भासता है और निस्पंद से प्रकट नहीं भासता, ऐसे आत्मा में स्पंद निस्पंद दो शक्तियां हैं, जब स्पंद शक्ति फुरती हैं, तब अहं भाव प्रकट होता है, जब अहंभाव हुआ तब चित्त उदय होता है, अहं ही चित्त है जब चित्त हुआ तब आकाश की भावना बन जाता है, जब स्पर्श की भावना हुई तब पवन उत्पन्न होता है, जब रूप की भावना की गयी तब अग्नि बन गयी, जब रस की भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ इसी प्रकार की चित्त की कल्पना से तत्व उत्पन्न हुए हैं जब चारों तत्व समष्टि रूप हुए तब एक अंड कहलाया, जब दृढ़ संकल्प किया तब स्वयंभू मनु हुआ, जब अंड फूटा तब तीन लोक हुए स्वर्ग मध्य और पाताल वह तीनों लोक तीनों गुण राजस सात्विक तामस हुए, फिर पर्वतादि दृश्य पदार्थ सर्व हुए, हे राजन्! केवल संकल्प मात्र ही सब हुए हैं, जब स्पंद शक्ति फुरती है तब इस प्रकार आत्मा में भासता है, परन्तु बना कुछ नहीं, जैसे समुद्र में फेन बुद्‌बुदे फुरते हैं वे जलरूप हैं, जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मा से इतर कुछ वस्तु नहीं और आदि मनु जो स्वयंभू है उसने संकल्प से आगे मन कल्पना किये हैं, त्रिगुणमय सृष्टि इस प्रकार उत्पन्न होती है, वह केवल संकल्प मात्र है, जब तक चित्त है तब तक विश्व है, जब चित्त फुरने से रहित हुआ, तब निस्पन्द शक्ति होती है, जब निस्पन्द हुई तब फिर जगत् नहीं दिखाई देता है। हे राजन्! यह विश्व मन के फुरने में है और सत्य की नाईं स्थित हुआ है, इसे सुनो–सत् सर्वदेश सर्वकाल सर्ववस्तु पाता है, वह नहीं भासता और जो असत् है वह सत्य की नाईं भासता है, सत् कैसे असत् की नाईं हुआ है और असत् कैसे सत् की नाईं हुआ है, यह सुनो! जो सत् है वह सर्वदेश, सर्वकाल सर्ववस्तु पाता है वह नहीं भासता और जो असत् है वह परिच्छिन्न रूप है, देशकाल वस्तु परिच्छेद संयुक्त है वह सत् की नाईं हुआ है, जहां

देखिये वहां दृश्य ही गुणमय संसार भान होता है, महा आश्चर्यरूप माया है, जिसने सत्य को असत्य की नाईं क्रिया है और असत् को सत् की नाईं स्थित किया है, वह चित्त के सम्बन्ध से संसार भासता है। आत्मा में संसार कोई नहीं, जब चित्त को स्थित करके देखेगा तो तुझे संसार न भासेगा, जैसे गंभीर जल होता है तो चलता नहीं भासता कि कहां जाता है, ऐसे गंभीर आत्मा में संसार प्रतीति नहीं होती कि कहां फुरता है और संसार भी आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं आत्मस्वरूप ही है, जैसे अग्नि के चिनगारे अग्नि से भिन्न नहीं जल के तरंग जल से भिन्न नहीं और मणि का प्रकाश मणि से भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा से संसार भिन्न नहीं, केवल आत्मस्वरूप है, ऐसे आत्मा को जानकर शान्तिमान् बनो, कि दुःखनाश हो जाये, केवल शान्तपद आत्मा ही तेरी अपनी आप है, अपने स्वरूप को भूलकर दुःखी हुआ है जब आत्मा को जानेगा तब संसार भी आत्मस्वरूप भासेगा क्योंकि आत्मस्वरूप ही तो हैं, आत्मा से इतर वस्तु नहीं ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो जाओ, हे राजन्! यह जगत् सब चिदाकाश रूप है, यही भावना दृढ़ करो, ऐसी भावना जिसकी दृढ़ है और सब इच्छाएं शान्त हो गयी हैं, उस पुरुष को दुःख कोई नहीं लगता, उसने निरिच्छिारूप कवच धारण किया हुआ है हे राजन! अहं अर्थ से रहित जो पुरुष है, जिसके लिए सर्व शून्यता है, जो सर्वथा निरालम्ब का आश्रय किये हैं, वह पुरुष मुक्तिरूप है, मनु महाराज बोले–हे राजन्! यह संसार आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जैसे जल और तरंग भिन्न नहीं, जैसे सूर्य और किरण भिन्न नहीं, जैसे अग्नि और चिनगारे भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा और संसार भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप ही है, जैसे इन्द्रियों के विषय इन्द्रियों में रहते हैं, ऐसे आत्मा में संसार है, जैसे पवन में स्पंद निस्पंद शक्तियां हैं, वे पवन से भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा से भिन्न नहीं आत्मस्वरूप हैं, हे राजन्! विषय की सत्यता को त्यागकर केवल आत्मा की भावना करो कि तुम्हारे संशय मिट जावें, तू आत्मस्वरूप है और निर्गुण है, तुझको गुणों का स्पर्श नहीं होता तू सबसे परे है, जैसे आकाश में धूलि, धुंआ और बादल विकार

भासते हैं, आकाश को लिप्त नहीं कर सकते, केवल आकाश अद्वैत रूप है, ऐसे ज्ञानवान् पुरुष जिसको आत्मज्ञान हुआ है उसके सुख दुःख राजस तामस सात्विक भाव लिप्त नहीं करते, उनमें देखे भी जाते हैं, परन्तु वे अपने में इनको नहीं देखते, जैसे समुद्र में अनेक तरंग जलरूप होते हैं, जैसे शुद्ध मणि में नीलपीत आदिक प्रतिबिंब पड़ते हैं वे देखने मात्र हैं, मणि को स्पर्श नहीं करते ऐसे जिस पुरुष के हृदय से वासना मल दूर हुआ है, उसके शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले राजस तामस सात्विक गुणों के कार्य सुख दुःख देखने मात्र हैं, परन्तु स्पर्श नहीं करते, केवल सत्ता समान पद का निश्चय उसमें होता है, अपर रंग उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाश को धूड का लेप नहीं होता ऐसे आत्मा को गुणों का सम्बन्ध नहीं होता, जो पुरुष ऐसा जानता है उसको ज्ञानी कहते हैं, जब निस्पन्द होता है तब आत्मा होता है, जब स्पन्द होता है तब संसारी होता है जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासती हैं, जब चित्त फुरने से रहित हुआ तब संसार का अत्यन्ताभाव होता है, प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता, जो पूर्व सृष्टि थी अब लीन हो गयी है, संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है, इसलिये हे राजन्! वासना को त्याग चित्त को स्थित कर। यह वासना ही मल है जब वासना का त्याग हुआ, तब केवल आकाश की नाईं आपको स्वच्छ जानेगा वह आत्मा वाणी का विषय नहीं, केवल आत्मतत्त्व का मात्र है और अपने आपमें स्थित है, सर्वदा उदयरूप है और विश्व भी आत्मा का चमत्कार है, भिन्न वस्तु कुछ नहीं, जैसे जल से तरंग भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा से विश्व भिन्न नहीं, आत्मरूप है, द्रष्टा, दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी है, वह अज्ञान करके भासती है आत्मा सर्वदा एकरूप है और त्रिपुटी से रहित है, फुरणे से आत्मा ही त्रिपुटीरूप होकर स्थित हुआ है, जैसे स्वप्न में एक अनुभव रूप होता है और चेतनता करके काल विषमतारूप होकर भासता है, वह कोई दूसरी वस्तु नहीं, ऐसे आत्मा ही त्रिपुटीरूप भासता है, इसलिये चित्त को स्थित करके देखो

आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं और फुरणे में संसार है, जब फुरणा मिट गया तब संसार भी मिट जाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे इक्ष्वाकुमनुसंवादे सर्वब्रह्म-प्रतिपादनं नामैकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥११९॥

विंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२०

सप्तभूमिकाविभागवर्णनम् ।

मनु महाराज बोले–वह फुरणा मिटता कैसे है और स्वरूप की प्राप्ति कैसे होती है, यह सुनिये, सप्तभूमिकाएं कहता हूं, प्रथम अर्थात् सबसे पहिले जिज्ञासु सत्संग द्वारा ब्रह्मविद्या शास्त्र का परिचय प्राप्त करता है, उस सन्त जनों के संग और ब्रह्मविद्या के अवलोकन को प्रथम भूमिका कहते हैं, चित्त के स्थिर करने के स्थान प्रकार को भूमिका कहते हैं, जब सत्संग और शास्त्रों का परिशीलन से बुद्धि का बल बढ़ जाता है, तब उन सत् पुरुषों और शास्त्र के वाक्यों को मन में लाकर उनके विचार करता है कि मैं कौन हूं, यह संसार क्या है, यह दूसरी भूमिका है, तदनन्तर इसने विचार किया कि मैं आत्मा हूं और संसार मिथ्या है, मुझसे संसार कोई नहीं ऐसी भावना बारंबार करना वह तीसरी भूमिका है, तब आत्मभाव की दृढ़ता से आत्मा का साक्षात्कार हुआ, तब सम्पूर्ण वासना मिट गयी, जब स्वरूप से उतरकर देखता है, तब संसार भासता है, परन्तु स्वप्न के समान जानता है, अतः वासना नहीं फुरती ऐसे अवलोकन को चतुर्थ भूमिका कहते हैं, जब साक्षात्कार हो तब आनन्द प्रकट होता है, उस महा आनन्द के प्रकट होने पर उसमें अपने बल से सुषुप्त के समान स्थित होने का नाम पंचम भूमिका है और तुरीया पद छठी भूमिका है, चित्त की दृढ़ता का नाम तुरीया पद है जब तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है तब परम निर्वाण हो जाता है, उसको सप्तम भूमिका कहते हैं, उस परमपद निर्वाणको वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता, प्रथम तीन

भूमिकाएं जो कही हैं, वह जाग्रत् अवस्था है उसमें श्रवण मनन निदिध्यासन कहता है और संसार की सत्ता भी दूर नहीं होती इसी से जाग्रत् अवस्था कही गयी है। चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है संसार की सत्ता नहीं होती, पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है, क्योंकि आनन्द घन में स्थित होता है और छठी भूमिका तूरीयापद है, जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों का साक्षी है, केवल ब्रह्म ही प्रकाशरूप प्रकाशित हो रहा है और निर्वाण पद में चित्त का लय हो जाता है, तुरीयापद में जीवन्मुक्त विचरते हैं, सप्त भूमिका तुरीयातीत पद है, वह परम निर्वाण पद है, तुरीया में ब्रह्माकार वृत्ति रहती है और ब्रह्माकार वृत्ति भी लीन हो जाती है, जहां वाणी की गति नहीं वहां चित्त नष्ट हो जाता है, केवल आत्मतत्व मात्र है, जहां चेतनता मात्र है, वहां अपना अहंभाव का होना भी नहीं शान्त परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है वह तेरा स्वरूप है, सर्व विश्व वही रूप है इतर कुछ नहीं, जैसे स्वर्ण ही भूषण है और स्वर्ण में भूषण कल्पना है और भूषण भी परिणाम से होता है, आत्मा सदा अच्युत रूप है, कभी परिणाम को प्राप्त होनेवाला नहीं केवल एक रस हैं, उसमें चित्त के स्फुरण से विश्व की कल्पना हुई है, विकार युक्त प्रतीत होता है तभी आत्मा से इतर कुछ नहीं, केवल अपने आपमें स्थित है, हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होकर अपने प्रकृत आचार में निरहंकार हुआ विचर और अहंकार के त्याग का अभिमान भी त्यागकर, केवल आत्मरूप होकर रहो, मनु महाराज बोले–हे राजन्! सर्व चिदाकाश सत्ता आदि मध्य अन्त से रहित अनाभास ज्यों की त्यों स्थित है और आगे भी वही स्थित रहेगी, उसमें न ऊर्ध्व है न अधः है न तम है न प्रकाश है, न उससे इतर है सर्व की सत्ता है वह चिन्मात्र परम सार है उसने आप ही संकल्प द्वारा चेता तब जगत् हुआ और क्यों कर हुआ क्या रूप है यह सुनिये, हे राजन्! यह विश्व आत्मा से भिन्न कुछ नहीं आत्मस्वरूप ही है, जैसे जल में तरंग हैं और मिर्च में तीक्ष्णता है खांड में मधुरता है, अग्नि में उष्णता है और बर्फ में शीतलता है, सूर्य में

प्रकाश है, ऐसे आत्मा में विश्व है वह आत्मस्वरूप है, इतर कुछ नहीं, हे राजन्! यदि आत्मस्वरूप है तो शोक और मोह किसका करता है, अभिमान से रहित होकर विचर, जैसे नीति का प्रवाह आकर प्राप्त हो, उसमें विचरो, जैसे काष्ठ की पुतली यन्त्री के धागे से अनिच्छित चेष्टा करती है, ऐसे नीति रूप धागे से अभिमान से रहित होकर विचर कि मैं न कुछ करता हूं न कराता हूं, किसीसे रागद्वेष न करना, जैसे शिला के ऊपर मूर्ति लिखी होती है, उसको न किसी का राग है, न द्वेष है, ऐसे शिला की मूर्ति की नाईं विचरो, ऐसे निरहंकार हो जाओ कि आत्मा से इतर कुछ न फुरे, चाहे व्यवहारी गृहस्थ हो अथवा सन्यासी हो चाहे देहधारी चाहे देह त्यागी हो, चाहे विक्षेपी हो या ध्यानी हो, तुम्हारे लिये दुःख कोई न होगा, ज्यों का त्यों रहेगा, फुरणा ही संसार है, फुरणे से रहित असंसार है जब फुरता है तब संसारी होता है जब फुरणा मिट जाता है तब केवल आकाशरूप भासता है, हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है, आत्मा अपने आपमें स्थित है, यदि सर्व आत्मा ही है तो शोक और मोह किसका किया जाय, हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है और विश्व आत्मा का चमत्कार है और नाना विकार जन्म मरण से आदि जो भासते हैं वह आत्मा के अज्ञान से प्रतीत होते हैं, जब आत्मा का ज्ञान हुआ तब आत्मरूप ही प्रतीत होगा विषमता न रहेगी, जैसे जल के न जानने से तरंग बुद्बुद का ज्ञान होता है, जब जल को जाना तब तरंग बुद्बुद की विषमता कुछ नहीं, सर्व जलरूप है, ऐसे आत्मा के अज्ञान से विकार भासते हैं जब आत्मा का ज्ञान हुआ तब एकरस सर्वात्मा ही प्रतीत होता है और संवेदन से आकार भासते हैं, अहंकार वासना के सम्बन्ध को संवेदन कहते हैं, अहंकार और चित्त दोनों पर्याय हैं, हे रामजी! अहंकार के साथ इसका होना दुःखदायी है, केवल चिन्मात्र में अहंभाव मिथ्या है, जब तक सम्वेदन का स्फुरण दृश्य की ओर है तब तक दृश्य का अन्त नहीं आता और नाना प्रकार के विकार भासते हैं, जब संवेदन आत्माधिष्ठान की ओर आता है, तब आत्माशुद्ध अपना आप होकर भासता है और

सम्वेदन भी आत्मा का आभास कल्पित है; आभास के आश्रय विश्व कल्पित है और आत्मा ज्यों का त्यों है, फुरणे में भी परन्तु फुरणे में विषमता प्रतीत होती है, न फुरणे में ज्यों का त्यों भासता है, जैसे जेवरी के अज्ञान से सर्प भासता है, जब जेवरी (रस्सी) का ज्ञान होता है तो सर्प की विषमता जाती रहती है जेवरी की त्यों भासती है, वह सर्प भासने की समय भी जेवरी ज्यों की त्यों थी, जेवरी में कुछ हुआ नहीं जानने न जानने में समान है, ऐसे आत्मा में भी फुरणे काल में जगत्प्रतीति होती है फुरणे के निवृत्त हुए आत्मा ही भासता है, आत्मा दोनों काल में एक समान है जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं और अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं, ऐसे आत्मा से विश्व भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप ही है, हे राजन्! अहंकार को त्यागकर सत्ता समान अपने स्वरूप में स्थित हो, कि तेरे सर्व दुःख निवृत्त हो जायँ। एक कवच तुम्हारे लिये कहता हूं उसे धारण करके विचरो, यद्यपि अनेक शस्त्रों की वर्षा हो परन्तु जो कदापि छिन्न भिन्न न हो सके, उसे सुनो—जो कुछ भी देखते सुनते हो यह सब ब्रह्म जानो, बार बार यही भावना करो कि ब्रह्म से इतर कुछ न भासे, जब ऐसी भावना दृढ़ होगी तब कोई शस्त्र काट न सकेगा, यह ब्रह्म भावना ही कवच है जब इसको धारण करेगा तब सुखी होगा। वाल्मीकि मुनि बोले—इस प्रकार वसिष्ठजी ने रामचन्द्रजी को मनु और इक्ष्वाकु महाराज सम्वाद सुनाया तब सांयकाल हुआ सूर्य भगवान् अस्ताचल को चले गये और सभी सभासद स्नानार्थ उठे वसिष्ठजी भी स्नानार्थ गये, सूर्य की किरणों के साथ साथ सबेरे सब फिर वहीं आकर बैठ गये मनुमहाराज ने कहा—राजन्! जिसका कारण ही मिथ्या है तो उसका कार्य कैसे सत् हो? यह आभास जो संवेदन है विश्व का कारण है, जो आभास मिथ्या है तो विश्व कैसे सत्य हो, यदि विश्व ही असत् है तो भय किसका करता है और शोक किसका करता है, हे राजन्! न कोई जन्म लेता है न मरता है, न सुख है, न दुःख है, ज्यों का त्यों आत्मास्थित है, उसमें संवेदन विश्व को कल्पित किया है,

इसलिये संवेदन का त्याग करो, कि न मैं हूं न यह है, जब तेरा ऐसा निश्चय दृढ़ होगा तब पीछे आत्मा ही शेष रहेगा और अहंकार निवृत्त हो जायगा, क्योंकि आत्मा के अज्ञान से हुआ है, आत्मज्ञान से नष्ट हो जाता है हे राजन्! जब वस्तु भ्रम से सिद्ध हो और सत् दृष्टि आवे उसको विचारिये यदि विचार करने पर रहे तो सत्य जानिये और आत्मा जानिये और जो विचार करने पर नष्ट हो जाय उसको मिथ्या जानिये, जैसे हीरा भी श्वेत है और बर्फ का मनका भी श्वेत होता है, एक जैसे दोनों प्रतीत होते हैं, उनकी परीक्षा के लिये सूर्य के समान दोनों को रखिये जो धूप से गल जाय उसे झूठा जानिये और ज्यों का त्यों रहे उसको सत् जानिये, ऐसे विचार रूप सूर्य के सामने रक्खे तो अहंकार बर्फ के तुल्य नष्ट हो जाता है क्योंकि अहंकार अनात्म अभिमान में होता है, वह तुच्छ है सर्व व्यापी नहीं और इन्द्रियों की क्रिया अपने में मानता है जो परम धर्म की कल्पना अपने में करता है वह तुच्छ है और आपको भिन्न जानता है अपने आपसे इतर पदार्थों को भिन्न मानता है, इसीलिये विचार करने पर वह बर्फ के हीरे की नाईं मिथ्या होता है, अविचार सिद्ध है, विचार करने पर नष्ट हो जाता है, आत्मा सबका साक्षी ज्यों का त्यों रहता है, अहंकार का भी और इन्द्रियों का भी साक्षी है और सर्व व्यापी है, हे राजन् जो सत् वस्तु है, उसकी भावना करो और सम्यग्दर्शी बनो सम्यग्दर्शी को दुःख कोई नहीं, जैसे जेवरी मार्ग में पड़ी है, उसको जेवरी जानें तो कोई दुःख नहीं और यदि सर्प माने तो भय भीत होना पड़ता है, इसलिये असम्यग्दर्शी मत बनो, सम्यग्दर्शी बनो, हे राजन्! जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं, सुखदायी नहीं दुःखदायी हैं, जब तक इनका संयोग है तब तक सुख भासता है, जब वियोग हुआ तब दुःख पाते हैं। इसलिये तुम उदासीन हो जाओ किसी दृश्य पदार्थ को सुखदायी न जानो और दुःखदायी भी न जानो, सुख और दुःख दोनों मिथ्या हैं, इनमें आस्था मत करो, अहंकार से रहित जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होने को यत्न कर, जब अहंकार नष्ट होगा तब अपने आपको तू जन्म मरण विकारों से

रहित आत्मा जानेगा कि मैं निरहंकार हूं, ब्रह्म हूं, चिन्मात्र हूं ऐसे अहंभाव से रहित होना अपना न होना भी न रहेगा, केवल चिन्मात्र रहेगा, आनन्दरूप होगा और शान्तरूप राग द्वेष के क्षोभ से रहित हो जायेगा, जब ऐसा अपने आपको जान लिया तब शोक किसका करेगा, हे राजन्! इस दृश्य को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो और इस मेरे उपदेश को विचार कि मैं सत्य कहता हूं कि असत्य कहता हूं और विचार से यदि संसार सत्य हो तो संसार की भावना कर और आत्मा सत्य हो तो आत्मा की भावना कर, हे राजन्! तू सम्यग्दर्शी बन सत् को जान और असत् को असत् जान और जो असम्यग्दर्शी है वह सत् को असत् मानता है और असत्य को सत्य मानता है, असत् वस्तु तो स्थिर नहीं रहती, ऐसे न जानने से अज्ञानी दुःख पाता है, जैसे कोई पुरुष कुटी को रचकर चिन्तन करने लगा कि आकाश की मैंने रक्षा की है, जब नष्ट हुई तब शोक करता है, कि आकाश नष्ट हो गया, क्योंकि आकाश को कुटी के आश्रय जानता था ऐसे अज्ञानी पुरुष आत्मा को देह के आश्रय जानकर देह के नष्ट हुए आत्मा का नाश मानता है और दुःखी होता है, जैसे स्वर्ण में भूषण कल्पित हैं, भूषणों के नष्ट हुए मूर्ख स्वर्ण को नष्ट मानता है, ऐसे अज्ञानी देह के नष्ट हुए आपको नष्ट जानता है और जिसको स्वर्ण का ज्ञान है वह भूषणों के नाश से भी स्वर्ण को देखता है और भूषण संज्ञा कल्पित जानता है ऐसे जो ज्ञानवान् है, वह आत्मा को अविनाशी जानता है और देह इन्द्रियों को असत् जानता है, हे राजन्! तू देह इन्द्रियों के अभिमान से रहित बन अभिमान से रहित इन्द्रियों की चेष्टा जब करेगा तब शुभ अशुभ क्रिया बांध न सकेगी और जो अभिमान सहित करेगा तब शुभ अशुभ फल को भोगेगा हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी है वह ऐसी क्रिया का आरंभ करता है जिसका कल्प पर्यन्त नाश न हो और इन्द्रियों के अभिमान के प्रतिबिंब अपने आपमें मानते हैं, मैं कर्ता हूं, भोक्ता हूं ऐसा मानने से अनेक जन्म पाते हैं, उनके कर्मों का नाश कभी नहीं होता और जो तत्ववेता ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे अपने आपको देह इन्द्रिय और

गुणों से रहित जानते हैं, उनके संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं संचित कर्म वृक्ष की नांईं हैं और क्रियामाण फूल फल की नाईं हैं जैसे रुई से लपेटकर आग लगाने से वृक्ष फूल फल सूखे तृण के समान दग्ध होते हैं ऐसे ज्ञानरूप अग्नि से संचित और क्रियमाण कर्म दग्ध हो जाते हैं, इसलिये हे राजन्! जो चेष्टा वासना से रहित होकर करेगा, उसमें बंधन कोई नहीं जैसे बालक के अङ्ग स्वाभाविक भली बुरी प्रकार हिलते हैं परंतु उसके हृदय में अभिमान नहीं फुरता इसलिये उसको बन्धन में नहीं लाता, ऐसे तू भी इच्छा से रहित होकर चेष्टाकर तब तुझे कोई बंधन न होगा, यद्यपि सब चेष्टायें तेरे अन्दर प्रतीत होंगी तो भी वासना से रहित होगा, पुनर्जन्म न होगा, जैसे भूना बीज देखने मात्र होता है और उत्पन्न नहीं होता, तेरे अन्दर सब क्रियाएं होती दीखेंगी परन्तु जन्म का कारण न होंगी, पुण्य क्रिया का फल सुख न भोगेगा और पाप क्रिया का फल दुःख न भोगेगा। तुझे पाप पुण्य का स्पर्श न होगा, इसलिये अभिलाष से रहित होकर अपना प्रकृत आचार करो, हे राजन्! जैसे आकाश में जल के साथ पूर्ण मेघ प्रतीत होते हैं परन्तु आकाश को लिप्त नहीं करते ऐसे तुम्हें कोई क्रिया बंधन न करेगी, जैसे जो विष के खाने वाला है उसको विष नहीं मार सकता ऐसे ज्ञानी को कोई क्रिया नहीं बांध सकती, ज्ञानवान् क्रिया करने में भी आपको अकर्ता जानता है और अज्ञानी न करने पर भी अभिमान से कर्ता हो जाता है, जो इन्द्रियों और देह से कुछ न करने पर आपको कर्ता मानता है और जो देह इन्द्रियों से करता है उसके अभिमान से रहित है, वह करने में भी अकर्ता है और जो पुरुष कर्म से इन्द्रियों का संयम करता है और मन में विषय भोग की तृष्णा रखता है अन्तःकरण जिसका राग द्वेष से मूढ़ है बड़े काम को उठाता और दुःखी होता है। वह मिथ्याचारी है, जो पुरुष मन से इन्द्रियों के राग द्वेष से रहित है और कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करता है वह विशेष है, वह अपने मन में कुछ नहीं करता मोक्ष पाता है, हे राजन्! अज्ञानरूप वासना से रहित होकर विचरो, इस प्रकार विचरने से आत्मा को

यथावत् (ज्यों का त्यों) जानोगे और सदा उदयरूप तथा सर्वप्रकाश अपने आपको जानोगे, जन्ममरण के बन्धन से मुक्ति होगी, हे राजन्! उस पद को पाकर परम शान्तिमान् हो जाओगे और अपर सर्वकला अभ्यास विशेष के बिना नष्ट होती है जैसे धान बीजे जाते हैं दिन प्रतिदिन बढ़ने लगते हैं, ऐसे ज्ञानकला प्राप्त हुई दिन दिन प्रति बढ़ती है, हे राजन्! ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर ऐसे जानता है कि मैं न मरता हूँ न उत्पन्न होता हूँ, निरहंकार निष्किंचन रूप हूँ, सबका प्रकाशक हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ, हे राजन्! ऐसी ज्ञानकला को पाकर मोह को नहीं प्राप्त होता, जैसे दूध को मथकर घृत निकाल लिया जाय तो फिर नहीं मिलता, ऐसे जिसको ज्ञानकला का उदय प्राप्त हुआ, उसको मोह का स्पर्श नहीं होता, हे राजन्! पुरुष प्रयत्न यही है कि अपने स्वरूप में स्थित होना और अन्य उपाय का त्याग करना, जिस पुरुष को आत्मा की भावना हुई है, वह संसार सागर के पार पहुँचा है और जिसको संसार की भावना है वह संसारी जरा मृत्यु के दुःख को प्राप्त होता है, मनु महाराज बोले–हे राजन्! बड़ा आश्चर्य है कि शुद्ध आत्मा में माया से अनेक प्रकार के शरीर इन्द्रिय दृश्य प्रतीत होते हैं, हे राजन्! दृश्य का कारण अज्ञान है, जिस आत्मा के अज्ञान से दृश्य भासता है उसी के ज्ञान से लीन हो जाता है, इसलिये इस संवेदन को त्यागकर आत्मा की भावना करो, यह मैं हूँ, यह मेरे हैं, मिथ्या ही फुरते हैं, हे राजन्! प्रथम जो कारण रूप से एक जीव उत्पन्न हुआ है उस आदि जीव से अनेक जीवगण हुए हैं, जैसे अग्नि के चिनगारे निकलते हैं ऐसे इस जीव ने आगे अनेक रूप धारण किये हैं, कोई गन्धर्व कोई विद्याधर, कोई मनुष्य, कोई राक्षस इत्यादि जो संकल्प होते गये हैं, ऐसे रूप होते गये, वास्तव से क्या है, जैसे जल में तरंग स्वरूप के प्रमाद से अनेक भावों को प्राप्त होते हैं, अपने संकल्प आप ही बन्धनरूप होते गये हैं, इसलिये संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है, हे राजन्! इस भावना को त्यागकर आत्मपद की शरण को प्राप्त हो, जो आत्मा अनन्त है किसी विश्व का अन्य प्रकार से

भान होता है, जैसे समुद्र सम है, उसमें कभी आवर्त उठते हैं, कभी बुदबुदे उठते हैं, वे जल से भिन्न नहीं, नाम की अनेकता से उनकी वास्तविकता में ऊनता नहीं आती, आत्मा में अनेक प्रकार का विश्व फुरता है, वह आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, इसलिये आत्मा की भावना करो, कहीं ब्रह्म सत् संकल्प होकर फुरता है, वहां जानता है मैं ब्रह्म हूँ और शुद्ध रूप हूँ, सदा मुक्त हूँ, मैं इस संसार समुद्र के पार परिवार सहित पहुँच गया हूँ, जहाँ चेतन शक्ति है, वहां आपको जीता मानता है और दुःखी भी जानता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सप्तभूमिकाविभागवर्णनं नाम विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२०॥

एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२१

जीवसंबंधमुक्तिवर्णनम् ।

मनु महाराज बोले–हे राजन्! अब जीव का लक्षण श्रवण कीजिये, अन्तःकरण के साथ मिलकर भोग की वासना करने और विषयों की तृष्णा करने वाले को जीवात्मा कहते हैं और उसकी जब वासना क्षय हो जाती है और शुद्ध आत्मा में आत्म प्रत्यय है तब जीव संज्ञा नष्ट हो जाती है, केवल शुद्ध आत्मा प्रत्यगात्मा प्रकाशित होता है, हे राजन्! जब चेतन अन्तःकरण के साथ मिलकर बर्हिमुख फुरता है, तब संसारी हुआ जरा मरण से दुःखी होता है, जहां चेतन शक्ति अन्तर्मुख होती है तब जन्म मरण की भावना को त्यागकर स्वरूप की भावना करता है, सर्व दुःख की निवृत्ति होती है, जब इसकी भावना स्वरूप की ओर लगती है, तब दुःख कोई नहीं रहता। जब स्वरूप का प्रमाद हो जाता है तब दुःख पाता है और स्वरूप का ज्ञान होने पर आनन्द रूप मुक्त हो जाता है। हे राजन्! संसार रूप कूप की टिंड (अरहट का पात्र) नहीं होना, जब टिंड (अरहट का पात्र) रस्सी के साथ बाँधा जाता है जो कभी ऊपर को

जाता है कभी नीचे को आता है जब रस्सी टूट जाती है तब न ऊपर को जाता है न नीचे को आता है, दुःख पाता है, वह कूप क्या है और अधः क्या है, ऊर्ध्व क्या है? यह श्रवण कर, हे राजन्! संसार कूप है, स्वर्गलोक ऊर्ध्व और पाताल नरक अधः नीचे हैं, पुण्य कर्म से स्वर्ग को जाता है और पाप कर्म से नरक को जाता है, आशारूप रस्सी से बँधा हुआ जन्म मरण रूप चक्र में फिरता है स्वर्ग नरक के फेरने का कारण आशा है, जब आशा निवृत्त होती है तब न कोई स्वर्ग है न नरक है, जब तक देह में अभिमान है तब तक नीच से नीच गति को प्राप्त होता है, जैसे पत्थर की शिला समुद्र में डालिये तो नीचे से नीचे चली जाती है, ऐसे नीच स्थानों को देखकर देहाभिमानी नीचे को चला जाता है और जब इन्द्रियादिक का अभिमान त्याग किया तब जैसे क्षीर समुद्र से निकलकर चन्द्रमा ऊर्ध्व को चला जाता है ऐसे यह भी ऊर्ध्व को जाता है, हे राजन्! जब आत्मा की भावना करेगा, तब आत्मा ही हो जायेगा, इसलिये आशा पाश को तोड़कर शान्तपद को प्राप्त हो, आत्मा चिन्तामणि की नाईं है, जैसी भावना की जाय ऐसी सिद्धि प्राप्त होती है, जब तू आत्मभावना करेगा तब सम्पूर्ण विश्व अपने में देखेगा, जैसे पर्वत, शिला पत्थर सब अपने में देखता है, ऐसे तू सब आत्मा में जानेगा, हे राजन्! प्रत्येक दृष्टि आत्मा के आश्रय में है, शास्त्र और शास्त्र दृष्टि सब आत्मा के आश्रित हैं, राजा आत्मा के आश्रय है, यह सब सत्य है, आत्मा चिन्तामणि है, कल्पवृक्ष है, जैसी कोई भावना करता है, ऐसी सिद्धि होती है, हे राजन्! फुरने में यह दृष्टि सर्व सत्य है, जब फुरणा नष्ट हुआ तब न कोई शास्त्र है न कोई दृष्टि है, केवल अद्वैत आत्मा है, तब निषेध किसका किया जाये और स्वीकार किसको किया जाये, जो पुरुष अहंकार से रहित हुआ है वह सर्व शास्त्रों और सर्व दृष्टियों के ऊपर विराजता है, सब आत्मा है, जैनी उसे जिन कहते हैं, कालवादी उसी को काल कहते हैं, सर्वाश्रय आत्मा है, जो पुरुष देहाभिमानी है, वह मूर्ख है, स्वरूप के अज्ञान से अधः ऊर्ध्व लोक को गमन आगमन करता है और पशु पक्षी स्थावर जंगम योनि को पाता है और आशारूप फांसी के

साथ बाँधा हुआ दुःख पाता है और जो पुरुष सम्यक्‌दर्शी है जिसकी चेष्टा शुद्ध है, उसमें कोई विकार दृष्टि नहीं आता, आकाश की नाईं सदा निर्मल भासता है और सम्पूर्ण विश्व उसको आत्मस्वरूप भासता है और जितनी कुछ चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादिक करते हैं, उसका कर्ता भी आपको जानता है, उसके सर्व दुःखों का अन्त होता है, दुःख से रहित आत्मपद को प्राप्त होता है, सर्व सुख की सीमा उसको प्राप्त होती है, हे राजन्! जब तू ऐसे सुख को प्राप्त होगा तब तुझे कोई तृष्णा न रहेगी, जैसे नदी तब तक चलती है जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं हुई, जब समुद्र को प्राप्त हुई तब चलने से रहित होती है, ऐसे ही जब तू आत्मपद को प्राप्त होगा तब तेरे मन में कोई इच्छा न रहेगी। हे राजन्! तू अहंकार का त्यागकर, अथवा ऐसा जान कि मैं ही हूँ और जरा मरण आदिक दुःख तब तक हैं जब तक आत्मबोध नहीं प्राप्त हुआ। जब आत्मबोध हुआ तब दुःख कोई नहीं रहता और दोनों ही दुःख भारी हैं, जन्म और मृत्यु से मिट जाते हैं, इन्द्र के वज्र के समान भी दुःख हो तो भी ज्ञानवान् को स्पर्श नहीं करता, हे राजन्! जैसे वृक्ष होता है, जब उसको फल पड़ता है तब सूखकर गिरता है, इसी प्रकार जब ज्ञानरूप फल प्राप्त होता है तब मन बुद्धि अहंकार वृक्ष की नाईं गिर पड़ते हैं, जब तक मन की चपलता है तब तक दुःख पाता है, जब मन की चपलता निवृत्त हुई तब क्षोभ कोई नहीं रहता, शान्तपद को प्राप्त होता है और शान्ति तब होती है, जब प्रकृति का वियोग होता है और प्रकृति के संयोग से संसारी होता है और दुःख पाता है, इसलिये प्रकृति अर्थात् अहंकार का त्यागकर अहंकार से रहित होकर चेष्टा कर, जब तू अहंकार से रहित हुआ तब उस पद को प्राप्त होगा, जो न जड़ है न चेतन है, न शून्य है न अशून्य है, न केवल है न अकेवल है, न आत्मा कहें, न अनात्मा कहें, न एक कहें, न दो कहें, जितने भी नाम हैं, सब प्रतियोगी के साथ मिले हुए हैं, प्रतियोगी हुआ तो द्वैत हुआ और आत्मा अद्वैतमात्र है, जिसमें वाणी की गति नहीं, जो अवाच्य पद है उसको कैसे कहें जितनी भी नाम संज्ञाएं हैं उपदेश

मात्र है, आत्मा अनिर्वाच्य पद है इसलिये संकल्प का त्याग करो और आत्मा की भावना करो, जब आत्मभावना होगी तब केवल आत्मा ही प्रकाशित होगा, जैसे फूल का कोई अंग सुगन्ध से रहित नहीं, ऐसे आत्मा से इतर कुछ नहीं, हे राजन्! जब अहंकार का त्याग करेगा तब अपने आप से शोभायमान होगा, आकाश की नाईं निर्मल आत्मा में स्थित होगा, अहंकार को त्यागकर उस पद को प्राप्त होगा जहां शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ प्राप्त नहीं होते और सम्पूर्ण इन्द्रियों के रस वहां लीन हो जाते हैं और वहां जाकर सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं, केवल मोक्षपद को प्राप्त होगा, हे राजन्! मोक्ष किसी देश विशेष में नहीं, जो वहां जाकर प्राप्त किया जा सके, मोक्ष किसी काल में नहीं कि अमुक काल आवेगा तब मुक्ति होगी और मोक्ष कोई पदार्थ नहीं, जिसको ग्रहण कर लेगा, हे राजन्! प्रकृत्त अहंकार से ही मोक्ष होता है, जब तू अहंकार का त्याग करे तब ही मोक्ष है, जब इस अनात्म अभिमान को त्यागेगा, तब अपने आप से सुशोभित होगा, जैसे धुएँ के बिना अग्नि का प्रकाश अधिक और उज्ज्वल होता है, ऐसे अहंकार से रहित तू प्रकाशित होगा, जैसे बड़े पर्वत पर निर्मल और गम्भीर तालाब शोभा देता है, ऐसे ही तू भी सुशोभित होगा, हे राजन्! तुम अपने स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जीवबन्धमुक्तिवर्णनं
नाम एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१२१।।

द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२२

मनु इक्ष्वाकु संवादसमाप्तिवर्णनम् ।

मनु महाराज बोले–हे राजन्! तुम आत्माराम बनो, सिद्ध हो जाओ, राग द्वेष से रहित नित्य अन्तर्मुख हो रहो, जब तुम आत्माराम हो जाओगे तब तुम्हारी व्याकुलता नष्ट हो जायेगी और अन्तःकरण पूर्ण

चन्द्रमा के समान परम शीतल हो जायेगा, ऐसे होकर अपने प्रकृत आचार में विचरो और किसी फल की इच्छा न करो, जो पुरुष वांछ से रहित होकर कर्म करता है, वह सदा अकर्ता है और बड़ी शोभा पाता है, हे राजन्! ऐसी अवस्था में स्थित होकर भोजन आ जाये तो उसका भक्षण करो और यदि अनिच्छित वस्त्र आ जाय तो उसको पहिन लो जहां निद्रा आवे वहां शयन करो और राग द्वेष से रहित रहो, जब तुम ऐसे हो जाओगे तब तू शास्त्रों और शास्त्रों के अर्थ से उल्लंघित वर्तेगा, जो ऐसा पुरुष है वह परम रस को पाकर मतवाला होता है, उसको संसार की इच्छा नहीं रहती, हे राजन्! ज्ञानवान् काशी में देह त्यागे अथवा चंडाल के घर में जहां, त्यागे वही मुक्ति है, वह सदा आत्मस्वरूप में स्थित है और वर्तमान काल में देह को नहीं त्यागता, क्योंकि जिस काल में उसको ज्ञान हुआ है, उसी काल में देह का अभाव हुआ है, ज्ञान से देह दग्ध हो जाता है, हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्तिरूप है, न किसी की स्तुति करता है न निंदा करता है क्योंकि उसकी चित्त की कलना मिट गई है, यद्यपि रागद्वेष ज्ञानवान् में दृष्टि आता है और वह हंसता रोता भी दृष्टि आता है परन्तु अन्तःकरण अपने जानने से न राग है न द्वेष है न हंसता है, न रोता है, ज्यों का त्यों है, जैसे आकाशरूप शून्य रूप है और मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं परन्तु आकाश को लिप्त नहीं करते, ऐसे ज्ञानवान् को कोई क्रिया बन्धन में नहीं करती, अज्ञानी जानते हैं कि ज्ञानवान् क्रिया करता है, हे राजन्! ज्ञानवान् सदा नमस्कार करने योग्य है तथा पूज्य है, जिस स्थान में ज्ञानवान् बैठता है उस स्थान को भी नमस्कार है, जिसके साथ बोलता है उसको भी नमस्कार है जिसके ऊपर ज्ञानवान् दृष्टि करता है उसको भी नमस्कार है वह सबका आश्रयभूत है, हे राजन्! जैसा ज्ञानवान् की दृष्टि से आनन्द मिलता है वह तप करके नहीं मिलता, दान से नहीं मिलता, यज्ञ कर्मों से भी नहीं मिलता, ऐसी दृष्टि किसी की नहीं जैसे दृष्टि सन्त की है, उससे ऐसा आनन्द मिलता है, जो वर्णनातीत है, जो पुरुष सन्त की दृष्टि को पाकर ऐसा होता है जिससे लोक दुःख नहीं पाते जो लोगों से दुःख नहीं पाता है,

न किसी का भय करता है, न हर्ष करता है, हे राजन्! सिद्धि पाने का सुख अल्प है, क्या है जो उड़ने की सिद्धि पायी तो क्या हुआ, पक्षी अनेक उड़ते फिरते हैं, इससे आत्मज्ञान की प्राप्ति तो होती नहीं और आत्मज्ञान बिना शांति नहीं मिलती, जब आत्मज्ञान प्राप्त हुआ तब जरा मृत्यु आदि दु:खों से मुक्त होता है, दु:ख इसमें कोई नहीं रहता, जैसे सिंह पिंजरे से छूटा हुआ पुन: पिंजरे के बन्धन में नहीं पड़ता, ऐसे वह पुरुष अज्ञान रूप पिंजरे में नहीं फंसता, हे राजन्! इसलिये तुम आत्मा की भावना करो कि आपके सब दु:ख नष्ट हों, यह सब दु:ख अज्ञान से ही तुझे भासते हैं, अज्ञान से रहित तू सदा आनन्द रूप है, आत्मा अनुभव रूप है, उस अनुभव रूप प्रत्यगात्मा में स्थिति प्राप्त करो, जब आत्मा में स्थिति प्राप्त होगी, तब तेरे अन्दर चेष्टा होती नजर आयेगी, परन्तु स्पर्श न करेगी, जैसे शुद्ध मणि के निकट जैसा रंग रक्खें, श्वेत, रक्त, पीत, श्याम उसके प्रतिबिंब को ग्रहण करती है तो भी कोई रंग स्पर्श नहीं करता, उसमें कल्पित जैसे भासते हैं, ऐसे तू प्रकृति आचार को अङ्गीकार करता हुआ विचर, तुझे कोई पाप स्पर्श न करेगा, वसिष्ठ महर्षि बोले–हे रामजी! इस प्रकार मनु महाराज उपदेश करके चुप हो गये, तब राजा ने भले प्रकार मनु का पूजन किया, मनु महाराज भी आकाश मार्ग से उड़कर ब्रह्मलोक में जा प्राप्त हुए और राजा इक्ष्वाकु राज्य करने लगे, हे रामजी! जैसे राजा इक्ष्वाकु ने जीवन्मुक्त होकर राज्य किया है, ऐसे तू भी इस दृष्टि का आश्रय करके विचर।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मनुइक्ष्वाकु संवादसमाप्ति वर्णनं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२२॥

त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२३

ज्ञानिलक्षणविचारवर्णनम् ।

श्री रामचन्द्र महाराज ने कहा—हे भगवन्! आपने कहा कि जिस प्रकार राजा इक्ष्वाकु ने ज्ञानवान् होकर राज्य चेष्टा प्रारम्भ की, ऐसे तुम भी करो, इसमें मेरा प्रश्न है कि जो अपूर्व अतिशय हो उसका पाना विशेष है और जो पूर्व कई पुरुषों ने पाया है उसका पाना अपूर्व अतिशय नहीं, इसलिये मुझे वह कहो जो अपूर्व अतिशय सबसे विशेष है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ज्ञानवान् सदा शान्तरूप है और रागद्वेष से रहित है और अपूर्व अतिशय को पाता है, जितना भी अन्य अतिशय है, वह पूर्व अतिशय है और ज्ञानवान् अपूर्व अतिशय को पाता है, ज्ञानी से अन्य कोई नहीं पाता, आत्मज्ञान को ज्ञानी ही पाता है, वह ज्ञान एक ही है, हे रामजी! दूसरा नहीं पाता तो अपूर्व अतिशय क्यों हुआ, अपूर्व अतिशय को पाकर ज्ञानवान् प्रकृत आचार और सर्व चेष्टाएं भी करता है, तो भी निश्चय सर्वदा आत्मा में रखता है, रामजी ने कहा—भगवन्! ज्ञानवान् ऐसा है जो सब चेष्टाएं करता है, अज्ञानी की नाईं तो उसको किन लक्षणों से तत्ववेत्ता जाना जा सके, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! एक स्वसंवेद्य लक्षण है और एक परसंवेद्य लक्षण है, जो आप ही आपको जानता है, उसे स्वसंवेद्य कहते हैं, परसंवेद्य उसको कहते हैं जिसको अपर भी जानते हैं, हे रामजी! पर संवेद्य लक्षण मैं कहता हूँ, तप दान व्रत यज्ञ को परसंवेद्य कहते हैं और सुख दुःख की प्राप्ति में धैर्य से रहना समान साधु के लक्षण हैं और महाकर्ता महाभोक्ता महात्यागी क्षमा दया यह लक्षण साधु के हैं, ज्ञानवान् के नहीं और जितनी अणिमादि सिद्धियाँ हैं, उड़ना, छिप जाना, यह भी समान लक्षण हैं, परन्तु यह स्वाभाविक, उसमें आकर फुरते हैं वे अन्य करकेभी जाने जाते हैं और जो ज्ञानी के लक्षण हैं वह स्वसंवेद्य है और कोई इससे अधिक उसके सिर पर सींग नहीं कि उससे पहिचान हो, जैसे और व्यवहार हैं, ऐसे सिद्धि ज्ञानी को

समान है, यह भी ज्ञानवान् का लक्षण नहीं, पुण्य पापादिक क्रिया परसम्वेद्य है, वह माया का कल्पन है, ज्ञानी का नहीं, जितने कुछ लक्षण देखने में आते हैं, मिथ्या हैं, माया कल्पित हैं, ज्ञानी के नहीं, ज्ञानी का लक्षण सर्वदा आत्मा में स्थित है और अपने आप से सन्तुष्ट है, न किसी का हर्ष है न शोक है और देह के जीवित होने तथा मृत होने पर भी समान है और काम, क्रोध, लोभ, मोह सबको जानता है, इसका लक्षण इन्द्रियों का विषय नहीं, क्योंकि अनिर्वाच्य पदं को प्राप्त हुआ है, हे रामजी! जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसका चित्त स्वाभाविक विषय से विरस होता है और इन्द्रियजित् होता है तो उसकी भोग की इच्छा निवृत्त हो जाती है, स्वाभाविक ही उसके विषय निवृत्त हो जाते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ज्ञानिलजणविचार वर्णनं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२३॥

चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२४

कर्माकर्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! माया जाल का काटना महा कठिन है, यह आदि कलना जीव को हुई, जो कोई इसमें सत्य बुद्धि करता है, पक्षी के समान जाल में फंसा हुआ निकल नहीं सकता है, अनात्म अभिमान से यह दोष होता है, हे रामजी! मेरी बात फिर सुनो, मेरे वचन तुम्हें प्रिय लगते हैं, जैसे मेघ अर्थात् बादल का शब्द (आवाज, गरज) मोर को प्यारा लगता है, मैं भी तेरी हित कामना से ही उपदेश करता हूँ, ऐसा रघुकुल का अन्य गुरु कोई नहीं हुआ, जो शिष्य का संशय निवृत्त करे, हे रामजी! मेरा शिष्य भी ऐसा कोई नहीं हुआ, जो मेरे उपदेश से न जगा हो, जो हैं सब जगे हुए हैं, इसलिये मैं तुम्हारी सफलता के वास्ते अपने जप तप ध्यान आदि कर्मों से भी समय निकालूँगा और तुम्हें जगाऊँगा,

अब मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ, सावधान होकर श्रवण करो, हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो अहंभाव हुआ है, जो कुछ अहंकार प्रतीत होता है, वह मिथ्या है, इसमें सत्य कुछ नहीं और जो उसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है, वह सत्य है, उसका नाश कदाचित् नहीं होता और जो जो वस्तु स्फुरण से उत्पन्न होती है, वे सब नाशवान् हैं। यह बात बालक भी जानते हैं जो सत्य है वह असत्य नहीं होता और जो वस्तु असत्य है वह सत्य नहीं होती, जैसे रेत से घृत निकलना असत्य है, कदाचित् नहीं निकलता, जैसे दर्दुर को निकालकर चूर्ण कर दिया जाये, एक दर्दुर के लाख कण करें अथवा शिला ऊपर घिसायें जब उस पर वर्षा होगी तब सब कण दर्दुर हो जायेंगे, हे रामजी! वे दर्दुर तब उत्पन्न हुए जब उनमें सत्यता थी, इसलिये सत्य का नाश कदाचित् नहीं होता और असत्य का सद्भाव कभी नहीं होता, हे रामजी! सत्य ब्रह्म है, उसकी भावना करो, जो ब्रह्म भी भावना करता है वह ब्रह्म ही होता है, जैसे घृत में घृत एक हो जाता है, दूध में दूध मिलता है, जल में जल मिलता है, ऐसे ही यह जीव चिद्घन ब्रह्म के साथ भावना से एक हो जाता है, इसकी जीव संज्ञा निवृत्त हो जाती है, जैसे अमृत पान करने से अमर हो जाता है, ऐसे ब्रह्म की भावना करने से ब्रह्म हो जाता है और यदि अनात्मा की भावना करता है तो पराधीन होकर दुःख पाता है, जैसे विषपान करने से अवश्य मरता है, ऐसे अनात्मा की भावना से अवश्य दुःख पाता है, उसका नाश होता है, इसलिये आत्मभाव में स्थित रहो, हे रामजी! जो वस्तु संकल्प से उदय पाती है, उसका रहना भी थोडा काल होता है, जो चल वस्तु होती है, अवश्य नाश होने वाली, यह दृश्य आत्मा में भ्रम से सिद्ध है, जैसे मृगतृष्णा का जल और सीपी में रूप भ्रम करके सिद्ध है और जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भी वास्तव नहीं, ऐसे अहंकार से देह और इन्द्रियों से सुख भासता है, वह सब मिथ्या है, ऐसे दृश्य की भावना त्यागकर अपने अनुभव स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो, जब आत्मस्थित होगा तब मोह निवृत्ति निश्चित होगी, जैसे पारस से सुवर्ण बना हुआ

ताम्बा पुनः ताम्बा नहीं हो सकता, ऐसे तुम भी जब आत्मपद पाओगे तो पुनः मोह नहीं प्रकट होगा, यह मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसा अहं, त्वं भाव तेरा निवृत्त हो जायेगा, यह भावना न रहेगी, रामजी बोले–हे भगवन्! मच्छर और जुआं आदिक जो प्रस्वेद से उत्पन्न होते हैं, वह सब कर्म करके उत्पन्न होते हैं यह बिना कर्म के ही होते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आदि परमात्मा से जब उत्पत्ति हुई है, वे चार प्रकार के जीव हुए हैं, एक कर्मों के बिना हुए हैं, एक आगे होने हैं, एक अब भी उत्पन्न होते हैं, रामजी ने कहा–हे मुनिवर! आप संशय रूप बादलों को निवृत्त करने के लिये पवन हैं, अज्ञानांधकार की निवृत्ति के लिये सूर्य हैं। कृपा करके कहो कि कर्मों के बिना कैसे उत्पन्न होते हैं और कर्मों से कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे कैसे होते हैं और कैसे आगे होते हैं, यह कहने की कृपा कीजिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आत्माचिदाकाश है, अपने आप में स्थित है, जैसे अग्नि अपनी उष्णता में स्थित है, ऐसे आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है, अनन्त है, अविनाशी है, उसमें फुरणा शक्ति स्वाभाविक स्थित है, जैसे पवन में स्पन्दशक्ति स्वाभाविक है, जैसे फूल में सुगन्ध स्वाभाविक है, ऐसे आत्मा में स्फुरण शक्ति है, हे रामजी! स्फुरण जैसे आद्य फुरी है, उस शब्द की अपेक्षा से तब आकाश हुआ, जब स्पर्श की अपेक्षा की तब पवन प्रकट हुआ, इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा हो आयीं, शुद्ध संवित् में जो आदि फुरना हुआ, प्रथम अन्तवाहक शरीर हुए, उनका निश्चय आत्मा में रहा कि हम आत्मा हैं, संपूर्ण विश्व हमारा संकल्प है, हे रामजी! कई इस प्रकार उत्पन्न होकर अन्तवाहक से फिर विदेह मुक्ति को प्राप्त हुए, जैसे जल से बर्फ होकर सूर्य के तेज से शीघ्र ही जल हो जाता है, ऐसे शीघ्र ही विदेह मुक्त हुए और कई अन्तवाहक शरीरों में स्थित हुए, उनका निश्चय आत्मा में रहा और कई अन्तवाहक से आधिभौतिक हो गये, जब तक अन्तवाहक में स्मरण रहा, तब तक अन्तवाहक रहे, जब स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प से जो भूत रचे

थे, उनमें दृढ़ निश्चय हुआ और जान लिया कि यह हम हैं, तब आधिभौतिक हो गये, जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लगे, निश्चय में भी यही हुआ कि मेरा कर्म यही है, जैसे शैत्य की अधिकता से जल से बर्फ हो जाता है, ऐसे संवित् में दृढ संकल्प हुआ तब अपने आपको आधिभौतिक जाना, हे रामजी! आदि परमात्मा से जो फुरे हैं, वह कर्म बिना उत्पन्न हुए हैं, उनका कर्म कोई नहीं, अन्तवाहक में रहे, इससे उनकी ईश्वर संज्ञा हुई, पुनः उनके संकल्प से जीव उत्पन्न हुए, उनका कारण ईश्वर हुआ और आगे जीव कल्पना से उनका फुरणा कर्म हुए जैसे कर्म करते हैं वैसे शरीर धारण करते हैं, हे रामजी! आत्मा से जो जीव उत्पन्न होते हैं वे आदि अकारण होते हैं जो आज उत्पन्न हुए हैं तो भी और चिर काल में उत्पन्न हुए हैं, तो भी वे पीछे कर्म के वश से कारण भाव को प्राप्त हुए हैं, हे रामजी! जो आदि स्फुरण हुआ है और स्वरूप में जिनका दृढ़ निश्चय रहा उन की संज्ञा पुण्य है और स्वरूप को विस्मरण करके जिन्होंने आधिभौतिक में निश्चय किया है उनकी धन संज्ञा है, हे रामजी! पुण्य से धन होना सुगम है और धन से पुण्य होना कठिन है, कोई भाग्यवान् पुरुष होता है, जो यत्न करके धन से पुण्यवान् होता है, जैस पर्वत से पत्थर गिरना सुगम है, ऐसे पुण्य से धन होना सुगम है और जैसे पत्थर को पर्वत पर चढ़ाना कठिन है, ऐसे धन से पुण्य होना कठिन है, कई चिरकाल तक धन में बहते हैं, कई यत्न करके शीघ्र ही पुण्यवान् होते हैं, हे रामजी! जो सदा अन्तवाहक रहते हैं, उनकी संज्ञा ईश्वर है और अन्तवाहक को त्यागकर जब आधिभौतिक होते हैं, वे जीव कहाते हैं और परतंत्र हैं, जैसे कर्म करते हैं ऐसे आगे शरीर धारण करते हैं और जो धन से पुण्यवान् होते हैं वे ज्ञानवान् हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता, अब भी जो उत्पन्न होते हैं, वे प्रथम कर्मों के बिना होते हैं, जब अपने स्वरूप से गिरते हैं, तब जैसा संकल्प करते हैं (संकल्प ही कर्म हैं) ऐसे ही आगे शरीर धारण करते हैं, हे रामजी! यह विश्व संकल्प मात्र है, इसलिये संकल्प का त्याग करो, इस दृश्य की आस्था न करो, हे

रामजी! खान पान आदि चेष्टाएं करो परन्तु उनमें अहंभाव न हो, अहंकार अज्ञान से सिद्ध हुआ है, दृश्य मिथ्या है, अहंभाव के होने से दुःखी होता है, इसलिये अहंकार से रहित चेष्टा करो, हे रामजी! बन्ध और मोक्ष का लक्षण सुनो। ग्राह्यग्राहकरूप इन्द्रियों के और विषयों के संयोग में इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष करना यही बन्धन है, जैसे जाल में पक्षी बद्ध होता है, ग्राह्य ग्राहकरूप इन्द्रिय विषयों के सम्बन्ध उसको इष्ट अनिष्टरूप होता है, जिसमें इन्द्रियों का संयोग होता है उसमें समबुद्धि रहे, इनके धर्म अपने में न देखे, इनके जानने वाला जो अनुभव रूप आत्मा है, उसी में साक्षीरूप होकर स्थित रहे, इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है वह सदा मुक्त रूप है, इससे जो इतर है वह बुद्ध है, तुम इस ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध में सावधान रहो, इनका संबर्ध धन है, इनसे रहित मुक्त होना मुक्ति है, राग द्वेष करने वाला मन है, इस मन का त्याग करो, मन ही दुःखदायी है, जैसे कुम्हार का चक्र फिरता है, उससे बरतन बनते हैं, ऐसे मनरूप चक्र के पदार्थ रूप पात्र उत्पन्न होते हैं, मन के फुरने से संसार सत्य होता है, जब फुरणा निवृत्त हुआ तब कोई दुःख न रहेगा, हे रामजी! फुरने न फुरने में समान होगा, तब राग द्वेष से रहित होकर विचरेगा, यह हो न हो इससे रहित होकर चेष्टा करे तो अभिलाष पूर्वक संसार में न फुरे। हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान् हुए हैं, उनको भूत की चिन्ता न थी और आगे की होने की आशा नहीं, वर्तमान काल में शास्त्रानुसार राग द्वेष से रहित चेष्टा करना और संकल्प को त्यागकर स्वरूप में स्थित होना, ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में भी राग हुआ तो बन्धन है और मेरा भी यही आशीर्वाद है कि ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त से तेरी कहीं भी रुचि न हो, केवल अपने आप में ही रुचि हो, हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, इसमें कोई पदार्थ सत् नहीं, सब मन के रचे हुए हैं, इसलिये मन को स्थिर करो, जैसे धोबी साबुन मिलाकर वस्त्र का मैल दूर करता है, ऐसे मन से मन को स्थिर करो, जब मन को स्वरूप में स्थित करेगा, तब मन अपने संकल्प को आप ही

नाश करेगा, जैसे कोई दुष्ट पुरुष धन आदि से बद्ध होता है तो अपने भाई आदिकों के नाश का उपाय करता है ऐसे जब मन आत्मपद में स्थित होता है तो अपने संकल्प को नाश करता है, जब तेरा मन स्वरूप में स्थित हुआ तब तू अमन होगा और तेरे सब दुःख नष्ट हो जायेंगे और मन के नाश बिना सुख कोई नहीं, हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्ट है कि जिससे उत्पन्न होता है, उसी के नाश का निमित्त होता है, जैसे बांस से अग्नि उत्पन्न होते हैं तो उसी को जलाता है, ऐसे आत्मा से उत्पन्न होकर यह मन आत्मा ही को तुच्छ करता है, जैसे राजा का सेवक राजा की सत्ता पाकर राजा को समाप्त करके आप राजा होना चाहता है, ऐसे मन आत्मा की सत्ता पाकर उसको आच्छादित करके आप कर्ता भोक्ता बन बैठा है, इसलिंये मन को मन ही से नाश करो, जैसे लोहा लोहे को काटता है, ऐसे मन ही को शुद्ध करो, हे रामजी! वृक्ष वल्ली फूल फल पशु पक्षी देवता यक्ष नाग जितने कुछ स्थावर जंगम पदार्थ हैं, वे प्रथम कर्मों के बिना उत्पन्न हुए हैं और पीछे जब स्वरूप में गिरे और धन पद को प्राप्त हुए, तब शरीर कर्मों से होते हैं और कर्मों का बीज अहंकार है, अहंकार में शरीर है, जैसे बीज में वृक्ष होता है, समय पाकर फूल फल प्रकट होते हैं, ऐसे अहंकार से शरीर प्रकट होते हैं, जब अहंकार नष्ट हुआ तब शरीर कोई नहीं, केवल आत्मपद है, अहंकार है नहीं और प्रत्यक्ष दिखाई देता है और आत्मा अच्युत है, गिरे की नाईं प्रतीत होता है निरालंब है, सालम्ब की नाईं दृष्टि आता है, आत्मा निराकार है, आकार सहित भासता है, निराभास है आभास सहित दिखाई देता है, इसलिये केवल चिन्मात्र आत्मा में स्थित होना चाहिये, यह सब चिन्मात्र रूप ही है, हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है तब चित्त अचित्त हो जाता है, जब चित्त अचित्त हुआ तब जगत् कलना मिट जाती है, केवल आत्मतत्व ही भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे कर्माकर्म विचारवर्णनं नाम चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१२४।।

पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२५

तुरीयापदविचार वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस जीव के तीन स्वरूप हैं, एक स्वरूप है शुद्धात्मा है चिदानन्द ब्रह्म, जिससे सब प्रकाशित हो रहा है और दूसरा अन्तवाहक पुण्य नाम है आत्मा के प्रमाद करके हुआ है, मात्रपद से उत्थान हुआ है, तो भी प्रमाद नहीं, जो आत्मा का स्मरण रहा है, जब आत्मा का स्मरण भूला तब तीसरा आधिभौतिक हुआ, पंचतत्व को अपना आप जानने लगा। हे रामजी! यह तीन स्वरूप जीव के हैं, आत्मा के प्रमाद से जीव संज्ञा पाता है और दुःखी होता है, परतंत्र हुआ है, इसलिये पांच भौतिक और अन्तवाहक को त्यागकर वास्तव स्वरूप में स्थित हो, हे रामजी! यह जो दो शरीर हैं, स्थूल और सूक्ष्म, वह विचार कर नष्ट हो जाते हैं और तीसरा जो स्वरूप है वह सत्य है, तू उसमें स्थित हो, रामजी बोले—हे भगवन्! यह तीन रूप जो जीव के तुमने कहे, उनके मध्य में नाश रूप कौन है और सत्‌रूप कौन है? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! हाथ पांव से जो देह युक्त है, भोग से बलिष्ठ बनी जो देह स्थूलरूप है, जीव अपने ही संकल्प से सदा प्रसार रचता है अपर चित्तरूप देह इस फुरने रूप से अन्तवाहक है, वह सदा प्राणवायु के रथ पर स्थित रहता है, देह हो या न हो, हे रामजी! यह दोनों शरीर उत्पन्न होते और नष्ट भी होते हैं आदि अन्त से रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं, जीव का परम रूप तुरीयापद जान, उसी से जाग्रदादि उत्पन्न होते और लीन होते हैं, श्री राम बोले—हे भगवन्! मैं तीनों को जानता हूँ, एक जाग्रत है निद्रा से रहित जिसमें इन्द्रिय और चार अन्तःकरण अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं और दूसरा स्वप्न है वहां भी विषय को जाग्रत की नाईं संकल्पकर विषय बिना ग्रहण करते हैं और तीसरा इन्द्रिय अपने विषय से रहित होते हैं और जड़ता आती है भासता कुछ नहीं, शिला की नाईं जड़ता तमोगुण आता है, वह सुषुप्ति है, इन तीनों को मैं जानता हूँ,

तुरीया और तुरीयातीत वह कृपा करके कहो कि किसको कहते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अपना होना अन होना दोनों को त्यागकर पीछे केवल तुरीयापद रहता है, वह शान्तपद है और निर्मल है, हे रामजी! तुरीया जाग्रत नहीं क्योंकि जाग्रत संकल्प जाल है इन्द्रियों से रागद्वेष होता है और तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं, क्योंकि स्वप्न भ्रमरूप होता है, जैसे जेवरी (रस्सी में) सर्व प्रतीत होता है, वह अपर का अपर संकल्प होता है, तुरीया सुषुप्ति भी नहीं क्योंकि अत्यन्त जड़ता है, तुरीया चेतनरूप है, उदासीन है और शुद्ध है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति से रहित है, जीवन्मुक्त तुरीयापद में स्थित रहता है, हे रामजी! जो तुरीया पद में स्थित है, उसको यह जगत् शान्तरूप हो जाता है और अज्ञानी को बज्र सारवत् दृढ़ है और ज्ञानी सदा शान्तरूप है जो तीनों अवस्थाओं का साक्षी है न उसके राग है न द्वेष है, उदासीन समान है और तुर्यातीत पद में वाणी की गति नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेह मुक्त होता है, तब उसी पद को प्राप्त होता है, जहां वाणी की गति नहीं, जब तक जीवन्मुक्त है तब तक तुरीयापद में स्थित होता है और राग द्वेष से रहित होता है, इन्द्रिय भी अपने विषयों में स्वाभाविक वर्तते हैं, परन्तु राग द्वेष से रहित होकर और जिस पुरुष को राग द्वेष उत्पन्न होते हैं वह तुरीयापद को प्राप्त नहीं हुआ और चित्त सहित है और जिस पुरुष को राग द्वेष उत्पन्न नहीं होते उसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है, जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है उसको संसार की सत्यता नहीं भासती, स्वप्नवत् जगत् को देखता है, इसलिये तू सत्पद में स्थित होकर साक्षीरूप बन।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे तुरीयापदविचार वर्णनं नाम पंचविंशुत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२५॥

षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२६

काष्ठमौनिवृत्तान्तवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! कर्ता कारण कर्म यह तीनों पड़े हों तू इनका साक्षी हो, इनका कर्तृत्व अभिमान तुझे मत हो, कि मैं यह कर्ता हूं, अथवा मैंने इसका त्याग किया है, यह अभिमान भी न किया जाये, उदासीन से होकर रहना, इसी प्रकार का एक आख्यान कहता हूं, उसको सुन, तू आगे भी बोधवान् है तो भी दृढ़ बोध के निमित्त सुन, हे रामजी! एक वन में एक काष्ठमौनी रहता था, वहां एक वधिक मृग पर बाण चलाता हुआ मृग के पीछे दौड़ता जाता था परन्तु कुछ आगे जाने पर मृग बधिक की दृष्टि अगोचर हो गया, बधिक ने देखा कि एक तपस्वी बैठा है, उसीसे पूछने लगा मुनिवर! यहां एक मृग आया था, वह किस ओर गया है आपने देखा हो तो कहिये, मुनि ने कहा–हे बधिक! हमें खबर नहीं, क्योंकि हम निरहंकार हैं, हमारे साथ चित्त अहंकार दोनों नहीं, इसलिये निरहंकार हैं, यदि तुम कहो कि इन्द्रियों से चेष्टा कैसे होती है तो सुन, जैसे सूर्य के आश्रय लोक की चेष्टा होती है और दीपक मणि के आश्रय चेष्टा होती है और सूर्य दीपक मणि प्रकाश के साक्षीभूत हैं, ऐसे हम इन्द्रियों के साक्षीभूत हैं, इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती हैं, हमें तो इनके साथ कुछ प्रयोजन नहीं, हे बधिक! अहंभाव करने वाला अहंकार होता है, जैसे धागे के आश्रय मनके होते हैं, वह मनके भिन्न भिन्न होते हैं और धागा सबमें एक होता है तब माला होती है, जब धागा टूट पड़े तब मनके भिन्न भिन्न हो जाते हैं, ऐसे इंद्रिय रूप मनके हैं और अहंकार रूप धागा है, उस अहंकार रूप धागे के टूटने से इंद्रिय भिन्न भिन्न हो गये हैं, जैसे राजा के नाश हुए सेना भिन्न भिन्न हो जाती है, जैसे गोपाल के नष्ट हुए गौएं भिन्न भिन्न हो जाती हैं और जैसे पिता के नष्ट हुए बालक व्याकुल हो जाते हैं, ऐसे अहंकार के बिना इन्द्रिय व्याकुल

होते हैं इनका मुझे कुछ अभिमान नहीं, इनका अभिमानी अहंकार था, वह मेरा नष्ट हो गया है, इन्द्रिय अपने अपने विषय में विचरते हैं, मुझे इनका न राग है न द्वेष है, हे साधो! मेरे लिये न जाग्रत भासता है न स्वप्न न सुषुप्ति, इन तीनों से रहित मैं तुरीय पद में स्थित हूं, जिसमें अहं त्वं का अभाव है, जब हमारा अहं त्वं मिट गया तो हम साक्षी किसकी दें कि मृग बांईं ओर गया है या दायीं ओर गया है, जो नेत्रादि इन्द्रिय देखने बोलने वाला है उनमें बोलने की शक्ति नहीं, वे अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं, एक इन्द्रिय को दूसरे के लिये शक्ति नहीं, तो फिर तुम्हें कौन कहे, इन सबका धारण करनेवाला अहंकार था, जो सबको अपना आप जानता था, मैं देखता हूं, मैं बोलता हूं, वह अहंकार हमारा नष्ट हो गया है जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट हो जाते हैं, ऐसे अहंकार के नष्ट होने से हम स्वच्छ निर्मल शान्त तुरीय पद में स्थित हैं और इन्द्रियों का जीव अहंकार मृतक हो गया है, इन्द्रिय भी मृत हैं क्योंकि केवल देखने मात्र है, जैसे दीवार पर पुतलियां लिखी हों ओर कार्य उनसे कुछ न हो सकें, ऐसे हमारी इन्द्रियों से कार्य कुछ नहीं होता तो तेरे लिये कौन कहे, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब वधिक समझकर अपनी इच्छा से उठकर चला गया, हे रामजी! तुरीयपद शान्त रूप है, जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों का अभाव है केवल अद्वैतपद है यह जो संज्ञा है, ब्रह्म आत्मचिदानन्द से लेकर तुरीयपद में है ओर तुर्यातीत पद में शब्द की गति नहीं अशब्द पद है, विदेह मुक्त पुरुष इसी पद को प्राप्त होता है और जीवनमुक्त तुरीयपद को साक्षात् करके तुर्यावस्था में विचरते हैं जहां जाग्रत जो दीर्घ दुःख सुख का भान है वह नहीं और स्वप्न जो राग द्वेष को लिये अल्पकाल है वह भी नहीं और जड़ता तामस अवस्था भी नहीं, इन तीनों से रहित है वह तुरीयपद है और शान्त जिसमें क्षोभ कोई नहीं और यह जगत् उसका आभास है, जैसे समुद्र में तरंग वास्तव कुछ नहीं जल ही है, ऐसे केवल तुर्यास्वरूप सत्ता समान तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो जाइये और उसमें

जो स्थित हुए है उनको सुनो, ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, सिद्ध, ज्ञानी, इत्यादिक जो ज्ञानवान् हैं, वे उसी पद में स्थित हैं और काष्ठमौनी वधिक को उपदेश करनेवाला भी इसी तुरीयापद में स्थित हैं, विशेष कलना उसकी निवृत्त हुई थी, जो भिन्न भिन्न नाम रूप को देखनेवाली केवल सत्ता समान में स्थित था इसलिये कलना को त्यागकर तुम भी तुरीय पद में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे काष्ठमौनिवृत्तान्तवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२६॥

सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२७

अविद्यानाशरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह विश्व केवल आकाशरूप है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मा का चमत्कार है, जैसे मेघ में बिजली का चमत्कार होता है ऐसे यह विश्वरूप चित्तकला आत्मा का चमत्कार है। हे रामजी! वास्तव में ब्रह्म ही ब्रह्म है इतर कुछ नहीं, रामजी बोले–हे भगवन्! यह विश्व जिसको आपने ब्रह्म रूप कहा है–मेघ में बिजली की नाईं क्षण में उत्पन्न होता क्षण में लीन होता है, मेघ में बिजली दृष्टि आती है, जहां मेघ होता है, वहां बिजली भी होती है, इसलिये मेघ से बिजली उत्पन्न हुई इसका कारण मेघ है, हे मुनीश्वर! इस चित्त स्पन्दकला के कारण की उत्पत्ति ब्रह्म से कैसे हुई, कृपा करके भलीभाँति कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह वितंडक होकर जो तर्क करता है वह कुछ नहीं, इस बुद्धि का त्याग करो, यह तो बालक भी जानते हैं कि बिजली क्षणभंगुर रूप है, सत्य कुछ नहीं और तेरा क्या प्रयोजन है, कहो, यह कारण कार्य रूप का तर्क कैसा रहता है, रामजी बोले भगवन्! यह स्पन्दकला सत्य है कि असत्य है इसका कारण कौन है? जिससे यह फुरती है, वसिष्ठजी बोले–हे राम! सब प्रकार से सर्वात्मा ही स्थित है

अपर चित्त और चित्तस्पन्द यह भेद कल्पना वास्तव कुछ नहीं है, ब्रह्म ही अपने स्वरूप में स्थित है, अन्य जो कुछ उससे इतर भासता है, वह भ्रम से भासता है, जैसे भ्रान्त दृष्टि से आकाश में मोती भासते हैं, जैसे नेत्र बन्द करके देर से खोलने पर तरवरे से भासते हैं, ऐसे यह जगत् भ्रम करके भासता है, हे रामजी! हम इस संसार समुद्र के पार पहुँच गये हैं, हमारे जैसे और भी ज्ञानवान् पुरुषों के वचनामृत को जो श्रद्धा लगन और आत्मविश्वास के साथ हृदय में धारण करें तो शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति हो और जो मूर्खता करके मेरे वचनों को धारण न करेगा तो तेरा दुःख नष्ट न होगा, वृक्ष तृण वल्ली आदि की योनि को प्राप्त होगा। हे रामजी! आकाश और काल आदिक जो पदार्थ हैं, वे सब कलना से सिद्ध हुए हैं, आत्मा में कोई नहीं, हे रामजी! वायु से रहित जो समुद्र का चमत्कार है, उस चमत्कार का कारण कौन है और दीपक का जो प्रकाश है और अग्नि में उष्णता है, उस प्रकाश और उष्णता का कारण कौन है और वायु जो निस्पंद है जब वही स्पंद हुई स्पंद का कारण कौन है जैसे इनका कारण कोई नहीं जो वायु का रूप स्पन्द निस्पन्द है और अग्नि का रूप उष्णता है और दीपक का रूप प्रकाश है, ऐसे कलना भी आत्मस्वरूप है इतर कुछ नहीं, हे रामजी! यह कलना जो तुझको भासती है उसको त्यागकर जब अपने आपको देखे तब संशय सब मिट जायें, जैसे प्रलय काल का जल चढ़ता है तब सब कुछ जलमय हो जाता है, इतर कुछ नहीं होता, ऐसे अपने स्वरूप को जब तू देखेगा, तब तुझे सब आत्मा ही भासेगा, आत्मा से इतर कुछ दृष्टि न आयेगा, हे रामजी! आत्मा एकरस है, सम्यग् दर्शन से ज्यों का त्यों भासेगा और असम्यग् दर्शन से अपर का अपर भासेगा, जैसे जेवरी एक होती है, उसको यथार्थ न देखें तो सर्प भ्रम होता है और देखकर भयवान् होता है, आपको जन्मता मरता मानता है, तब देह के सब विकार आत्मा में मानता है, जब ज्यों की ज्यों जेवरी को जानता है तब सर्प भ्रम निवृत्त हो जाता है, जब आत्मा को जानता है तब सर्व भ्रम निवृत्त हो जाता हैं, जैसे नेत्रों से तारे देखता है, जब नेत्र मूंद लेवे तो उनका आकार अन्तःकरण में

भासता है, क्योंकि उनकी सत्यता हृदय में होती है, जब हृदय से उनकी सत्यता निकल जाय तब फिर नहीं भासते, ऐसे संसार चित्त के भ्रम से हुआ है, इसको मिथ्या जान, हे रामजी! फुरणे में जो दृढ़ भावना होती है उससे सत्य होकर संसार स्थित हुआ है, जब चित्त का त्याग करेगा, तब संसार की सत्यता जाती रहेगी, रामजी बोले—हे भगवन्! आपने कहा है कि यह जगत् कल्पना मात्र है वह मैंने जाना कि इस प्रकार है कुछ सत्य नहीं जैसे लवण राजा और इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र और शुक्र इनकी कलना फुरने में दृढ़ हुई तब स्फुरण रूप विश्व सत्य होकर स्थित हुए और भासने लगे, हे भगवन्! यह मैं जानता हूं कि विश्व स्फुरण मात्र है, जब स्फुरण मिट जाता है उसके पीछे जो शांति रूप शेष रहता है, वह कहो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! अब तुम सम्यग् बोधवान् हुए हो, जो जानने योग्य है उसे तुमने जान लिया है, हे रामजी! यह अध्यात्म शास्त्र का सिद्धान्त है, जो अन्य सब दृश्य का असम्भव है, एक चिद्घन ब्रह्म अपने आपमें स्थित है, हे रामजी! आत्मा शुद्ध है निर्मल है, विद्या अविद्या से रहित है, संसार का इसमें अत्यन्त अभाव है, जितनी कुछ शुद्ध आदि संज्ञाएं इसकी कही जाती हैं, वे भी फुरणे में हैं, आत्मा अनिर्वाच्यपद है वह शेष रहता है, तीसरी संज्ञा शास्त्रकारों ने कही है, उसे सुनो! एक शून्यवादी उसीको शून्य कहते हैं विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं, कई उपासनावान् उसीको ईश्वर कहते हैं, कई कहते हैं आत्मा सबका कारण है, वही शेष रहता है और एक हैं वे आत्मा को सर्व शक्ति कहते हैं और एक कहते हैं आत्मा निःशक्त है, साक्षी आत्मा को और शक्ति को भिन्न मानते हैं, हे रामजी! जितने वाद हैं सब कलना से हुए हैं कलना को मानकर वाद उठते है, वास्तव में बाद कोई नहीं, आत्मा अनिर्वाच्यपद है और मेरा जो सिद्धान्त है, वह भी सुनो, जितनी कुछ कल्पनाएं हैं उनसे आत्मा अतीत है जैसे पवन स्पंद शक्ति से फुरता है, निस्पंद से ठहर जाता है, क्योंकि स्पंद भी पवन है निस्पंद भी पवन है, इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मस्फुरण है, आत्मा से इतर कुछ नहीं और जो

इतर प्रतीति होती है उसको मिथ्या जान और त्याग अपने निर्विकार स्वरूप में स्थित हो, जब तू आत्मस्वरूप में स्थित होगा, तब शास्त्रों के जितने भिन्न भिन्न मतवाद है, वे न रहेंगे, केवल स्वच्छ अपना आप ही भासेगा, हे रामजी! जो उस निर्विकल्प पद को पाकर शान्ति युक्त हुए हैं, उनकी द्वैत कलना कुछ नहीं फुरती, हे रामजी! आत्मा ब्रह्म आदि शब्द भी उपदेश निमित्त कहे हैं, आत्मा शब्द से अतीत है और सर्व जगत् भी आत्मस्वरूप है और संसाररूप विकार आत्मा में असम्यक् दर्शन से भासते हैं, जैसे शून्य आकाश में तरवरे मोतीवत् भासते हैं, वे अविदित हैं, ऐसे आत्मा में जगत् द्वैत अविदित भासता है, इसलिये जगत् द्वैत की भावना त्यागकर निर्विकल्प आत्मस्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अविद्यानाशरूपवर्णनं नाम सप्तविंशत्युत्तर शततमः सर्गः ॥१२१॥

अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः १२८

जीवत्वाभावप्रतिपादनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! देह इन्द्रिय और कलना में सार वस्तु क्या है, कहिये। वसिष्ठ मुनि बोले–हे रामजी! जो कुछ यह दृश्य जगत् है, अहं त्वं से लेकर सब चिन्मात्र है, जैसे समुद्रजल ही मात्र है, ऐसे जगत् मन सहित षट् इन्द्रियों से जो कुछ दृश्य भासते हैं, भ्रममात्र हैं, हे रामजी! देह इन्द्रिय सब मिथ्या हैं, आत्मा में कोई नहीं, चित्त के कल्पे हुए हैं और चित्त ही इनको देखता है, जैसे मरुस्थल में मृग को जल बुद्धि होती है, देखकर जल के निमित्त दौड़ता है और दुःख पाता है, ऐसे चित्तरूप मृग आत्मारूप मरुस्थल में देह इन्द्रिय विषयरूप जल की कल्पना से दौड़ता है और दुःख पाता है, वे देह इन्द्रिय विषय भ्रम से भासते हैं, जैसे मूर्ख बालक परछाईं में बेताल की कल्पना करता है ऐसे

चित्त ने देह इन्द्रिय आदिक कल्पना की है, हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है, उसमें चित्त ने भ्रम से विकार आरोपण किये हैं, जैसे भ्रान्त दृष्टि करके आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं, ऐसे चित्त ने देह इन्द्रियों की कल्पना की है और चित्त भी अपने आप से नहीं किन्तु आत्मा की सत्ता लेकर चेष्टा करता है, जैसे चुम्बक की सत्ता लेकर लोहा चेष्टा करता है, ऐसे निर्विकार आत्मा की सत्ता लेकर चित्त नाना प्रकार के विकार कल्पना करता है इसलिये चित्त का त्याग कर कि तेरा विकार जाल मिट जाये, हे रामजी! देह इन्द्रियों में सार क्या है? यह सुनो, जितना कुछ संसार है इसमें सार शरीर है (देह है) क्योंकि सब के देह सम्बन्धी हैं, जब देह मिट जाये तब सम्बन्धी भी नहीं रहते और देह में सार इन्द्रिय हैं और इन्द्रियों में सार प्राण है, प्राणों में सार मन है, मन का सार बुद्धि है, बुद्धि का सार अहंकार है और अहंकार का सार जीव है, जीव का सार चिदावली है, चिदावली का सार चित्त से रहित शुद्ध चेतन है, जिसमें सर्व विकल्प की लय है, शुद्ध और निर्मल है, चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है, जिसमें उत्थान कोई नहीं, हे रामजी! चिदावली पर्यन्त सबको त्याग कर इनका जो सार चेतन मात्र आत्मा है, उसमें स्थिति प्राप्त करो। विश्व कलना मात्र है, आत्मा में कुछ नहीं, संकल्प की दृढ़ता से सत् की नाईं भासती है और आगे भी शुक्र और लवण राजा और इन्द्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहा है जो संकल्प की भावना से दृढ़ होकर भास आया था वह वास्तव कुछ नहीं, ऐसे यह विश्व भी चित्त के फुरने में स्थित है, असम्यक् दृष्टि करके अद्वैत आत्मा में दृश्य भासता है, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, ऐसे आत्मा में अहंकार आदिक दृश्य अज्ञान से भासता हैं, इसलिये इनको त्यागकर अपने वास्तव स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो, हे रामजी! एक गढ़ (दुर्ग या किला) तुम्हारे लिये कहता हूँ, जिसमें किसी शत्रु की गति नहीं, उसमें स्थित हो जाओ, हम भी उसी गढ़ में स्थित हैं जितने ज्ञानवान् हैं सब इसी में स्थिति पाते हैं, हे रामजी! काम क्रोध लोभ अभिमानादिक विकार आत्मा में नहीं होते,

जैसे रात्रि में दिन नहीं होता, ऐसे विकार रूपी दिन गढ़ रूप रात्रि में नहीं होता, इसलिये अचिन्त्य गढ़ है, जहां फुरना कोई नहीं, केवल शान्तिरूप है, उसमें अहंभाव त्यागकर स्थित हो जावे तब अहं त्वं भाव निवृत्त हो जाता है, जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है, तब ज्ञानी फुरने अफुरने में स्वरूप को तुल्य देखता है, सम्पूर्ण जगत् उसको आत्मरूप भासता है, इसलिये चिदावली से लेकर देह पर्यन्त जो अनात्म है उसको क्रम करके त्याग, प्रंथम देह को त्याग, उसके बाद इन्द्रियों के अभिमान को त्याग, इसी क्रम से सबको त्यागकर अपने वास्तव स्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जीवत्वभावप्रतिपादनं नाम अष्टाविंशत्युत्तर शततमः सर्गः ॥१२८॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १२९

सारप्रबोधवर्णनम्।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संसार चेतन मात्र है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मा ही विश्वरूप होकर स्थित हुई है, जैसे सूर्य की किरणों से जलाभास होता है, ऐसे आत्मा का चमत्कार दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है, जैसे संकल्प और संकल्पकर्ता भिन्न नहीं, जैसे आकाश ही मोतियों की माला होकर भासता है, ऐसे आत्मा ही दृश्यरूप होकर भासता है, जैसे बीज ही वृक्ष फूल फल होता है ऐसे आत्मा ही दृश्य रूप होकर स्थित हुआ है, जैसे जल के तरंग जल ही हैं, ऐसे विश्व आत्मा ही है, हे रामजी! चिदावली भी आत्मा ही है, जीव भी आत्मा ही है, अहंकार, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा सर्व पदार्थ आत्मा ही हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, अतः विश्व को अपना स्वरूप जान, जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य ही है, ऐसे तू जान कि सब मैं हूँ, ऐसा न जान सके तो ऐसा जान कि देह भी जड़ है इन्द्रियों से पालित है,

वह मैं नहीं और इन्द्रिय भी मैं नहीं, प्राण इन्द्रियों का सार है, प्राण न हो तो इन्द्रिय किसी काम के नहीं, वह प्राण भी मैं नहीं, प्राण का सार मन है, जो मन मूर्छित होता है, प्राण आते जाते भी हैं, तो भी किसी काम के नहीं और मन भी मैं नहीं, जो मन के प्रेरणे वाली बुद्धि है, जो बुद्धि निश्चय करती है, मन भी वहां जाता है, वह भी मैं नहीं, जो बुद्धि का प्रेरक अहंकार है, वह अहंकार मैं नहीं, अहंकार का सार जीव है, जीव बिना अहंकार किसी काम का नहीं और जीव भी मैं नहीं, जीव का सार चिदावली है, शुद्ध चित्त में चैतन्योन्मुखत्व होना चिदावली है, जीव संज्ञा से प्रथम ईश्वर भाव चिदावली भी मैं नहीं, जो चिदावली का सार चिन्मात्र है, वह अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है, यह सब अनात्म भ्रम से सिद्ध हुए हैं, मैं केवल शान्तरूप आत्मा हूँ, हे रामजी! तेरा जो वास्तव स्वरूप है उसी में स्थिति प्राप्त कर, उसमें इतर अनात्मा में अहं प्रतीति का त्याग कर तू देह से रहित निर्विकार है, तेरे अन्दर जन्म मृत्यु आदि कोई विकार नहीं और शान्तरूप ज्यों का त्यों स्थित है, तू कभी स्वरूप से विचलित नहीं हुआ, इसी स्वरूप में स्थित रहो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सारप्रबोधवर्णनं
नाम एकोनत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१२९॥

त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३०

ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनम्।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! चिन्मात्र साररूप आत्मा से बढ़कर अन्य कुछ नहीं, उसमें स्थित हो जाओ कि तीनों ताप मिट जायँ, हे रामजी! सब आत्मा ही आत्मा है, जैसे बीज ही फल फूल होकर स्थित हुआ, ऐसे सब आत्मा ही स्थित है, तो निषेध और त्याग किसका किया जाय? वाल्मीकि बोले–हे शिष्य! ऐसे वसिष्ठजी के वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुए, जैसे कमल सूर्य को देखकर खिल आता है, ऐसे रामजी

की बुद्धि वसिष्ठजी के सूर्य प्रकाश रूप वचनों से विकसित हुई और वे बोले–भगवन्! आपकी कृपा से मैं जगा हूँ और बड़ा आश्चर्य है कि आत्मा सदा अनुभवरूप है और अपना आप है, उसके प्रमाद से मैंने इतना समय दुःख पाया है कि अहंता ममता के बोझ से जो कि मेरे सिर पर था, मैंने इतना दुःख पाया जैसे किसी के सिर पर पत्थर की शिला हो और ज्येष्ठ आषाढ़ का सूर्य तपा करे और पैदल चल तप जितना दुःख पाता है, उसके सिर पर कोई उस सारे बोझ को उठा ले और उसको बल से छाया में बैठाये, तो बड़े सुख को प्राप्त होता है, ऐसे ही अज्ञान के कारण अहंता ममता की शिलाएं सिर पर से उतारकर आपने आत्मारूप वृक्ष की छाया में बैठाकर वचनं बल से परम विश्राम कराया है, हे भगवन्! अब मुझे शान्तपद प्राप्त हुआ है, मेरे तीनों ताप मिट गये हैं, अब मेरे सिर पर यदि सुमेरु पर्वत का भी बोझ आ पड़े तो मुझे कोई कष्ट प्रतीति न हो, अब मेरे संशय निवृत्त हुए हैं, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल स्वच्छरूप होता है, ऐसे रागद्वेष रूप द्वन्द्व मेरा नष्ट हुआ है, अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूँ, परन्तु एक प्रश्न है, कृपा करके उत्तर कहो, जो महापुरुष बारंबार प्रश्न करने में खेद नहीं मानते हे भगवन्! तुम कहते हो सर्व ब्रह्म ही है तो शास्त्र का विधि निषेध उपदेश किसको है, जो यह कर्म कर्तव्य नहीं, यह उपदेश किसको है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आत्मा से इतर कुछ नहीं, विश्व भी उसका चमत्कार है, जैसे समुद्र में पवन करके नाना प्रकार के तरंग फुरते हैं और जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मा चेतन मात्र है, इससे चैत्योन्मुखत्व अहंभाव को लेकर फुरा है, उससे देशकाल वस्तु बन गये हैं और शास्त्र स्फुरित हुए हैं, फुरणे से दो रूप धारण किये हैं, एक विद्या एक अविद्या उसमें जो विद्यारूप जीव हुए हैं, वे ईश्वर कहाते हैं और अविद्यारूप हैं, वे इतरजीव हैं, जिनको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय वास्तव रहा है, वे ईश्वर हैं और जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ और संकल्प विकल्प में बहते हैं, वे जीव दुःखी हैं, हे रामजी! इतनी संज्ञाएं फुरणे में हुई हैं तो भी आत्मा से इतर

कुछ नहीं, जैसे एक ही रस फूल फल वृक्ष हुआ है, रस से इतर कुछ नहीं और आत्मा रस की नाईं भी प्रमाण को नहीं प्राप्त हुआ, फुरणे से ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है, आत्मा में कुछ नहीं, हे रामजी! जिसका संकल्प आधिभौतिक में इष्ट नहीं हुआ, वह जीव शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होता है, उसको आत्मा का साक्षात्कार शीघ्र होता है और जिनका संसार आधिभौतिक में दृढ़ हुआ है, वे चिरकाल से प्राप्त होते हैं, आत्मपद की प्राप्ति के बिना दुःख पाते हैं और जिनको आत्मपद की प्राप्ति होती है, वे सुखी होते हैं, हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी के स्वरूप में भेद कुछ नहीं, सम्यक् और असम्यक् दर्शन का भेद है, हे रामजी! विद्या भी दो प्रकार की है, ईश्वरवाद और अनिश्वरवाद, जो ईश्वरवादी हैं वे तुरन्त पद को प्राप्त होते हैं, जो अनिश्वरवादी हैं, उनको जब ईश्वर की भावना होती है तब शास्त्र गुरु द्वारा ईश्वर की प्राप्ति होती है और ईश्वरवादी भी दो प्रकार के हैं, एक यह हैं, जो अपर वासना त्यागकर ईश्वर परायण होते हैं तो शीघ्र ही ईश्वर को प्राप्त होते हैं, वह आत्मा ही ईश्वर है, जो सबका अपना आप है और एक ईश्वर को मानते हैं, वासना संसार की ओर होती है, तो देर से प्राप्त होते हैं, अनिश्वरवादी भी दो प्रकार के हैं, एक कहते हैं जो कुछ होगा, उनको होते होते की भावना से शास्त्र और गुरु से आत्मपद की प्राप्ति होगी और एक कहते हैं कुछ नहीं, उनको समय पाकर जब आस्तिक भावना होगी तब आत्मपद को प्राप्त होंगे, हे रामजी! उनके निमित्त विधि निषेध कथन की आवश्यकता हुई है कि यह शुभ कर्म ग्राह्य है और यह अशुभ कर्म त्याज्य है, उससे जब अन्तःकरण शुद्ध होगा, तब आत्मपद की प्राप्ति होगी, इसलिये विधि निषेध कहा है, यदि शास्त्र विधि निषेध न कहे तो बड़ा छोटे को खा जाय, इस निमित्त शास्त्र का दंड है, हे रामजी! स्वरूप से किसी को उपदेश नहीं, भ्रम से उपदेश है, जिस पुरुष का भ्रम निवृत्त हुआ है, वह फिर मोह में नहीं डूबता, ऐसे ज्ञानवान् संसार अज्ञान में नहीं डूबता, जैसे

जल में तूंबा नहीं डूबता, ऐसे ज्ञानवान् अज्ञान संसार में नहीं डूबता और जिसका चित्त वासना से भरा हुआ है, उसका संसार से निकलना कठिन है, जैसे उजाड़ का कुआँ होता है, उसमें कोई गिरे तो निकलना कठिन होता है, ऐसे इस चित्त के साथ मिलकर संसार से निकलना कठिन होता है, हे रामजी! इस चित्त को स्थिर कर कि तेरे दुःख मिट जावें और सत्ता समान पद को प्राप्त हो जाय, हे रामजी! जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और अनात्मा में अहं प्रत्यय निवृत्त हुआ है, वह पुरुष जो कुछ करता है, उससे बद्ध नहीं होता, अपने आपको सदा अकर्ता देखता है और अनात्म में अहं प्रत्यय है वह पुरुष करे तो भी करता, न करे तो भी करता है, हे रामजी! जो ज्ञानी शुभकर्म करता है, तो शुभ करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है और अशुभ कर्म करने से नरक को प्राप्त होता है और जो शुभ कर्म को त्यागता है तो भी नरक को प्राप्त होता है, क्योंकि अनात्म में आत्माभिमान है, इसलिये बुद्धि और इन्द्रियों का मन से निग्रह करो और कर्मेन्द्रियों से चेष्टा करो, देखने सुनने सूँघने से मैं तुझे निवृत्त नहीं करता, यही करता हूँ कि अनात्म में अभिमान को त्याग जब आत्माभिमान को त्यागेगा तब शान्तपद को प्राप्त होगा, जहां तेरा चित्त फुरेगा, वहां आत्मा ही भासेगा, आत्मा से इतर कुछ न भासेगा, इसलिये चित्त को त्याग, चित्त कहते हैं अहंभाव को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो और जैसे विश्व की उत्पत्ति हुई है सुनो, शुद्ध चेतनमात्र स्वरूप में चिदावली रूप अहं तरंग फुरा है और उस चिदावली समुद्र में जीवरूप तरंग उत्पन्न होता हैं और जीवरूप समुद्र में अहंकाररूपी तरंग भासता है और अहंकाररूप समुद्र में बुद्धि रूपी तरंग उत्पन्न हुआ है, उस बुद्धिरूप समुद्र में चित्त रूप तरंग भासा है और चित्तरूप समुद्र में संकल्परूप तरंग उत्पन्न हुआ है, उस संकल्परूप समुद्र में जगत्‌रूप तरंग उत्पन्न हुआ है और जगत्‌रूप समुद्र में देहरूप तरंग प्रतीत हुआ है, उसके संयोग से दृश्य का ज्ञान हुआ है कि यह पदार्थ है यह नहीं, यह ऐसे है, उसमें देशकाल दिशा सब हुए हैं, हे रामजी! जो

संकल्प से हो गये हैं वह आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न की दृष्टि नाना प्रकार हो भासती है, वह अपना ही अनुभव होता है, ऐसे यह जगत् भी जान, आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है, शुद्ध है, परम निर्वाण है, सर्वदा अपने आप में स्थित है, फुरणे से नाना प्रकार की कलना उदय हुई है, हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो चिदेव हुई है, "चिदेव पंच भूतानि चिदेव भुवनत्रयम्" वह चिदेव संज्ञा भी सकंल्प में हुई है, आत्मा में चिदेव संज्ञा भी नहीं, आत्मा अनिर्वाच्य पद है, उसमें वाणी की गति नहीं, शुद्ध शांतरूप है, उसमें जो चिदेव स्फुरण हुआ है, उस फुरणे में संसार हुए की नाईं स्थित है, ऐसे एक ही बीज ने वृक्ष फूल फल आदिक संज्ञाएं पायी हैं, वह बीज से इतर कुछ नहीं और आत्मा बीज की नाईं भी परिणम्य नहीं, संकल्प से ही नाना संज्ञाएं कल्पित की हैं और जगत् स्थित हुआ है, तो भी आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे वायु चलता है तो भी वायु है और ठहरता है तो भी वायु है, ऐसे आत्मा में नानात्व कुछ नहीं, केवल शुद्ध अद्वैत आत्मा है, आत्मरूप समुद्र में नाना प्रकार के जगत्रूप तरंग स्थित हैं, हे रामजी! आकार भी आत्मा से इतर कुछ नहीं, जो आत्मा से इतर भासे उसको मिथ्या जान, मृगतृष्णा के जल की नाईं जानकर उसकी भावना को त्याग और स्वरूप की भावना कर।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनं
नाम त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१३०।।

एकत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३१

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मेरे वचनों को धारण करके हृदय में आस्तिक भावना करो कि यह सत्य कहते हैं और सर्वत्याग करो, जब सर्वत्याग करेगा तब चित्त क्षीण हो जायेगा, जब चित्त क्षीण हुआ तब अवश्य शांति होगी, हे रामजी! काष्ठ मौन होकर अन्दर से सर्वत्याग

कर और बाह्य कर्म करता हुआ अभिमान से रहित होकर अन्तर्मुख हो जाओ अर्थात् स्वरूप स्थित हो। जब आत्मा में स्थित होगा तब विद्यमान दृश्य भी तुझे न भासेगा, क्योंकि सब आत्मरूप भासेगा और यदि तेरे पास भेरी के शब्द होंगे तो भी कुछ प्रतीत न होगा, सुगन्धि लेगा तो न ली जायेगी जो कुछ क्रिया करेगा वह तुझे स्पर्श न करेगी, आकाश की नाईं सबसे असंग रहेगा, हे रामजी! जो कुछ देखे वह स्वरूप से इतर न देखे और जो बोले वह भी आत्मा से इतर न फुरे, अन्धे और गूंगे की नाईं और पत्थर की शिलावत् मौन होकर रहो, जैसे यन्त्र की पुतली धागे की सत्ता से चेष्टा करती है, ऐसे नीति शक्ति से तेरी प्राणों की चेष्टा होगी, स्वाभाविक जो कुछ किया है वह अभिमान से रहित होकर स्थित होता है और जो अभिमान सहित चेष्टा करता है वह मूर्ख असम्यग्दर्शी है और जो सम्यग्दर्शी है उसको अनात्मा में अभिमान नहीं होता, हे रामजी! जिसको अनात्म अभिमान नहीं और चित्त जिसका लिप्त नहीं होता, वह सृष्टि उत्पन्न करे अथवा संहार करे, उसको कोई बन्धन नहीं होता, क्योंकि वह सब कर्म अभिलाषा से रहित होकर करता है, हे रामजी! समाधिस्थ हो जाइये और जाग्रत के समान सब कर्म करो तुम्हारे अन्दर यह कर्म दृष्टि भी आवें तो भी सुषुप्ति की नाईं इनसा फुरणा कोई न फुरे, अपने स्वरूप की समाधि रहे और समाधि भी तब कहिये जो कोई दूसरा हो कि इसमें स्थित हुआ जाय और इसका त्याग किया जाये, हे रामजी! यहां एक शब्द और दो शब्द कहना भी नहीं बनता, अद्वितीयात्मा परमार्थ सत्ता है, उसमें चित्त ने नाना प्रकार के विकार कल्पना किये हैं, ज्ञानी को एक रस भासता है और ज्ञानी को ज्ञानी जानता है, जैसे सर्प के खोजने को सर्प जानता है, ऐसे ज्ञानी को एकरस आत्मा ही भासता है, वह ज्ञानी ही जानता है और मूर्ख को संकल्प से नाना प्रकार जगत् भासता है, इसलिये संकल्प को त्यागकर अपने प्रकृत आचार में विचरो, जैसे उन्मत्त की चेष्टा स्वाभाविक होती है, जैसे बालक की चेष्टा स्वाभाविक होती है, अङ्ग हिलते हैं, ऐसे

अभिमान से रहित होकर चेष्टा कर, जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है, ऐसे दृश्य की भावना से रहित जो फुरे, कुछ नहीं जड़ की नाईं जब ऐसा होगा तब शान्त पद को प्राप्त होगा, हे रामजी! चित्त के सम्बन्ध से क्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे वसन्त ऋतु में फूल उत्पन्न होते हैं ऐसे चित्तरूप वसन्त ऋतु में दुःखरूप फूल उत्पन्न होते हैं, जब तू चित्त को शान्त करेगा तब परमपद को प्राप्त होगा, वह पद कैसा है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूल है, इसलिये तू असंग हो, जब तू स्थूल से स्थूल होगा तब भी असंग रहेगा, ऐसे पदको पाकर काष्ठ पत्थरकी नाईं मौन हो, हे रामजी! दृश्य पदार्थ को त्यागकर जो द्रष्टा है, जानने वाला उसमें स्थित हो, हे रामजी! इन्द्रिय अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं, उनकी ओर तो भावना मत कर कि यह सुन्दर पुरुष हैं, इनकी प्राप्ति हो, भले ही प्राप्त होने की भावना तू मत कर, इनके जानने वाला जो आत्मा है, उसमें स्थित हो, जो पुरुष दृष्टा में स्थित होता है, वह गोपद की नाईं संसार समुद्र को पार कर जाता है, हे रामजी! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं उनमें अपनी अपनी सृष्टि है, कैसी सृष्टि है जो संकल्प मात्र ही है, अपने अपने संकल्प में स्थित है और सर्व संकल्प आत्मा के आश्रय हैं, जैसे सब पदार्थ आकाश में स्थित हैं ऐसे सर्व संकल्प सृष्टि आत्मा के आश्रय हैं और एक के संकल्प को दूसरा नहीं जानता, सृष्टि अपनी अपनी है, जैसे समुद्र में जितने बुदबुदे हैं, उनकी जल से एकता है और आकाश से एकता नहीं, ऐसे स्वरूप से सबकी एकता है और संकल्प सृष्टि अपनी अपनी है और जो पुरुष ऐसा चिन्तन करता है कि मैं उसकी सृष्टि को जानूं तब जान लेता है, हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है, जैसी कोई भावना करता है, ऐसी सिद्धि होती है, जब ऐसी ही भावना करके स्वरूप में जुड़ता है कि सब सृष्टि मुझे प्रतीत हो तो भावना से भास आती है और ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता क्योंकि आत्मा से इतर कोई पदार्थ नहीं जानता और जानता है कि स्वरूप से सब की एकता है और संकल्प रूप से एकता नहीं होती, जैसे तरंगों की एकता नहीं और जल की एकता

है और जो तरंग दूसरे के साथ मिल जाता है, तो उसके साथ एकता होती है, ऐसे एक का संकल्प भावना से दूसरे के साथ मिलता है, इसलिये ज्ञानी जानता है, संकल्परूप आकार नहीं मिलते और स्वरूप से सबकी एकता है और जिस की भावना होती है कि मैं इसकी सृष्टि को देखूं तब उसके संकल्प के साथ अपना संकल्प मिलाकर देखता है, तब उसकी सृष्टि को जानता है, जैसे दो मणियें हों उनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है, जब दोनों एक ही स्थान पर इकट्ठी रक्खी जायँ, तब दोनों का प्रकाश भी इकट्ठा हो जाता है, ऐसे संकल्प की एकता भावना से होती है और ज्ञानी को प्रथम संकल्प हुआ हो कि मैं उसकी सृष्टि को देखूं तो संकल्प से देखता है और ज्ञान के उत्पन्न होने पर इच्छा नहीं रहती, हे रामजी! इच्छा चित्त का धर्म है, जब चित्त ही नष्ट हो गया तब इच्छा किसकी रहे, जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब चित्तरूप दैत्य प्रसन्न होता है कि यह मेरा आहार हुआ, मैं इसका भोजन करूँगा, हे रामजी! जो पुरुष चित्त की ओर हुआ और स्वरूप की भावना नहीं हुई तब चित्तरूप दैत्य ज़न्म जाल में फिरता है जो कि उसके पुरुषार्थ का नाशक है और आत्म भावना वाली बुद्धि उत्पन्न नहीं होने देता, जैसे वृक्ष को अग्नि लगे तब पुनः उसमें फल नहीं लगते, ऐसे ही पुरुषार्थ रूप वृक्ष को भोगरूप आग लगी हो तब शुद्ध बुद्धि रूप फल उत्पन्न नहीं होते, हे रामजी! चित्त को आत्मा में जोडो, विषयों की ओर न जाने दो, यह चित्त दृष्ट है, जब इसको स्थिर करोगे तब परम अमृत से शोभायमान होगे, जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा अमृत से शोभा पाता है, ऐसे ब्रह्म लक्ष्मी से तुम्हारी शोभा होगी और परम निर्वाण पद को भी पाओगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे निर्वाणवर्णनं नामैकत्रिंशदाधिकशततमः सर्गः ।।१३१।।

द्वात्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३२

भूमिकालक्षण विचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सप्तभूमिकाएं ज्ञान की हैं, इनसे ज्ञान उत्पन्न होता है, रामजी बोले–हे भगवन्! जिस भूमिका में जिज्ञासु प्राप्त होता है, उसका लक्षण क्या है, यह सात भूमिकाएं क्या हैं और प्राप्त कैसे होती हैं, वह प्रकार कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह सप्त भूमिकाए जैसे मिलती हैं, तुम्हें कहता हूँ और जिस प्रकार भूमिकाओं से ज्ञान प्राप्त होता है, वह सब सुनो, हे रामजी! जब बालक माता के गर्भ में होता है और बाहिर निकलता है, तब इसका दृढ़ सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है, जैसे ज्ञानी की होती है, परन्तु बालक में संस्कार रहता है, उससे संस्कार की सत्यता आगे होनी है, जैसे बीज में अंकुर होता है, उससे आगे वृक्ष होता है, ऐसे बालक की भावी होती है और ज्ञानी की भावी नहीं होती, जैसे दग्ध बीज में अंकुर नहीं होता, ऐसे ज्ञानी की भावी नहीं होती, संसार से सुषुप्त है और स्वरूप में नहीं, इसी से भावी उसमें नहीं होती, जब बालक को बाहिर निकलते कोई काल व्यतीत होता है, तब दृढ़ जड़ता निवृत्त होती है और सुषुप्ति रहती है कितने एक काल के बाद सुषुप्ति भी लय होती है और चेतनता होती है, तब जानता है कि यह मैं हूँ, ये मेरे माता पिता हैं, तब कुलवाले उसको सिखाते हैं कि यह मीठा है, यह कड़वा है, यह तेरी माता है, यह पिता है, यह तेरा कुल है, इससे पाप होता है, इससे पुण्य होता है, इससे स्वर्ग पाता है, इससे नरक पाता है, इस प्रकार यज्ञ होता है, इस प्रकार तप होता है, इस प्रकार दान करता है, हे रामजी! इस प्रकार कुल के उपदेश से और शास्त्र के भय से धर्म में विचरता है और पाप का त्याग करता है, ऐसा जो शास्त्रानुसार विचरनेवाला पुरुष वह धर्मात्मा कहाता है, वह धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकार के हैं, एक प्रवृत्ति की ओर हैं और एक निवृत्ति की ओर हैं, जो

प्रवृत्ति की ओर हैं, वे पुण्य कर्मों से स्वर्ग फल भोगते हैं, वे मोक्ष को उत्तम नहीं जानते, संसार में भ्रान्त से हुए रहते हैं, जल में पड़े तिनके की भान्ति कभी संयोगवश निकल जाते हैं और जो निवृत्ति की ओर होता है, उसको विषय भोग से वैराग्य उत्पन्न होता है और कहता है कि यह संसार मिथ्या है, मैं इस पर विजय पाऊँ और इस अव्यय अविनाशी पद को प्राप्त हो ज़ाऊं, जहां क्षय और अतिशय न हो, यह संसार सर्वदा चल रूप है और दुःखदायी है, हे रामजी! इस पुरुष को इस क्रम से ज्ञान विज्ञान उत्पन्न होते हैं और जो पशुधर्मा मनुष्य हैं, उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है, पशुधर्मा उनको कहते हैं जो शास्त्र के अर्थ को नहीं जानते कि शुभ क्या है और अशुभ क्या है, अपनी इच्छानुसार बर्ताव करना विचार शून्य रहना आदि उनका स्वभाव होता है, मनुष्य भी दो प्रकार के हैं, एक तो वे हैं, जिनका स्वभाव प्रवृत्ति लक्षण वाला दूसरे ऐसे हैं, जो निवृत्ति लक्षण वाले हैं, जिसको शास्त्र शुभ कहे उसको ग्रहण करना और अशुभ का त्याग करना इसको प्रवृत्ति कहते हैं, इसके अनुसार सकाम होकर यज्ञादि करने, स्वर्ग धन पुत्रादि फल की कामना करने वाले ही प्रवृत्ति लक्षण हैं, इस प्रकार संसार समुद्र में बहते हैं और चिरकाल के बाद निवृत्ति की ओर भी आते हैं, तब स्वरूप को पाते हैं, वह निवृत्ति क्या है, निष्काम होकर अन्तःकरण शुद्धि के लिये कर्म करने को निवृत्ति लक्षण कहते हैं, ऐसा करने से इसको वैराग्य उत्पन्न होता है और कहता है कि मुझे कर्मों से क्या प्रयोजन है, मुझे किसी भी कर्म के फल की इच्छा नहीं, मैं किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त हो जाऊं और संसार के जाल से मुक्त हो जाऊं, यह संसार मिथ्या है, भोग सर्प है, मुझे इनसे कोई मतलब नहीं, हे रामजी! इस प्रकार भोगों की निन्दा करता है और उपरत होता है और शम दम आदिक जो ज्ञान के साधन हैं उनमें विचरता है और देशकाल पदार्थ को शुभ अशुभ विचारता है और मर्यादा के साथ बोलता है, सन्त जनों का संग करता है, सत् शास्त्रों की ओर ब्रह्मविद्या को बारंबार विचारता है, इस प्रकार उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है, विषयों से उसको वैराग्य होता जाता, तीर्थ स्थानों सात्विक

देवालयों महात्माओं के स्थानों पर जाकर उनका पूजा सत्कार करता है और शरीर से साधु पुरुषों की सेवा करता है और सबके साथ मित्र दया सत्य और कोमलता से व्यवहार करता है, ऐसा वचन बोलता है, जिससे सबको प्रसन्नता हो, किसी को दुर्वचन नहीं बोलता, स्वर्गादिक सुखों की भावना को त्यागता है, केवल आत्मपारायण रहता है, सत्य पुरुषों और शास्त्रों में दृढ भावना करता है, शास्त्रों के तत्वार्थ को समझने में युक्ति पूर्वक परिश्रम करता है, दूसरी ओर चित्त नहीं लगाता, जैसे निर्धन मनुष्य सदा धन के चिन्तन में रहता है, ऐसे वह आत्मचिन्तन में लगा रहता है, ऐसा पुरुष प्रथम भूमिका का अधिकारी होता है और वह पापरूप सर्प को मोर के समान नाश करता है, सत्पुरुषों सत् शास्त्रों और धर्मरूप मेघ को गर्दन ऊंची करके देखता है और प्रसन्न होता है, उसका नाम शुभेच्छा है, तदनन्तर इसको दूसरी भूमिका प्राप्त होती है, इसी प्रकार उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है, उसके यही लक्षण हैं कि सत्शास्त्रों और ब्रह्मविद्या का विचार करना और भावना दृढ़ करना, ऐसे ही विचार कवच के समान धारण किये रहता है, उसमें कोई किसी प्रकार का विघ्नरूप घाव नहीं लगता, इन्द्रियरूप चोर हैं, उनके हाथ में इच्छारूप संहारक शस्त्र हैं, जिस पुरुष ने विचाररूप कवच धारण किया है, उसके शरीर पर शस्त्र का प्रहार नहीं लगता, हे रामजी! इन्द्रियरूप सर्पों में तृष्णा विष है, उससे मूर्ख को मारती है और विचारवान् पुरुष इन्द्रियों के विष को नाश कर देते हैं, वे सब ओर से उदासीन ही रहते हैं, दुर्जन की संगति के बल से त्याग करता है, सब इच्छाओं का त्याग किया जाय तो भी एक इच्छा रहती है, कि वह सब पर दया करता है और सन्तोषवान् रहता है और निषेध गुण स्वाभाविक जाते रहते हैं, दंभ गर्व मोह लोभ आदिक उसके स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सर्प कंचु को त्यागकर शोभा पाता है, ऐसे विचारवान् ब्राह्म इन्द्रियों को त्यागकर शोभा पाता है और यदि क्रोध भी उसमें दृष्टि आता है, तो क्षणमात्र होता है, हृदय में स्थित नहीं हो सकता और खान पान लेन देन की जो

क्रियाएं हैं, उनको विचार पूर्वक करता है और सर्वदा शुद्धमार्ग में विचरता है, संतजनों का संग करना और सत् शास्त्रों के अर्थ का विचार करना, बोध को बढ़ाना, तप करना, तीर्थ स्नान करना आदि ढंग से समय को व्यतीत करता है, हे रामजी! यह दूसरी भूमिका है, जब तीसरी भूमिका आती है तब श्रुति जो हैं बेद और स्मृतिरूप जो हैं, धर्मशास्त्र जिनके अर्थ हृदय में स्थित होते हैं, जैसे कमल पर भँवरा आकर स्थित होता है, ऐसे इस पुरुष के हृदय में शुभगुण स्थित होते हैं, फूलों की शय्या भी सुखदायी नहीं प्रतीत होती, वन और कंदरा सुखदायक भासते हैं, वैराग्य उसका प्रतिदिन बढ़ता जाता है और तालाबों, बावड़ियों, नदियों में स्नान करना, शुभस्थानों में रहना, पत्थरों, शिलाओं पर शयन करना, देह को तप से क्षीण करना और धारण के साथ चित्त को किसी ठौर में न लगाना, आत्मभावना से सदा भावित रहना, भोगों से उपरति होना, सांसारिक तथा आलौकिक सब प्रकार के भोगों को नाशवान् जानना कि यह स्थिर नहीं रहते और देह के अहंकार को उपाधि जानकर त्यागना, आदि सारे सद्भाव उसके मन में सदा बने रहते हैं और यदि वह देह सम्बन्धी अहंकार का रक्त मांस पुरीषादि से पूर्ण घृणित जानकर त्याग करता है और निन्दा करता है, सूखे तृण की नाईं तुच्छ जानकर त्यागता है, जैसे तृण विष्ठा युक्त हो तो उसको त्यागा जाता है, ऐसे देह के अहंकार को त्यागता है, कन्दराओं में विचरना, फल मूल आहार करना और सन्त जनों की सेवा करना आदि कार्यों में अपनी आयु के समय को बिताता है, सदा असंग रहता है, वही तीसरी भूमिका है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे प्रथम द्वितीय तृतीय भूमिका–लक्षण विचार वर्णनं नाम द्वात्रिंदधिकशततमः सर्गः ।।१३२।।

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३३
तृतीयभूमिकाविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह ज्ञान का साधन है, ब्रह्म विद्या को विचारना, बारंबार उसके अर्थ की भावना करना और पुण्य सम्बन्धी कामों के विषय में विचार इत्यादि बातों से इतर कोई ज्ञान साधन नहीं है, इनसे ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिस पुरुष को ऐसी भावना हो जाय तब वह नाना प्रकार के सुगंधि साधन अगर, चन्दन चोआ आदि से लेकर अन्य अप्सरा आदि के भी अनिच्छित प्राप्त होने पर इन सबका निरादर करता है और दुःखी होता है कि यह क्या है, यद्यपि निरादर दृष्टि से देखकर उनको त्याग करने में वह समर्थ होता है, तो भी उसको उनका निरादर करने से भी दुःख होता है, इसलिये वह स्त्री को देखते ही उसमें माता की भावना करके परम सात्विक सुख का अनुभव करता है, पर धन को पत्थर मिट्टीके समान जानकर इच्छा नहीं करता और सब जीवों को देखकर दया करता है, जैसे अपने आपको सुख से प्रसन्न और दुःख से दुःखी जानता है, ऐसे ही दूसरों को भी सुख से सुख और दुःख से दुःख की प्राप्ति होना स्वाभाविक है, इस प्रकार वह पुण्य क्रिया में विचरता है और शास्त्रों के अर्थ का अभ्यास करता है, सदा असंग रहता है, असंगता भी दो प्रकार की है, एक समान है, एक विशेष है, उनका लक्षण सुनो, पहिला समान कहता है कि मैं कुछ नहीं करता, न किसी को देता हूँ, न मुझे कोई देता है, सब ईश्वर की आज्ञा वर्तती है, जिसको धन देने की इच्छा होती है, उसको धन देता है, जिससे लेना होता है, उससे लेता है, इसके अधीन कुछ नहीं और जो कुछ दान, तप, यज्ञ आदि करता है, वह ईश्वरार्पण करता है, अपना अभिमान कुछ नहीं करता और कहता है, ईश्वर की शक्ति से होता है, इस प्रकार निरभिमान होकर धर्म चेष्टा में स्वाभाविक विचरता है और इन्द्रियों के भोगों की सम्पत्ति को विपत्ति जानता है, भोगों को महान् दुःखदायक मानता है, संपत्ति आपत्ति रूप है,

संयोग वियोग रूप है, जितने पदार्थ हैं, सब सन्निपात रूप हैं, विचार से नष्ट हो जाते हैं, सबको नाशरूप जानता है, संयोग वियोग में दुःखदायी है, पर स्त्री को विषवल्ली के समान रस से रहित जानता है और सब पदार्थों को परिणामी जानकर इच्छा किसी की नहीं करता है, उसका हर समय यह मन न रहता है कि सम्पूर्ण विश्व कर्ता धर्ता संहर्ता जो ईश्वर है, जिसको सुख देना है, उसको सुख देता है, जिसको दुःख देना है, उसको दुःख देता है, अपने हाथ कुछ नहीं, करने कराने वाले वही भगवान् हैं, न मैं कर्ता हूँ, न मैं भोक्ता हूँ, न मैं वक्ता हूँ, जो कुछ होता है वह सब कुछ प्रभु की सत्ता से होता है, ऐसा निरभिमान होकर पुण्य कर्म करता है, वह समान असंग है। उसके वचन सुनने से श्रवणों को अमृत की प्राप्ति होती है, इस प्रकार संतों के मिलन रूप भूमिका से जिसकी बुद्धि बढ़ी है और निरभिमान है, उसके उपदेश में अनुभव से तब तक अभ्यास करे जब तक हाथ पर आँवलें की नाईं आत्मा का अनुभव साक्षात्कार से न हो जाये और यह जो कहा था, ईश्वर सबका कर्ता है, वह समान असंग है और विशेष असंग वाला कहाता है, न मैं कुछ करता हूँ, न कराता हूँ, केवल आकाशरूप आत्मा हूँ, न मुझे करना है न कराना है, न कोई अपर है न कोई मेरा है, केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हूँ, हे रामजी! वह पुरुष न अन्तर को देखता है न बाहिर, न पदार्थ, न अपदार्थ, न जड़, न चेतन, न आकाश, न पाताल को देखता है, न देश को न पृथ्वी को, न मेरे को न तेरे को देखता है, अज अविनाशी सर्व शब्द अर्थों से रहित केवल शून्य आकाश में स्थित है, चित्त से रहित चेतन में जो प्रस्थित है, उसको असंग श्रेष्ठ कहते हैं, बाह्य उसकी चेष्टा दृष्टि भी आती है तो भी अंतर पदार्थ की भावना का अभाव है, जैसे जल में कमल दृष्टि भी आता है परन्तु ऊँचा ही रहता है, ऐसे क्रिया में विचरता दृष्टि भी आता है, परन्तु असंग रहता है, कामना उसको कोई नहीं रहती कि यह हो और यह न हो, क्योंकि उसको संसार का अभाव निश्चय हुआ है, सर्व कलना से रहित है, आत्मा से इतर किसी पदार्थ की सत्ता नहीं

फुरती, वह श्रेष्ठ असंग कहाता है और करने से उसका अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता, अकरने में प्रत्यवाय नहीं होता, वह सर्वदा असंग है, संसार में डूबता कदाचित् नहीं, संसार समुद्र के पार को प्राप्त हुआ है और उस पुरुष ने अनात्म में आत्म भावना त्यागी है, अहं भाव का त्याग किया है, जितने पदार्थ हैं इष्ट अनिष्टरूप उनके सुख दुःख की वेदना नहीं फुरती, सदा मौन रूप है, ऐसा पत्थर समान है, वह श्रेष्ठ असंग कहता है, हे रामजी! एक कमल है, वह अज्ञान रूप की कीच से निकलकर आत्मरूप जल में विराजता है, संसार की अभावना उसका बीज है और उस जल में तृष्णारूप मछलियाँ हैं, कमल के चारों ओर फिरती हैं और दुःखरूप कर्म उसके साथ काटे हैं, अज्ञानरूप रात्रि के कारण मुख मुंदा रहता है और विचाररूप सूर्य के उदय हुए खिलता है और शोभा पाता है, सुगंधि उसमें संतोष है, वह हृदय के बीच लगता है, फूल उसका असंग है तीसरी भूमिका में यह उत्पन्न होता है, हे रामजी! सत्संग और सत् शास्त्रों के विचारने से सार को प्राप्त करता है, इनसे अमृत मोक्ष को प्राप्त होता है, बड़ा कष्ट है कि ऐसे स्वरूप को विस्मरण करके जीव दुःखी होते हैं, इसका स्वरूप दुःखों का नाश करता है, जिसमें दुःख कोई नहीं, आनंद रूप है, इन भूमिकाओं द्वारा प्राप्त होता है, फिर बन्धन में नहीं आता, हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञानी की निकटवर्तिनी है, जब इस प्रकार बोध को बढ़ाता है और शास्त्र युक्ति को साथ रखता है तो क्रम से यह तीसरी भूमिका को प्राप्त होता है, वहां इसको असंगता मिलती है, जैसे किसान खेती की रक्षा करता है, बढ़ता है, ऐसे विचार रूप जल से बुद्धि को बढ़ाता है, जब बुद्धिरूप लता बढ़ती है तब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है और अहंकार मोहादिक शत्रु से रक्षा करता है, हे रामजी! इस भूमिका को प्राप्त होकर यह ज्ञानवान् होता है, यह भूमिका कर्म से प्राप्त होती है, अथवा बड़े पुण्य कर्म किये हों उनसे इसका लाभ हो, या अकस्मात् आकर फुरती है, जैसे नदी के तट पर कोई आकर बैठा हो और नदी के वेग से बीच जा पड़े, ऐसे जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है

तब बुद्धि वृद्धि होती है, जब बुद्धिरूप वल्ली बढ़ती है तब ज्ञानरूप फल लगता है, जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब प्रत्यक्ष क्रिया उसमें दृष्टि भी आवे तो भी इसका अभिमान नहीं रहता, जैसे शुद्ध मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण भी करती है, परन्तु रंग कोई नहीं चढ़ता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे तृतीयभूमिकाविचार वर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१३३।।

चतुस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३४

विश्ववासनारूपवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! आपने भूमिका का वर्णन किया, उसमें मुझे संशय है कि जो भूमिकाओं से रहित हैं और प्रकृति के सम्मुख हैं, उनको भी कदाचित् ज्ञान उत्पन्न होगा अथवा न होगा और जिसने एक भूमिका पायी हो अथवा दो भूमिकाएं पायी हों अथवा तीसरी भी पायी हो और शरीर उसका छूट जाय और आत्मसाक्षात्कार तो हुआ न हो और स्वर्गादिक की उसको कामना हो, तब वह किस गति को प्राप्त होता है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो विषयी पुरुष हैं उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है, वे लोग वासना वेग से घटी यंत्र की नाईं घूमते हैं, कभी स्वर्ग जाते हैं, कभी पाताल जाते हैं और दुःख पाते हैं, कदाचित् अकस्मात् काकतालीय न्याय की नाईं उसको सत्संग और वेदान्त शास्त्र चर्चा के सुनने की अभिलाषा उत्पन्न होती है, परन्तु जैसे मरुस्थल में कोमल वल्ली का लगना कठिन है, ऐसे जिस पुरुष को आत्मा का प्रमाद है और भोग की वासना है उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है परन्तु जब अकस्मात् सत्संग से उसको वैराग्य उत्पन्न होता है और बुद्धि उसकी निवृत्ति की ओर होती है तब भूमिका द्वारा उसको ज्ञान होता है तब ही मुक्त होता है, हे रामजी! यह भावना अकस्मात् उत्पन्न हुए बिना

योनियों में भ्रमण करता है और जिसको एक या दो भूमिकाएं प्राप्त होती हैं और शरीर उसका छूट गया तब अपर जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त होता है, उसका पिछला संस्कार जगता है और दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है, जैसे बीज से वृक्ष का अंकुर होता है और फिर शाखाओं फूलों फलों से बढ़ता जाता है, ऐसे उसको अभ्यास का संस्कार बढ़ता जाता है और ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे पहलवान् खेलता है और रात को सो जाता है, पुनः दिन हुए उठता है, तब उसी पूर्वाभ्यस्त पहलवानी का अभ्यास स्फुरण में आता है, जैसे कोई मार्ग चलता चलता सो जाय और जगकर चलने लगे ऐसे वह अपने पुनः उसी पूर्वाभ्यास में लग जाता है, हे रामजी! जिसको भावना होती है, जो मेरे लिये विशेषता प्राप्त हो, उससे जन्म पाता है, ब्रह्मा आदि चींटी पर्यन्त उसको विशेष होने की कामना है, तब ही जन्म पाता है, ज्ञानी को भोग की इच्छा और विशेष प्राप्ति होने की इच्छा नहीं होती, जिनको भोग की इच्छा होती है वे भोग से अपने को विशेष जानते हैं और अनिष्ट की निवृत्ति की इच्छा करते हैं और ज्ञानी को वासना कोई नहीं होती कि यह विशेषता मुझे प्राप्त हो, इसी से पुनः जन्म नहीं पाता, जैसे भूना बीज उत्पन्न नहीं होता, ऐसे वासना से रहित ज्ञानी जन्म नहीं पाता, हे रामजी! जन्म का कारण वासना है, जैसी वासना होती है ऐसी ऐसी अवस्था को प्राप्त होता है, नाना प्रकार की वासनाएँ हैं, जब शरीर छूटने का समय आता है, तब जो वासना दृढ़ होती है, जिसका सर्वदा अभ्यास होता है, अन्तकाल में वह सब वासनाएं दिखाई देती हैं, पाठ की, तप की, कर्म की, देवता की इत्यादिक वासनाएं आकर खड़ी होती हैं, उस समय सबको मर्दन करके वही भासती हैं, हे रामजी! उस समय जो अग्र गत पदार्थ होते हैं, वे भी नहीं भासते। पांचों इन्द्रियों के विषय विद्यमान हों तो भी नहीं भासते, वही पदार्थ भासता है, जिसका दृढ़ अभ्यास किया होता है। वासना तो अनेक होती हैं परन्तु जैसी वासना दृढ़ होती है उसी के अनुसार शरीर धारण करता है, जब देह छूटता है तब मुहूर्त पर्यन्त

जड़ता रहती है, सुषुप्ति की नाईं उसके अनन्तर चेतनता होती है, तब वासना के अनुसार शरीर को देखता है और जानता है कि यह मेरा शरीर है, मैं उत्पन्न हुआ हूँ, एक इसी प्रकार होते हैं और एक ऐसे होते हैं कि वहाँ उसी क्षण में युग का अनुभव करते हैं, फिर एक ऐसे होते हैं जो चिरकाल पर्यन्त जड़ रहते हैं, चिरकाल से उनको चेतनता फुरती है, उसके अनुसार संसार भ्रम को देखते हैं और एक संस्कारवान् होते हैं, उनको शीघ्र ही एक क्षण में चेतनता होती है और जानता है कि मैं उस ठौर से मरा हूं और इस जगह आकर मेरा जन्म हुआ है, यह मेरी माताजी हैं, यह मेरे पिताजी हैं, यह मेरा कुल है, इस प्रकार एक मुहूर्त में जगकर देखता है, तो बड़े कुल को सामने पाता है, इसी प्रकार परलोक को देखता है यमदूतों को देखता है और जानता है कि ये मुझे ले जाते हैं और देखता है कि मेरे पुत्रों ने मेरे पिण्ड किये हैं, उससे मेरा शरीर हुआ है और मुझे दूत ले चले हैं, तब आगे धर्मराज को देखता है, उसके पास जाकर खड़ा होता है और पुण्य पाप दोनों मूर्ति धारण किये इसके आगे आकर स्थित होते हैं, तब धर्मराज अन्तर्यामी से पूछता है कि इसने क्या कर्म किये हैं, जो पुण्यवान् होता है तो स्वर्ग भोग भुगताकर फिर योनियों में डाल देते हैं, जो पापी होता है तो नरक में डाल देते हैं, इस प्रकार जन्म धारण करता है, सर्प योनि में कहता है कि मैं सर्प हूँ, बैल, बानर, तीतर, मच्छर, बगला, गर्दभ, वल्ली, वृक्ष, इत्यादि योनियों को पाता है और जानता है मैं यही हूँ, अकस्मात् काकतालीय योग की नाईं कदाचित् मनुष्य शरीर प्राप्त करता है और माता के गर्भ में जानता है कि मैंने यहाँ जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पिता के यहाँ उत्पन्न भया हूँ, यह मेरा कुल है, फिर बाहर निकलता है, बालक होता है और जानता है कि मैं बालक हूँ, फिर यौवन अवस्था होती है, तब जानता है मैं जवान हूँ, तदनन्तर जब वृद्ध हुआ है तब जानता है मैं वृद्ध हूँ, इस प्रकार काल को बिताता है, बाद मृत्यु को प्राप्त होता है और सर्प तोता तीतर बानर मत्स्य कच्छप वृक्ष पशु पक्षी देवता इत्यादिकोंके जन्म धारण करता है, हे रामजी! संसार में घटी यंत्र की नाईं घूमता है, कभी ऊपर कभी नीचे जाता है, स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है, हे रामजी! इतना विस्तार

जो तुमको कहा है वह बना कुछ नहीं, केवल अद्वैत आत्मा है, चित्त के संयोग से इतने भ्रम को देखता है, वासना से विमानों को देखता है, वहां आकाश में जाता है, जैसे पवन गन्ध को ले जाता है, ऐसे पुर्यष्टका को ले जाता है और शरीर को देखता है, हे रामजी! आत्मा से इतर कुछ नहीं, परन्तु चित्त के संयोग से इतने भ्रम को देखता है, इसलिये चित्त स्थिर करो, जब भ्रम मिट जायेगा और आत्मतत्व मात्र ही शेष रहेगा, वह शुद्ध है और आनन्दरूप है, उसमें स्थिति करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्ववासंनारूपवर्णन नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१३४॥

पंचत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३५

सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तुम्हें प्रवृत्तिवाले का क्रम सुना दिया गया है, अब निवृत्ति का क्रम सुनो, जिसको भूमिका प्राप्त हुई है और आत्मपद प्राप्त नहीं हुआ, उसके पास तो सब दग्ध हो जाते हैं, जब उसका शरीर छूटता है तब वासना के अनुसार शून्याकार हुआ पुनः अपने साथ शरीर देखता है, फिर बड़े परलोक को देखता है, वहां स्वर्ग के सुख भोगता है, विमान पर चढ़ता है, लोकपालों के पुरों में विचरता है, जहां मंद मंद पवन चलता है, सुन्दर वृक्षों की विचित्र सुगंधि है, पांचों इन्द्रियों के रमणीय विषय हैं, उन स्थानों में विचरता है, देवताओं से खेलता है, भोग भोगकर संसार में उत्पन्न होता है, फिर भूमिका क्रम को प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलता कोई सो जाय, जगकर फिर चले ऐसे शरीर पाकर फिर भूमिका क्रम को प्राप्त होता है, जैसी जैसी भावना दृढ़ होती है ऐसे हो भासता है, यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प के अनुसार ही प्रतीत होता है, वासना के अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, वहां से भोगकर फिर संसार में आना पड़ता है, इसी प्रकार संकल्प से संसार को देखता है, जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि भासती है, देवता, दैत्य, भूमिलोक, स्वर्ग, सब संकल्प के रचे हुए हैं, जितना कुछ संसार प्रतीत होता है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि लेकर सब

जगत् मनोमात्र है, मन के संकल्प से उदय हुआ है, असत् रूप है, जैसे मनोराज्य गन्धर्व नगर, स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप है, ऐसे यह जगत् भ्रमरूप है, सब जीवों की अपनी अपनी सृष्टि है, परस्पर अदृष्ट है, उसकी सृष्टि वह नहीं जानता, कहीं उदय होती भासती है, कहीं लय हो जाती है, जैसे मूर्ख अपर देश को जाता है, ऐसे देह को त्यागकर परलोक को जाता है और स्वरूप में आना जाना अहं त्वं कल्पना कोई नहीं, केवल सत्ता मात्र अपने आप में स्थित है, जगत् भी वही है, हे रामजी! यह विश्व आत्मरूप है, जैसे मणि का चमत्कार होता है, ऐसे विश्व आत्मा का चमत्कार है और जो कुछ तुझे प्रतीत होता है वह आत्मा ही है, आत्मा बिना आभास नहीं होता, जैसे इक्षु में मधुरता और मिरच में तीक्ष्णता होती है, ऐसे आत्मा में विश्व है, जो कुछ देखता है, श्रवण करता है, जो स्पर्श करे, सुगन्ध ले वह सब आत्मा ही जान, अथवा जो इनके जानने वाला है, अनुभव रूप उसमें स्थित हो, इन्द्रियों और विषयों को त्यागकर अनुभव रूप में स्थित हो। हे रामजी! यह विश्व संवित् रूप है और संवित् हो विश्वरूप है, जब संवित् बहिर्मुख होकर रस लेती है तब जाग्रत को देखती है, जब अन्तर्मुख होकर रस लेती है, तब स्वप्न होता है, जब शान्त हो जाती है, तब सुषुप्ति होती है, संसार को सत्य जान कर जो रस लेती है तब जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाएं होती हैं और जब संवित् से रस की सत्यता जानी जाय तब तुरीयापद होता है, उसका जानना फुरता है यह पदार्थ है, यह नहीं, जब यह नष्ट हो तब तुरीयापद है, हे रामजी! यह विश्व स्फुरण मात्र है, जब फुरना नष्ट हो तब विश्व का अभाव है, जैसे स्वप्न के देशकाल पदार्थ जगने पर मिथ्या सिद्ध होते हैं, ऐसे यह जगत् भी मिथ्या है और जीव प्रति जो अपनी अपनी सृष्टि होती है, उसमें आप भी कुछ बन पड़ता है, उससे दुःखी होता है, जब इस अहंकार को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो तब विश्व कहीं नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम पंचत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१३५॥

षट्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३६

विश्वाकाशैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह सृष्टि का स्वरूप संकल्प मात्र है और संकल्प भी आकाशरूप है, आकाश और स्वर्ग में कुछ भेद नहीं, जैसे–पवन और स्पंद में भेद नहीं, कैसी सृष्टि है जो अनेक पदार्थ हैं, परन्तु परस्पर रोकती नहीं और वास्तव से विश्व भी आत्मा का चमत्कार है और आत्मरूप है, यदि आत्मरूप है तो राग द्वेष करना कैसे बन सकता है, चेतन धातु में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं और यह आश्चर्य है, जो कि आत्मा से इतर कुछ हुआ नहीं और भिन्न भिन्न संवेदन दृष्टि आती है और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं, हे रामजी! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, एक सृष्टि ऐसी है कि इनका संकल्प एक दृष्टि आता है परन्तु सृष्टि अपनी अपनी है और एक जैसी है, जो भिन्न भिन्न है परन्तु समानता करके एक ही दृष्टि आती है, जैसे जल की बूंदें इकट्ठी होती हैं, जैसे धूड के कण भिन्न भिन्न होते हैं, परन्तु एक ही धूड भासती है, जैसे नदी में नदी पड़ती है तो एक ही जल हो जाता है, ऐसे समानाधिकरण से एक ही भासते हैं, एक एक के साथ मिलते हैं और नहीं भी मिलते, जैसे क्षीर सागर में घृत डालें तो नहीं मिलता, ऐसे ही एक संकल्प ऐसे हैं जो अन्य के साथ नहीं मिलते, जैसे एक सूर्य का प्रकाश हो और एक दीपक का प्रकाश हो और एक मणि का प्रकाश हो तब वहां भिन्न भिन्न दृष्टि आते हैं और एक जैसे होते हैं,ऐसी कई सृष्टियाँ एक ही भासती हैं और भिन्न भिन्न होती हैं और कई इकट्ठी होती हैं और भिन्न भिन्न दृष्टि आती हैं, हे रामजी! इतनी सृष्टियां जो मैंने तुम्हें कही हैं, वे सब अधिष्ठान में फुरणे से कई कोटि उत्पन्न होती हैं और कई कोटि लीन हो जाती हैं, जैसे जल में तरंग बुद्बुदे उत्पन्न होकर लीन हो जाते हैं, ऐसे उत्पन्न और लीन होती हैं, अधिष्ठान ज्यों का त्यों है, क्योंकि

उससे इतर कुछ नहीं और ब्रह्म आत्मा आदिक जो सर्व है, वे भी फुरणें में हुए हैं, जब तक शब्द अर्थ की भावना है तब तक भासते हैं, जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ को नहीं भासेगा, केवल शुद्ध चेतन मात्र ही शेष रहेगा, पुनः संसार का भाव किसी स्थान पर न होगा, जैसे पवन जब तक चलता है तब तक जानता है कि पवन है और गंध भी पवन करके जानी जाती है, सुगन्ध हो अथवा दुर्गन्ध हो जब पवन चलने से रहित होता है, तब कुछ नहीं भासता कि सुगन्धि है या दुर्गन्धि है, जब पवन का फुरना निवृत्त हुआ तब संसार और संसार का अर्थ दोनों नहीं भासते और फुरणे में जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपनी अपनी सृष्टि है उस उस सृष्टि में सत्ता समान ब्रह्म स्थित है और सबका अपना आप है, द्वैत भाव को भी प्राप्त नहीं हुआ, हे रामजी! इसलिये ऐसा जानो कि आकाश भी आत्मा है, पृथ्वी भी आत्मा है, जल भी आत्मा है, अग्नि आदिक सब पदार्थ आत्मा ही हैं, अथवा ऐसा जान कि सब मिथ्या हैं, इनका साक्षीभूत सत् ब्रह्म ही अपने आप में स्थित हैं, इतर कुछ नहीं, उसी ब्रह्म में अंश से अनेक सुमेरु और मंदराचल आदि स्थित हैं और अंशांशीभाव भी आत्मा में स्थूलता के निमित्त कहे हैं, आत्मा एकरस है, हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो आत्मसत्ता बिना हो, जिसको सत्य जानता है, वह भी आत्मा है और जिसको असत्य जानता है, वह भी आत्मा है, आत्मा में जैसे सत्य का स्फुरण है, ऐसे ही असत्य का स्फुरण है, स्फुरण दोनों का तुल्य है, जैसे स्वप्न में एक सत्य जानता है एक असत्य जानता है, ऐसे जो इन्द्रियों के विषय होते हैं, उनको सत् जानता है और आकाश के फूल, शशे के श्रृंग को असत् कहता है, सब अनुभव से स्फुरण होता है, अतः अनुभव रूप हैं और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मा में असत् नहीं, जो कुछ भासते हैं वह सब फुरने में हुए हैं, सत्य क्या और असत्य क्या, सब मिथ्या है, स्वप्न के सत् और असत् की नाईं है, जो अनुभव करके सिद्ध है वह सब सत्य है और सत्य अनुभव से इतर है वह सब असत्य है, हे रामजी! गुणातीत परमात्म स्वरूप में स्थिति करो, हे रामजी! भूत भविष्य वर्तमान तीनों

कालों में ज्ञानवान् पुरुष सम है और दशों दिशाएं आकाश जल अग्नि आदिक पदार्थ सब इसको आत्मरूप ही दृष्टि आते हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं प्रतीत होता, सूर्य चन्द्रमा तारे सब आत्मा हैं, यह विश्व आकाशरूप है और शुद्ध निर्मल है, आकाश में आकाश स्थित है इतर कुछ नहीं और जो तुझे इतर प्रतीत हो, उसको मिथ्या जान, भ्रम से सिद्ध हुआ है, सत् कुछ नहीं, यदि परमार्थ से देखे तो सब आत्मा है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्वाकाशैकता प्रतिपादनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१३६॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३७

विश्वविलयवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह विश्व स्वप्न समान है, जैसे और स्वप्न की सेना नाना प्रकार से दिखायी देती है, शस्त्र चलते हैं, इत्यादिक प्रतीत होते हैं, आत्मा में इनका रूप देखना और मानना शब्द अर्थ कोई नहीं, जगत् से रहित है और जगत् रूप भान होता है अहं, त्व, तेरा जितना कुछ प्रतीत होता है, सब स्वप्नवत् है, भ्रम से सिद्ध हुआ है, जो सबका अधिष्ठान है वह सत्य है, सब कुछ उसी में कल्पित है, यदि अनुभवों से देखें तो सब आत्मस्वरूप है इतर देखो तो कुछ नहीं, जैसे स्वप्न के देशकाल पदार्थ सब अर्थाकार भासते हैं, तो भी मिथ्या हैं, ऐसे यह विश्व भ्रम से फुरता है, उनकी अपेक्षा से तू है, उसकी अपेक्षा से वह यह है, वास्तव से दोनों नहीं जो है वह आत्मा ही है, राम बोले—हे भगवन्! आपने कहा है कि त्वं आदिक अहं पर्यन्त और अहं आदिक त्वं पर्यन्त सब स्वप्न सैन्य की नाईं मिथ्या है और अनुभव से देखें तो आत्मस्वरूप है, हम स्वप्न सैन्य में हैं, अथवा हमारा अहं आत्मा है वह कहिये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जो अनात्मदेहादिक में अहं भावना

की जाती है कि मैं हूँ वह स्वप्न सैन्य के तुल्य हैं और जो अधिष्ठान चिन्मात्र में दृश्यते और अहंकार से रहित अहंभावना करनी है वह आत्मरूप है, हे रामजी! तू आत्मरूप है और यह विश्व सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, अधिष्ठान रूप से देखें तो आत्मरूप है और यदि अधिष्ठान से रहित देखें तो मिथ्या हैं, वह अधिष्ठान शुद्ध है, आनन्दरूप है, चित्त से रहित चिन्मात्र परम ब्रह्म है, उसमें अज्ञान से दृश्य देखता है, जैसे असम्यक् दृष्टि से सीपी में रूपा भासता है, ऐसे आत्मा में अज्ञानी दृश्य की कल्पना करते हैं, हे रामजी! दृश्य अविचार से सिद्ध है विचार करने पर कुछ वस्तु नहीं होती, जिसके आश्रय कल्पित हैं, वह अधिष्ठान सत्य है, जैसे सीपी जानने से रूपे की बुद्धि जाती रहती है, ऐसे आत्मविचार से विश्व बुद्धि जाती रहती है, जैसे समुद्र में पवन से चक्र तरंग फुरते हैं और प्रत्यक्ष भासते हैं, विचार करने पर चक्र में भी जल बुद्धि होती है, ऐसे आत्मरूपी समुद्र में मन के फुरने से विश्व रूप चक्र उठते हैं, विचार करने से तुझको मन के फुरने से भी आत्मरूप भासेगा, विश्वरूप चक्र न भासेंगे, भ्रम निवृत्त हो जायेगा, जो वस्तु फुरने में उत्पन्न हुई है, वह स्फुरण न होने पर निवृत्त हो जाती है, यह विश्व अज्ञान से उत्पन्न हुआ है और ज्ञान से लीन हो जायेगा, अतः विश्व को भ्रममात्र जान, रामजी बोले—हे भगवन्! आपने कहा कि ब्रह्मा रुद्र आदि से उत्पत्ति होकर संहार पर्यन्त सब विश्व भ्रम मात्र है, ऐसा जानने से क्या सिद्ध होता है, यह तो प्रत्यक्ष दुःखदायक रचना भासती है, ऐसी प्रतीत होती है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जो कुछ तू देखता है, सब आत्मरूप है, इतर कुछ नहीं सम्यग् दृष्टि से और असम्यक् दृष्टि से विश्व है तो दृष्टि का भेद है, सम्यग् असम्यग् देखने का अधिष्ठान ज्यों का त्यों है, जैसे एक जेवरी पड़ी हो, अन्धकार की उपाधि से सर्प होकर प्रतीत होती और भय उत्पन्न करती है और यदि प्रकाश से देखें तो जेवरी (रस्सी) ही प्रतीत होती है, ऐसे ही जिसने आत्मा को जान लिया उसको दृश्य भी आत्मरूप है, अज्ञानी को विश्व प्रतीत होता है और वह दुःख पाता है, जैसे मूर्ख

बालक अपनी परछाईं में वेताल की कल्पना करके भयभीत होता है अपने न जानने से दु:ख पाता है, यदि जाने तो भीत किसलिये हो, हे रामजी! अपने ही सकंल्प से आप बद्ध होता है, जैसे घुरान कीट अपने बैठने का स्थान बनाती है और आप ही फँस मरती है, ऐसे अनात्म में अहं प्रतीति करके आप ही दु:ख पाता है, हे रामजी! आप ही संसार होता है, आप ही ब्रह्म होता है, जब दृश्य की ओर फुरता है तब संसारी होता है, जब स्वरूप की ओर आता है तब ब्रह्म आत्मा होता है, इसलिये जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो, यदि संसारी होने की इच्छा है तो संसारी बनो, यदि ब्रह्मरूप होने की इच्छा हो तो ब्रह्म बनो, यदि मुझे पूछो तो दृश्य अहंकार को त्यागकर आत्मा में स्थिति प्राप्त करो, विश्व भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ नहीं, यही पुरुषार्थ है कि संकल्प से संकल्प को काटो, जब बाहिर से अन्तर्मुख होगा तब ब्रह्म ही भासेगा, दृश्य की कल्पना मिट जायेगी क्योंकि जो आगे भी नहीं, हे रामजी! जो सद्वस्तु आत्मा है, अनेक यत्न करने से भी नाश नहीं होता और जो असत्य अनात्मा है, उसके लिये यत्न करने पर भी वह सत् नहीं होता, जो सद्वस्तु है उसका अभाव कदाचित् नहीं और जो असत् है उसका भाव नहीं होता, असत् वस्तु तब तक भासती है जब तक उसे भली प्रकार न जान लिया जाये, जब विचार कर देंखे तब नाश हो जाती है, अविद्यक पदार्थ विद्या से नष्ट हो जाते हैं, जैसे स्वप्न का सुमेरु पर्वत सत्य हो तो जाग्रत में भी भासे परन्तु वह है नहीं वह जाग्रत से नष्ट हो जाता है, ऐसे यह संसार जो तुझे प्रतीत हो रहा, है, स्वरूप के बिना नष्ट हो जायेगा और यदि हमसे पूछो तो हमको आत्मा से इतर कुछ नहीं प्रतीत होता, सब आत्मा ही है, हमें न ज्ञान से प्रयोजन है न मोक्ष होने से मतलब है क्योंकि हमको तो सब आत्मा ही भासते हैं, हे रामजी! जब तक चेतन है तब तक मरता है और जन्म भी पाता है, जब जड़ होता है तब शान्ति पाता है और मुक्त होता है, दृश्य की ओर फुरणे को ही यहां चेतन शब्द से कहा जा रहा है, उसी से जन्म मरण के बन्धन में आता है, जब दृश्य के

फुरने से जड़ हो जाये, तब मुक्त हो, इसका होना ही दुःख है न होना ही मुक्ति है, अहंकार का होना बन्धन है, अहंकार का न होना मुक्ति है, इसलिये पुरुष प्रयत्न यही है कि अहंकार का त्याग करना और चेतन ब्रह्मधन जो अपना आप है उसमें स्थित होना, जिसको संसार की सत् भावना है उसको संसार ही है ब्रह्म नहीं और जिसको ब्रह्म भावना हुई है, उसको ब्रह्म ही भासता है, हे रामजी! पाताल में जायँ अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी पर फिरें, दशों दिशाओं में घूमें, आकाश में देवताओं के स्थानों में जा पहुँचे, तो भी सुख की प्राप्ति न होगी और आत्मदर्शन भी न होगा, क्योंकि अनात्मा में अहंकार करने से सुख नहीं है, यदि आत्मदर्शी होकर देखें तो सब आत्मा ही भासेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्वविलयोनाम
नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१३७।।

अष्टत्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३८

विश्वप्रमाणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संसार संकल्प मात्र है और तुच्छ है, पर्वत, नदियाँ, देश, काल सब भ्रम से सिद्ध हैं, जैसे स्वप्न में निद्रा दोष से पर्वत नदियां देश काल भासते हैं, परन्तु हुआ कुछ नहीं, ऐसे अज्ञान निद्रा से यह संसार विचित्र प्रतीत होता है, हे रामजी! जगकर देखें तो संसार है नहीं, इसका तरना महा सुगम है और सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं, वह कमल की नाईं कोमल हैं, जैसे कमल के मुँदने से यत्न कुछ नहीं, ऐसे यंह कोमल निवृत्त होते हैं और आकार जो भासते हैं भूत प्राणी, वह उनकी स्थूल दृष्टि आकार को देख रहे हैं, जैसे पवन चलना जाना जाता है और जब चलने से रहित होता है तब मूर्ख की गम नहीं, जो निराकार को जाने ऐसे भूत प्राणी आकार को जानते हैं, इसमें जो निराकार स्थित

है उसको नहीं जानते जैसे–पवन चलता है तो भी पवन है यदि ठहरता है तो भी पवन है, इसी प्रकार यदि विश्व का स्फुरण होता है, तो भी आत्मा है और अस्फुरण में भी वही है, इसलिये विश्व भी आत्मारूप है इतर कुछ नहीं, सम्यग्दर्शी को फुरने न फुरने में आत्मा ही भासता है, जैसे स्पन्द निस्पन्दरूप पवन ही है, ऐसे ज्ञानी को सदा एकरस है और अज्ञानी को द्वैत भासता है, जैसे बालक वृक्ष में पिशाच बुद्धि करता है, ऐसे ही अज्ञानी आत्मा में जगत् बुद्धि करता है, जैसे नेत्र दोष से आकाश में तरवरे भासते हैं ऐसे मन के फुरने से जगत् भासता है, हे रामजी! जैसे वायु का रूप कदाचित् नहीं है ऐसे ही जगत् के रूप का अत्यन्त अभाव है, जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है ऐसे ही आत्मा में जगत् का अभाव है, हे रामजी! सुमेरु पर्वत, आकाश, पाताल, देवता, यक्ष राक्षसादि से भरे अनेक ब्रह्मांड इकट्ठे करके विचाररूप कांटे पर रखकर तोलें जायें तो आधी रत्ती भी पीछे नहीं डाली जा सकती क्योंकि जिस वस्तु का सर्वथा अभाव है, उसका अस्तित्व कैसे दिखाया जाये, वह तो अविचार सिद्ध है, स्वप्न के पर्वत जगने पर चावल प्रमाण भी नहीं शेष रहते क्योंकि वे तो थे ही नहीं केवल भ्रम था, हे रामजी! संसार की भावना मख करते हैं, जो कि अनआत्मदर्शी हैं उनको ऐसा जान लो कि जैसे लोहार की धौंकनी (खाल) से पवन निकलता है, ऐसे ही उन अनात्मदर्शियोंका श्वास वृथा चलता है अथवा इस प्रकार कहना चाहिये कि अनात्मदर्शी मनुष्य का श्वास लेने लोहार की खाल से भी वृथा है, क्योंकि खाल के पवन से तो कुछ न कुछ अग्नि प्रज्वलनादि कोई काम सिद्ध होता होगा, परन्तु अनात्मदर्शी के श्वास तो बिलकुल वृथा आते जाते हैं जैसे आकाश में अन्धेरी व्यर्थ उठती है ऐसे इन पुरुषों का जीवन और चेष्टाएं सब व्यर्थ हैं और वह आत्मघाती हैं अपना नाश स्वयं करते हैं, उनकी चेष्टाएं उनके ही दुःख के लिये हैं, हे रामजी! यह बात अपने अधीन है, ज़ब दृश्य की ओर वृत्ति करता है तो संसार होता है यदि

अन्तर्मुख होता है तब सब आत्मा ही आत्मा है, यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये न असत् कहिये, भ्रममात्र से है, सब बातें विपरीत अर्थात् अग्नि शीतल हो, आकाश पाताल में हो और पाताल आकाश में, तारे पृथ्वी पर, पृथ्वी आकाश के ऊपर भी होती है और बादल बिना वर्षा होती है, आकाश में हल चलते हैं, ऐसे कौतुक मैं देखता हूँ, हे रामजी! इसमें आश्चर्य कुछ नहीं मन से सब कुछ होता है, जैसा मनोराज्य किया वैसा आगे स्थित होता है और सिद्ध होता है, पर्वत पुर में भिक्षुक की नाईं भिक्षा मांगते फिरते हैं और ब्रह्मांड उड़ते फिरते हैं, सिकता (बालू) से तेल निकलता है और मरे हुए लोग अर्थात् मुर्दे युद्ध करते हैं, मृग गाते हैं, वन नाचता है, हे रामजी! मनोराज्य से सब कुछ हो सकता है, चन्द्रमा की किरणों से पर्वत भस्म होते भी माने जा सकते हैं इसमें क्या आश्चर्य है, ऐसे यह संसार भी मनोराज्य है और तीव्र संवेग है, इसलिये इसको सत् मानता है और जो बालू से तेल निकलना आदि कहा है उसको सत् नहीं जानता। हे रामजी! जिनको सत् और असत् कहते हैं, वह आत्मा में दोनों नहीं और यह जो पदार्थ तुझे भासते हैं, तो अग्नि आदिक शीतल भी सत्य हैं और जो मिथ्या भासते हैं तो वह भी मिथ्या तीव्र और मृदु संवेग का भेद है, तीव्र संवेग जब दूर हुआ तब सब मिथ्या मानते हैं, जैसे स्वप्न से जगा हुआ स्वप्न को मिथ्या मानता है और जाग्रत को सत् कहता है, दोनों मनोराज्य हैं, हे रामजी! जितने आकार दृष्टि आते हैं, सबको मिथ्या जानना चाहिये, न तू है, न मैं हूँ, न यह जगत् है, परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें अहंत्वं का उत्थान कोई नहीं, केवल शान्तरूप है, आकाशरूप और निराकाशरूप है, जिसमें द्वैत कुछ नहीं, केवल अपने आप में स्थित है, जैसे बालक मृत्तिका के हाथी, घोड़े मनुष्य बनाता है और नाम की कल्पना करता है, यह राजा है, यह हस्ती है, यह घोड़ा है, वह मृत्तिका से इतर कुछ नहीं है और बालक के मन में उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ़ होते हैं, ऐसे मनरूप बालक नाना प्रकार की संज्ञाओं की कल्पना करता है चूंकि आत्मा से इतर कुछ नहीं, इसलिये भय

किसका रहता है, तू निर्भय हो, तेरा स्वरूप शुद्ध है और निर्भय है, अविद्या के कारण कार्य से रहित है, उसमें स्थित हो, यह संसार तेरे फुरने मे हुआ है, आत्मा न सत्य कहा जाय न असत्य कहा जाय, न जड़ कहा जाय, न चेतन कहा जाय, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य हैं, न अशून्य हैं और शास्त्र ने जो विभाग कहे हैं, यह जड़ है, चेतन है, वह जीव के जगाने के लिये कहे हैं, आत्मा में वास्तव संज्ञा कोई नहीं, केवल आत्मत्व मात्र है, इसलिये दृश्य की कलना त्यागकर आत्मा में स्थिति प्राप्त करो, ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सब कलना मात्र है इसमें क्या आस्था की जाय, संसार के दोनों भाव तुल्य हैं, फुरणा जैसा भाव का है ऐसा अभाव का है, स्वरूप में दोनों की तुल्यता है और व्यवहार काल में जैसा है वैसा ही है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विश्वप्रमाणवर्णनं नामाष्ट त्रिशदधिकशततमः सर्गः ।।१३८

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १३९

जाग्रदभावप्रतिपादनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! भूमिका का प्रसंग यहां चला था, उसमें जो सार आपने कहा उसे मैंने जान लिया, अब भूमिका का विस्तार कहिये और योगी का शरीर जब छूटता है और स्वर्ग के भोग को भोग कर जब गिरता है, तब फिर उस की क्या अवस्था होती है, कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस योगी को भोग की वांछा होती है, तब स्वर्ग को प्राप्त होता है और भोग भोगता है, जब उसकी ओर भी भोगेच्छा शेष रह जाती है, तब पवित्र स्थान और धनवान् के घर में आकर जन्म लेता है, मध्यमंडल मनुष्य लोक में प्राप्त होता है, यदि भोग की वांछा उसको और नहीं होती, तो ज्ञानवानों के पवित्र घरों में जन्म लेता है, कितने ही

समय के बाद उसको पिछला संस्कार आकर फुरता है, उसका स्मरण करके आत्मा की ओर आगे होता है, जैसे कोई पुरुष लिखता हुआ सो जाता है, जब जगता है तो उस लिखे को देखकर फिर आगे लिखता है, ऐसे वह योगी पूर्व के अभ्यास को पाकर दिन प्रतिदिन अपनी योग सत्ता को बढ़ाता जाता है और अज्ञान का संग नहीं करता जो भोग में आसक्त हों और आत्ममार्ग से विमुख हों तथा पिशुनता आदि पाप करने वाले लोग हों उनका संग वह कदापि नहीं करता, सब अवगुण उसको त्याग जाते हैं, दंभ गर्व और राग द्वेष भोग की तृष्णा यह स्वाभाविक ही उसके छूट जाते हैं और शान्ति को प्राप्त होता है, कोमलता दया आदि शुभगुण उसको स्वाभाव से ही आकर प्राप्त होते हैं, हे रामजी! इस निश्चय को पाकर वर्ण आश्रम के धर्म यथाशास्त्र पालन करता हुआ संसार सागर के पार पहुँच जाने की योग्यता पा लेता है, अर्थात् कुछ ही समय के बाद वह कृतकृत्य होने वाला है, यही तीसरी भूमिका है, वह फिर मोह को नहीं प्राप्त होता, जैसे चन्द्रमा की किरणें कभी गर्म नहीं होतीं, ऐसे तीसरी भूमिकावाला संसार गर्त में नहीं गिरता, हे रामजी! यह सप्त भूमिकाएं ब्रह्मरूप हैं, इतना ही भेद है कि तीन भूमिकाएँ जाग्रत अवस्था हैं, चतुर्थी स्वप्न और पञ्चमी सुषुप्ति है, षष्ठी तुरीया और सप्तमी तुर्यातीत है, हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में संसार की सत्यता प्रतीत होती है, इसीलिये इन्हें जाग्रत अवस्था कहा गया है और अन्य चारों में संसार का अभाव है, उसलिये जाग्रत से विलक्षण है, जाग्रत में घट पट आदिक सत् प्रतीत होते हैं, घट घट ही है, पट पट ही है, अन्यथा नहीं, अपना अपना कार्य सिद्ध करते हैं, अतः अपने काल में ज्यों के त्यों हैं, इसी प्रकार सब पदार्थ हैं, प्रारम्भ की तीनों भूमिकाओं से संसार की तुच्छता प्रतीत होती है, हृदय से राग द्वेष निकले जा रहे हैं, इसलिये अन्तःकरण एकदम शुद्ध हो गया है, ज्ञान प्राप्ति की योग्यता के लिये जिस अधिकार का प्राप्त करना आवश्यक है उसको प्राप्त कर लिया है, अर्थात् तीन भूमिकाओं से संसार की तुच्छता प्रतीत होती है परन्तु बिना आत्मसाक्षात्कार के संसार का अत्यन्ताभाव नहीं होता, जब स्वरूप का बोध हो तब संसार का अत्यन्ताभाव हो, इन तीनों भूमिकाओं से तो

संसार की तुच्छता ही निश्चित होती है, यदि इन तीनों भूमिकाओं की प्राप्ति के समय में शरीर छूट जाय तो दूसरे जन्म में उसे ज्ञान प्राप्त होता है और दिन प्रतिदिन वह ज्ञान परायण रहता है, दृढ़ बुद्धि होने पर ही ज्ञान उत्पन्न होता है जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है तदनन्तर शाखाएं फूल फल निकलते हैं, प्रथम भूमिका ज्ञान का बीज है, दूसरी अंकुर है, तीसरी शाखा है, चौथी ज्ञान की प्राप्ति है, वही फल है, प्रथम तीन भूमिकाओं वाला धर्मात्मा होता है पुरुषों में श्रेष्ठ है, उसका लक्षण यह है कि वह निरहंकार असंगी धीर होता है, जिसकी बुद्धि से विषय तृष्णा निवृत्त हुई है और जिसे आत्मपद की इच्छा है, वह पुरुष श्रेष्ठ कहाता है और प्रकृत आचार में यथा शास्त्र विचरता है, शास्त्र मार्ग का उल्लंघन कभी नहीं करता, शास्त्र मर्यादा के साथ अपने प्रकृत आचार में विचरता है, वह उत्तम पुरुष है, रामजी बोले–हे भगवन्! आप पहिले कह चुके हैं कि जब वह पुरुष शरीर छोड़ता है तब एक मुहूर्त में उसको युग बीतने का अनुभव होता है, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जैसी किसी की भावना होती है, ऐसा आगे प्रतीत होता है, एक मुहूर्त में युग कैसे प्रतीत होता है? कहिये। वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! यह जगत् जो तीनों काल प्रतीत हो रहा है, ब्रह्म स्वरूप है इतर कुछ नहीं मालूम पड़ता, समान ही है, जैसे इक्षु (ईख) में मधुरता है ऐसे ब्रह्म में जगत् है, जैसे तिलों में तेल है और मिरच में तीक्ष्णता है, ऐसे आत्मा में जगत् है, हे रामजी! आत्मसत्ता से सर्व सत्य है भिन्न करके देखें तो असत्य है, हे राम! जिनको तू सत्य असत्य जानता है कि पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य प्रतीत होता है और आकाश के फूल आदिक सत्य भासते हैं वे दोनों तुल्य हैं, यदि विद्यमान पदार्थ को सत्य मानें तो आकाश के फूल भी सत् जानिये, जैसे स्वप्न में कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, ऐसे जाग्रत में भासते हैं, फुरणा दोनों का समान है, जैसे सत्य पदार्थों का फुरना हुआ है, ऐसे असत् का फुरना हुआ, फुरणे से रहित सत् असत् दोनों का अभाव हो जाता है, इसलिये यह जगत् भ्रम करके सिद्ध हुआ

है जैसे जल में पवन से चक्र आवर्त उठते हैं, ऐसे आत्मा में फुरने से संसार भासता है, इसकी भावना त्यागकर स्वरूप में स्थित हो जाइये और पीछे तुमने प्रश्न किया था कि एक मुहूर्त में युग कैसे अनुभूत होता है, इसका उत्तर सुनो, जैसे किसी पुरुष के स्वप्न आता है तो एक क्षण में बहुत बड़ा समय बीता प्रतीत होता है और का और मालूम होता है, आश्चर्य तो कुछ नहीं, मोह से सब कुछ उत्पन्न होता है, भ्रम से दृष्टि आता है, हे रामजी! पुरुष सोता है तो एक आप ही होता है उसमें नाना प्रकार की जगत् भ्रम से भासता है, ऐसे ही स्वरूप के प्रमाद से अनेक भ्रम देखता है, स्वरूप के जाने बिना भ्रम का अन्त नहीं होता, इसलिये तू अपर प्रश्न किसलिये करता है? एक चित्त को स्थिर करके देख, न कोई संसार भासेगा, न कोई जन्म मृत्यु प्रतीत होगा, न कोई बन्धमोक्ष मालूम होगा, केवल आत्मा का ही भान होगा, ज़ब संकल्प फुरता है तब अपने आपको बद्ध जानता है, विद्या से मुक्त जानता है और संकल्प से रहित मुक्त जानता है, अविद्या से बद्ध जानता है और आत्मस्वरूप ज्यों का त्यों है, न बन्ध है न मुक्त है न विद्या है, न अविद्या है, केवल शान्तरूप है, इसलिये सर्वदा सर्व प्रकार सब ओर से ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ नहीं, हे रामजी! जब स्वरूप की भावना जगे, तब संसार की भावना जाती रहती है, यह सर्व शब्द कलना में है, यह पदार्थ है, यह नहीं, आत्मा में कोई नहीं, जैसे पवन चलने ठहरने में एक ही है, ऐसे विश्व चित्त का चमत्कार है, ब्रह्मादि चींटी पर्यन्त ब्रह्म सत्ता ही अपने आपमें स्थित है और आत्मा ही के आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं, फुरणे में सम है क्योंकि दूसरा कोई नहीं, हे रामजी! जो ब्रह्म सत्ता ही है यह प्रश्न क्या है? आकाश क्या है? पृथ्वी क्या है? मैं क्या हूँ? यह जगत् क्या है? यह प्रश्न बनते ही नहीं, एक मन को स्थिर करके देख जो ब्रह्म आदि चींटी पर्यन्त कुछ भी पदार्थ भासे तो प्रश्न कीजिये, इसलिये यह पदार्थ भ्रम से भासते हैं, जैसे दूसरा चन्द्रमा प्रतीत होता है ऐसे ही भ्रम के कारण इनकी

प्रतीति होती है, हे रामजी! आकाश आदि पदार्थ भावना में स्थित हुए हैं, आत्मा में कोई नहीं है, भावना के अनुसार सब होता है, भावना के अनुसार पदार्थ सिद्ध होते हैं और भासते हैं, जब संसार की भावना उठ जाती है तो पदार्थ कोई नहीं भासता, हे रामजी! सुषुप्ति में भी इसका अभाव हो जाता है तो तुरीया में कैसे भान हो? जब स्वरूप से गिरता है तब इसको संसार भासता है और संसार में वासना करके घटीयंत्र की नाईं फिरता है, प्रमाद से अब तक बहता जाता है, स्वरूप से विचलित होकर आत्मा में अभिमान करने को प्रमाद कहते हैं, मनुष्य अज्ञान से दुःख पाता है, जब अज्ञान नष्ट हो तब संसार के शब्द अर्थ का अभाव हो जाये, अहंकार से संसार होता है, संसार का बीज अहंकार है, अनात्मा में आत्माभिमान करने को अहंकार कहते हैं, हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अहं के उत्थान से रहित है, केवल शान्तरूप है और विश्व भी वही रूप है, इसकी भावना में दुःख है, यह संवित् शक्ति आत्मा के आश्रित फुरती है, जैसे तेल की बूँद जल में डाल दी जाय तो चक्र की नाईं घूमती है, ऐसे संवेदन शक्ति आत्मा के आश्रित फुरती है और ब्रह्म एक स्वरूप है, उसका स्वभाव ऐसे है, जैसे मोर का अंडा और उसका वीर्य एकरूपहै, अपने स्वभाव से वीर्य ही नाना प्रकार के रंग को धारण करता है तो भी मोर से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मा के संवेदन स्वभाव करके नाना प्रकार का विश्व भासता है परन्तु आत्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मरूप है, सम्यग्दर्शी को नाना प्रकार में एक आत्मा ही भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है, हे रामजी! ब्रह्मरूप एक शिला है उसमें त्रिलोकी अनेकों पुतलियाँ कल्पित हैं, जैसे एक शिला के (खुरपी) चित्रकार पुतलियों की कल्पना करता है कि इसमें इतनी पुतलियाँ है, वे उसके चित्त में हैं, जो शिला में कुछ नहीं हुआ, ऐसे आत्मरूप शिला में चित्तरूप चितेरा नाना पदार्थ रूप पुतलियों की कल्पना करता है, वह सब आत्मरूप हैं, इसलिये पदार्थों की भावना को त्यागकर आत्मस्थित हो जाइये और यह संसार भी अनिर्वाच्य है, क्योंकि ब्रह्म ही है, ब्रह्म से

इतर कुछ नहीं, न कोई उत्पन्न होता है न मरता है, सदा ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जगद्भावप्रतिपादनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१३९।।

चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४०

पिंडनिर्णयवर्णनम् ।

रामजी ने कहा–हे भगवन्! इस संसार का बीज अहंकार हुआ इसका पिता अहंकार है तो मिथ्या संसार अविद्या जो विद्यमान भासता है, वह भ्रमरूप हुआ, यदि भ्रमरूप है तो लोक शास्त्र श्रुति स्मृति कहते हैं कि इसका शरीर पिंड से होता है, यदि पिंड से होता है तो तुम कैसे भ्रम कहते हो और यदि ब्रह्म है तो लोकशास्त्र श्रुतिस्मृति क्यों पिंड से कहते हैं? इस मेरे संशय को निवृत्त करो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मेरा कहना सत् है, ऐसे ही है और ब्रह्म ब्रह्म तत्व का स्वभाव है और जगत् में जगत् का लक्षण भी वही है, हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है, चित्त शक्ति फुरी है, वह ब्रह्मरूप हुआ है, उसमें पदार्थ का मनोराज्य हुआ है, यह आकाश है, यह पवन आदि है, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह सत्य है यह झूंठ है, इत्यादि से जब तक मनोराज्य है तब तक सर्व मर्यादा ऐसे ही है, फिर ब्रह्म में ऐसे हुआ जो जगत् की मर्यादा के निमित्त वेद कहता है कि यह पदार्थ शुभ है, यह अशुभ है, हे रामजी! आत्मा में द्वैत कुछ नहीं, मायारूप जगत् में मर्यादा है, यदि न हो तो अधः (नीचे) ऊर्ध्व (ऊपर) कौन कहे, यह मर्यादा भी वेद में नेति निश्चय हुआ है कि यह शुभ कर्म है इनके करने से स्वर्ग सुख भोगे जाते हैं और यह अशुभ कर्म हैं इनके करने से नार की दुःख भोगने पड़ते हैं, हे रामजी! जैसे वेद में निश्चय किया है, ऐसे यह पुरुष अपनी वासना के अनुसार भोगता है,

हे रामजी! यह चित् शक्ति नेति होकर ब्रह्मादिक में फुरी है परन्तु उनको सदा स्वरूप में निश्चय है, इसलिये वह बन्धन में नहीं आते ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ने यह वेद माला धारण की है कि जैसे कोई कर्म करे वैसे फल देते हैं, यह वेद सबकी नेति है, हे रामजी! जिन पुरुषों को संसार की सत्यता दृढ़ हुई है, वह जैसा कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं, ऐसे ही शरीर प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं, जो शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन करके इच्छानुसार चलते हैं, वे शरीर त्यागकर कुछ काल तक मुर्च्छितावस्था में रहते हैं और कुछ ही समय के अनन्तर जगते हैं और ज्ञान ने होने के कारण नरकों को चले जाते हैं और जिनको शून्य भावना हुई है कि आगे नरक स्वर्ग कोई नहीं, लोक परलोक के भय को त्यागकर शास्त्र विरुद्ध व्यवहार करते हैं, वे मरकर पत्थर वृक्षादि योनियों को पाते हैं, चिरकाल से उनकी वासना परिणित होती है, तब वे दुःख भागी होते हैं और जिनकी आत्मभावना हुई है, संसार की भावना निवृत्त हुई है, वे शास्त्रविहित करें अथवा अविहित करें, उनको बन्धन कोई नहीं, हे रामजी! चित्तरूपी भूमि है, इसमें जैसा निश्चयरूप बीज बोता है ऐसा समय पाकर फूटता है यह निःसंशय है, इसलिये तुम आत्मभावना रूप बीज का वपन करो और सब आत्मा है, ऐसी भावना करो तब सिद्धि होगी, अर्थात् आत्मभान होगा, जिनको संसार का निश्चय हुआ है उनको संसार है, हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा है उसको उसी वासना के अनुसार भासता है, धर्मात्मा भी दो प्रकार के हैं, एक सकाम एक निष्काम, जो धर्म करते हैं और पापरूप कामना सहित हैं तो स्वर्ग भोग भोगकर फिर गिरते हैं और जो निष्काम हैं ईश्वरार्पण कर्म करते हैं, उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है उन्हें तब ज्ञान की प्राप्ति होती है, यह भी संसार में मर्यादा है, जैसा किसी को निश्चय होता है, ऐसा ही संसार को देखता है, पिंड से भी शरीर होता है क्योंकि जो यह भी आदि नीति में निश्चय हुआ है, जैसा आदि नीति में निश्चय होता है, ऐसा होता है, जो पवन है वह पवन ही है, जो अग्नि है वह अग्नि ही है, इसी प्रकार कल्प

पर्यन्त जैसे मनोराज्य हुआ है, ऐसे ही स्थित है, जैसे जल नीचे को ही जाता है, ऊँचे स्थान नहीं जाता, जो आदि किंचन में निश्चय हुआ है, कल्प पर्यन्त वही है, हे रामजी! जगत् व्यवहार में तो ऐसे है और परमार्थ से दूसरा कुछ हुआ नहीं, इस जीव ने आकाश में मिथ्या देह रची है, परमार्थ से केवल निराकार अद्वैत आत्मा है, शरीर इसके साथ नहीं है, इसलिये जगत् कैसे हो?

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे पिंडानिर्णयवर्णनंनाम चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१४०॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४१

बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठजी ने कहा—हे रामजी! तुम्हारे प्रश्न पर बृहस्पति और बलि राजा का एक इतिहास है, उसको श्रवण करो, जब दूसरे परार्ध के छै कल्प व्यतीत हुए थे, उस दिन के युग में राजा बलि हुआ, वह कैसा था कि मानों पराक्रम का अवतार हो, उस महाबली राजा बलि ने समस्त दैत्यों और राक्षसों को जीतकर अपने वश में कर लिया था, देवताओं विद्याधरों गन्धर्वों, किन्नरों, दैत्यों तथा राक्षसों तक उसकी आज्ञा का प्रभाव पड़ा था, भूलोक भी उसके अधीन था, वह प्रतापी राजा धर्म तथा नीति न्याय के साथ राज्य संचालन करने लगा, एक समय सब सभा लगी हुई थी तो यह प्रसंग चला कि जन्म कैसे होता है और मृत्यु किस प्रकार होती है तब राजा बलि ने देव गुरु बृहस्पतिजी से पूछा हे ब्रह्मन्! यह पुरुष जब मृतक होता है तब शरीर तो भस्म हो जाता है फिर कर्मों के फल कैसे भोगता है और शरीर के बिना आता जाता कैसे है, यह कहिये। बृहस्पतिजी बोले—हे राजन्! इस जीव का देह नहीं है, जैसे मरुस्थल में जल भासता है, है कोई नहीं, यह जीव न जन्मता है न मरता है, न भस्म होता है न जलने पर दुःखी होता है, तत्व से तत्व यह सदा अच्युत रूप है। स्वरूप के

प्रमाद से आपको दुःखी जानता है कि मैं दुःख भोगता हूँ और मैं उत्पन्न हुआ हूं, इतना समय हुआ है, यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, मैं इनसे उत्पन्न हुआ हूं, फिर आपको मरा हुआ जानता है, हे राजन्! भ्रम से ऐसे देखता है जैसे निद्रा भ्रम से स्वप्न में देखता है, अज्ञान से यह जीव अपने आपको ऐसे मानता है, जब मृतक होता है तब जानता है कि मेरा शरीर पिंड से हुआ है, अब मैं दुःख सुख को भोगूँगा, जैसे स्वप्न में आकाश के बीच वासना से अपने साथ शरीर देखता है और दुःख सुख का भागी होता है और परमार्थ से इसके साथ शरीर ही नहीं तो जन्म मृत्यु कैसे हो? स्वरूप से प्रमादी होकर देहधारी की नाईं स्थित हुआ है, उस देह के साथ मिलकर जैसी जैसी भावना करता है, ऐसा ही फल भोगता है, वासना के अनुसार जैसी इसको भावना होती है, ऐसा आगे शरीर देखता है और पांच भौतिक संसार को देखता है, इस प्रकार भ्रमता है और जन्मता मरता आप को देखता है, जैसे समुद्र से तरंग उठता है और मिट जाता है, ऐसे शरीर उत्पन्न होता और नष्ट होता है, शरीर के सम्बन्ध से जन्मता और मरता भासता है, यह आश्चर्य है कि आत्मा ज्यों का त्यों स्वभाव से स्थित है, उसमें वासना के अनुसार विश्व को देखता है, हे राजन्! विश्व इसके अन्तर स्थित है, भावना के अनुसार आगे देखता है, इस जीव में विश्व है और विश्व में जीव नहीं, जैसे तिल में तेल है और तेल में तिल नहीं, जैसे स्वर्ण में भूषण कल्पित है, भूषण में स्वर्ण कल्पित नहीं ऐसे जीव में विश्व कल्पित है। इसके आश्रय फुरता है अतः विश्व सत् भी नहीं और असत् भी। सत् इस कारण नही कि चलरूप है, स्थिर नहीं और असत् इसलिये नहीं कि विद्यमान भासता है, इसकी भावना त्याग यह दृश्य मिथ्या है, इसका अनुभव मिथ्या है और इसको जाननेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है, जैसे मरुस्थल मे जल मिथ्या हैं, ऐसे आत्मा में अहंकार जीव मिथ्या है, हे रामजी! जब तक शास्त्र के अर्थ में चपलता है और स्थिति से रहित है तब तक संसार की निवृत्ति नहीं होती, जब दृश्य के स्फुरण और अहंकार से जड़ हो जावे तब इसको

आत्मपद की प्राप्ति हो, जब तक दृश्य की ओर फुरता है चेतन सावधान है, तब तक संसार में भ्रमता है, हे राजन्! आत्मा न कहीं जाता है न कहीं आता है, न जन्मता है न मरता है, जब चैत्य और चित्त का सम्बन्ध मिट जाय तब आनन्दरूप ही है, चैत्य दृश्य है और चित्त अहंकार संवित् जब दोनों का सम्बन्ध आपस में मिट जायेगा तब शेष आत्मा ही रहेगा, वह ब्रह्म है, आत्मा है, सिद्ध है, जिसमें वाणी की गति नहीं, वही शेष रहेगा, वह अनुभव निर्वाच्य पद है, उसमें स्थित हो जाओ, हे रामजी! जिस युक्ति से इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त हो वही युक्ति श्रेष्ठ है, जब तक इसको फुरना उठता है कि यह भाव है, यह अभाव है तब तक इसको जीव कहते हैं तब अभाव का फुरना मिट जाय तब जीव संज्ञा भी चलती रहे तो यह शिवपद आत्मा को प्राप्त हो वहाँ वाणी की गति नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं नाम एकचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१४१।।

द्विचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४२

बृहस्पतिबलिसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार बृहस्पतिजी ने बलि राजा को कहा, वह तेरे प्रश्न के उत्तर के रूप में मैं कहता हूँ, हे रामजी! जब तक इसके हृदय में संसार की सत्यता है, तब तक जैसे कर्म करेगा ऐसा शरीर धारण करेगा, हे रामजी! जिस वस्तु को चित्त देखता है उसकी ओर अवश्य जाता है उसके देखने का संस्कार इसके अंदर होता है, जिस पदार्थ को इसने सत् जाना है, उस पदार्थ का संस्कार स्थित हो जाता है और समय पर वह संस्कार प्रगट होता है, जैसे मोर के अण्डे में शक्ति होती है, जब समय आये तब नाना प्रकार के रंग उसमें प्रकट होते हैं, ऐसे चित्त का संस्कार भी समय पाकर जगता है, हे रामजी! वह चित्त

अज्ञान से उत्पन्न हुआ है, बृहस्पति ने कहा–हे राजन्! बीज पृथ्वी पर (उद्‌गत) उत्पन्न होता है, आकाश में नहीं उत्पन्न होता, जैसा बीज पृथ्वी में बोया जाता है ऐसा ही फल होता है, तो यहां यह जो अहंरूप है अपना होना वह पृथ्वी है, जैसे जैसी भावना से कर्म करता है ऐसा ऐसा चित्तरूप पृथ्वी पर उत्पन्न होता है, फिर फल होता है जिसको उनके कथनानुसार धारण करता है और सुख दुःख को भोगता है और ज्ञानवान् आकाश रूप है, आकाश में बीज कैसे उत्पन्न हो, बीज भावना से अज्ञान रूप पृथ्वी पर उत्पन्न होता है, बलि ने कहा, हे देवगुरो जीव जीता हो अथवा मरा हो, इसको जो अनुभव होता है वह अपनी भावना जानने से ही होता है, इसलिये यह मृत्यु को प्राप्त हुआ इसकी पिंडादिक में भावना न हुई, तो फिर इसका शरीर कैसे होता है, सुख दुःख भोगने वाला जो हुआ तो अकृत्रिम देह हुआ, बृहस्पति बोले–हे राजन्! पिंडदान आदिक क्रिया न हो तो भी इसके अन्दर जो भावना है वही कर्म रूप है, उस समय किसी के न करने पर भी, वह कर्म रूप भावना सब कर लेती है उसीसे भास आता है और यदि उसके अन्दर भावना नहीं और किसी बान्धव ने उसके निमित्त पिंडदान किया है तो भी उसको भास आता है और यदि उसके अन्तर भावना नहीं तो भी उसको भास आता है, हे राजन्! जो अज्ञानी जीव है जिनको अनात्म में बुद्धि है, उनके कर्म कहां गये हैं, जो वह कर्म करते हैं वही उनकी चित्त भूमि में उत्पन्न होते हैं, उनके शरीर की क्या संख्या है वासनारूप अनेक शरीर बिना ज्ञान के स्वप्नवत् धारण करते हैं, राजा बलि बोले–हे देवगुरो! मैंने यह निश्चित रूप से जाना है कि जिसको निष्किंचन की भावना होती है वह निष्किंचन पद को प्राप्त होता है और संसार की ओर से शिला की नाईं हो जाता है, जैसी इसकी भावना होती है ऐसा स्वरूप हो जाता है, जब संसार से पत्थरवत् हो तब मुक्त हो बृहस्पति ने कहा–हे राजन्! जब निष्किंचन को जानता है तब संसार की ओर से जड़ होता है संसार का रागद्वेष नहीं फुरता, इसी का नाम जड़ है और केवल सार पद में स्थित

होता है, तब गुण इसको विचलित नहीं कर सकते, जब जानिये कि निष्किंचन पद को प्राप्त हुआ है, वही निस्सन्देह मुक्ति है हे राजन्! जब तक संसार की सत्यता चित्त में स्थित है तब तक उसको वासना है, जब तक वासना है, तब तक संसार है और संसार के अभाव बिना इसको शान्ति नहीं प्राप्ति होती, स्वरूप के प्रमाद से चित्त संसारी हुआ है, चित्त से वासना हुई है और वासना से संसार हुआ है इसलिये इस वासना को त्यागकर कोई फुरना न फुरे निष्किंचन भाव हो जाये तब शान्तिभागी हो हे राजन्! जिस युक्ति के साथ या जिस क्रम के साथ यह निष्किंचन रूप हो जाय वहीं करे, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस प्रकार सुरपुर में असुर नायक को सुर गुरु ने कहा था, वह मैंने तुम्हारे आगे पिंडदानादिक का क्रम कहा है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे बृहस्पतिबलिसंवाद वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१४२।।

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४३

चित्तभावप्रतिपादनम् ।

वसष्ठिजी बोले—हे रामजी! चाहे जीता हो या मरा हो जो कुछ इसके चित्त के साथ स्पर्श हुआ होगा उसका अनुभव अवश्य करेगा, जैसे मोर के अंडे में रस होता है वह समय से विस्तार पाता है, ऐसे इसके अंतर जो वासना बीज है, चाहे वह प्रकट नहीं प्रतीत होता तो भी समय पाकर विस्तारवान् होता है, जब तक चित्त है तब तक संसार है, जब चित्त नष्ट हो जाय, तब सब भ्रम मिट जाता है, हे रामजी! चित्त भी असत् है तो विश्व भी असत् है, जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है ऐसे आत्मा में विश्व भ्रम है, हे रामजी! हमको न चित्त भासता है न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हूं, तू भी आकाशरूप है, यह चित्त

स्वरूप के प्रमाद से उत्पन्न होता है, जैसे जहां का जल होता है वहां श्यामता होती है, ऐसे ही जहां चित्त होता है वहां वासना होती है, जब ज्ञान अग्नि से वासना दग्ध हो तब चित्त सत् पद को प्राप्त होता है और जीवित संज्ञा निवृत्त होती है, हे रामजी! चित्त के उपशम का उपाय मुझसे सुनो, उससे शीघ्र ही चित्त निर्वाण हो जायगा, ज्ञान की सात भूमिकाओं से चित्त नष्ट हो जायगा उनमें तीन भूमिकाएं क्रम से तुम्हें कह दी हैं और चार कह रही हैं, हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में से जिसको एक भी प्राप्त हुई है, उसको महापुरुष जानो, वह संसार से कैसा हो जाता है सुनिये, मान मोह उसके निवृत्त हो जाते हैं और संगद्वेष उसको नहीं लगता और उसकी विचार शक्ति दृढ़ होती है, कामनाएं सब नष्ट हो जाती हैं उसको रागद्वेष नहीं रहता, सुख दुःख में सम रहता है, ऐसा मूढ़ पुरुष अव्यय पद को प्राप्त होता है, तीसरी भूमिका में जो लोग प्राप्त हुए हैं उनमें विशेष गुण आ जाते हैं, उनका चित्त नाश हो जाता है, वे संसार को नहीं प्राप्त होते। जैसे—दीपक को साथ लेकर देखें तो अन्धकार नहीं मिलता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे चितभावप्रतिपादनं
नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१४३॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४४

पंचभूमिकावर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब तीसरी भूमिका दृढ़ पूर्ण होती है और दृढ़ अभ्यास से चौथी उदय होती है, अब अज्ञान नष्ट हो जाता है और चित्त में सम्यग् ज्ञान उदय होता है, तब पूर्णिमा के चन्द्रमाके समान शोभा पाता है और आदि अंत से रहित निर्विभाग चेतन तत्व में योगी का चित्त स्थित होता है और सबको सम देखता है, जिस योगी को चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है, उसके विविध भेद भाव सब निवृत्त हो जाते हैं

और अत्यन्त निर्मल सर्वात्मभाव उदय होता है, जगत् उसको स्वप्न की नाईं भासता है और इन्द्रियों का व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे अर्ध सुषुप्ति जिसको होती है, उस समय उसका खानपान रस से रहित हो जाता है, ऐसे चतुर्थ भूमिका वाले का व्यवहार रस से रहित होता है, जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है, ऐसे ही वह स्वयं प्रकाश है, उसकी सब कल्पनाएं नाश हो जाती हैं न किसी पदार्थ में राग रहता है न किसीमें द्वेष रहता है संसार समुद्र में डुबोने वाले यह रागद्वेष हैं, इष्ट पदार्थों में राग और अनिष्ट पदार्थों में द्वेष होता है, वह रागद्वेष दोनों ही नाश हो जाते हैं, इसलिये वह संसार समुद्र में गोते नहीं खाता, उसके चित्त को कोई मोहित नहीं कर सकता हे रामजी! जब तक तृतीय भूमिका होती है तब तक उसको जाग्रत् अवस्था होती है, जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त हुई, तब जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, सारे जगत् को क्षण भंगुर नाशवान् देखता है, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भावना का अभाव हो जाता है, रामजी बोले—हे भगवन्! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति कालक्षण मुझे ज्यों का त्यों सुनाओ, तुरीया और तुरीयातीत भी कहो, गुरु लोग शिष्यों को समझाने में खेद नहीं मानते, वसिष्ठजी ने कहा—हे रामजी! तत्व का विस्मरण, पदार्थ की भावना और नाशवान् पदार्थ को सत् की नाईं जानना यह जाग्रत् है, पदार्थ में भाव अभाव की सत्यता होती है और जगत् को मिथ्या भावनामात्र जानना उसे स्वप्न कहते हैं, जाग्रत और स्वप्न जिसमें लय हो जायँ वह सुषुप्ति है, जब ज्ञानबल से भेद की शान्ति हो जाय, जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों का अभाव हो ऐसी जो निर्मल स्थिति है वह तुरीया है, हे रामजी! अज्ञानी जीव संसार की वर्षाकाल के मेघ की नाईं देखते हैं जो उनको दृढ़ होकर भासता है और जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त हुई, वह शरत्काल के मेघ की नाईं संसार को देखता है और जिसको पञ्चम भूमिका मिली है—वह ऐसे देखता है जैसे शरत्काल के मेघ नष्ट हुए होते हैं जैसे निर्मल आकाश होता है ऐसे उसको निर्मल भासता है, अब तीनों का वृत्तान्त सुन। अज्ञानी जगत् को जाग्रत की नाईं

देखता है और उसको जगत् की सत्यता दृढ़ भासती है, उससे राग द्वेष उत्पन्न होता है और चतुर्थ भूमिका वाला ऐसे देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ वर्षा से रहित होता है और जैसे स्वप्न की सृष्टि होती है ऐसे उसको जगत् की सत्यता नहीं भासती क्योंकि जो स्मृति उसको स्वप्न की होती है, स्वप्नवत् देखता है इसलिये उसको राग द्वेष नहीं उत्पन्न होते हैं और पञ्चम भूमिका प्राप्ति वाला जगत् को सुषुप्ति की नाईं देखता है, जैसे शरत्काल का मेघ नष्ट हुआ पुनः नहीं दीखता ऐसे उसको संसार का भान नहीं होता और चेष्टा उसकी स्वाभाविक होती हैं, जैसे कमल स्वाभाविक ही खुलता है ओर मुँद जाता है, ऐसे उसको चेष्टा में यत्न कुछ नहीं, जैसे प्रतियोगी उसको स्वाभाविक आकर प्राप्त हुआ वह करता है, जैसे कमल के खुलने का प्रतियोगी सूर्य हुआ तब खुल गया, अब जब मुंदने की प्रतियोगी रात्रि हुई तब मुंद जाता है, उसको खेद कुछ नहीं ऐसे इस पुरुष की अहंता ममता से रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है, हे रामजी! अहंता ममता रूप जाग्रत से वह पुरुष सुषुप्त हो जाता है और सम्पूर्ण भावरूप जो शब्द और अर्थ हैं, उनका इसको अभाव हो जाता है, शेष का मनन नष्ट हो जाता है, पशु, पक्षी मनुष्य देवता, भला बुरा, इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थ की भावना उसको नहीं रहती, द्वैत कलना नष्ट हो जाती है, एक ब्रह्म सत्ता ही भासती है, उसको संसार नहीं भासता हे रामजी! अहंतारूप तिलों से संसाररूप तेल निकलता है और अहंता रूप फल से संसाररूप गन्ध उत्पन्न होती है, संसार का कारण अहंता है वह अहंता जिस पुरुष की नष्ट हो जाती है वह पुरुष इन्द्रियों के इष्ट को पाकर हर्षवान् नहीं होता और अनिष्टके प्राप्त हुए द्वेष नहीं करता ऐसे आपको नहीं जानता कि मैं खड़ा हूँ और यहाँ बैठा हूँ, यह चलता हूँ, आपको सदा आकाशरूप जानता है, न अंदर देखता है न बाहर देखता है, न आकाश को देखता है, न पृथ्वी को देखता है, सब ब्रह्म ही देखता है, उसको इतर कुछ नहीं भासता और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों का साक्षी रहता है, अहंकारका भी साक्षी इंद्रियों का भी साक्षी और

विश्व का भी साक्षी है इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता, जैसे ब्राह्मण चान्डाल के साथ स्पर्श नहीं करता और जैसे बीज से अंकुर होता है और अंकुर से शाखा होती है, इसी प्रकार पदार्थ परिणामी है और आकाश उनमें ज्यों का त्यों रहता है क्योंकि उनके साथ स्पर्श नहीं करता, ऐसे वह पुरुष द्रष्टा दर्शन दृश्य से अतीत रहता है, जैसे मरुस्थल में जल असत् है, ऐसे उस पुरुष को त्रिपुटी असत्य है, उसकी त्रिपुटी अहंता नष्ट हुई है, इससे भेद बुद्धि भी नहीं रहती, इसीलिये शान्त है और निर्मल है, संसार से सुषुप्त है और चेतन घनता से पूर्ण है सर्वदा शान्तरूप है जिन नेत्रों से संसार देखा जाता है उनसे अन्ध हुआ है, अर्थात् जिस मन से स्फुरण होता है उस मन को नाश किया है और भय क्रोध अहंकार मोह उस पुरुष में दीखते हैं, तो भी उसके हृदय में कुछ स्पर्श नहीं करते, जैसे पक्षी आकाश में नीड़ भी बनाता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं कर सकता, ऐसे उस पुरुष को कोई विकार स्पर्श नहीं करता, हे रामजी! उस पुरुष के सम्पूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं, सर्वदा स्वरूप में स्थित है और शान्तरूप है आत्मा से इतर किसी सुख की वांछा नहीं करता इनके संकल्प नष्ट हुए हैं और आत्मा से इतर कुछ नहीं भासता, जाग्रत् की नाईं दृष्टि आता है और सर्वदा जाग्रत् से सुषुप्त है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे पंचमभूमिकावर्णनं
नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१४४।।

पंचचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४५

षष्ठभूमिकोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यन्त जाग्रत है और चतुर्थ भूमिका में जाग्रत अवस्था स्वप्नवत् देखता है और पंचम भूमिका वाला संसार से सुषुप्त होता है और छठी भूमिका वाला तुरीयापद में स्थित होता है और सर्वदा अक्रिय है किसी क्रियामें बद्ध नहीं होता,

सर्वदा आनन्दरूप है और भिन्न होकर आनन्द को नहीं भोगता है, अपितु सर्वकाल आनन्दरूप है, केवल अपने आप में स्वतः स्थित है और सर्वदा निर्वाण है, हे रामजी! सर्व क्रियाओं में यथाशास्त्र विचरता दृष्टि आता है परन्तु अन्दर से शून्य है, उसका किसी के साथ स्पर्श नहीं जैसे आकाश में सब पदार्थ भासते हैं और आकाश का स्पर्श किसी के साथ नहीं, ऐसे ही सर्वक्रिया में उसमें विद्यमान दृष्टि भी आती है तो भी अन्दर से किसी के साथ स्पर्श नहीं करता क्योंकि क्रियाओंमें बांधने वाला जो अहंकार था वह उसका नष्ट हो गया है, केवल शान्तरूप है, अहं का फुरना चिन्मात्र में निवृत्त हुआ है, चिन्मात्र से अहंभावका उत्थान ही अज्ञान है और दुःख दायी है, जब अहंभाव निवृत्त हो जाय तो कोई कर्म स्पर्श नहीं करता, यद्यपि विश्व उसको दृष्टि भी आता है तो भी वास्तव से नहीं देखता, इसको सर्व ब्रह्म ही भासता है, खाता हुआ भी नहीं खाता, देता हुआ भी नहीं देता, लेकर भी किसी से कभी कुछ नहीं लेता, चलता है परन्तु नहीं चलता, हे रामजी! जितने देशकाल वस्तु पदार्थ हैं उसको सब में आत्मभाव होता है, यद्यपि प्रत्यक्ष चेष्टा उसमें दीखती है, तो भी उसके हृदयमें कुछ नहीं, जैसे स्वप्नमें खाता पीता, लेता, देता, आपको प्रतीत होता है और जगने पर सबका अभाव हो जाता है, ऐसे जो पुरुष परमार्थ सत्ता में जगा है, उसको गुणकी क्रिया अपने में कोई नहीं भासती और जो करता है उसमें अभिलाषा नहीं, उसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अपने निमित्त कोई कर्तव्य नहीं ऐसे भगवान् ने भी कहा है और सब आत्मा ही देखता है आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ब्राह्मण, हस्ती श्वान, चांडाल आदि सबमें आत्मभाव देखता है और आकार को मृगतृष्णा के जलवत् देखता है, जिसका कि अत्यन्ताभाव है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भी उसको आकाशवत् भासते हैं और निर्मल आकाशवत् शान्तरूप है अहंभाव से रहित केवल चिन्मात्र में स्थित है, ग्रहण त्याग से अतीत और सर्वकलना से रहित निर्वाणपद है, केवल स्वच्छ आकाशरूप स्थित है, अहं मम आदिक चिद्ग्रन्थि उसकी कट गयी है, अनात्म में अहं अभिमान को चिज्जड ग्रन्थि कहते हैं, वह अहं अभिमान उसका नष्ट हो गया है, केवल

शान्तरूप होकर रहता है, जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकला और शान्तरूप हुआ ऐसे रागद्वेष रूप क्षोभ करनेवाले इसके अन्तःकरण से वह अहं अभिमान रूप पवन निकल गया तब शान्त रूप अक्षोभ हुआ परम सुशोभित है, जैसे विश्वकर्मा ने सूर्य का मण्डल रचा है और प्रकाश से शोभा पाता है, ऐसे ज्ञानरूप प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है, जैस चक्री फिरता फिरता रह जाता है और शान्ति को प्राप्त होता है, ऐसे अज्ञान से फिरता फिरता ठहरा हुआ उससे सदा शान्ति को प्राप्त हुआ है और अपने आप से प्रकाशित है, जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशित होता है, ऐसे कलनारूप पवन से रहित पुरुष अपने आप से प्रकाशित होता है और सर्वदा निर्मल है एक रस है, जैसे घटके अन्दर भी शून्य और बाहिर भी शून्य है, ऐसे देह के अन्दर बाहर आत्मा है जैसे जल में घट रक्खें तो उसके अन्दर बाहिर जल होता है ऐसे वह पुरुष अपने आप से अन्दर बाहिर पूर्ण हो रहा है और एकरस है, द्वैत कलना को नहीं प्राप्त होता और उस पद को पाकर आनन्दवान है, जैसे कोई मारने के लिये पकड़ा गया हो और उसकी रक्षा हो जाय तो बड़े आनन्द को प्राप्त होता है, जैसे कोई आधि व्याधि से छूटा हुआ आनन्द को प्राप्त होता है, ऐसे वह ज्ञानवान् आनन्द को प्राप्त हुआ है, जैसे कोई मार्ग चलने से अर्थात् यात्रा करने से थका हुआ शय्या पर आकर विश्राम करे तो आनन्द पाता है, ऐसे ज्ञानवान् को आनन्द है, जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा अमृत से आनन्दवान होता है ऐसे वह पुरुष अपने आप सन्तुष्ट है, जैसे काष्ठ को जलाकर आग धुएँ से रहित हो जाने पर स्वच्छ प्रकाशित होती है, ऐसे ज्ञानवान् भी अज्ञानरूप धुएँ के न रहने पर प्रकाशवान् होता है हे रामजी! जब संसार की ओर देखता है, तब अग्नि से उसको जलता हुआ अपने आप से अलग देखता है, अर्थात् स्वयं ज्ञानरूप पर्वत पर स्थित होकर जलता देखता है, हे रामजी! यह जो कहा है संसार को जलता देखता है, वह ऐसे भी नहीं प्रतीत होता कि मैं ज्ञानी हूँ, वह संसार है स्वरूप की अपेक्षा से यह कहा है कि संसार उसको दुःखदायी भासता है,

आनन्द से रहित वह परमानन्द को प्राप्त हुआ है, सत् असत् से रहित जो अपना आप है उसमें स्थित है, जैसे पर्वत अन्दर से बाहिर अपने आप में स्थित है और एकरस है, ऐसे वह पुरुष एकरस है और संसारमें जाग्रत् होकर चेष्टा करता है और अन्दर संसारकी भावना से रहित है, उस पद में वाणी की गति नहीं परन्तु कुछ कहता हूँ सुनो, कई ब्रह्म कहते हैं, कई चेतन कहते हैं, आत्मा कहते हैं साक्षी कहते हैं, कालवादी उसी को काल कहते हैं, ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं सांख्यवाले प्रकृति कहते हैं इत्यादिक जो संज्ञाएँ हैं उसी के नाम हैं उससे इतर कुछ नहीं, उस पद को सन्तजन जानते हैं, हे रामजी! ऐसे पद को पाकर अपने आप से सुशोभित होता है। जैसे मणि के अन्दर बाहर प्रकाश होता है, ऐसे वह पुरुष अन्दर बाहिर शोभा पाता है, अपने स्वरूप से सदा प्रसन्न रहता है, जो पुरुष छठी भूमिका में स्थित है, उसके यह लक्षण होते हैं, संसार में सुषुप्त हो जाता है, और स्वरूप में चेतन होता है उसका जीवत्वभाव जाता रहता है, जीवत्व परिच्छिन्नता है जैसे घट की उपाधि से घटाकाश परिच्छिन्न भासता है, जब घट भग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक होता है, ऐसे अहंकाररूप घटके भग्न हुए आत्मा ही भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे षष्ठभूमिकोमदेशवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१४५॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४६

सप्तभूमिकालक्षणविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसके अनन्तर जब पुरुष को सप्तम भूमिका प्राप्त होती है तब आपको आत्मा ही जानता है और भूत का ज्ञान जाता रहता है केवल आत्मत्व मात्र होता है, दृश्य का ज्ञान नहीं रहता और यह भी ज्ञान कहीं रहता कि विश्व का मेरे आश्रय स्फुरण

होता है। देह सहित हो अथवा विदेह हो, उसका आत्मा से उत्थान कदाचित् नहीं होता जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, ऐसे आत्मस्वरूप में स्थित है और चेष्टा स्वाभाविक होती है, जैसे बालक झूले में झूलने को बैठता है, उसके अंग स्वाभाविक हिलते हैं, ऐसे उसकी चेष्टा खान पान आदिक स्वाभाविक होती है, जैसे काष्ठ की पुतली धागे से चेष्टा करती है, ऐसे प्रारब्ध वेग के धागे से उसकी चेष्टा होती है, अपनी इच्छा उसकी कुछ नहीं रहती, हे रामजी! जैसी अवस्था को सप्तम भूमिका वाला प्राप्त होता है वह आप ही जानता है, दूसरा कोई जान नहीं सकता, जिसका चित्त शांत है और जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है वही जाने, हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है और तुरीयापद में स्थित है, इसका चित्त निर्वाण हो गया है, तुरीया पद को प्राप्त हुआ है और विदेह मुक्त है, उसका अहंभाव का उत्थान कदाचित् नहीं होता, सत् रूप है और सत् की नाईं स्थित है, हे रामजी! वह पुरुष उस पद को प्राप्त हुआ है, जिसमें वाणी की गति नहीं पर कुछ कहता हूँ, वह पद शुद्ध है, निर्मल है अद्वैत है और चेतन ब्रह्म है, काल का भी भक्षण करनेवाला काल अथवा अकाल केवल चिन्मात्र है और ज्यों का त्यों अच्युतपद है, उस पद को पाकर ऐसे होता है, जैसे वस्तु के ऊपर मूर्ति लिखी है, ऐसे उत्थानसे रहित है, अहं ब्रह्म का उत्थान भी नहीं रहता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सप्तभूमिकालक्षणविचारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१४६।।

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४७

संसरणाभावप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह सात भूमिकाएं तुझे कही हैं कि ज्ञान की प्राप्ति इन्हीं से होती है, अन्य साधनों से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती,

हे रामजी! पुरुष ज्ञानवान् हुआ तब जानिये जब उसकी वृत्ति प्रथम भूमिका में स्थित हुई है, इसलिये तुम भूमिका की ओर चित्तरूप चरण रक्खो तब तुमको स्वरूप की प्राप्ति हो, हे रामजी! तीसरी भूमिका पर्यन्त सब कामनाएं निवृत्त हो जाती हैं, एक आत्मपद की कामना रहती है, जब उस अवस्था में शरीर छूट जावे तब अन्य जन्म पाकर मुक्त होता है, क्योंकि उस समय अवश्य ही ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त हुए शरीर छूटे तो दूसरा जन्म नहीं होता, क्योंकि आत्मपद की प्राप्ति तो हुई ही होती है और अन्य किसी वस्तु के पाने की इच्छा नहीं रहती, जन्म का से इच्छा है, जब इच्छा न रही तब जन्म भी नहीं रहा। जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त हुई है उसको स्वरूप की प्राप्ति हुई है, फिर इच्छा कैसे है, जैसे भुना बीज नहीं उत्पन्न होता ऐसे ज्ञान अग्नि से जले होने कारण ही उसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है, इसी से जन्म नहीं लेता और मरता भी नहीं, संसार को स्वप्नवत् देखता है ओर पंचम भूमिकावाला सुषुप्त की नाईं होता है और छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीया पद है, सप्तम तुर्यातीत अनिर्वाच्य पद है, हे रामजी! मेरे इतने कहने का प्रयोजन यही है कि वासनाओं का त्याग करो और अचिन्त्यपद को प्राप्त करो, वह वासना क्या है इसका अभिमान होना ही वासना है, जब इसका अभिमान निवृत्त हुआ तब ही शान्ति हुई, यह परिच्छिन्न अहंकार कर्ता नहीं, आत्मा के अज्ञान से हुआ है और आत्मज्ञान से लीन हो जाता है, हे रामजी! संसार रूप एक नदी है उसमें आधि व्याधि उपाधि रोग तरंग हैं और राग द्वेष रूप मछलियां हैं और तृष्णा रूप मत्स्य (बड़ी मछलियां) हैं, उनमें जीव इससे दुःख पाते हैं, जैसे जल नीचे को चला जाता है, ऐसे मृत्यु के मुख में संसार चला जाता है और अज्ञानरूप जल है, हे रामजी! तृष्णा से पुरुष बन्धे हैं, इसलिये तुम तृष्णारूप सांकल को काटो हस्ती की नाईं वैराग्य अभ्यास रूप दांतों से तृष्णारूप जंजीर को काट दो, हे रामजी! यह तृष्णारूप सर्पिणी है, विषयरूप फुंकारसे विचार रूप वल्ली को जलाती है, उससे जीव रूप

किसान दुःख पाता है, इसलिये वैराग्यरूप अग्नि से सर्पिणी को जला दो, हे रामजी! तृष्णा दुःखदायिनी है। जब तक तृष्णा है तब तक सत् पुरुषों के वचन इसके हृदयमें स्थित नहीं होते, जैसे दर्पण के ऊपर मोती नहीं ठहरता, ऐसे तृष्णावान् के हृदय में सत् पुरुषों के वचन नहीं ठहरते, तृष्णा इच्छा अभिलाषा फुरणा, संसरण इत्यादि सब इसी तृष्णा के नाम हैं, इच्छा रूप मेघ है, उसने ज्ञानरूप सूर्य को आच्छादित कर दिया है, इसलिये ज्ञान भानु नहीं होता, विचाररूप वायु के चलने से इच्छा रूप मेघ छिन्न भिन्न हो जाय तब आत्मरूप सूर्य का साक्षात्कार हो, हे रामजी! यह जीव आकाश का पक्षी है, इसका कर्म में इच्छारूप धागा है, उससे उड़ नहीं सकता और आत्मपद को प्राप्त नहीं होता और इच्छा से ही दीन है। जब इच्छा नष्ट हो तब आत्मस्वरूप है, इस वास्ते इच्छा का नाश करने आत्मपरायण हो जाओ, जो संसारके विषयसुखों से विरक्त है उसको आत्मपरायण कहते हैं हे रामजी! यह जो भूमिका क्रम मैंने तुझे कहा है इसमें जब मनुष्य आ जाय तो ज्ञान की प्राप्ति होती है, इनको तब प्राप्त होता हैं जो एक हस्तिनी को जीतता है, एक हस्तिनी बन में रहती है दो उसके पुत्र महात्तम रूप हैं, वह अनेक जीवों को मारकर अनर्थ करती है, उसके जीतने से सर्व जगत् जीता जा सकता है। रामजी बोले–भगवन् ऐसी मत्त हस्तिनी वह कौन है, कहां रहती है उसके पुत्र कौन हैं, उसके दन्त कैसे हैं वह कैसे मारती है और उसको कैसे रचा गया है, वह कौनसा वन है यह सब मुझे कहिये। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इच्छारूप हस्तिनी है, शरीररूप वन है, मनरूप कंदरा (गुफा) में रहती है, इन्द्रियरूप बालक है संकल्प विकल्प रूप दांत हैं, उनके साथ काटती है, हे रामजी! एक नदी है उसका प्रवाह सदा चला जाता है, उसमें दो मत्स्य रहते हैं, जो नाश नहीं होते, यह संसरणा ही नदी है और राग द्वेष उसमें मत्स्य रहते हैं, उनका नाश नहीं होता, हे रामजी! मत्स्य तब मरें जब संसरण नदी का पानी सूख जाय, उसके सुकृत दुष्कृतरूप दो किनारे हैं चिंतारूप ग्राह है कर्मरूप लहरें हैं, उनमें आया हुआ जीवरूप तृण भटकता है, हे रामजी! तुम तृष्णारूप विष वल्ली को काटो, तृष्णारूप

अंकुर का घटना बढ़ना अपने अधीन है। यदि अंकुर को जल दिया जाय तो बढ़ता है, न दो तो जल जाता है। हे राम! तृष्णारूप बड़ा मत्स्य है धैर्यरूप मांस को भक्षण करने वाला है, उसको वैराग्यरूप कुंडा से अभ्यासरूप दांतों से काट डालो, हे रामजी! इच्छा बन्धन है निरिच्छा (इच्छा का न होना) मुक्ति है, हे रामजी! एक सुगम उपाय कहता हूँ जिससे तृष्णा का नाश हो, निज अर्थ की भावना करो, जब निज अर्थ की भावना करोगे, तब शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी और तुम विजय पाओगे, सर्वोत्तम पद की उपलब्धि होगी, कोई वासना शेष न रहेगी। शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और सब संकल्प नष्ट हो जायँगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे संसरणाभाव प्रतिपादनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ।।१४७।।

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४८

इच्छाचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! आपने कहा कि निज अर्थ की भावना करो वासना नष्ट हो जायेगी और शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्त होगी, वासना तो चित्त में चिरकाल से स्थित है, एक ही बार कैसे नष्ट होगी और आप कहते हैं वासना के नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है, जिसकी वासना नष्ट हुई उसका शरीर कैसे रहेगा और वासना बिना चेष्टा कैसे होगी इसलिये जीवन्मुक्तिपद कैसे बनें? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मेरे वचन प्रेम से सुनो, इनके श्रवण करने से दारिद्र्य नाश होता है यह वचन श्रवण के भूषण हैं। निज अर्थ के धारण करने से संशय नष्ट हो जायँगे और आत्मपद की प्राप्ति होगी, निज शब्द के तीन अर्थ हैं, एक तो अन्य के अर्थ में है कि पांचभौतिक शरीर से तेरा स्वरूप अन्य (विलक्षण) है और दूसरा अर्थ यह कि विरुद्ध है, शरीर जड़ है तमोरूप है और तेरा

स्वरूप आदित्य वर्ण है, तम से परे है, हे रामजी! जब तुमने ऐसे धारण किया कि मैं आत्मा हूँ और यह देहादिक अनात्मा हैं तब देह के साथ मिलकर अभिलाषा कैसे रहेगी जब तक जाना नहीं तब तम अभिलाषा है और तीसरा अर्थ यह कि जब यह जो अभाव है कि न मैं हूँ, न कोई जगत् है ऐसा जान लिया तब इच्छा किसकी रहेगी, अर्थात् न रहेगी, अथवा यदि तू अपने आपको देह से विलक्षण आत्मा जानेगा तब भी आविद्यक तमोरूप शरीर की अभिलाषा न रहेगी, देह तमोरूप है, तुम आदित्यवर्ण हो, अर्थात् प्रकाश स्वरूप हो तेरा और इसका संयोग कैसे कहां हो, जैसे सूर्य के मंडल में रात्रि नहीं, ऐसे जब तू अपने आपको प्रकाशरूप जानेगा तब तमोरूप संसार न दीखेगा, शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और तुममें चेष्टा कुछ न होगी, जैसे अर्ध निद्रावाले की चेष्टा होती है, जानी भी नहीं जाती कि चेष्टा होगी और बालक के समान तुझको अभिमान न होगा, जैसे बालक की उन्मत्त चेष्टा होती है, ऐसे तेरी चेष्टा भी स्वाभाविक होगी, हे रामजी! यदि ऐसी इच्छा करो कि यह सुख हो और यह दुःख न हो ऐसा कभी न होगा, जो कुछ शरीर का प्रारब्ध है वह अवश्य होता है, परन्तु ज्ञानवान् के हृदय में संसार की सत्यता जाती रहती है और चेष्टा स्वाभाविक होती है, इच्छा नहीं रहती, हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को लम्बा चलना पड़ता है तो यदि मार्ग लम्बा हो और पहुंचने के लिये समय थोड़ा हो तो वह पुरुष मार्ग के स्थान देखता भी जाता है परन्तु बद्ध किसी में नहीं होता, ऐसे ही चित्त को आत्मपद में लगाओ कि किसी प्रकार पहुँचना है, ऐसा शरीर प्राप्त करके भी यदि आत्मपद नहीं पाया तो कहो फिर कब पाना है, जो आत्मपद से विमुख है वह वृक्षादिक जन्मों को पायेगा। इसलिये हे रामजी! चित्त को आत्मपद में रक्खो और स्वाभाविक इच्छा बिना चेष्टा हो इच्छा ही दुःखदायक है जब इच्छा नष्ट हुई तब इसी को ज्ञानवान् तुरीयापद कहते हैं जहां जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का अभाव है वह तुरीया पद है, हे रामजी! यह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाएं जहां न पाई जायँ वह तुरीयापद है, जब

संवेद स्फुरण अहंकार का अभाव हो जाय तब तुरीयापद प्राप्त हो, हे रामजी! अहंकार का होना दुःखदायक है, जब इसका नाश हो तभी आनन्द है, आत्मपद से इतर जो माया की रचना है उसके साथ मिलकर आपको जानता है, मैं हूँ यही अनर्थ है, इसलिये अहंकार का त्याग करो जिसको देखकर फुरता है उसको मिथ्या जानो यही निज शब्द का अर्थ है जितना कुछ संसार भासता है उसको स्वप्न मात्र जानो, सत् जानकर इसमें इच्छा करनी यही अनर्थ है और मिथ्या जानकर इच्छा न करना यही कल्याण है, हे रामजी! मैं ऊंची भुजाएं उठाकर पुकार कर कह रहा हूँ, मेरे वचन कोई नहीं सुनता कि इच्छा ही संसार का कारण है और इच्छा से रहित होना परम कल्याण है, जब इच्छा से रहित हुआ तब शान्त पद को प्राप्त होता है, निरिच्छा होने पर ही आत्मप्रतीति संभव है अन्यथा कभी नहीं, जो आत्मा कि आनन्द रूप है, सम है, अद्वैत है, उसमें जगत् का अभाव है, हे रामजी! मोह का बड़ा माहात्म्य है, हृदय में जो आत्मरूप चिन्तामणि स्थित है, उसको मूर्ख विस्मरण करके अहंकार रूप कांच को ग्रहण करते हैं। हे रामजी! तुम निरभिमान होकर चेष्टा करो, जैसे यंत्री की पुतलीमें अभिमान कुछ नहीं और चेष्टा उसकी होती है, ऐसे प्रारब्ध वेग से तुम्हारी चेष्टा होगी, यह अभिमान तुम न करो, कि ऐसे हो और ऐसे न हो, जब ऐसा होगा तब शान्त पद को प्राप्त होगा, जहां वाणी की गति नहीं ऐसे आनन्द को प्राप्त होगा, जब तक इन्द्रियों के अर्थ की तृष्णा है तब तक जन्म मृत्यु के बंधन में है इसलिये पुरुष प्रयत्न यही है कि तृष्णा का नाश कर, कर्म के फल की तृष्णा तुझे न हो और कर्म करने की भी तुझे इच्छा न हो, इन दोनों को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो और ऐसा भी निश्चय न हो कि मैंने त्याग किया है, हे रामजी! जिस पुरुष ने कर्म का त्याग किया है और अहंकार साथ है तो पुण्य और आप उसने सब कुछ किया है और जिसमें अहंभाव नहीं वह कर्म करे तो भी कुछ नहीं किया, वह बंधन को प्राप्त नहीं होता, जो कर्म में अपने आपको अकर्ता मानता है और अकर्म में अभिमान सहित है

उसको करता देखते हैं वह बद्ध है, हे रामजी! आत्मा को ऐसा जानकर अहं मम का त्याग करो, ऐसे संवेदन के त्यागने में यत्न कुछ नहीं, स्मृति उसकी होती है जिसका अनुभव होता है, जिसका अनुभव न हो उसका त्याग करना सुगम है प्रत्यक्ष देखने को ही अनुभव कहते हैं, विश्व तेरे स्वरूप में है नहीं तो अनुभव क्या हो, यह पदार्थ जो तुझे भासते हैं उनके कारण को जान, इनका कारण अनुभव है, यदि अनुभव ही इनका मिथ्या है तो स्मृति सत् कैसे हो, जेवरी में सर्प का अनुभव हुआ, फिर स्मरण किया कि वहां सर्प देखा था, यदि सर्प का अनुभव ही मिथ्या है फिर स्मरण सत् कैसे हो, इसलिये जो वस्तु मिथ्या है उसके त्यागने में क्या यत्न है, जब प्रपञ्च को मिथ्या जाना तब तुम्हें कोई क्रियाबन्ध कर्त्री न होगी चेष्टा स्वाभाविक होगी और राग द्वेष जाता रहेगा, जैसे शरत्काल की वेल सूख जाती है और आकार उसका दृष्टि आता है, ऐसे तुम्हारा चित्त देखने में आयेगा वह चित्त सत् पद को प्राप्त होगा जब सर्व विस्मरण होगा उसको शिवपद कहते हैं वह परम पद है, ब्रह्म है शब्द अर्थ से रहित केवल चिन्मात्र अद्वैत पद है, अहं मम का त्याग करके उसमें स्थित हो जाओ और संसार इसी का नाम है कि 'अहं' हूँ और यह मेरा है, इसको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाइये, हे रामजी! जब तक अहं मम यह संवेदन है तब तक दुःख नहीं मिटते जब यह संवेदन मिटे तब आनन्द है, आगे जो इच्छा है सो करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे इच्छाचिकित्सोपदेश वर्णनं नामष्टचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥१४८॥

ऊनपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः १४९

कर्मबीजदाहोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आत्मा अद्वैत है जिसमें एक दो कहना नहीं अपने अपने स्वभाव में स्थित हैं, अन्तःकरण चतुष्टय और बाह्य

पदार्थ सर्व चेतन मात्र हैं इतर कुछ नहीं। रूप इन्द्रिय और मन का फुरणा देशकाल सब आत्मारूपी हैं और जैसे बालक मिट्टी की सेना बनाता है और हाथी घोड़े राजा प्रजा नाम कल्पना करता है, ऐसे आत्मा में जगत् जीव की कल्पना करता है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, इस अहंकार को त्याग करो। आत्मपद से इतर कुछ फुरे नहीं, रूप अवलोक नमस्कार यह सब शिवरूप मृत्तिका के नाम हैं, मान मेय प्रमाण आदिक यह सब वही रूप हुए तो किससे किसको संचित कहे, यह अहं मम आदिक भी चिदाकाश से इतर कुछ वस्तु नहीं इनको ऐसे जानकर अफर शिलावत् निःसंग होकर रहो, रामजी बोले—हे भगवन्! तुमने कहा कि अहं फुरणे का त्याग करो यह मिथ्या है, अहं मम असत् है, ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं, इनकी सत्ता कुछ नहीं, असंग हो जाओ तो असंग नैष्कर्म्य से होता है या कर्मण्यतासे कहिये। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह तुमही कहो कि कर्म क्या है, नैष्कर्म्य क्या है और इनका कारण कौन है और इनका नाश कैसे हो और नाश होने से सिद्धि क्या होगी यदि तुम जानते हो तो कहो, रामजी बोले—हे भगवन्! जैसे तुमसे श्रवण किया है और समझा है ऐसे कहता हूँ सुनो जो वस्तु नाश करनी हो उसको मूल से नाश कीजिये तब ही इसका नाश होता है शाखा पत्र काटने से उसका नाश नहीं होता, इसलिये इनका क्रम सुनो। इस संसार रूप वन में देहरूप वृक्ष है, उसका बीज कर्म है और प्राणि पाद आदिक उसके पत्र हैं और रुधिर श्वासवासना इसमें रस है और सुख दुःख इसके फूल हैं और जाग्रत कर्म वासनारूप वसन्तऋतु है, उससे प्रफुल्लित होते हैं और सुषुप्ति इसके लिये पाप कर्म रूप शरत्काल है उससे सूख जाता है ऐसा शरीररूप वृक्ष है और कैसा है, तरुण पवन रूप कली है क्षण का क्षण सुन्दर है जरा रूप फूल इसको हंसते हैं और रागद्वेष रूप वानर क्षण क्षण में क्षोभ पहुँचाते हैं, जाग्रत् रूप इसके लिये वसन्तऋतु है और सुषुप्तिरूप हिम करती है, वासना रूप रस से बढ़ता है और पुत्र कलत्र आदिक यह तृण घास है, इंद्रियों के गढ़ उसका मुख है, इनसे शरीर की चेष्टा होती है, ज्ञानेन्द्रिय

इसके पांच स्तंभ हैं इनसे यह वृक्ष धारण किया गया है, इसमें इच्छा बेलें हैं, जो कि अपने अपने विषय को चाहती हैं और बड़ा स्तंभ इसका मन है जो सबको धारण करता है और पंचप्राण इसके रस हैं, प्रत्यक्ष अनुमान शब्द इनसे सबको ग्रहण करता है, आगे इनका बीज जीव है, चैतन्योन्मुखत्व चेतन को जीव कहते हैं और जीव का बीज संवित् है, उस संवित् का बीज ब्रह्म है, उसके आगे कोई बीज नहीं, हे भगवन्! सबका मूल संवित् का फुरणा है, जब इसका अभाव हुआ तब शेष आत्मा ही रहा है, हे भगवन्! यह तो मैं जानता हूँ, आगे कुछ कृपा करके तुम कहो, हे भगवन्! जब तक चित्त के साथ सम्बन्ध है, तब तक संसार में जन्म मृत्यु पाता है, जब चित्त से रहित हुआ तब पर ब्रह्म है, वह शिव पद है, अनिच्छित है, शान्त है, अनन्तरूप है, चिन्मात्र में जो अहंकार उत्थान है, वही कर्मरूप वृक्ष का कारण है तब तक अनात्मा के साथ मिलकर कहता है, मैं हूँ, ऐसा जानता हूँ वह संसार का कारण है, यह बात तुम्हारे वचनों से समझ में आयी है, जो कि प्रार्थना कर दी है अर्थात् कह दी है अब आप कृपा करके कुछ कहें, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसी प्रकार कर्म का बीज सूक्ष्म संवित् है, तब तक कर्मों का बीज नाश नहीं होता और यह सब संज्ञाएं इसकी हैं, कर्मों का बीज कहिये, इच्छा कहिये, तृष्णा कहिये, अज्ञान कहिये, चित्त कहिये, इत्यादिक बहुत संज्ञाएं हैं और क्या किसी में हेयोपादेय बुद्धि करे, हे रामजी! जब तक अज्ञान है, तब तक इच्छा नाश नहीं होती और कर्म भी नाश नहीं होते, नाश दोनों का भेद नहीं होता परन्तु भेद ही अज्ञानी को भासता है कि यह इच्छा है यह कर्म है और ज्ञानवान् को सब ब्रह्म ही भासता है, इसलिये सुखी रहता है और अज्ञानी को कर्म में कर्म भासता है, इसीलिये बद्ध होता है और इसी का नाम त्याग है कि कर्म से कर्म बुद्धि दूर हो जाय, इसका नाम त्याग नहीं कि क्रिया ही का त्याग कर दिया जाये, हे रामजी! बड़ी उपाधि अहंकार है, जिसका अहंकार नष्ट हुआ है वह पुरुष कर्म करता है, तो भी उसने कभी कुछ नहीं किया और जो अहंकार सहित है वह पुरुष यदि मौन होकर

बैठा है, तो भी सब कर्म करता है, इस अहं के त्याग का नाम सर्वत्याग है क्रिया (कर्म के) त्याग का नाम सर्वत्याग नहीं, पुरुष प्रयत्न यही है कि सब कर्मों के बीज अहंकार का त्याग किया जाये और परम शान्ति प्राप्त हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे कर्मबीजदाहोपदेशो नाम ऊनपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः ।।१४९।।

पंचाशदधिकशततमः सर्गः १५०

अहंकारनाशविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस संवेदन का होना भी अनर्थ है, जो आपको कुछ जानता है, जब यह निवृत्त हो तब ही इसका आनन्द है, हे रामजी! ज्ञानी की चेष्टा अहंकार से रहित स्वाभाविक होती है, जैसे अर्ध निद्रित पुरुष होता है ऐसे ज्ञानी अपने स्वरूप में मस्त होता है, जैसे हस्ती मद से उन्मत्त होता है ऐसे ज्ञानवान् स्वयं ब्रह्म लक्ष्मी से परमानन्द में सराबोर है और ज्ञान ऐसा व्यसन है, जैसा कामी को काम व्यसन होता है, ऐसे यह ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है, क्योंकि निरहंकार है, सब दुःखों का बीज अहंकार जब नष्ट हो जाता है तब आनन्द ही आनन्द है। हे रामजी! संसार विष की बेल है उसका बीज अहंकार है, जब अहंकार का अभाव हो तब संसार का अभाव होता है, हे रामजी! अहंकार दुःख का मूल है, इस संवेदन का विस्मरण करना परम कल्याण है, अनात्म पदार्थों से मिलकर अपने आपको अन्यथा मानना यही अनर्थ है, राम बोले–हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है असत् है अर्थात् नहीं है, उसका होना नहीं होता और जो सत्य है उसका अभाव नहीं होता तुम कैसे कहते हो कि अहं संवेदन का नाश करो, यह तो सत् भासती है, संवेदन अवेदन कैसे हो? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! तुम सत्य कहते हो, जो वस्तु असत् (अविद्यमान) है उसका होना नहीं और जो सत् हैं उसका

नाश नहीं होता, हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुझे प्रतीत होता है, इसका होना कदाचित् संभव नहीं, मिथ्या कल्पित है, जैसे जेवरी में सर्प होता है ऐसे आत्मा में अहंकार है, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है ऐसे आत्मा में अहंकार शब्द अर्थ फुरता है, यह शब्द और अर्थ मिथ्या है उसका यह लक्षण है कि मैं हूँ, कल्पित है आत्मा केवल शुद्ध स्वरूप है, उसमें अहं त्वं का शब्द अर्थ कोई नहीं, यह अज्ञान से भासते हैं, ज्ञान से लुप्त हो जाते हैं और वेदना का जो बोध है अनर्थ का कारण है अज्ञान तुम है जब यह निर्वाण हो तब कर्म का बीज मूल से कटता है, हे रामजी! जो कर्मों को त्यागकर एकान्त में जाकर बैठता है कि मैं कर्म नहीं करता हूँ, ऐसा मानता है वह कहता ही है, यदि अहंकार साथ है तो फल को भोगता ही है क्योंकि उसका मनन है अहंकार सहित मैं पुनः करूंगा, आत्मज्ञान के बिना अनात्म पदार्थों से मिलकर आपको मानता है और जो पुरुष कर्मेन्द्रियों से चेष्टा करता है आत्मा को निर्लेप जानता है वह अकर्ता ही है, उसको करने में कुछ अर्थ सिद्धि नहीं होती और न करने में भी नहीं होती, ऐसा पुरुष परम निर्वाण पद को प्राप्त होता है, जिसमें वाणी की पहुँच नहीं, हे रामजी! उसमें कोई स्फुरण नहीं, चमत्कारमय है, जो हो तो नहीं, परन्तु प्रतीत हो यही चमत्कार है, जैसे बिल्वकी मज्जा होती है वह बिल्व से इतर कुछ वस्तु नहीं ऐसे जगत् है, जैसे सुवर्ण से भूषण भिन्न नहीं ऐसे निज शब्द का अर्थ है, यह भिन्न शब्द अर्थ तब तक भासता है जब तक अहंवेदनाकार है, हे रामजी! आत्मपद सदा अपने आपमें स्थित है, जैसे पत्थर अपनी जड़ता में स्थित है ऐसे आत्मा अपनी चेतन घनता में स्थित है इसको मुनीश्वर चेतन सार कहते हैं उस अपने स्वरूप के प्रमाद से दुःख पाता है, हे रामजी! जो पुरुष गृह में स्थित है और अहंकार से रहित है उसको वनवासी जानो वह सदा एकान्त में स्थित है और जो वनवासी है और अहंकार सहित है, वह लोगों में स्थित है, प्रथम एक गर्त में था, उसको त्यागकर दूसरे गर्त में पड़ा है, जो वेष धारी है और वनवास लिया है, उसको ईश्वर चाहे तो

वह निकले ही नहीं, बड़े कूप में पड़ा है, हे रामजी! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है, एक अंग का त्याग और दूसरे अंग का स्वीकार करता है ऐसा पुरुष अपने आपको निष्काम मानता है, उसको वह त्यागरूप पिशाचिनी भोगती है, हे रामजी! निष्कर्म यह तब ही होता है जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है, अन्यथा नहीं होता, इसलिये कर्म को निर्मूल करो, जैसे शूर वृक्ष को मूल से काटता है ऐसे काटो, अहंवेदना ही मूल है, उसका मूल काटना है, हे रामजी! पुरुष प्रयत्न इसी का नाम है कि अपने आपका नाश करना और आप ही रहना, देह के साथ मिला हुआ अपने आपको जानता है, उसका नाश करना और शिवपद को प्राप्त होना, जो सर्वदा सत्वरूप है और अद्वैत है, उसमें स्थित हो जाओ, यह विश्व भी उसका चमत्कार है, जैसे बिल्वमें गरी होती है उसके बहुत नाम रक्खे जाते हैं, वह बिल्व से इतर कुछ वस्तु नहीं, ऐसे संसार आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे स्तंभ में काष्ठ से इतर कुछ नहीं ऐसे यह संसार भासता है, नानात्व जो भासता है वह भी चेतन घन आत्मा ही है और निज अक्षर का अर्थ जो तुझे कहा है, वह भी वही है, विधि निषेध किसका किया जाय, सब परमात्मतत्व है, दूसरा किंचित् मात्र भी नहीं, हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर सुख से विचरो, स्वाभाविक चेष्टा होगी, जैसे अर्ध-निद्रित की होती है, अथवा जैसे बालक झूलने में झूलता है, उसके अंग स्वाभाविक हिलते हैं, ऐसे तुम्हारी चेष्टा होगी, अपना अभिमान तुम न करो, हे रामजी! जितने भाव अभाव पदार्थ भिन्न भासते हैं वह आत्मा के साक्षात्कार हुए परमात्मतत्व ही भासेंगे, तब अहंकार निवृत्त होगा, हे रामजी! एक और युक्ति सुनो। जिससे आत्मज्ञान हो, यह जो अहं क्षण क्षण में स्फुरण होता है वह जब स्फुरण हो तब ही उसी क्षण में यह जान कि मैं नहीं, जब इस प्रकार यह भाव दृढ़ हो जायेगा तो अहंकार रूप पिशाच का नाश होगा तथा आत्मतत्व का साक्षात्कार होगा, जब अहंकार का नाश हो तब आत्मा की प्रतीति हो, इसलिये अहंकार के नाश का यत्न करो कि न मैं हूँ न जगत् है, हे रामजी! ज्ञान इसी का

नाम है जो अहं मम न रहे, उसको मुनीश्वर परब्रह्म कहते हैं और सम्यक्पद कहते हैं और जहां अहं मम है, वहां अविद्यारूप तम खड़ा है, हे रामजी! अज्ञानी के हृदय में सर्व पदार्थ का भाव स्थित है देशकाल घर नगर मनुष्य पशु पक्षी आदिक त्रिगुण संसार उसको भासता है जब इनका अभाव हो जाय तब शान्त पद की प्राप्ति हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अहंकारनाश विचारो नाम पंचाशदधिकशततमः सर्गः ॥१५१॥

एकपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः १५१

विद्याधरवैराग्यवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिसके मन से मैं मेरा का अभिमान दूर हो गया है, उसको ही शान्ति सुख है अन्य को नहीं, हे रामजी! प्रथम आप बनता है, तब जगत् है यदि स्वयं न बने तो जगत् कहाँ, इसका होना ही अनर्थ का कारण है, जिस पुरुष ने अहंकार त्याग किया है, वह सर्व त्यागी हुआ है और जिसने अहंकार का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा और जिसने क्रिया का त्याग किया है और अपने आपको सर्व त्यागी मानता है, वह मिथ्या है, जैसे वृक्ष की शाखायें काटने से वह फिर बना ही रहता है नाश नहीं होता ऐसे क्रिया के त्याग किये त्याग नहीं होता, त्यागने योग्य अहंकार है जो नष्ट नहीं होता, क्रिया पुनः उत्पन्न होती है, इसलिये अहंकार का त्याग करना चाहिये, तब सर्व त्यागी हो, इसका नाम महात्याग है, उसको स्वप्न में भी संसार न भासेगा जाग्रत् की क्या कथा है, उसको संसार की प्रतीति कदाचित् नहीं होती हे रामजी! जो शान्ति संसार का बीज अहंभाव है, उससे स्थावर जंगम भासता है, जब इसका नाश हुआ, तब जगद्भ्रम मिट जाता है, इसलिये इसके अभाव की भावना करो, जब तुझे अहंभाव फुरे तब तुम जानो कि मैं नहीं जब इस

प्रकार अहंका अभाव हुआ तब पीछे जो शेष रहेगा वह आत्म पद है; हे रामजी! सब अनर्थों का कारण अहंभाव है इसीका त्याग करो, हे रामजी! शस्त्र का प्रहार जीव सह लेता है, अन्य व्याधि रोग को सह लेता है, इस अहं के त्यागने में क्या कदर्थना है, हे रामजी! संसार का बीज अहंकार सद्भाव है उसका नाश करना संसार का मूल संयुक्त नाश है, इसलिये इसके नाश का उपाय करो जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है, उसको सर्वत्र आकाश रूप है, उसके हृदय में संसार की सत्ता कुछ नहीं फुरती यद्यपि गृहस्थ में हो तो प्रपंच यह शून्य वन की अटवी उसको भासती है और जो अहंकार सहित है वह वन में जा बैठे तो भी जन समूह में बैठा है क्योंकि उसका अज्ञान नाश नहीं हुआ और जिसके मन सहित षट् इंद्रियों को वश नहीं किया उसको मेरी कथा सुनने का अधिकार नहीं, वह पशु है और जिस पुरुष ने मन को जीता है अथवा जो जीतने की इच्छा करता है दिन प्रतिदिन व पुरुष है और जो इंद्रियों से विश्राम ले रहा है काम क्रोध लोभ मोह से सम्पन्न है, वह पशु है, महा अन्धतम को प्राप्त होता है, हे रामजी! जो पुरुष ज्ञानवान् है और इच्छा कर्म की उसमें दृष्टि आती है, तो भी उसकी इच्छा अनिच्छा ही है और कर्म अकर्म ही है, जैसे भूना दाना पुनः उत्पन्न नहीं होता और आकार उसका प्रतीत होता है ऐसे ज्ञानवान् की चेष्टा दृष्टि आती है वह देखने मात्र है, उसके हृदय में कुछ नहीं, हे रामजी! पुरुष कर्मेन्द्रियों के साथ चेष्टा करता है और जगत् की सत्यता हृदय में नहीं, तब बन्धन कोई नहीं होता और जो जगत् को सत्य जानकर थोड़ा कर्म करता है तो भी प्रसार पा जाता है, जैसें थोड़ी सी आग जगकर महान् हो जाती है, ऐसे थोड़ा कर्म भी उसको जन्म मरण दुःख देता है और ज्ञानी को नहीं होता, उसका प्रारब्ध कर्म शेष है, वह भी हृदय में नहीं मानता जानता है कि शरीर की है आत्मा की नहीं वह भी वेग उतरता जाता है, जैसे कुंभार का चक्र होता है और चरण चलाने से रह जाता है तो शनैः शनैः वेग उतरता जाता है, जैसे प्रारब्ध वेग उसका उतरता जाता है पुनः जन्म नहीं होता क्योंकि उसको अहंकाररूप पाँव नहीं लगता इसलिये अहंकार

का नाश करो, जब अहंकार का नाश हुआ तब सबके आदि पद की प्राप्ति होगी, वह परम निर्वाण पद है, उसमें तब बादल होते हैं, निर्वाण हो जाता है, हे रामजी! जब वर्षाकाल होता है, जब शरत्काल आता है तब बादल चलते रहते हैं, हे रामजी! जब तक अज्ञान रूप वर्षाकाल है तब तक अहंकार रूप वर्षा है जब विचाररूप शरत्काल आयगा तब अहंकाररूप मेघ चलते रहेंगे और आत्मरूप आकाश निर्मल भासेगा, हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श होता है तब मुख का प्रतिबिंब उज्ज्वल नहीं भासता जब मैल निवृत्त हो तब मुख का प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासे, ऐसे अहंकाररूप मैल से जीव आच्छादित है, उससे आत्मा नहीं भासता, जब अहंकार रूप मैल निवृत्त हो तब आत्मा ज्यों का त्यों भासे, जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग उठते हैं और सम्यग्दर्शी को सब जलमय दृष्टि आते हैं और भूषण में स्वर्ण ही भासता है, ऐसे नाना प्रकार के प्रपंच उस समदर्शी को चेतन धन आत्मा ही दृष्टि आता है, आत्मा से इतर कुछ नहीं देखता अन्य ओर से पत्थर की शिलावत् हो जाता है, क्योंकि उसका अहंकार नष्ट हो गया है और जो क्रिया का त्याग करता है अहंकार साथ है और त्याग से अपने आपको सुखी मानता है, वह मूर्ख है, जैसे कोई लकड़ी लेकर आकाश को नाश करना चाहे तो नहीं होता ऐसे क्रिया के त्याग से दुःख का नाश नहीं होता, जब सम्पूर्ण संसार की क्रिया का बीज अहंकार नाश हो तब अक्रिय आत्म स्वरूप को प्राप्त होता है, जैसे तांबा अपने तांबा भाव को त्यागता है तब सुवर्ण होता है ऐसे जब जीव अपने जीवत्व भाव को त्यागे तब आत्मरूप होता है और जैसे तेल की बूँद जल में पड़ती है तब फैल जाती है नाना प्रकार के रंग जल में भासते हैं, ऐसे ब्रह्मरूप जल में अहंतारूप तेल की बूँद पड़कर फैल जाती है और वहां नाना प्रकार की कलना दिखाई देती है आत्मा, ब्रह्म, निराकार, निरंजन, इत्यादिक नाम भी अहंकार से शुद्ध में कल्पना किये गये हैं, वह अफुर केवल सत्ता मात्र है सत् और असत् की नाईं स्थित हैं, हे रामजी! संसार मिर्च का लघु वृक्ष है सृष्टिरूप उसमें फूल हैं, अहंता रूप सुगन्धि है, हे

रामजी! जब अहंता उदय हुई तब संसार उदय होता है और अहंता के नाश हुए संसार नाश हो जाता है, क्षण में उदय होता और क्षण में नाश होता है अहंता का होना ही उदय होने का क्षण है और अहंता का लीन होना नाश का क्षण है, हे रामजी! जैसे मृत्तिका को जल का संयोग होता है उससे घट बनता है तब मृत्तिका घट संज्ञा को पाती है, ऐसे पुरुष को जब अहंकार का संयोग होता है तब संसारी होता है और जीव संज्ञा को पाता है, देशकाल पृथ्वी, पर्वत आदिक दृश्य को प्रत्यक्ष देखता है, जब अहंता नाश हो तब सुखी होता है, जितना कुछ नाम रूप है और उसका अर्थ है वह अहन्त से भासता है जब अहंता को त्यागे तब शान्त रूप आत्मा ही शेष रहेगा, जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशित होता है ऐसे अहंकार रूप् पवन से रहित अपने स्वभाव में स्थित होता है और आनन्दपद को प्राप्त होता है, देशकाल वस्तु अपने में देखता हुआ सबका अपना आप होता है, हे रामजी! जब तक अहन्ता का नाश नहीं होता तब तक मेरे वचन हृदय में स्थित न होंगे, हे राम! जिस पुरुष ने अपना स्वभाव नहीं जाना उसके लिये ब्रह्म का पाना कठिन है, जैसे रेत में से तेल निकलना असंभव है ऐसे ही उसके वास्ते ब्रह्म प्राप्ति कठिन है, अपना स्वभाव जानना अति सुगम है, जब अहंता का त्याग करे कि न मैं हूँ न जगत है जब कल्याण हुआ तब अहन्ता का नाश होता है तब भ्रम कोई नहीं रहता, जैसे जेवरी के जाने सर्प भ्रम निवृत्त हो जाता है, जब तक अहन्ता फुरती है तब तक उपदेश इसका नहीं लगता, जैसे आरसी के ऊपर मोती नहीं ठहरता, उसके हृदय में मेरे वचन नहीं ठहरते और जिसका हृदय शुद्ध है उसको मेरे वचन लाभ पहुँचाते हैं। जैसे तेल की बूँद जल में विस्तार पाती है ऐसे उसको अल्प वचन भी विशेष वचनों का सा काम देता है, इस पर एक पुरातन इतिहास मुनिलोग कहते हैं उसको सुनो मेरा और काकभुशुंड का संवाद है, एक समय मैं सुमेरु पर्वत के शिखर पर गया था, वहां काकभुशुंड बैठा हुआ था, मैंने उससे प्रश्न किया कि हे अंग! ऐसा भी कोई पुरुष है जिसकी उमर बड़ी हो और बल भी अधिक हो और वह

ज्ञान से शून्य रहा हो, यदि ऐसा कोई देखा है तो कहो भुशुण्ड ने कहा हे भगवन्! एक विद्याधर देवता था, उसका आयुर्बल बड़ा था उसने बहुत विद्याध्ययन किया था, सत्कर्म विचरता था, भोग भी उसने बहुत भोगे थे, वह सत्कर्म तो करता था, परन्तु सकाम, चतुर्युगपर्यन्त सकाम कर्म करता रहा जप तप नियम आदि में ही उसका समय जाता था जब चतुर्थयुग का अन्त हुआ तब उसको विचार उत्पन्न हुआ वह जिन भोगों को सुख रूप जानकर भोगता था उनमें उसको वैराग्य हुआ और उन्हीं पूर्व प्रिय वस्तुओं के देखने मात्र से घृणा पैदा हुई तब सब भोग सामग्री को त्यागकर लोकालोक पर्वत पर चला गया वहां जाकर विचार करने लगा कि यह संसार असार रूप है, किसी प्रकार इससे छूटूं। बार-बार जन्म है बार-बार मृत्यु है, कोई पदार्थ सत्य नहीं किसका आश्रय करूं ऐसे विचार करके वह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत के ऊपर मेरे पास आया और सिर झुका कर उसने मुझे दण्डवत् प्रणाम किया, मैंने भी उसका आदर किया, तब हाथ जोड़कर उसने कहा हे भगवन्! इतने काल पर्यन्त विषयों को भोगता रहा हूँ, परन्तु मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हुई, इससे मैं दुःखी हो रहा हूँ, कृपा करके मुझे शान्ति का उपाय कहो, हे भगवन्! चित्ररथ का जो बाग बना हुआ है उसमें सदाशिव रहते हैं और कल्पवृक्ष भी बहुत हैं, उससे मैं बहुत देर तक रहा हूँ तदनन्तर विद्याधरों के स्वर्ग में रहा हूँ और इन्द्र के नन्दनवन में रहा हूँ और स्वर्ग की कंदराओं में रहा हूँ, सुन्दरी अप्सराओं का स्पर्श किया और विमानों पर आरूढ़ होता रहा हूँ, हे भगवन्! इत्यादिक बहुत स्थान मैंने देखे हैं और तप भी बहुत किया है, दान यज्ञ व्रत भी बहुत किये हैं, सहस्रों वर्ष सुन्दर रूपों को देखा है, जिनकी सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता परन्तु तो भी नेत्रों को तृप्ति नहीं मिली सुगंधित पदार्थ बहुत सूँघे परन्तु सूंघ सूंघ कर घ्राण को तृप्ति नहीं मिली बहुत प्रकार के स्वादिष्ट भोजन किये तो भी रसना तृप्त नहीं हुई, तृष्णा बढ़ती गयी, अनेक प्रकार के मधुर संगीत के श्रवण से भी कान तृप्त नहीं हुए, कोमल स्पर्श का अति अनुभव करने

पर भी त्वचा नहीं मिली, हे भगवन्! मैं जिस ओर सुख जानकर प्रवेश करता रहा उसी ओर से दुःख ही मिलता रहा, जैसे मृग क्षुधा मिटाने के लिए घास खाने आता है और राग सुनकर मूर्छित हो जाता है और बधिक (शिकारी व्याध) उसको पकड़ लेता है, तब मृग दुःख पाता है, ऐसे मैं सुख जानकर विषयों को ग्रहण करता था और महान् दुःख पाता था, हे भगवन्! बहुत समय तक दिव्य भोग भोगे हैं, पांचों इन्द्रियों और छठे मन से शब्द स्पर्शरूप रसगन्ध नामवाले भोग आदि दिव्यरूप से अनेकों बार अनेक प्रकार भोगे हैं परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली, मेरे इंद्रिय तृप्त नहीं हुए अपितु भोगेच्छा बढ़ती ही गयी, जैसे घृत से अग्नि तृप्त नहीं होती, ऐसे प्रति दिन तृष्णा बद्ध होती जाती है और अन्तःकरण को निरन्तर जलाती है, जो पुरुष इन भोगों की प्राप्ति के लिये यत्न करता है कि मैं सुखी हो जाऊंगा, वह मूर्ख है उसको धिक्कार है, वह अपनी रक्षा के लिये तरंग का आश्रय लेता है। यह सांसारिक अथवा स्वर्गीय भोग तब तक सुख रूप प्रतीत होते हैं जब तक इंद्रिय और विषयों का संयोग है, इंद्रिय विषयों के वियोग में महान् दुःख पाता है, क्योंकि भोग भोगने के साधनों के नाश होने पर केवल तृष्णा ही अन्तर रहती है भोग जाते रहते हैं, जिन जिन विषयों को बड़ी आसक्ति और प्रेम लगन से भोगते थे वही अब परम दुःखदायक प्रतीत होते हैं, अथवा यों कहिये कि वार्धक्य अवस्थाके आ जानेसे इन्द्रिय शैथिल्यके कारण भोग असमर्थ हो जाने से वे भोग दुःख दायक प्रतीत होते हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं अति दुःखी हूँ। यद्यपि इंद्रिय कोमल हैं तो भी सुमेरु की नाईं कठिन हैं और कोमल भासती हैं, जैसे सर्पिणी कोमल होती है, खड्ग की धारा कोमल होती है स्पर्श करने वाला मर जाता है, जैसे नाव जल में वायु से घूमती है, ऐसे अज्ञान की नदी में पवनरूप इंद्रियों ने मुझे दुःख दिया है, हे भगवन्! मैंने ऐसे भी देखे हैं जो सारा दिन मांगते रहने पर भी भोजन मात्र नहीं प्राप्त कर सके और एक ऐसे देखे हैं जिन्होंने इन्द्रादि स्वर्गपतियों के भोग एक दिन में भोग लिये हों, जिसको दिनभर मांगते

रहने से भोजन नहीं मिला और जिसने एक दिन में सब भोग लिये, इन दोनों को तुल्यरूप से भस्म होते देखा है। दोनों के नाश होने में कुछ भी विशेषता नहीं, इन्द्रियों के बन्धन में बार बार जन्मते और मरते हैं, अज्ञानी कभी शान्ति को नहीं प्राप्त होता और यदि कहो कि तुम सुखी जान पड़ते हो तो बताओ तुम्हें क्या दुःख है, तो हे भगवन्! यह दुःख देखने में नहीं आता, जैसे चक्रवर्ती राजा हो सिर पर चमर डुलाया जा रहा है, अन्तरात्मा में आध्यात्मिक ताप से जल रहा है, बाहिर से सुखी जान पड़ता है, ऐसे ही मैं भी देखने मात्र में सुखी दृष्टि आता हूँ और अन्दर आग लगी हुई है इंद्रियों के झरोखों में से राग द्वेष रूप ज्वाला की लपटें निकल रही हैं, हे भगवन्! ब्रह्मा के लोक में बड़े सुख देखे परन्तु वहां भी दुःखी रहा हूँ, क्योंकि क्षय और अतिशय वहां भी रहते हैं, जिससे वहां के निवासी भी जलते हैं और इन इंद्रियों का शस्त्र से भी कठिन घाव होता है, वह क्या है कि संसार की नाना प्रकार की विषमता यह इंद्रिय दिखाते हैं इनमें सदा राग द्वेष रहता है, इसलिये मैं बहुत ही जलता रहा हूँ, इसलिये मुझे कोई ऐसा सदुपाय कहो कि जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो, हे भगवन्! वह कौनसा सुख है जिसके प्राप्त हो जाने पर मनुष्य को पुनः दुःख के दर्शन न हों और जिसका कभी नाश न हो जो आदि अन्त से रहित हो, वही कहिये, उसके पाने में यदि कष्ट हो तो मैं यत्न करूंगा परन्तु किसी प्रकार मुझे प्राप्त हो, इंद्रियों ने मुझे बड़ा कष्ट दिया है, यह इंद्रिय गुणरूप वृक्ष का नाश करती है शुभगुणों को जलाने के लिये आग है, विचार, धैर्य, सन्तोष और शान्ति इन गुणों को जलाने वाली यह आग है, हे भगवन्! इन्होंने मुझे अत्यन्त दुःख दिया है। जैसे मृग का बच्चा शेर के वश में पड़ जाय तो दुःख पाता है क्योंकि सिंह उसका मर्दन कर डालता है, इसी प्रकार इंद्रियों ने मेरा मर्दन किया है, हे भगवन्! जिसने इंद्रियों को वश में किया है उसका सब देवता भी पूजन करते हैं और दर्शन की इच्छा करते हैं और जिसने मन को वश में नहीं किया उसको दीन जानते हैं, जिस पुरुष ने इंद्रियों को वश में किया है वह

सुमेरु पर्वत की नाईं अपनी गंभीरता में स्थित हैं और जो इंद्रियों के वश में हैं, वह तृण की नाईं तुच्छ हैं और जिसको इंद्रियों के अर्थ (विषयों) में सदा तृष्णा रहती है, वह पशु है, उसको धिक्कार है, हे भगवन्! जो बड़ा महन्त भी है परन्तु इंद्रिय उसके वश में नहीं तो वह महानीच है, अतः अवश्य ही इस महान् आपत्ति से मुक्त होने का कोई उपाय बतलाईये, हे भगवन्! इन्द्रियों ने मुझे बहुत बड़ा दुःख दिया है, जैसे घोर शून्य वन में किसी मुसाफिर को डाकू लूटकर मारपीट कर फैंक कर चले जायँ ऐसे ही इंद्रियों ने मुझे लूट लिया है, इंद्रिय समूह एक सर्पिणी है और तृष्णा इसमें विष है, इसमें सम्पूर्ण संसार मोहित जान पड़ता है, कोई विरले ही भाग्यवान् इस सर्पिणी के विष से बचे होंगे, यह इंद्रिय अति दुष्ट हैं, अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं दूसरे को कुछ साहाय्य नहीं देते, ये तुच्छ और जड़ हैं जैसे बिजली का चमत्कार होता है, किंचित् मात्र प्रकाश दिखाकर छिप जाती है, ऐसे इन्द्रियों का सुख क्षण मात्र दिखायी देता है क्षण के बाद लुप्त हो जाता है जब तक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है तब तक सुख प्रतीत होता है, जब इनका वियोग हुआ तो दुःख उत्पन्न होता है, क्योकि तृष्णा एक सेना है, उसमें इन्द्रियों के भोग उन्मत्त हस्ती हैं उसमें तृष्णारूप जंजीरं है और इंद्रियरूप रथ हैं और नाना प्रकार के विषय वहां घोड़े हैं और संकल्प विकल्परूप खड्ग हैं उसके धारण करने हारा अहंकार है और यह जो क्रियाएं होती हैं, अहंकार सहित वह शस्त्रों के समूह हैं, हे भगवन्! जिस पुरुष ने इस सेना को नहीं जीता वह मोहरूप अन्धकूप में गिरा है और कष्ट पाता है और जिसने जीता है वह परम सुख को प्राप्त होता है, हे भगवन्! यह इंद्रिय कैसे हैं कि अहंकार रूप राजा को भोगेच्छारूप खाई में डाल देते हैं, उससे निकलना कठिन हो जाता है जिस पुरुष ने इनको जीता है उसकी त्रिलोकीमें जय होती है, और जिसने नहीं जीता वह महादीनता को प्राप्त होता है और जन्म जन्मान्तर को पाता है इन इंद्रियों में रजोगुण और तमोगुण रहता है जब तक मन की रजोवृत्ति तथा तमोवृत्ति है तब तक जलाते हैं, जब इनका

अभाव हो तब शान्ति मिले, यह निर्णय करके देखा है कि इंद्रिय तप करने से भी वश में नहीं होते, न यज्ञ से, न व्रत से, न तीर्थ से वश में होते हैं, न किसी औषध से और न कि किसी अन्य उपाय से वश में आते हैं, एक केवल सत् पुरुष ज्ञान के सागर ब्रह्मनिष्ठ महात्मा के संग से ही इन्द्रियों पर विजय पा सकता है अन्यथा नहीं इसलिये मैं आपकी शरण में हूँ मुझे कृपा करके आपत्ति के समुद्र से निकाल कर पार लगाओ मैं डूब रहा हूँ, इस संसार समुद्र में अति दीन हो रहा हूँ, इसलिये तुम्हारी शरण में आया हूँ, आप ही मुझे पार लगाइये, आपकी महिमा सत् पुरुषों से भी सुनी है, कृपा कीजिये हे भगवन्! बड़ी दीर्घ आयु पर्यन्त दिव्य भोग भोगने से कोई शांति नहीं पा सकता, बड़े सुख दुःख के समान हैं, आकाश में उड़नेवाले भी हैं वे भी इंद्रियों को वश में नहीं कर सकते इसलिये दीन दुःखी रहते हैं, अगर ऐसा पुरुष भी कोई निकल पड़े जो फूल की नाईं महा मत्त हाथीं के दांतों को चूर्ण कर दे तो कोई भी बड़ी बात नहीं मैं मानता हूँ, परन्तु इन्द्रियोको अन्तर्मुख करना महाकठिन काम है। हे महामुने! इतना समय मैं जलता रहा हूँ, आध्यात्मिक ताप से संतप्त हूँ, कृपा करके मुझ शरणागत को निकालो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विद्याधरवैराग्यवर्णनं
नाम एकपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः ॥१५१॥

द्विपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५२

संसाररूपवृक्षवर्णनम् ।

भुशुंड बोले—हे ऋषिवर! जब इस प्रकार विद्याधर ने मेरे आगे प्रार्थना की तब मैंने कहा—हे अंग! तुम धन्य हो अब तुम जगे हो जैसे कोई पुरुष अन्धें कुएं में पड़ा हो और उसकी इच्छा हो कि इसमें निकलूं तो जानिये कि वह निकलेगा, इसलिये तुम धन्य हो, हे विद्याधर! मैं उपदेश करता हूँ तुम उसको स्वीकार करो अर्थात् समझो और उस

उपदेश के अनुसार व्यवहार करो और स्मरण रक्खो कि मेरी बातों में संशय न करना, मैं तुम्हें सार वचन कहता हूँ और मैं जानता हूँ कि तू शीघ्र ही इनको अंगीकार करेगा, जैसे उज्ज्वल आरसी बिना यत्न के प्रतिबिंब को धारण करता है, ऐसे ही मेरे वचन तेरे अन्दर प्रवेश करेंगे, जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है, उसका सन्त उपदेश करें अथवा न करें उनके सहज वचन ही उपदेश हो लगते हैं, जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंब को यत्न बिना ग्रहण करता है, ऐसे ही तू मेरे वचनों को ग्रहण (धारण) कर लेगा, तब तेरे दुःख नाश हो जायेंगे और परमानन्द को प्राप्त होगा जो कि अविनाशी सुख है और आदि अन्त से रहित है, इन्द्रियों के सुख आगमापायी हैं वे दुःख के तुल्य हैं, इनसे रहित परम सुख है, हे विद्याधरों में श्रेष्ठ! जो कुछ तुझे सुखरूप दृष्टि आवे उसी का त्याग कर तब परम सुख तुझे प्राप्त होगा, सब दुःखों का मूल अहंभाव है, जब अहंकार नाश हुआ तो शान्ति होगी, संसार का बीज अहंकार है और संसार मृगतृष्णा के जलवत् है, अन होता प्रतीत हो रहा है, तब तक संसार नष्ट नहीं होता, जब तक अहंतारूप संसार का बीज है, जब अहंतारूप बीज नष्ट हो जाय तब संसार भी निवृत्त हो जाता है और संसार वृक्ष हैं, सुमेरु आदिक पर्वत उसके पत्र हैं, तारागण उसके कली फूल हैं और सप्त समुद्र उसका रस हैं जन्म मरण उसके साथ बल्ली हैं, सुख दुःख उसके फल हैं और आकाश दिशाएं पाताल आदि को धारण करके स्थित हुआ है और अहंकार रूप पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है, अहंकार उसका बीज है और मिथ्या भ्रममात्र उत्पन्न हुआ है, असत् और सत् की नाईं स्थित हुआ है, इसलिये अहंकार बीज का नाश करो, निरहंकार रूप अग्नि से इसके जलावो, तब अत्यन्ताभाव होगा, यह भ्रम से भय को देता है, जैसे–जेवरी में सर्प भ्रम से भय देता है, इसलिये निरहंकार रूप अग्नि से इसका नाश करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे संसारवृक्षवर्णनं नाम द्विपंचाशदधिकशततमः सर्गः ।।१५२।।

त्रिपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५३

संसाराडंबरवर्णनम् ।

भुशुंड ने कहा—हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है सुन, नित्य नियम के साथ अपनी शारीरिक मानसिक चेष्टाओं को स्वाधीन करता हुआ मनुष्य पूर्ण संयम के साथ प्रतिदिन ब्रह्मविद्या का श्रवण करे, तदनुसार अर्थात् जैसे श्रवण किया उसको उसी प्रकार अपने अन्तःकरण में संशय रहित होकर समझ ले बार बार विचार करे, आत्मविचार परमोत्तम साधन है, इस प्रकार ब्रह्मविद्या के श्रवण द्वारा आत्म विचार करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है, उस आत्मज्ञान रूप अग्नि से संसार रूप वृक्ष को जला दो, यह पहिले भी था तो नहीं परन्तु भ्रम से भासता है, मन संकल्प से हुए की नाईं प्रतीत हो रहा है, जैसे चित्रकार पत्थर में कल्पना करता है कि इतनी पुतलियाँ निकलेंगी, वह वहां होती तो नहीं हैं, केवल कल्पना है, ऐसे ही मनरूप कारीगर संसाररूप पुतलियों की कल्पना करता है जब मन का नाश करोगे तब संसार भ्रम मिटेगा, आत्म विचार करके परम पद को प्राप्त करोगे तब तुम्हें अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासेगा अतः अहंता को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ, हे विद्याधर! यह जो संसाररूप वृक्ष है यह अहंतारूप बीज से उत्पन्न हुआ है, उसको जब ज्ञान अग्नि से जलाओ तो फिर यह जगत् उत्पन्न नहीं होता, जब इसको विचार कर देखिये तो अहं त्वं को नहीं पाता, हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या हैं इनके अभाव की भावना करो यही उत्तम ज्ञान है, हे साधो! जब गुरु वचन सुनकर उनके अनुसार उसने पुरुषार्थ किया तब उसको परमोच्चपद की प्राप्ति हुई, ऐसे ही पुरुष की जय होती है, हे विद्याधर! यह संसाररूप एक आडम्बर है, उसके सुमेरु जैसे कई स्तंभ हैं, जिन पर पंक्तिबद्ध रत्न जड़े हुए हैं और वन दिशा पहाड़ वृक्ष कन्दरा वेताल देवता पाताल आकाश इत्यादिक जो ब्रह्माण्ड है, वह उसके ऊपर स्थित है और रात दिन, भूत प्राणी तथा

उनके सार जो घर हैं वह चौपड़ के खाने हैं, कोई जैसा कर्म करता है, उसके अनुसार दुःख सुख भोगता है। सम्पूर्ण प्रपंच क्रिया संयुक्त दिखाई देता है वह भ्रम से सिद्ध है, इसलिये मिथ्या है, जैसे स्वप्न की सृष्टि संकल्प से भासती है ऐसे यह सृष्टि भी भ्रम से भासती है, अज्ञान से रची हुई है, आत्मा के अज्ञान से भासती है और आत्मा के ज्ञान से लीन हो जाती है, तब भी परमात्मतत्व ही है और जब सृष्टि होगी तब भी परमात्मतत्व ही होगा, आगे भी वही था और जो कुछ प्रपंच तुझे दृष्टि आता है वह शून्य आकाश ही है, त्रिगुणमय प्रपंच गुणों का रचा हुआ है अपने स्वरूप के प्रमाद से स्थित हुआ है और आत्मज्ञान से शून्य हो जायगा जब प्रपंच ही शून्य हुआ तब आत्मा और अनात्मा का कहना भी न रहेगा, पीछे जो शेष रहेगा वह केवल शुद्ध परम तत्व है वह तेरा अपना आप है, उसमें स्थित हो और दृश्य का त्यागकर, जो है नहीं न मैं हूँ न जगत् है, जब तू ऐसा होगा तब तेरी जय होगी, आत्मपद सबसे उत्तम है जब तू आत्मपद में स्थित होगा तो सर्वोत्तम होगा, तेरी जय होगी इसलिये आत्मपद में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे संसाराडम्बरवर्णनं नाम त्रिपञ्चशददधिकशततमः सर्गः ॥१५३॥

चतुष्पंचाशदधिकशततमः सर्गः १५४

चित्तचमत्कारवर्णनम् ।

भुशुंड ने कहा—हे विद्याधर! यह प्रपञ्च भी आत्मा का चमत्कार है और आत्मा शुद्ध चेतन है, जिसमें जड़ और चेतन स्थित हैं और सबका अधिष्ठान है, वह सत्तामात्र तेरा अपना आप है, अहं त्वं शब्द अर्थ से रहित है आत्मतत्वमात्र है, हे विद्याधर! तुम इस जड़ और चेतन से अबोधवान् हो जाओ, जब अबोध होगा तो शान्त चिद्घन होगा और यह जो जड़ चेतन है इन दोनों का परमार्थ चेतन से अन्तर रहता है, जैसे

समुद्र के अन्दर बड़वाग्नि रहती है इन जड़ चेतन का जो कारण रूप है वह वही है, उत्पत्ति भी उसी से होती है और नाश भी वही करता है जैसे पवन से अग्नि उत्पन्न होती है और पवन ही से लीन होती है, हे विद्याधर! जब ऐसे जाना कि मैं चेतनरूप भी नहीं और जड़ भी नहीं जब ऐसी भावना हुई तब पीछे जो रहेगा वह तेरा स्वरूप है, जब तेरे अन्दर इन जड़ चेतन दोनों का स्पर्श नहीं हुआ, तब सबके अन्तर जो चेतन है वह ब्रह्म तुझे भासेगा और विश्व भी आत्मा में हुआ नहीं, जैसे सूर्य की किरणों का चमत्कार जलाभास होता है, ऐसे शुद्ध चेतन का चमत्कार विश्व हो भासता है, हे अङ्ग! जैसे–भीत (भित्ति) के ऊपर पुतलियाँ लिखी होती हैं वह भीत से इतर कुछ वस्तु नहीं, चितेरे ने पुतलियाँ लिखी हैं, ऐसे शून्य आकाश में चित्तरूप चितेरे ने विश्वरूप पुतलियाँ कल्पी हैं, वह आत्मरूप भीत से इतर कुछ नहीं, जैसे स्वर्ण में भूषण कल्पित हैं वह स्वर्ण से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मा में अज्ञानी विश्व दीखते हैं वह आत्मा से इतर कुछ नहीं, सब आत्मस्वरूप की संज्ञाएं हैं, ब्रह्म, आत्मा, आकाश देश काल सब उसी तत्व की संज्ञाएं हैं वही शुद्ध चेतन आकाश हैं, जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है उसी तत्व में स्थित हो, यह जगत् ऐसे है जैसे दूर दृष्टि से आकाश में बादल हाथी की शुंड प्रतीत होते हैं, ऐसे यह जगत् है, यह जो अहं त्वं रूप जगत् है अबोध भासता है और बोध से लीन हो जाता है, जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों से जल प्रतीत होता है, जैसे गन्धर्व नगर है, ऐसे यह जगत् है, इसलिये इसका त्याग करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्द्धे चित्तचमत्कारवर्णनं नाम चतुष्पंचाशदधिकशततमः सर्गः ।।१५४।।

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः १५५

सर्गोपसर्गोपदेशवर्णनम् ।

भुशुण्ड बोले–हे विद्याधर! यह स्थावर जङ्गमरूप सब जगत् आत्मासे उत्पन्न हुआ है, आत्मामें ही स्थित है, आत्मा ही विश्व में स्थित है, जैसे–स्वप्न का विश्व स्वप्नवाले में स्थित है, इतर कुछ नहीं और आत्मा किसी का कारण नहीं, क्योंकि जो अद्वैत है, जिसमें दूसरा फुरता नहीं, हे अङ्ग! यदि तू उस पद के पाने की इच्छा करता है तब ऐसा निश्चयकर कि न मैं हूँ न यह जगत् है, जब ऐसा करेगा तो आत्मपद की प्राप्ति होगी, जो देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित है और सर्वत्र वही परमात्मतत्व स्थित है और जगत् का कर्ता संकल्प ही है, क्योंकि संकल्प से उत्पन्न होता है और फिर संकल्प से ही नाश होता है, जैसे पवन से अग्नि उत्पन्न होती और पवन से ही दीपक निर्वाण होता है, ऐसे जब संकल्प बहिमुर्ख फुरता है, तब संसार उदय हो भासता है, जब संकल्प अन्तर्मुख होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है और प्रपंच लय हो जाता है, इसलिये संसार की नाना प्रकार की संज्ञाएं फुरने से होती हैं, स्वरूप में कुछ नहीं, न सत्य है, न असत्य है, न स्वतः है न परतः है, यह सब कल्पनामात्र है, सत् असत् और स्वतः आदि का अभाव हुआ, वहां अहं त्वं कहां प्राप्त किये जायँ, हैं नहीं, क्योंकि वे बालक के यक्षवत् भ्रममात्र हैं, हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट हो गये वहां जो सत्ता है, वह परमपद है और जहाँ जगत् है वहां विचार से लीन हो जाता है और वास्तव पूछो तो ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं नाममात्र दो हैं, जैसे घट है और कुम्भ है परन्तु भ्रम से नानात्व भासता है जैसे समुद्र में आवर्त तरंग उठते हैं, वह जल से इतर कुछ नहीं और पवन के संयोग से आकार भासते हैं, ऐसे आत्मा में जगत् इतर कुछ नहीं, परन्तु संकल्प के फुरने से नाना प्रकार का जगत् भासता है, हे अंग! संकल्प के साथ मिलकर चित्तशक्ति

जैसी भावना करता है ऐसा रूप अपना देखता है, स्वरूप से इतर कुछ नहीं, परन्तु भावना से और का और देखता है, जैसे शुद्ध मणि के निकट कोई रंग रखिये ऐसा रूप भासता है और मणि में तो रंग का अभाव है, ऐसे चित्त शक्ति में कुछ हुआ नहीं और हुए की नाईं स्थित है, इसलिये अपने अपने स्वरूप की भावना करो, और जड़ चेतन को छोड़कर शुद्ध चेतन में स्थित हो, जब ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होगा, तब मेरे लिये उत्थान में भी विश्व अपना स्वरूप प्रतीत होगा, हे विद्याधर! यह जगत् भी आत्मा से भासता है जैसे स्थिर समुद्र में तरंग फुरते हैं, वह कारण रूप जल बिना नहीं है, ऐसे कारण रूप ब्रह्म के बिना जगत् नहीं, परन्तु वह ब्रह्मसत्ता कैसी है, अकर्ता रूप है, अद्वैत है, अच्युत है, इसीलिये कहा है जो अकर्ता है और जगत् अकारण रूप है, यदि जगत् अकारणरूप है तो न उत्पन्न होता है न नाश होता है, मरुस्थल के जलवत् है, इसी से कहा है कि जगत् कुछ वस्तु नहीं, केवल अज अच्युत शान्तरूप आत्मतत्व ही अखंडित स्थित है, शिला कोशवत् अचेत चिन्मात्र है, जिसको चिन्मात्र की अन्तर्भावना नहीं, उस मूर्ख से हमारा क्या है, हे साधो! परमार्थ से कुछ बना नहीं और जहां जहां यह मन है, वहां वहां अनेक जगत् हैं, तृण सुमेरु आदिक जो हैं इन सबमें जगत् है, जो विचारकर देखो तो वही रूप है अपर कुछ नहीं, जैसे स्वर्ण के जानने से भूषण भी स्वर्ण भासते हैं, ऐसे केवल सत्ता समान पद एक अद्वैत है, इतर कुछ नहीं भिन्न भिन्न संज्ञा भी वही है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सर्गोपसर्गोपदेशो नाम पंचपंचाशदधिकशततमः सर्गः ।।१५।।

षट्पंचाशदधिकशततमः सर्गः १५६

यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशवर्णनम् ।

भुशुंड ने कहा–हे विद्याधर! जब यह आत्मपद को प्राप्त होता है तब इसकी अवस्था ऐसी होती है कि यदि नग्न शरीर हो और उस पर बहुत ही बड़ी शस्त्र वर्षा हो अर्थात् इतना अनन्त दुःख हो तो भी वह दुःखी नहीं होता और अति सुंदरी अप्सराएं कण्ठ से आकर मिलें उनके मिलन सुख से हर्षवान् नहीं होता, दोनों अवस्थाओं में तुल्य रहता है, हे विद्याधर! तब तक यह पुरुष आत्मपद का अभ्यास करे जब तक संसार से सुषुप्ति की नाईं नहीं होता, अभ्यास ही से आत्मपद को प्राप्त होगा जब आत्मपद की प्राप्ति हुई, तब पांचभौतिक शरीर के ज्वर स्पर्श न करेंगे, यद्यपि शरीर में उनकी प्राप्ति हो भी जाये, तो भी अभ्यन्तर प्रवेश नहीं कर सकते, केवल शांतपद में स्थित रहता है, विद्यमान होने पर भी स्पर्श नहीं कर सकते। जैसे जल में कमल को स्पर्श नहीं होता, हे देवपुत्र! जब तक देह आदिक में अभ्यास है तब तक दुःख सुख स्पर्श करते हैं, क्योंकि स्वरूप से विचलित होता है, जब आत्मसाक्षात्कार होगा तब सब प्रपंच भी आत्मरूप भासेगा, हे विद्याधर! जैसे कोई पुरुष विषपान करता है तब उसको जलन और खांसी होती है, यह अवस्था विष की है, विष से इतर कुछ नहीं, परन्तु नाम संज्ञा हुई है, न विष जन्म लेती है न मरती है और धूप खांसी उसमें दीखती है ऐसे आत्मा न जन्मता है न मरता है, गणों के साथ मिलकर अवस्था को प्राप्त हुआ दृष्टि आता है, आत्मा जन्ममरण से रहित है, गण अथवा संकल्प के साथ मिलने से जन्मता मरता प्रतीत होता है, अन्तःकरण और देह इन्द्रियादिक भिन्न भिन्न भासते हैं, हे साधो! यह जगत् भ्रम से भासता है जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वह इस जगत् को अपने पुरुषार्थ से गोपद की नाईं लांघ जाता है, (पार कर जाता है) जो अज्ञानी हैं उनको अल्प दुःख भी समुद्र के समान हो जाता है, इसलिये आत्मपद पाने का यत्न करो, जिसके जानने से

संसार समुद्र तुच्छ हो जाय वह आत्मतत्व कैसा है, जो सबमें अनुस्यूत है सर्वत्र व्याप्त है और सबसे अतीत है पुनः कैसा है कि जिसके जानने से अन्तर शीतल हो जाता है, सब ताप नष्ट हो जाते हैं, हे साधो! फिर उसका त्याग करना अविद्या है, तथा बड़ी मूर्खता है, हे साधो! यह पदार्थजात सब ब्रह्मस्वरूप ही है यदि सब ब्रह्मरूप ही है तो मन अहंकार आदिक कलंक कैसा सब वही तो हैं, किसी को कुछ सुख दुःख नहीं, हे विद्याधर! जब आत्मपद को जान लिया तो अन्तःकरण भी ब्रह्मस्वरूप ही प्रतीत हों यदि कहो कि संकल्प से यह भिन्नता है, तो नहीं संकल्प के होते भी ब्रह्मरूप भासेंगे, इसलिये निःसंकल्प होकर स्थित रहो कि न मैं हूँ न यह जगत् है न इदं है, इन शब्दों और अर्थों से रहित होकर स्थित रहो कि सब संशय मिट जायँ, हे विद्याधर! जब तू ऐसा निरहंकार होगा और निःसंकल्प होगा तब उत्थान काल में भी सब आत्मा भासेगा, बुद्धि बोध लज्जा लक्ष्मी स्मृति यश कीर्ति इत्यादिक जो शुभ अवस्थाएँ हैं, वे सब आत्मबुद्धि रूप रहेंगी, इनके प्राप्त हुए भी केवल परमार्थ सत्ता से इतर न भासेगा, जैसे अन्धकार में सर्प के पैर की खोज करो तो कुछ भी प्रतीत न होगा क्योंकि है ही नहीं, ऐसे ही तुझे सब अवस्थाएं आत्मरूप हो जाने के कारण कुछ न प्रतीत होंगी, सब आत्मा ही भासेगा, जितने भावरूप पदार्थ स्थित हैं, अभावरूप हो जायेंगे, हे अंग! जिस पुरुष ने विचार कर आत्मपद पाने का प्रयत्न किया है वह पायेगा और जो कहता है कि मैं मुक्त हो रहूँगा, मुझ पर दया करेंगे वह भी अपने साधनानुसार सफल होगा और जिस पुरुष ने कदाचित् मुक्त नहीं होना क्योंकि यत्न शून्य है तो वह पुरुष प्रयत्न बिना कदाचित् मुक्त न होगा, आत्मस्वरूप में न कोई दुःख है, न किसी गुण के साथ मिला हुआ सुख है, केवल शान्त रूप है, किसी से किसी को कुछ सुख दुःख नहीं, न सुख है, न दुःख है, न कोई कर्ता है न भोक्ता है, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेश वर्णनं नाम षट्पञ्चादधिकशततमः सर्गः ॥१५६॥

सप्तपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५७

इन्द्रोपाख्यानेत्रसरेणुजगद्वर्णन ।

भुशुण्ड ने कहा—हे विद्याधर! जैसे कोई कलना करे कि आकाश में और आकाश स्थित हो तो मिथ्या है, ऐसे आत्मा में जो अहंकार का स्फुरण है मिथ्या है, जैसे आकाश में अपर आकाश कुछ वस्तु नहीं, परमार्थ तत्व ऐसा सूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है, केवल आत्मत्वमात्र है और स्थूल ऐसा है, जिसमें सुमेरु आदि भी सूक्ष्म अणुरूप हैं, द्वैत से रहित चेतन केवल शान्त रूप है, गुण और तत्व क्षोभ से रहित है, हे देवपुत्र! अपना अनुभव रूप चन्द्रमा है और अमृत स्रवण करने वाला है, हे अंग! जितने कुछ दृश्य पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे हुए कुछ नहीं, हे अंग! आत्मरूप अमृत की भावना करो कि जन्म मृत्यु के बंधन से मुक्ति मिले, जैसे आकाश में दूसरे आकाश की कल्पना मिथ्या है, ऐसे निराकार चिदात्मा में अहं मिथ्या है, जैसे आकाश अपने आप में स्थित है, ऐसे आत्म सत्ता अपने आप में स्थित है, अहं त्वं आदिक से रहित है, जब अहं का उत्थान इसमें होता है तब जगद्विस्तार होता है जैसे—जल में द्रवता से तरंग प्रसार करते हैं ऐसे अहंसे जगत् प्रसार करता है और जैसे वायु फुरणे से रहित हुई आकाशरूप हो जाती है, ऐसे संवित् उत्थान अहं से रहित हुई तब आत्मरूप हो जाती है, जगद्भ्रम मिट जाता है, फुरणे से जगत् फुर आया है, वास्तव कुछ नहीं, ज्ञानवान् को आत्मा ही भासता है, देश, काल, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्ति, सब आकाशरूप है, ब्रह्मरूप चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, जैसे बादलों के संयोग से आकाश धूम्र भाव को प्राप्त होता है ऐसे प्रमाद से संवित् दृश्य भाव को प्राप्त होती है, परन्तु अपर (अन्य) कुछ नहीं होती, जैसे तरंग से जल कुछ और नहीं होता, जैसे लकड़ी काटने से कुछ अन्य नहीं हो जाती, ऐसे द्रष्टा से दृश्य भिन्न नहीं होता, जैसे केले के स्तंभ में पत्र बिना अन्य कुछ

नहीं निकलता, पत्र शून्यरूप है, ऐसे क्रूररूप जगत् भासता है, परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ शून्य रूप है। सिर, भुजाएँ, नेत्र, चरण आदिक नाना प्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं, परन्तु सब शून्यरूप केले के पत्रों की नाईं भासते हैं, सब असाररूप हैं, हे विद्याधर! चित्त में राग रूप मलीनता है, जब वैराग्यरूप मार्जनी (झाडू) से झाड़ दी जाय तब इसका चित्त निर्मल हो, जैसे कंधे पर चित्र लिखे होते हैं, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, देवता मनुष्य नाग दैत्य आदिक सब जगत् संकल्प रूप चित्तेरे ने मूर्ति लिखी है, स्वरूप के विचार से निवृत्त हो जाती हैं, जब स्नेह रूप संकल्प फुरता है, तब भाव अभाव रूप जगत् विस्तार को पाता है, जैसे बांस से अग्नि निकलकर बांस को ही दग्ध करती है, ऐसे स्नेह इसी से उत्पन्न उसी को खाते हैं, आत्मा में जो देश काल पदार्थ भासते हैं, यही अविद्या है, पुरुषार्थ से इसका अभाव (नाश) करो, दो भाग साधुसंग और कथा श्रवण में व्यतीत करो, तृतीय भाग में शास्त्र का विचार करो, चतुर्थ भाग आत्म ज्ञान का आप ही अभ्यास करो, इस उपाय से अविद्या नष्ट हो जायेगी और अशब्द अरूप पद की प्राप्ति होगी, विद्याधर बोला हे मुनीश्वर! चार भाग जो उपाय से अशब्द पद प्राप्त होता है, वह सब काल क्या है? नाम अर्थ के अभाव हुए शेष क्या रहता है? भुशुण्ड बोला—हे विद्याधर! संसार समुद्र को तरने के लिये, ज्ञानवान् का संग करना चाहिये जो निर्वैर महापुरुष हैं, उनकी भली प्रकार सेवा करना परम साधन है, उससे अर्थात् उनके संग से अविद्या का आधा भाग नष्ट होगा, तीसरा भाग मनन से और चौथा भाग अभ्यास से नष्ट होगा और जो यह उपाय न कर सके तो इस युक्ति से चलो कि जिस वस्तु में चित्त अति आसक्त हो और उस वस्तु के सेवन से साफ नुकसान होता दीखता हो उसका यत्न से त्याग करे, उससे एक भाग अविद्या इस प्रकार नाश होगी, तीन भाग शनैः शनैः नष्ट होगी साधुसंग और सच्छास्त्र विचार तथा अपना यत्न हो तो अविद्या एक ही बार नष्ट हो जायेगी यह समकाल कहा जाता है, एक के सेवन से एक

भाग निवृत्त होता है पीछे जो शेष रहता है, उसमें नाम अर्थ सब असत् रूप है, अजर अनन्त एक रूप है, संकल्प के उत्पन्न होनेसे पदार्थ भासते हैं संकल्प के लीन हुए, लीन हो जाते हैं हे विद्याधर! यह जगत् संकल्प से रचा है, जैसे आकाश में सूर्य निराधार स्थित होता है ऐसे देशकाल की अपेक्षा से रहित यह मनोमात्र स्थित है, तीनों जगत् मन के फुरने से फुर आते हैं, मन के लय हुए लय हो जाते हैं, जैसे स्वप्न के पदार्थों का जगने पर अभाव हो जाता है, हे विद्याधर! ब्रह्मरूप वन में एक कल्पवृक्ष है, उसकी अनेक शाखायें हैं, उसकी एक शाखा के साथ जगत् रूप पुरलका फल है उसमें देवता दैत्य, मनुष्य, पशु आदिक मच्छर हैं, वासना रूप रस से पूर्ण मज्जा पहाड़ है, पंचभूत मुख द्वारा उसके निकलने का मार्ग है, ऐसी सुन्दर रचना बनी हुई है उसमें त्रिलोकी का ईश्वर एक इन्द्र हुआ, गुरु के उपदेश से उसका आवरण नष्ट हो गया, तदनन्तर इन्द्र के साथ एक दैत्य का युद्ध होने लगा, इन्द्र अपनी सेना को ले गया, परन्तु इन्द्र का पक्ष नरम रहने लगा यहां तक कि इन्द्र भागा। दशों दिशाओं में घूमा जहां जाये, वहीं दैत्य चले आएं, जैसे पापी पुरुष परलोक में शोभा नहीं पाता ऐसेही इन्द्र को शान्ति नहीं मिली तब अन्त वाहक रूपसे उसने सूर्यके त्रसरेणु में प्रवेश किया, जैसे कमल में भँवरा प्रवेश करे ऐसे प्रवेश किया, वहां युद्ध का वृत्तान्त इसको भूल गया, तब इसने अपने आपको एक मंदिर में बैठा देखा, जैसे निद्रा से स्वप्न सृष्टि भासती है, वहां रत्नों और मणियों से सुशोभित संवित् नगर देखा उसमें इसने प्रवेश किया, वहां पृथ्वी पहाड़ नदियां, चंद्र, सूर्य त्रिलोकी इसको प्रतीत होने लगी, अपने आपको इसने उस जगत् का इन्द्र देखा कि मैं दिव्य भोगैश्वर्य भरे स्थान में इन्द्र होकर स्थित हूं, वह इन्द्र कुछ समय तक वहां रहकर अन्त में शरीर त्याग निर्वाण हुए, जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होता है, तब कुंदनामक उसका पुत्र इन्द्र हुआ और राज्य करने लगा, पुनः उसका एक पुत्र हुआ तब कुन्द इन्द्र शरीर को त्यागकर परम पद को प्राप्त हुआ, उसका पुत्र राज्य करने लगा और फिर उसका पुत्र हुआ इस प्रकार

सहस्रों पुत्र होकर राज्य करते रहे उनके कुल में हमारा यह इन्द्र राज्य करता है, इसलिये यह जगत् संकल्पमात्र है, उस त्रसरेणु में यह सृष्टि है, इसलिये इस जगत् को संकल्प मात्र जानकर इसकी आस्था त्यागो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे इन्द्रोपाख्याने त्रसरेणुजगद्वर्णनं नाम सप्तपंचाशदधिकशततमः सर्गः ।।१५७।।

अष्टपंचाशदधिकशततमः सर्गः १५८

संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनम् ।

भुशुण्ड ने कहा—हे विद्याधर! उनके कुल में पुनः एक महान् इन्द्र हुआ, वह बड़ा श्रीमान् था उसने त्रिलोकी का बहुत राज्य किया और फिर वह भी निर्वाण हुआ, उसका एक पुत्र था जिसको बृहस्पति के वचन से ज्ञान रूप प्रतिभा उदय हुई, तब यह विदित वेद्य होकर स्थित हुआ, यथाप्राप्त में इन्द्र होकर राज्य करने लगा और उसने दैत्यों को जीता एक समय किसी कार्यवश से भीड़ की तंतु में प्रवेश किया वहां इसको नाना प्रकार का जगत् प्रतीत होने लगा, वहां इसको वही इन्द्र की प्रतिमा हुई तब इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं ब्रह्मतत्व को प्राप्त होऊँ, दृश्य पदार्थ की नाईं प्रत्यक्ष देखूं, एकान्त में बैठकर समाधिस्थ हुआ, उसको अन्तर बाहिर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ, उस प्रतिमा के उदय होनेपर एक निश्चय हुआ, कि ब्रह्म ही है और सर्वत्र वही पूजने योग्य है, सब पूजते भी उसी को हैं और सर्व है और सर्व शब्द से रहित है रूप अवलोकन से रहित है और मनन से भी रहित है केवल शुद्ध आत्मपद है और सब ओर से प्राणपद उसीके हैं सर्वशीश और मुख उसीके हैं और सब ओर से उसी के श्रवण हैं और सब ओरसे उसीके नेत्र हैं और सबको आत्मत्व करके स्थित हो रहा है सब इन्द्रिय और सब विषय को प्रकाशित करता है और सब इन्द्रियों रहित है और आसक्त हुआ भी सबको धारण कर रहा है,

निर्गुण है और इंद्रियों के साथ मिलकर गुणों का भोक्ता है और सब भूतों के अन्दर बाहर व्याप रहा है और सूक्ष्म इसलिये दुर्विज्ञेय है, इंद्रियों का विषय नहीं और अज्ञानी को ज्ञान करके दूर है और ज्ञानी को ज्ञान करके निकट है और आत्मत्व करके अनन्त है सर्वव्यापी है और केवल शान्तरूप है जिसमें दूसरा कोई नहीं, घट, पट आदि सब में वही आत्मतत्व भासता है। पर्वत, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, देश, काल वस्तु सब ब्रह्म ही है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, हे विद्याधर! इस प्रकार इन्द्र को ज्ञान हुआ और जीवन्मुक्त हुआ जो कुछ चेष्टा हो वह सब करे परन्तु अन्तःकरण में बद्ध न हो, जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब इन्द्र निर्वाण पद को प्राप्त हुआ, आकाश भी जिसमें स्थूल है उस पद को प्राप्त हुआ, इन्द्र का एक पुत्र जो कि बड़ा शूर वीर था उसने सब दैत्यों को परास्त किया, तब देवलोक सहित त्रिलोक राज्य करने लगा, उसको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ, सत् शास्त्रों के अभ्यास से और गुरु वचनों पर विचार करने से कितना ही समय बीता तब वही भी निर्वाण हुआ, उसका पुत्र राज्य करने लगा, इसी प्रकार कई इन्द्र हुए, उन्होंने वहां राज्य किया और अन्य भी कई प्रकार के व्यवहारों का निरीक्षण करते रहे, उसके कुल में उसका एक पुत्र था उसको यह हमारी सृष्टि अच्छी प्रतीत हुई, वह भी ब्रह्म ध्यान में मग्न हुआ और यहां आकर इस त्रिलोकी का राज्य करने लगा अब तक विश्व का इन्द्र वही है, वे विद्याधर! इस प्रकार विश्व की उत्पत्ति है, वह संकल्प मात्र है, मैंने सब तुम्हें कह दी है, उसको पहिले त्रसरेणु में सृष्टि भासी और फिर उस सृष्टि के एक भीड़ की तंतुमें भासी, तब उसमें कर्म वृत्तान्त जो संकल्प मात्र थे, उनको तत्काल दिखाई दिये, अणुमें अनेक अवस्थाएँ देखीं, हे विद्याधर! वास्तव में कुछ हुई नहीं, जैसे आकाश में नीलता भासती है और होती नहीं, ऐसे यह विश्व है, आत्मा में विश्व का अत्यन्त अभाव है, यह विश्व अहंभाव से उत्पन्न हुआ है, जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनती है, जब अहं का अभाव हुआ तब विश्व कोई नहीं, इस विश्व का बीज अहं है, इसलिये तू ऐसी भावना कर

कि न मैं हूँ न जगत् है, जब ऐसी भावना की जायेगी तब आत्मा ही शेष रहेगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है, ज्यों का त्यों भासेगा, हे विद्याधर! इस मेरे उपदेश को अङ्गीकार कर।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमः सर्गः ॥१५८॥

ऊनषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १५९

भुशुंडविद्याधरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

भुशुण्ड ने कहा—हे विद्याधर! जब अहं का उत्थान होता है, तब आगे सृष्टि बनी भासती है, जब अहं का अभाव हुआ तब विश्व कुछ नहीं भासता, केवल शुद्ध आत्मा ही भासता है, हे विद्याधर! इन्द्र से कहा कि मैं हूँ, उसको सूर्य किरणों के अणु में ऐसे अहं हुआ तब उसमें देखा और कष्ट पाया, यदि उसको अहं न होता तब दुःख न पाता, दुःखरूप वृक्ष का अहंरूप बीज है और आत्म विचार से अहं का नाश होता है जब अहं का नाश होता है तब आत्मपद का साक्षात्कार होता है और आत्मपद के साक्षात्कार हुए परिच्छिन्न अहं का नाश होता है, हे विद्याधर! आत्मरूप एक पर्वत है, उस पर आकाशरूप वन है, उसमें संसाररूप वृक्ष लगे हैं, वासनारूप उनमें रस है, अज्ञानरूप भूमि से उत्पन्न हुआ है और नदियां समुद्र उसकी नाड़ियां हैं और चन्द्रमा तारे उसके फूल हैं, वासनारूप जल के साथ बढ़ता हैं और अहंकार रूप वृक्ष का बीज है, सुख दुःख रूप इसका फल है, इसके अनात्मपद हैं और टास इसका आकाश है और जड़ इसकी पाताल है, तुम इस वृक्ष को ज्ञान रूप अग्नि से जला दो, अहं रूप जो वृक्ष का बीज है, उसका नाश करो, हे विद्याधर! एक खाई है, उसके जन्म मरणरूप दोनों किनारे हैं, उसमें अनात्मत्व रूप जल है और वासना रूप उसमें तरंग हैं और उसमें विश्व रूप बुद्बुदे होते भी हैं और मिटते हैं शरीर रूप उसमें झाग है, अहंकार रूप वायु है, जब वायु होती है तब

तरंग बुद्बुदे सब होते हैं, जब वायु शांत होती है तब केवल स्वच्छ निर्मल ही भासता है, हे विद्याधर! जब वायु हुई तो जल से इतर कुछ न हुआ और यदि न हुई तो भी जल से इतर कुछ भी नहीं जल ही है, ऐसे अज्ञान के होते भी और निवृत्त हुए भी आत्मपद ज्यों का त्यों है, परन्तु सम्यग् दर्शन से आत्मपद भासता है और अज्ञान से जगत् भासता है, अहं का होना ही अज्ञान है, जब वह अहं हुआ तब मैं मम होता है, अहं मम भी नाम संसार का है अहं मम मिट गया तब जगत् का अभाव होता है, अहं के होते दृश्य भासता है और दृश्य में अहं होता है, इसलिये संवेदन (संकल्प) को त्याग कर निर्वाणपद को प्राप्त करो, भुशुण्ड ने कहा हे वसिष्ठजी! इस प्रकार जब मैंने विद्याधर को उपदेश किया तब समाधि में स्थित हुआ, और परम निर्वाण पद को प्राप्त हुआ, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, ऐसे उसका चित्त क्षोभ से रहित शान्ति को प्राप्त हुआ, हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्ध था, मेरे वचनों ने शीघ्र ही उसके हृदय में प्रवेश किया, जब समाधि स्थित हुआ तब मैं उसको बार बार जगा रहा परन्तु वह न जगा, जैसे कोई जलता जलता शीतल समुद्र में जा बैठे और उससे कहा जाय निकलो तो नहीं निकलता, ऐसे संसार ताप से जो जलता था वह आत्मसमुद्र को प्राप्त हुआ, तब अज्ञानरूप संसार के प्रवाह को नहीं जानता। हे वसिष्ठजी! जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसके थोड़े वचन भी बहुत के समान लाभ पहुँचाते हैं और जिसका अन्तःकरण मलिन होता है उसका वचन कुछ असर नहीं करता कुछ लाभ नहीं पहुँचाता, जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता, ऐसे ही गुरु शास्त्र के वचन उसको नहीं लगते, जब विषयों से वैराग्य हो तब जानें कि हृदय शुद्ध हुआ है, हे वसिष्ठजी! जब मैंने विद्याधर को उपदेश दिया तब वह शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त हुआ क्योंकि उसका चित्त निर्मल था, हे मुनीश्वर! आपने जो कुछ मुझसे पूछा था, वह कह दिया जो कि ज्ञान से रहित चिरकाल तक जीते देखा, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ऐसे मैंने काकभुशुंड से पूछा था उसने मुझे कहा और कह कर तूष्णीं हो

गया, जैसे बरसने से मेघ मौन हो जाते हैं ऐसे वह तूष्णीं हुआ और मैं नमस्कार करके उठा और आकाश मार्ग से अपने घर आया, हे रामजी! मेरे और काकभुशुण्ड के संवाद को अब एकादश चौकड़ी युग बीते हैं, हे रामजी! काल का नियम नहीं कि थोड़े काल से ज्ञान उत्पन्न होता है अथवा बहुत काल से उत्पन्न होता है, यह हृदय शुद्धि की बात है जिसका हृदय शुद्ध होता है उसको गुरुकृत उपदेश तथा शास्त्र वचन का अतिशीघ्र असर होता है, जैसे स्वभाव से ही जल नीचे की ओर जाता है, ऐसे ही शुद्ध हृदय में उपदेश शीघ्र ही प्रवेश करता है, हे रामजी! ऐसा उपदेश क्रम से तुझे किया है, उसका तात्पर्य यह है कि स्फुरण का त्याग करो कि न मैं हूँ, न कोई जगत् है तब तो पीछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहेगा, जो सबका अपना आप है, उसका साक्षात्कार तुम्हें होगा, जैसे मलिन दर्पण में मुख नहीं दीखता ऐसे ही आत्मरूप दर्पण अहंकार रूप मल से आच्छादित है, जब इसका त्याग करोगे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और जगत् भी अपना आप प्रतीत होगा कि आत्मा से इतर कुछ नहीं, केवल आत्मत्व मात्र है और अन्य जो कुछ भासता है, उसको मृगतृष्णा के जलवत् जानिये, बन्ध्या के पुत्रवत् मानिये, यह जगत् आत्मा के प्रसाद से प्रतीत होता है, जैसे आकाश में नीलता भासती है, परन्तु है नहीं, ऐसी ही जगत् प्रत्यक्ष भासता है और है नहीं, जैसे जेवरी में सर्प मिथ्या है, ऐसे आत्मा में जगत् मिथ्या है, जब आत्मा का ज्ञान हुआ तब जगत् का अत्यन्ताभाव होगा, केवल आत्मत्व मात्र अपना आप भासेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भुशुण्डविद्याधरोपाख्यान-समाप्तिर्नाम ऊनषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥१५९॥

षष्टयधिकशततमः सर्गः १६०

अहंकारासत्ययोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! अहं वेदना से बिलकुल खाली रहो, संसाररूप वृक्ष का बीज अहं ही है, वासना से शुभ अशुभ रूप कर्म का सुख दुःख फल है और वासना ही से प्रफुल्लित होता है, इसलिये अहंभाव को निवृत्त करो, जब अहं फुरता है, तब आगे जगत् भासता है, जब अहंता से रहित होगा तब जगद्भ्रम मिट जायेगा, वह अहन्ता आत्मज्ञान से नष्ट होती है, आत्मज्ञान रूप खंभानी (पत्थर आदि दूर फेंकने के लिये रस्सी आदि से निर्मित यन्त्र) से उड़ाया हुआ अहंता पाषाण जाना नहीं जायेगा कि कहाँ चला गया और स्वर्ण पाषाण तुझको तुल्य होगा और शरीररूप पत्र के ऊपर अहंता रूप अणु स्थित है, जब ज्ञानरूप वायु चलेगी तो पता न लगेगा कि कहां गया और शरीर रूप पत्र के ऊपर अहंता रूप बर्फ का कण पड़ा है, बोधरूप सूर्य के उदय होने पर पता न मिलेगा कि कहां गया, ज्ञान के बिना अहंता नष्ट नहीं होती, चाहे कीच में रहे शुद्ध स्थान पर रहे, मैदान में रहे पहाड़ में रहे, घर में रहे बाहिर रहे, जल में रहे, स्थल में रहे, स्थूल हो जाये, सूक्ष्म हो जाय, निराकार हो या रूपान्तर को प्राप्त हो, चाहे भस्म रूप होकर चाहे मृत होकर रूपान्तर को प्राप्त हो जाय, चाहे दूर हो चाहे पास हो, जहां रहेगा वहां ही अहंता इसके साथ है, हे रामजी! संसार रूप बट है, उसका बीज अहंता है, उससे सब शाखाएं निकलती हैं, सब अनर्थों का कारण अहन्ता है जब तक अहन्ता है तब तक दुःख नहीं मिटता, जब अहंभाव नष्ट होगा तब परम सिद्धता प्राप्त होगी, हे रामजी! जो कुछ मैंने उपदेश किया है उसको भले प्रकार विचार करो, तथा अभ्यास से उसको अपनाओ, तब संसार रूप वृक्ष का बीज जल जायेगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे अहंकारासत्य योगोपदेश वर्णनं नाम षष्टयधिकशततमः सर्गः ॥१६०॥

एकषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६१

विराटात्मवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! संसार संकल्प मात्र सिद्ध हैं, भ्रम से उदय हुआ है, आत्मस्वरूप में सृष्टि वसती है, कई लीन होती हैं, कई उत्पन्न होती हैं, कई उड़ती हैं, कहीं जाकर इकट्ठी हो जाती हैं कहीं भिन्न भिन्न उड़ती हैं, वह मुझको प्रत्यक्ष भासती है, वह उड़ती जाती हैं, तुम भी देखो आकाश रूप है और आकाश ही से मिलती हैं, जैसे केले का वृक्ष देखने मात्र सुन्दर है और आकाशरूप है, पुनः कैसा है, जैसे जल में पहाड़ का प्रतिबिंब पड़ता है और हिलना भासता है, ऐसे यह जगत् है। रामजी बोले–हे भगवन्! तुम कहते हो प्रत्यक्ष सृष्टि उड़ती मुझको भासती हैं तू भी देख, यह तो मैं कुछ नहीं समझा क्या कहते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अनेक सृष्टियाँ उड़ती हैं सुनिये, पांचभौतिक शरीर में प्राणस्थित है और प्राण में चित्त स्थित है उस चित्त में अपनी अपनी सृष्टि है, जब यह पुरुष शरीर का त्याग करता है, तब लिंग शरीर जो वासना और प्राण वायु है वे उड़ते हैं, उस लिंग शरीर में विश्व है, वह सूक्ष्म दृष्टि से मुझको भासता है, हे रामजी! आकाश की जो वायु है, जिसका रूप रंग कुछ नहीं, वही वायु प्राणों के साथ मिलकर मुझे प्रत्यक्ष दिखाई देती है, इसी का नाम जीव है, स्वरूप से न कोई आता है न जाता है परन्तु लिंग शरीर के संयोग से अपने आपको आता जाता देखता है और जन्म लेता तथा मरता देखता है, अपनी वासना के अनुसार आत्मा में विश्व देखता है अन्य बना कुछ नहीं, यह वासना मात्र सृष्टि है, जैसे वासना होती है ऐसे विश्व भासता है, हे रामजी! यह पुरुष आत्मस्वरूप है, परन्तु लिंग शरीर के मिलने से इसका नाम जीव हुआ है और आपको परिच्छिन्न जानता है, वास्तव से ब्रह्मस्वरूप है, देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित वह ब्रह्म है, उसके प्रमाद से अपने आपको कुछ मानते

हैं (इसी का नाम लिंग शरीर है), जैसे घटाकाश भी महाकाश है परन्तु घट से खप्पर से परिच्छिन्न हुआ है, ऐसे यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है, अहंकार के संयोग से जीव परिच्छिन्न हुआ है, जैसे घट को एक स्थान से उठाकर स्थानान्तर में रक्खा जाय तो क्या वस्तु है जो ले जाई जाती है? आकाश तो न कहीं गया न आया है, खप्पर से आता जाता है, ऐसे आत्मा अखंडरूप है, परन्तु प्राण से चित्त से चलता भासता है, जब अहंकार रूप चित्त नष्ट हो, तब अखंड रूप हो, जब तक अहंकार रूप खप्पर नहीं फूटता तब तक जगद्भ्रम दीखता है और वासना से भटकता फिरता है, वासना से सृष्टि अपने अपने चित्त में स्थित है, जब शरीर का त्याग करता है तब आकाश में उड़ता है, प्राणवायु उड़कर उस शून्यरूप वायु में जा मिलती है जो आकाश में है, वहाँ इसको अपनी वासना के अनुसार सृष्टि भास आती है, अपनी सृष्टि को लेकर इस प्रकार उड़ता है जैसे वायु गन्ध को ले जाती है, ऐसे यह वासना रूप सृष्टि को ले जाते हैं वे उड़ते हुए मुझे सूक्ष्म दृष्टि से प्रतीत होते हैं, हे रामजी! स्थूल दृष्टिकारक लिंग शरीर नहीं भासता, सूक्ष्म दृष्टि से देखता है, जिस पुरुष को लिंग शरीर देखने की सूक्ष्म दृष्टि है और ज्ञान से रहित है वह मेरे मत में मूर्ख पशु हैं, हे रामजी! जब यह पुरुष वासना का त्याग करता है अर्थात् मैं हूँ इस होना रूप अहंकार का त्याग करता है तब आगे विश्व नहीं दिखाई देता केवल निर्विकार ब्रह्म भासता है, उसके प्राण नहीं उड़ते, वहां ही लीन हो जाते हैं, क्योंकि उसका चित्त अचित्त हो जाता है, इसलिये नहीं उड़ते जब तक अहंकार का संयोग है तब तक विश्व इसके चित्त में स्थित है, जैसे बीज में वृक्ष स्थित होता है, जैसे तिलों में तेल स्थित होता है, ऐसे इनके हृदय में विश्व स्थित है, जैसे मृत्तिका में (वासन) बड़े छोटे हों, जैसे लोहे में सूई खड्ग हो, जैसे बीज में वृक्ष भाव चेतन अथवा जड़ हो ऐसे हे रामजी! यह संकल्प कलना में भेद है, स्वरूप से कुछ नहीं ऐसे यह जगत् है, हे रामजी! विश्व संकल्प मात्र है क्योंकि दूसरी अवस्था में नाश हो जाता है, यह जाग्रत जो तुझको

भासता है सब मिथ्या है जब स्वप्न आया तब जाग्रत नहीं रहती और जाग्रत आयी तब यह स्वप्न नाश हो जाता है। जब मृत्यु आती है तब सृष्टि का अत्यन्त अभाव हो जाता है और देशकाल पदार्थ सहित वासना के अनुसार अन्य सृष्टि भासती है, हे रामजी! यह विश्व कैसा है, जैसे स्वप्न नगर हो ऐसा है, जैसे संकल्प पुर हो ऐसे यह सब संकल्प उड़ते फिरते हैं, सृष्टियां कई परस्पर मिलती हैं, कई नहीं मिलती परन्तु सब संकल्परूप भ्रम से अपर का अपर भासता है, जैसे कोई पुरुष बड़ा होता है और छोटा भासता है और छोटे का सा बड़ा प्रतीत होता है, जैसे हस्ती के पास दूसरे पशु तुच्छ प्रतीत होते हैं और चींटी के पास अन्य बड़े भासते हैं, ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको बड़े पदार्थ देश काल संयुक्त विश्व तुच्छ भासता है असत् जान पड़ता है और जो अज्ञानी है उसको संकल्प सृष्टि बड़ी होकर भासती है, जैसे पहाड़ बड़ा भी होता है परन्तु जिसकी दृष्टि से दूर है उसको महा लघु तुच्छ जैसा प्रतीत होता है और चींटी के निकट तुच्छ मिट्टीका ढेला पहाड़ के समान प्रतीत होता है, इस प्रकार ज्ञानी की दृष्टि से यह जगत् है, इससे बड़ा जगत् भी उसको तुच्छ भासता है और अज्ञानी को तुच्छ रूप भी बड़ा भासता है। हे रामजी! यह जगत् भ्रम से सिद्ध हुआ है, जैसे भ्रम से सीपी में चांदी भासती है और जेवरी में सर्प भासता है, ऐसे आत्मा के प्रमाद से विश्व भासता है आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जैसे निद्रा दोष से पुरुष अपने अङ्ग भूल जाते हैं और जगने पर सब यथास्थान प्रतीत होते हैं, ऐसे ही अविद्या निद्रा से जब पुरुष सोया हुआ जगता है। तब उसे विश्व अपना आप दिखाई देता है, जैसे स्वप्न से विश्व को अपना ही आप देखता है ऐसे यह विश्व अपना आप प्रतीत होगा, हे रामजी! जब निद्रा में यह पुरुष सोया होता है तब शुभ अशुभ विश्व में राग द्वेष कुछ नहीं होता और जगता है तब इष्ट में राग होता है अनिष्ट में द्वेष होता है जब तक इसको विश्व में हेयोपादेय बुद्धि है तो यदि सर्वज्ञ है तो भी मूर्ख है, हे रामजी! जब यह पुरुष जड़ हो जावे तब कल्याण हो वह जड़ होना यही है कि दृश्य से रहित आत्मा में स्थित हो वह आत्मा चिन्मात्र है, आत्मा

से इतर जो कुछ करता है सत् अथवा असत् जानता है, तब तक स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती जब संवित् फुरणे से रहित हो तब स्वरूप का साक्षात्कार हो, इसलिये फुरणे का त्याग करो और यह स्थावर जंगम जगत् जो तुझको भासता है, वह सब ब्रह्म स्वरूप है जब तुम ऐसा निश्चय करोगे तब सब विवर्त का अभाव हो जायगा, आत्मपद ही शेष रहेगा, राम बोले– हे भगवन्! यह जो तुमने कहा उसका (उस जीव का) स्वरूप क्या है और जीव आकार को कैसे ग्रहण करता है और इसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है और इसके रहने का स्थान कौनसा है कहिये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शुद्ध जो परमात्मतत्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है, उसमें चैत्योन्मुखत्व हुआ, जो मैं हूँ इस प्रकार जो चित्कला ज्ञानरूप स्फुरण हुई और उसको चित्त का सम्बन्ध हुआ जो चित्त का संयोग हुआ उसका नाम जीव है, वह जीव न सूक्ष्म है न स्थूल है न शून्य है, न अशून्य है न थोड़ा है न बहुत है, केवल आत्मत्व मात्र है और शुद्ध है, न अणुरूप है न स्थूल है अनन्त चेतन आकाश रूप है, उसको जीव कहते हैं स्थूल का स्थूल वही ही है, सूक्ष्म का सूक्ष्म वही है, अनुभव चेतन सर्वगत रूप वह जीव है उसमें वास्तव शब्द कोई नहीं जो कोई शब्द है वह प्रतियोगी के साथ मिलकर हुआ है और जीव अद्वैत है, जो अद्वैत है उसका प्रतियोगी कैसे हो, यह जीव का स्वरूप है, चैत्य के संयोग से जीव हुआ और जीव का अधिष्ठान परमात्मतत्व है, चेतन आकाश है, निर्विकल्प है, चैत्य से रहित शुद्ध चेतन है उसमें जो संवित फुरी है उसका नाम जीव है, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म है, स्थूल से स्थूल है सर्वबीज है, इसी को विराट कहते हैं और शरीर उसका मनोमय है, आदि जो परमात्मतत्व से फुरा है और अन्य अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, अर्थात् परिच्छिन्नता को नहीं प्राप्त हुआ, अपने आप को सर्वात्मा जानता है, इसका नाम विराट है, प्रथम शरीर उसका मनोमात्र है और शुद्ध प्रकाशरूप है, राग द्वेष रूप मल से रहित है और अनन्त आत्मा है सब मन कर्मों और देहों का बीज है और सब में व्याप्त हो रहा है, सब जीवों का अधिष्ठाता है, उसी के

संकल्प से यह जीव रचे गये हैं, पांच ज्ञानेन्द्रिय और अहंकार मन और संकल्प इन आठों के आकार धारण किये हैं और आप ही ग्रहण किये हैं, परमार्थ रूप को त्याग फुरने से जो आकार उत्पन्न हुए हैं उनको ग्रहण किया, इसका नाम पुर्यष्टका है, तदनन्तर इन इंद्रियों के छिद्र रचे गये, स्वरूप से विचलित नहीं हुआ, शुद्ध निर्विकल्प भाव को त्यागकर विराट भाव को प्राप्त हुआ, इसी प्रकार आगे उस पुरुष ने चारों वेदों की रचना ज्ञानद्वारा की और नीति (मर्यादा) को निश्चित किया अर्थात् यह पदार्थ (वस्तु) ऐसे हो और इतना काल रहे, ऐसी रचना रची गयी, जो जो संकल्प किया वही देशकाल पदार्थ दिशा, ब्रह्माण्ड सब आगे होते गये, उस पुरुष के इतने नाम हैं, ईश्वर विराट् आत्मा परमेश्वर इत्यादिक जीव के नाम हैं, इस जीव का स्वरूप वासना रूप कुछ नहीं वासना के शरीर ग्रहण करने से वासना रूप कहा है और वास्तव रूप शुद्ध है निर्विकार अद्वैत है, कदाचित् स्वरूप से अन्य अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, सदा ज्ञानरूप है, अद्वैत परम शुद्ध है उसको अपने चेतन स्वभाव से चैत्य का संयोग हुआ है इसी से कहा है कि उसका वपु वासना रूप है, उस आदि जीव से ब्रह्मा विष्णु रुद्र से लेकर देवता दैत्य आकाश मध्य पाताल त्रिलोकी उत्पन्न हुई है, जैसे दीपक होता है और जल से जल होता है, ऐसे सब विराट् स्वरूप है, वह विराट् कैसा है, महा आकाश जिसका उदर है और समुद्र जिसका रुधिर है और नदियाँ जिसकी नाड़ियाँ हैं और दिशाएं जिसका वपु हैं और जिसके उदर में कोई ब्रह्माण्ड सुमेरु पर्वत सहित समाये रहते हैं और पवन देव जिसके मुण्ड स्थानीय हैं और ऊनपंचाशत् पवन जिसका प्राण वायु है, पृथ्वी जिसका मांस है, हाथ जिसके सुमेरु आदि पर्वत हैं, तारे जिसकी रोमावली हैं, ऐसा विराट् है सहस्र जिसके शिर हैं, सहस्र मस्तक हैं और सहस्रों ही नेत्र और अनन्त है अनादि हैं, चन्द्रमा जिसका कफ है, जिससे अमृत स्रवता है, भूत उत्पन्न होते हैं और सूर्य पित्त है, सबकी उत्पन्न करता है, सब मन और सब कर्म और सब शरीर का बीज आदि विराट्

हैं, हे रामजी! इस चित्त के सम्बन्ध से तुच्छ हुआ है, वास्तव से परमात्म स्वरूप है, जैसे महाकाश घट के संयोग से घटाकाश बन जाता है ऐसे विराट् जो परमात्मा है, उसमें फुरणे से सृष्टि रची है और उसमें–अहं प्रत्यय किया है, इससे तुच्छ हुआ है, इसका मिथ्याभ्रम हुआ है, जैसे स्वप्न में अपना मरना देखता है ऐसा आपको दृश्य देखता है, वह लघुता भी इसके आत्मा की उपेक्षा से है, दृश्य में विराट् है और आत्मा में इसका अनुभव है, हे रामजी! इसी प्रकार इनसे उत्पन्न होकर सृष्टि रची है, जैसे एक विराट् पुरुष ने आदि निश्चय किया है, ऐसे ही अब तक है वह यह आप ही उत्पन्न हुआ है और आप ही लीन हो जाता है, हे रामजी! जिस प्रकार विराट् की आत्मा से उत्पत्ति हुई है, ऐसे ही सब जीवों की है यह सब विराट् रूप है परन्तु जो स्वरूप से उत्पन्न होकर दृश्य के साथ तद्रूप हुए और वास्तव स्वरूप जिनको भूल गया, वे जीव तुच्छ रूप हुए, स्वरूप से स्फुरित होकर स्वरूप से नहीं गिरे और आगे अपना ही संकल्प रूप विश्व देखकर उनको प्रमाद न हुआ, उसका नाम विराट् आता है, हे रामजी! जीव चेतन रूप है और निराकार रूप है, इसको जो शरीर का संयोग हुआ है, वह कल्पना से हुआ है, जब अपने आपको संयुक्त दृश्य संयुक्त देखता है तब महान् आपत्ति को प्राप्त होता है, जब द्वैत से रहित निर्विकल्प होकर देखें, तब शुद्ध चेतन घन आत्मपद को प्राप्त होता है, हे रामजी यह विराट् कैसा है, सबका उत्पादन करनेवाला है, ऐसे कई विराट् आत्मपद से उदय हुए हैं और कई मिट गये हैं और कई आगे होंगे, जैसे–समुद्र से कई तरंग बुद्‌बुदे उठते हैं और लीन होते हैं, ऐसे आत्मरूप समुद्र से कई उठते हैं कई लीन होते हैं, कई लीन होंगे, परमात्मा सबका अधिष्ठान है, सबके अन्दर बाहिर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है. ऐसा तेरा अपना आप अनुभव रूप है, हे रामजी! इस संवेदन को त्यागकर देख वही परमात्म स्वरूप है, यह जो कुछ तुझको भासता है उसको विचार कर त्याग, जब तू इसका त्याग करेगा, तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तेरा स्वरूप है, वह प्रकाश तुझको भासेगा, उसके आगे

चेतनता ही आवरणरूप है। जैसे सूर्य के आगे बादलों का आवरण होता है, जब तक बादल होते हैं, तब तक सूर्य का प्रकाश यथावत् नहीं भासता जब बादल दूर हों तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, ऐसे जब फुरणा निवृत्त होगा तब शुद्ध आत्मा ही प्रतीत होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे विराटात्मवर्णनं
नाम एकषष्टचधिकशततमः सर्गः ।।१६१।।

द्विषष्टयधिकशततमः सर्गः १६२

ज्ञानबन्धयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह परमात्म पुरुष स्फुरण से जीव संज्ञा को प्राप्त हुआ है, स्फुरणे में भी वही है और अपने स्वरूप को नहीं जानता, इसी से दुःख पाता है, जैसे पवन चलता है तो भी वही रूप है और ठहर जाता है तो भी वही रूप है, दोनों में तुल्य है, ऐसे आत्मा सदा एकरस है, कदाचित् परिणत नहीं हुआ और यह जीव प्रमाद से दृश्य की कल्पना करता है, दृश्य को अपना आप जानता है, इसीलिये दुःख पाता है और यदि इसको अपना स्वरूप स्मरण रहे तो दृश्य में भी अपना रूप भासे और यदि निःसंकल्प हो तो भी विश्व अपना रूप भासे, विश्व भी इसी का रूप है परन्तु अविचार से भिन्न भिन्न भासता है, जैसे स्वप्न का विश्व स्वप्नवाले का रूप है परन्तु निद्रा दोष से नहीं जानता जब जगता है तब जानता है, कि मैं ही था, ऐसे यह प्रपञ्च सब मेरा स्वरूप है, तुम निरहंकार स्थित होकर अपना स्वरूप देखो तो बना कुछ नहीं और यदि आत्मा में इतर परिच्छिन्न कुछ तुम बनोगे तो प्रपंच विश्व भासेगा, आत्मस्वरूप में स्थिति हो तो अपना आप भासेगा, प्रपंच का अभाव हो जायेगा, हे रामजी! शून्याशून्य जड़ चेतन किंचन निष्किंचन सत् असत् सब आत्मा ही पूर्ण है, निषेध किसका किया जाय, सब वही रूप है, हे रामजी! ऐसा अनुभव है, जिससे सब पदार्थ सिद्ध होते हैं और ऐसे

आत्मा को मूर्ख नहीं जानते जैसे जन्म का अन्धा मार्ग को नहीं जानता ऐसे ही अज्ञानी महान् अंधज्योति स्वरूप आत्मा को नहीं जानते, जैसे उलूकादिक सूर्योदय हुआ हो उसको नहीं जानते, ऐसे ही वासना से आवृत्त हुए आपको नहीं जान सकते, जैसे जल में पक्षी आवृत्त होता है ऐसे ही जीव आवृत्त हैं, इसी का नाम बन्धन है, जब वासना का वियोग हुआ तब इसी का नाम मुक्ति है, हे रामजी! विषमता से इसकी जीव संज्ञा हुई है जब सम हो तब ब्रह्म है, वह ब्रह्म अहंकार को त्यागने से होता है, जैसे खप्पर के संयोग से महाकाश घटाकाश हो जाता है, जब खप्पर टूटता है तब महाकाश हो जाता है ऐसे ही जब अहंकार का नाश हुआ, तब आत्मस्वरूप है, हे रामजी! अज्ञान से जीव एक देशी हुआ है, जब परिच्छन्नता का वियोग हुआ तब आत्मस्वरूप है, हे रामजी! अपना वास्तव स्वरूप जो निर्गुण है, उसमें गुण का संयोग उपाधि से भासता है, वह अनर्थरूप है, जब निर्गुण और सगुण की गांठ टूटी तब केवल अद्वैत तत्व अपना आप भासेगा वह कैसा है जो कि अनामय है दुःख से रहित है और सत् असत् से परे है, ज्ञानरूप आदि अन्त से रहित है, जिसको पा लेने से और किसी वस्तु का पाना बाकी नहीं रहता और जिसके जानने से और जानना नहीं रहता ऐसा जो उत्तम पद है, उसको आत्मत्व करके प्राप्त होगा, हे रामजी! यह जो ज्ञान तेरे लिये कहा है, उसको आश्रय करके तुम ज्ञानवान् होना, ज्ञानबर्द्धन होना, ज्ञान बद्ध से अज्ञानी भला है, क्योंकि अज्ञानी भी साधुसंग और सत् शास्त्र श्रवण करके ज्ञानवान् होता है, ज्ञानबद्ध मुक्त नहीं होता, जैसे रोगी हो और कहे कि मुझ को रोग कोई नहीं, मैं अरोग हूँ, तब वैद्य का औषध नहीं खाता, क्योंकि अपने आपको अरोगी जानता है ऐसे ही जो ज्ञानबद्ध है, उससे सत्संग भी नहीं होता और सत् शास्त्रों का श्रवण भी नहीं होता, इसलिये वह आत्महन्ता पुरुष महान् अन्धतम को प्राप्त होता है, रामजी बोले–हे भगवन्! ज्ञान का लक्षण क्या है और ज्ञानबद्ध का लक्षण क्या है और ज्ञानबद्ध का फल क्या है, यह कहिये! वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! उस पुरुष ने आत्मा के

विशेषण शास्त्रों के श्रवण किये हैं कि आत्मा नित्य है, शुद्ध है और ज्ञान स्वरूप है और तीनों शरीरों से भिन्न है, ऐसा सुनकर अपने आपको मानता है और भोगने की सदा तृष्णा बनी रहती है कि किसी प्रकार इन्द्रियों के विषय मुझे मिलें, ऐसे जो पुरुष हैं, ज्ञानबद्ध है बोधशिल्पी हैं, पुनः कैसा है? कर्मफल के विचार से रहित है, भला बुरा विचार कर नहीं करता, छोटी उमर में पढ़ते थे, तब हमारे भी यही विचार थे कि शुभाऽशुभ को नहीं विमुख से शुभ अशुभ निरूपण करता है, इसलिये शास्त्र शिल्पी है और फल के लिये कर्म करता है, ऐसा पुरुष ज्ञानबद्ध कहाता है, अर्थ शिल्पी कहाता है। हे रामजी! एक प्रवृत्ति मार्ग है एक निवृत्तिमार्ग है, प्रवृत्ति संसार मार्ग है, निवृत्ति आत्मज्ञान मार्ग है, जिस पुरुष ने निवृत्ति मार्ग तो स्वीकार किया है और प्रवृत्ति मार्ग में व्यवहार करता है, प्रवृत्ति कहते हैं, बहिर्मुख होकर विषयों की ओर प्रवृत्त होने को प्रवृत्ति के मार्ग में पड़ा हुआ विषयों की ओर प्रवृत्त होता है, उनसे प्रसन्न होता है और स्वरूप का अभ्यास नहीं करता, ऐसा पुरुष ज्ञान बद्ध कहाता है, हे रामजी! वेदोक्त शुभ कर्म करता है, हृदय में उनके फल को धारण करता हुआ ज्ञान का निकटवर्ती तो है परन्तु ज्ञानबद्ध है, जिसको आत्मप्रेम है और विषय चिन्तन भी करता है, अपने आपको उत्तम मानता है, वह ज्ञानबद्ध कहाता है और जो आत्मतत्व का यथार्थ निरूपण करता है, आत्म स्थिति नहीं है, वह ज्ञानाभास है ज्ञान का फल उसको प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं और जिस पुरुष ने सिद्धता प्राप्त की है और ऐश्वर्य पाया है, उससे अपने आपको बड़ा जानता है और आत्मज्ञान से रहित है, वह ज्ञानबद्ध कहाता है, हे रामजी! निदिध्यासन से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है, उससे परमशान्ति और प्रकाश होता है, जब तक शांति नहीं प्राप्त होती, तब तक आपको बड़ा न माने, हे रामजी! बड़ा ज्ञान से होता है, जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ तब तक आत्मपरायण रहकर अभ्यास करे, यत्न छोड़ न दे, शुभ चेष्टा करे, शुभ व्यवहार से प्राणरक्षा के लिये जीविका उत्पादन करना और ब्रह्म जिज्ञासा के लिये

प्राण धारण करना उचित है और ब्रह्म जिज्ञासा इसलिये है कि इस दुःखरूप संसार सागर से मुक्त हो जाय, पुनः संसारी न होना पड़े, इसीलिये इसको आत्मपरायण होना चाहिये, जब आत्मपरायण होगा तब सब दुःख मिट जायेंगे, जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार नष्ट हो जाता है, ऐसे आत्मपद की प्राप्ति से दुःख नष्ट हो जाते हैं, उस पद को प्राप्त होने के सदुपाय यह हैं कि सत्संग द्वारा सत् शास्त्र श्रवण करे, उनको सुनकर निरन्तर अभ्यास करे, अनात्म दृश्य को मिथ्या जानकर उससे उपरत होना अर्थात् विरक्त होना चाहिये, ऐसा करने से आत्मपद की प्राप्ति होती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ज्ञानबन्धयोगो नाम द्विषष्ठ्यधिकशततमः सर्गः ।।१६२।।

त्रिषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६३

सुखेनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिज्ञासु होकर ज्ञाननिष्ठ होना और जो कुछ गुरु शास्त्रों से आत्म विशेषण श्रवण किये हैं, उनमें अहं प्रत्यय करके स्थित होना इसी का नाम ज्ञाननिष्ठा है, उस ज्ञाननिष्ठा से परम उच्चपद को प्राप्त होता है, जो सबका अधिष्ठान पद है, उस पद को पाता है, जब उस पद में स्थित हो तो कर्मों के फल का ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि शुभ कर्मों में फल का राग नहीं रहता और अशुभ कर्मों के फल में द्वेष नहीं रहता ऐसा पुरुष ज्ञानी कहलाता है। शीतल चित्त रहता है, अकृत्रिम शांति प्राप्त करता है, किसी विषय के सम्बन्ध में नहीं फँसता, उसकी वासना ग्रंथी टूट जाती है, उस पुरुष को ज्ञानी कहते हैं, हे रामजी! बोध वही है जिसके मिल जाने पर पुनर्जन्म नहीं पाता, जन्म मरण से रहित होता है, उसको ज्ञानी कहते हैं, जब पुरुष संसार से विमुख होता है, तो संसार की सत्यता नहीं भासती, तब जानिये कि पुनः जन्म न पायेगा, क्योंकि उसकी संसार वासना नष्ट हो गयी है, हे

रामजी! जिससे ज्ञानी की वासना नष्ट होती है, वह सुनिये! इस संसार का कारण नहीं दीखता जो पदार्थ कारण से उत्पन्न नहीं हुआ वह सत्य नहीं होता इसीलिये संसार मिथ्या है, जैसे जेवरी में सर्प भासता है उसका कारण कोई नहीं देखता, भ्रम से सिद्ध हुआ है, ऐसे यह विश्व का कारण बिना दृष्टि आता है, इसलिये मिथ्या है, यदि मिथ्या है तो इनकी वासना कैसे हो? हे रामजी! जो प्रवाह पतित कार्य आ पड़े उसमें ज्ञानी विचरता है, संकल्प से रहित होकर अपना अभिमान कुछ नहीं करता, यह नहीं कहता कि इस प्रकार हो और इस प्रकार न हो और हृदय में आकाश की नाईं संसार से न्यारा रहता है और फुरणे से शून्य है, जो ऐसा है, वह पुरुष पंडित कहाता है, हे रामजी! यह जीव परमात्मारूप है, जब अचेतन हो तब आत्मपद को प्राप्त होता है, संसार के फुरणे से जो रहित हो उसे अचेतन कहते हैं, जब जड़ हुआ तब आत्मा है, जैसे आम का वृक्ष फल से रहित है तो भी नाम उसका आम है, परन्तु निष्फल है ऐसे यह जीव आत्मस्वरूप है परन्तु चित्त के सम्बन्ध से इसका नाम जीव है जब चित्त का त्याग करे तब आत्मा हो जैसे आम को फल लगे तब शोभा देता है और सफल कहाता है, ऐसे जब यह जीव आत्मपद को प्राप्त होता है तब महाशोभा से विराजमान होता है, हे राम! ज्ञानवान् पुरुष कर्म के फल की स्तुति नहीं करता और फल की अर्थात् इन्द्रियों के इष्ट विषयों की वांछा नहीं करता, जिस पुरुष ने अमृत पान किया हो वह मद्यमान की इच्छा नहीं करता, ऐसे जिसको आत्मसुख प्राप्त हुआ है वह विषय सुख की इच्छा नहीं करता और जो किसी पदार्थ को पाकर सुख मानते हैं, वे मूढ़ हैं, जैसे कोई पुरुष कहे कि वंध्या के पुत्र के कंधे पर आरूढ़ होकर नदी के पार उतरता है, ऐसा पुरुष महामूढ़ है क्योंकि यदि वन्ध्या का पुत्र है ही नहीं तो उसके कंधे पर आरूढ़ होना कैसे संभव हो सकता है, ऐसे जो पुरुष कहे कि संसार के किसी पदार्थ को लेकर मुक्त हो जाऊंगा वह महामूढ़ है, हे राम! ऐसा पुरुष ज्ञानशून्य है, उसके इन्द्रिय स्वस्थ नहीं है और जो शास्त्रों के अर्थ को भी प्रगट करता है और

परमात्म ज्ञान से रहित है, उसको इंद्रिय बल से गिरा देते हैं, जैसे चील नाम का पक्षी आकाश में उड़ता हुआ भी मांस को देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है, ऐसे ही अज्ञानी विषय को देखकर ऊपर से गिर पड़ता है, इसलिये इन इन्द्रियों को मन सहित वश में करो और युक्ति से तत्परायण हो जाओ, अन्तर्मुख बनो, इस संवेदन के फुरने का त्याग करो, जब फुरना निवृत्त हुआ तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा, जब परमात्मा का साक्षात्कार हुआ तब रूप अवलोकन नमस्कार जो त्रिपुटी है उसके अर्थ की भावना जाती रहेगी, केवल आत्मतत्व ही प्रत्यक्ष भासेगा और संसार का अत्यन्त अभाव हो जायेगा, हे राम! संसार का आदि परमात्मतत्व है और अन्त भी वही है, जैसे स्वर्ण गिला देने पर भी सुवर्ण है, न गिलाने पर भी सुवर्ण है, ऐसे जब सृष्टि का अभाव होता है तो भी शेष आत्मा ही रहता है और जब उत्पन्न न हुई थी तब भी शेष आत्मा ही था और मध्य भी वही है, परन्तु सम्यक्दर्शी भी भासता है और असम्यग् दर्शी को आत्मसत्ता नहीं भासती, हे रामजी! विश्व आत्मा का परिणाम नहीं चमत्कार है, जैसे स्वर्ण गलता है तब उसकी रेणी संज्ञा होती है अथवा शलाका कहाता है, यद्यपि भूषण उसमें हुए नहीं तो भी चमत्कार उसका ऐसा होता है, भूषण उससे उत्पन्न होकर लय हो जाता है, ऐसे विश्व आत्मा का चमत्कार है, बना कुछ नहीं ज्यों का त्यों आत्मसत्ता है उसका चमत्कार विश्व होकर स्थित हुआ है, जैसे सूर्य की किरणें जलाभास होकर भासती हैं, हे राम! जब तुमने ऐसा जान लिया कि केवल आत्मसत्ता है, तब वासना क्षय हो जायगी और चेष्टा स्वाभाविक होगी जैसे वृक्ष के पत्र हवा से हिलते हैं, ऐसे शरीर की चेष्टा प्रारब्ध वेग से होगी, हे रामजी! देखने मात्र तुम्हारे अन्दर क्रिया होगी और अन्दर से मन से शून्यता भासेगी, जैसे यंत्री की पुतली संवेदन बिना धागे से चेष्टा करती है ऐसे शरीर की चेष्टा प्रारब्ध से स्वाभाविक होगी और तुझको अभिमान न होगा, जैसे कोई पुरुष दूध के निमित्त पात्र लेकर ग्वाले के पास गया उसको दूध दोहने में कुछ विलम्ब है, तब उसने

कहा कि बरतन यहां धरा है, मैं कोई काम पूरा करके घर से शीघ्र ही आता हूँ, जब वह घर का काम करने लगा, तब उसका मन दूध की ओर रहा ऐसे तुम्हारी क्रिया प्रारब्ध वेग से होगी परन्तु मन आत्मतत्व में रहेगा, जब अहंकार से रहित होगा, क्योंकि जबतक अहंकार फुरता तब तक प्रसन्न जीव है, प्रसन्न से यहां अर्थ है तुच्छ। इसको शरीर मात्र का ज्ञान होता है, अंतःकरण में जो प्रतिबिम्ब है, जीव उसको नख शिखा पर्यन्त शरीर का ज्ञान होता है और इसी में आत्माभिमान होता है, अन्य ज्ञान नहीं होता, इसलिये जीव है और विराट् जो आगे तुझको कहा है, वह ईश्वर है समस्त शरीर और अन्तःकरण का ज्ञाता है और सर्व लिंग शरीर का अभिमानी है सबको अपना आप जानता है, अतः ईश्वर है, हे रामजी! यद्यपि विश्वरूप है तो भी अहंकार से तुच्छ सा हुआ है, जैसे मेघ से भिन्न हुआ एक बादल कहाता है और घट से घटाकाश कहलाता है वह बादल भी मेघ है और घटाकाश भी महाकाश है, ऐसे अहं स्फुरणे से प्रसन्न हुआ है, वह स्फुरण दृश्य में हुआ है और दृश्य फुरणे में हुआ है, जैसे फूल में गंध है, तिलों में तेल है ऐसे फुरणे में दृश्य है, हे रामजी! आत्मा में बुद्धि आदिक फुरना है कि मैं हूँ, ऐसे फुरता है, तब आगे दृश्य होता है, जब अहंकार होता है तब आगे देह इंद्रिय आदि विश्व को रचता है, इसलिये फुरणे में दृश्य और दृश्य में फुरणा हुआ जो देह, इन्द्रिय मन आदि दृश्य हैं उनमें अहं प्रत्यय करके स्फुरण हुआ, इसी कारण से इसकी जीव संज्ञा हुई है, जब फुरणा नष्ट हो जाय तब आत्मा का साक्षात्कार हो और यह जन्म मरण आना जाना आदिक विकार संयुक्त प्रपंच भासता है तो भी मिथ्या है, क्योंकि विचार करने पर शेष कुछ नहीं रहता जैसे केले के स्तम्भ में सार कुछ नहीं, ऐसे ही विचार करने पर प्रपंच का अभाव देखता है जैसे स्वप्न में जन्म मरण आना जाना देखता है परन्तु मिथ्या है, ऐसे जाग्रत क्रिया भी सब मिथ्या है, हे रामजी! जो परावरदर्शी है, वह इतनी अवस्थाओं में निर्विकल्प है, जन्मता हुआ भी नहीं जन्मता, काम सब करता है परन्तु रूपान्तर से नहीं करता, स्वप्नवत् है, स्वरूप से

कदाचित् कुछ नहीं हुआ, हे रामजी! ज्ञानी जाग्रत में भी ऐसे ही देखता है, जब यह आत्मपद में जगता है तब सब विकारों का अभाव हो जाता है, कोई विकार नहीं भासता, हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता है वह बद्ध है, क्योंकि अभिलाषा (कामना) ही दुःखदायक है, यद्यपि राजा है परन्तु कामना नहीं गयी तो जानिये कि दरिद्र है, जिस पुरुष को भोजन आच्छादन की प्राप्ति कठिनता से होती है, भिक्षा मांगकर खाता है और अति सामान्य वस्त्र पहिनता है और उसको शयन के लिये स्थान भी नहीं, जैसे कैसे समय निकलता है, परन्तु ज्ञान से सम्पन्न, तो उसको चक्रवर्ती महाराज जानिये दोहा–सात गाँठ कौपीन की, अरुभाजी बिन लौन।तुलसी रघुवर उखरों, इन्द्र बापुरो कौन। हे रामजी! उसको चक्रवर्ती से भी अधिक जानो, यद्यपि आरम्भ क्रिया करता भी दृष्टि आता है और संकल्प से रहित है तो कुछ नहीं करता, करना न करना उसके लिये दोनों तुल्य हैं, क्योंकि निरभिमान है, शुभकर्म करने से स्वर्ग नहीं भोगता और अशुभकर्म से नरक नहीं भोगता। उसके लिये दोनों समान हैं, हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा समान है परन्तु अज्ञानी अहंकार सहित करता है, इस कारण से दुःख पाता है, अतः तुम अहंकार का त्याग करो और अपने स्वरूप में जो चैत्य से रहित चेतन है स्थिति प्राप्त करो कि सब संशय मिट जायँ, जितने भी जीव तुम्हें भासते हैं सब संवित् रूप हैं, संवित् अर्थात् ज्ञानरूप हैं, परन्तु बहिर्मुख फुरते हैं इसलिये भ्रम को प्राप्त हुए हैं, अन्तर्मुख हों तो केवल शान्त रूप हैं, जहां गुणों और तत्वों का क्षोभ नहीं उसको शान्त पद कहते हैं, हे रामजी! जैसे विराट् का मन चन्द्रमा है, ऐसे सर्व जीवों का है, अर्थात् सब विराट्रूप हैं, परन्तु प्रमाद से वास्तव स्वरूप नहीं भासता, हे रामजी! यह जीव संपूर्ण देह में व्यापक है और भासता हृदय कोश में है, जैसे गुलाब के संपूर्ण वृक्ष में सुगन्धि व्यापक है परन्तु भासती फूल में ही है, ऐसे चेतन सत्ता सारे शरीर में व्यापक है परन्तु भासती है हृदय में जो त्रिकोण निर्मल चक्र है वहां ही अहं ब्रह्म का उत्थान होता है,

वहां से वृत्ति प्रसार पाकर पांचों इन्द्रियों के छिद्रों से निकलकर विषय को ग्रहण करती है, उन इन्द्रियों के इष्टानिष्ट प्राप्ति के विषय में रागद्वेष मानता है, इसलिये हे रामजी! इतना कष्ट प्रमाद से है, जब बोध हो तो संसार भ्रम मिट जाय, हे रामजी! वासना रूप संसार का बीज अहंभाव है, प्रत्यक्ष संसार में फुरता है, जब इसका चिन्तन न हो और स्वरूप में अहंप्रत्यय हो, तब संसारभ्रम मिट जाय और अहंभाव के शान्त हुए ज्ञानवान् यंत्री की पुतलीवत् चेष्टा करता है, हे रामजी! जो पदार्थ सत् है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता और जो असत् है वह सत् नहीं होता, यद्यपि होने की भावना करें तो भी उसका होना नहीं, जैसे आग को जानकर स्पर्श करो तो जलाती है अनजाने करो तो भी जलाती है, क्योंकि सत् है, जैसे मृग जल की भावना से मरुस्थल में दौड़ता है परन्तु जल नहीं पाता, क्योंकि असत् है, ऐसे हे रामजी! अहंकार जो फुरता है वह असत्य है, भ्रम से सिद्ध है, विचार से नष्ट हो जायेगा, साहंकार मनुष्य बद्ध है और निरहंकार मुक्त है, इसलिये निरहंकार परम निर्वाण पद प्राप्त करो, यह मेरा सिद्धान्त है ऐसा करने पर पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान ब्राह्मी लक्ष्मी से शोभा पाओगे, हे रामजी! ज्ञानवान् का चित्त सत् पद को प्राप्त होता है, इसलिये अहंकार नहीं रहता उसके चित्त की चेष्टा फलदायक नहीं होती, जैसे भूना बीज उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार उसको जन्मफल नहीं होता, अज्ञानी का चित्त जन्म मरण का कारण होता है, जैसे कच्चा बीज उत्पन्न होता है, इसी प्रकार अज्ञानी की चेष्टा जन्म फल देती है हे रामजी! जितने पदार्थ हैं सबसे निराश होकर रहो, जिससे विविध अभिलाषाओं से हृदय खाली हो किसी वस्तु का वहां सद्भावन रहे, हृदय पाषाण की नाईं हो—हे रामजी! जिसका हृदय कोमल है, स्नेह संयुक्त है वह अज्ञानी है और जिसका हृदय पाषाण समान है स्नेह से रहित है वह ज्ञानी है, इसलिये निर्मना और निरहंकार होकर रहो, यह भोग मिथ्या हैं, इनकी इच्छा में सुख नहीं, हे रामजी! संसार से उपरति हो जाय और

अन्तर्मुखता तथा आत्मपरायणता प्राप्त हो तब अहंकार निवृत्ति होगी और आत्मभान होगा, जैसे वसन्त के आने पर वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं तब पुरातन पत्र त्याग देते हैं, उनके स्थान पर नूतन निकलते हैं इसी प्रकार तुम्हारे अन्तर्मुख होने पर अहंकार निवृत्त होकर विभुता प्राप्ति होगी। तुच्छ अहंभाव जाता रहेगा, परम निर्वाणपद पाओगे, केवल अहंकार के त्याग की आवश्यकता है, अन्य यत्न की नहीं, हमारा यही उपदेश है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे सुखेनयोगोपदेशवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ।।१६३।।

चतुःषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६४

मंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणम् ।

वसिष्ठ महर्षि बोले—हे रामजी! इस वासना रूप संसार को मंकी ऋषि के समान तर जाओ, श्रीराम बोले—भगवन्! मंकीऋषि ने संसार सागर को किस प्रकार पार किया और वह कौन थे, वसिष्ठ मुनि बोले—हे रामजी! मंकी ऋषि का वृत्तान्त श्रवण करो, उन्होंने महान् तप किया, एक समय तुम्हारे पितामह राजा अज ने मेरा आवाहन किया, मैं अपने घर आकाश में था, तब मैं राजा अज के लिये आकाश से उतरा, मार्ग में एक अटवी देखी, उसमें मानो एकान्त अनेक वन के समूह हैं, मैंने वहां भयानक शून्य स्थान देखे जहां न कोई मनुष्य दृष्टि आता है, न पशु ही देखने में आता है, ऐसा शून्य है मानों एकान्त ब्रह्म स्थान है कितने ही योजनों पर्यन्त मरुस्थल ही दृष्टि आता है, मध्याह्न का समय था, अति तीक्ष्ण धूप पड़ती थी। रेत बहुत थी और तपी हुई थी, उससे मैंने प्रवेश किया, कई वृक्ष वहां दग्ध हुए दृष्टि पड़े, हे रामजी! उस शून्य स्थल में एक मुसाफिर अति दुःखित आता हुआ दिखाई दिया उसने यह वाक्य मुख से निकाला कि, हाय हाय महा कष्ट पाया है, जो दुष्ट निर्दय लोग

दूसरों को दुःख देते हैं और दया नहीं करते, इसी प्रकार मुझको धूप और सफर ने जलाया है, मैं अत्यन्त दुःखित हूँ, हे रामजी! इस प्रकार कहता हुआ जा रहा था, कुछ आगे जाकर उसको एक धीवर का गाँव दृष्टि पड़ा, वहाँ पाँच सात घर थे, उनको देखकर मैं शीघ्र ही चला कि यहां जाने पर मेरा कष्ट दूर होगा, जल पान करके छाया में बैठूंगा, हे रामजी! उसको देख कर मुझे दया आई तब मैंने उसको कहा हे मार्ग के मित्र! तू कहां दौड़ता है, जिनको सुखदायी जानकर दौड़ता है वे दुःखदायक हैं जैसे–मृगमरुस्थल को नदी जानकर जल पान के लिये दौडता है कि शांति पाऊं तब उलटा अति दुःख पाता है, ऐसे जिस स्थान को तू सुखरूप जानता है, वह दुःखरूप है, हे अंग! इस ग्राम के रहने वाले लोगों का संग कदाचित् न करना, इनका संग दुःखरूप है, जो पुरुष विचार पूर्वक चेष्टा करता है उसको दुःख नहीं होता और जो विचार बिना चेष्टा करता है वह दुःख पाता है, यह जो नगरवासी हैं वे तो आप जलते हैं, तो तुम्हें कैसे सुख देंगे, जैसे कोई अग्निकुंड में पड़कर जलते हुए इस पुरुष को देखकर कहे कि तुम मेरे ताप को शान्त करो, तो कहने वाले को मूढ़ ही माना जायेगा, क्योंकि वह स्वयं जलता है तो दूसरे की जलन को कैसे दूर करेगा, अर्थात् जो इन्द्रियों के विषयों की तृष्णारूप अग्नि से जलते हैं, वे तुझे कैसे शान्त करेंगे, हे मार्ग के मित्र! यदि वक्ष्यमान दुःख भी आ पड़ें तो उनको सहन कर ले, परन्तु अज्ञानी का संग न करे, वे दुःख कौन से हैं, पृथ्वी के छिद्र में सर्प होकर रहना, मरुस्थल का मृग होना, पाषाण की शिला में कीट होकर रहना आदि दुःख तो सहन किये जायँ परन्तु अज्ञानी का संग न किया जाय, जिनको इन्द्रियों के सुख की तृष्णा रहती है वे इन्द्रियों के सुख कैसे हैं, आपात रमणीय हैं, अर्थात् जब तक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है तब तक सुख है, जब वियोग हुआ तब दुःख होता है, विषयी लोगों का प्रेम भी विष के समान है, अथवा वह प्रेम विचार शक्ति रखनेवाली बुद्धिरूप कमलिनी को नाश करने के लिये बर्फ है, इनकी संगति इतनी हानिकारक है कि इनके

वचनरूप वायु से ऐसी राख उड़ती है जो पास बैठने वालों का अन्धा कर देती है इसलिये इन ग्रामवासी अज्ञानियों का संग नहीं करना, इनकी और क्या महिमा है कि यह विचारशील बुद्धिरूप सूर्य के आवरण करनेवाले बादल हैं, जैसे कोमल वल्ली पर पड़ी हुई आग उसको जलाती है, ऐसे ही लोगों की संगति वैराग्यवती बुद्धि का नाश करती है। अतः इनका संग त्याज्य है, हे साधो! उनका संग करो जिनके संग से तुम्हारा ताप मिटे, इनके संग से कभी शान्ति न मिलेगी, हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब वह मेरे पास आकर बोला—हे भगवन्! तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारे वचन सुनकर मुझे शान्ति प्राप्त हुई है, तुम शून्य जैसे दृष्टि आते हो और सब प्रकार से पूर्ण हो और मुझे तुम्हारा दिव्य प्रकाश भासता है, तुम आदि पुरुष विराट् हो कि कौन हो, तुम सुन्दर दृष्टि आते हो, हे भगवन्! जो सुन्दर होता है, उसको देखकर राग उत्पन्न होता है और चित्त क्षोभ को भी मानता है और तुम ऐसे सुन्दर हो कि तुम्हारे दर्शन से मुझ को शान्ति ही अधिक से अधिक प्राप्त होती जाती है, तुम दिव्य तेज धारण किये दृष्टि आते हो, परम तेजस्वी हो बड़े बड़े तेजस्वियों का तेज तुम्हारे तेज के आगे फीका पड़ जाता है, अर्थात् आपके समान अन्य कोई सुन्दर नहीं, तुम्हारा तेज हृदय को शान्ति उत्पन्न करके शीतल बनाता है, हे भगवन्! आप अति विचित्र रूप दृष्टि आते हो, इतनी महती शान्ति के लिये एकान्त में स्थित हो, अपने स्वरूप के प्रकाश से दया करते दृष्टि आते हो, पृथ्वी पर स्थित भी दृष्टि आते हो, परन्तु त्रिलोकी के ऊपर विराजमान भासते हो, एकाकी दृष्टि आते हो परन्तु सर्वात्मा हो और किंचित् अकिंचित् तुम ही हो, सर्व भाव पदार्थ से शून्य दृष्टि आते हो और सर्व भाव पदार्थ तुम्हारी सत्ता से प्रकाशित हैं, सर्व पदार्थों के अधिष्ठान हो, तुम्हारे नेत्रों के खोलने से उत्पत्ति होती है और मूँद लेने से लय हो जाती है, इसलिये ईश्वर हो, सकलंक दृष्टि आते हुए भी निष्कलंक हो, अर्थात् तुम्हारे अन्दर स्फुरण के दृष्टि आते हुए भी तुम अंतर से शून्य हो और किसी अमृत को पाकर उदय हुए हो, बड़े ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आते हो, अतः हे भगवन्! आप

कौन हो और यदि मुझको पूछो तुम कौन हो? तो मैं मांडव्य ऋषि के कुल में जन्मा हूँ और मेरा नाम मंकी है, मैं ब्राह्मण हूँ, तीर्थ यात्रा के लिये निकला था और सब दिशाओं में घूमा हूँ, जो तीर्थ अति भयानक स्थानों में हैं, वहां भी गया हूँ, परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली, जिससे इन्द्रियों के ताप मिट जायँ ऐसी शान्ति नहीं प्राप्त हुई, अब मैं घर जा रहा हूँ, हे भगवन्! घर से भी चित्त विरक्त हुआ है, क्योंकि वह संसार ही मिथ्या है, तो घर किसका है, संसार में कहीं भी सुख नहीं और यह प्राण कैसे है जैसे दामिनी का चमत्कार होता है ऐसे यह संसार नाश होता दृष्टि आता है, शरीर उत्पन्न होते हैं और मिट जाते हैं दृष्टि मात्र है, जैसे रात्रि आती है और फिर नहीं जानते कि कहां गयी, हे भगवन्! इस संसार को असार जानकर मैं उदासीन हुआ हूँ, जो अनेक जन्म पाये हैं नष्ट हो गये हैं, इसी प्रकार घूमता फिरा हूँ, अब तुम्हारी शरणागत हूँ और जानता हूँ कि तुमसे कल्याण होगा और तुम कल्याण रूप दृष्टि आते हो इसलिये कृपा करके कहो कि कौन हो? वसिष्ठजी बोले—हे मंकी ऋषि! मैं वसिष्ठ ब्राह्मण हूँ, मेरा घर आकाश में है, मुझको राजा अज ने स्मरण किया है, इसलिये मैं इस मार्ग से जा रहा हूँ, अब तुम संशय मत करो। तुमने ज्ञान प्राप्त किया है, हे रामजी! जब मैंने ऐसे कहा तब वह मेरे चरणों पर गिर पड़ा और उसके नेत्रों से जल चलने लगा, जब महा आनन्द की प्राप्त हुआ तब मैंने कहा हे ऋषि! तू संशय मत कर, मैं तुम्हें अकृत्रिम शान्ति प्राप्ति कराकर जाऊंगा, जो कुछ पूछना चाहते हो पूछो मैं कहता हूँ, मैं जानता हूँ कि तू कल्याणकृत है, जो कुछ मैं कहूँगा उस तुम धारण करोगे अब तुम कुछ प्रश्न करो तुम्हारे कषाय पक्व हुए हैं, तुम हमारे वचनों के अधिकारी हो तुम्हें मैं उपदेश करूंगा, अब तुम संसार के तट पर आ पहुँचे हो, अब तो तुमको निकलने की ही देर है, क्योंकि तुम वैराग्य से पूर्ण हो, संसार का तट वैराग्य है, इसलिये संशय मत करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूवार्द्धे मंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नाम चतुष्टचधिकशततमः सर्गः ॥१६४॥

पंचषष्टयधिकशततमः सर्गः १६५

मंकीवैराग्ययोग्यवर्णनम् ।

मंकी मुनि बोले–हे भगवन्! अब मैं जानता हूँ कि मेरा कार्य सिद्ध हुआ है, मुझको अज्ञान से मोह था, उसका नाश करने के लिये आप मुझे समर्थ मालूम होते हैं, मेरे हृदय अन्धकार को दूर करने के लिये आप सूर्य के समान उदय हुए हैं, हे भगवन्! यह संसार असार है, लोगों की बुद्धि विषयों की ओर ही दौड़ती है, जहां दुःख ही होता है, जैसे जल नीचे ही जाता है इसी प्रकार अधम बुद्धि का भी यही लक्षण है, हे भगवन्! मैं मुक्त भोग हूँ अर्थात् मैं भोगों को भोग चुका हूँ, परन्तु शान्ति नहीं मिली, उलटी तृष्णा बढ़ती गयी जैसे प्यास लगने पर कोई खारा जलपान करे तो प्यास नहीं मिटती, बढ़ती जाती है, ऐसे ही विषयों के भोग से शान्ति नहीं मिलती तृष्णा बढ़ती जाती है, हे मुनिवर! देह जर्जर हो जाता है, दांत गिर पड़ते हैं, अतिक्षोभ होता है तो भी तृष्णा नहीं मिटती, इसलिये मैं अब दुःख को चाहता हूँ, सुख को नहीं चाहता, क्योंकि संसार के जितने सुख हैं, उनका परिणाम दुःख है, जो प्रथम रूप में दुःख है उसका परिणाम सुख है, इसी से दुःख चाहता हूँ, संसार के सुख नहीं चाहता, हे भगवन्! अपनी वासना ही दुःखदायक है, जैसे घुराण गुफा बनाकर उसमें आप ही फँस जाती है, ऐसे अपनी वासना से आप ही बद्ध होता है, हे मुनिवर! वह काल कब हुआ है कि अज्ञान रूप हस्ती में मुझको वश किया है और उसका नाश करनेवाला ज्ञानरूप सिद्ध प्रकट होगा और कर्मरूप तृणों का नाशकर्ता विवेक रूप वसन्त कब प्रकट होगा और वासना रूप अंधेरी रात्रि का नाश करने वाला ज्ञानरूप सूर्य कब उदय होगा? हे भगवन्! बेताल तब तक भासता है जब तक निशा है, जब सूर्य उदय होगा तब निशा जाती रहेगी, फिर बेताल न भासेगा, वह अहंकार रूप बेताल तब तक है, जब तक अज्ञान रूप रात्रि दूर नहीं हुई, हे भगवन्! जब सन्तों के उपदेश से आत्मज्ञान रूप सूर्य प्रकट हो, तब

अहंकार रूप बेताल वहां नहीं विचरता, सत पुरुषों का संग और सच्छास्त्रों का अवलोकन चंद्रिका के समान है, उनसे जब स्वरूप का साक्षात्कार हो तब दिन हो जाता है जब तक सत्संग और सतशास्त्रों का अवलोकन न हो तब तक अंधेरी रात है, हे भगवन्! जो पुरुष सच्छास्त्रों का श्रवण भी करता हो और विषयों की ओर भी गिरे तो उसको अति भाग्यहीन जानिये, वह मैं हूँ, परन्तु अब मैं आपकी शरण में आ पड़ा हूँ, मेरे हृदय के आकाश में जो कुहिड़ है वह आपके वचन रूप शरत्काल से निर्मूल हो जायेगी, हृदयाकाश निर्मल होगा, हे भगवन्! मैंने त्रिदंड साधे हैं, दीर्घ काल तक मनवाणी शरीर से तीन तप किये हैं, परंतु आत्मप्रकाश नहीं हुआ (वांग्दंडोय मनोदंडः कायदंडस्तथैव च। यस्येते कथिता दंडा स त्रिदंडीति कथ्यते ।।) अब मैं तुम्हारी शरणागत हुआ तरूंगा इसलिये कृपा पूर्वक उपदेश करो कि मेरे हृदय का अन्धकार दूर हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मंकीवैराग्यवर्णनं नाम पंचषष्टयधिकशततमः सर्गः ।।१६५।।

षट्षष्टयधिकशततमः सर्गः १६६

मंकीऋषिप्रबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे तात! संवेदन, भावना, वासना, कलना यह चारों अनर्थ के कारण हैं, जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो सकता है, शुद्ध चिन्मात्र पद प्रत्यक्ष चेतन को अपने आप में जो अहंकार उत्थान है, वह संवेदन है और भावना यह है कि जो कुछ बना उसको पुनः याद किया चित्त में स्मरण आया तब भ्रम मिट जाता है और जो कुछ बना है उसकी भावना हुई है कि मैं यह हूँ, तब भावना से संसार दृढ़ हुआ फिर ऐसे ही वासना दृढ़ होती है अपने शरीर के अनुसार नाना प्रकार की कलना होती है, पुनः संसार के संकल्प विकल्प उठते हैं, हे साधो! यह चार

अनर्थ के कारण हैं जब इनका अभाव हो जाय तब कल्याण हो और जितने कुछ शब्द अर्थ हैं उनका अधिष्ठान प्रत्यक् चेतन है, सब शब्द उसी के आश्रित हैं और सब वही है जब तुम इस प्रकार जान लोगे तब वासना क्षय हो जायेगी, जब अहं संवेदन का इसको स्फुरण होता है तब आगे संसार भासता है, जैसे—वसन्त ऋतु आती है तब लताएं प्रफुल्लित होती हैं, ऐसे ही जब संवेदन स्फुरण होता है तब आगे संसार सिद्ध होता है, जब संसार हुआ तब नाना प्रकार की वासनाएं फुरती हैं और संसार नहीं मिटता, हे अङ्ग! संसार इसका नाम है जो संसरता है जब संसरण मिट जाये तब आत्मपद ही शेष रहता है, वह तेरा अपना आप है, इसलिये इस फुरणे को त्यागकर अपने आप में स्थित हो सब तेरा ही रूप है, जब तक वासना फुरती है, तब तक संसार दृढ़ हो जाता है, जैसे वृक्ष को जल दीजिये तब बढ़ता जाता है, ऐसे वासना रूप जल देने से संसार वृक्ष बढ़ता जाता है, अतः वासना का नाश करो कि संवेदन फुरे, जब वृक्ष जल से रहित हो तब आप ही जल जाता है, हे पुत्र! आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं, केवल परमार्थ सत्ता है जैसे जेवरी में सर्प कुछ वस्तु नहीं, जेवरी के अज्ञान से सर्प भासता है, ऐसे आत्मा के अज्ञान से संसार भासता है, जब तुम आत्मपद को जानोगे तब परमार्थ सत्ता ही भासेगी, जैसे बालक अपनी छाया में भूत की कल्पना करके भय पाता है, जब विचारकर देखा तो भूत कोई नहीं, भय दूर हो जाता है, ऐसे आत्मा के अज्ञान से संसार के रागद्वेष जलाते हैं और ज्ञानवान् को वासना संयुक्त संसार का अभाव हो जाता है, केवल अद्वैत आत्मसत्ता ही भासती है, जैसे स्वप्न से जगे हुए को वासना संयुक्त स्वप्न के प्रपंच का अभाव हो जाता है, ऐसे आत्मा का साक्षात्कार होने पर वासना संयुक्त संसार का अभाव हो जाता है, क्योंकि है नहीं, जैसे घटादिक में मृत्तिका से इतर कुछं नहीं, ऐसे सर्व प्रपंच चिन्मात्र स्वरूप हैं इतर कुछ नहीं, कुछ शब्द अर्थ है सब आत्मा ही है, हे मित्र! आत्मा से इतर जो कुछ भासता है, उसको भ्रम मात्र जानो, जैसे आकाश में नीलता भासती है, वह भ्रम मात्र है, ऐसे

विश्व असम्यग् दृष्टि से भासता है, सम्यक् दृष्टि से सब प्रपंच आत्मरूप हैं और द्रष्टा दर्शन दृश्य यह जो त्रिपुटी भासती है वह भी बोध स्वरूप ही है, बोध ही त्रिपुटी रूप होकर स्थित होता है, जैसे स्वप्न में एक ही अनुभव त्रिपुटी रूप हो भासता है, ऐसे यह जाग्रत की त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है, हे अंग! जितने स्थावर जंगम पदार्थ हैं, वे सब आत्मस्वरूप हैं, यदि परमात्मस्वरूप न हों तो भासे नहीं, द्रष्टारूप जो अनुभव करता है, एक अद्वैत रूप है, उस स्वरूप के प्रमाद से भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है, तो भी इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में त्रिपुटी अपने अनुभव से भासती है, जो अनुभव न हो तो कैसे भासे, ऐसे यह त्रिपुटी अनुभव आत्मा से भासती है, इसलिये सब परमात्मस्वरूप है, भिन्न कुछ नहीं जो नहीं तो है नहीं, क्योंकि सब की एकता परमार्थस्वरूप में होती है, हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिल जाती है, जैसे जल में जल की बूंद डालें तो मिल जाती हैं, क्योंकि एक रूप है, ऐसे ही बोध (ज्ञान) से सब पदार्थों की एकता भासती है क्योंकि द्वैत सत्ता है नहीं, जैसे स्पंद निस्पंद दोनों पवन ही हैं, जैसे जल और तरंग अभेद रूप हैं, ऐसे विश्व परमार्थ स्वरूप हैं, अतः ऐसा निश्चय करना चाहिये कि सब ब्रह्मस्वरूप है अथवा अपने को उठा दो कि मैं नहीं, यदि तू नहीं हुआ तब विश्व कहां से होवे, हे ऋषिवर! प्रथम जो अहं होता है तब पीछे ममत्व होता है, यदि अहं ही न रहेगा तो ममत्व कहां रहेगा, इस अहं का होना ही बंधन है, इसके अभाव का नाम मुक्ति है, हे मित्र! इस मुक्ति में क्या यत्न है, यह तो अपने अधीन है कि मैं नहीं, जब अहंकार को निवृत्त किया तब शेष वही रहेगा जो सबका परमार्थरूप है, उसी को ब्रह्म कहते हैं, हे मुनीश्वर! जब अहंकार फुरता है, तब नाना प्रकार की वासना होती है, उस वासना के अनुसार अनेक जन्म पाने होते हैं जो वर्णन नहीं किये जा सकते, जैसे वायु के वेग से तिनके भटकते फिरते हैं, ऐसे वासनाओं से जीव भटकते फिरते हैं, जब पर्वत पर से कंकर गिरता है तब ठोकरें खाता नीचे चला जाता है, ऐसे ही स्वरूप के प्रमाद से जन्म जन्मान्तर प्राप्त होते चले

जाते हैं, घटी यंत्र के समान कभी नीचे कभी ऊपर घूमते हैं, अपनी वासना के अनुसार जैसे कन्दुक (गेंद) हाथ से ताड़न किया हुआ कभी उर्ध्व (ऊपर) कभी अधः (नीचे) जाता है, हे अंग! इस संसार का बीज वासना है, जब वासना निवृत्त हो, तब सबकी एकता हो जाती है, जब तक संसार की वासना दृढ़ है तब तक एकता नहीं होती, जैसे दूध और जल मिलता है उनका संयोग हो जाता है ऐसे भी आत्मा और विश्व का संयोग नहीं आत्मा केवल अद्वैत है और सबका अपना आप है, जैसे मृत्तिका ही घटादिकरूप हो भासती है, ऐसे आत्मसत्ता ही जगत्रूप हो भासती है, इसलिये आत्मा से इतर कुछ वस्तु नहीं है, हे साधो! आत्मा और दृश्य का संयोग कुछ नहीं, काष्ठ और लाखवत् अथवा घट और आकाशवत् संयोग कुछ नहीं, क्योंकि आत्मा अद्वैत है, सर्व दृश्य बोधमात्र है, हे साधो! जो जड़ है वह चेतन नहीं होता और चेतन जड़ नहीं होता, इसलिये न कोई चेतन है न कोई जड़ है, चेतन आत्मा ही भावना से जड़ दृश्य होकर प्रतीत होता है, उसके बोध से एक अद्वैतरूप हो जाता है तो जानता है कि सब कुछ वही है इतर कुछ नहीं, हे मित्र! अज्ञान से नाना प्रकार का विश्व भासता है, जैसे वर्षा से नाना प्रकार के बीज प्रफुल्लित होते हैं, ऐसे अहंरूप बीज से संसाररूप वृक्ष वासनामुख से प्रफुल्लित होता है, जब अहंकार बीज नष्ट हो जाय तब संसार रूप वृक्ष का भी नाश हो जायेगा, हे अंग! जैसे—वानर चलपता करता है, जैसे करताड़ित कन्दुक ऊपर नीचे चलता है, ऐसे जीव वासना के प्रहार से जन्मान्तर में भटकता फिरता है, कभी स्वर्ग कभी पाताल कभी भूलोक में आता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता इसलिये वासना का त्याग करो और आत्मपद में स्थिति प्राप्त करो, हे तात! यह संसार रात्रि की यात्रा देखते नष्ट हो जाती है, इसको देखकर इससे प्रेम करना और इसको सत् जानना यही महान् अनर्थ है, इसलिये संसार को त्याग कर आत्मपद में स्थिति प्राप्त करो। चित्तवृत्ति के संसरण का नाम ही संसार है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मंकीऋषिप्रबोधवर्णनं
नाम षट्षष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥१६६॥

सप्तषष्टयधिकशततमः सर्गः १६७

मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे तात! यह संसार का मार्ग गहन है, इसमें जीव भटकते हैं, यह चेतनवृत्ति जो संसरती है यही संसार हैं जब यह संसरण मिटे तब स्वच्छ अपना आप ही स्वरूप भासे चेतनवृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसी का नाम बन्धन है, अन्य बन्धन कोई नहीं। हे साधो! यह जगत् वासना से बँधा है, जैसे वसन्त ऋतु से रस संसरता है, ऐसे वासना से जगत् प्रसार होता है, बड़ा आश्चर्य है कि मिथ्या वासना से जीव भटकते फिरते हैं दुःख भोगते हैं, बार बार जन्म मृत्यु पाते हैं महान् आश्चर्य है कि वासना विषम रूप है इससे जीव वश हुए अविद्यमान (मिथ्या) जगत् को भ्रम से सत् जानते हैं, हे साधो! जो इस वासनारूप संसार को तर गये हैं वे धन्य हैं, प्रत्यक्ष चन्द्रमा के समान वे परम शीतल प्रकाशवान् हैं, जैसे अमृत रूप चन्द्रमा प्रसन्न करता है ऐसे ज्ञानवान् पुरुष हैं, इसलिये तुम धन्य हो, जिसको आत्मपद की इच्छा हुई है, हे अंग! यह संसार तृष्णा से जलता है, जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है उनको तुम विलाव (बिल्ला) जानो जैसे बिल्ला तृष्णा से चूहे को पकड़ता है ऐसे यह जीव भी तृष्णा से चेष्टा करते हैं और इस मनुष्य शरीर में यही विशेषता है कि किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त हो और जो नरदेह पाकर भी आत्मपद पाने की इच्छा न करे तो पशु समान है, वे जैसे पशु तैसे मनुष्य हैं जो भगवद्विमुख हैं, हे मित्र! मूढ़ मनुष्य ऐसी चेष्टा करते हैं जो प्राणों के अंत तक भी तृष्णा का त्याग नहीं करते, हे अंग! ब्रह्म लोक से लेकर काष्ठ पर्यन्त जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं, उनके भोगने से शांति नहीं मिलती क्योंकि वे आपात रमणीय हैं, इनमें सुख नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनमें ऐसी शांति है जैसी चन्द्रमा में और सूर्य के समान वे प्रकाशित होते हैं और विषयतृष्णा कदाचित् नहीं करते, जैसे कोई पुरुष अमृत पानकर तृप्त हुआ हो वह फल खाने की इच्छा नहीं करता,

ऐसे जिस पुरुष को आनंद प्राप्त हुआ है वह विषय भोगने की इच्छा नहीं करता, इसलिये इसी वासना का त्याग करो और वासना का बीज अहंकार है, उसको निवृत्त करो कि मैं नहीं, क्योंकि तेरा होना ही अनर्थ है, हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पद में जो कुछ तू आपको प्रसन्न जानता है कि मैं ब्राह्मण हूँ अथवा किसी प्रकृति के साथ मिल आपको मानता है कि मैं यह हूँ, यही अनर्थ है, हे ऋषिवर! तेरे नेत्र खोलने से संसार उत्पन्न होता है और नेत्रों के मुंद जाने से नष्ट हो जाता है, वह नेत्र क्या हैं, अहंकार का फुरणा, इसी से आगे विश्व सिद्ध होता है, इसलिये तेरा होना ही अनर्थ है, हे अंग! जैसे जेवरी में सर्प भ्रममात्र उदय होता है, ऐसे आत्मा में अहंकार उदय हुआ, इसी के अभाव से भय शान्त होता है, जब अहंकार हुआ तब आगे स्त्री कुटुम्ब धन होते हैं वह इसके बन्धन हैं, इनका चमत्कार ऐसे है जैसे दामिनी का चमत्कार क्षण में उदय होकर नष्ट हो जाता है, इसलिये इनमें बद्ध नहीं होता, हे अंग! जब तुम कुछ बनोगे तो सब आपत्तियाँ तुम्हें चिमट जायँगी, अगर तुम अभाव मानो तब पीछे आत्मपद ही शेष रहेगा वह परम शान्त रूप है, जिसकी अपेक्षा चन्द्रमा को भी अग्निवत् जानता है वह परम शून्य है और सब पदार्थों की सत्ता वही है, वह आकाशरूप है, हे मित्रवर! मेरे इन वचनों को धारण कर कि तेरा मोह नष्ट हो जाय, यह विश्व उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा प्रतीत होता है, परन्तु है तो नहीं, ऐसे विश्व नहीं, आत्मा के प्रमाद से भासता है हे ऋषिवर! उसी को जान जिसके आज्ञा से विश्व प्रतीति होती है, जिसके ज्ञान से लय हो जाता है, हे मंकी! जैसे आकाश शून्यमात्र है, जैसे पवन क्या है स्पंद मात्र है, तरंग जलमात्र है, ऐसे संवित् मात्र जगत् है, उस संवित् आकाश से जो इतर भासता है। उसे भ्रम मात्र जानिये। जैसे असम्यक् दृष्टि से जल पहाड़ रूप प्रतीत हो ऐसे असम्यग् दृष्टि से जगत् भासता है, और सम्यग् अवलोकन से परमार्थ सत्ता ही प्रतीत होती है, जिसके अज्ञान से जो विश्व भासता है उसको भी ज्ञानवान् ब्रह्म शब्द से कहते हैं, उस ब्रह्म पद

का अहंकार ही व्यवधान है वह ज्ञानवान् का नष्ट हुआ है, इसलिये सबका अधिष्ठान वही परमार्थ स्वरूप एक देखते हैं, उसी परमार्थ रूप में तुम भी एकत्र स्थित हो जाओ, जैसे आकाश अनेक घटों के संयोग से भिन्न भिन्न भासता है यदि घट को तोड़ दिया जाय तो सब एक ही हो जाता है ऐसे अहंकाररूप घट को तोड़ देने से सब पदार्थ एक हो जाते हैं, हे अंग! सबकी परमार्थ सत्ता एक ब्रह्मपद है, वह अजन्मा है, अच्युत है आनन्द है शान्तरूप है, निर्विकल्प अद्वैत है, सबका अधिष्ठान है। इसी में स्थित हो, जो शिलावत् आत्मसत्ता से इतर कुछ न फुरे, इसलिये निर्बोध बोध हो जाओ। हे मंकी ऋषि! यह जो पदार्थ भासते हैं दुःख देनेवाले हैं, ऐसे जो शब्द अर्थ हैं आकाश फूल हैं, इसलिये शोक मत कर, क्योंकि सब परमार्थ सत्ता ही तो है, जैसे पुरुष निराकार है, उसकी भावना से अंग का संयोग होता है, ऐसे विश्व भी इसकी भावना से होता है जैसी जैसी संसार की भावना दृढ़ होती है ऐसा रूप आगे दृष्टि आता है, जो विश्व उपादान से हुआ नहीं आरंभ परिणाम से कुछ बना नहीं जैसे यह बिना उपादान है, ऐसे सुनो! हे मित्र! शुद्ध परमात्मा का जो पाना है वह साधन है और विश्व उपादान है वह शब्द है और आत्मा अद्वैत है वह इनका हेतु है और अचिन्त्य है इसी से विश्व निरुपादान है, स्वप्नवत् जैसे स्वप्न सृष्टि निरुपादान होती है, ऐसे जाग्रत सृष्टि भी है और उपादान मृत्तिका से जैसे घट कार्य बनता है, आत्मा विश्व का उपादान ऐसे भी नहीं, क्योंकि मृत्तिका परिणाम से घटाकार होती है और आत्मा अच्युत है, जैसे भीत के बिना चित्र होता है इसी प्रकार यह विश्व भी आकाश में चित्र हुआ है, इसीलिये आत्मा अकर्ता है और विश्व जो दृष्टि आता है निरुपादान है, उस पर शोक क्या किया जाय और हर्ष क्या किया जाये, यह प्रपंच सब आत्मरूप है, प्रमाद से जाना नहीं जाता, हे साधो! संवेदन से जो अहंकार फुरता है, तब विश्व प्रतीत होता है, जैसे स्वप्न में जो कुछ बनता है, अपने स्वरूप से भिन्न देखता है तथा उसमें रागद्वेष भासते हैं और जगने पर अन्य कुछ नहीं, सब अपना ही अनुभव था। ऐसे संवेदन के

न रहने पर सब विश्व अपना आप हो जाता है, यह अहंकार होना ही विश्व है, जब अहंकार नाश हो तब सब शब्द अर्थ—कि मैं दुःखी हूँ, मैं सुखी हूँ, यह नरक है, यह स्वर्ग है, इत्यादिक सब परमार्थ सत्ता में ही फुरते हैं, सबका अधिष्ठान आत्मा है, इसलिये सब आत्मरूप है, वह स्वयं कैसा है, दृश्य से रहित द्रष्टा है, ज्ञेय से रहित ज्ञाता है और निर्बोध बोध है, इच्छा से रहित इच्छा है, अद्वैत है और नानात्व भी वही है, निराकार है आकार भी वही है, अकिंचन भी वही है, किंचन भी वही है, अक्रिय है और सब क्रिया भी वही करता है, ऐसे आत्मज्ञान पाकर आत्मवेत्ता विचरते हैं, उनको किंचित् जगत् का भान नहीं, जैसे स्वर्ण के भूषण जल के तरंग होते हैं, ऐसे सर्व विश्व उसको आत्मस्वरूप भासता है, ऐसा जानकर सब चेष्टा करते हैं, जैसे यंत्री की पुत्तलिका में संवेदन स्फुरण नहीं होता, ऐसे उनको जगत् सत्यता नहीं फुरती, क्योकि वे निरहंकार हुए हैं, हे मंकी ऋषि! जैसे—स्वर्ण में भूषण बनकर आते हैं, ऐसे ही आत्मा में विश्व स्फुरण हो आता है, वह अहंकार फुरता है, इसलिये इस अभाव की भावना करो, निरहकांर होकर चेष्टा करो, जैसे झूलने में बालक के अंग स्वाभाविक हिलते हैं, ऐसे ज्ञानी की निर्वेदन चेष्टा होती है, हे ऋषि! जब तू इस मेरे उपदेश को धारण करेगा तब अनायास ही आत्मपद की प्राप्ति होगी, यह विश्व भी आत्मस्वरूप ही भासेगा, जैसे विश्व भासता है सब आत्मरूप ही है, हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब मंकी ऋषि परम निर्वाण पद को प्राप्त हुआ, परम समाधिस्थ हुआ। सौ वर्ष पर्यन्त उसकी समाधि यथावत् रही, वह कैसी समाधि थी कि शिलावत् अडोल स्फुरण से रहित, हे रामजी! जैसे मंकी ऋषि स्वरूप को प्राप्त हुआ है, ऐसे तुम भी वही स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तषष्टयधिकशततमः सर्गः ॥१६७॥

अष्टषष्टयधिकशततमः सर्गः १६८

सुखेनयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह विश्व आत्मा का चमत्कार है, सब कुछ वही चिन्मात्र स्वरूप है, हे रामजी! मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हें चिन्मात्र स्वरूप की प्राप्ति हो, जो तुम्हारा अपना आप है उसको अपना आप जानो कि तुम्हारे सब दुःख नष्ट हो जायँ, हे रामजी! तुम निर्वाण शान्त आत्मा बनो और यथा लाभ में सन्तुष्ट रहो, सत् होने हुए असत् की नाईं स्थित रहो, तुमको स्फटिक मणि के समान राग द्वेष का रंग स्पर्श न करे, हे रामजी! यह सब जगत् एक ही स्थित है और वास्तव से एक में कुछ स्थित नहीं, आदि अन्त से रहित एक चिदाकाश अपने आप में स्थित है, वह शरीर आदिक के नाश में भी अखण्ड रूप है, उसका यह जगत् चमत्कार है, उत्पन्न हो होकर जल तरंगवत् लय हो जाता है, हे रामजी! ध्यान ध्येय त्रिपुटी भ्रांतिमात्र शुद्ध हुई है और वास्तव से द्रष्टा दर्शन और दृश्य सब वही रूप है, उससे इतर कुछ नहीं, सब आत्मस्वरूप है और सदा एकरस है, कदाचित् क्षोभ को नहीं प्राप्त होता, यद्यपि यह दशा हो कि अमावस्या को चन्द्रमा दृष्टि आवे और प्रलयकाल बिना प्रलयकाल चले तो भी आत्मा को क्षोभ नहीं होता, आत्मपद सदा ज्यों का त्यों है, हे रामजी! ऐसे आत्मा के प्रमाद से जीव दुःख पाते हैं, जब आत्मा का प्रमाद होता है, तब इसको प्रत्यक्ष देह इन्द्रियादि का अपने में भान होता है, तो भी है नहीं, जैसे बालू में तेल नहीं निकलता और आकाश में वन नहीं होता, चन्द्रमंडल में तप्तता नहीं होती, ऐसे आत्मा में देह इन्द्रिय कदाचित् नहीं, हे रामजी! यह जीव सब आत्मरूप है, इसलिये इसका देह इन्द्रिय आदिक से कुछ सम्बन्ध नहीं, परन्तु इनकी क्रिया में जो अभिमान करता है, इसी से बन्धन में पड़ता हैं, हे रामजी! जैसे बेड़ी पर पुरुष बैठता है उसको नदी तट के वृक्ष चलते प्रतीत होते हैं,

ऐसे मन के भ्रम से आत्मा में देह इन्द्रिय भासते हैं, वास्तव से देह इन्द्रिय कोई भिन्न वस्तु नहीं है, आत्मस्वरूप है निषेध किसका किया जाय? हे राम! इन मन इन्द्रियादिक की अपनी सत्ता कुछ नहीं, भ्रम से भासती है, जैसे पर्वत पर श्वेत रंग के बादल का अति सुन्दर ढेर लगा तो सफेद वस्त्र प्रतीत होते हैं, उसमें वस्त्रबुद्धि करना जैसे निष्फल है इसी प्रकार देहादिक में अहंबुद्धि निष्फल है, इसलिये हे राम! एक अखंड आत्मतत्व है अपर द्वैत कुछ नहीं, जब तुम इस तत्व को धारण करोगे तो निरंजन स्वरूप हो, हे रामजी! यह सर्व शरीर आदि चित्त के फुरणे में स्थित है, जैसे चित्त के फुरने में शरीर है ऐसे जीवमें चित्त है, ऐसे ही परमात्मा में जीव है, हे रामजी! इस प्रकार यह दृश्य फुरणा मात्र सिद्ध हुआ, तो द्वैत फिर कोई वस्तु ही नहीं, इस प्रकार विचार करके दृश्य भ्रम को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो जाओ, हे राम! ऐसी वृत्ति द्वारा विचरो, जो कुछ चेष्टा नेति से आकर प्राप्त हो उसको करो, परन्तु अपना अभिमान न हो, जब अपना अहंभाव दूर हुआ तब स्पंद हो अथवा निस्पंद हो समाधिस्थित हो, अथवा राज्य करे। स्थित क्षोभ तुम दोनों को तुल्य हो जायँगे, जब अपनी अभिलाषा दूर हुई तब जैसी चेष्टा आकर प्राप्त हो ऐसी ही हो, वह स्फुरण भी अस्फुरण है जैसे जल के ज्ञान से तरंग बुदबुदे जल ही भासता है, ऐसे तुमको स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होंगे, एक अद्वैत सत्ता ही भान होगी, जैसे सम्यक्दर्शी को तरंग और सौम्यजल एक भासता है, ऐसे तुमको भी एक ही भासेगा, जीवन्मुक्त हो अथवा विदेहमुक्त हो समाधि हो अथवा राज्य हो, तुमको दोनों तुल्य हैं, हे रघुकुल आकाश के चन्द्ररूप श्री रामजी! इसको अपनी अभिलाषा ही बन्धन में डालती है, अभिलाषा के मिटने पर कर्म करो न करो बन्धन कुछ नहीं, क्योंकि करने में भी आत्मा को अक्रिय देखता है और न करने में भी वैसा ही देखता है, द्वैत भावना उसकी निवृत्त हो जाती है, इसलिये उसको चित्त देहादिक सब पदार्थ आत्मरूप ही भासते हैं, हे रामजी! मैं

जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय का मोह निवृत्त हुआ है अब तुम जगे हो और यदि कुछ तुमको संशय रहा हो तो प्रश्न करो कि मैं उत्तर दूँ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे योगोपदेशो-
नामाष्टषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ।।१६८।।

ऊनसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १६९

निराशयोगोपदेशवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! मुझको एक संशय है उसको तुम निवृत्त करो, एक कहते हैं कि बीज से अंकुर होता है और एक कहते हैं, अंकुर से बीज होता है और एक कहते हैं कि, जो कुछ करता है वह दैव ही करता है और एक कहते हैं कर्म करता है तब जन्म पाता है, कर्म ही से सब कुछ होता है, अन्य किसी के अधीन नहीं और एक कहते हैं जब देह होती है तब कर्म करते हैं, एक कहते हैं कर्मों से देह होती है, एक कहते हैं देह से कर्म होते हैं, अर्थात् एक पुरुष प्रयत्न को मानते हैं। अब जैसा आप उचित समझें कहे। वसिष्ठजी बोले—एक एक करके मैं तुम्हें क्या कहूँ, कर्म से लेकर देव पर्यन्त और घट से लेकर आकाशपर्यन्त जितना कुछ क्रिया कर्म द्रव्य है यह सब विकल्पजाल भ्रांतिमात्र है, केवल आत्मस्वरूप अपने आप में स्थित है, द्वैत कुछ हुआ नहीं, हे रामजी! जब संवेदन स्फुरण होता है तब सब कुछ प्रतीत होता है और निस्सम्वेदन हुए कुछ नहीं, कर्म पुरुष प्रयत्न सब दैवसमेत आत्मा के पर्याय हैं जैसे शीत श्वेत आदिक बर्फ के पर्याय हैं, ऐसे यह सब आत्मा के पर्याय हैं, दैव पुरुष हैं और पुरुष दैव है, कर्म देह है और देह कर्म है, बीज अंकुर है और अंकुर में बीज है, दैव कर्म है और कर्म दैव है, वह पुरुष प्रयत्न है, जो इसमें भेद मानते हैं वे पंडितों में पशु हैं, क्योंकि इनका बीज अहंकार है जब अहंकार हुआ तब सब कुछ सिद्ध हुआ, जैसे बीज से वृक्ष होता है, फूल फल शाखा सब बीज से होते हैं यदि बीज हीन हो तो वृक्ष कैसे उत्पन्न हो, हे रामजी! इनका

बीज संवेदन है, अहंकार, संकल्प संवेदन तीनों पर्याय हैं, जब स्फुरण हुआ तब कर्म देह देव सर्व सिद्ध होते हैं, जब स्फुरण मिट गया तो कुछ भासता। इसी को ज्ञानाग्नि से जलाओ कि फूल फल आदि जल जायें, यह जो संवेदन स्फुरण होता है कि मैं ही हूँ, यही संसार का बीज है, ज्ञानरूप अग्नि से जलाओ, जब अहंकार नष्ट हुआ तब द्वैत कुछ न भासेगा, हे रामजी! यह जो प्रपंच भासता है, उसका बीज संवेदन है और संवेदन का बीज शुद्धसंवित‌तत्व है, उसका बीज अपर कोई नहीं, दैवकर्म, पुरुष प्रयत्न क्या है, वह श्रवण कर। प्रथम जो स्पंद संवेदन स्फुरण हुआ है, उसका नाम दैव है, क्योंकि कर्म आदि ही फुरता है, आगे फिर जो क्रिया चलती है वह कर्म है, इसी का नाम पुरुष प्रयत्न है, जो कर्म से आदि देवरूप स्फुरण हुआ है वह क्या रूप है, इसी का जो प्रकृत कर्म हुआ है, उसी को दैव कहा करते हैं, इन सबका बीज संवेदन है, हे रामजी! जो स्वतः पुरुष चिन्मात्र पद एक ही था, जब उससे विकार संयुक्त उत्थान हुआ तब आगे प्रपंच भासने लगा, जब उत्थान का पुनः अभाव हो तब प्रपंच का भी हो जाता है, हे रामजी! जब यह कुछ बनता है, तब सब आपदाएं उसको प्राप्त होती हैं जैसे सूई वस्त्र में प्रवेश करती है उसके पीछे धागा भी चला जाता है, यदि सूई प्रवेश न करे तो धागा किस प्रकार जा सके, ऐसे जब अहंकार प्रवेश करता है तब सब विपदा गमन होता है, जब अहंकार निवृत्ति हुई तब सब विश्व तथा अपना आप आनन्दरूप प्रतीत होने लगा, इसलिये अहंकार का अभाव करो क्योंकि विश्व भ्रम से सिद्ध है, आगे कुछ हुआ नहीं, सब आत्मस्वरूप है, हे रामजी! वासनामात्र विश्व है, जब वासना नष्ट हो तब परम कल्याण है, जिस प्रकार इसकी वासना क्षय हो वही युक्ति श्रेष्ठ है, जब युक्ति से वासना क्षय होगी तब चेष्टा भी होगी, परन्तु पुनर्जन्म न देगी, हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा तुल्य दृष्टि आता है, परन्तु ज्ञानी का संकल्प कच्चे बीजवत् है, पुर्मजन्म देता है और वास्तव देखिये तो न कोई जन्म ही पाता है न कोई मृत होता है केवल अपने आप भाव में स्थित है,

भ्रान्ति से भिन्न भिन्न भासते हैं, स्वरूप से सब अपना ही आप है द्वैत कुछ हुआ नहीं, जो भासतां है वह मिथ्या है, जैसे केले के स्तंभ में सार कुछ नहीं तो ऐसे ही सब प्रपंच मिथ्या है, इसमें सार कुछ नहीं, इसलिये इसकी वासना त्यागकर अपने आप में स्थिति प्राप्त करो, हे रामजी! जिस प्रकार तुम्हारी वासना निर्मल हो जाय उसी यत्न से निर्मूल करो, तब शेष परम शिवपद ही रहेगा। हे रामजी! पुरुष प्रयत्न से जब निरहंकार हो जाओगे तब वासना आप ही क्षय हो जायगी, वासना क्षय का उपाय अपने पुरुष प्रयत्न बिना कोई नहीं, इसलिये हे रामजी! पुरुषार्थ के साथ इसी एक देव की शरण लेनी चाहिये। कर्म, दैव, आदिक वही पुरुष होकर भासता है और कुछ हुआ नहीं जैसे एक ही पुरुष देवों का स्वांग धारण करे, हे रामजी! इस प्रकार विचार पूर्वक सब ईषणाओं को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो जाइये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे निराशयोगोपदेशो नाम ऊनसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१६९॥

सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७०

भावनाप्रतिपादनोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ज्ञानवान् की बुद्धि निर्मल हो जाती है, हृदय में शीतलता होती है, चेतन रस से बुद्धि पूर्ण होती है, दूसरा भान उठ जाता है, इसलिये नित्य अन्तर्मुख रहो, वीतराग तथा वासना से रहित हो जाओ, चिन्मात्र निर्मल शान्तरूप सर्व ब्रह्म की भावना करो। ब्रह्मपद को पाकर नीति के अनुसार चेष्टा करो, जो हर्ष का स्थान हो उसमें हर्ष करो, जो शोक का स्थान हो वहां शोक करो, जैसे अज्ञानी करते हैं, ऐसे करो और हृदय में आकाश की नाईं रहो, हे रामजी! जब इष्ट की प्राप्ति हो तब उससे स्पर्श करो परन्तु हृदय में तृष्णा न हो जब युद्ध आ पड़े तो वीर बनकर युद्ध करो जहां कोई दीनता दिखाये वहां

दया करो, यदि राज्य मिल जाय तो भोगो और यदि कोई कष्ट आ पड़े तो उसको भी भोगो, हे रामजी! सब चेष्टायें अज्ञानी की नाईं करो, अपने हृदय में सदा समता रहे इतर कुछ न फुरे, राग द्वेष से रहित सदा निर्मल हुए रहो, जब तुम ऐसा निश्चय धारण करोगे तुझे कुछ भय न होगा, यद्यपि बड़े से बड़ा दुःख इन्द्र का वज्र पड़े तो भी तुझको स्पर्श न करेगा, हे रामजी! तेरा रूप कैसा है जो शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता, जो आग से नहीं जलता, पानी से नहीं गलता, पवन से नहीं सूखता, केवल निराकार, अजर, अमर है, सबका अपना आप है, हे रामजी! कष्ट तब होता है, जब विलक्षण वस्तु होती है। अग्नि तब जलती है, जब भिन्न काष्ठ आदिक वस्तु होती है, अग्नि को अग्नि जलाती नहीं, जल को जल गलाता नहीं, इसलिये तुम अपने आप में स्थित हो जाओ, हे रामजी! संवित् रूप आलयवत् स्थिर स्थान है, उसमें स्थित होइये, जैसे पक्षी सब ओर से संकल्पों को त्यागकर आलय में स्थित होता है, तब सुख पाता है, ऐसे जब तू सर्व कलनाओं को त्यागकर अन्तर्मुख संवित् में स्थित होगा तब राग द्वेष रूप धुंधलापन कोई न रहेगा, हे रामजी! संसाररूप समुद्र बड़ा प्रवाह है, उससे निकलना तब हो जब आश्रय हो वह आश्रय तुझको कहता हूँ, अनुभवरूप आत्मा का आश्रय लेकर भवसागर का पार प्राप्त करो, विलम्ब न करो, अपने आप में स्थिति रक्खो, हे रामजी! संसाररूप वृक्ष का पार पाना चाहे तो नहीं मिलता और मैं तुझको ऐसा उपाय कहता हूँ, जो सबका अपना आप है, जो सबका अधिष्ठान है उसको ग्रहण करो, जब उसको ग्रहण किया तो सबको ग्रहण किया, हे रामजी! जितना प्रपञ्च आपको भासता है, सब आत्मरूप है, उसकी भावना करो और जाग्रत में सुषुप्त हो जाओ और सुषुप्त में जाग्रत हो जाओ, संसार की सत्ता जो जाग्रत है उसकी ओर से सुषुप्त हो जाओ, स्फुरण रहित होकर तुरीय पद स्थित होने को सुषुप्त कहते हैं, जहां कोई गुण क्षोभ नहीं है, निर्मल शान्त रूप है, जहां एक और दो की कोई कलना नहीं, उसमें स्थिति करो, रामजी बोले–हे भगवन्! ऐसे जो शान्त

रूप तुरीया पद में स्थित होना तुमने कहा, तुम्हारे अन्दर यह नहीं फुरता कि मैं वसिष्ठ हूँ, इसका रूप क्या है, जो अहं प्रतीति तुमको नहीं होती, वाल्मीकि बोले—हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने प्रश्न किया तब वसिष्ठजी तूष्णी हो गये और सब सभा संशय के समुद्र में मग्न हुई, तब रामचन्द्रजी बोले—भगवन्! तुम्हारा तूष्णीं होना अयोग्य है, तुम साक्षात् विश्वगुरु हो, ब्रह्मवेत्ता हो, ऐसी कौन बात है तो तुमको न आती हो, अथवा मुझको समर्थ नहीं देखते, तो कहिये। श्रीरामजी के ऐसा कहने पर वसिष्ठजी घड़ी भर के बाद बोले—हे राम! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने की सामर्थ्य न होने के कारण मैं चुप नहीं हुआ, अपितु उसका उत्तर ही यही था कि कुछ न कहा जाय, अगर प्रश्न करने वाला ज्ञानवान् हो तो उसके प्रश्न का उत्तर ज्ञान से देना चाहिये परन्तु यदि प्रश्नकर्ता अज्ञानी है तो उत्तर भी उसी के अनुसार होगा। हे रामजी! जो कुछ कहना हो, प्रतियोगी के साथ मिला हुआ है, प्रतियोगी बिना मैं कोई शब्द कैसे कहूँ, आगे तू सविकल्प शब्द का अधिकारी था और अब तुझको निर्विकल्प का उपदेश किया है, हे रामजी! शब्द चार प्रकार के हैं, एक सूक्ष्म अर्थ का, दूसरा परमार्थ का। एक अल्प है, एक दीर्घ है, तीन कलंक इनमें रहते हैं, एक संशय, एक प्रतियोग, एक भेद, यह तीनों कलंक शब्द में रहते हैं जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु रहते हैं, ऐसे शब्द में कलंक रहते हैं और जो पद मन और वाणी से अतीत है तो कलंकित शब्द कैसे किसका ग्रहण करे, हे रामजी! काष्ठ मौन किसको कहते हैं, जहां न इंद्रियों में स्फुरण हो, न मन में हो, उसे काष्ठ मौन कहते हैं, ऐसे पद को मैं वाणी से कैसे कहूँ, जितना बोलना होता है वह सविकल्प होता है, उस तेरे प्रश्न का उत्तर तूष्णी हैं, राम बोले—हे भगवन् आप कहते हैं कि बोलना सविकल्प है और प्रतियोगी सहित होता है, जो कुछ ब्रह्म में दूषण है उसका निषेध करके कहो। मैं प्रतियोगी को न विचारूंगा, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मैं चिदाकाश स्वरूप हूँ, चैत्य से रहित चिन्मात्र हूँ और शान्तरूप हूँ, सम हूँ, सब कलना से रहित केवल आत्म

तत्वमात्र हूँ और तू भी चिदाकाश है, सर्व जगत् भी चिदाकाश है और अहं, त्वं कोई नहीं कहना, क्योंकि दूसरी सत्ता कोई नहीं सब चिदाकाश है, अहं संवेदन से रहित-शुद्ध है, जो सापेक्षिक अहं फुरता है और मोक्ष की भी इच्छा हो तो सिद्धि नहीं प्राप्त होती, क्योंकि जो कुछ आपको मानकर स्फुरण होता है वह एक अहंकार के कई अहंकार हो जाते हैं, यह अहं इसके गले में फांसी पड़ती है, जब अहंता से रहित हो तब आत्मपद को प्राप्त होता है, हे रामजी! जब यह सब की नाईं हो जाय इसे कुछ अपना अहंता अभिमान न फुरे तब संसार समुद्र का पार प्राप्त करे और जब द्वैत से मिला हुआ जीता है तब तक जन्म मरण के बन्धन में है, कदाचित् मुक्त नहीं होता, जैसे जन्म का अन्धा चित्र की पुतली को देख नहीं सकता, ऐसे अहंता से युक्त मुक्ति को नहीं पा सकता, अहंता का अभाव होने पर कल्याण हो सकता है, स्वरूप के आगे अहंता ही आवरण है, हे रामजी! जब यह चेतन हुआ स्फुरण हुआ तब इसको बन्धन पड़ा, जब अफुर हो जाय तब कल्याण होता है, जब चैतन्योमुखत्व होता है तब इसका नाम पशु होता है, पशु शरीर पाता है, जब चैत्य से रहित शुद्ध चेतन प्रत्यक् आत्मा में स्थित होता है तब मनुष्य जन्म सफल होता है, इस मनुष्य जन्म को पाकर जो कुछ पाना था, पा लिया, हे रामजी! यदि मनुष्य जन्म पाकर भी ज्ञान नहीं हुआ तो और किस जन्म में होना है, यह संसार चित्त के फुरने से होता है, जब चित्त संसरण से रहित हो तब केवल केवली भाव ही भासता है, ज्ञानवान् की दृष्टि में अब भी कुछ नहीं हुआ, केवल आत्मस्वरूप ही भासता है, अस्फुरण स्फुरण दोनों उसको तुल्य दिखाई देते हैं, अन्तःकरण चतुष्टय आत्मस्वरूप है और अज्ञानी को भिन्न भिन्न भासते हैं इसी से चित्त आदिक जड़ हैं, मिथ्या हैं और आत्मस्वरूप से सब आत्मरूप हैं, आत्मा देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है, ज्ञानी को सब आत्मा ही भासता है, चाहे कैसी चेष्टा करे, वह लोकेषणा धनईषणा पुत्र ईषणा आदि सब ईषणाओं से रहित हैं, न लोक की इच्छा करता है, न लोक सम्मान की, न पुत्र धन की, न अन्य

संसारसुख पाने की इच्छा करता है, केवल आत्म अनुभव में स्थित है और सबको आपना आप जानता है, हे रामजी! जिस पद को प्राप्त होता है, उस पद को मेरी वाणी कह नहीं सकती; अनिर्वाच्यपद है और अहं ब्रह्मास्मि कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ और यह जगत् है, जब जानिये कि उसको ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ, उसको शास्त्र श्रवण का अधिकार है, जैसे कोई कहे, मेरे हाथ में दीपक है और अन्धकार भी मुझको दृष्टि आता है तब जानिये कि इसके हाथ में दीपक नहीं, ऐसे जब तक जगत् भासता है तब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ, इस जीव को निर्वाण होना है, जब प्रत्यक् चेतन में स्थित हुआ तब इसे संसार का भान न रहेगा, ऐसी भी दृष्टि न रहेगी कि मैं सम्यक्दर्शी हूँ, केवल निर्वाण हो जायेगा, हे रामजी! अब भी निर्वाण पद है अन्य कुछ नहीं हुआ, किसलिये किसी को कोई उपदेश करे, केवल एक रस शून्य है, शून्य और आत्मा में भेद कुछ नहीं और जो कुछ भेद है उसको ज्ञानवान् जानते हैं, वहां वाणी की गति नहीं, उसमें जो अनन्त संवेदन स्फुरण होता है, उससे संसार फुरता है और संवेदन ही से लीन होता है। जैसे पवनसे अग्नि प्रज्वलित होता है और पवन से ही लीन हो जाता है, ऐसे संवेदन बहिर्मुख स्फुरण होता है, सब संसार भासता है जब अन्तर्मुख होता है तब जगत् लीन हो जाता है, इसलिये संसार स्फुरण मात्र है, जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है, ऐसे आत्मा में जगत् प्रमाद से भासता है, जगत् कुछ बना नहीं, केवल ब्रह्म सत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें स्थित हो जाओ, जब स्थित होगा तब अंशेष विशेष भाव मिट जायगा, हे रामजी! ग्राह्य और ग्राहक सम्बन्ध भी जाता रहेगा, केवल जो परमात्म तत्व शुद्ध है, वही अजर अमर है, खाते पीते उठते बैठते सोते जागते वृत्ति वहां ही रखनी उचित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे भावनाप्रतिपादनोपदेशो नाम सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७०।।

एकसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७१

हंससंन्यासयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस प्रकार आत्मपद की प्राप्ति है वह सुनिये, जिस समय पुरुष निरहंकार होता है, तब आत्मपद को प्राप्त होता है, जो सर्वात्मा है उसको आवरण करनेवाली अविद्या है, जैसे सूर्यमंडल के आगे आकर बादल उसको ढ़क लेता है, ऐसे अविद्या आत्मा पर आवरण डालती है, उस अविद्या से उन्मत्त की नाईं मूर्ख चेष्टा करते हैं और जो अहंता से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे भीत (दीवार) के ऊपर रोचक मूर्तियां युद्ध सम्बन्धी अथवा उनकी सेना के दृश्यरूप में दिखायी जाती हैं वह देखने मात्र हैं, केवल शोभा बढाती हैं, उनसे किसी प्रकार की हिंसा की संभावना नहीं; केवल चिड़चिड़ापन की शकल में एक दो बालक तत्सम्बन्धी चित्त दिखाई देते हैं। सर्तियों में जो सेना लिखी होती है वह भी शान्तरूप है, ऐसे ज्ञानवान् की चेष्टा में भी क्षोभ दृष्टि आता है परन्तु सदा अक्षोभ निर्वाणरूप है, वासना सहित दृष्टि आता है परन्तु वह सदा वासना से रहित है, जैसे जल में तरंग क्षोभ सा दृष्टि आता है परन्तु जल से इतर कुछ नहीं है, ऐसे ही ज्ञानवान् को ब्रह्म से इतर कुछ नहीं भासता, जिसके अंदर दृश्य भाव शांत हो गया है वह बाहिर क्षोभवान् दृष्टि आता है तो भी मुक्त रूप है। जैसे धुएं के बादल, आकाश में हाथी, घोड़ा, पहाड़ रूप दृष्टि आते हैं परन्तु है कुछ नहीं, ऐसे जगत् दृष्टि आता है, परन्तु है कुछ नहीं। अहंकार से जगत् भासता है, अहंकार से रहित निर्विकार शांतरूप हो जाता है, ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है उसको पाकर ज्ञानवान् सुशोभित होता है ऐसा शरत्काल भी शोभावान् नहीं होता, समुद्र भी ऐसी सुषमा धारण नहीं करता। पूर्णमासी का चन्द्रमा भी ऐसी शोभा का आधार नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् शोभाधाम होता है, हे रामजी! अहंता ही पुरुष के लिये मल है, जब इसका नाश हो तब स्वरूप की

प्राप्ति निश्चित है और हृदयस्थ संसार की पहिली सुख भावना निवृत्त हो जाती है क्योंकि भ्रम से उत्पन्न होती थी, जो वस्तु भ्रम से उत्पन्न हुई होती है, भ्रम का अभाव होने पर उसका भी अभाव हो जाता है, जैसे आकाश में धुएं का बादल नाना प्रकार के आकार का होकर भासता है, परन्तु है नहीं, ऐसे यह विश्व अन होता भासता है, विचार किये रहता नहीं, हे राम! जब तक इसको संसार की वासना है तब तक बंध है, जब वासना निवृत्त हो जाय तब आत्मपद की प्राप्ति हो और समस्त कलना मिट जाय, इंद्रियों के इष्ट अनिष्ट में तुल्य हो जाय। यद्यपि व्यवहारकर्ता है तो भी शान्तरूप है जैसे शब्द को रागद्वेष नहीं फुरता, ऐसे ज्ञानी निर्वाण पद को प्राप्त होता है, जिस निर्वाण में सत् असत् शब्द कोई नहीं, केवल ब्रह्म स्वरूप है, ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता, केवल आत्मत्व मात्र है और अद्वैत है, हे रामजी! विश्व भी वही रूप है, चेतन आकाश है, जैसी जैसी भावना होती है ऐसा–२ चेतन होकर भासता है, जब जगत् की भावना होती है तब नाना प्रकार के आकार दृष्टि आते हैं और जब ब्रह्म की भावना होती है तब ब्रह्म भासता है, जैसे विष में अमृत की भावना होती है और विधि संयुक्त खाते हैं, तब विष भी अमृत हो जाता है और यदि विधि रहित सेवन करें तो मृत्युदायक है, ऐसे जब इस संसार को विधि संयुक्त देखें अर्थात् विचारकर देखें तो ब्रह्मस्वरूप भासता है और यदि विचार कर देंखे तो जगत् रूप भासता है, विचार तब होता है जब अहंकार निवृत्त होता है, अहंकार आकाश में उत्पन्न होता है और आकाश शून्यता में उत्पन्न होता है और शून्यता आत्मा के प्रमाद से उत्पन्न होती है तदनन्तर अहंकार से जगत् हुआ है और अहंकार मिथ्या है, हे रामजी! शरीरादि चित्तपर्यन्त विचारकर देखें तो कहीं दृष्टि नहीं आते, इनमें अहं प्रत्यय भ्रम मात्र है, जब तुम विचारकर देखोगे तो मरीचिका के जलवत् भासेगा, हे रामजी! इस प्रपंच के त्यागने में यत्न कुछ नहीं, ऐसे ही मिथ्या संसार के त्यागने में यत्न कुछ नहीं, फिर इसका निर्णय क्या करें जो है ही नहीं, जैसे बन्ध्या के पुत्र की

वाणी पर विचार किया जाये कि सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है, तो वह कोरी कल्पना ही होगी क्योंकि बंध्या का पुत्र तो हुआ ही नहीं, ऐसे ही प्रपंच भी नहीं है इसका भी क्या निर्णय किया जाये, इसलिये तुम वही करो जो मैं कहूँ, तब आत्मपद की प्राप्ति हो, हे रामजी! ऐसी भावना करो कि न मैं हूँ, न जगत् है। जब अहंकार न रहा तब कलना कहां हो, इसका होना ही अनर्थ है, जब ऐसा विचार उत्पन्न होता है तब भोग की वासना क्षीण हो जाती है और सत्संग की प्राप्ति होती है, अन्यथा भोग वासना नष्ट नहीं होती, हे रामजी! जब तक इसको अहन्ता उठती है, अर्थात् यह कि दृश्य का प्रकृति से मिलान है, तब तक द्वैत भ्रम नहीं मिटता, जब अहंकार का उत्थान मिट जाय तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता ही रहती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे हंससंन्यासयोगो नाम एकसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१७१॥

द्विसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७२

निर्वाणयुक्तत्त्युपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब अहंता का उत्थान होता है, तब स्वरूप का आवरण होता है और जब अहंता मिट जाय तब स्वरूप की प्राप्ति होती है, इस संसार का बीज अहंता ही है, वह अहंकार ही मिथ्या है, उसका कार्य सत्य कैसे हो यदि प्रपंच मिथ्या हुआ तो पदार्थ कहां से सत् हो, हे रामजी! ऐसा जो ब्रह्म है, उसकी युक्ति क्या है, जो सकंल्पपुरुष भी असत्य है और उसका संशय भी मिथ्या है और जिसके प्रति प्रश्न करता है, वह भी मिथ्या है, जैसे स्वप्न में द्वैत कलना होती है वह असत् है, ऐसे यह जगत् द्वैत भी असत्य है, हे रामजी! यह सब जगत् इसके अन्तर स्थित है और प्रमाद से बाहिर भासता है, यह अपना ही स्वप्न दृष्टि आता है, जो अन्तर की बाह्य सृष्टि भासती है, इसलिये यह

जगत् सब चिद्रूप है, इतर कुछ नहीं वह चेतन सत्ता आकाश से भी अति सूक्ष्म है और स्वच्छ है, हे रामजी! यह जगत् चित्त से चेता है, इसलिये कहीं हुआ नहीं, न किसी का नाश होता है न उत्पत्ति होती है, न किसी का कहीं जन्म है, न मृत्यु है, सब ब्रह्म ही है, हे रामजी! जगत् के नाश हुए कुछ नाश नहीं होता, क्योंकि हुआ कुछ नहीं, जैसे स्वप्न के पहाड़ नष्ट हुए, जैसे संकल्पपुर नष्ट हुए, जो उत्पन्न ही नहीं हुए, उनका नष्ट क्या हुआ, ऐसे यह जगत् है, कुछ हुआ नहीं, यह विचारकर देखता है, जो वस्तु अविचार से उत्पन्न हुई हो, वह विचार से कैसे रहे, जैसे जो पदार्थ तम से उत्पन्न हुआ हो, वह प्रकाश में कैसे रह सके, ऐसे यह जगत् है, अविचार से भासता है विचार करने से नाश हो जाता है, हे रामजी! यह जगत् संकल्प मात्र है, जैसे संकल्प नगर होता है, ऐसे यह संसार है, इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं, इसलिये रूप इंद्रिय और मन के अभाव का चिन्तन करना, यह संसार है, जैसे समुद्र में चक्र नहीं है जल ही है उसमें प्रीति भावना करना अज्ञान है, हे रामजी! एक ऐसे हैं, जो बाहिर से शान्तरूप दृष्टि और अन्दर उनके क्षोभ होता है, एक ऐसे हैं कि अन्दर से शीतल हैं, अर्थात् निर्मल हैं, बाहिर से नाना प्रकार की चेष्टा करते हैं जिनके दोनों मिट जाते हैं, वे मोक्ष के भागी हैं, उनके अन्दर बाहिर एकता होती है जैसे समुद्र में घट भरकर रक्खें तो उसके अन्दर बाहिर जल होता है, हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मा को ज्यों का त्यों जाना है उसको न भय होता है, न शोक होता है, न मोह होता है, केवल स्वच्छ रूप शान्त आत्मा में स्थित है, भय तब होता है, जब दूसरा भासता है, उसका सब द्वैत दूर हो जाता है और शान्तरूप होता है, हे रामजी! सम्यक् दर्शीको जगत् दुःख नहीं देता ओर असम्यक् दर्शीको दुःख देता है, जैसे जेवरी होती है, जो जानता है उसको जेवरी भासती है और जो नहीं जानता उसको सर्प भासता है और भयभीत हो जाता है, ऐसे जिसको आत्मा का साक्षात्कार है, उसको जगत् कल्पना कोई नहीं प्रतीत होती। चिदानंद ब्रह्म अधिष्ठानरूप भासता है और जिसको अधिष्ठान का अज्ञान है,

उसको जगत् द्वैतरूप होकर प्रतीत होता है और राग द्वेष में जलता है, हे रामजी! अन्य जगत् कोई नहीं इसके अनुभव में जगत् कल्पना होती है, अज्ञान से द्वैत रूप हो भासता है, जब अपनी स्वभाव सत्ता में जगता है, तब सब अपना आप प्रतीत होता है, जैसे स्वप्न में अपना आप ही द्वैत रूप हो भासता है और रागद्वेष उत्पन्न होता है, तब सब आत्मरूप हो भासता है, ऐसे यह जगत् है, न इस जगत् का कोई निमित्त कारण है, न कोई उपादान कारण है, जो पदार्थ कारण बिना प्रतीत हो, उसे असत् जानिये, वास्तव से उत्पन्न नहीं हुआ भ्रम से सिद्ध हुआ है, जैसे स्वप्न दृष्टि अकारण है, ऐसे यह जगत् अकारण है, भ्रम से भासता है, हे राम! शास्त्र को युक्ति पूर्वक विचार करके देखो कि द्वैत भ्रम मिट जाय, वास्तव में यह किंचित् मात्र भी कुछ बना नहीं। जैसे आकाश में नीलता कुछ बनी नहीं और मरुस्थल की नदी प्रतीत होती है, ऐसे ही इस जगत् को जानना चाहिये, आत्मा शुद्ध है, अद्वैत है, उसमें अहंकृति का स्फुरण ही दुःख है और दुःख का कारण है और यदि स्वरूप का प्रमाद न हो तो अहंकृति भी दुःख का कारण नहीं और यदि स्वरूप विस्मृति है तो अहंकृति रूप विषवल्ली बढ़ती ही जाती है और नाना प्रकार के आकार धारण करती है, वासना दृढ़ होती है, जब तक वासना होती है तब तक बन्ध है, जब वासना निवृत्त होती है, तब कल्याण होता है, हे रामजी! जिस दृश्य की भावना करता है वह दृश्य भी कुछ भिन्न नहीं, जैसे—समुद्र में तरंग चक्र होते हैं, वे इतर कुछ नहीं, ऐसे अहंकार आदिक जो दृश्य हैं वे हैं ही नहीं। उसकी इच्छा करनी मूर्खता है, ज्ञानवान् की वासना क्षय हो जाती है, जैसे महा अणु होता है तब आकाश को ग्रहण करता है, जो आकाशवत् बहुत सूक्ष्म होता है, ऐसे ज्ञानवान् की वासना सूक्ष्म होती है, वह वासना उसके बन्धन का कारण नहीं होती, क्योंकि जो संसार की सत्यता हृदय में नहीं रहती, इसलिये सत्यता नहीं रहती, जो आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और जब आत्मा का प्रमाद है तब अहंता उदय होती है और दृश्य प्रतीति होती है जैसे कि नेत्रों को खोलकर दृश्य का ग्रहण

किया जाता है, जब नेत्र मूंद लिये जायँ तब दृश्य रूप का अभाव हो जाता है ऐसे जब अहंता उदय होती है, तब दृश्य भी होता है, जब अहन्ता न रहे तब संसार का अभाव हो जाता है, हे रामजी! अज्ञान किसका नाम है, वह सुनिये, अहन्ता का उदय होना ही अज्ञान है, अहन्ता से बन्धन है और अहन्ता के न रहने पर मोक्ष है, आपकी जैसी इच्छा हो करो, हे रामजी! देह इन्द्रियादिक मृगतृष्णा के जलवत् हैं, इनमें अहन्ता करना मूर्खता है, ज्ञानवान् अहन्ता को त्यागकर आत्मपद में स्थित होता है, संसार के इष्ट अनिष्ट में हर्ष शोक नहीं करता, जैसे आकाश में बादल हों तो भी ज्यों का त्यों है, ऐसे ही ज्ञानी ज्यों का त्यों है, उसमें अहंकार नहीं इसलिये सुखरूप है, हे रामजी! रूप, दृश्य, इन्द्रिय तथा मन उसके जाते रहते हैं, जैसे वन्ध्या के पुत्र की मृत्यु नहीं होती, ऐसे ज्ञानी के रूप अवलोकन और मनस्कार नष्ट हो गये हैं, क्योंकि पूर्णब्रह्म उसको अनुभूत है, उसकी द्वैत भावना नितान्त नष्ट हो गयी है और संसार का बीज अहंता अज्ञानी में दृढ़ है, हे राम! अहंता से इसकी बुद्धि दूषित हो गयी है, इसलिये दुःख पाता है, इस दुःख के नाश का उपाय मैं कहता हूँ, सुनो—सत् पुरुषों के वचनों में सद्भावना करना और परम उपादेयता के रूप से उन्हें धारण करन उनके उन अमृतमय वचनों से अहन्तारूप यह दीर्घ दुःख निर्मल हो जायेगा और सत्पुरुषों के वचनों की अवहेलना करने से अहंतारूप बेताल फिर उत्पन्न हो जाता है, जो कि मुक्तिमार्ग का महान् विघ्न है, इसलिये ज्ञानवान् सत्पुरुषों की शरण लेकर अहन्ता को दूर करो, इसमें कोई कठिनता नहीं, यह अपने अधीन है, अपना स्वभाव चिन्तन करने के लिये कोई श्रम नहीं करना पड़ता, सत्संग द्वारा यह सब शुभ साधन सुगम बन जाते हैं, ज्ञानवान् पुरुषों की सेवा करना उनके बुद्धिवर्धक वचनों को सुनना और उन पर विचार करके अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण करना आदि, जब बुद्धि तीक्ष्ण होगी तब अहंतारूप विषवल्ली का नाश करेगी, यह विचार कीजिये कि मैं कौन हूं, यह जगत् क्या है, जब सत्संग के बल से ऐसा विचार करो तो सत् पुरुषों और शास्त्र के बल से

सत् सत् और असत् असत् निश्चित हो जाता है, सत् जानकर आत्मा की भावना करनी और मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या जानकर असत् जगत् की भावना का त्याग करना चाहिये, क्योंकि जिनको सुख जानकर पाने की इच्छा करता था, वे दुःखदायी भासते हैं, जैसे मरुस्थल में जल जानकर मृग दौड़ता है तो दुःख पाता है, अधिष्ठान के अज्ञान से ही उसे यह दुःख होता है, वैसे अधिष्ठान सबका आत्म तत्व है, वह शुद्धरूप परम शान्त परमानन्द स्वरूप है, जिसको पाकर पुनः दुःखी नहीं होता, हे रामजी! इसके बन्धन का कारण भोग की वासना है, वह भोग से शान्त नहीं होती, जब सत्संग होता है तब इसका कल्याण होता है, अनात्मा में अहंभाव छूट जाता है, प्रकारान्तर से शान्ति नहीं होती, हे रामजी! हमारे वचन बालकों जैसे नहीं हैं, हमारा कहना यथार्थ है, क्योंकि हमें स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान है, जब जीव की अहन्ता मिट जाय, तब सुखी हो, इसलिये अहंता का नाश करो, अहन्ता नाश हुई तब जानिये कि चैत्य भी भावना मिट जाती है, हे रामजी! जब ज्ञान रूप सूर्य उदय होता है तब अहन्ता रूप अन्धकार नष्ट होता है और ज्ञान तब होता है, जब सत् पुरुषों ज्ञानवान् महात्माओं के विचार प्राप्त हों और विषयों से वैराग्य हो तथा स्वरूप प्राप्ति का अभ्यास किया जाया, तभी स्वरूप की प्राप्ति होती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे निर्वाणयुक्त्युपदेशवर्णनं नाम द्विसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७२।।

त्रिसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७३

शान्तिस्थितियोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिन पुरुषों ने अपना अज्ञान नहीं नाश किया उसने ज्ञान से किया जा सकने वाला कोई काम नहीं किया। अज्ञान से इसको अहंभावना होती है तब आगे जगत् भासता है और लोक

परलोक की भावना करता है इसी वासना से जन्म मरण पाता है, हे रामजी! जब तक संसार शब्द का अर्थ इसके हृदय में दृढ़ है तब तक शब्द अर्थ का अभाव का चिन्तन करे, जहां उसको जगत् भासता है वहां ब्रह्म की भावना करे, जब ब्रह्म भावना करेगा तब संसार के शब्द अर्थ से रहित होगा और आत्मपद प्रतीत होगा, हे रामजी! इस संसार में दो पदार्थ हैं, एक यह लोक दूसरा परलोक, अज्ञानी इस लोक का उद्यम करते हैं परलोक का नहीं करते इसलिये दुःख पाते हैं, तृष्णा मिटती नहीं और जो विचारवान् पुरुष हैं, वे परलोक का उद्यम करते हैं, वे यहां भी शोभा पाते हैं और परलोक में भी सुख पाते हैं उनके दोनों लोकों के कष्ट मिट जाते हैं और जो इसी लोक का उद्यम करते हैं, उनको दोनों ही दुःखदायक होते हैं, यहां तृष्णा नहीं मिटती और आगे जाकर नरक भोगते हैं और जिन पुरुषों ने अपने परलोक का यत्न किया है, उनको वही सिद्ध होता है और सुखी होते हैं और जिन्होंने यत्न नहीं किया, वे दुःखी होते हैं, इसलिये अहंकार से रहित होने का नाम ही आत्मपद की प्राप्ति है, जब तक इसको परिच्छिन्न अहंकार उत्पन्न होता है, जब तक दुःखी होता है और नाम इसका जीव है जो कुछ फुरता है उससे विश्व की उत्पत्ति होती है, जैसे नेत्र के खोलने से रूप प्रतीत होता है और नेत्रों के मूंदने से रूप का अभाव हो जाता है, ऐसे जब अहंता फुरती है, तब दृश्य भासता है और जब अहंता का अभाव हो, तब दृश्य का अभाव हो जाता है, वह अहन्ता अज्ञान से सिद्ध होती है, ज्ञान के उत्पन्न होने पर निवृत्त हो जाती है, हे रामजी! जब यह पुरुष अपना प्रयत्न करे और साथ ही सत्संग करे तो संसार समुद्र को तर जायगा, इतर नहीं तरता, हे रामजी! युक्ति से जैसे विष भी अमृत हो जाता है ऐसे पुरुषार्थ से सिद्धि प्राप्त होती है। हे रामजी! इस जीवन को दो रोग हैं, इस लोक का और परलोक का उससे जीव दुःख पाते हैं, जिन पुरुषों ने सन्तों के साथ विलाप करके इन रोगों की दवाई की है वे मुक्तरूप हैं और जिन्होंने औषधि सेवन नहीं किया वे लोग पंडित होकर भी दुःख पाते हैं। वह

औषध क्या है? शमदमादि तथा सत्संग का सेवन करना, इन साधनों से यत्न द्वारा जिन्होंने आत्मपद पाया है वे कल्याणमूर्ति हैं, हे रामजी! चिकित्सा का औषध भी यही है जिन्होंने किया है वे सफल हुए, जो भोगलम्पट रहे, वे मूर्ख हैं, वे वहाँ निरोषध स्थान में पड़े रहेंगे जहां किसी औषध की प्राप्ति न हो, इसलिये हे रामजी! इन भोगों का त्याग करो और आत्मविचार में सावधान हो जाओ, यही औषध है, हे रामजी! जिस पुरुष ने मन नहीं जीता वह मूढ़ है, भोगरूप कीचड़ में मग्न है, आपत्ति का पात्र है, जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं, ऐसे इसको आपत्तियां प्राप्त होती हैं और जिसकी तृष्णा भोग से निवृत्त हुई है और वैराग्य उत्पन्न हुआ है, वह मुक्तयोग को प्राप्त होता है, जैसे जीवन की आदि बाल अवस्था है ऐसे निर्वाणपद की आदि वैराग्य है, हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, भ्रम से प्रतीत होता है, जैसे दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है और संकल्प नगर भ्रममात्र होता है तथा मृगतृष्णा का जल भ्रम से भासता है ऐसे यह जगत् भ्रम से भासता है, संसार का बीज अहंता है, जब अहन्ता उदय हुई तब रूप अवलोक भासते हैं इसलिये यही चिन्तन कर कि मैं नहीं, जब यही भावना करेगा तब शेष जो रहेगा, वह तेरा शान्त रूप है, जिसमें आकाश भी शून्य है केवल आत्मतत्वमात्र है, अहं के उत्थान से रहित है और जड़ अजड़ है और जड़ता का अभाव है, इसलिये अजड़ है, केवल ज्ञानमात्र है और विश्व उसमें ऐसे हैं, जैसे जल में तरङ्ग होते हैं और जैसे पवन में स्पन्द होता है और आकाश में जैसे शून्यता है, ऐसे आत्मा में जगत् है, वह आत्मा से इतर कुछ नहीं, जो कुछ आत्मा से इतर होता तो प्रलय में नाश हो जाता वह प्रलय काल में भी रहता है, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास सदा रहता है ऐसे आत्मा में विश्व का चमत्कार रहता है, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव में आती है, ऐसे यह जाग्रत् भी अनुभव रूप है, आत्मा अन्तर बाहर से रहित है, शुद्ध है, अद्वैत है, अजर है, अमर है, चैत्य से रहित चेतन है और सर्व शब्द अर्थ का अधिष्ठान वही है, स्फुरणों से दूसरा भासता है और स्फुरण अस्फुरण

वही है जैसे चलना ठहरना दोनों पवनरूप हैं, जब चलता है तब प्रतीत होता है, जब ठहरता है तब नहीं भासता, ऐसे जब चित्तशक्ति फुरती है, तब विश्वरूप होकर भासती है, जब अफुर होती है, तब केवल मात्र पद रहता है, वह निराभास है अविनाशी और निर्विकल्प है और सबका अपना आप है और सत् असत् जड़ चेतन आदि शब्द उसी की अधिष्ठान सत्ता में फुरते हैं इतर कुछ नहीं, इसलिये उसी अपने स्वरूप में स्थित रहो जो परमार्थ सत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभाव में स्थित है, अहं त्वं से रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है उसी में स्थित रहो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे शान्तिस्थितियोगोपदेशो नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७३।।

चतुःसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७४

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे राम! जिनको दुःख सुख ही चलाते हैं अर्थात् जो लोग इन्द्रियों के इष्ट विषय में सुखी और अनिष्ट विषय में दुःखी होते हैं और राग द्वेष के वश में पड़े व्यवहार करते हैं उनको समझ लो कि यह समाप्त हो चुके हैं, जिनमें पुरुष प्रयत्न नहीं रहा, वे लोग बार–बार जन्म लेंगे और जिनको सुख दुःख नहीं चलाते वे अविनाशी हैं वे जन्म मृत्यु के पाश से मुक्त हो चुके हैं, उनको शास्त्र का उपदेश नहीं है, हे राम! रागद्वेष तब होता है जब मन में इच्छा होती है और इच्छा तब होती है जब संसार की सत्यता दृढ़ होती है, जिसको असत्य जानता है, उसकी बुद्धि ग्रहण नहीं करती और इच्छा भी नहीं होती और जिसको सत्य जानता है उसमें बुद्धि दौड़ती है, हे रामजी! अज्ञानी को संसार सत्य भासता है, उससे दुःख पाता है, जब शान्तपद के लिये यत्न करें तब दुःख से मुक्त हों। शान्तपद कैसा है? जिसमें अहं त्वं और जगत् ब्रह्म यह शब्द कोई नहीं, केवल चिन्मात्र आकाशरूप है, उसमें अहं त्वं जगत् ब्रह्म

शब्द कैसे हो, यह शब्द सब विचार के निमित्त कहे हैं, वास्तव से शब्द कोई नहीं, अद्वैत चैत्य से रहित चिन्मात्र है, जब सर्व शब्द का बोध किया तब शेष शान्तपद रहता है अभाव से नहीं, इसी से आत्मत्व मात्र कहा है और जगत् फुरणे से उसी में भासता है, उस जगत् में जहां ज्ञप्ति जाती है और उसका ज्ञान इसको होता है, हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है और एक ज्ञप्ति ज्ञान है, अधिष्ठान ज्ञान सर्वज्ञ हैं, वह ईश्वर को है और ज्ञप्ति ज्ञान जीव को है, एक लिंग शरीर का जिसको अभिमान है वह जीव और सर्व लिंग शरीर का अभिमानी ईश्वर है, जहां इस जीव की प्राप्ति पहुँचती है, उसको जानता है, जैसे एक शय्या पर दो पुरुष सोये हों एक को स्वप्न आया उसमें मेघ गर्जते हैं और दूसरा सोया है, उसको मेघ का शब्द नहीं सुन पड़ता क्योंकि जो ज्ञप्ति उसमें नहीं, परन्तु मेघ तो उसके स्वप्नमें जैसे सिद्ध विचरते हैं और इसको दृष्टि नहीं आते क्योंकि इसकी प्राप्ति नहीं जाती और सब सृष्टि वसती है, उसका ज्ञान ईश्वर को हैं, वह सृष्टि भी संकल्प मात्र है, कुछ बनी नहीं, भ्रम से प्रतीत होती है, जैसे बादल में हस्ती, घोड़े मनुष्य आदिक विकार भासते हैं, वे भ्रान्तिमात्र हैं, ऐसे आत्मा के अज्ञान से यह सृष्टि नाना प्रकार से भासती है, हे रामजी! यह आश्चर्य है कि आत्मा में अहंकार उत्थान होता है कि मैं हूँ ऐसे जानता है और वर्णाश्रम अपने को मानता है और विचारकर देखें तो अहं कुछ वस्तु सिद्ध नहीं होती और अहं अहं फुरती है, यह आश्चर्य है कि भूत कहां से उठा है शुद्ध आत्म ब्रह्म में यह कैसे हुआ, अनहोते अहंकार ने तुमको मोहित किया है, इसके त्यागने में तो यत्न कुछ नहीं, इसका त्याग करो, हे रामजी! यह मिथ्यासंकल्प उठा है, जब अहंकार का उत्थान होता है तब जगत् होता है जब अहंता मिट जाय तब जगत् का भी अभाव हो जाता है क्योंकि बना कुछ नहीं, भ्रममात्र है, जैसे संकल्प नगर भ्रममात्र है और स्वप्न सृष्टि भ्रममात्र है ऐसे यह विश्व भी भ्रममात्र है, कुछ बना नहीं, आत्मरूप है, इतर कुछ नही, जैसे पवन के दो रूप हैं, चलता है तो भी पवन हैं ठहरता तो भी पवन है, ऐसे विश्व भी

आत्मस्वरूप है, जैसे पवन चलता है, तब प्रतीत होता है, ठहर जाने पर नहीं प्रतीत होता, ऐसे चित्त चैत्य शक्ति का चमत्कार है, जब फुरता है तब विश्व भासता है ठहर जाता है तो नहीं भासता, परन्तु आत्मा सदा एक रस है, जैसे जल में तरंग होते है, जैसे सुवर्ण में भूषण होते हैं, इतर कुछ हुआ नहीं ऐसे आत्मामें विश्व इतर कुछ हुआ नहीं आत्मस्वरूप है ज्ञप्ति भी ब्रह्म है और ज्ञप्ति में फुरा हुआ विश्व भी ब्रह्म है, विधि निषेध और हर्ष शोक किसका किया जाय सब वही है, हे रामजी! संकल्प को स्थिर करके देखो कि सब तुम्हारा ही स्वरूप है, जैसे पुरुष सोता है उसको स्वप्न सृष्टि भासती है, जब जागता है तब देखता है सब मेरा ही स्वरूप है, ऐसे जाग्रत विश्व भी तेरा ही स्वरूप है, जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं, वे जलरूप हैं, ऐसे विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे चितेरा काष्ठ में कल्पना करता है कि इतनी पुतलियां निकलेंगी, जैसे मिट्टीमें कुम्हार घटादिक की कल्पना करता है कि इतने अमुक प्रकार के और इतने अमुक प्रकार के पात्र निकलेंगे, काष्ठ मृत्तिका में तो कुछ नहीं, ज्यों का त्यों काष्ठ है और ज्यों की त्यों मृत्तिका है, परन्तु उनके मन में आकार की कल्पना है, ऐसे आत्मा में संसाररूप पुतलियों की मन कल्पना करता है, जब मन का संकल्प निवृत्त हो जाय तब ज्यों का त्यों आत्मपद भासे, जैसे तरंग जलरूप हैं, जिसको जल का ज्ञान है वह जानता है कि तरंग भी जलरूप है और जिसको जल का ज्ञान नहीं वह भिन्न भिन्न तरंग का आकार देखता है, ऐसे जब निःसकल्प होकर स्वरूप को देखे तब स्फुरण में भी आत्मसत्ता भासेगी, अहं त्वं आदिक सब जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है, तो भ्रम कैसे हो और किसका हो? सब विश्व आत्मस्वरूप है, आत्मा निरालम्ब है, आलम्ब रूप जो चैत्य है, अहंकार उससे रहित है केवल आकाश रूप है जब तू इसमें स्थित होगा, नाना प्रकार की भावना मिट जायेगी, नाना प्रकार की भावना जगत् में फुरती है और जगत् का बीज अहन्ता है जब अहंता नाश हो तब जगत् का भी अभाव हो जायेगा, हे रामजी! अहंता का फुरना ही बन्धन है और निरहंकार होना मोक्ष है, एक चित्त बोध है

और एक ब्रह्मबोध है, चित्तबोध जगत् और ब्रह्मबोध मोक्ष हैं, चित्तबोध अहंता का नाम है, जब तक चित्तबोध फुरता है तब तक संसार है और जब चित्त का अभाव हो तब मुक्त हो, इस चित्त के अभाव का नाम ब्रह्म बोध है, हे रामजी! जैसे पवन फुरता है ऐसे ब्रह्म में चित्त बोध है और जैसे पवन ठहर जाता है, ऐसे चित्त का ठहरना ब्रह्म बोध है, जैसे फुर अफुर दोनों पवन ही हैं ऐसे चित्त बोध ब्रह्म बोध ब्रह्म ही है, इतर कुछ नहीं, हमको तो ब्रह्म ही भासता है, चेतनमात्र शान्तरूप है और अपने स्वभाव में स्थित है जिसको अधिष्ठान का ज्ञान होता है उसको निवृत्त भी वही रूप भासता है और जिसको अधिष्ठान का ज्ञान नहीं, उसको भिन्न भिन्न जगत् भासता है, जैसे एक बीज में पत्र टास फूल फल भासते हैं, परन्तु जिसको बीज का ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न भासते हैं हे रामजी! हमको अधिष्ठान ब्रह्मतत्व का ज्ञान है, इसलिये सब विश्व आत्मरूप भासता है और अज्ञानी को विश्व नाना प्रकार का प्रतीत होता है, जन्म और मृत्यु भासते हैं, हे रामजी! सब शब्द आत्मतत्व में फुरते हैं, सबका अधिष्ठान आत्मा है, निराकार निर्विकार है और शुद्ध है सबका अपना आप है, इसलिये सब विश्व आकाशरूप है, इतर कुछ हुआ नहीं, जैसे तरंग जलरूप हैं ऐसे विश्व आत्म स्वरूप है और जो चित्त स्फुरण होता है उसके अनुभव करने वाली चेतन सत्ता है, वह ब्रह्म है और तेरा स्वरूप भी वही है, इसलिये अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूप है, संशय को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो, पीछे तुमको क्या है, द्वैत अद्वैत सब उपदेश मात्र है, एक चित्त की वृत्ति को करके देखो सब ब्रह्म है, इतर कुछ नहीं, निषेध किसका किया जाय? हे रामजी! ज्ञानवान् लोग दो प्रकार की चित्तवृत्ति कहते हैं एक मोक्षरूप है एक बन्धनरूप है, जो वृत्ति स्वरूप की ओर फुरती है, वह मोक्षरूप है और जो दृश्य की ओर फुरती है वह बन्धनरूप है, जो तुमको शुद्ध भासती है वह करो और जो द्रष्टा है वह दृश्य नहीं होता और जो दृश्य है वह द्रष्टा नहीं होता, आत्मा तो अद्वैत है इसलिये द्रष्टामें दृश्य पदार्थ कोई नहीं तुम क्यों दृश्य की ओर फुरते हो, अन

होते दृश्य को क्यों ग्रहण करते हो और द्रष्टा भी तुम्हारा नाम दृश्य से ही होता है, जब दृश्य का अभाव जाना तब अवाच्यपद है, उसको वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता, हे रामजी! जैसे अंगी और अंगवाले में भेद कुछ नहीं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, जैसे जल और द्रवता में भेद कुछ नहीं, बरफ और शीतलता में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, कोई जगत् कहे अथवा ब्रह्म कहे, ऐसे एक ही नाम है (पर्याय) है, जगत् ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही जगत् है, इसलिये आत्मपद में स्थित हो जाओ, भ्रम से यदि अपने आपको अन्य मानते हो तो उसको त्यागकर ब्रह्म ही की भावना करो, अपने आपको मनुष्य कदाचित् मत जानो, ऐसा जानने वाले लोग अधोगति पाएंगे, अतः अधोगति न प्राप्त करो, अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुःसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७४।।

पंचसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७५

परमार्थयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब वृत्ति देश से देशान्तर को जाती है उसके मध्य में जो संवित्तत्व है उसको जो अनुभव करता है वह तेरा स्वरूप है, उसमें स्थित हो और समयानुसार चेष्टा करो, देखो, सुनो, सूंघो, स्पर्श करो, बोलो, हँसो, सब काम करो, परन्तु इनको जानने वाली जो अनुभव सत्ता है उसमें स्थित होना यह जाग्रत में सुषुप्ति है, शुभ चेष्टाएं करो और अन्दर से पत्थर की शिलावत् निःसंग रहो। हे रामजी! तेरा स्वरूप निराभास है, भास जो दृश्य है उससे रहित है और निर्मल शान्तरूप है, उसमें स्थित रहो, जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है ऐसे स्थित रहो, यह दृश्य अज्ञान से भासता है तमोरूप है और आत्मा सदा प्रकाशरूप है, उस प्रकाश में अज्ञानी को तम भासता है, जैसे सूर्य सदा

प्रकाशरूप है परंतु उलूक को नहीं भासता है, अज्ञान से तम ही भासता है, ऐसे अज्ञानी को अविद्यारूप जगत् भासता है, वह अविचार से सिद्ध है, अविद्या से इसकी विपरीत दृष्टि हुई है, इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है, जो अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति, इन षट् (छै) भाव विकारों से रहित है, इसलिये निर्विकार है, उसको विकारी जानता है, आत्मा निर्विकार निराकार है, उसको साकार जानता है, आत्मा आनन्दरूप है, उसको दुःखी जानता है, आत्मा शान्त रूप है उसको अशान्त जानता है, आत्मा महान् है, उसको लघु जानता है, आत्मा पुरातन है, उसको उत्पन्न हुआ सा मानता है, आत्मा सर्व व्यापक है, उसको परिच्छिन्न मानता है, आत्मा नित्य है उसको अनित्य देखता है, आत्म चैत्य से रहित शुद्धचिन्मात्र है, यह चैत्य सुंयक्त देखता है, आत्मा चेतन है यह जड़ देखता है, आत्मा अहं से रहित सदा अपने स्वभाव में स्थित है यह अनात्म अहंकार में अहं प्रतीति करता है, आत्मा में अनात्म भावना करता है, आत्मा निरवयव है उसको अवयवी देखता है, आत्मा अक्रिय है उसको सक्रिय देखता है, आत्मा निरंश है, उसको अंशांशी भाव से देखता है, आत्मा क्रियामय है उसको रोगी देखता है, आत्मा निष्कलंक है उसको कलंक सहित देखता है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, उसको परोक्ष जानता है और जो परोक्ष है उसको प्रत्यक्ष जानता है। हे रामजी! इत्यादिक जो विकार हैं, उनको अज्ञान से आत्मा में देखता है, आत्मा शुद्ध है सूक्ष्म से सूक्ष्म है और स्थूल से स्थूल है और बड़े से बड़ा है, लघु से लघु है सर्व शब्द और अर्थ का अधिष्ठान है, हे रामजी! ब्रह्मरूप एक डिब्बा है उसमें जगत्‌रूप रत्न भरे हैं, पर्वत और वन सहित भी जगत् दृष्टि आता है परन्तु आत्मा के निकट रुई के लोभ जैसा लघु है, आत्मरूप वन में संसार मंजरी उत्पन्न हुई है, देखिये वह मंजरी कैसी है कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, यह पांचों तत्व इसके पत्र हैं, उनसे शोभा पाती है, वह अहन्ता के उदय हुए उदय होती है और अहन्ता के नाश हुए नाश होती है, आत्मरूप समुद्र है, उसमें जगत्‌रूप तरंग है, जो उठते भी हैं और लीन भी होते हैं आत्माकाश में संसार भ्रम मात्र है,

आकाश वृक्ष की नाईं है आत्मा के प्रमाद से भासता है, हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमा है उसकी किरणें जगत है और नेति शक्ति नृत्य करने वाली है, वे तीनों अविचार सिद्ध हैं, विचार करने से शान्त हो जाते हैं, जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकार देखें तो दृष्टि नहीं आता ऐसे विचार कर देखा जाय तो जगत का अभाव हो जाता है केवल शुद्ध आत्मा ही प्रत्यक्ष भासता है, हे रामजी! जगत कुछ बना नहीं, जैसे किसी ने बर्फ कहा किसी ने शीतल कह दिया, उसमें भेद कुछ नहीं, ऐसे ही आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं और भेद जो भासता है भ्रममात्र है, जैसे तन्तु और पट में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, आत्मरूप ही है, आत्मा से इतर कुछ बना नहीं, जिससे सब पदार्थ सिद्ध होते हैं, जिससे सब क्रियायें सम्पन्न होती हैं, जो अनुभव रूप सदा अप्रौढ़ है, उसको जानना मूर्खता है, हे रामजी! यह विश्व तेरा ही स्वरूप है, जगकर देख तू ही खड़ा है, स्वच्छ आकाश सूक्ष्म प्रत्येक् ज्योति अपने आप में स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम पंचसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७५।।

षट्सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७६

इच्छानिषेधयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार यह तीनो संसार हैं, ज्ञानवान् को भ्रममात्र प्रतीत होते हैं, वस्तुतः कुछ नहीं मिथ्या हैं, जैसे जल में तरंग उठते हैं वे जलरूप हैं, ऐसे आत्मा में रूप अवलोकन मनस्कार फुरते हैं वे सब आत्मरूप हैं, इतर कुछ नहीं, हे रामजी! यह शुद्ध परमात्मा का चमत्कार है और आत्मा दृश्य से रहित है, शुद्ध है, चिन्मात्र है, निर्मल है, अद्वैत है, उसमें जगत् कुछ बना नहीं, हमको तो सदा वही भासता है, जगत् कुछ नहीं भासता, जैसे कोई आकाश में

नगर की कल्पना करता है और सब रचना उसमें देखता है, वह उसके हृदय में दृढ हो जाती है और जो संकल्प की सृष्टि मिथ्या जानता है, उसको शून्याकाश ही प्रतीत होता है, ऐसे यह विश्व मूर्ख के हृदय में दृढ़ हुआ है और ज्ञानवान् को आत्मस्वरूप ही प्रतीत होता है, जैसे मिट्टी के खिलौने की सेना होती है, हाथी, घोड़ा, आदिक देखने में आते हैं, उसमें वह राग द्वेष नहीं करता, जिसको मिट्टी का ज्ञान है, बालक मिट्टी के ज्ञान से रहित है, उसमें राग द्वेष करते हैं, ऐसे ज्ञानवान् इस जगत् में राग द्वेष नहीं करते और अज्ञानी राग द्वेष करते हैं, जैसे खिलौने में सारभूत मृत्तिका होती है, ऐसे इस जगत में सारभूत चेतन आत्मा है, जो कुछ पदार्थ भासते हैं मिथ्या भ्रम से सिद्ध हुए हैं, जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र हो उसमें सुख के निमित्त इच्छा करनी यही मूर्खता है, हे राम! हमें तो कोई इच्छा नहीं, क्योंकि हमें जगत् मृगतृष्णा के जलवत् भासता है, अतः इच्छा किसकी की जाय, जिसमें सत्य प्रतीत होता है, उसमें इच्छा भी होती है, जो सत्य ही न भासे तो इच्छा कैसे की जा सके, हे रामजी! इच्छा बन्धन है और इच्छा से रहित होने का नाम मुक्ति है, इसलिये ज्ञानवान् को कोई इच्छा नहीं रहती, उसकी अनिच्छित ही चेष्टा होती है, जैसे सूखा बांस होता है, उसके अन्दर बाहर शून्य होता है, संवेदन स्फुरण उसको कुछ नहीं होता, ऐसे ज्ञानवान् के अन्तःकरण में और बाह्य करण में शान्ति होती है, अन्तःकरण में संकल्प कोई नहीं उठता और बाहिर भी उपाधि कोई नहीं, निःसंकल्प निरुपाधि चेष्टा उसकी होती है, हे रामजी! जिस पुरुष के अन्तर से संसार का रस सूख गया है, वह संसार समुद्र से पार हुआ है, ऐसा समझो और जिसका उत्तरस नहीं सुख गया उसको इष्ट अनिष्ट करके राग द्वेष फुरते हैं, तब संसार बन्धन में जानो। हे रामजी! मैं तुझे ऐसी समाधि कहता हूँ, जो सुखसाध्य हो और जिससे निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त हो, उसको सुनो, सर्व इच्छा से रहित होना यही परम समाधि है, जिस पुरुष को इच्छा फुरती है उसको उपदेश भी नहीं लगता, जैसे आरसी के ऊपर मोती नहीं ठहरता, ऐसे ही

हृदय पर उपदेश नहीं ठहरता और इसको इच्छा ही दीन करती है, इच्छा से रहित हुआ शान्तरूप हो जाता है, तदनन्तर इसको शान्ति के लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता, हे रामजी! हम तो निरिच्छ हैं हमको अन्दर बाहिर शान्ति है, हमें कोई कर्तव्य शेष नहीं, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ चेष्टा संभव होती है, राग द्वेष से रहित बोलते हैं, परन्तु बांसुरी की नाईं, अर्थात् जैसे बंसरी निरहंकार बोलती है, ऐसे ज्ञानवान् अहंकार से रहित है और स्वाद को ग्रहण करते हैं, परन्तु करछी की नाईं, जैसे करछी प्रत्येक व्यंजन में पड़ती है उसके द्वारा सब व्यजंन निकाले जाते हैं, परन्तु उसको राग द्वेष कुछ नहीं फुरते कि यह अच्छा (स्वादु) है और यह स्वाद रहित है, ऐसे ज्ञानवान् अनिच्छित ही स्वाद लेता है और गन्ध भी पवन की नाईं लेता है, जैसे पवन भली बुरी गन्ध को लेता है, परन्तु राग द्वेष से रहित है, ऐसे ज्ञानवान् राग द्वेष से रहित गन्ध को लेता है, इसी प्रकार सब इन्द्रियों की चेष्टा करता है, परन्तु इच्छा से रहित होता है, इसी से परम सुख रूप है और जिसकी चेष्टा इच्छा सहित है, वह परम दुःखी है, हे रामजी! जिस पुरुष को भोग रस नहीं देते वह सुखी है, जिसको रस देते हैं उसकी राग से तृष्णा बढ़ती जाती है, उसको ऐसे जान लो जैसे—किसी के माथे पर आग लगे और उसको बुझाने के लिये उस पर तृण फेंका जाय तब वह बुझती नहीं बढ़ती जाती है, ऐसे विषयेच्छा भोगों से निवृत्त नहीं होती बढ़ती है, यह इच्छा ही बन्धन है, इच्छा की निवृत्ति का नाम मोक्ष है, हे रामजी! संसाररूप विषवृक्ष है इसका बीज इच्छा है, जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है उसका संसार बढ़ता जाता है, उससे बार बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है, हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्म लोक में भी नहीं, जैसा सुख इच्छा की निवृत्ति में है, ऐसा दुःख नरक में भी नहीं जैसा दुःख इच्छा के उत्पन्न करने में है इच्छा के नाश का नाम मोक्ष है और इच्छा के उत्पन्न होने का नाम बन्धन है, जिस पुरुष को इच्छा उत्पन्न होती है, वह दुःख पाता है, संसाररूप गर्त (गड्ढे) में गिरता है। इसलिये इस इच्छारूप विष वल्ली

को समता रूप अग्नि से जला दो, जब तक सम्यक् दर्शन रूप अग्नि से इसको न जलाओगे तो बहुत दुःख देगी और बढ़ जायेगी, हे रामजी! जिस पुरुष ने इच्छा दूर करने का उपाय नहीं किया, वह मानों अन्धकूप में गिर पड़ा है, शास्त्र के श्रवण का भी यही फल है किसी प्रकार इच्छा निवृत्ति हो और तब दान यज्ञ भी इसीलिये करने को लिखे हैं और किये जाते हैं कि किसी प्रकार इच्छा निवृत्त हो, यदि एक ही बार निवृत्त न कर सके तो हमें क्षण क्षण में भी इसके नाश करने का उपाय करना चाहिये, जो पुरुष शास्त्रों को भी पढ़ाता है और इच्छा को भी बढ़ाता है वह दीप हाथ में लेकर कुएं में गिरता है, इच्छा कंटकारी को पौधा है, जिसमें सदा कंटक लगे रहते हैं, उसमें सुख कदाचित् नहीं, जो पुरुष कांटों की शय्या पर शयन करे और सुखी होना भी चाहे तो नहीं हो सकता, ऐसे ही इच्छा निवृत्ति के बिना कोई सुखी नहीं हो सकता, इसलिये वही उपाय करना चाहिये जिससे इच्छा निवृत्ति हो, क्योंकि इच्छा निवृत्ति में सुख है और इच्छा के उत्पादन में महान् दुःख है, हे रामजी! जो अनिच्छित पद में स्थित हुआ है, उसको यदि क्षण भर भी इच्छा उत्पन्न हो तो वह रोने लग जायगा, जैसे चोर से लूटा हुआ रोता और पश्चाताप करता है, इसी प्रकार वह रोता है और इच्छा के नाश होने का उपाय करता है, हे रामजी! इच्छा रूप खेत है और रागद्वेष रूप उसमें विष की बेल है, जो पुरुष उसके नाश करने का उपाय नहीं करता, वह मनुष्यों में पशु है, यह इच्छारूप विष का वृक्ष बढ़ा हुआ नाश करने का कारण होता है, इसलिये तुम इसका नाश करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम षट्सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१७६॥

सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७७

जगदुपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इच्छारूप विष के नाश करने का उपाय आगे भी तुमको कहा है, अब फिर स्पष्ट करके कहता हूँ, सुनो–संसार मिथ्या है, इसीलिये त्यागने योग्य है, यदि आत्मसत्ता भिन्न करके देखें तो संसार का मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है, यदि मिथ्या सिद्ध हुआ तो उसमें इच्छा करनी बनती ही नहीं और यदि आत्मा की ओर देखें तो सब आत्मा ही है, जब सब आत्मा ही हुआ तो इच्छा करनी क्या है, इच्छा दूसरी वस्तु के विषय में होती है, दूसरा कोई नहीं, इच्छा किसकी की जाय, हे रामजी! द्रष्टा दृश्य भी मिथ्या है, द्रष्टा इंद्रिय और दृश्य विषय हैं, इन्द्रिय ग्राहक हैं और विषय ग्राह्य हैं, यह भी अविचार सिद्ध हैं, भ्रम से प्रतीत होते हैं, आत्मा में कोई नहीं, जैसे स्वप्न में भ्रम से रूप भासते हैं, यह गाह्य ग्राहक भी भ्रम से भासते हैं, आत्मा में कोई नहीं भ्रम से प्रतीति होती है, सुख दुःख भी इन्हीं से होता है, आत्मा में कोई नहीं, हे रामजी! द्रष्टा दर्शन दृश्य यह तीनों ही ब्रह्म में कल्पित हैं, वास्तव से ब्रह्म ही है हम चिरकाल से खोज कर रहे हैं, परन्तु हमको कुछ द्वैत दृष्टि नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ता ही ज्यों की त्यों भासती है और सब निराभास है, फुरने से रहित ज्ञानरूप है, आकाश से भी सूक्ष्म है। सर्व जगत् भी वही है, वह मैं हूँ, हे रामजी! जैसे जल में तरंग होते हैं, और आकांश में शून्यता है, जैसे पवन में चलना और अग्नि में उष्णता है वे सब ही अनन्यरूप हैं, ऐसे आत्मा में जगत् अनन्यरूप है आत्मा ही विश्वाकार होकर भासता है, अपर कुछ भी नहीं हुआ, हे रामजी! यदि हुआ है तो फिर इच्छा किसकी करता है, यह जो मैं तुझको मोक्ष उपाय कहता हूँ, वह यही है कि तू अपने आपको बन्धन में क्यों डालता है, बड़ा बन्धन इच्छा ही है, जिस पुरुष की इच्छा बढ़ती जाती है वह जगत् रूप वन का

मृग है, उस मृग पशु का संग कदाचित् न करना, मूर्ख का संग बुद्धि को विपरीत कर डालता है, इसलिये उस विपरीत बुद्धि को त्याग कर आत्मपद में स्थिति प्राप्त करो और विश्व भी सब तेरा अनुभव रूप है, उसका सुख दुःख विद्यमान भी देखता है परन्तु आत्मा में भ्रममात्र भासता है, कुछ है नहीं, विश्व भी आनन्द रूप शिव ही है, तू विचार कर देख दूसरा तो कुछ है नहीं, जैसे मिट्टी के खिलौनों में नाना प्रकार के हाथी घोड़े होते हैं परन्तु मृत्तिका से इतर कुछ नहीं, ऐसे ही यह नाना प्रकारके प्रतीत होनेवाला विश्व सब आत्मरूप है इतर कुछ नहीं, इसमें कारण कार्य भाव देखना भी मूर्खता है, जब दूसरी वस्तु ही नहीं तो कारण कार्य भाव किसका हो, पुनः किसकी इच्छा करता है, जिस संसार की इच्छा करता है वह है नहीं, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है और सीपी में रूपा भासता है वह दूसरी कुछ वस्तु नहीं, अधिष्ठान किरणें और सीपी हैं, ऐसे अधिष्ठान रूप परमार्थ सत्ता ही है, न सुख है न दुःख है केवल यह जगत् शिवरूप है, उस शिव चिन्मात्र से मृत्तिका की सेनावत् अन्य कुछ नहीं तो इच्छा कैसे उदय हो, रामजी बोले—हे मुनीश्वर! यदि सर्व ब्रह्म ही है तो इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं, इच्छा उदय हो या न हो, फिर तुम कैसे कहते हो कि इच्छा का त्याग करो। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस पुरुष की ज्ञप्ति जगी है अर्थात् जो ज्ञानरूप आत्मा में जगा है, उसके लिये सब ब्रह्म ही है, इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, इच्छा भी ब्रह्म है अनिच्छा भी ब्रह्म है, हे रामजी! ज्यों ज्यों ज्ञान संवित् की अधिकता होती है, त्यों त्यों वासना का क्षय होता है, जैसे सूर्य के उदय हुए रात्रि नष्ट हो जाती है, ऐसे ही ज्ञानोत्पत्ति में वासना नहीं रहती, हे रामजी! ग्रहण त्याग की इच्छा ज्ञानवान् का कर्तव्य नहीं उसके लिये इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं यद्यपि ऐसे ही है परन्तु स्वाभाविक ही वासना उसको नहीं रहती, जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार नहीं रहता, ऐसे आत्मा के साक्षात्कार हुए द्वैत वासना नहीं रहती, ज्यों ज्यों ज्ञान कला जगती है, त्यों त्यों द्वैत नाश हो जाता है, द्वैत के निवृत्त होने से

वासना भी निबृत्त हो जाती है, हे रामजी! ज्यों ज्यों इसका स्वरूपानन्द प्राप्त होता है, त्यों त्यों संसार विरस होता जाता है, जब संसार विरस हो गया तो वासना किसकी करे, हे रामजी! इसको अमृत में विष की भावना हुई तब अमृत विष भासता था, जब विष की भावना का त्याग किया तब अमृत तो आगे था ही, वही हो गया, ऐसे जो कुछ तुमको भासता है वह सब ब्रह्म रूप अमृत ही है, जब उस ब्रह्मरूप अमृत में अज्ञान से जगत्‌रूप विष की भावना हुई तब दुःख पाता है और जब संसार की भावना त्यागी जाय तब आनन्दरूप है, उसको करना न करना दोनों तुल्य हैं, यद्यपि ज्ञानवान् में इच्छा दृष्टि आती है तो भी उसके निश्चय में नहीं है, उसकी इच्छा भी अनिच्छा है, क्योंकि यदि संसार की भावना उसके हृदय में नहीं तो इच्छा किसकी रहे हे रामजी! यह संसार है नहीं, हमको तो आकाशरूप भासता है, जैसे दूसरे के मनोराज्य का संकल्प उसमें आने जाने का खेद कुछ नहीं होता, ऐसे यह जगत् हमको अपर के चिन्तनवत् है, जैसे किसी पुरुष ने मनोराज्य से मार्ग में कोई स्थान रचा हो और उसमें किवाड़ लगाये हों और नाना प्रकार का प्रपंच रचा हो और अन्य कोई अन्य पुरुष वहां आता है उसको किवाड़ में अटकाता कोई नहीं और न ही कोई किवाड़ है, न कोई वस्तु है, उसका यही निश्चय होता है कि शून्य मार्ग है, ऐसे हमको सब प्रपंच शून्य ही भासता है, अज्ञानी के हृदय में हमारी चेष्टा है और हमको ब्रह्म से इतर कुछ नहीं भासता, हे रामजी! जिसको जगत् हीन भासे उसको इच्छा किसकी हो, जिसके हृदय में संसार की सत्यता है उसको इच्छा भी फुरती है और रागद्वेष भी उठता है, जिसको रागद्वेष उठता है उसे जानिये कि संसार सत्ता उसके हृदय में स्थित है और जिसको नाना पदार्थ संसार सत्य प्रतीत होता है, वह मूर्ख है अज्ञान निद्रा में सोया हुआ है, जैसे निद्रा दोष से स्वप्न में पुरुष अपनी मृत्यु देखता है, ऐसे जिसको यह जगत् सत् भासता है वह निद्रा में है, हे रामजी! मैंने बहुत प्रकार के स्थान देखे हैं, अनेक रोग और उनके अनेक ही औषध देखे हैं परन्तु

इच्छारूप शस्त्र के घाव की दवाई कोई दूसरी नजर नहीं आयी, जप से तप से यज्ञ से दान से पाठ से पूजा से तथा तीर्थ यात्रा आदि किसी भी साधन से इच्छाशास्त्र का घाव नहीं भरा जा सकता, इच्छारूप रोग का कोई औषध नहीं है, अगर है तो केवल आत्मज्ञान ही परम औषध है जिससे इस भयानक इच्छारोग का निर्मूल नाश हो जाता है, अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता। हे रामजी! जिस पुरुष को ज्ञान प्राप्त हुआ है उसकी इच्छा स्वाभाविक ही निवृत्त हो जाती है और आत्मज्ञान के बिना अनेको यत्न करने पर भी इसका नाश नहीं होता, जैसे स्वप्न की वासना जगे बिना नहीं जाती, अन्य उपाय कितने भी किये जायँ परन्तु इच्छा बिना आत्मज्ञान के नष्ट नहीं होती, ज्यों ज्यों वासना क्षीण होती है त्यों त्यों सुख की प्राप्ति होती है और जैसे जैसे वासना की अधिकता होगी वैसे ही वैसे दुःख अधिक होगा, यह आश्चर्य की बात है कि मिथ्या संसार सत्य हो भासता है, जैसे बालक को वृक्ष में बैताल भासता है, उससे भय पाता है वह बैताल तो है ही नहीं, इसी प्रकार अज्ञान में संसार की कल्पना करता है, उससे दुःख पाता है, हे रामजी! स्थावर जंगम जितना जगत् प्रतीत होता है, सब ब्रह्म है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं बना, भ्रम से भिन्न भिन्न प्रकार होकर भासता है, जैसे आकाशमें शून्यता जल में द्रवता है, सत्यता में सत्यता ही है, ऐसे आत्मा में जगत् है, वह न सत् है, अनिर्वाच्य है, हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं तो क्या कहा जाय कि केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, वह सबका अपना आप वास्तव रूप है, जब उसका साक्षात्कार होता है तब अहंरूप भ्रम मिट जाता है, जैसे सूर्य के उदय हुए अंधकार का अभाव हो जाता है, ऐसे आत्मा का साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमानरूप अन्धकार का अभाव हो जाता है और परम निर्वाण भासता है, उसमें न एक कहना है न दो कहना है, केवल शान्त रूप परम शिव है, जैसे आकाश में नीलता भासती है ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, हे रामजी! जिन्होंने ऐसा निश्चय किया है उनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, तो भी मेरा निश्चय में

यह है कि इच्छा के त्याग में सुख है। जिसकी इच्छा दिन दिन घटती जाय और आत्मा की ओर मनोवृत्ति आती जाय उसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं, क्योंकि संसार भ्रम से सिद्ध है, इस ही की कल्पना जगत् रूप होकर भासती है, विचार करने से निकलता कुछ नहीं, संसार के उदय होने से आत्मा को कुछ आनन्द नहीं और नाश होने से कुछ खेद नहीं होता क्योंकि भिन्न कुछ नहीं, जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होते और नाश होते हैं तो जल को हर्ष शोक कुछ नहीं होता क्योंकि जल से इतर नहीं, ऐसे सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है, तो इच्छा क्या और अनिच्छा क्या, हे रामजी! आदि परमात्मा से जो चित्तशक्ति फुरी है उसमें जब अहं हुआ तब स्वरूप का प्रमाद हुआ तब यह चित्त शक्ति मनोरूप हुई, फिर आगे देह इन्द्रिय हुए, अज्ञान से मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, इसी प्रकार अपने साथ मिथ्या शरीर को देखता है जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफरूप हो जाता है ऐसे चित्तसंवित् प्रमाद की दृढ़ता से मन इन्द्रिय देहरूप होती हैं, जैस कोई स्वप्न में अपने मरण को देखता है ऐसे अपने साथ शरीर को देखता है, जब चित्त शक्ति नष्ट होती है तब शरीर कहां और मन कहां यह कोई नहीं भासता, जैसे स्वप्न में भ्रम से शरीरादिक भासते हैं, ऐसे यह जाग्रत भी जान लीजिये, जो मिथ्याभ्रम से उदय हुए हैं, जब अपने स्वरूप की ओर आवें तब सब ही भ्रम मिट जावें, हे रामजी! जैसे भ्रम से आकाश में नीलता भासती है ऐसे विश्व भी अन होता भ्रम से भासता है, आत्मा में कुछ आरम्भ परिणाम करके नहीं बना, वही स्वरूप है, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, जैसे पवन और स्पंद में भेद नहीं ऐसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जैसे स्वप्न की सृष्टि अनुभव रूप है इतर कुछ नहीं, ऐसे ही जगत् आत्मानुभव से इतर कुछ नहीं, हे रामजी! चेतन आकाश परम शान्तरूप है, उसमें देह इन्द्रिय भ्रम से भासते हैं और क्रिया काल पदार्थ सब भ्रममात्र है, जब आत्मस्वरूप में जगकर देखेगा तो द्वैतभ्रम निवृत्त हो जायेगा, केवल अद्वैत आत्मा ही भासेगी, दृश्य का अभाव हो जायेगा, यह पृथ्वी आदिक तत्व जो भासते

हैं वे अविद्यमान हैं, इनकी प्रतिमा मिथ्या उदय हुई है, जैसे स्वप्न में अनहोते पृथ्वी आदिक तत्व भासते हैं परन्तु हैं नहीं, ऐसे आत्मा में यह जगत् भासता है, हे रामजी! पृथ्वी भी आकाशरूप है और गन्ध कोट भी आकाशरूप है और पर्वत भी आकाशरूप हैं सब प्रपंच आकाशरूप है, यदि सब आकाशरूप है तो ग्रहण त्याग किसका हो और आकाशरूप दीवार के ऊपर संकल्प ने मूर्त्तियां रची हैं ओर रंग वहां आत्मचेतन्यता है इसलिये विश्व संकल्प मात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है वैसी वैसी सृष्टि भासती है, यदि कुछ बना होता तो अपर का प्रतीत होता है, बना कुछ नहीं, जैसा संकल्प होता है वैसा आगे रूप हो भासता है, हे रामजी! सिद्धों के पास एक चूर्ण होता है उससे वे जो कुछ भी करना चाहें करते हैं, पर्वत को आकाश कर देते हैं और आकाश को पर्वत बना देते हैं, ऐसे मैं तुझको चूर्ण कहता हूँ, जब चित्तरूप सिद्ध संकल्प रूप चूर्ण से फुरता है तब आत्मरूप आकाश में पर्वत हो भासते हैं और जब चित्तरूप सिद्ध का संकल्प उलटता है तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है, जैसे स्वप्न में संकल्प फुरता है तब अनुभव में पर्वत आदिक पदार्थ भासे आते हैं और जब संकल्प से जगता है तब स्वप्न के पर्वत आकाशरूप हो जाते हैं, आकाश ही पर्वतरूप और पर्वत आकाशरूप होता है, हे रामजी! ऐसे यह सृष्टि संकल्पमात्र है कुछ बना नहीं, जैसे संकल्प होता है ऐसा प्रतीत होता है और जब विश्व के अत्यन्त अभाव का संकल्प किया तब ऐसे ही भासता है, जैसे विश्व का अभ्यास किया है और विश्व भान हुआ है, ऐसे आत्मा का अभ्यास कीजिये, तो क्यों न भासे, वह तो अपना आप है, जब आत्मा का अभ्यास किया जाय तब आत्मा ही प्रतीत होता है, विश्व का अभाव हो जाता है, अनेको सृष्टियां अपने अपने संकल्प से आकाश में भासती हैं, जैसा किसी का संकल्प होता है ऐसी ही सृष्टि उसको प्रतीत होती है, जैसे चिन्तामणि और कल्प वृक्ष में दृढ़ संकल्प करता है तब यथेच्छित पदार्थ निकल आते हैं, वे कुछ बने नहीं और चिन्मामणि भी परिणाम को प्राप्त हई ज्यों की त्यों पड़ी है, सकंल्प की दृढ़ता से भास

आते हैं, ऐसे यह प्रपंच भी आकाशरूप है, जैसे आकाश में शून्यता है ऐसे आत्मा में जगत् है, हे रामजी! सिद्ध वचन फुरते हैं वह भी संकल्प की तीव्रता होती है, यदि चित्त शुद्ध होता है तो दूसरी सृष्टि को भी जानता है, जो पुरुष वचन सिद्ध होने के निमित्त सूक्ष्म वासना करता है, अर्थात् वासना को रोकता है, वह उसके वचन सिद्धि को प्राप्त होता है, जैसा संकल्प करता है, ऐसा सिद्ध होता है, हे रामजी! जितना यह दृश्य की ओर से उपशम होकर अन्तर्मुख होता है, उतनी ही अधिक वचन सिद्धि होती है, वह वर दे या शाप दे, सिद्ध होता है, हे रामजी! एक प्रमाण ज्ञान है कि यह पदार्थ इस प्रकार का है, उसका जो नाम रूप है वह सब आकाशरूप भ्रममात्र है, आत्मा में अपर कुछ नहीं, आत्मरूप समुद्र में जगत्रूप तरंग उठते हैं वे आत्मरूप हैं, जिनको ऐसा ज्ञान हुआ है उनको इच्छा और अनिच्छा का ज्ञान नहीं रहता, उनको सब आकाशरूप भासता है, हे रामजी! आत्मरूप फूल है, उसमें जगत्रूप गन्ध है, जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जैसे पत्थर के ऊपर लकीर निकालिये वह पत्थर से भिन्न नहीं, ऐसे ब्रह्म से जगत् भिन्न नहीं, हे रामजी! देशकाल पृथ्वी आदिक तत्व और मैं मेरा सब आत्मरूप है और अविनाशी है, क्योंकि अजन्मा है, जिनको ऐसा निश्चय हुआ है उनको रागद्वेष नहीं रहता सब आत्मरूप ही प्रतीत होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जगदुपदेशवर्णनं
नाम सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७७।।

अष्टसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः १७८

परमनिर्वाणयोगोपदेशवर्णम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्व में जो संवेदन स्फुरण हुआ है, उस संवेदन से आगे जगत् प्रतीत हुआ है, जैसे किसी के नेत्र में एक

अंजन डालकर आकाश में पर्वत उड़ते दिखते हैं, ऐसे अनहोता जगत् फुरणे से भासता है, हे रामजी! ब्रह्स्वर्ग में और चित्त स्वर्ग में भेद कुछ नहीं, परमार्थ से एक ही है, दृष्टि सृष्टि और वस्तु पर्याय हैं और नाना तत्व भी इसकी भावना से भासते हैं, आत्मा में दूसरा कुछ नहीं बना, चित्त और चैत्य आत्मा से इतर नहीं, चित्त ही चैत्य होकर भासता है, ज्ञान से इनकी एकता होती है, इसी से दृश्य भी द्रष्टा रूप है, जैसे स्वप्न में शुद्ध संवित् ही दृश्यरूप होकर स्थित होती है और जगने से एक हो जाती है, वह एकता भी तब होती है जब वही रूप है, इसलिये आप अब भी वही जानें दृश्य दर्शन द्रष्टा त्रिपुटी सब वही रूप है, हे रामजी! जो सजातीय है उसकी एकता होती है, विजातीय एकता नहीं होती, जैसे जल में जल की एकता होती है ऐसे बोध से सबकी एकता होती है, इसलिये दृश्य भी वही रूप है कि एकता हो जाती है, यदि दृश्य का आत्मा से भेद होता तो एकता न होती, हे रामजी! आकाशादिक तत्व भी आत्मरूप हैं, उस सर्वात्मा को नमस्कार है, आत्मा सर्व व्यापक है, सर्वगत है, सबको धारण कर रहा है और सब कुछ वही है, ऐसे सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है, जो कुछ भासता है सब वही है, जैसे जल में गलाने की शक्ति है और काष्ठ में नहीं, ऐसे ही ब्रह्म से भासना स्वभाव है अन्य में नहीं, ब्रह्म भावना से सर्व ब्रह्म ही प्रतीत होता है, हे रामजी! जड़ पदार्थ भी जो जल भासते हैं, क्योंकि जो भासता है वह ब्रह्म ही है, जब हो तो भासे नहीं परन्तु जो भासता है वह ब्रह्म है। जैसे शुद्ध संवित् में स्वप्न फुरता है, उसमें जड़ भी और चेतन भी भासते हैं, परन्तु जो जड़ प्रतीत होते हैं, उस संवित् में वही भी चेतन हैं, जब चेतन हैं तो फुरते हैं, जिनके शुद्ध संवित् में अहं प्रयत्न नहीं वे जान नहीं सकते, अज्ञानी हैं परन्तु सब ब्रह्म है, जैसे समुद्र में जल होता है वह ऊंचा होकर आए तो भी जल है और नीचे की ओर से आये तो भी जल है, जैसे जो कुछ देखा जाता है और प्रतीत होता है, सब ब्रह्म है, इतर कुछ नहीं और इन्द्रियग्राम जो भासता है वह भी आत्मा है और पृथ्वी आदिक तत्त्व जो

स्फुरणरूप हुए हैं उनमें प्रथम आकाश स्फुरण हुआ है, उसके बाद वायु, फिर अग्नि जल और पृथ्वी का स्फुरण हुआ है, यह चमत्कार की नाईं अनिच्छित स्फुरित हुए हैं, अतः सब आत्मरूप हैं, जैसे बट बीज में वृक्ष होता है, ऐसे आत्मरूप बीज में जगत् होता है और नाना प्रकार भासते हैं, हे रामजी! एक बीज ही नाना प्रकार के रूप धारण करता है, परन्तु बीज से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मसत्ता नाना प्रकार हो भासती है, परन्तु बीज की नाईं भी आत्मा परिणम्य नहीं, विश्व आत्मा का चमत्कार है अतः वही रूप है जैसे स्वर्ण में अनेक भूषण होते हैं, स्वर्ण से इतर कुछ नहीं, ऐसे विश्व आत्मरूप है, द्वैत कुछ नहीं जो आत्मा से इतर हो तो भासे नहीं इसलिये जो भासती है चेतनरूप है, इसलिये दृश्य और द्रष्टा से एक ही रूप है, द्रष्टा दृश्य की नाईं भासता है, हे रामजी! जैसे कोई पुरुष तुम्हारे पास सोया हो और वह स्वप्न देखे कि मेघ गर्जते हैं और नाना प्रकार की चेष्टा होती है वह उसको प्रतीत होती है और तुमको नहीं भासती, ऐसे यह दृश्य तुम्हारी भावना में स्थित है और हमको आकाशरूप है, हे रामजी! चेतन आकाश शान्तरूप है, उसमें सृष्टि कुछ बनी नहीं, जो कुछ उत्पन्न नहीं हुआ तो नष्ट भी नहीं होता केवल शान्तरूप है, भ्रम से जगत् भासता है, जैसे कोई बालक मनोराज्य से आकाश में पुतलियां रचे वह आकाश में कुछ बना नहीं परन्तु उसके संकल्प में है, ऐसे यह विश्व मनरूप बालक ने रचा है, उसकी रची हुई में भी ज्ञानवान् को शून्यता भासती है, हे रामजी! संकल्पमात्र सृष्टि क्यों हुई, जब इसका संकल्प नष्ट होता है तब शान्तपद शेष रहता है, वह कैसा पद है, निरहंकार सत्तामात्र पद है और असत् की नाईं स्थित है, पुनः उस चिन्मात्र अद्वैत में अहंता से जगत् भासता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है, तब अहंतारूप भ्रम मिट जाता है, जब अहंतारूप भ्रम मिटा, तब जगत् का भी अभाव होता है और इच्छा का भी अभाव हो जाता है, इसलिये ज्ञानी को इच्छा वासना कोई नहीं रहती, जब प्रसन्नरूप अहंता नष्ट हुई तब उस पद को प्राप्त होता है,

जिस पद में अणिमादि सिद्धियां भी सूखे तृण की नाईं भासती हैं, ऐसा आनन्दरूप है, जिसमें ब्रह्मादिक का सुख भी तृण समान भासता है, हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ है, उसको फिर किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहती और उसको मारने वाले विषयादिक पदार्थ मार नहीं सकते और जिलाने वाले अमृत आदिक पदार्थ जिला नहीं सकते, केवल निर्वाणपद में उसकी स्थिति है, हे रामजी! जिस पुरुष को सम्पूर्ण संसार से वैराग्य हुआ है उसको संस्कार के पदार्थ सुखदायक नहीं प्रतीत होते, मिथ्या प्रतीत होते हैं, वह संसार समुद्र के पार को प्राप्त हुआ है जिसकी संसार की वासना और अहंता नष्ट हुई है, उसकी मूर्ति देखने मात्र भासती है, वह निर्वासन ज्ञानवान् शान्तरूप है, हे रामजी! इच्छा ही बन्धन है, जब इच्छा का अभाव हुआ तब आनन्द है और इच्छा भी तब फुरती है, जब संसार को सत्य जानता है और संसार की सत्यता अहंता से भासती है, जब अहंतारूप बीज नष्ट हो जाय तब निर्वाण पद की प्राप्ति हो, हे रामजी! संसार कुछ बना नहीं, भ्रम से सिद्ध हुआ है, सब ही ब्रह्म है, उस परमात्मा में जो परिच्छिन्न अहंता फुरी वही उपाधि है, हे रामजी! बुद्धि से लेकर जितना यह दृश्य है जिसको अपने आप में स्वाद नहीं होता, आकाश की नाईं रहता है, उसका अन्त मुक्तरूप कहते हैं, हे रामजी! यह अहं अविचार से सत् भासता है विचार करने से असत्य हो जाती है, अनहोती अहंता ने दुःख दिया है, इसलिये तुम निरहंकार चेष्टा करो, जैसे यंत्री की पुतली अभिमान से रहित होकर चेष्टा करती है, ऐसे तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो और स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो, तब व्यवहार और अव्यवहार तुझको तुल्य होगा, जैसे पवन को स्पंद और अस्पंद दोनों तुल्य होते हैं, ऐसे तुम्हें होगा और अहंकार से रहित तेरी चेष्टा होगी अहंता ही दुःख है, जब अहंता का नाश हुआ तब शान्त पद को प्राप्त होगा और निर्मल अनामय पद को प्राप्त होगा, जो सब पदार्थ का अधिष्ठान है और सबका अपना आप है

उसमें न कोई सुख है न दुःख है न कोई इन्द्रियों का विषय है परम शान्तरूप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे परमनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७८।।

ऊनाशीत्युत्तरशततमः सर्गः १७९

वसिष्ठगीतोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह निरावरण है, दोनों आवरणों से रहित है, एक असत्वापादक आवरण है एक अमानापादक आवरण है, यदि आत्मब्रह्म की सत्यता हृदय में न भासे तो वह असत्वापादक है उसको कहता है कि है नहीं और यदि सत्यता आत्मा की हृदय में भासे परन्तु दृढ़ प्रत्यक्ष न भासे तो वह अमानापादक आवरण है, असत्वापादक आवरण अज्ञानी को प्रतीत होता है और अमानापादक आवरण जिज्ञासु को होता है, ज्ञानवान् को यह दोनों आवरण नहीं रहते, इसलिये वह निर्वाण शान्त रूप होता है, आकाशवत् निर्मल और निरालम्ब है, वह किसी गुणतत्व के आश्रय नहीं होता और उसका द्वैत भ्रम नष्ट हो जाता है, उसने आत्मरूप तीर्थ में स्नान किया है, आत्मतीर्थ अपवित्र को भी पवित्र बनाता है, जिन पुरुषों ने शरीर में आत्मदर्शन किया है, उनका शरीर भी परम पवित्र हुआ है, ऐसे पुरुषों को शरीर की सत्यता नहीं रहती और संसार भी नहीं रहता, आत्मसाक्षात्कार होने पर सब इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं और उनको सब ब्रह्म ही भासता है, द्वैत कुछ नहीं भासता, सब आत्मस्वरूप है, उसमें संकल्प से नाना प्रकार की सृष्टि भासती है, हे रामजी! तुम संकल्प की ओर मत जाओ, क्योंकि चित्तवृत्ति क्षण क्षण में परिणत होती है, अनन्त योजन पर्यन्त चली जाती है उसके अनुभव करने वाली जो सत्ता मध्य में है जिसके आश्रय वह जाती है वह चिन्मात्र तेरा स्वरूप है जब उसमें

स्थित होकर देखेगा तब स्फुरण में भी ब्रह्मसत्ता भासेगी, हे रामजी! यह संवित् सदा प्रकाश रूप है, चित्त के क्षोभ से रहित है, द्वैतरूप विकार से रहित शुद्ध है और जितने प्रकाश हैं उनका विरोधी भी है, दीपक का विरोधी पवन है, उसे बुझा देता है, सूर्य के विरोधी राहु केतु हैं जो ढंक लेते हैं और महाप्रलय में सर्व प्रकाश तमोरूप हो जाता है आत्म प्रकाश तत्व सिद्ध है तम को भी प्रकाशित करता है और सदा ज्ञानरूप एक रस है उसको त्यागकर तुम अपर को न चाहो, हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्या है जैसे जेवरी में सर्प और सीपी में रूपा कल्पित है, ऐसे आत्मा में विश्व कल्पित हैं जब तू जगकर देखेगा तब सबका अभाव हो जायेगा, जैसे बन्ध्या के पुत्र के रूप का अभाव है, ऐसे सब विश्व मिथ्या प्रतीत होगा, क्योंकि है ही नहीं, भ्रममात्र स्वप्न की नाईं अविचार सिद्ध है और विचार करने पर आत्मा ही है इतर कुछ नहीं, ऐसे यह विश्व भी आत्म स्वरूप ज्ञान मात्र है, जैसे स्वप्न की सृष्टि अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐसे ही जान लो वह मम देह इन्द्रियादिक ज्ञानमात्र हैं, दृश्य ही दूसरी कुछ वस्तु नहीं, जब ऐसा निश्चय धारण करेगा तब निःशोक होगा और मोह से भी रहित होगा, परमार्थ सत्ता यथार्थरूप में भासेगी, जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं ऐसे आत्मा में दृश्य उठते हैं वे वही रूप हैं जो इतर भासे सब मिथ्या जानों सब सृष्टि इसके अंतर स्थित है; अज्ञान से बाह्य भासती है, जैसे स्वप्न की सृष्टि सब इसके अन्तर होती है और अपना स्वरूप होता है, निद्रादोष से बाह्य भासती है जब जगता है, तब अपना ही रूप भासता है, ऐसे जाग्रत सृष्टि भी विचार करने से अपने अनुभव में भासती है, इसलिये स्थित होकर देख जो सर्वदा जगती हुई ज्योति है, उसको त्यागकर अन्य यत्न करना वृथा है, हे रामजी! अपने अनुभव में स्थित होना क्या कष्ट है और जो कठिन जानते हैं वे मूढ़ हैं, उनको धिक्कार है, जो गोपद को समुद्र जानते हैं, उनसे अन्य मूर्ख कौन है अनुभव में स्थित होना समुद्र को गोपद के समान तर जाने जैसा सुगम है और जो अन्य पदार्थ हैं जिनके पाने की इच्छा करेगा उनमें व्यवधान हो

तो हो परन्तु आत्मा में व्यवधान कुछ नहीं क्योंकि अपना आप है, हे रामजी! जिन पुरुषों ने आत्मा में स्थिति पायी है, उनको मोक्ष की इच्छा भी नहीं तो स्वर्गादिक की इच्छा कैसे हो, मोक्ष और स्वर्ग आत्मा में जेवरी के सर्पवत् मिथ्या भासते हैं, उनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है, हे रामजी! स्वप्न में सुषुप्ति नहीं और सुषुप्ति में स्वप्न नहीं, इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ता है, यह दोनों मिथ्या है, निर्वाण और जीना इनको दोनों तुल्य हैं ऐसे जानकर इच्छा किसी की नहीं करते, प्रपंच उनको शशे के सींग और बंध्या के पुत्रवत् भासते हैं, हे रामजी! हमको तो सदा आकाशरूप भासता है और यदि तुम कहो कि उपदेश क्यों करते हो तो हमको कुछ प्रतीत नहीं अर्थात् भान नहीं होता, तुम्हारी इच्छा ही तुम्हें वसिष्ठ होकर उपदेश करती है, हमको विश्व सदा शून्यरूप भासता है और हमको जो चेष्टा कर्त्ता मानते हैं वे अज्ञानी हैं, हमारे निश्चय में चेष्टा नहीं और हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कुछ नहीं और अज्ञानी की चेष्टा अर्थाकार होती है, हमको चेष्टा सत् नहीं भासती, इसलिये अर्थाकार नहीं होती, जैसे ढोल का शब्द होता है परन्तु अर्थ उसका नहीं होता कि क्या कहता है और वाणी से जो शब्द बोला जाता है उसका अर्थ होता है, ऐसे हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कुछ नहीं अर्थात् यह जन्म को नहीं देती और अज्ञान की चेष्टा जन्म को देती है, हमको संसार ऐसे भासता है जैसे अवयवी सर्व अवयव को अपना स्वरूप ही देखता है हस्त पाद शिर आदिक सब अपने ही अंग देखता है, ऐसे हमको जगत् अपना स्वरूप ही भासता है, हे रामजी! जगत् में एक ऐसे देखे जाते हैं कि उनको हम स्वप्न के जीव प्रतीत होते हैं और हमको वह शून्य आकाशवत् दृष्टि आते हैं और उनके हृदय में हम नाना प्रकार की चेष्टा करते अपर की नाईं भासते हैं और हमको तो जगत् ऐसे भासता है, जैसे समुद्र में तरंग होते हैं, ऐसे आत्मा में जगत् है मैं भी ब्रह्म हूँ, तू भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है, रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, इसलिये तुम भी ब्रह्म भावना करो, क्योंकि अपने स्वभाव (स्वरूप) में

स्थित होना परम कल्याण है और पर स्वभाव में स्थित होना दुःख है, हे रामजी! अपना स्वभाव साधना ही मोक्ष है और न साधना ही बन्धन है, हे रामजी! कोई किसी प्रकार का भी धन सम्पत्ति आदि पदार्थ तथा मित्र बन्धु इसके ऊपर उपकार नहीं कर सकता, अगर कर सकता है तो अपना पुरुषार्थ कर सकता है, अपने पुरुषार्थ के बिना अन्य कोई इसका उपकारक नहीं है, वह पुरुषार्थ यही है कि अपने चेतन स्वभाव (स्वरूप) में स्थित होना, परन्तु स्वभाव का त्याग करना और जब अपने स्वभाव (स्वरूप) में स्थित होगा तब सब अपना स्वरूप ही भासेगी और यदि तू स्वरूप से विचलित होकर देखे तो न मैं हूँ, न तू है, न जगत् है, सब भ्रममात्र है मृगतृष्णा के जलवत् भासता है, अथवा ऐसे जान लो कि मैं भी ब्रह्म हूँ, तू भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है, अथवा ऐसा जान न तू है न मैं हूँ, न जगत् है पीछे जो शेष रहेगा तेरा स्वरूप है, हे रामजी! जिस पुरुष को ऐसा निश्चय हुआ है कि मैं, तू, जगत् सब ब्रह्म है अथवा मैं, तू, जगत् सब मिथ्या है, उसको कोई इच्छा शेष नहीं रहती और जिनको इच्छा उठती है तो जानिये कि ब्रह्म आत्माकार साक्षात्कार नहीं हुआ, जब भोग की वासना निवृत्त हो और संसार विरस हो जाय तब जानिये कि यह संसार के पार पहुँच गया अथवा पहुँचने वाला है, हे रामजी! यह निश्चितरूप से जानिये कि जिसकी भोग वासना क्षीण होती है उसका स्वभावरूप सूर्य उदय होता है और भोग की तृष्णारूप रात्रि नष्ट होती है, यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष भोग की तृष्णा दृष्टि आती है तो भी उसकी वासना जाती रहती है और ब्रह्मसत्ता भासती है। संसार की ओर से सुषुप्ति हो जाती है, मृत्त की नाईं होता है और अपने स्वरूप में सदा जाग्रत है अपने स्वभावरूप अमृत में मग्न होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे वसिष्ठगीतोपदेशो नाम ऊनाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१७९।।

अशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८०

वसिष्ठगीतासंसारोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार यह परमस्वभाव हैं इनको ब्रह्मरूप जान, परस्वभाव क्या और ब्रह्मरूप क्या है, हे रामजी! तेरा स्वरूप शुद्ध आकाश है, उसमें जो रूप अवलोकन मनस्कार फुरे हैं वह प्रकृत्ति की माया से फुरते हैं वह माया स्वभाव से है यह पर स्वभाव है, परन्तु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है, इसलिये आत्मस्वरूप हैं, आत्मा के जानने से इनका अभाव हो जाता है, हे रामजी! जब इसको ज्ञान उत्पन्न होता है, तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है, संसार की सत्ता कुछ नहीं भासती और जब दृढ़ता हुई तब सुषुप्त हो जाता है, इनका भाव भी नहीं रहता, तुरीया में स्थित होता है और जब तुरीयातीत होता है तब अभाव का भी अभाव हो जाता है परम कल्याण रूप सत्ता समान पद को प्राप्त होता है, वह आदि अन्त से रहित परमपद है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हूँ और परमशान्तरूप है, निर्दोष हूँ, जगत् भी सब ब्रह्मरूप है, हमको सदा यही निश्चय रहता है और ऐसा उत्थान नहीं होता कि मैं वसिष्ठ हूँ, सदा आत्मस्वरूप का निश्चय रहता है, हमारा परिच्छिन्न अहंकार नष्ट हो गया है, इसलिये हम निरहंकार पद में स्थित हैं, जब तू ऐसे होकर स्थित होगा तब परम निर्मल स्वरूप हो जायेगा, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल शोभा पाता है, ऐसे तू शोभायुक्त होगा, हे रामजी! ऐसे पुरुष को बन्धन है उसे सुनो, जिस बन्धन से आत्मपद को प्राप्त नहीं होता, प्रथम धन का बन्धन है, भोग की तृष्णा और बांधव का बंधन है, जिसको इन तीनों की वासना रहती है उसको धिक्कार है। महान् अनर्थ पैदा करने वाली यह विषय वासना है, यह भोग महारोग हैं और बांधव ममता के बन्धनों से दृढ़ बान्धनेवाले बन्धन हैं और अर्थ की प्राप्ति अनर्थ का कारण है, इसलिये इस वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो जाइये, यह संसार भ्रांतिमय है, इसकी

वासना करना व्यर्थ है, इसको सत् मत जानो, तुम्हें यह संग मिलाप प्रिय लगता है परन्तु क्षणिक है, जगत् के यह कल्पित संबन्ध और कल्पित सुख साधन वास्तव में अभाव रूप हैं, इन संकल्प के रचे नगरों की रचना से बचना ही भला है, यह गिरते दीखते हैं बनते नहीं दीखते, हे रामजी! तू मैं और यह जगत् भ्रममात्र संकल्प नगर के समान हैं, जैसे भविष्यत् तू नगर की रचना है, ऐसे यह जगत् और कर्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं वे भी भ्रममात्र हैं, केवल आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है, आत्मरूप आकाश में यह जगत् रूप पुतलियां हैं और संकल्प मात्र प्रत्यक्ष हुआ है, वास्तव से केवल शान्तरूप आत्मतत्व है, हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं, उनको आत्मतत्व ही भासता है और जिनको आत्मतत्व का प्रमाद है उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है और आत्मा में यह जगत् आरंभ परिणाम करके कुछ बना नहीं, जैसे सूर्य की किरणों में अज्ञान से जलाभास होता है, ऐसे आत्मा में अज्ञान से जगत् प्रतीति होती है, जब आत्मा का सम्यक् ज्ञान हो तब जगद् भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे सूर्य की किरणें जानने से जल भ्रम निवृत्त हो जाता है और जैसे स्वप्न से जगे हुए स्वप्नसृष्टि अपने आप ही भासती है ऐसे अविद्या के नाश हुए सब अपना आप ही भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे वसिष्ठगीतासंसारोपदेशो नामाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१८०॥

एकाशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८१

जगदुपशमयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसको सब ब्रह्मरूप भासता है, यही ज्ञान का लक्षण है और जैसे जैसे ज्ञानकला उदय होती जाती है, ऐसे ऐसे भोग वासना

क्षीण होती जाती है, जब पूर्ण बोध की प्राप्ति होती है तब इच्छा किसी की नहीं रहती, जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशवान् होता है वैसे वैसे ही अन्धकार नष्ट होता जाता है, जब पूर्ण प्रकाश हुआ तब रात्रि का अभाव हो जाता है, ऐसे जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसको भोग की वासना नहीं रहती और संसार उसको जले वस्त्र की नाईं भासता है और अज्ञानी को सत्य भासता है, जैसे स्वप्न में सुषुप्ति नहीं होती और सुषुप्ति में स्वप्न नहीं होता, स्वप्न का पुरुष सुषुप्ति को नहीं जानता और सुषुप्तिवाला स्वप्नवाले को नहीं जानता, ऐसे जिनको तुरीयापद की प्राप्ति होती है, उनको संसार का अभाव हो जाता है और वे अपने स्वरूप में स्थित होते हैं जो संसार को सत् जानता है, वह स्वप्न नगर है, सुषुप्ति को नहीं जानता, हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप जो कि तुरीयापद है, उसको अज्ञानी नहीं जान सकता और यदि जाने तो उसका परिच्छिन्न अहंकार नष्ट हो जाये, जब अहंकार नष्ट हुआ तब सर्वात्मा ही हुआ। हे रामजी! इसको अहंता ने तुच्छ किया है इसलिये अहंता रूप दृश्य का तुम त्याग करो और स्वरूप स्थिति प्राप्त करो, संसाररूप एक पुतली है, वह भ्रम से उदय हुई है, उसका सिर ऊर्ध्व (ब्रह्मलोक) है, पाद और गुल्फ पाताल लोक हैं दशों दिशाएं उसका वक्षःस्थल (छाती) है चन्द्रमा सूर्य इसके नेत्र हैं, तारागण इसके रोम हैं, आकाश इसके वस्त्र हैं और सुख दुःख रूपी स्वभाव है और पवन इसका प्राण वायु है, बगीचे इसके भूषण हैं, द्वीप और समुद्र इसके कंकण हैं, लोकालोक पर्वत इसकी मेखला हैं, हे रामजी! ऐसी जो पुतली है, वह नृत्य करती है, वह क्या है, जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होते और नाश होते हैं परन्तु जल ही जल है, ऐसे जल की नाईं सब ब्रह्म रूप है और भ्रम से विकार दृष्टि आते हैं, हे रामजी! कर्ता क्रिया कर्म भी सब आत्मरूप हैं, जब तू आत्मा की भावना करेगा तब तेरा हृदय आकाशवत् शून्य हो जायगा, जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है, ऐसे तेरा हृदय जगत् से जड़ शून्य हो जायेगा, हे रामजी! आत्मपद शान्तरूप है और आकाशवत् निर्मल है जैसे आकाश में आकाश

स्थित है, ऐसे आत्मा में जगत् है, न उदय होता है न अस्त होता है, केवल शान्त रूप है और उदय अस्त भी तब होता है जब कुछ दूसरी वस्तु होती है, जगत् कुछ भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप ही है, द्वैत और एक कल्पना से रहित आत्मा अपने आप में स्थिति है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम एकाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१८१।।

व्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८२

पुनर्निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह विश्व आत्मा का चमत्कार है, मिट्टी की पुतली जैसे मिट्टी रूप होती है, जैसे कागज की पुतली कागज रूप होती है ऐसे विश्व आत्मरूप है, जैसे मृन्मय दीपक देखने मात्र के काम का होता है। प्रकाश का कार्य नहीं करता ऐसे यह जगत् देखने मात्र है। विचार करने से आत्मा बिना इतर सत्ता कुछ नहीं, इसलिये जगत् की सत्यता आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जगत् की आस्था आत्मा के आश्रित होती है, जैसे जल में तरंग और आकार में शून्यता और पवन में स्फुरण है, ऐसे आत्मा में जगत् अभिन्न रूप है, जैसे वायु चलती है, तब भी पवन है, उसको वायु का निश्चय है, ऐसे चेतन में निश्चय है कि जगत् वही स्वरूप है, हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं और भ्रम से भिन्न भासता है, जैसे कथा में कथा के पुरुष विद्यमान भासते हैं, ऐसे यह जगत् भी मनोमात्र जानो, हे रामजी! जो विद्यमान है, वह अविद्यमान हो जाता है और जो अविद्यमान है वह विद्यमान हो जाता है, जैसे स्वप्न में जगत् अनुभवरूप है, इतर कुछ नहीं, ऐसे जाग्रत जगत् विचार कर देखेगा तब ब्रह्मस्वरूप ही भासेगा, जैसे जो पुरुष सोया होता है, स्वप्न जगत् उसी का रूप है, परन्तु जब तक निद्रा दोष है तब तक भिन्न भासता है और जगने पर सब अपना ही आप भासता है, ऐसे जब

यह पुरुष अपने स्वरूप में स्थित होकर देखता है, तब सब अपना आप ही प्रतीत होता है, हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है और आत्मा इन्द्रियों का विषय नहीं निराकार है और मन के चिन्तन से रहित है, संकल्प से आप ही रूप अवलोकन मनस्कार से स्थित हुआ है इतर कुछ नहीं सब वही है और उसी को कई शिव कहते हैं कई ब्रह्म कहते हैं, कई आत्मा कहते हैं, कई शून्य कहते हैं, इत्यादिक नाम शास्त्रकारों ने उसी के कहे हैं, संकल्प में कई हैं और आत्मा केवल चिन्मात्र है, वाणी का विषय नहीं, शान्तरूप है और जो चैत्य जो है, दृश्य से रहित है सब शब्दों और अर्थों का अधिष्ठान है और जगत् उस का चमत्कार है, हे रामजी! आत्मा में द्वैत कलना कोई नहीं क्योंकि आत्मसत्ता मात्र है समस्त जगत् आत्मरूप है, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, हे रामजी! किसी देश अथवा किसी ऐसे विचित्र समय पर कहीं यह असंभव भी संभव हो जाय तो हो जाय कि स्वर्ण में और भूषण में कुछ भेद है, स्वर्ण भिन्न है और भूषण भिन्न है परन्तु आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं, ऐसे ही प्रकाशित है और अपने स्वभाव में स्थित है, अन्य कोई दूसरी वस्तु है नहीं, केवल आत्मतत्व ही सर्वत्र परिपूर्ण है, आत्ममहिमा की विचित्रता से नाना प्रकार के अन्य व्यवहार चल रहे हैं, परन्तु सबका मूल रूप और जगत् का अन्त भी यही परिपूर्ण सत्ता है, जैसे मिट्टीकी बनी हुई सेना नाना प्रकार की संज्ञाओं को धारण करती है, परन्तु मृत्तिका से इतर दूसरी कोई वस्तु नहीं, ऐसे ही स्फुरण से नाना प्रकार की संज्ञाएं दृष्टि आती हैं, परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, वही रूप है, हे रामजी! जो पदार्थ भासते हैं वे अनुभव से भासते हैं पदार्थ की सत्ता अनुभव से इतर कुछ नहीं, जब तू अनुभव में स्थित होकर देखेगा, तब अनुभव रूप अपना आप ही भासेगा, अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है, उसके जानने का नाम ज्ञान है, हे रामजी! ज्ञान बिना जो तप यज्ञ दान आदिक क्रियाएं हैं सब व्यर्थ हैं, सर्व क्रियासिद्धि ज्ञान से होती है, जैसे उलूक की

अपनी जो क्रिया है रात को होती है वह दिन होने पर मिथ्या हो जाती है, ऐसे तपदान आदिक क्रिया ज्ञान के उदय बिना व्यर्थ होती है, हे रामजी! जो कुछ क्रिया ज्ञान के निमित्त की जाय वह पुरुष प्रयत्न श्रेष्ठ है और इनमें अन्यथा है वह व्यर्थ है, धन के उत्पादन में भी अनर्थ होता है और रखने में भी कष्ट है परन्तु जो ज्ञान के साधन से इसको रखा जाय या दिया जाय तब यह अमृत हो जाता है, हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है, जैसे बीमार आंखों वाले को रूप विपर्यय होता है, जैसे स्वप्न सृष्टि भासती है, उसमें अज्ञ तज्ज्ञ भी भासते हैं परन्तु असत् रूप हैं, ऐसे यह जगत् जो विद्यमान भासता है, वह अविद्यमान है और आत्मा सदा विद्यमान है, हे रामजी! जो लोग विद्यमान श्री भगवान् विष्णुदेव को त्यागकर अन्य देव का पूजन करते हैं उनकी पूजा सफल नहीं होती और भगवान् उन पर कुपित होते हैं, विष्णु भगवान् का विद्यमान होने का क्या स्वरूप है, यह सुनिये, जो पुरुष भगवान को जो कि सर्व व्यापक है, जब अनुभव से अपना आत्मरूप जानता है वही उसका विद्यमान जानता है, उस भगवान् को त्यागकर जो अन्य देव का पूजन करते हैं, वे जन्म मरण के बंधन से मुक्त नहीं होते, मूढ़ता में रहते हैं, आत्मदेव का पूजन कैसे किया जाता है–सुनो, संसार में जो कुछ वस्तु अनिच्छित रूप से प्राप्त हो वही भगवान् के अर्पण करना, परन्तु ऐसी पूजा कभी नहीं करनी, जिसमें अहंता हो, कर्तृत्व का अभिमान हो, हे रामजी! इस आत्मदेव से इतर जो सूर्य चन्द्र आदिक भेद पूजा है, वह तुच्छ है, जब तुम आत्मपूजा में स्थित हो जाओगे तो तुम्हें अन्य पूजाएं शुष्क तृण के समान निस्सार प्रतीत होंगी, दान भी आत्मदेव को ही करना चाहिये, वह इस प्रकार का होना चाहिये कि बोध से किया जाय, परन्तु पहिले बोध की उत्पत्ति कैसे होती है, सर्व प्रथम वैराग्य और धर्म बोध का कारण है तथा सन्तोष है, यथा लाभ में संतुष्ट रहना, ब्रह्म विद्या का विचार करना और सत् पुरुषों का संग करना, इन साधनों से जब बोधरूप सूर्योदय होगा तब द्वैतरूप अन्धकार नष्ट हो जायगा, ज्ञान

प्रकाश ही प्रतीत होगा और उसके अनन्तर जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह भी शान्त हो जावेगा, इसलिये उसी देव की पूजा करो जिससे आत्मपद की प्राप्ति हो, आत्मपद की पूजा के लिये फूल भी चाहिये तो आत्मविचार यथा लाभ, सन्तोष, सत्संग, मनोवृत्ति अन्तर्मुख रहे, इन फूलों से निवेदन करना, यही पूजा है और यह पूजा तब होती है जब अन्तःकरण शुद्ध होता है और उससे ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञानोदय हुआ तब आत्मदेव कां साक्षात्कार होता है, ज्ञान का लक्षण सुनिये, गुरु और शास्त्र से जो वस्तु सुनी है उसमें स्थिति होती है और संसार की वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञान की पूर्ति होती है तब जगत् उसको ब्रह्मरूप ही भासता है, उसको शस्त्र काट नहीं सकते और सिंह सर्प का भय नहीं होता, अग्नि और विष की भीति नहीं होती, हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसे भावना करता है, वैसा ही आगे प्रतीत होता है, जब शस्त्रों में शस्त्र के अर्थ की भावना हो तब शस्त्र हो भासते हैं सर्प, अग्नि, विष आदि प्रत्येक वस्तु यथेष्टरूप से सामने आ जाती है, अग्नि में कोई कार्य है तो अग्नि अर्थाकार भासती है, इस प्रकार सर्प में जब आत्मभावना करता है तो सर्प आत्मा ही भासता है, दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं तो दिखाई कैसे दे और जो पुरुष कृतकृत्य नहीं हुआ और अपने आपको कृतार्थ मानता है और दुःख निवृत्ति का उपाय नहीं करता, दुःख इस पर आयेगा और दुःख ही इसको विचलित कर देगा, हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहाता है वाणी करके और निश्चय से रहित है और शास्त्र भी बहुत देखता है, तब वह महामूर्ख है, जैसे जन्म का अन्धा होता है और सूर्य को नहीं जानता है, ऐसे वह आत्मा अनुभव से रहित है, जब आत्मपद का साक्षात्कार होगा, तब ऐसे आनन्द को प्राप्त होगा, जिसके पाने से संसार के अन्य सब सुखद पदार्थ व्यर्थ प्रतीत होंगे, इसलिये आत्म परायण होना चाहिये, सदा आत्मपद की भावना करनी चाहिये, हे रामजी! जैसी भावना होती है वैसा जगत् भासता है, जैसे शुद्ध मणि के निकट जैसी वस्तु रखिये ऐसा प्रतिबिंब होता है, ऐसे ही जैसी भावना करता है ऐसा रूप जगत् भासता है,

इसलिये जगत् को ब्रह्मरूप जानो, अपर दूसरा भासे तो भ्रममात्र जानो, जैसे पत्थर की शिला के ऊपर पुतलियां लिखते हैं, वे शिलारूप ही हैं, ऐसे यह जगत् आत्मरूप है। जब तुझको आत्मपद की प्राप्ति होगी, तब सब पदार्थ तेरे विरस होंगे। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है, जो पुरुष इस जगत् को पदार्थ करके जानता है और कहता है हम मुक्त होंगे वह ऐसे है जैसे अन्धेरे कूप में जन्म का अन्धा गिर जाय और कहे कि इस अन्धेरे के प्रभाव से मुझे नेत्र मिल जायँ, वह मूर्ख है, आत्मज्ञान के बिना कभी मुक्त नहीं होता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम व्द्यीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१८२॥

त्र्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८३

ब्रह्मैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! वह जगत् अहन्ता से लेकर यावन्मात्र भास रहा है, मिथ्या है, भ्रम से उदय हुआ है, इसको त्यागकर अपने अनुभव स्वरूप में स्थित हो, इस मिथ्या जगत् में आस्था करना मूर्खता है, जो ज्ञानवान् है उसको जगत् भ्रम का अभाव है, अब ज्ञानी और अज्ञानी दोनों का लक्षण सुनो, हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को ज्वर (बुखार) हो गया हो तो उसका हृदय जलता है और तृषा लगती है, परन्तु जिसका ज्वर शान्त हो जाय उसका हृदय शीतल हो जाता है तृषा मिट जाती है, इसी प्रकार जिस पुरुष को अज्ञानरूप ज्वर (बुखार) चढ़ जाता है, उसका हृदय जलता है, भोगरूप जल की पिपासा प्यास लगती है और अज्ञानरूप ताप (बुखार) जिसका मिट गया है उसका हृदय शीतल हो जाता है, भोगरूप जल की तृषा मिट जाती है, अब ताप निवृत्त करने का उपाय सुनो—शास्त्र के अर्थवाद से बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, मैं

तुम्हें सुगम उपाय कहता हूँ कि निरहंकार होना ही सुगम उपाय है। न मैं हूँ न यह जगत् है, जब तुम ऐसे निश्चय को धारण करोगे तब सब जगत् तुम्हें ब्रह्मरूप भासेगा और किसी पदार्थ की वांछा न रहेगी, जब प्रत्येक पदार्थ को मिथ्या जानकर अपना भी अभाव करेगा, तब पीछे प्रत्येक चेतन परमानन्द स्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहेगा, हे रामजी! यह अहंता रूप यज्ञ जो उठा है मिथ्या है और इस मिथ्या पुरुष ने नाना प्रकार के जगत् की कल्पना की है, वह अहंकार भी मिथ्या है और जगत् भी मिथ्या है, जब तू अपने स्वरूप में स्थित होगा तब जगद्भ्रम मिट जायेगा, जैसे स्वप्न में जगत् भासता है और सुन्दर पदार्थ भासते हैं, उनकी इच्छा करता है, जब तक जगा नहीं तब तक जानता है कि यह पदार्थ सदैव हैं कदाचित् इनका नाश नहीं होता और कहता है कि अमुक वस्तु अति सुन्दर है उसे देखें, अमुक पदार्थ अतीव स्वादिष्ट है उसका भोजन करें, इत्यादिक इच्छाएं करता है, जब जगता है तब जानता है कि मेरा ही संकल्प था, यदि वही सुन्दर पदार्थ पुनः स्मरण में आते हैं तो भी उनको मिथ्या जानता है, ऐसा ही जब आत्मस्थिति में जगता है तब सब ब्रह्म ही भासता है, हे रामजी! इस जगत् का बीज अहन्ता है, जैसे दुःख का बीज पाप होता है, ऐसे जगत् का बीज अहन्ता है, इसलिये तुम निरहंकार पद में स्थित हो जाओ, यह सब तेरा ही स्वरूप है, भ्रम से जगत् भासता है, हे रामजी! जगत् का अत्यन्ताभाव है, जैसे जेवरी में सर्प का अत्यन्त अभाव है और भ्रम दृष्टि से सर्प भासता है, जब विचार रूप दीपक से देखता है तब सर्प का अभाव हो जाता है, ऐसे यह जगत् आत्मा में भ्रम से भासता है, जब विचार करके जगत् का अभाव निश्चय करेगा तब आत्मपद ज्यों का त्यों भासेगा, जैसे वसन्तु ऋतु आती है तब फूल फल टास दृष्टि आते हैं, वह एक ही रस उतनी संज्ञाओं को धारण करता है, ऐसे जब तू आत्मपद में स्थित होगा, तब तुझको सब आत्मरूप ही भासेगा और सर्वनाम भी आत्मा ही भासेगा, हे रामजी! आदि भी आत्मा ही है और अन्त भी आत्मा ही होगा, मध्य जो जगत् के पदार्थ

भासते हैं, उनकी ओर मत जाओ, जो इनके जानने वाला है, जिससे सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं, उसमें स्थित होने का यत्न करो, यह मनुष्य सब मृग की नाईं हैं, जैसे मरुस्थल में जल जानकर दौड़ते हैं, ऐसे जगत् रूप मरुस्थल की भूमिका शून्य है और तीनों लोक मृग तृष्णा का जल है, उसमें मनुष्य रूप मृग दौड़ते हैं और दौड़ते दौड़ते हार जाते हैं, कदाचित् शान्ति नहीं पाते, क्योंकि जगत् के पदार्थ सब असत्य हैं, हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब मृग तृष्णा का जल है, इनको जो सत्य जानता है, वह मूर्ख है और यह जगत् गन्धर्व नगर की नाईं है, तुम जग कर देखो, इसको सत्य जान कर तृष्णा क्यों करते हो, इसे सत्य जानकर तृष्णा करना ही तो बन्धन है, हे राम! तुम आत्मरूप हो इसकी इच्छा से बद्ध क्यों होते हो, जैसे सिंह पिंजरे में आकर लीन होता है और बल से जब पिंजरे को तोड़ डालता है तब बड़े वन में जाकर निवास करता है और निर्भय होता है, ऐसे तुम भी वासनारूप पिंजरे को तोड़कर आत्मपद में स्थित हो जाओ, आत्मा सबका अधिष्ठान है और सबसे उत्कृष्ट है, उस पद को तुम प्राप्त करोगे परन्तु जब इस संसार की वासना नष्ट होगी तब आनन्द होगा और तुझे निर्वाणपद की प्राप्ति हो जायेगी, स्फुरण सहित होगा, परम उपशम ज्ञेयपद को प्राप्त होगा और द्वैतभाव मिट जायेगा, केवल परमार्थ सत्ता भासेगी, इसी का नाम निर्वाण है और यह चारों भूमिकाएं शान्ति के स्थान हैं, जैसे कोई यात्री चलकर आया हो और चलने की गर्मी से व्याकुल हो उसको शीतल स्थान मिल जाय तो शान्ति प्राप्त करता है, ऐसे यह चारों शान्ति के स्थान हैं, निर्वाणता निरहंकारता, वासना का परित्याग और परम उपशम इनसे ज्ञेय में स्थित होना यह शान्ति का स्थान है, जब तू स्थित होगा तब द्रष्टा दर्शन त्रिपुटी का अभाव हो जायेगा, केवल द्रष्टा ही रहेगा, हे रामजी! द्रष्टा भी उपदेश के निमित्त कहा है, जब दृश्य का अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका हो? केवल अपने आप में स्थित है, द्वैत चैत्य से रहित अद्वैत चेतन है, शुद्ध है, उसमें स्थित होकर जगत् का त्यागकर। यह जगत् बुद्धि

जन्म के देनेवाली है, जो जगत् के पदार्थ सुखदायी भासते हैं वे दुःख के देनेवाले हैं, इनको विष जानकर त्याग कर, जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं, ऐसे यह जगत् अन होता भासता है, आत्मा में दृश्य कुछ नहीं, एक ही पदार्थ में दो दृष्टियां हैं, ज्ञानी उसको आत्मा जानते हैं और अज्ञानी जगत् जानते हैं। दोहा—सब भूतन की रात्रि, सो सन्तन का दिन होय। जो लोगन दिन मानिया संत रहें तब सोय ।।१।। ज्ञानी परमार्थ तत्त्व में जगे रहते हैं और संसार की ओर से सोये हुए हैं और अज्ञानी परमार्थ तत्व से सोये हुए हैं और संसार की ओर सावधान हैं, हे रामजी! इस जगत् का मन से स्फुरण हुआ है और ज्ञानी का मन सत् पद को प्राप्त हुआ है, इसलिये उसमें मन में जगत् की भावना नहीं फुरती, जैसे बालक को संसार के पदार्थ का ज्ञान नहीं होता, ऐसे ज्ञानी के निश्चय में जगत् कुछ वस्तु नहीं, हे रामजी! जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं भासता, जैसे जल की बून्द जल में डारिये तो भिन्न नहीं प्रतीत होती, ऐसे ज्ञानी को जगत् नहीं भासता, जैसे बीज में वृक्ष होता है, ऐसे मन में जगत् स्थित होता है, जैसे वृक्ष बीजरूप है, ऐसे जगत् मनरूप है, जब जगत् नष्ट हो तब मन भी नष्ट हो जायेगा और मन नष्ट हो तो दृश्य भी नष्ट होगा, एक के अभाव हुए दोनों का अभाव हो जाता है और मन नष्ट हो तो स्फुरण भी नष्ट हो और फुरना नष्ट हो तो मन भी नष्ट होता है, हे रामजी! यह जगत् अन्तर बाहर जो भासता है वही मन है, इसलिये यदि मन को स्थिर करके देखेगा तो जगत् की सत्यता नहीं भासेगी, अज्ञानी के हृदय में जगत् दृढ़ता से स्थित है, इसीलिये दुःख पाता है जैसे बालक को अपनी परछाई में भूत का भान होता है और दुःख पाता है, अन्य कोई पास खड़ा है उसको नहीं भासता, वह दुःख नहीं पाता, हे रामजी! यह जगत् कुछ सत् वस्तु होता तो ज्ञानवान् को भी भासता, परन्तु ज्ञानी को भासता नहीं, इसलिये जगत् कुछ वस्तु नहीं, जैसे एक ही स्थान में दो पुरुष बैठे हैं, एक को निद्रा आ गयी है उसको स्वप्न जगत् भासता है और नाना प्रकार की चेष्टा होती है

और दूसरा जगता बैठा है, उसको जगत् नहीं भासता, ऐसे जो पुरुष परमार्थ सत्ता में जाग्रत है, उसको जगत् शून्य भासता है। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है, इसकी तृष्णा किसलिये करते हो, अपने स्वभाव में टिको यह जगत् पर स्वभाव है ऐसा जानकर चाहे जैसी चेष्टा कर तुझे बन्धन में न डालेगी और पूर्व पद की प्राप्ति होगी, आग से जले हुए सूखे तृण को जब हवा उड़ा ले जाती है तो पता नहीं लगता कहां गया, ऐसे ज्ञानरूप अग्नि से जलाया हुआ और निरहंकारतारूप पवन से उड़ाया हुआ संसाररूप तृण पता नहीं देता कि कहां गया जैसे लाख योजन पर्यन्त चला जाय तो भी आकाश ही दृष्टि आता है, सब सृष्टि को धारण कर रहा है ऐसे सब दृश्य जगत् को आत्मा धारण करता है संसार का शब्द अर्थ आत्मा में कोई नहीं। इसको छोड़कर देख कि सर्व शब्द अर्थ का अधिष्ठान आत्मा ही है, हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं, अतः इनका त्याग करो, जैसे मरुस्थल में जलाभास मिथ्या है ऐसे आत्मा में जगत् मिथ्या भ्रममात्र है, इसके सम्बन्ध से दुःखी होता है, जैसे जेवरी में सर्प और सीपी में रूपा मिथ्या है, ऐसे आत्मा में जगत् है, आप आत्मरूप हैं, ब्रह्म हैं और दुःख से रहित हैं, अपने स्वभाव में स्थित रहा कीजिये और आत्मदृष्टि से देखिये कि सर्व आत्मा है अथवा जगत् को मिथ्या जान तो भी शेष आत्मपद रहेगा, जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति में अभाव हुए शान्तपद शेष रहता है, ऐसे जगत् के अभाव किये से आत्मपद शेष भासेगा, यह जगत् अत्यन्त अभाव है और जो दृष्टि आता है वह भ्रममात्र है, एक काल में होता है दूसरे काल में नष्ट होता है, स्वप्न में जाग्रत का अभाव हो जाता है और जाग्रत में स्वप्न का अभाव हो जाता है और सुषुप्ति में दोनों का अभाव हो जाता है, इसलिये भ्रममात्र है और विश्व आत्मा का चमत्कार है, जैसे समुद्र में तरंग होते हैं ऐसे आत्मा में जगत् है, अहन्ता से उदय होता है, अहन्ता के अभाव से अभाव हो जाता है, जिनको अहन्ता का अभाव हुआ है वही सन्त हैं और उत्तम पुरुष हैं, जिन महानुभाव पुरुषों का अभिमान नष्ट हो गया है और

भोग की आशा का भी नाश हुआ है, वह भ्रान्ति रहित नित्य समाधिरूप होते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम त्र्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१८३।।

चतुरशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८४

हरिणोपाख्याने वृत्तान्तयोगोपदेशवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! यह मन रूप मृग भटकता है और वन में जलता है वह समाधान रूप कौन वृक्ष है जिसके नीचे आकर शान्तपद को प्राप्त हो। उसके फल फूल तथा शाखाएं कैसी होती हैं और वह वृक्ष कहाँ होता है, कृपा करके कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस प्रकार यह समान रूप वृक्ष उत्पन्न होता है, सुनो, इस वृक्ष का क्रम से पत्र पुष्प तथा शाखा आदि सब समाधान रूप से तुम्हें श्रवण करना परमावश्यक है, हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवों को कल्याण के निमित्त साधने योग्य है, अब तुम इसका क्रम सुनो, बल से उत्पन्न होता है और सन्तजनों के मन रूप वन में यह ध्यान रूप वृक्ष उत्पन्न होता है और चित्तरूप पृथ्वी में लगता है और वैराग्य इसका बीज है, वह वैराग्य दो प्रकार का होता है, जो कोई दुःख कष्ट होता है उससे भी वैराग्य उत्पन्न होता है, अथवा हृदय शुद्ध तथा निष्काम हो तो भी वैराग्य होता है, उस वैराग्य रूप बीज को चित्तरूप भूमिका में पाता है और जब वासनारूप हल चलाता है, सत्संग और सच्छास्त्ररूप जल से सींचता है; मनरूप क्यारी में वह जल निर्मल है शीतल है और हृदयगम्य है, उस कोमलता और दयारूप जलसे बीज को सींचता है, तब बढ़ने की आशा होती है, इत्यादिक बीज की हर प्रकार से अर्थात् बहुत जल आदि से भी रक्षा करता है, वह आत्मविचार रूप सूर्य की किरणों से सूखता है और उसके चारों ओर धैर्य रूप वाणी की जाये और तपदान, तीर्थ, स्नान रूप उन्नत स्थान पर बैठना कि बीज जल न जाय।

आशारूप पक्षी से रक्षा करनी कि वैराग्य रूप बीज को निकालकर न ले जाय और अभिलाषारूप बूढ़े बैल से रक्षा करनी कि क्षेत्र में प्रवेश करके इसका मर्दन न करे, उसके लिये संतोष और सन्तोष की स्त्री मुदिता दोनों को बैठाये रखना है और इस बीज का नाशक मेघ से उत्पन्न होने वाले ओलों से भी इसकी रक्षा करनी है। वे ओले क्या हैं, धन दौलत का मिलना और सुन्दरी स्त्रियों की प्राप्ति, यह वैराग्य रूप बीज का नाशक गढ़ा है, एक इसकी रक्षा का सामान्य उपाय है और एक विशेष उपाय है कि तप करना और इन्द्रियों को संयत रखना, दुःखी पर दया करनी, सन्तोष धारण करना तथा जप पाठ विधान हो इत्यादिक शुभ क्रिया साधन करता रहे तो विघ्न बाधा दूर रहती है और दूसरा परम उपाय यह है कि सन्तों की संगति हो और सत् शास्त्रों का श्रवण किया जाय, प्रणव (ओंकार) ध्यान और जप भी परमावश्यक है, जिसका ध्यान तथा जप किया जाय उसका अर्थ विचार भी करना चाहिये, जिस रूप के इष्टदेव हैं, तदनुरूप ही उनका दत्तचित्त होकर ध्यान करने से पूर्वोक्त (गड़ों) का नाश हो जाता है, जब इस प्रकार इन शत्रुओं से रक्षा की जाय तब बीज की उत्पत्ति होती है, इनको सत्संग और सत् शास्त्र विचार के वर्षा जल से सींचा जाने पर अंकुर निकलता है और महान् प्रकाश होता है, जैसे द्वितीया का चन्द्रमा होता है, सब उसको प्रणाम करत हैं, ऐसे ही संतोष दया ओर यशोरूप अंकुर से निकलता है, उसके दो पत्र निकलते हैं, एक वैराग्य; दूसरा विचार, इनके उदय से अंकुर प्रतिदिन बढ़ता जाता है शास्त्र से सुने हुए इस सिद्धान्त से कि आत्मा सत्य है और जगत् मिथ्या है पूरा लाभ उठाना चाहिये, इसके निरन्तर अभ्यासरूप जल के सिंचन से अंकुर प्रतिदिन बढ़ता जायगा और उसके बड़े बड़े स्तम्भ होंगे, हे रामजी! जब टास (शाखाएं) बड़े होते हैं तब बानर उस पर चढ़कर उस तोड़ डालते हैं, वे रागद्वेष रूप वानर है, इसलिये इस वृक्ष को दृढ़ वैराग्य सन्तोष और अभ्यास रूप रस से पुष्ट करना चाहिये, जब ऐसा किया जायेगा तो इस पर सुन्दर पत्र और टास

लगेंगे और फूलों तथा मनोहर मञ्जरियों से अत्यन्त शोभा होगी, इसकी छाया बड़े मार्ग तब फैल जायगी और इसमें शान्ति शीतलता शुद्धता, कोमलता, दया, यश कीर्ति आदि दिव्य गुण प्रकट होंगे, तब उसके नीचे मनरूप मृग विश्राम पाता है और शीतल होता है, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आदिदैविक ताप मिट जाते हैं और परम शान्ति को प्राप्त होता है, हे रामजी! यह मैंने तुम्हें ध्यान रूप वृक्ष कहा है, जहां यह वृक्ष उत्पन्न होता है, वहां की शोभा कही नहीं जाती, जो इस वृक्ष की शरण में आता है उसके ताप मिट जाते हैं और शान्तिवान् होता है, यह वृक्ष ब्रह्मरूप आकाश के आश्रय से बढ़ता है, इसमें वैराग्य रूप रस है और सन्तोष से यह पुष्ट होता है, जो पुरुष इसका आश्रय लेगा वह शांति को प्राप्त होगा, हे रामजी! जब तक गमन रूप मृग इस ध्यानरूप वृक्ष का आश्रय नहीं लेता, तब तक भटकता फिरता है और शान्ति को नहीं प्राप्त होता, जैसे मृग वन में भटकता है, ऐसे भटकता है उसको द्वैत, अज्ञान, प्रमादरूप बधिक मारने लगता है, उससे दुःख पाता है, उससे डर कर गांव के निकट आता है, तब वह आप ही आप इसको पकड़कर खदेड़ देते हैं, उससे बहुत कष्ट पाता है, वे ग्रामवासी इन्द्रिय हैं, जब इनकी ओर आते हैं तब अपने आप विषय की ओर बाँध ले जाते हैं। इनके भय से फिर वन को जाता है, वहां वन की तप्तता से दुःखी होता है, वह विषय की अप्राप्तिरूप तप्तता है, रसरूप स्थान को शान्ति के लिये दौड़ता है, जब वहां जाता है, तब कामरूप श्वान इसको मारने के लिये दौड़ता है, उसके भय से फिर वन की ओर दौड़ता है तब क्रोधरूप अग्नि जलाती है और वासनारूप मच्छर दुःख देते हैं और लोभ मोहरूप अन्धेरी चलती है उससे अन्ध हो जाता है, हरे तृण देखकर ग्रहण करता है, गर्त में गिर पड़ता है, वह गर्त तृण से आच्छादित है वह तृण क्या है पुत्र धन, उनको सुन्दर देख कर ग्रहण करता है, तब ममता में गिर पड़ता है, इस प्रकार दुःख पाता है, हे रामजी! जब यह मन झूंठ बोलता है तब मृत्तिका में लोटता है, ऐसी चेष्टा करता है और जब मनरूप व्याघ्र आता है इसे खा

जाता है, जब यह ध्यानरूप वृक्ष से विमुख होता है तब इतने कष्ट पाता है, जब मनरूप व्याघ्र छोड़ता है तब आशा रूप जंजीर में बांधा जाता है, जब तक इस वृक्ष के निकट नहीं आता तब तक बड़े कष्टदायक स्थानों में जाता है, तमाल वृक्षादिक के नीचे भी जाता है और कंटीले वृक्षों के नीचे भी जाता है, परन्तु शान्तियुक्त कहीं नहीं होता महान् कष्ट को पाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे हरिणोपाख्याने वृत्तान्तयोगोपदेशो नाम चतुरशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१८४॥

पञ्चाशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८५

मनोमृगोपाख्यानयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार मूढ़बुद्धि मनरूप हरिण भटकता है, इसलिये मेरा आशीर्वाद है कि तुमको उस वृक्ष का संग हो, जब उस वृक्ष के निकट आता है, तब शान्ति को प्राप्त होता है, जब इसके नीचे आकर बैठता है, तब तीनों ताप अन्तःकरण से मिट जाते हैं, अन्य जितने वृक्ष हैं उनके पास गया हुआ मनरूप मृग शान्ति को नहीं पाता, जब ध्यान रूप वृक्ष के निकट आता है तब शान्ति को पाता है और बुद्धिप्रकाश पाती है, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्य को देखकर खिलता है, इस प्रकार यह प्रकाश पाता है और उस वृक्ष के अनुभव रूप फल हैं और शास्त्र विचाररूप पत्र हैं फूल हैं, उनको देखकर बड़े आनन्द को प्राप्त होता है और वृक्ष के ऊपर चढ़ जाता है, चढ़कर पृथ्वी का त्याग करता है, जैसे सर्प अपनी कंचुकी का त्याग करता है और नूतन सुन्दर शरीर से शोभा पाता है और जब उस वृक्ष पर चढ़ता है तब गिरता नहीं, क्योंकि पत्र उसके बहुत बलयुक्त हैं, उनके आश्रय से ठहरता है, वह कौन से पत्र हैं, ध्यानरूप वृक्ष के सत् शास्त्र रूप पत्र हैं, जब ध्यान रूप वृक्ष से उतरता है तब शास्त्र के अर्थ में ठहरता है, जितने विषय पदार्थ दिखाई देते हैं, वे

क्षारतुल्य अर्थात् व्यर्थ दृष्टि आते हैं और अपनी पहिली चेष्टाओं को स्मरण करके पछताता है, जैसे किसी ने मद्यपान किया हो उससे कुछ नीचे चेष्टा करे तो मद उतरने पर पछताया करता है, ऐसे मन रूप मृग अपनी पहिली चेष्टा को धिक्कार करता है और कहता है कि बड़ा आश्चर्य है मैं इतनी देर इस वृक्ष से विमुख हुआ भटकता फिरता हूँ, अब मुझे शांति प्राप्त हुई है, जैसे दिन की तप्तता का अभाव होने पर चन्द्रमुखी कमलिनी को शांति प्राप्त होती है, ऐसे मनरूप मृग को शांति प्राप्त होती है, हे रामजी! पुत्र धन स्त्री आदि जो दिखाई देते हैं उनको स्वप्नवत् देखता है, जैसे स्वप्न से जगा हुआ स्वप्नपुर को स्मरण करता है परन्तु उसमें अभिमान नहीं होता, ऐसे इनमें भी अभिमान नहीं होता। जब अनुभवरूप फल को भक्षण करता है तब बहुत आनन्द पाता है, जिसको वाणी वर्णन नहीं कर सकती, परम शान्त और निर्मल पद को प्राप्त होता है, अथवा यों कहिये कि निरातिशय पद को प्राप्त होता है, जो मन का विषय हो उसको सातिशय कहते हैं जो मन का विषय नहीं वह निरातिशय पद है और जो इन्द्रियों का विषय है उसका नाश भी होता है और जो इन्द्रियों और मन का विषय न हो उसका नाश नहीं होता, वह अविनीशी पद को पाता है और जैसे किसी को वाण लगता है और उसकी विरोधी बूटी उसके सामने रखिये तो निकल जाता है, ऐसे अनुभवरूप बूटी के सन्मुख होते ही मोह बन्धनरूप शर खुल पड़ते हैं और परम पद की प्राप्ति होती है, हे रामजी! ज्ञानवान् जगत् मृतक हो जाता है, उसको संसार का कुछ भी लेप नहीं लगता, जैसे लकड़ी बिना अग्नि शान्त हो जाती है, ऐसे ही वासना से रहित ज्ञानवान् की चेष्टा शान्त हो जाती है, अर्थात् संसार की सत्यता से रहित चेष्टा होती है, पुनः संसाररूप अग्नि उदय नहीं होती और द्वैत कल्पना भी मिट जाती है, उन्मत्त के समान अपने स्वरूप में मस्त रहता है जैसे मरुस्थल की धूप की इच्छा यात्री नहीं करता ऐसे ज्ञानी विषय की तृष्णा नहीं करता, जिसने आत्म अनुभवरूप अमृत पान किया है उसको विषयरूप कांजी की इच्छा

नहीं रहती, वह पुरुष सदा निर्वासन है, जब वहां पुरुष निर्वासन होता है तब चञ्चल हो मन की वृत्ति है, वह सब लीन हो जाती है, केवल आत्मत्व मात्र पद रहता है और मैं मेरा यह भावना नष्ट हो जाती है, जब तक चित्त का सम्बन्ध होता है तब तक मैं मेरा भासता है, जब चित्त का सम्बन्ध मिटा तब एकाकार हो जाता है। जैसे एक सूखा काष्ठ और एक गीला काष्ठ होता है, सूखा शुद्ध कहाता है और गीला औषधिक कहलाता है, जब जल सूख गया तब शुद्ध होता है, ऐसे ही जब मन की उपाधि नष्ट हुई तब शुद्ध आत्मा ही रहता है और एक रस भासता है, हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रम से भासता है, जैसे पत्थर की शिला में पुतली बिना उत्पन्न हुए भासती है वह न सत् है न असत् है, जब पत्थर से भिन्न करके देखें तब सत् नहीं, शिला से देखें तब वही रूप है, ऐसे जगत् आत्मा से भिन्न सत्य नहीं, आत्मसत्ता से आत्मरूप है, जैसे छोटे बालक के हृदय में जगत् का शब्द अर्थ नहीं होता, ऐसे ज्ञानी की चेष्टा भी प्रारब्ध वेग से होती है परन्तु उसके हृदय में जगत् के शब्द अर्थ का अभाव है, हे रामजी! जो कुछ प्रारब्ध होती है, वह अवश्य उसको भी आकर प्राप्त होती है मिटती नहीं, शुभ अथवा अशुभ जैसे मेघ से बूँदें गिरती हुई नष्ट नहीं होतीं, मेघ मंत्र शक्ति से नष्ट होता है, ऐसे प्रारब्ध कर्म नष्ट नहीं होता, अन्य नष्ट होते हैं, परन्तु वह उनके बंधन में नहीं आता, अज्ञानी के हृदय में संसार सत्य भासता है और भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, पदार्थ का ज्ञान है और ज्ञानी के हृदय में आत्मा का ज्ञान है, संसार की सत्यता उसको नहीं प्रतीत होती, हे रामजी! यह जो समाधान रूप वृक्ष मैंने तुम्हें कहा है, उसको विधिपूर्वक सेवा करने से अनुभव रूप फल की प्राप्ति होती है और बोध से रहित होकर यदि करे तो अनेक यत्न करने पर भी फल की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि ऐसी भावना उसको नहीं प्राप्त होती कि आत्मा शुद्ध है और सत् चित् आनन्द है और जिसको यह भावना प्राप्त होती है, उसको भोगने की इच्छा नहीं रहती, जैसे किसी ने अमृत पान किया हो तो अन्य अमल और कटु फल की इच्छा नहीं

करता, ऐसे ज्ञानी इच्छा नहीं करता, जैसा रुई के पोये को आग लगी और ऊपर से तीक्ष्ण पवन चला तो नहीं जानता कि कहाँ जा पड़े, ऐसे जगत् रूप रुई का पोवा ज्ञान अग्नि से दग्ध किया हुआ और वैराग्य रूप पवन से उड़ाया हुआ नहीं जाना जाता कि कहां जा पड़े? आकाश ही आकाश प्रतीत होता है, जगत् सत् नहीं भासता तो फिर तृष्णा किसकी करे, तृष्णा से रहित स्थित होता है, हे रामजी! दुःख का मूल तृष्णा है, तृष्णा से भटकता है, जैसे पर्वतों के जब तक पक्ष थे तब तक उड़ते थे, पक्षों के बिना उड़ने से रहित हुए, गंभीर स्थिर हो रहे, ऐसे जब मन से वासना नष्ट हुई तब मन स्थिर हो जाता है, हे रामजी! यात्री वांछित देश को तब जाय प्राप्त होता है, जब इतर देश का त्याग करता है, ऐसे आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानन्द अपना आप ही प्राप्त होता है, जब धन, लोक, पुत्र, ईषणा का त्याग करे, जब आत्म प्राप्ति हो तब निर्विकल्प समाधि से निर्विकल्प चेतन का साक्षात्कार होता है, जब समाधि में साक्षात्कार हुआ तब उत्थान काल में भी समाधिस्थित होता है और परम निर्वाण पद को प्राप्त होता है और चित्तरूप बल्ली दूर हो जाती है, जैसे रस्सी को बल होता है, उसे खैंचकर जब छोड़ता है तो निकल जाता है अथवा निकाला जा सकता है, तब वह सीधी हो जाती है, ऐसे जिसको समाधि में साक्षात्कार हुआ उसको उत्थान काल में भी वही भासता है और जिसको उसका प्रमाद है, उसको जगत् भासता है, हे रामजी! वस्तु एक है परन्तु उसमें दो दृष्टि हैं जैसे जेवरी एक है, सम्यक् दृष्टि को जेवरी भासती है और असम्यक्दर्शी को सर्प हो भासता है, ऐसे ज्ञानवान् को आत्मा हो भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है, जिस पुरुष ने ज्ञान से जगत् को असत् नहीं जाना, उसको ऐसे जान कि चित्त की अग्नि है, उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, न शीत ही दूर होता है और जिसको स्वरूप की इच्छा है और तृष्णा के नाश करने का प्रयत्न करता है और जगत् को मिथ्या विचारता है, वह विचार करने पर आत्मपद को प्राप्त होगा और तृष्णा भी उसकी निवृत्त हो जायेगी, हे रामजीं! ज्ञानवान् की तृष्णा स्वाभाविक मिट जाती है, जैसे सूर्य के

उदय हुए अन्धकार मिट जाता है, ऐसे वस्तु की सत्ता से उसकी तृष्णा मिट जाती है और परम पद में स्थित होता है, हे रामजी! जिसकी दृष्टि में निरसता है वह उत्तम पुरुष है, वह मनुष्य शरीर को पाकर ब्रह्म होता है, उसको मेरा नमस्कार है, वह मेरा गुरु है, हे रामजी! जब इसकी बुद्धि विषय से विरस हुई तब कल्याण हुआ, वैराग्य से बोध होता है और बोध से वैराग्य होता है, परस्पर दोनों सम्बन्धी हैं, जब एक आता है तब दूसरा आता है, जब यह आते हैं तब तीनों ईषणाएं निवृत्त हो जाती हैं, जब तीनों ईषणाएं गयीं तब अमृत की प्राप्ति होती है, वह कैसे प्राप्त होती है सुनो, सत्संग और सत् शास्त्रों का श्रवण इनके साथ निरन्तर स्वरूप का अभ्यास करने से आत्मपद की प्राप्ति होती है, यह तीनों श्रेष्ठ हैं, परस्पर एक हैं, जैसे आठ चरणों वाला कीट होता है जो प्रथम चरण को रख फिर दूसरे चरण को रखता है तब सुखेन चला जाता है, ऐसे सत्संग और सत् शास्त्रों के श्रवण से आत्मपद का अभ्यास करता है, तब शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होता है और जगत् का अभाव हो जाता है, हे रामजी! जगत् के भाव और अभाव को ज्ञानी जानता है, जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को तुरीया वाला जानता है, ऐसे जगत् के भाव अभाव को ज्ञानी जानता है, जैसे—अग्नि में सूखा तृण डाला दृष्टि नहीं आता, इसी प्रकार ज्ञानवान् को जगत् दृष्टि नहीं आता, हे रामजी! ज्ञानवान् को सर्वदा समाधि है, उत्थान कदाचित् नहीं होता, जब तक उस पद को प्राप्त नहीं हुआ तब तक साधना में सन्नद्ध रहे, जब उस पद की प्राप्ति हो गयी तो फिर कोई यत्न करना शेष नहीं रहता, हे रामजी! इस चित्त के दो प्रवाह हैं, एक जगत् की ओर जाता है और एक स्वरूप की ओर जाता है, जो जगत् की ओर जाता है, वह उपाधिक है और जो स्वरूप की ओर जाता है, वह उपाधि को दूर करनेवाला है, जैसे एक लकड़ी गीली होती है और एक सूखी होती है, जो गीली है, उसमें उपाधि जल है, उससे वह विस्तार को पाती है, जब जल नष्ट हो जाता है, तब शुद्ध होती है पुनः प्रफुल्लित नहीं होती, ऐसे संसार की सत्यता से चित्त वृद्ध

होता है, जब संसार की वासना नष्ट होती है, तब शुद्ध को पाता है, हे रामजी! वाद जो करते हैं वह दो प्रकार का है एक वाद जो किसी को दुःख देवे वह मूर्ख करते हैं और जो परस्पर मित्र भाव से तत्व का निरूपण करना होता है वह ज्ञानवान् करते हैं, जैसा वाद करता है उसका दृढ़ अभ्यास करता है ऐसा ही रूप हो जाता है जो कष्ट झगड़ा करता है उसकी वही रूप हो जाता है और जब स्वरूप का वाद मित्रता करके करता है तब वही रूप होता है उस पद को पाकर परम शांति को प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे मनोमृगोपाख्याने योगोपदेश वर्णनं नाम पंचाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ।।१८५।।

इति पूर्वार्ध समाप्तम् ।

श्रीपरमात्मने नमः।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्ध प्रारभ्यते ।

षडशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८६

स्वभावसत्तायोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस पुरुष ने समाधानरूप वृक्ष के फल को जानकर पान किया है और उसको पचाया है, उसको परम स्थिति प्राप्त होती है, जैसे पक्ष टूट जाने से पर्वत स्थित हो रहे हैं, ऐसे यह तृष्णरूप पक्ष टूट जाने से स्थित हो जाता है, हे रामजी! जब उसको फल प्राप्त होता है तब चित्त भी आत्मरूप हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण होता है तब जाना नहीं जाता कि कहां गया ऐसे आत्मपद के प्राप्त होने पर चित्त भिन्न होकर दिखाई नहीं देता, हे रामजी! जब तक वह अकृत्रिम आनन्द प्राप्त नहीं हुआ और उस पद में विश्रान्ति नहीं पायी, तब तक शान्ति प्राप्त नहीं होती, कैसा पद है जो निर्गुण है और शुद्ध है स्वच्छ है परमशान्त है, जब उस पद में स्थिति होती है, तब परम समाधि हो जाती है, ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं जो उसको उतारे, जैसे चित्र की मूर्ति होती है ऐसे उसकी अवस्था होती है, चेष्टा भी सब होती है परन्तु इच्छा से रहित है, जैसे पक्ष से रहित पर्वत स्थित होता है, ऐसे

मन अमन हो जाता है और शान्त पद को प्राप्त होता है, हे रामजी! जिसके मन में संसार का अभाव हुआ है वह शान्त पद को पाता है और जो वासना संयुक्त है तब मन है, जिस क्रम और युक्ति से इसकी वासना क्षय हो वह इसके लिये कर्तव्य है, हे रामजी! ज़ब वासना क्षय होगी तब बोधरूप शेष रहता है। जिस क्रम से वह प्राप्त हो वही करना चाहिये, उस पद के प्राप्त हुए बिना शान्ति कदाचित् न होगी, जब चित्त उस पद की ओर आये तब शान्त हो जाय, दुःख से छूट जाय अविनाशी हो, क्योंकि सर्वात्म निर्विभाग है और अनन्त है, परम शान्तरूप है, सबको कर्म का फल देने वाला है, हे रामजी! जब ऐसे पद को प्राप्त होता है तब उसको उत्थान काल में आत्मा ही भासता है, उसको द्वैत नहीं भासता, तब समाधि से उत्थान कैसे हो, किसी में सामर्थ्य नहीं जो उसको समाधि से उतारे, जब ऐसा पद प्राप्त होता है तब संसार विरस हो जाता है, हे रामजी! जब तक यह पुरुष मूर्तिवत् पुतली नहीं हुआ तब तक विषय का त्याग करे, जब ऐसी दशा हो तब कर्तव्य कुछ नहीं रहता कि त्याग करे अथवा न करे और यह निश्चित बात है कि जब ज्ञान उत्पन्न होगा तब विषयों से विरक्त हो जायेगा, ब्रह्मा से लेकर काष्ठ पर्यन्त जितने पदार्थ हैं, वह उसको विरस हो जाते हैं, ऐसा पुरुष सदा समाधिस्थ हैं, हे रामजी! जिसको समाधि का सुख प्राप्त हुआ है वह स्वाभाविक समाधि की ओर आता है, जैसे वर्षाकाल की नदी स्वाभाविक समुद्र को जाती है, ऐसे वह पुरुष समाधि की ओर लगा रहता है, जो पुरुष विषयेषणा से मुक्त है, आत्माराम है। उसकी वज्रसार की नाईं स्थिति होती है, जैसे पक्षहीन पर्वत स्थित हुए हैं, ऐसे जिस पुरुष ने संसार को विरस जान कर त्याग किया है और आत्मरति है आत्माराम है, अमोघ आत्मानन्द से तृप्त हुआ है उसका ध्यान विचलित नहीं होता, हे रामजी! जिस पुरुष की चेष्टा भी होती है और संकल्प विकल्प से रहित है, वह सदा मुक्ति रूप है, उसको कोई क्रिया बांध नहीं सकती, क्रिया और साधना का अभाव हो जाता है, जिस पुरुष को जगत् विरस हो गया है, उसको

विषयों की तृष्णा कैसे हो, जब तृष्णा न रही तब दुःख कैसे हो? दुःख तब तक होता है जब तक विषयों की तृष्णा होती है, विषयों की तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभाव को त्याग देता है, हे रामजी! जब अपने स्वभाव में स्थित हो तब इन्द्रियों के विषय जो कि परम स्वभाव है, रस संयुक्त कैसे भासें, दुःख और तृष्णा कैसे हो, हे रामजी! जब अपने स्वभाव को जानता है, तब परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है, जो आदि और अन्त से रहित पद है, उसको प्राप्त करता है, उस पद की प्राप्ति का उपाय सुनकर वेदाध्ययन करना चाहिये, जब इनसे श्रान्त हो जाय तब चित्त वृत्ति निरोध का अभ्यास करे, जब उससे भी थक जाय तब वही जाकर पाठ करे, जब ऐसा दृढ़ अभ्यास हो तब उस पद को प्राप्त होगा और स्वच्छ निर्मल अपने स्वभाव में स्थित होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वभावसत्तायोगोपदेशो नाम् षडशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१८६॥

सप्तशीत्युत्तरशततमः सर्गः १८७

मोक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह संसार बड़ा गहन है, इसका तैरना कठिन है, जो इस सागर को तरना चाहे उसके लिये यह कर्तव्य है कि वेद का अध्ययन तथा प्रणव का जप करना होता है जब ऐसा उपाय करे तब ईश्वर इस पर प्रसन्न होगा, तब इसके हृदय में विवेक कण उत्पन्न होगा, उससे संसार असत्य भासेगा और सत् संग प्राप्त होगा, वह सन्तजन परम सदाचार शीतल हृदय गंभीर अनुभवी तथा दया के सागर परम पवित्र चरित्र परोपकार परायण होते हैं, सन्तजन ज्ञानमय वृक्ष हैं उस वृक्ष में अनुभव रूप फल लगे हैं, यशकीर्ति शुभाचार उसके फूल हैं, ऐसे सन्तों की संगति जब मिलेगी, तब जगत् का राग द्वेषरूप तम मिट जायगा, जैसे थके हुए यात्री को शीतल छाया मधुर फल और ठंडे जल से

परम शांति मिलती है इसी प्रकार सत्संग से सुख मिलता है, जैसे चन्द्र किरणें अमृत बरसाती हैं, इसी प्रकार सन्तों के वचनों से शांति मिलती है, हे रामजी! संतजनों के दर्शन करने से पाप दग्ध हो जाते हैं और जो पुरुष तप, यज्ञ, व्रत, आदि कर्मकांड को सकाम भावना से करते हैं उनकी संगति नहीं करना चाहिये वह कैसे है, जैसे यज्ञ का स्तंभ होता है, वह पवित्र होता है परन्तु उसकी छाया नहीं इसलिये उसके नीचे कोई सुख नहीं पाता, हे रामजी! जितने सकाम कर्म हैं जन्म मृत्यु को देनेवाले हैं, यद्यपि यज्ञ व्रत आदि कर्म जिज्ञासु लोग भी करते हैं, तो भी उनमें विशेष है, क्योंकि वे निष्काम हैं और विषयों में उनको विरस भावना है और वे परम सदाचार हैं, हे रामजी! ऐसे जिज्ञासु की संगति विशेष है, जिसकी चेष्टा की सब कोई स्तुति करते हैं और सबको सुखदायक भासता है और नवनीत कोमल सुन्दर स्निग्ध होता है, ऐसे जिज्ञासु को सन्त जनों की संगति मिलती है, हे रामजी! पुष्पोद्यान तथा सुन्दर पुष्पशय्या आदि सुख साधनों से ऐसा निर्भय सुख प्राप्त नहीं होता जैसा निर्भय सुख सत्संग से मिलता है, सत् पुरुषों का सदा आत्मा में निश्चय रहता है, हे रामजी! ऐसे ज्ञानवान् की संगति से इसको आत्मतत्व की प्राप्ति होती है, परन्तु जब हृदय शुद्ध होता है, जब तक हृदय मलिन है तब तक प्राप्ति नहीं होती, जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिंब को ग्रहण करता है, लोहे की शिला प्रतिबिंब को ग्रहण नहीं करती, ऐसे जब इसका हृदय उज्ज्वल होता है तब सन्त के वचन इसके हृदय में ठहरते हैं, जैसे वर्षाकाल का बादल थोड़े से बहुत हो जाता है, जब इसका हृदय शुद्ध होता है तब बुद्धि बढ़ती जाती है, जैसे वन में केले का वृक्ष बढ़ता जाता है, ऐसे बुद्धि बढ़ती जाती है, जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है तब वही रूप हो जाती है, बुद्धि की भिन्न संज्ञा का अभाव हो जाता है, जैसे लोहे को पारस का स्पर्श होता है, तब सुवर्ण हो जाता है पुनः लोहे की संज्ञा नहीं रहती और विषय भोग की तृष्णा भी नहीं रहती, हे रामजी! इसको विषय भोग की लालसा ने दीन किया है, जब तृष्णा का त्याग किया जाय तब परम निर्मलता प्राप्त हो सकती है, जैसे हाथी सिर पर

मिट्टी डालता है तब उससे मलिन है, जब नदी में प्रवेश करे तब निर्मल हो जाता है, ऐसे जब तृष्णा रूप राख का त्याग किया और आत्मा में स्थित हुआ तब निर्मल होता है, हे रामजी! जब भोग की इच्छा त्यागी तब बड़ी शोभा को धारण करता है, जैसे सुवर्ण अग्नि में तपाया जाय तब मैल जल जाता है और उज्ज्वल रूप धारण करता है, हे रामजी! भोगरूप बड़ा विष है इसको प्रतिदिन त्याग करना विशेष है, जब तृष्णा का त्याग कर दिया जाता है तब मुख शोभावान् हो जाता है, जैसे राहु दैत्य से मुक्त हुए चन्द्रमा का मुख शोभा पाता है, ऐसे ही तृष्णा का वियोग हुए पुरुष का मुख सुशोभित होता है, हे रामजी! जब इसको भोग से वैराग्य होता है, तब दो पदार्थों की प्राप्ति होती है, जैसे नूतन अंकुर के दो पत्र होते हैं, ऐसे एक सन्त की संगति और दूसरा सत् शास्त्र का विचार प्राप्त होता है और उनमें दृढ़ भावना होती है, तब अभ्यास से वही रूप हो जाता है और परमानन्द रूप होता है, जिसको वाणी नहीं पा सकती। तब भोग की इच्छा से मुक्त होता है और परम शान्ति सुख पाता है, जैसे पिंजरे से निकलकर पक्षी सुखी होता है, ऐसे सुखी होता है, हे रामजी! इसको भोग की इच्छा ने दीन किया है जब इच्छा निवृत्त होती है, तब गोपद की नाईं संसार सागर को लांघ जाता है और तीनों जगत् सूखे तृण की नाईं भासते हैं, हे रामजी! जब भोग की इच्छा त्यागी तब यह ईश्वर हुआ, जिस पुरुष को आत्मसुख प्राप्त हुआ है वह भोग की इच्छा कदाचित् नहीं करता, जब भोग आकर प्राप्त होते हैं तो भी उसे विरस प्रतीत होते हैं मिथ्या भासते हैं, इसीलिये भोगों को नहीं चाहता, जैसे जाल में निकला पक्षी पुनः जाल को नहीं चाहता, जब विषय तृष्णा निवृत्त होती है तब परम शोभावान् हो जाता है, संत जनों के वचन का उसमें शीघ्र प्रवेश होता है, हे रामजी! मुक्त स्त्री है, सत्संग उसके कर्ण भूषण हैं, जब साधुसंग होता है तब अशुभ क्रिया का त्याग हो जाता है और जो वेगाने धन की इच्छा रहती है और जो कुछ अपना होता है, उसको भी त्यागने की इच्छा करता है और उचित भोग जो पाने के लिये

आते हैं, उनको विभाग करके खाता है, जो कुछ होता है उसमें से भी देकर खाता है, बड़े उत्तम भोग से लेकर शाक पर्यन्त देकर खाता है, यथा शक्ति देता हुआ ऐसा हो जाता है कि कोई शरीर मांगे तो शरीर भी दे देता है, क्योंकि इसको देने का बहुत बड़ा अभ्यास हो जाता है और किसी से शाक भी मांगकर लेने की इच्छा नहीं करता, इसलिये सन्तोष के साथ यथा प्राप्त चेष्टा करता है तप करता है, दान करता है यज्ञ व्रत ध्यान से पवित्र रहता है और तृष्णा का पूरा त्यागी है, हे रामजी! ऐसा क्रूर दुःख मनुष्य से नहीं मिल सकता, जैसा क्रूर दुःख तृष्णा से होता है, जो धनवान् हैं उनको धन की चिन्ता लगी रहती है और धन पैदा करने की चिन्ता, रखने की चिन्ता, उठते बैठते खाते पीते, चलते सोते सदा धन की चिन्ता रहती है, इसी चिन्ता में पच पचकर मर जाते हैं, पुनः जन्म लेते हैं, हे रामजी! निर्धन को भी चिन्ता तो रहती है परन्तु थोड़ी होतीहै, जब तक चिन्ता रहती है तब तक दुःखी रहता है, जब चिन्ता नष्ट हुई तो परम सुखी हो जाता है, हे रामजी! पुरुष यद्यपि धनी हो परन्तु सन्तोष न हो तो परम दरिद्र है और संतोषी होने पर धनहीन हो तो भी परम धनी है, जिसमें सन्तोष है उसको विषम बंधन में नहीं ले जा सकते, हे रामजी! जब तक धन की इच्छा नहीं की तब तक इसको भोग रूप विष नहीं लगता, जब धन की इच्छा उत्पन्न होती है तब परम विष इसको स्पर्श कर जाता है, इसकी विपरीत भावना में दुःख होता है, जो दुःखदायक पदार्थ हैं उनको सुखदायक जानता है, हे रामजी! जो कुछ अर्थ है वही अनर्थ है जिसको इसने सम्पत्ति जाना है वह परम आपत्ति है, जिनको इसने भोग जाना है वे सब रोगरूप हैं, इनको संपत्ति जानकर विचरता है, इससे बड़ा दुःखी होता है, हे रामजी! रसायन सर्व दुःख का नाश करता है, परन्तु यह देवता के पास की वस्तु है और जब इसको अमृत चाहिये तब संतोष परम रसायन है जब विषयों में दोष दृष्टि हुई और संतोष धारण किया तब मूर्खता इससे दूर हो जाती है और गोपद की नाईं संसार समुद्र को सुगमता से तर जाता है, जैसे गोपद को सुगम

ही लांघा जाता है, ऐसे संसार समुद्र को सुगमता से तर जाता है, हे रामजी! जिसको सन्तोष प्राप्त होता है उसको परम शान्ति होती है और वसंत ऋतु भी सुख का स्थान है, नन्दनवन भी सुख का स्थान है, उर्वशी आदि अप्सराए हों, चन्द्रमा विद्यमान बैठा हो, कामधेनु विद्यमान हो, ये सब जो इंद्रियों के सुख हैं, सब विद्यमान् हों तो भी शांति न होगी, परन्तु एक सन्तोष से शांति होगी उसको यह विषय विचलित नहीं कर सकते, हे रामजी! जैसे अर्घ्य भर भरकर डालने से तालाब भरा नहीं जाता और जब मेघ जल की वर्षा हो तब शीघ्र ही भरा जाता है, ऐसे विषयों के भोग से शांति नहीं होती और सन्तोष से पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होगी और सन्तोष से इसको ओज प्राप्त होगा, कैसा ओज प्राप्त होगा, जो गम्भीर निर्मल शीतल और हृदयगम्य सबका हितकारी हो, ऐसा ओज संतोषी पुरुष को प्राप्त होता है और ओज सात्विक राजस तामस होते हैं यह शुद्ध सात्विक ओज है, जिस पुरुष को संतोष हुआ है वह ऐसी शोभा पाता है कि जैसे वसंत ऋतु का वृक्ष फलों पुष्पों और पत्रों से शोभा पाता है और जिसको तृष्णा है वह कैसा है, जैसे पाओं के नीचे आया क़ीड़ा पिस जाता है, हे रामजी! जिसको तृष्णा है उसको संतोष कदाचित् नहीं, तृष्णावान् मनुष्य बड़े क्षोभ को प्राप्त होता है, हे रामजी! जो पुरुष अर्थ की इच्छा करता है वह अग्नि में प्रवेश करता है अर्थात् वह निरन्तर जलता ही रहता है, जैसे गर्दभ गन्दे मल मूत्र भरे स्थान में प्रवेश करता है, ऐसे ही तृष्णावान् विषयरूप स्थान में प्रवेश करता है, वह गर्दभ है, जैसे गर्दभ के साथ स्पर्श करना योग्य नहीं, ऐसी ही तृष्णावान् गर्दभ से स्पर्श करने योग्य नहीं, हे रामजी! संसार यह मिथ्या है, इस संसार के पदार्थों को जो चाहते हैं वे भी मूर्ख हैं और इस जगत् का अधिष्ठान उसको तब मिलता है जब अपने आपको सब वासनाओं से खाली करे, जब निर्वासन होता है तब संतोष को प्राप्त होता है, तब ऐसा होता है जैसे तारों में चन्द्रमा शोभा पाता है, इसलिये इच्छा नाश करने का उपाय करो, जब इच्छा नष्ट हो गयी और सन्तोष

रूप गंभीरता प्राप्त हुई और द्वैत कलना मिट गयी तब इसी अवस्था को पंडित जन परमपद कहते हैं। यह पद किस प्रकार मिलता है सुनो–हे रामजी! जब इसको संसार से वैराग्य हो, सत् संग और सत् शास्त्रों की बातों में दृढ भावना हो, तब जगत् विरस हो जाता है, अर्थात् जगत् असत्य प्रतीत होता है और हृदय में शान्ति होती है, स्वाभाविक अपने आपको ब्रह्म जानने लगता है, परिच्छिन्नता मिट जाती है, जब तक आपको परिच्छिन्न जानता था, तब तक सब दुःख का अनुभव करता था जब सन्तों की संगति और सच्छास्त्रों से जगत् विरस हुआ, तब परमपद को प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मोक्षोपदेशवर्णनं
नाम सप्ताशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥१८७॥

अष्टाशीत्यधिकशततमः सर्गः १८८

विवेकदूतवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह क्रम कि जब संसार से वैराग्य उत्पन्न होता है तब सत्संग मिलता है, शास्त्र श्रवण होता है, तब सम्पूर्ण जगत् विरस हो जाता है। जब जगत् विरस हुआ और आत्मा में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभाव सत्ता प्रकाश में आती है जब उसी स्वभाव सत्ता में स्थित हुआ तब परमानन्द की प्राप्ति होती है, जिसमें वाणी की पहुँच नहीं। हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त हुई तब मन अमन हो जाता है और अनर्थ की तृष्णा नहीं रहती और जो अपने पास होता है, उसको रखने की इच्छा नहीं रखता, सहज त्याग हो जाता है और पुत्र धन स्त्री आदि सब विरस हो जाते हैं, यद्यपि इनके बीच भी रहता है तो भी इनमें अहं मम अभिमान नहीं करता, जैसे यात्री मार्ग में कहीं ठहरता है तो उस मार्ग के लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, ऐसे यह भी किसी के साथ संसर्ग नहीं रखता और जो अनिच्छित इन्द्रियों के

सुख आकर प्राप्त होते हैं, उनमें रागद्वेष नहीं करता, जैसे किसी पत्थर की शिला पर जल चला जाता है, उसको राग द्वेष कुछ नहीं होता, ऐसे ज्ञानवान् को किसी में राग द्वेष नहीं होता, हे रामजी! उसके शरीर की यह स्वाभाविक अवस्था हो जाती है कि एकान्त चाहता है और वन कन्दरा में रहने की इच्छा करता है और अज्ञान के जो स्थान हैं, स्त्री और भोग के स्थान और रागद्वेष के स्थान इष्ट अनिष्ट दैवयोग से मुमुक्षु आकर प्राप्त होते हैं, तो भी शीघ्र ही उनको त्याग देता है, हे रामजी! जब बीज क्षेत्र में बीजना होता है तब खेत में जो अनावश्यक पौधों के कंटीले झाड़ जैसे खेत में हो गये हों उनको काट दिया जाता है और खेत को साफ सुथरा खेती के योग्य बना दिया जाता है, ऐसा कर देने से खेत अच्छा सुन्दर फलता है, इसी प्रकार जिस पुरुष को मनरूप क्षेत्र में अनुभवरूप फल देखना हो, वह इच्छारूप कंटीले झाड़ों को अनिच्छारूप कुल्हाड़े से काटकर साफ कर दें और वहां सन्तोष बीज का वपन करे, तब क्षेत्र अतिसुन्दर रूप से फलेगा, हे रामजी! जब इसको अनुभव रूप फल प्राप्त हो तब यह पुरुष सूक्ष्म से सूक्ष्म हो जाता है और स्थूल से भी स्थूल हो जाता है, सर्वात्मा होकर स्थित होता है, हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होता है, तब द्वैत भावना मिट जाती है, जब द्वैत भावना मिटी तब चित्त अदृश्य हो जाता है, उस चित्त को जो उपशम का सुख होता है वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता, उसका नाम निर्वाण पद है वह तब प्राप्त होता है, जब ईश्वर भक्ति करता है, जब भक्ति भाव में दिन रात तल्लीन रहने से अनन्यता आ जाती है तब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, तब ही इस भक्त को निर्वाण पद की प्राप्ति होती है। रामजी बोले–हे तत्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान्! वह ईश्वर कौन है और उसकी भक्ति क्या है जिससे वह प्रसन्न होता है और भक्त को निर्वाण पद देता है, वह तत्व मुझसे कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ईश्वर दूर नहीं, उसमें भेब भी कुछ नहीं और वह दुर्लभ भी नहीं है, क्योंकि जो अनुभव ज्योति है और परम बोध स्वरूप है सर्व जगत् उसके वश में है और जो स्वयं सब

है जिससे यह सब है उस सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है, हे रामजी! जो कोई पूजा करता है जप मंत्र तप दान हवन जो कुछ कोई करता है सब उसकी पूजा करते हैं, देवता दैत्य मनुष्यादि जो कुछ स्थावर जंगम जगत् हैं, सब उसी की पूजा करते हैं और सबको फल देनेवाला वही है, उत्पत्ति और प्रलय में जो कुछ पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सब उसी से सिद्ध होते हैं, ऐसा ईश्वर है, जब इस ईश्वर की प्रसन्नता होती है तब अपना एक दूत भेजता है, वह दूत परम सात्विक होता है, सब शुभ क्रियाएं उसी में पायी जाती हैं अति पवित्र हैं। रामजी बोले—हे भगवन्! ईश्वर जो अद्वैत आत्मा है और शुद्ध ब्रह्म है, उसका दूत कौन है और कैसे आता है, मुझसे कहो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ईश्वर परम देव है और उसका दूत विवेक है और हृदय रूप गुहा में उदय होता है। उदय होने के समय परम शोभा को प्राप्त होता है, जैसे चन्द्रमा के उदय हुए आकाश शोभा पाता है ऐसे वह पुरुष शोभा पाता है, हे रामजी! जब विवेक दूत आता है तब इसको संसार से पवित्र करता है और पवित्र करके देव के निकट ले जाता है, पहिले वासनारूप मैल से भरा था और चिन्तारूप शत्रु ने बाँध रक्खा था, जब विवेक रूप दूत आता है तब चित्त रूप शत्रु को मारता है और वासनारूप मैल को नाश करके देव के निकट ले जाता है, जब इसको इस देव का दर्शन होता है तब परमानन्द को प्राप्त होता है, महान् सुख का अनुभव करता है, हे रामजी! संसार रूप समुद्र है, उसमें मृत्युरूप (आवर्त) घूमन घेर हैं और तृष्णारूप लहरें (तरंग) हैं, अज्ञानरूप जल है और इन्द्रियरूप ग्राह (तंदुए) हैं, उस समुद्र में यह जीव पड़े हैं, जब विवेकरूप नाब अकस्मात् ही इसे मिल जाती है, तब यह संसार समुद्र से पार होता है, हे रामजी! यह जीव प्रमाद से जड़ता को प्राप्त हुए हैं, जैसे जल शीतलता से गड़े की संज्ञा पाता है, ऐसे ही प्रमाद से यह जीव संज्ञा को पाते हैं और वासनाओं से यह जीव बौराय गया है जब अन्तर्मुख होता है तब उस देव के सन्मुख होता है, तब वह देव प्रसन्न होता है वह देव कैसा है, जिसके हजारों सिर हैं, जिसके हजारों

पाँव हैं, हजारों भुजाएँ हैं, हजारों नेत्र हैं, हजारों कान हैं, सब चेष्टाओं का कर्ता वही है। देखता, सुनता, बोलता, चलता वही है और अपनी स्वभाव सत्ता से प्रकाशित होता है, जैसे प्रत्येक के घट में चलन शक्ति पवन की है, ऐसे प्रकाश शक्ति देव की है, जब उसके सन्मुख अन्तर्मुख होता है तब विवेकरूप दूत भेजा जाता है, तब इसको सत्संग की प्राप्ति होती है और सत् शास्त्र का श्रवण होता है, उनके अर्थ में दृढ़ भावना होती हैं तब विवेकरूप दूत उसको अदृश्यता में प्राप्त करता है और शून्य हो जाता है, फिर शून्य को भी त्याग करके बोध मात्र में स्थित होता है, तब पूर्ण आनन्द इसको प्राप्त होता है, हे रामजी! यह पुरुष आनन्द स्वरूप है और यह विश्व भी अपना आप है, परन्तु अज्ञान से भिन्न भासता है, जैसे भ्रान्ति करके आकाश में दूसरा चन्द्रमा प्रतीत होता है, मरुस्थल में जल भासता है और आकाश में तरुवर भासते हैं, ऐसे भ्रान्ति करके जगत् भासता है और भूत के अन्तर बाहिर अधः ऊर्ध्व सब ब्रह्मदेव ही व्याप रहा है, स्थावर जंगम जितना ही जगत् भासता है, सब उसी आत्मतत्व के आश्रय फुरता है, इसलिये वही स्वरूप है और सबको वही धारण कर रहा है, जैसे सब भूषणों को सुवर्ण धारण कर रहा है, ऐसे सब शब्द अर्थ को वही धारण कर रहा है, वही ईश्वर ब्रह्म है, गंभीर साक्षी, आत्मा ओंकार, प्रणवसब उसी के नाम हैं, जब ऐसे ईश्वर की कृपा होतीहै, तब अन्तर्मुखहोताहै, और शुद्ध निर्मल होता है, हे रामजी! जब इसका हृदय शुद्ध होता है, तब आत्मपद की ओर इसकी भावना होती है कि सब आत्मा है, जब यह भावना होती है, यही भक्ति है, तब वह ईश्वर कृपा करके विवेकरूप दूत भेजता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विवेकदूतवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥१८८॥

ऊनवत्यधिकशततमः सर्गः १८९

सर्वसत्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इसको विवेक की दृढ़ता हुई तब परम पद को प्राप्त होता है, जो चैत्य से रहित चेतन घन है और चैत्य का सम्बन्ध टूट जाता है। जब चैत्य का सम्बन्ध टूटा तब विश्व का क्षय हो जाता है, जब विश्व क्षय हुआ तब वासना भी नहीं रहती, हे रामजी! यह जगत् भी इस फुरणे में है, जब शुद्ध चेतन में चैत्योन्मुखत्व हुआ तब इसका मनोमात्र शरीर होता है, जिसको अन्तवाहक कहते हैं और जब वासना की दृढ़ता हुई तब अधिभूत भासने लगता है, जैसे स्वप्न में अपना शरीर भासता है, ऐसे अपना शरीर दीखने लगता है। हे रामजी! इसका उत्थान ही अनर्थ का कारण है, जब यह चैत्य होता है, तब इसको अनर्थ की प्राप्ति होती है, मैं मेरा इत्यादिक जगत् भासता है, जब यह न हो तब जगत् भी न हो, इसके होने से जगत् भासता है। इसलिये मेरा यही आशीर्वाद है कि तू चेतनता से शून्य हो अहन्तारूप चेतनता से रहित अपने बोध में स्थित रहे। हे रामजी! इस मन से जगत् हुआ है, यह मन और जगत् दोनों मिथ्या है, रूप अवलोकन मनस्कार इन तीनों का नाम जगत् है, मृग तृष्णा के जलवत् मिथ्या हैं, शून्य है, जब इनका अभाव हुआ तब शून्य भी नहीं रहता, केवल बोध मात्र चेतन होता है। हे रामजी! दृश्य दर्शन द्रष्टा यह तीनों भावना मात्र हैं, जब यह होते हैं, तब जगत् भासता है और जब अहंता का अभाव हुआ तब आत्मपद शेष रहता है, जैसे स्वर्ण में भूषण होते हैं ऐसे आत्मा में जगत् है, दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं, वासना से दृश्य भासता है वह वासना मन से फुरी है और मन अज्ञान से हुआ है, जब मन अमन पद को प्राप्त होता है तब दृश्य सब एक ही रूप हो जाता है, जब तक वासना होती है, तब मन में शान्ति नहीं होती, जैसे कोई पुरुष भाँवरी लेता है, तब बल चढ़ते जाते हैं, जब ठहरता है तब वह बल उतर जाते हैं, ऐसे जब तक चित्त वासना से

भ्रमण करता है तब तक जन्मरूप बल चढ़ते जाते हैं और जब चित्त ठहरता है तब जन्म का अभाव हो जाता हैं। हे रामजी! जब तक चित्त का दृश्य के साथ सम्बन्ध है, तब तक कर्म से नहीं छूटता जब चित्त की दृश्य से सम्बन्ध टूटे तब शुद्ध अद्वैत पद को प्राप्त होता है, हे रामजी! जब शुद्ध चिन्मात्र में उत्थान होता है, तब उसका नाम चैत्योन्मुखत्व होता है वही अहंता दृश्य की ओर फुरती जाती है तब प्रमाद हो जाता है और जड़ता होती है, जैसे जल गंदा हो जाता है ऐसे चित्त शक्ति प्रमाद से जड़ हो जाती है, जब दृढ़ वासना को ग्रहण करती है तब अन्तवाहक से आधिभौतिक शरीर अपना दृष्टि आता है, तदनन्तर पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं, ज्यों ज्यों चित्त शक्ति बहिर्मुख फिरती जाती है, त्यों त्यों संसार होता जाता है, जब फुरणे से रहित होकर अपने स्वरूप की ओर आती है तब अपना आप ही भासता है और द्वैत मिट जाता है, तब परमानन्द अद्वैत पद भासता है जब पूर्ण बोध हुआ तब द्वैत और एक संज्ञा भी जाती रहती है, केवल आत्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहता है जब ईश्वर के साथ एकता होती है जगत् भी तद्रूप अनुभूत होता है, जब उस पद की प्राप्ति होती है, तब दृश्य का अभाव हो जाता है क्योंकि जगत् भावना मात्र है, जैसे भविष्यकाल का वृक्ष आकाश में हो, ऐसे यह जगत् है, इसका अत्यन्त अभाव है कुछ बना नहीं, भ्रान्ति से भासता है, हे रामजी! मेरे वचनों का अनुभव तब होगा तब जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब यह वचन हृदय में आकर फुरेंगे। हे रामजी! जब तक यह मन फुरता है, तब तक जगत् का अभाव नहीं होता, जब मन को उपशम हो, तब जगत् का अभाव होता है, जैसे—स्वप्न को स्वप्न जानता है, तब पुनः स्वप्न के पदार्थ की इच्छा नहीं करता, जब तक सत्य जानता है तब तक इच्छा करता है हे रामजी! यह जीव वासना से भरे हुए हैं, जब वासना का नाश हो तब इसी का नाम ज्ञान है, अज्ञानरूप भूत इनको लगा हुआ है, उससे उन्मत्त होने पर जगत् भासता है और जगत् के भासने से नाना प्रकार की वासना दृढ़ हो गयी है, उससे दुःख पाता है, जब यह चित्त

उलटकर अन्तर्सुख हो और आत्मा में दृढ़ भावना करे और जब ज्ञान रूप मन्त्र इसको प्राप्त हो, तब अज्ञान रूप प्रेत भाग जाता है। हे रामजी! अनुभव रूप कल्प वृक्ष है, जैसी भावना इसमें होती है ऐसा भान होता है, हे रामजी! प्रथम इसका शरीर अन्तवाहक था और अपना स्वरूप भूला न था, अपने आप को आत्मा ही जानता था और जगत् संकल्प मात्र भासता था, उसका नाम अन्तवाहक था, जब उस संकल्प में दृढ़ भावना हुई तब अभिभूत भासने लगा, जब उसमें दृढ़ भावना हुई तब देह इन्द्रिय सब अपने में भासने लगे, जब अपने में प्रतीत हुए तब इनके सुख दुःख को जानने लगा, जब जगत् के सुख दुःख इसको भासे तब सब आपत्तियां इसको आकर प्राप्त हुईं, वास्तव में न कोई सुख दुःख हैं न जगत् है, केवल भावना मात्र है, जैसी चित्त की भावना होती है ऐसे ही आगे प्रतीत होता है। हे रामजी! जब यह भावना उलट कर अन्तर्मुख आत्मा की ओर परिणत हो तब एक ही बोध की प्रतीति हो जब एक बोध का भान इसको हुआ तब द्वैत सब मिट जाता रहा। हे रामजी! आत्मा में अन्तवाहक भी नहीं, यह जो शुभ ब्रह्मा हैं वे भी बोध स्वरूप हैं, जब बोध से इतर अन्तवाहक कुछ होता तब भासता है, बोध से इतर कुछ पाया जाता नहीं, अन्तवाहक भी उसी से है, अन्तवाहक है जो शुद्ध चिन्मात्र में चैतन्योन्मुख हुआ है और चित्त शक्ति फुरी है, तब इसको पंचतन्मात्रा का सम्बन्ध हुआ, यही जड़ चेतन ग्रन्थि है, चेतन है, चित्तशक्ति और जड़ है, पंचतन्मात्रा इनका इकट्ठा होना इसका नाम अन्तवाहक शरीर है, जब यह भी आत्मा में कुछ हुआ होता तब यह वचन न होते, इसलिये चिन्मात्र है, बना कुछ नहीं क्योंकि आत्मा अद्वैत है। हे रामजी! दूसरा कुछ बना नहीं, भ्रम से द्वैत भासता है, जैसे पुरुष शयन करता है और स्वप्न भ्रम से उसे द्वैत भासता है, ऐसे यह जाग्रत भी भ्रांति से प्रतीत होता है, कुछ है नहीं। हे रामजी! जब है नहीं तब इच्छा किसकी करता है? इतना सुख इंद्रियों के इष्टभोग से नहीं प्राप्त होता जितना सुख उनके त्यागने से होता है। हे रामजी! एक यज्ञ है उसके करने से पुरुष

परम पद को प्राप्त होता है, वह यज्ञ तब होता है जब एक स्तंभ गाड़ा जाता है, उसके नीचे बलि दी जाती है, जब यज्ञ हो जाता है तब सर्व त्याग करता है, तब इसको फल की प्राप्ति होती है, इस क्रम के किये बिना यज्ञ सफल नहीं होता, वह स्तंभ क्या है और बलि क्या है,–यज्ञ क्या है, त्याग क्या है और फल क्या है, सुनो–हे रामजी! आत्मपद का निरन्तर अभ्यास करके के लिये ध्यान रूप स्तंभ तैयार करे, उसके आगे तृष्णा की बलि दी जाय तब ज्ञानरूप यज्ञ हो, आत्मा के विशेषण जो शास्त्र में कहे गये हैं जैसे कि नित्य है, शुद्ध है, बोध रूप है अद्वैत है, निर्विकल्प है देह इन्द्रिय प्राण आदि से रहित है ऐसा जान लेने का नाम ही ज्ञान है यही ज्ञान यज्ञ है, ध्यान रूप स्तंभ से तृष्णा के बलि विधान से और मनोरूप दृश्य को जानकर यह यज्ञ पूर्ण होता है, जब ऐसा यज्ञ किया जाय तो उसके बाद दक्षिणा दान भी आवश्यक है कि जिससे यज्ञ सफल हो, सर्वस्व दान करना ही दक्षिणा है, वह सर्वस्व क्या है, अहंकार का त्याग करना सर्वस्व त्याग है, जब सर्वस्व त्याग किया जाये तब यह यज्ञ सफल होता है, इसका नाम विश्वजित् यज्ञ है, जब इस प्रकार यज्ञ हुआ तब इसका फल भी होता है, अब सुनिये कि वह फल क्या है, यदि अंगारों की वर्षा हो और प्रलय का पवन चले और पृथ्वी आदि तत्व नाश हो जायँ तब ऐसे भयंकर क्षोभ में भी विचलित नहीं होता यह फल इस को मिलता है कि कभी स्वरूप से नहीं गिरता, यह शत्रु नाशक वज्र ध्यान है। हे रामजी! अहंता का त्याग करना यह सबसे श्रेष्ठ त्याग है, जो कार्य अहंता के त्याग करने से होता है, वह अन्य उपायों से नहीं होता, जब तब यज्ञ दान दमन उपदेश इन उपाधियों से भी अहंता का त्याग करना बड़ा साधन है, अन्य सब साधन इसके अन्तर्भूत है। हे रामजी! जब तू अहंता का त्याग करेगा, तब अंतर बाहिर तुझको ब्रह्म सत्ता ही भासेगी, द्वैत संपूर्ण मिट जायेगा। हे रामजी! मन के सब अर्थ रूप तृणों को ज्ञान रूप अग्नि लगाइये और वैराग्य रूप वायु से जगाइये, तब यह तृण भस्म हो जायँगे और तू परम शान्ति को प्राप्त

होगा, मन के जलाने से परम सम्पत्ति प्राप्त होती है, इससे इतर कार्य सब आपत्तिरूप हैं, मन उपशम में कल्याण है, यह जो अंदर बाहिर नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं, मन के मोह से उत्पन्न हुए हैं, जब मन उपशम को प्राप्त हो तब नाना प्रकार जो भूत की संज्ञाएं हैं, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता पृथ्वी आदिक सब आकाश रूप हो जाती हैं। हे रामजी! यह सब ब्रह्म है, ज्ञानी को एक सत्ता भासती है, अन्य कुछ बना नहीं, भ्रम से जगत् भासता है और उसमें नाना प्रकार की वासनाएं हुई हैं, अपनी अपनी वासना के अनुसार जगत् को देखते हैं, इसलिये तुम जगो और वासना के पिंजरे को काटकर आत्मपद को प्राप्त करो, हे रामजी! अज्ञान से आत्मपद की ओर से सोये पड़े हैं और वासना के पिंजरे में पड़े हैं, उन अज्ञानियों के समान तुम्हें नहीं होना चाहिये, अज्ञान से जीव का नाश होता है, जो कुछ जगत् दीखता है, भ्रममात्र है और इनका बोलना भी ऐसा जानो। जैसा बंसरी में पवन का शब्द होता है, ऐसे यह प्राणवायु से बोलते दृष्टि आते हैं, ऐसा जानिये, अतः जगत् भ्रममात्र है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सर्वसत्तापदेशो नाम ऊननवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१८९।।

नवत्यधिकशततमः सर्गः १९०

सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! देश देश में मनुष्य, देवता, नाग, किन्नर, पशु, पक्षी, जितने भी जीव हैं और पर्वत कन्दरा वन स्थावर जंगम जितना भी जगत् है सात प्रकार की सृष्टि है और सात प्रकार के जीव हैं, उनको भिन्न भिन्न सुनो, एक स्वप्न जगत् है, दूसरा संकल्प जगत् है, तीसरा केवल जाग्रत है और चौथा चिरजाग्रत है, पंचम दृढ़ जाग्रत है, षष्ठ जाग्रत स्वप्न है, सप्तम क्षीण जाग्रत है, रामजी बोले—भगवन्! तुमने

यह सात प्रकार की जीव सृष्टि कही है, मुझे बोध के लिये खोलकर कहो, यह ऐसे हैं जैसे नदियों के जल का समुद्र में भेद हो और इनका पूछना भी ऐसा है जैसे एक जल से फेन बुद्बुदे तरंग वायु होते हैं, वह विस्तार से कहो, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! एक तो यह कि जो किसी जीव को किसी कल्प अपनी जागृति में सुषुप्ति और उसमें जो स्वप्न हुआ उस स्वप्न में उसको हमारी जागृति का जगत् भास आया, उसका शब्दार्थ संयुक्त सत्य जानकर ग्रहण करने लगा, उसके हिसाब से हम स्वप्न में रहें, परन्तु उसके निश्चय में नहीं, वह अपनी जागृति मानता है, हमारा और उसका कल्प एक हो गया है, इसी से वह भी जागृति जानता है और पूर्व कल्प में भी उसका शरीर चेतन फुरता है परन्तु सोया पड़ा है। रामजी बोले—हे भगवन्! जब वह पुरुष अपने कल्प में जगा तब यह उसको क्या भासे और जब वह न जगे और वहां कल्प का प्रलय हो जाय, तब उसके शरीर की क्या अवस्था हो और जब यहां ज्ञान की प्राप्ति हो तब उस शरीर की क्या अवस्था हो, वह क्रम से कहो। वसिष्ठजी बोले—जब वह पुरुष अपने कल्प में जगे तब वह यह जाग्रत उसको स्वप्न भासे जब वहां न जगे और उस कल्प की प्रलय हो तब वह जीव वहां चेष्टा करे और जब ज्ञान की प्राप्ति हो तब उस शरीर और इस शरीर की वासना इकट्ठी होकर निर्वाण को प्राप्त हो और जब ज्ञान न प्राप्त हो, तब उसी जीव को इस शरीर को त्यागकर अपर जगद्भ्रम भास आवे, आपको पूर्ववत् ही जाने अथवा न जाने परन्तु जगद्भ्रम बिना ज्ञान के नहीं मिटता। हे रामजी! यह और वह दोनों पुण्य हैं, ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान प्रकाशित होती है। हे रामजी! जैसे गूलर में मच्छर होता है, ऐसे यह जीव भी भ्रम से फुरते हैं, यह जाग्रत कही है, जो स्वप्न में जाग्रत है, स्वप्न जाग्रत इसका नाम है और यह पुरुष बैठा है और चित्त की वृत्ति ठहर गयी है और निद्रा नहीं आयी, उसमें मनोराज्य हुआ, इस मनोराज्य में जगत् हुआ, उसमें दृढ़ भावना हो गयी और पूर्व की वासना विस्मरण हुई और यह सत्य भासी। मनोराज्य का शरीर रचा वह आधिभौतिकता दृढ़ हो गयी, उसका नाम

संकल्प जाग्रत है, २—आदि परमात्मतत्व से फुरा और निश्चयत्मपद में रहा और जगत् जो भासा उसको संकल्प मात्र जाना, उसका नाम केवल जाग्रत है। ३—आदि परमात्मतत्व से स्फुरण हुआ उसमें सृष्टि हुई उसको सत्य जानकर ग्रहण किया है और स्वरूप का प्रमाद हुआ और आगे जन्मान्तर को प्राप्त हुआ, उसका नाम चिरजाग्रत है। ४—जब इसमें दृढ़ घनीभूत वासना हुई और पाप कर्म करने लगा, उसके वश से स्थावर योनि प्राप्त हुई, तब उसका नाम घनी जाग्रत है, इसी का नाम सुषुप्ति जाग्रत है। ५—और जब इसमें सत्संग और सत् शास्त्रों के विचार से बोध को प्राप्त हुआ तब यह जाग्रत उसको स्वप्न हो जाता है, उसका नाम स्वप्न जाग्रत है। ६—और जब बोध में दृढ़ स्थिति हुई तब इसको तुरीयापद कहते हैं इसका नाम क्षीण जाग्रत है। ७—जब इस पद को प्राप्त हुआ तब परमानन्द की प्राप्ति होती है, हे रामजी! यह सप्त प्रकार के जीव और सृष्टि सब ही में तुझको कही है, उसको विचार करके देख कि तेरा भ्रम निवृत्त हो जाय और यह भी क्या कहना है कि यह जीव है, यह सृष्टि है, सर्व ब्रह्मसत्ता है, दूसरा कुछ हुआ नहीं, मन के फुरने से दृश्य भासता है, मन को स्थिर करके देखो, तो सब शून्य होगा और शून्य भी न रहेगा, शून्य का कहना भी न रहेगा इस गिनती का भी स्मरण कर।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनं नाम नवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९०।।

एकनवत्यधिकशततमः सर्गः १९१

सर्वशान्त्युपदेशवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! आपने जो केवल जाग्रत की उत्पत्ति अकारण अकर्मक बोधमात्र में कही वह असंभव है, जैसे आकाश में वृक्ष का होना संभव नहीं, ऐसे आत्मा सृष्टि संभव नहीं, क्योंकि आत्मा

निराकार है, निष्क्रिय है, न समवायि कारण है न निमित्त कारण है, जैसे मृत्तिका घट आदिक का कारण होती है ऐसे आत्मा सृष्टि का समवायि कारण भी नहीं, क्योंकि अद्वैत है और जैसे कुलाल घटादि का निमित्त कारण होता है, ऐसे आत्मा सृष्टि का निमित्त कारण भी नहीं क्योंकि अक्रिय है, इस अकारण के अकर्मकता में सृष्टि संभव कैसे हो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! तू धन्य है, अब तू जगा है, आत्मा में सृष्टि का अत्यन्त अभाव है, क्योंकि जो निष्क्रिय है, निर्विकार है, न अन्तर है, न बाहिर है, न ऊर्ध्व है, न अधः है, केवल बोध मात्र है, उसमें न कोई आरंभ है न परिणाम है, केवल बोधमात्र अपने आप में स्थित है, जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित है, ऐसे आत्मा में जगत् मिथ्या है। हे महाबुद्धिमान्! आत्मा अकारण रूप जगत् है, उससे कार्य रूप जगत् कैसे हो, उससे केवल जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, उसके अभाव से सबका अभाव है, न कुछ उत्पन्न हुआ है, न भास होता है, उपदेश और उसका अर्थ आरोपित है और कुछ है ही नहीं और आरोपित शब्द भी जिज्ञासु के जताने के लिये कहा है, है कुछ नहीं, आत्मा सदा अद्वैत रूप है, रामजी बोले–हे भगवन्! जब आत्मा में सृष्टि ही नहीं, तो पिंडाकार कैसे प्रतीत होते हैं, उनको किसने रचा है और मन बुद्धि इन्द्रियों का भान क्या होता है, चेतन को किससे मोहित किया है, राग के बन्धन से आत्मा में आवरण कैसे होता है, यह समझाने की कृपा कीजिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! न कोई पिंड है, न किसी ने इसको किया है, न कोई भूत है, न किसी से इनको मोहित किया है और न किसी को आवरण किया है, भ्रांति से आवरण भासता है, यदि आत्मा को आवरण होता, तब किसी प्रकार नष्ट होता, परन्तु आवरण ही नहीं तब नष्ट कैसे हो, हे रामजी! जिसको आवरण होता है, उसका स्वरूप एक अवस्था को त्यागकर दूसरी अवस्था को ग्रहण करता है, परन्तु आत्मा तो सदा ज्ञानरूप है, कभी अवस्थान्तर को नहीं प्राप्त होता, सदा जैसा है वैसा ही रहता है, उसमें मन बुद्धि आदि कुछ बने नहीं, तब मोह कहां और आवरण कहां, आत्म तत्व सदा एक रस है,

ज्ञानी को ऐसे भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है। हे रामजी! जैसे एक समुद्र में तरंग बुद्‌बुदे उठते हैं और लीन होते हैं, उनका उत्पन्न होना और लीन होना भी जल में है, जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे जितने कुछ विचार और इच्छा आदि भाव भासते हैं, वे सब आत्मा में होते, दूसरी वस्तु कुछ नहीं, विकार अविकार सब परमात्म तत्व है और समुद्र में तरंग बुद्‌बुदे परिणाम से होते हैं, आत्मा सदा ज्यों की त्यों है, नाना प्रकार के आकार भासते हैं, वे भी वही रूप हैं, जैसे स्वर्ण में नाना प्रकार के भूषण होते हैं वे सब स्वर्ण ही हैं, दूसरी वस्तु कोई नहीं बनी, भ्रांति से नाना प्रकार की संज्ञाएं होती हैं, जैसे कोई पुरुष जाग्रत बैठा हो और नींद आने से उसको स्वप्न सृष्टि भासने लगे वह जाग्रत के अज्ञान से स्वप्न सृष्टि भासी है, जब निद्रा निवृत्त हुई तब जाग्रत भी भासती है, वह जाग्रत भी परमात्म तत्व के अज्ञान से भासती है, जब उस पद में जायेगा, तब जगद्‌भ्रम निवृत्त हो जायगा, हे रामजी! संसार अपने स्फुरण से उत्पन्न हुआ है, जब स्फुरण दृढ़ हुआ तब दुःख पाने लगा, जैसे—बालक अपनी परछाई में बेताल कल्पना करके आप ही दुःख पाता है, जब आत्मबोध होता है तब संसार भ्रम निवृत्त हो जाता है, हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है वह भावना मात्र है, जब यही भावना उलटकर आत्मा की ओर आये तब जगद्‌भ्रम मिट जाता है और देह इन्द्रियादिक जो आत्मा के अज्ञान से फुरे हैं और उनमें जो अहंकार हुआ है वह आत्मभावना से निवृत्त हो जायगा, जैसे वर्षाकाल में घट्ट मेघ होते हैं, शरत्काल आता है तो नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही जब बोधरूप शरत्काल आता है तब आत्मा में अनात्माभिमान रूप मेघ नष्ट हो जाता है और परम स्वच्छता प्रकट होती है, हे रामजी! जितना जगत् पिंडरूप होकर भासता हैं, सब आत्मा का साक्षात्कार होगा तब पिंड बुद्धि जाती रहेगी, जगत् सब आकाशरूप हो जायगा, जैसे शरत्काल में मेघ की घनता जाती रहती है और आकाशरूप हो जाता है, हे रामजी! यह भ्रान्ति की कठिनता तब तक प्रतीत होती है जब तक स्वरूप से सुषुप्तिवत् है जब

जगेगा तब जगत् सब आकाशरूप हो जायगा, जैसे स्वप्न से जगे हुए स्वप्न जगत् आकाशरूप हो जाता है, हे रामजी! जितने विकार क्षोभ और नानात्व प्रतीत होते हैं, प्रमाद से प्रतीत होते हैं, जब आत्मबोध होता है, तब सब क्षोभ विकार मिट जाते हैं, सर्व प्रपंच एकता को प्राप्त होता है, द्वैत भाव मिट जाता है, जैसे–प्रज्वलित अग्नि में घृत, इन्धन अथवा मिष्ठान्न जो कुछ डालिये एक रूप हो जाता है, ऐसे जब बोध की प्राप्ति होती है तब सब जगत् एक रूप हो जाता है, जैसे–नाना प्रकार के भूषण अग्नि में डाल दिये जायँ तो एक स्वर्ण ही हो जाता है, और भूषण संज्ञाएं नहीं रहतीं, केवल परमात्मतत्व हो जाता है। हे रामजी! इंद्रिय जगत् तब तक भासला है जब तक स्वरूप से सोया पड़ा है, जब जगेगा तब संसार की सत्यता मिट जायगी और इच्छा भी कोई न रहेगी, जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है और उस स्वप्न से जगता है, तब स्वप्न के स्वर्ण की इच्छा नहीं करता कि मुक्ति को प्राप्त हो क्योंकि उसको उसकी सत्यता की प्रतीति नहीं होती तो इच्छा कैसे करें, ऐसे जब तक स्वरूप से सोया पड़ा है तब तक संसार के पदार्थों को मिथ्या नहीं जानता, तब इच्छा करता है और जब जगेगा तब सब पदार्थ विरस हो जायँगे, जब ज्ञान से जगत् को मिथ्या स्वप्नवत् जानेगा तब इच्छा भी न करेगा। हे रामजी! जीवन्मुक्त की चेष्टा सब दृष्टि पड़ती है परन्तु उसके हृदय में जगत् की सत्यता नहीं, क्योंकि जो आत्मानुभव उस को हुआ है, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, जिसने सूर्य की किरणें जानी उसको जल नहीं भासता, किरणें भासती हैं और जिसने किरणें नहीं जानी, उसको जल भासता है और भासता दोनों को तुल्य है, परन्तु ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् जलवत् नहीं और अज्ञानी को जगत् जलवत् दृढ़ भासता है। हे रामजी! मनरूप दीपक प्रज्वलित है, उसमें ज्ञानरूप जल डालिये तब निर्वाण हो जाय, जब मन निर्वाण हुआ तब उस पद को प्राप्त होगा, जहां जगत् का अभाव है और अहंकार का भी अभाव है, न शून्य है न

अशून्य है, केवल अकेवल उदय अस्त दोनों नहीं। हे रामजी! जो पुरुष ऐसे पद को प्राप्त हुआ हैं, वह कृतकृत्य होता है और रागद्वेष से रहित परम शान्तपद को प्राप्त होता है, अहंकार निर्वाण हो जाता है, केवल निर्वाच्य पद को प्राप्त होता है, जहां उत्थान कोई नहीं। हे रामजी! आत्मा में जगत् पदार्थ कोई नहीं, परन्तु मन के स्तंभ से भासता हैं, जैसे स्तंभ में चितेरा कल्पना करता है कि इतनी पुतलियां इस स्तंभ में हैं, जो उसके निश्चय में है, स्तंभ में पुतलियों का अभाव है, ऐसे मन के निश्चय में जगत् है, आत्मा में बना कुछ नहीं, जिस पुरुष का मन सूक्ष्म हो गया है, उसको जगत् स्वप्नवत् भासता है, जब स्वप्नवत् जाना तब इच्छा किसकी करे और त्याग किसका करे। हे रामजी! जगत् तब तक भासता है जब तक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ तब आत्मानुभव होगा, जब जगत् रससंयुक्त कदाचित् न भासेगा, जैसे धूप और छाया इकट्ठी नहीं होती, ऐसे ज्ञान और जगत् इकट्ठे नहीं होते, आत्मज्ञान हुए जगत् का अभाव हो जाता है, जैसे पूर्वकाल वर्तमान काल में नहीं होता, ऐसे आत्मा में जगत् नहीं होता। हे रामजी! यह जगत् भ्रम से भासता है, विचार करने से इसका अभाव हो जाता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, वह मिथ्या हैं, जैसे निद्रा दोष से स्वप्न में तीनों भासते हैं और जगने पर अभाव हो जाता है, ऐसे अज्ञान से यह भासते हैं और ज्ञान से त्रिपुटी का अभाव हो जाता है। हे रामजी! जैसे मनोराज्य से मन में जगत् स्थित होता है, ऐसे यह पर्वत नदियां देशकाल जगत् भी जानिये, इसलिये इस भ्रम को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित रहो, यह जगत् भ्रम से उदय हुआ है, विचार किये से नष्ट होगा और तुझको परम शान्ति प्राप्त होगी, हे रामजी! जिसका मन उपशम भाव को प्राप्त हुआ है, वह पुरुष मौनी है, वह निरोध पद को प्राप्त हुआ है, वह संसार समुद्र को तरा है और कर्मों के अन्त को प्राप्त हुआ है, उसको सम्पूर्ण जगत् पहाड़ नदियों संयुक्त लीन हो जाता है, अज्ञान के नष्ट हुए विद्यमान

जगत् की शान्त अन्तःकरण है वह परम शांतिरूप अमृत से तृप्त है वह ज्ञानवान् निरावरण होकर स्थित होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सर्वशांत्युपदेशो नाम एकनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥१९१॥

द्विनवत्यधिकशततमः सर्गः १९२

ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! आत्मा और जगत् के विषय में मुझे समझाकर कहिये। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जितना यह जगत् दृष्टि आता है, वह चित्त में निश्चित होता है, ज्ञानवान् को भी चित्त से भासता है और अज्ञानी को भी चित्त से भासता है, परन्तु इतना भेद है कि जो अज्ञानी जगत् को देखता है तब सत् मानता है और ज्ञानवान् शास्त्रयुक्ति से देखता है। पूर्व अपर अर्थ का विचार करके भ्रान्तिमात्र जानता है और अविद्या से भासता है, वह अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है वह कुछ नहीं, ऐसे अविद्या कुछ वस्तु नहीं, जितना कुछ स्थावर जंगम जगत् भासता है, वह कल्प के अन्त में नष्ट हो जाता है, जैसे—समुद्र से एक बूंद निकालिये तो नष्ट हो जाती है, क्योंकि विभागरूप है, ऐसे माया, अविद्या, सत्, असत्, आदिक सर्व सम्बन्धों का अभाव हो जाता है, क्योंकि जो सब शब्द जगत् में हैं, जब जगत् लीन हुआ तब शब्द कहां रहे और वास्तव से न कुछ उत्पन्न हुआ है न लीन होता है, एक ही चिदाकाश है और यदि तुम कहो देह तो उत्पन्न हुआ है, उस देह और तत्व को तुम स्वप्नवत् जानो और यदि तुम कहो जगत् प्रलय में लीन होता है, तो कुछ है, क्योंकि नाश वही होता है जो असत्य होना है और यदि तुम कहो कि असत्य है तो फिर क्यों उत्पन्न होता है, तब उत्पन्न हुई वस्तु भी सत् नहीं होती और यदि तुम कहो कि महाप्रलय

में चिदाकाश ही रहता है, वही जगत् रूप होकर भासता है, तो जगत् कुछ इतर वस्तु नहीं हुआ, बोधमात्र ही इस प्रकार हो भासता है, जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं, ऐसे जिसको जगत् भासता है वह वही रूप है, अपर कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, यदि उत्पन्न नहीं हुआ तो विकार और भेद कैसे हो, इसलिये बोध मात्र ही अपने आप में स्थित है, कारण कार्य से रहित परमशान्तरूप आत्मसत्ता स्थित है, वही जगत्‌रूप होकर भासता है देश काल पदार्थ सब महा प्रलय रूप हैं, जब महा प्रलय होता है तब ब्रह्मदेव पर्यन्त सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, आकाश, वायु अग्नि, जल पृथ्वी का नाम भी नहीं रहता, केवल बोधमात्र बोध से रहित शेष रहता है, परम शान्तरूप है, उसमें वाणी और मन की पहुँच नहीं, केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता रहती है, उसको तत्ववेत्ता अनुभव करते हैं, अन्य कोई जान नहीं सकता, हे रामजी! जो पुरुष अविद्या रूप निद्रा से जगा है वह निराभास होता है, अर्थात् चित्त से चैत्य का सम्बन्ध टूट जाता है और परम प्रकाशरूप आत्मपद उस को प्राप्त होता है और स्वभाव में स्थित होता है, परभाव जो प्रकृति है उसका अभाव हो जाता है। हे रामजी! जितना जगत् परभाव करके भिन्न भिन्न भासता था, वह सब एक रूप हो जाते हैं, अपना आप ही भासता है, ऐसे जब इसको आत्मा का अनुभव होता है, तब जगत् अपना आप ही भासता है, हे रामजी! एकरूप तब ही भासता है, जब अन्य कुछ बना नहीं जैसे स्वर्ण के भूषण अग्नि में डाल दिये जायँ तब अनेक भूषणों का एक से पिंडसा हो जाता है और एक ही आकार भासता है, ऐसे जब बोध का अनुभव होता है तब सर्व एकरूप हो जाता है। हे रामजी! भूषणों के होते भी स्वर्ण ही था, इसी से एकरूप हो गया, ऐसे जब बोध का अनुभव हुआ तब सर्व एकरूप हो भासा, इसलिये जगत् के होते हुए भी जगत् आत्म रूप है, जगत् है नहीं और हुए की नाईं भासता है और भिन्न भिन्न दृष्टि आता है, जैसे सौम्य (गम्भीर अड़ोल) जल में तरंग है नहीं और भासते हैं, तो भी जलरूप हैं, असम्यक् दृष्टि से भिन्न भासते हैं। हे रामजी! ज्ञानी को जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति तुल्य है, जैसे भूषण के होते भी स्वर्ण है और भूषणों के अभाव में भी

स्वर्ण है, ऐसे ही ज्ञानवान् को देह के होते भी ब्रह्म है और देह के अभाव हुए भी ब्रह्म है और जो अज्ञानी है उसको नाना प्रकार का जगत् भासता है, यह अज्ञानी कौन है, जिसका मन से सम्बन्ध है, हे रामजी! यह जगत् भिन्न भिन्न फुरता है, जैसे काष्ठ के स्तंभ में चितेरा पुतलियों की कल्पना करता है वे अन्य को नहीं भासतीं, उसके मन में होती हैं, ऐसे भिन्न भिन्न पदार्थ रूप पुतलियां अज्ञानी के मन में फुरती हैं और ज्ञानवान् को नहीं भासती हैं और जब काष्ठ का आकार होता है तब चितेरा पुतलियों की कल्पना करता है और यह आश्चर्य देखो कि मनरूप ऐसा चितेरा है, आकाश में पदार्थ रूप पुतलियों की कल्पना करता है। हे रामजी! अन्य कुछ नहीं बना, जैसे किसी पुरुष ने कागज के ऊपर पुतली लिखी हो तो वह कागजरूप है अन्य कुछ नहीं बनी, ऐसे वह जगत् भी वही स्वरूप है। हे रामजी! जब तुझको आत्मपद का अनुभव होगा, तब जितने जगत् के शब्द अर्थ हैं, वे सब उसी में भासेंगे, जैसे जितने स्वर्ण को जाना उसको भूषण के शब्द अर्थ स्वर्ण ही भासते हैं, ऐसे जब आत्मपद को जानेगा तब तुझ को जगत् शब्द अर्थ आत्मा ही में दृष्टि आयेंगे। हे रामजी! यह जीव महा सूक्ष्मरूप है, इस जीव में अपनी सृष्टि है, जब तक स्फुरण है तब तक सृष्टि है, जब सृष्टि स्फुरण अपनी ओर आता है तब सब सृष्टि एक आत्मरूप हो जाती है, आकाश, काल, दिशा पदार्थ सब आत्मा है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, अपने आप में स्थित है अद्वैत चिन्मात्र पद है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनं नाम द्विनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥१९२॥

त्रिनवत्यधिकशततमः सर्गः १९३

निर्वाणवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! सर्व तत्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! दृक् और दृश्य का सम्बन्ध कैसे हुआ है और काल में कालत्व का स्फुरण कैसे हुआ है, आकाश में शून्यता कैसे हुई है, वायु में वायुता कैसे हुई है, जड़ में जड़ता और भूत में भूतता, संकल्प में स्पंद और सृष्टि में सृष्टिता कैसे हुई है, मूर्ति में मूर्तिता, भिन्न में भिन्नता, दृश्य में दृश्यता किससे हुए हैं, मुझसे कहो क्योंकि अर्ध प्रबुद्ध को बोध के निमित्त कहना योग्य है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ईश्वर से लेकर जो सब पदार्थ हैं वे प्रलय काल में जिसमें लीन होते हैं उसका नाम प्रलय है उसका शब्द यही 'प्रलय' शब्द है और सब निर्वाण हो जाते हैं, यह अर्थ है। हे रामजी! ऐसा जो अनंत आकाश है वह सम है और शुद्ध है, आदि अंत से रहित है और मध्य से भी रहित है, चेतन घन अद्वैत है जहां एक और शब्द भी नहीं, जिसमें आकाश भी पहाड़वत् स्थूल है, ऐसा सूक्ष्म है और है नहीं, दोनों शब्द से रहित अपने आप में स्थित हैं। जैसे पाषाण का शिला कोश होता है, ऐसे चित्त के फुरणे से रहित है, ऐसे परमात्वतत्व अकारण से सृष्टि का उत्पन्न होना कैसे कहा जाय, जैसे आकाश अपने आप में स्थित है, ऐसे ब्रह्म अपने आप में स्थित है, हे रामजी! एक निमेष के फुरणे से जो अनेक योजन पर्यन्त वृत्ति जाती है, उसमें मैं जो अनुभव करनेवाली सत्ता है, उसमें तू स्थित होकर देख कि जगत् कहां है और जगत् की उत्पत्ति कहां है। हे रामजी! उत्पत्ति जो होती है वह समवायिकारण से और निमित्त कारण से होती है, वह आत्मा निराकार अद्वैत सन्मात्र है न समवायि कारण है, न निमित्त कारण है, इसलिये आत्मा अच्युत है, स्वरूप से कहीं विचलित नहीं हुआ तो समवायिकरण कैसे हो, निमित्त कारण भी नहीं, क्योंकि निराकार है, अतः आत्मा में जगत् कोई नहीं

भ्रांति मात्र भासता है और अविद्या से भासता है, वह अविद्या किसका नाम है, जो वस्तु हो नहीं और प्रत्यक्ष भासे, वह अविद्या से जानिये, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है और उसमें तरंग आवर्त उठते हैं, वे जलरूप हैं जल से इतर कुछ नहीं, जब तू अपने आप में स्थित होगा तब जगत् का शब्द अर्थ इतर न भासेगा, क्योंकि दूसरी वस्तु कुछ है नहीं, हे रामजी! ब्रह्म अमूर्त है, उसमें यह मूर्तियां कैसे उत्पन्न हों, अतः यह भ्रान्ति मात्र है, जो वस्तु कारण से उत्पन्न हुई हो वह सत् होती है और जो कारण बिना दृष्टि आवे उसे भ्रम मात्र जानिये, जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा प्रतीत होता है, उसका कोई कारण नहीं, मिथ्या भ्रम से प्रतीत होता है, ऐसे यह जगत् मिथ्या मात्र है, विचार करने से नहीं रहता। हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं, सब शून्य हैं, आत्मा में न उदय हुए हैं न अस्त होते हैं, ज्यों का त्यों आत्मा ही स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे निर्वाणवर्णनं
नाम त्रिनवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९३।।

चतुर्णवत्यधिकशततमः सर्गः १९४

द्वैतकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, ऐसे ब्रह्म रूप आकाश अपने आप में स्थित है वह कैसे किसी का कारण हो, कारण कार्य तब होता है जब द्वैत होता है, आत्मा अद्वैत है, अच्युत है, निर्गुण है, उसमें आरंभ कैसे हो, हे रामजी! जितना कुछ जगत् तुझको प्रतीत होता है, सब काष्ठ मौन है, काष्ठ मौन उसे कहते हैं जहां मन का स्फुरण शून्य है। हे रामजी! जो कुछ द्वैत भासता है, वह भ्रम मात्र है और यदि कुछ हुआ होता तो ज्ञानी को भी प्रत्यक्ष होता, वह

ज्ञान काल में नहीं भासता, अतः भ्रममात्र है। हे रामजी! पृथ्वी आदि से लेकर जो पदार्थ हैं, इनका फुरणा स्वप्न के समान है, जैसे स्वप्न में चेष्टा होती है वह पास बैठे हुए को नहीं भासती, अतः है नहीं, ऐसे अकारण संकल्प मात्र हैं। हे रामजी! शशे के श्रृंग का कारण कोई नहीं, ऐसे जगत् का कारण कोई नहीं, यदि कुछ हो तो कारण भी हो, जो हो नहीं कौन किसका कारण कहा जाय, रामजी बोल–हे भगवन्! वट का बीज है, उसमें वृक्ष का भाव होता है, काल पाकर बीज से वृक्ष होता है ऐसे इस जगत् का कारण परमाणु क्यों न हो? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सूक्ष्म में जो स्थूल होता है, वह संकल्प मात्र होता है, मैं भी कहता हूँ, सूक्ष्म में स्थूल होता है, परन्तु संकल्पमात्र होता है कुछ सत् नहीं होता यदि कहें सत्य होता है तो संभव नहीं, जैसे राई के कण में पर्वत का होना संभव नहीं होता, ऐसे सूक्ष्म परमाणु से जगत् का उत्पन्न होना असंभव है। हे रामजी! सूक्ष्म परमाणु का कार्य भी जगत् तब कहिये जब सूक्ष्म अणु भी आत्मा में पाया जावे। आत्मा तो अद्वैत है, उसमें एक और दो कहने का अभाव है, आत्मा में कुछ कहना नहीं बनता, केवल आत्मतत्व मात्र है, आधार आधेय से रहित है, बीज भी तब परिणाम को प्राप्त होता है, जब उसको जल देता है और रक्षा करने का स्थान होता है और आधार आधेय से रहित है, केवल अपने आप में स्थित है, अद्वैत सत्ता मात्र है, जैसे वन्ध्या के पुत्र का कारण कोई नहीं, ऐसे जगत् का कारण कोई नहीं जब वन्ध्या का पुत्र ही नहीं तो किसका कारण कौन हो, ऐसे जगत् है नहीं तो इसका ब्रह्म कारण कैसे है और जिसको तू दृश्य कहता है, वह दृष्टा ही दृश्य रूप होकर स्थित हुआ है, जैसे स्वप्न में द्रष्टा ही दृश्यरूप होता है, ऐसे यह जाग्रत में दृश्य रूप होकर आत्मा ही स्थित है। हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणें जलाभास होकर स्थित होती हैं, ऐसे ब्रह्म ही जगत् आकार होकर दृष्टि आता है, दृश्य भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं, जैसे समुद्र ही तरंग आवर्त होकर प्रतीत होत है, ऐसे अनन्त शक्ति होकर परमात्मसत्ता स्थित है। हे रामजी! मैं और यह जगत् के पदार्थ

सब फुरणामात्र है, जैसे संकल्प नगर होता है जो मन से रचा है, ऐसे यह जगत् आत्मा में कुछ बना नहीं, केवल अपने आप में ब्रह्म स्थित है, हमको तो सदा वही भासता है, हे रामजी! आत्मा में यह जगत न उदय हुआ न अस्त होता है, सदा ज्यों का त्यों निर्मल शान्त पद है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे द्वैतकताप्रतिपादनं नाम चतुर्वणत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९४।।

पंचनवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९५।।

परमशान्तिनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जगत् भाव अभाव जड़ चेतन स्थावर जंगम, सूक्ष्म, स्थूल, शुभ, अशुभ कुछ हुआ नहीं तो मैं तुझको क्या कहूँ कि यह कार्य है और यह इसका कारण है, यह हुआ नहीं फिर कारण कार्य कैसे हो, जो सर्व देश सर्वकाल और सर्व वस्तु हो वह कारण कार्य कैसे हो, केवल अपने आप में स्थित है, जो है और नहीं की नाईं स्थित हुआ है, उसमें संवेदन है, उसके फुरणे से जगत् भासता है, वह फुरणा, चेतन मात्र का विवर्त है, उस विवर्त से जगद्भ्रम हुआ है, जब यही फुरणा उलटकर अपनी ओर आता है तब जगद्भ्रम मिट जाता है और जब फुरता है तब ध्यान ध्याता ध्येय रूप होकर स्थित होता है, इसी का नाम जगत् है, इसी में बंध होता है और मुक्ति होती है, आत्मा में न बन्ध है न मोक्ष है, हे रामजी! जब तरंग घनीभूत हुए चलते हैं तब एक नदी होकर चलती है, ऐसे जब वासना दृढ़ होती है, तब जगद् रूप होकर स्थित होता है और प्रतीत होता है, जब ऐसी वासना दृढ़ हुई तब राग द्वेष मय संकल्प से बन्धन में आता है और जब वासना क्षय होती है तब जगत् का अभाव हो जाता है, स्वच्छ आत्मा भासता है, जैसे शरत्काल का आकाश स्वच्छ होता है उससे भी निर्मल प्रतीत होता है। हे रामजी! यह जीव जो मर जाता है वह वास्तव में मरता नहीं, मरा हुआ तब कहें, जब

उसका अत्यन्ताभाव हो और फिर जीवन को न प्राप्त हो, यदि फिर उसको संसार न भासे, इसलिये यह मरणा नहीं, क्योंकि पुनः जगत् प्रतीति होती है, यह मरना सुषुप्ति के समान है, जैसे सुषुप्ति से जगने पर जगत् भासता है और वही चेष्टा करने लगता है, जैसे स्वप्न और जाग्रत होता है, ऐसे मृत्यु और जन्म भी है, इसलिये मरने और जन्म में ऐसा हो कि जब मरण का शोक उत्पन्न हो, उसमें जीवन के सुख का आरोप कीजिये, जब जीवन का हर्ष उत्पन्न हो, उसमें मरणे का शोक आरोपित हो, तब दोनों अवस्थाएं शरीर की सम रचना की होगी, जब शरीर की यह अवस्थाएं जान ली गयीं तब तुम्हारा अन्तःकरण शान्त होगा, जब संवेदन फुरणे का अत्यन्त अभाव हुआ तब परम शान्त हुए ध्यान, ध्याता, ध्येय, तीनों का अभाव हो जावेगा और अज्ञान भी न रहेगा, जब ऐसा अभाव हुआ तब पीछे निर्मल पद रहेगा। हे रामजी! अब भी निर्मल पद है परन्तु भ्रम से पदार्थ सत्ता भासती है, जैसे निद्रा दोष से केवल अनुभव में पदार्थ सत्ता भासती है और जगने पर केवल भ्रममात्र ही रहते हैं, ऐसे यह जगत् भी भ्रममात्र जानिये, परमार्थ स्वरूप के प्रमाद से यह जगत् भासता है और स्वरूप में जगने पर इसका अभाव हो जाता है। हे रामजी! स्वप्न में अनहोते राज्य देखता है, ऐसे इस जगत् को जानिये, इसका स्फुरण ही इसके बंधन का कारण है, जैसे घुराण आप ही स्थान बनाती है और आप ही फँसकर मरती है और जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करके मुख से और का और बोलता है और उसमें बन्धन में पड़ता है, ऐसे अपने संकल्प ही से बँधता है, जब संकल्प मिटे तब परमानन्द को प्राप्त हो और परम स्वच्छ शान्ति का आविर्भाव हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे परमशांतिवर्णनं नाम पंचनवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९५।।

षण्णवत्यधिकशततमः सर्गः १९६

आकाशकुटीवसिष्ठसमाधिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जहां आकाश होता है वहां शून्यता भी होती है और जहां शून्यता होती है वहां आकाश भी होता है और जहां आकाश है वहां पदार्थ भी होते हैं, ऐसे जहां चेतन सत्ता है वहां सृष्टि भी भासती है, परन्तु कैसे भासती है, जो बनी नहीं और सदा रहती है जैसे सूर्य की किरणों में जल कदाचित् नहीं उत्पन्न हुआ और जलाभास सदा रहता है, क्योंकि उसी का विवर्त है, ऐसे सृष्टि आत्मा का विवर्त है, जहां चेतन सत्ता है, वहां सृष्टि भी है, इसी पर एक इतिहास तुझको कहता हूँ। वह ऐसा परम सुन्दर इतिहास है कि जिसके सुनने और समझने से जरा मृत्यु से छूट जाता है, ऐसा चित्त को मोहित करने वाला आश्चर्यरूप है और प्रकृतरूप है, मेरा देखा हुआ है। हे रामजी! एक समय मेरा चित्त जगत् से उपरत हुआ, किसी एकान्त स्थान में जाकर अपना समाधान करूँ, ऐसी इच्छा हुई, जगत् कैसा है कि मोहरूप व्यवहार से दृढ़ हुआ है और जितना जानने योग्य है उसको मैं जानता हूँ, परन्तु व्यवहार से भी शान्त रूप होना चाहिये, ऐसा मैंने विचार किया कि निर्विकल्प समाधि करूं और परम शान्ति को प्राप्त हो जाऊँ, जो आदि अन्त मध्य से रहित परमानन्द स्वरूप और अविनाशी पद है, उसमें विश्राम करूँ। हे रामजी! तब मैं भी ज्ञान वृत्तिमान् परमात्मस्वरूप ही था, परन्तु चित्त की वृत्ति जब जगत् भाव से उपरत हुई, उससे एकान्त समाधि की प्रबल इच्छा हुई कि जहां क्षोभ न हो वहां स्थिति प्राप्त करें, ऐसा विचार कर मैं आकाश में उड़ा, एक देवता का पर्वत था, वहां जा बैठा, वहां कई प्रकार के इन्द्रियों के विषय देखे, अंगनाएं गायन कर रही हैं और शिर पर चमर डुलाये जा रहे हैं, मंद मंद पवन चलता है, वह विषय भी मुझको आपात रमणीय भासे, किसी काल में किसी को सुखदायक नहीं, समाधिवाले के यह शत्रु हैं, उनको विरस जानकर मैं फिर उड़ा। एक और पर्वत की

कन्दरा थी वह बहुत सुन्दर थी, वहां आ पहुँचा, सुन्दर वन है सुन्दर पवन चलता है, ऐसे स्थान को मैंने देखा और मुझको शत्रुवत् प्रतीत हुआ, क्योंकि जो पक्षी के शब्द होते हैं और पवन का स्पर्श होता है, इत्यादि अन्य भी विषय हैं, इनको देख कर मैं आगे चला, नागों का देश देखा और सुन्दर नाग कन्याएं देखीं और बहुत सुन्दर इन्द्रियों के सुख साधन विषयों के सामान देखे, वे विषयों की सुख सामग्री भी मुझे सर्पवत् प्रतीत हुई, जैसे सर्प के स्पर्श से विष द्वारा अनर्थ को प्राप्त होता है, ऐसे ही मुझको विषय भासे, फिर आगे चला। हे रामजी! जितने इंद्रियों के विषय हैं सब अनर्थ के कारण हैं, उनमें मूढ़ अज्ञानी लोग प्रीति करते हैं, इसके अनन्तर मैं समुद्र के तट पर गया, वहां समीप की पुष्पवाटिकाओं में घूमा, कन्दराओं और वन को देखा। पर्वत, पाताल, दशों दिशाएं देखता फिरा परन्तु एकान्त स्थान मुझको कोई दृष्टि न आया, तब मैं फिर आकाश को उड़ा, आकाश में पवन और मेघों के स्थानों में से होकर गुजरा, देवगण विद्याधर और सिद्धों के स्थान देखे, उससे क्या देखता हूँ कि अनेको ब्रह्माण्ड उड़ रहे हैं, नाना प्रकार के स्थान देखे, गरुड़ के स्थान में से भी निकला, कहीं सूर्य का उग्र प्रकाश दीखता था, उसमें भी होकर गया, कहीं ऐसा देखा कि सूर्य का प्रकाश ही नहीं, फिर चन्द्रमा के मण्डल में गया, आगे एक अग्नि का स्थान था, उसमें से होकर महाकाश में गया, जहां इन्द्रियों का रोकना भी न रहे, क्योंकि इन्द्रियों के विषय कोई दृष्टि नहीं पड़ते, एक आकाश ही आकाश दृष्टि आता है और वायु अग्नि जल पृथ्वी चारों का अभाव है। हे रामजी! उस स्थान में मैं गया, जहां भूत स्वप्नवत् भी दृष्टि न आवें और जहां सिद्धों की पहुँच नहीं, वहां जाकर मैंने एक संकल्प से कुटी रची और उसके साथ कल्पवृक्ष पुष्प पत्रों से भरे हुए रचे, उस सुन्दर कुटी की एक ओर छिद्र रक्खा। मेरा जो सूक्ष्म संकल्प था, वह प्रत्यक्ष हुआ, उस कुटी को रचकर उसमें प्रवेश किया और संकल्प किया कि सौ वर्ष पर्यन्त मैं समाधि में रहूँगा, उसके बाद समाधि से उत्थान होगा, ऐसा विचार कर मैंने पद्मासन बांधा और

समाधि में स्थित हुआ और परम शान्ति का अनुभव किया, जहां कि कोई क्षोभ नहीं, उस निर्विकल्प समाधि में जब सौ वर्ष व्यतीत हुए तब वह जो समाधि के उतरने की भावी थी, उसका संकल्प स्फुरण हुआ, जैसे पृथ्वी में बीजा हुआ बीज समय पर उत्पन्न होता है ऐसे ही संकल्प फुरा, प्रथम प्राणों का स्फुरण हुआ, ज्ञान इन्द्रिय प्रकट हुए, जैसे वसंत ऋतु में फूल खिलते हैं, ऐसे ही ज्ञानेन्द्रिय खिल आये, पुनः स्पंद होने पर अहंकार रूप पिशाच का स्फुरण हुआ और इच्छा रूपिणी उसकी स्त्री भी फुरी। हे रामजी! सौ वर्ष मुझे ऐसा व्यतीत हुआ जैसा निमेष का खोलना होता है, काल भी बहुत प्रकार से व्यतीत होता है, किसी को थोड़ा हो जाता है और किसी को बहुत हो जाता है, सुखी होता है, तब बहुत काल भी थोड़ा हो भासता है और दुःखी को थोड़ा काल भी बहुत हो जाता है, हे रामजी! इस समाधि का जो मैंने वर्णन किया है, यह शक्ति जीव में है, परन्तु सिद्धि नहीं होती क्योंकि नाना प्रकार की वासनाओं से अन्तःकरण मलिन है, जब अन्तःकरण शुद्ध हो तब जैसा संकल्प करे, पूर्ण हो जाता है और मलिन अन्तःकरण वाले का संकल्प सिद्ध नहीं होता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे आकाशकुटीवसिष्ठसमाधिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९६।।

सप्तनवत्यधिकशततमः सर्गः १९७

विदितवेदाहंकारवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! तुम निर्वाण स्वरूप हो, तुम्हें अहंकार पिशाच का स्फुरण कैसे हुआ, मेरा यह संशय दूर कीजिये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो जब तक शरीर का सम्बन्ध है तब तक अहंकार दूर नहीं होता, क्योंकि जहां आधार होता है वहां आधेय भी होताहै और जहां आधेय होता है वहां आधार भी होता है, ऐसे जहां देह है वहां अहंकार भी होता है और जहां अहंकार होता

वहां देह भी होता है। हे रामजी! अहंकार बिना शरीर नहीं रहता, उस अहंकार की अज्ञानरूप बालक में कल्पना की है। ज्ञानी में जो विशेषता है उसे सुनो, उसके जानने से अहंकार नष्ट हो जाता है। हे रामजी! यह अहंकार अविद्या कल्पित है, वह अविद्या किसका नाम है, जो वास्तव में मिथ्या हो और प्रतीत हो वह अविद्या है, जब अविद्या ही मिथ्या है तो उसका कार्य अहंकार कैसे सत्य हो, यह मिथ्या भ्रम से उदय हुआ है, जैसे भ्रम से वृक्ष में बेताल भासता है, ऐसे भ्रम से अहंकार रूप बेताल उदय हुआ है और इसका कारण अविचार सिद्ध है, विचार करने से इसका अभाव हो जाता है, जहां जहां विचार होता है वहां वहां अविद्या नहीं रहती, जैसे जहां दीपक होता है वहां अन्धकार नहीं रहता, दीपक के जगने पर अंधकार का अभाव हो जाता है, ऐसे विचार के उदय होने पर अविद्या का अभाव हो जाता है, जो वस्तु विचार करने पर न रहे, उसको मिथ्या जानिये, जो आप ही मिथ्या है, उसका कार्य कैसे सत्य हो, इसलिये अहंकार को मिथ्या जानिये। हे रामजी! जैसे आकाश के वृक्ष का कारण कोई नहीं, ऐसे अहंकार का कारण कोई नहीं, जो मन सहित षट् इन्द्रिय हैं, शुद्ध आत्मा उनका विषय नहीं, क्योंकि वह साकार है, दृश्य है, साकार का कारण निराकार आत्मा कैसे हो, जो कुछ आकार है वह सब मिथ्या है जो बीज होता है उसमें अंकुर निकलता है तब जानता है कि बीज से अंकुर उत्पन्न हुआ है परन्तु बीज ही न हो तो उसका कार्य अहंकार कैसे उत्पन्न हो, ऐसे जगत् का कारण संवेदन ही न हो तो जगत् कैसे हो, जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा हो तो उसका कारण भी मानिये, जब दूसरा चन्द्रमा ही न हो तो उसका कारण कैसे माना जाय, हे रामजी! ब्रह्म आकाश अद्वैत है और शुद्ध है, फुरने से रहित है और अच्युत है, अविनाशी है, कारण कार्य कैसे हो। हे रामजी! पृथ्वी आदि तत्व जो भासते हैं, वे अविद्यमान हैं, भ्रम से भासते हैं, केवल शुद्ध आत्मा अपने आप में स्थित है, यदि तुम कहो कि अविद्यमान है तो भासता क्या है, इसका उत्तर यह है कि जैसे अनहोती सृष्टि भासती है, ऐसे यह जगत्

भी अन होता प्रतीत होता है, जैसे भ्रम से आकाश में अनहोते वृक्ष प्रतीत होते हैं, इसमें आश्चर्य कुछ नहीं, जैसे संकल्प नगर रच लिया जाय तब उसमें चेष्टा भी होती है, परन्तु इसका स्वरूप संकल्प मात्र है, वास्तव अर्थाकार कुछ नहीं होता, परन्तु अपने काल में सत् प्रतीत होता है, जब संकल्प का लय होता है, तब उसका भी अभाव हो जाता है, तब आकाश के वृक्ष की नाईं हुआ क्योंकि जो आकाश के वृक्ष भावना से भासते हैं, ऐसे यह जगत् संकल्प मात्र है, स्वरूप से कुछ नहीं, यदि विचार कर देखिये तो इसका अभाव हो जाता है, हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्व अपने आप में स्थित है, वही जगत् का आकार प्रतीत होता है, दूसरी कोई वस्तु नहीं, जैसे स्वप्न में जितने पदार्थ भासते हैं, वे सब अनुभव रूप हैं, ऐसे जगत् भी ब्रह्म स्वरूप है, हे रामजी! हमको सदा प्रतीत होता है, तो अहंकार कहां हो, न मैं अहंकार, न मेरा अहंकार है, केवल आकाश में अहंकार कहां है? हे रामजी! न मैं हूँ, न मुझमें फुरणा है, अथवा सर्व आत्मसत्ता मैं ही हूँ तो भी अहंकार न हुआ, हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसा है जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी होती है, उससे अर्थ सिद्ध कुछ नहीं होता, दृष्टि मात्र हुई है, ऐसे ज्ञानी का अहंकार देखने मात्र है, कर्तृत्व भोक्तृत्व का नहीं होता, अपने स्वभाव में स्थित है, सर्व ज्ञानवानों का एक ही निश्चय है कि ब्रह्म ही प्रतीत होता है और अहंकार का अभाव है, न आगे था न अब है, न फिर होगा, भ्रम से अहंकार शब्द जानता है। हे रामजी! जब ऐसा समझेगा तब अहंकार नष्ट हो जायगा, जैसे शरत्काल में मेघ देखने मात्र होता है, वर्षा से रहित है, ऐसे ज्ञानी का अहंकार देखने मात्र है, दूसरे की बुद्धि में प्रतीत होता है, परन्तु ज्ञानी के निश्चय में असंभव है, उसका अहं प्रत्यय आत्मा में रहता है, परिच्छिन्न अहंकार का अभाव हो जाता है, जब अहंकार का नाश हुआ तब अविद्या का भी समझो नाश हुआ और यही अज्ञान का नाश है, यह तीनों पर्याय हैं। हे रामजी! अपने स्वभाव में स्थित होकर प्रकृत आचार को करना और अन्दर से शिलाकोशवत् हो रहना और बाह्य इन्द्रियों की क्रिया सब रहे और अपने निश्चय को ऐसे गुप्त रक्खो और सब इन्द्रियों को ऐसे धारण करो

जैसे आकाश सबको धारण कर रहा है, अन्दर से शिला के जठरवत् रहो, देखने मात्र तुम्हारे अन्दर भी अहंकार देखने में आयेगा, जैसे अग्नि की मूर्ति लिखी देखने में आती है, ऐसे तुम्हारे अन्दर अहंकार देखने में आयेगा परन्तु अर्थ कारण होगा। केवल ब्रह्म सत्ता ही भासेगी। अन्य कुछ प्रतीत न होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विदितवेदाहंकारवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥१९७॥

अष्टनवत्यधिकशततमः सर्गः १९८

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि तुमने अहंकार के त्यागने से परम सात्विकी प्राप्ति का उपदेश किया है, वह यह परम दशा है कि राग द्वेष मल से रहित निर्मल है, परम उत्तम है और अविनाशी आदि अन्त से रहित है, यह दशा तुमने परम विभूता के अर्थ कही है। हे भगवन्! सर्वदाकाल और सर्वप्रकार वस्तु वही ब्रह्म सत्ता है, समरूप सत्ता के अनुभव से परम निर्मल है तो शिलाख्यान किसलिये कहा है, यह कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सर्वत्र सर्वदाकाल और सब से रहित है, उसके बोधार्थ मैंने तुझे शिलाख्यान दृष्टान्त कहा है। हे रामजी! ऐसा स्थान कोई नहीं जहां सृष्टि नहीं, सर्व स्थान में सृष्टि भासती है और आदि से कुछ बना नहीं, शिला के कोश में अनेक सृष्टियां भासती है, जैसे आकाश में शून्यता है, ऐसे शिलाकोश में सृष्टियां बसती हैं, श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! जब सर्वत्र सृष्टियां वसती हैं, कुंद आदिक में आपने कहा है तो आकाश रूप क्यों न हो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मैं भी तुम्हें यही कहता हूँ जो कुछ सृष्टि है वह सब आकाशरूप है, स्वरूप से सृष्टि तो उत्पन्न हुई नहीं, सर्वदा आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, आकाश की बात क्या कहनी है, जो शिला कोश में सृष्टियां बसती हैं, जो

आकाशरूप हैं, वे वसती हैं, अर्थात् हुई कुछ नहीं, हे रामजी! पृथ्वी में ऐसा अणु कोई नहीं, जिसमें सृष्टि न हो। अणु में सृष्टि है और सब ओर से वसती हैं, परमार्थ से कुछ बना नहीं केवल आत्मरूप है, सब सृष्टियां शब्द मात्र हैं, जैसे यह सृष्टि भासती है, ऐसे वह भी है, जब यह शब्द मात्र है तब वह भी शब्द मात्र है और यदि यह सत् भासती है, तो वह भी सत् भासती है। हे रामजी! ऐसा कोई जल का कण नहीं जिसमें सृष्टि न हो। वह सब में सृष्टि है और यह आश्चर्य देखो कि इसके बिना कुछ नहीं, ऐसा अग्नि और वायु का कण नहीं, जिससे सृष्टि न हो, सब में सृष्टि है और आकाशरूप है, कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ता अपने आप में सदा ज्यों की त्यों स्थित है, हे रामजी! आकाश में ऐसा अणु कोई नहीं, जिसमें सृष्टि न हो सब में सृष्टि है, परन्तु कुछ उत्पन्न नहीं हुई ऐसा ब्रह्म अणु कोई नहीं, जहां सृष्टि न हो, सब में है परन्तु स्वरूप से कुछ हुई नहीं, ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है। हे रामजी! ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें ब्रह्म सत्ता नहीं और ऐसा कोई चिद्अणु नहीं, जिसमें सृष्टि नहीं, वह सृष्टि कैसे है, जैसे अग्नि कही, किसी ने उष्णता कही, उसमें कोई भेद नहीं, ऐसे ही कोई ब्रह्म कहे, कोई जगत् कहे, शब्द दो हैं परन्तु वस्तु एक ही है, जगत् ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही जगत् है, भेद कुछ नहीं, जैसे बहुत जल का शब्द होता है, उसमें अर्थ सिद्ध कुछ नहीं होता, ऐसे जगत् मुझको कुछ पदार्थ नहीं प्रतीत होता, क्योंकि दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं, मैं तू और यह जगत् सुमेरु से लेकर जितने पर्वत हैं, देवता, किन्नर और दैत्य नाग आदि जो जगत है सब निर्वाण स्वरूप हैं, आत्मतत्व में कुछ बना नहीं, यह बोलते चेष्टा करते जो प्रतीत होते हैं, उन्हें स्वप्न समान जानो, जैसे कोई पुरुष सोया है और स्वप्न में नाना प्रकार के युद्ध होते हैं, बाजे बजते हैं अन्य चेष्टायें होती हैं और जो निकट जाग्रत पुरुष बैठा है, उसको कुछ नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जो बना ही कुछ नहीं और उसको सब कुछ प्रतीत होता है, ऐसे ज्ञानी के हृदय में जगत् शून्य है और अज्ञानी को नाना प्रकार का भासता है, वह भ्रम से भासता है, इसलिये

हे रामजी! इस जगत् को स्वप्नवत् जानकर प्रकृत आचार करो और अन्दर से शिला की नाईं रहो कि स्फुरण कुछ न हो, ब्रह्म और जगत् में किंचित् भी भेद नहीं, ब्रह्म ही जगत् है और जगत् ब्रह्म है, जगत् स्पष्टार्थ ब्रह्म से भिन्न नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नामाष्टनवत्यधिकशततमः सर्गः ।।१९८।।

नवनवत्यधिकशततमः सर्गः १९९

जगज्जालसमूहवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! आकाश कोश में जो कुटी बनाकर समाधि लगायी और सौ वर्ष के बाद उतरी, उसके अनन्तर जो वृत्तान्त हुआ वह कहो। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब समाधि से उतरा तब आकाश में एक शब्द सुना वह कैसा शब्द हुआ जो कोमल हृदय और सुन्दर अंगना का शब्द हुआ तब मैंने विचार किया कि यह शब्द कहां से आया है, मैं तो बहुत ऊंचा आ गया हूँ, जहां सिद्धों की भी गति नहीं, सिद्ध स्थान से भी तीन लाख योजन ऊंचा आया हूँ, यह शब्द कहां से आया? ऐसा विचारकर मैंने देखा, दशों दिशाएं देखीं सब ओर आकाश ही प्रतीत होता है, सृष्टि का कर्ता कोई दृष्टि नहीं आता, एक आकाश ही भासता है, अन्य कुछ नहीं भासता, तब मैंने विचार किया कि जो सृष्टि आकाश में होती है, इसलिये मैं आकाश ही हो जाऊं और इस शब्द को प्राप्त करूं कि किसका शब्द है? आकाश को भी त्यागकर चिदाकाश हो जाऊं, जहाँ भूताकाश भी कुटीवत् भासता है, तब इसका भी अन्त भासेगा और जान लेगा कि यह शब्द होता है, ऐसा विचार करके मैंने निश्चय किया है कि यह शरीर ही यहाँ रहे, नेत्र मूंदे रहें, तब पद्मासन बाँधकर बाह्य इन्द्रियों को भी रोका और जो इन्द्रियों की वृत्ति शब्दादिक ग्रहण करती थी, उसको रोक लिया, अन्तर बाहिर की वृत्ति सब त्याग दी, सर्व अहंवृत्ति

को त्यागकर मैं आकाशरूप हो गया, जैसे इस ब्रह्माण्ड में आकाश का अन्त नहीं पाया जाता, ऐसे ही मैं इसको त्यागकर चित्ताकाश रूप हो गया, मैं चित्ताकाश में आया। वह चित्ताकाश कैसा है कि संकल्प ही जिसका रूप है, उसको भी मैं त्यागकर बुद्धि आकाश में आया, फिर इसको भी त्यागकर चिदाकाश में आया, उस शब्द के देखने के संकल्प से चिदाकाशरूप हो गया, जैसे जल की बूंद समुद्र में मिल समुद्ररूप हो जाती है, ऐसे मैं चिदाकाश हो गया, वह चिदाकाश निराकार निराधार है और सबको धारण कर रहा है, परमानंद स्वरूप है, शान्त है और अनन्त है जिसमें सर्व ब्रह्माण्ड प्रतिबिंबित होते हैं, आत्मा आदर्श है, उसमें मैं स्थित हुआ, तब मुझे अपने आप में अनन्त सृष्टि भासने लगी, जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु होते हैं, ऐसे ब्रह्म में सृष्टि है, परन्तु जीव की अपनी अपनी सृष्टि है, इसकी सृष्टि को वह नहीं जानता, उसकी सृष्टि को यह नहीं जानता, जैसे सोये हुए मनुष्य अपनी अपनी स्वप्न सृष्टि को देखते हैं, उसमें आकाश और काल अपना आप देखें, इसकी सृष्टि को वह नहीं जानता, उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता, परन्तु ज्ञानी सर्व सृष्टि को देखता है, ऐसे मुझको सर्व सृष्टि चिदाकाश भासे और जीव को अपनी अपनी सृष्टि भासे, अन्य की सृष्टि अन्य को न दीखे। हे रामजी! एक सृष्टि ऐसे भासे कि आवरण कोई नहीं, आवरण कहते हैं, जैसे पृथ्वी के चारों ओर समुद्र होते हैं, वहां आवरण कोई न था और कहीं कहीं एक ही भूत का आवरण है, कहीं ऐसी सृष्टि आवे, जिसको पांचों तत्वों का आवरण है, प्रथम पृथ्वी का आवरण, दूसरा जल का, तीसरा अग्नि का, चतुर्थ वायु का, पंचम आकाश का आवरण है, कहीं ऐसी सृष्टि देखने को मिले, जिनको चार तत्व का आवरण है, कहीं ऐसी देखी जिसको षट् आवरण है, कहीं दश आवरण दृष्टि आते हैं, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आती है जिसको षोडश आवरण हैं, कहीं ऐसी कि चौंतीस आवरण हैं, कहीं छत्तीस आवरण तत्त्व से संयुक्त सृष्टि देखी है, हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं, परन्तु वे चिदाकाश में कैसी हैं,

आकाशरूप हैं, आत्मा से इतर वस्तु कुछ नहीं, मन के फुरने से मुझको सृष्टि दृष्टि आती है, क्योंकि संकल्प मात्र ही है, अपर कुछ बना नहीं, जैसे दीवार पर मूर्तियां लिखी होती हैं, ऐसे आत्मरूप दीवार पर मूर्तियां दृष्टि आती हैं, अपने अपने व्यवहार में मग्न रहते हैं। हे रामजी! ऐसी अनन्त सृष्टि देखी, एक की सृष्टि को दूसरा न जाने सब अपनी सृष्टि को ही जानते हैं, जैसे अनेक पुरुष एक ही काल में शयन करें और स्वप्नसृष्टि अपनी अपनी देखें, दूसरी सृष्टि को वे नहीं जानते। हे रामजी! कुछ ऐसी सृष्टियां देखीं जहां न सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमा का प्रकाश, न अग्नि का, परन्तु चेष्टाएं उनकी सब होती हैं, कहीं ऐसी देखीं जहां सूर्य चन्द्रमा हैं, कहीं ऐसी देखी कि उनके काल का ज्ञान भी नहीं कि काल क्या है, न वहां दिन है न रात है, सदा एक समान रहते हैं, कहीं महाशून्य रूप तम ही दृष्टि आवे, कहीं ऐसा दृष्टि पड़े कि जहां देवता ही रहते हैं, मनुष्य भी रहते हैं, कहीं तिर्यक् भी रहते हैं, कहीं दैत्य ही दृष्टि आते हैं, कहीं जल ही दृष्टि पड़े, अन्य कोई तत्व प्रतीत हो, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि पड़े कि जहां शास्त्र का विचार ही नहीं, कहीं शास्त्र पुराण विपर्यय रूप हैं, कहीं समान हैं, कहीं प्रलय होती देखी जाती है, कहीं उत्पत्ति होती देखने में आती है। हे रामजी! इत्यादि अनन्त सृष्टियां मैंने देखीं, परन्तु जब स्वरूप की ओर देखूं तब केवल ब्रह्मरूप ही प्रतीत हो, अन्य कुछ बना दृष्टि नहीं आवे जब संकल्प करके देखे तब अनन्त सृष्टि दृष्टि आती है, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आती है जहां बालक युवा वृद्ध अवस्थाओं की मर्यादा ही नहीं, जैसे उत्पन्न हुए, ऐसे ही रहे, कहीं ऐसी सृष्टि है कि चन्द्र का सूर्य का प्रकाश ही नहीं, अग्नि के प्रकाश से उनकी चेष्टाएं होती हैं, कहीं ऐसे देखे जो ऊपर को ही चले जा रहे हैं, कहीं नीचे को चले जा रहे हैं, कहीं ऐसे देखे जो शास्त्र की मर्यादा के साथ चेष्टा करते हैं, कहीं कृमि ही बसते हैं, अन्य कोई नहीं। हे रामजी! चेतन रूप बन में मैंने अनन्त सृष्टिरूप वृक्ष देखे परन्तु दूसरा कुछ बना दृष्टि नहीं आया। चेतन का आभास ही दृष्टि आया, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होती है और

बना कुछ नहीं होता, ऐसे ही सृष्टि बनीं कुछ नहीं परन्तु दृष्टि आती है, जैसे आकाश में नीलता भासती है और चन्द्रमा भासता है, ऐसे अनहोती सृष्टि भासती है, जैसे मरुस्थल में दूसरा जल भासता है और गन्धर्व नगर की सृष्टि भासती है, ऐसे सम्पूर्ण सृष्टि भासती है। हे रामजी! ब्रह्मरूप आकाश है उसमें चित्तरूप गन्धर्व ने सृष्टि रची है, स्वरूप से इतर कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, सब अकारण है, जो निमित्त कारण समवायि कारण बिना सृष्टि भासे उसे भ्रममात्र जानिये, जैसे स्वप्नसृष्टि कारण के बिना होती है और अर्थाकार होकर भासती है, तो भी अजात जात है, अर्थात् जो उत्पन्न हुए बिना उत्पन्न हुई प्रतीत होती है, ऐंसे सम्पूर्ण सृष्टि आभासमात्र है, हे रामजी! आभास में भी अधिष्ठान सत्ता होती है, जिसके आश्रय से आभास फुरता है, वह शान्त चिदानन्द ब्रह्म सबका अधिष्ठान है और सर्वात्मरूप से स्थित है, ब्रह्मसत्ता से इतर कुछ नहीं, चैत्यता से नानात्व भासता है, परन्तु नानात्व हुआ कुछ नहीं, आत्मा ही सर्वदा अपने आप में स्थित है, जैसे क्षीर समुद्र में वायु से नाना प्रकार के तरंग भासते हैं, तो भी क्षीर से इतर कुछ नहीं, ऐसा क्षीर समुद्र का तरंग कोई नहीं, जिसमें घृत न हो, सब में घृत व्याप्त हो रहा है, ऐसे ही जो भी पदार्थ हैं, सब में ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत है, जैसे–क्षीर के मथने से घृत निकलता है, ऐसे ही विचार करने से जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, इतर कुछ नहीं, क्योंकि जो कारण द्वारा कुछ नहीं उत्पन्न हुआ, परमार्थ से केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, स्फुरणरूप भ्रम से कुछ हुआ दृष्टि आता है, जब स्फुरणरूप भ्रम निवृत्त हुआ, तब ब्रह्म ही भासता है, इसलिये अविद्यारूप फुरणे को त्यागकर अपने निर्विकल्प स्वरूप में स्थिति करो, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जायेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगज्जालसमूहवर्णनं
नाम नवनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥१९९॥

द्विशततमः सर्गः २००

जगज्जालवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने सृष्टि देखी तब फिर विचार उत्पन्न हुआ कि वह शब्द करनेवाला कौन था, उसको देखूं, तदनन्तर मैं देखने लगा, देखते देखते तितरी की नाईं शब्द सुना, परन्तु उसको देखा नहीं, तब फिर देखा। देखते देखते शब्द का अर्थ प्रतीत होने लगा, जब फिर देखा तब अंगना दृष्टि पड़ी, वह कैसी है कि सोने का सा उसका शरीर है, बहुत सुन्दर वस्त्र पहिने हुए है और सब अंग भूषणों से भरे हैं, लक्ष्मी की उसको उपमा दीजिये, श्री भवानी रूप जानिये, अति सुन्दरी है, जब मैंने उसे देखा तब वह मेरे समीप आ पहुँची और कहने लगी, हे मुनीश्वर! अपर संसार मैंने देखा है, परंतु समान धर्मा ही मुझको दृष्टि आया है और तुम मुझे उत्तमधर्मा प्रतीत होते हो, संसार समुद्र के पार पहुँचे हुए दृष्टि आते हो, संसार समुद्र पर के तम वृक्ष, जो कोई तुम्हारी ओर आता है उसको आश्रयभूत हो और निकाल भी लेते हो, अन्य जीव संसार समुद्र में बहे जाते हैं। तुम पार को प्राप्त हुए हो, इसलिये तुमको नमस्कार है, हे रामजी! जब इस प्रकार अंगना ने कहा तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि इसने मुझे कभी देखा भी नहीं और सुना भी नहीं, फिर इसने किस प्रकार जान लिया, तब मैंने ऐसा विचार किया कि यह कोई माया का चरित्र है और जो ब्रह्माण्ड मुझको दृष्टि आये हैं, वे इसी से आये हैं, हे रामजी! ऐसा विचार किया तब उसको त्यागकर मैं फिर आकाश को उड़ा तब अपर सृष्टि भासने लगी, जैसे स्वप्न की सृष्टि होती है और संकल्प की सृष्टि होती है और गन्धर्व नगर की सृष्टि होती है, ऐसे यह सृष्टि है, वास्तव में कुछ बना नहीं, जैसे स्वाभाविक सृष्टि अनहोती भासती है, ऐसे यह जगत् है, केवल बोध मात्र आत्मा अपने आप में स्थित है, हे रामजी! जब मैं बोध में स्थित होकर देखू तब मुझको आत्मा ही भासे और जब संकल्प करके देखू तब नाना प्रकार का

जगत् भासे, कहीं नष्ट होते प्रतीत होते, कहीं नष्ट होकर उत्पन्न होते प्रतीत होते, जैसे पीपल के पत्ते गिरते हैं और फिर वैसे ही उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं, कहीं अर्धस्वभाव प्रतीत हों, कहीं ऐसे दृष्टि आवें जैसे नाश होकर अन्य के अन्य उत्पन्न हो रहे हैं, कहीं उत्पन्न होते ही दृष्टि आवें, कहीं भिन्न भिन्न सृष्टि और भिन्न भिन्न शास्त्र दृष्टि आते हैं, कहीं सूर्य, चन्द्रमा और ताराओं का चक्र, ऐसे ही घूमता दृष्टि आता है, कहीं अन्य प्रकार से दृष्टि आता है, कहीं नरक की सृष्टि देखने में आती है, कहीं स्वर्ग के स्थान दृष्टि में आते हैं, इसी प्रकार अनन्त सृष्टियां देखीं और अनन्तही रुद्र देखे, अनन्तही ब्रह्मा देखे, अनन्तही विष्णु देखे, कहीं प्रलयकाल के मेघ गर्जते हैं, कहीं सुमेरु आदिक पर्वत उड़ते दृष्टि आते हैं, कहीं ब्रह्माण्ड जल से दृष्टि आता है और द्वादश सूर्य तपते दृष्टि आते हैं, कहीं ऐसे स्थान दृष्टि आते हैं जो उत्पन्न होते ही पुष्ट हो जायँ, कहीं ऐसी सृष्टि आती है जहां एक सृष्टि में मरा हुआ दूसरी सृष्टि में आया हो और दूसरी सृष्टि में मरा उसी सृष्टि में आया हो, कहीं प्रलय होती देखी जा रही है, कहीं ज्यों की त्यों रहती सृष्टि दृष्टि आती है, उनके निकट उसको कुछ कष्ट नहीं है, जैसे दो पुरुष एक ही शय्या पर सोये हों और दोनों को स्वप्न आये, एक की सृष्टि में प्रलय होती है और दूसरे की ज्यों की त्यों रहे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं परन्तु उनमें मैंने सारवस्तु ब्रह्मसत्ता ही देखी और सब स्थान आदि स्वप्न के समान दृष्टि आये, जैसे केले के वृक्ष में सार कुछ नहीं निकलता, ऐसे स्थान में सार कुछ न देखा। हे रामजी! क्रिया, काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप है, जैसे समुद्र में तरंग बुद्बुदे सब जलरूप हैं, ऐसे जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है, इतर कुछ नहीं, जैसे क्षीर समुद्र में तरंग और आवर्त क्षीर से भिन्न कुछ नहीं होते ऐसे तू और मैं जगत् सब ब्रह्म ही है, जब बोध की ओर देखता जाता है तब सब ब्रह्म ही दृष्टि आता है, जब संकल्प की ओर देखता हूँ, तब नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आता है, इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं, कहीं ऐसी सृष्टि देखी जो अधः ही है, कहीं गुण की सृष्टि देखी और कहीं ऐसी सृष्टि देखी जो धर्म अधर्म को

जानते ही नहीं। हे रामजी! एक सौ पचास सृष्टि त्रेता युग की देखी और जो भिन्न भिन्न सृष्टि है और भिन्न भिन्न जगत् उनमें ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ भिन्न देखे जिनको मेरे समान ज्ञान है और मेरे ही समान मूर्ति है, मुझसे उत्तम भी हैं और भी तुम सुनो जो उन एक सौ पचास सृष्टि में उतने वसिष्ठ देखे उन सबके आगे उपदेश लेने के लिये रामजी बैठे हैं और त्रेता युग में अनेक युग और अनेक द्वापर अनेक त्रेता अनेक सत्ययुग देखे, वे सब चेतन आकाश के आश्रय देखे, हे रामजी! हुए बिना सब दृष्टि आते हैं, जैसे मरुस्थल में जल भासता है, जैसे आकाश में अनहोती नीलता भासती है, जैसे जेवरी में अनहोता सर्प भासता है, ऐसे ब्रह्म से अनहोता जगत् भासता है। हे रामजी! मन के फुरने से जगत् भासता है और फुरने के मिटने पर सब ब्रह्म ही भासता है। हे रामजी! अनन्त सृष्टियां मैंने देखीं, जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त त्रसरेणु दृष्टि आते हैं, ऐसे अनन्तसृष्टि देखी, एक चेतन से अनेक चेतन दृष्टि आते, जैसे वृक्ष से फल प्रकट होते हैं, ऐसे संकल्परूप वृक्ष से सृष्टि रूप फ़ल प्रतीत होते हैं, जैसे एक गूलर के वृक्ष में अनन्त मच्छर होते हैं, ऐसे एक आत्मसत्ता के आश्रय अनन्त सृष्टि संकल्प के फुरने से मुझको दृष्टि आई, कहीं महाप्रलय के क्षोभ होते हैं और समुद्र उछलते हैं, उनके तरंग देवलोक को गिराते हैं, कहीं श्याम रूप चन्द्रमा उष्ण दृष्टि आता, कहीं सूर्य शीतल दृष्टि आता, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आती है, जो दिन को अंधा हो जाय और रात को उलूक आदिक की नाईं चेष्टा करे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि रात का और दिन का जहां ज्ञान नहीं और जहां काल का भी ज्ञान नहीं, धर्म अधर्म का ज्ञान भी नहीं, जैसे अपनी इच्छा हो, ऐसे करते हैं, कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि पुण्य करने वाले नरक को जाते हैं और पापकर्ता स्वर्ग को जाते हैं, कहीं ऐसी सृष्टि देखी गयी कि बालू से तेल निकलता है और विषपान करने से अमर होते हैं और अमृत पान से मर जाते हैं। हे रामजी! जैसे जिसका निश्चय होता है, ऐसा ही आगे भासता है, यह जगत् संकल्प मात्र है, जैसी भावना होती है ऐसा आगे होकर भासता है,

कहीं कमल पत्थर से उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं और कहीं वृक्षों में लगे हीरे रत्न दृष्टि आते हैं और आकाश में बड़े प्रकाश से संयुक्त वृक्षों के वन दृष्टि आते हैं, कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि बादल ही उनके वस्त्र हैं, वस्त्रों की नाईं बादलों को पकड़ लें, कहीं सिर के भार खड़े दृष्टि आयें और सब चेष्टाएं भी करें, अन्धे काने लंगड़े बहरे आदि नाना प्रकार की सृष्टि देखी है। हे रामजी! स्वरूप की ओर देखने से सब सृष्टि शून्य रूप हो जाती है और जब संकल्प की ओर देखता हूँ तब नाना प्रकार का जगत् भासे, कहीं ऐसे ही सृष्टि आती कि जो चन्द्रमा सूर्य को जानते ही नहीं, कहीं एक पृथ्वी की सृष्टि देखी, पृथ्वी में अग्नि की सृष्टि देखी, अग्नि में जल की सृष्टि देखी, कहीं पांच भौतिक सृष्टि देखी, जैसे यह विद्यमान है, कहीं काष्ठ की पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी, जैसे यह विद्यमान है, भोजन करती है, कहीं कहीं प्राणों के बिना यंत्री की पुतलियों की तरह चेष्टा करते हैं। हे रामजी! जब ऐसे सृष्टि को देखता देखता महा आकाश में अनंत योजन पर्यन्त चला गया, परन्तु एक आकाश ही दृष्टि आता था, अन्य तत्व को दृष्टि नहीं आता, फिर ऐसी सृष्टि देखी जो खान पान आदि सब चेष्टा करे परन्तु देखी न जा सके और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि मैं और कल्पना भी नहीं, केवल निश्चित पद रहे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी जो उनका मन ही नहीं, कहीं निरहंकार सृष्टि देखी, कहीं ऐसी सृष्टि देखी जो सबमें आत्म भावना करते हैं, कहीं सब अपना आप ही जाने, भेद भावना किसी में नहीं, कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि सब लोक मोक्ष लक्ष्मी से सुशोभित हैं, कहीं ऐसी सृष्टि देखी जो उत्पन्न होकर शीघ्र ही नाश हो जाये, जैसे नख और केश उत्पन्न होते हैं, कहीं ऐसे देखे जो चिरकाल पर्यन्त रहे। हे रामजी! इस प्रकार अनन्त सृष्टियां देखीं, वह कैसी सृष्टियां हैं, जो अनहोती फुरती हैं और संकल्पमात्र हैं, जब संकल्प लय हो जाये तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, चित्त के स्पन्द में सब जगज्जाल देखे, वास्तव से क्या दृष्टि आवे, वह सुनो, मैं ऊर्ध्व गया, अधः (नीचे) गया, दशों दिशाओं में गया परन्तु

मुझे तो चेतन रूप के समुद्र के बुद्बुदे प्रतीत हुए हैं, अन्य कुछ प्रतीत न हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगज्जाल वर्णनं नाम द्विशततमः सर्गः ॥२००॥

एकाधिकद्विशततमः सर्गः २०१

बोधजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ब्रह्म चिदाकाश अपने आप में स्थित है, जैसे जल अपने जलभाव में स्थित है और उसमें जो चैतन्योन्मुख हुआ है, उसको मुनीश्वर चित्ताकाश कहते हैं, उस मन में संकल्प विकल्प फुरने से अनन्त कोटि ब्रह्मांड बन गये हैं, उसको नाम भूताकाश है, जो मन से उत्पन्न हुआ है, इस कारण से इसका नाम भूताकाश है, संकल्प मात्र है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! यह जो कल्प है, ब्रह्मा का दिन और रात्रि, दिन में भूत उत्पन्न होते हैं और रात्रि में प्रलय हो जाते हैं और जब महाप्रलय होता है तब भूत कोई नहीं रहता, सब ब्रह्मसत्ता में लीन हो जाते हैं, सब जीवन्मुक्त हो जाते हैं, सूक्ष्म ब्रह्म ही शेष रहता है, उस सूक्ष्म ब्रह्म से पुनः कैसे उत्पत्ति होती है, कृपा करके कहो। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! महा प्रलय होता तब सब भूत नष्ट हो जाते हैं और ब्रह्म सत्ता शेष रहती है, उसको भी मानता है, तुमने भी कहा, जो पीछे ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, जब तुमने माना कि सबका कारण ब्रह्म शेष रहता है, वह ब्रह्म सत्ता शुद्ध स्वरूप है, आकाश से भी सूक्ष्म है, जो आकाश का एक अणु हो और उसका सहस्र भाग किया जाय, जैसे वह अणु का भाग सूक्ष्म होता है, उससे भी ब्रह्मसत्ता अति सूक्ष्म है। हे रामजी! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति कैसे कहूँ और यदि उत्पत्ति ही नहीं हुई तो उसको प्रलय कैसे हो और यह जगत् जो दृष्टि आता है, ब्रह्म का हृदय है, अपनी स्वभाव सत्ता का नाम हृदय है, यह जगत् ब्रह्म

का शरीर है, जैसे स्वप्न में अपनी संवित ही देशकाल पर्वत आदिकरूप होती है, ऐसे यह जगत् संवित्‌रूप है और अपने स्वरूप से अज्ञान से हुए की नाईं दुःखदायक भासता है, जैसे अपने प्रतिछाया में अज्ञान से भूतकल्पना होती है और भय की प्राप्ति होती है जब विचार कर देखता है तब भय निवृत्त हो जाता है, ऐसे यह जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। हे रामजी! चेतन संवित् ही जगत् आकार होकर भासता है, अन्य कोई वस्तु नहीं, जब सब कुछ वही हुआ तो आदि सबका होना और प्रलय सब उसी के अंग हैं इतर कुछ नहीं, अस्ति नास्ति उदय अस्त आदि जो शब्द हैं सब आकाशरूप हैं, सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है और सर्व शब्द ब्रह्म ही में होते हैं और ब्रह्म सर्व शब्द से रहित भी है, सर्व शब्द से रहित हुआ तो जगत् की उत्पत्ति प्रलय क्यों कर कही जाय, आत्मा अच्छेय अदाह्य और अक्लेद्य अदृश्य है, इन्द्रियों का विषय नहीं, अशब्द पद केवल आत्मा है और परम देव है और जगत् भी अविनाशी है क्योंकि जो उत्पन्न ही नहीं हुआ। हे रामजी! जगत् भी आत्मा से इतर नहीं, आत्मरूप है, यदि आत्मरूप है तो विकार कहां हो? सर्व शब्द और अर्थ का अधिष्ठान आत्मसत्ता है, इसलिये जगत् ब्रह्मरूप है, जैसे अंगोंवाला अपने सारे अंग जानता है ऐसे सर्व जगत् ब्रह्म के अंग हैं और सबको जानता है, वास्तव से सुस्वच्छ आकाशवत् है और देशकाल वस्तु सुख दुःख जन्म मरण साकार निराकार केवल अकेवल नाशी अविनाशी इत्यादिक सर्व शब्द और अर्थ सब ब्रह्म ही के नाम हैं, जैसे अवयव अवयवी पुरुष के हैं, जो पसारे तो भी अपना स्वरूप हैं, यदि संकुचित करे तो भी अपने अवयव हैं, ऐसे उत्पत्ति प्रलय सब ब्रह्म ही के अवयव हैं, इतर कुछ नहीं परन्तु इतर की नाईं जगत् हुआ प्रतीत होता है, जैसे सूर्य किरणों में जल कोई हुआ नहीं, परन्तु हुए की नाईं दृष्टि आता है किरणें ही जल होकर भासती हैं, ऐसा आत्मा जगत् आकार होकर भासता है, वह आत्मरूप ही है, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्ष है, उसमें जो संवित् फुरना हुआ है, वह दृढ़मूल है और चित्त तथा शरीररूप उसके स्तम्भ हैं और

लोकपाल उसके दास हैं, जगत् उसकी शाखाएं हैं फल उसका प्रकाश है, जिससे जगत् प्रकाशित होता है और अन्धकार उस वृक्ष में श्यामता है और वृक्ष में जो पोल होती है वह आकाश है, फूलों के गुच्छे प्रलयरूप हैं और गुच्छों के हिलानेवाले जो भ्रमर होते हैं, वह विष्णु रुद्रादिक हैं और जड़ता उसकी त्वचा है। इस प्रकार समसत्य आत्मब्रह्म है, ब्रह्मत्व भाव से भी नहीं, कुछ नहीं, सर्वदा अपने स्वभाव में स्थित है। हे रामजी! जगत् का भाव अभाव उत्पत्ति प्रलयादिक सर्व स्वभाव अनुभवरूप ब्रह्म स्थित है और विकार उसमें कोई नहीं, केवल शुद्ध निरंजन आत्म प्रकाश निर्मल है, जैसे चन्द्रमा के मण्डल में विष की वल्ली नहीं होती, ऐसे ही आत्मा में कोई विकार नहीं, निर्मल आकाशरूप है और आदि मध्यान्तर की कलना से रहित है तो लोकपाल भ्रम कैसे हो और जितने कुछ विकार प्रतीत होते हैं, वे आत्मा के अज्ञान से प्रतीत होते हैं, जब तू एकाग्रचित्त होकर विचार करके देखेगा तब जगद्भ्रम नष्ट हो जायेगा, यह जगद्भ्रम फुरणे से प्रतीत होता है, जब स्फुरण (फुरणा) उलटकर आत्मा की ओर आयेगा, तब जगद्भ्रम मिट जायेगा, जैसे पवन से दीपक जगता है और पवन ही से लीन हो जाता है, ऐसे चित्त के फुरणे से जगत् भासता है और चित्त का फुरणा जब अन्तर्मुख होता है, तब जगद्भ्रम मिट जाता है। हे रामजी! जब ज्ञान नेत्र से देखेगा तब अज्ञान रूप फुरणे का त्रिकाल अभाव हो जायेगा, बन्ध मुक्ति आत्मा में कोई न भासेगी, इसमें कुछ संशय नहीं, यह जगज्जाल जो प्रतीत होता है वह आत्मा में उत्पन्न नहीं हुआ, अज्ञान से प्रतीत होता है जब विचार करके देखेगा तब अष्ट सिद्धि युक्त ऐश्वर्य तृणवत् प्रतीत होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे बोधजगदेकताप्रतिपादनं नाम एकाधिकद्विशततमः सर्गः ।।२०१।।

त्र्यधिकशततमः सर्गः २०२

जगदेकताप्रतिपादनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! यह जगज्जाल जो कि तुमने देखा है, चिद्रूप होकर एक स्थान पर बैठकर देखा अथवा सृष्टि में जाकर देखा? कहिये? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मैं अनन्त आत्मा हूँ, सर्व शक्ति सर्व व्यापी चिदाकाश हूँ, मुझमें आना जाना कैसे संगत हो सके, न एक स्थान में बैठकर देखा है, न सृष्टि में जाकर देखा है, हे रामजी! मैं चिदाकाश हूँ, चिदाकाश में देखा है। हे रामजी! जैसे तुम अपने अंगों को शिखा से लेकर नख पर्यन्त देखते हो, ऐसे ही मैं ज्ञान दृष्टि से अपने आप में ही जगत् को देखता हूँ, कैसे जगत् को देखता हूँ, जो कि निराकार निरवयव आकाशरूप निर्मल है और जो फुरणे के प्रभाव से देखा है वह सावयव दृष्टि आया है, वास्तव में कुछ नहीं, केवल आकाश रूप है, जैसे स्वप्न में दृष्टि का अनुभव हो परन्तु संवित् रूप है, अन्य कुछ नहीं, जैसे वृक्ष के पत्र टास, फूल, फल सब अपने अंग होते हैं, ऐसे ज्ञान नेत्र से जगत् को मैंने देखा है। हे रामजी! जैसे समुद्र सब तरंग फेन बुद्बुदे और जल तरंग को अपने आप ही में देखता है, ऐसे मैं अपने आप में जगत् को देखता हूँ और अब भी मैं इस देह में स्थित हुआ पर्वत पर सृष्टियां ज्ञान दृष्टि से देखता हूँ, जैसे कुटी के अन्दर बाहिर आकाश एक रूप है, ऐसे मुझको आगे भी और अब भी जगत् आकाश रूप अपने आप में भासता है, जैसे जल अपने रस को जानता है, जैसे बरफ अपनी शीतलता को जानती है, जैसे वायु अपनी स्पन्दता को जानता है, ऐसे मैं ज्ञानद्वारा सृष्टि अपने में देखता हूँ। जिस ज्ञानवान् पुरुष को शुद्ध बुद्ध में एकता हुई है वह ऐसा देखता है कि सर्वात्मा आकाशवत् अपना आप है, जिसको आत्मस्थिति हुई है, वही यथार्थ दर्शी है, जैसे देवता अपने स्थान में बैठे हुए दिव्य नेत्र से कोटि योजन पर्यन्त अपने अपने विद्यमान देखते हैं, ऐसे जगत् को मैं सर्वात्म होकर देख चुका हूँ, जैसे पृथ्वी में निधि होती है और औषधि रस

रहित पदार्थ होते हैं, वह पृथ्वी अपने में ही देखती है, ऐसे मैं जगत् को अपने में ही देखता हूँ। रामजी बोले–हे भगवन्! वह जो कमलनयनी आर्या छन्द का पाठ करने वाली कान्ता थी उसने फिर क्या किया, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आकाश वपु धारण करके मेरे पास आकर खड़ी हो गयी, जैसे भवानी आकाश में आकर स्थित हो, ऐसे आकर स्थित हो गयी, जैसे मैं आकाश वपु था, ऐसे ही उसको मैंने आकाश वपु देखा, आकाश में प्रथम इस कारण से मैंने देखा कि मेरा आधिभौतिक शरीर था, जब चित्तपद होकर मैं स्थित हुआ, तब कांता को देखा, मैं आकाशरूप हूँ और वह सुन्दरी भी आकाश रूप है और जगज्जाल जो देखा वह भी आकाश रूप है, श्री रामजी बोले–हे भगवन्! तुम भी आकाश रूप थे और वह भी आकाश रूप थी और वचन विलास तब होता है जब शरीर होता है और उसमें बोलने का स्थान कंठ तालु नासिका दन्त ओष्ठ आदिक होते हैं और प्राण अन्दर प्रेरक होते हैं, तब अक्षर का उच्चारण होता है, तुम तो दोनों निराकार थे, तुम्हारा देखना, बोलना किस प्रकार हुआ और बोलना अवलोकनरूप मनस्कार से होता है, रूप कहते हैं दृश्य को, अवलोकन, इन्द्रिय, मनस्कार, मन का फुरणा, इन तीनों बिना तुम्हारा बोलना कैसे हुआ, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे स्वप्न में रूप अवलोकन और मनस्कार तथा शब्द पाठ परस्पर वचन होते हैं, वे आकाशरूप होते हैं, ऐसे हमारा देखना, बोलना, परस्पर संवाद हुआ, जैसे स्वप्न में देखते हैं, रूप अवलोकन, मनस्कार, आकाश रूप होते हैंऔर प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे हमारा देखना और बोलना हुआ, यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता, कि देखना, बोलना कैसे हुआ और जैसे आकाश में मैंने सृष्टि देखी है, ऐसे यह सृष्टि भी है, जैसे उनके शरीर थे, ऐसे हमारा शरीर है, जैसे यह जगत् है वैसे वह जगत् है। हे रामजी! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु नहीं प्रतीत होती और जो असत् वस्तु है वह भासती है, जैसे स्वप्न में पृथ्वी, पर्वत, समुद्र और जगत् व्यवहार में है नहीं, वह प्रत्यक्ष भासता है और सद्वस्तु अनुभवरूप नहीं

भासती, ऐसे हम तुम जगत् सब आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्न में युद्ध होते प्रतीत होते हैं, आना जाना भासता है, वह सब आकाशरूप है और हुआ कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् भी है। हे रामजी! स्वप्न सृष्टि मिथ्या है, बनी कुछ नहीं और कुछ है वह अनुभवरूप है, इतर कुछ नहीं और तुम कहो कि स्वप्न क्या है और कैसे होते हैं। तो सुनो! आदि परमात्मतत्त्व में स्वप्न वचन हुआ है, वह विराट् आत्मा है, उससे यह जीव हुए हैं, वे आकाशरूप हैं, क्योंकि विराट् आकाशरूप हैं, यह सब आकाशरूप हैं और स्वप्न दृष्टान्त भी मैंने तेरे बोध के लिये कहा है, क्योंकि स्वप्न भी कुछ हुआ नहीं, केवल आत्ममात्र है, ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है, हे रामजी! वह कान्ता मैंने देखी, तब उससे पूछा क्योंकि जो संकल्प मेरा और उसका एक हुआ, जैसे स्वप्न में स्वप्न जिनका होता हैं, ऐसे हमारा हुआ। हे रामजी! जैसे स्वप्न दृष्टि आकाशरूप होती है, ऐसे हम तुम सब जगत् आकाशरूप हैं, कुछ हुआ नहीं, स्वप्न जगत् और जाग्रत जगत् एक रूप हैं, परन्तु जाग्रत दीर्घ काल का स्वप्न है, इसलिये इसमें दृढ़ व्यवहार उत्पन्न प्रलय होते भासते हैं। हे रामजी! स्वप्न में भोग होते हैं, वे भ्रान्ति मात्र हैं, निर्मल आकाशरूप आत्मा से इतर कुछ बना नहीं, ऐसे यह दृश्य और द्रष्टा स्वप्न की नाईं अनहोते भासते हैं, जो हम तुम आदिक दृश्य को मनरूप द्रष्टा सत्य मानता है, दोनों अज्ञान से भ्रम मात्र उदय हुए हैं और जो शुद्ध द्रष्टा है वह दृश्य से रहित है और जैसे द्रष्टा आकाशरूप है, ऐसे दृश्य भी आकाशरूप है, जैसे स्वप्न सृष्टि अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐंसे यह जाग्रत भी अनुभवरूप है। हे रामजी! चिदाकाश जो अनन्त आत्मा है, वह इस जगत् का कारण कैसे हो? जैसे स्वप्न सृष्टि का कारण कोई नहीं, ऐसे ही इस जाग्रत का कारण भी कोई नहीं, क्योंकि जो हुआ कुछ नहीं और जो कुछ हैं, वह अनुभवरूप है, इसलिये यह जगत् अकारण है। हे रामजी! यह जीव साकाररूप है और इसको स्वप्न की सृष्टि नाना प्रकार की होती है, वह भी आकाशरूप है, कुछ आकार नहीं और जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है, उसमें आदि आभासरूप जगत् फुरा है, वह

आकाशरूप क्यों न हो, साकार क्या और निराकार क्या, यह सुनो, एक चित्त है एक चैत्य है, चित्त नाम है शुद्ध चिन्मात्र का और चैत्य नाम है दृश्य फुरने का और जिस चित्त को दृश्य का सम्बन्ध है, उसका नाम जीव है, जिस चित्त का अज्ञान से द्वैत का सम्बन्ध है और अनात्म में आत्माभिमान है, ऐसा जो जीव है, वह साकार रूप है, उसके स्वप्न की सृष्टि आकाशरूप है, वह अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ता है, उसका स्वप्न अभासरूप जगत् आकाशरूप क्यों न हो, हे रामजी! यह जगत् निरुपादान है अर्थात् बना कुछ नहीं, चिदाकाश निराकाररूप है, जैसे स्वप्न में जगत् अकृत्रिम होता है, ऐसे यह जगत् है, न इसका कोई निमित्त कारण है न समवायि कारण है, आत्मा अच्युत और अद्वैत है, वह दृश्य का कारण कैसे कहा जाय। हे रामजी! न कोई कर्ता है, न भोक्ता है, न कोई जगत् है और नहीं यह भी कहना नहीं बनता, ऐसा जो ज्ञानवान् है वह पाषाणवत् मौन स्थित होता है और जब प्रकृत आचार आन पड़ता है तब उसको भी करता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जगदेकताप्रतिपादनं नाम द्व्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२०२॥

त्र्यधिकद्विशततमः सर्गः २०३

विद्याधरीविशोकवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! वह जो तुम्हारे पासा आकाशरूप कान्ता आयी थी, वह अनेक क, च, ट, त, प आदि अक्षर शरीर के बिना कैसे बोली और यदि तुम स्वप्न की नाईं कहो तब स्वप्न में केवल आकाश होता है, वहां य र ल व कैसे बोल सकता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! स्वप्न में जो शरीर होता है वह आकाश रूप है, उसमें क च ट त प आदि अक्षरों का व्यवहार कैसे हो सकता है, जैसे मरा हुआ नहीं बोल सकता ऐसे आकाशरूप आत्मा में शब्द कदाचित् नहीं हुआ, यदि तुम कहो कि

स्वप्न में जो य र ल व आदिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं, यह वही हैं, इसका उत्तर यह है कि यदि कुछ शब्द वहां सद्रूप हुए होते तो पास में बैठे हुओं को भी सुनायी पड़ते, परन्तु निकट में बैठे हुओं को कुछ सुनाई नहीं पड़ा तो मैं कहता हूँकि वे आकाश रूप हैं अर्थात् शून्य कुछ हुआ ही नहीं और जो कुछ हुआ प्रतीत होता है, भ्रान्ति मात्र है, केवल चिन्मात्र आकाश का किंचन है, आकाश में आकाश ही स्थित है, ऐसे ही यह जगत् भी कुछ हुआ नहीं, हे रामजी! जैसे चन्द्रमा में श्यामता है और आकाश में वृक्ष होता है और जैसा पत्थर में पुतलियाँ नृत्य करती प्रतीत हों, वे मिथ्या हैं, ऐसे इस जगत् का होना मिथ्या है, हे रामजी! स्वप्न में जो जगत् भासता है, वह चिंदाकाश का किंचन है, वह किंचन भी आकाशरूप है, इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न का जगत् आकाश रूप है, ऐसे यह जगत् भी आकाशरूप हैं, जैसे यह जगत् है वैसे वे जगत् थे और यह जो आकाश है, आत्माकाश में अनाकाश है, जैसे स्वप्न दृष्टि भ्रम से प्रवृत्त हुई भासती है, ऐसे जगत् भी भ्रम से प्रत्यक्ष भासता है। रामजी बोले–हे भगवन्! यदि वह जगत् स्वप्न है, तो जाग्रत क्यों भासता है और यदि असत् है तो सत् की नाईं क्यों भासता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! एक मृदु संवेग है, एक मध्य संवेग है, एक तीव्र संवेग है, संवेग संकल्प के परिणाम को कहते हैं, वह तीन प्रकार का है, जैसे कोई पुरुष अपने स्थान में बैठा हुआ मनोराज्य से किसी व्यवहार की रचना करता है वह उसको जानता है, कि संकल्प मात्र है और जैसे नटस्वांग धारण करता है, तब वह जानता है कि मेरा स्वांग है और न मेरा यह स्वांग सत्य है, अपने स्वरूप को सत् जानता है, इसका नाम मृदु संवेग है, क्योंकि जो अपना स्वरूप नहीं भाला और मध्य संवेग यह है , जैसे कि किसी पुरुष को स्वप्न आता है, उसमें स्वप्न सृष्टि भासती है और एक शरीर अपना प्रतीत होता है, तब अपने शरीर को सत् जानता है और जगत् को भी सत् जानता है, क्योंकि जो स्वरूप का प्रमाद है, स्वप्न काल में सृष्टि को सत् जानता है और जगने पर उसको असत्य जानता है, उसका नाम मध्य संवेग है, क्योंकि जो सोया हुआ

शीघ्र ही जग उठता है और जो सोया और जगे नहीं, उसका नाम तीव्र संवेग है, हे रामजी! आदि संकल्प स्वप्न विषय रूप भासते हैं, उसमें नाना प्रकार की सृष्टि होकर स्थित है, जिनको आदि स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ, उनको यह जगत् मृदु संवेग है, क्योंकि वे अपनी लीला मात्र असत्य जानते हैं और जिनको आदि स्वरूप का प्रमाद हुआ है और फिर शीघ्र ही स्वरूप में जग जाते हैं, तब उनको यह जगत् असत्य भासता है, उनकी इस जगत् में सत्य प्रतीति नहीं होती, और जिनको प्रमाद हुआ है, फिर जगे नहीं, उनको यह जगत् सत् हो भासता है, क्योंकि जो चित्त की वृत्ति का प्रमाण तीव्र हो गया है, इसलिये अज्ञानी को यह स्वप्न जगत् रूप जाग्रत हो भासता है, जैसे स्वप्नकाल में स्वप्न की सृष्टि सत्य प्रतीत होती है। हे रामजी! चित्त के फुरणे का नाम जगत् है, जब चित्त बर्हिमुख होता है, तब जगत् हो भासता है और स्वरूप का अज्ञान होता है, जब अज्ञान हुआ तब जगद्भ्रम दृढ़ होता जाता है, इसलिये इस जगत् का कारण अज्ञान है। हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान होगा तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जायेगा, वह आत्मा अपना आप है, इसलिये आत्मपद में स्थिति प्राप्त करो, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जायेगा। हे रामजी! अज्ञान से इस जगत् की सत्य प्रतीति होती है, उसमें जैसी जैसी भावना होती है, ऐसे ही जगत् हो भासता है। हे रामजी! जिस प्रकार जगद्भ्रम सत्य प्रतीत होता है वह सुनो। अज्ञानी जीव जब मर जाता है तब मुक्त नहीं होता, अज्ञान के वश से जड़ पत्थरवत् होता है। हे रामजी! जब मृत्यु होता है तब आकाश रूप चित्त में ही जगत् फुर आता है और अपनी वासना के अनुसार नाना प्रकार का जगत् प्रतीत होता है और नाना प्रकार की व्यवहार रचनाएं क्रिया सहित होकर प्रतीत होती हैं और कल्प पर्यन्त सब क्रियाएं जीव की अन्तवाहक होती हैं, जैसे हमारी हैं। हे रामजी! तुम देखो वह जगत् क्या रूप है, किसी कारण से तो नहीं उत्पन्न हुआ, जैसे वह जगत् कलना मात्र सत् हो भासता है, ऐसे यह जगत् भी जानो, हे रामजी! तुम्हें यह जो स्वप्न आता

है, उसमें जो पुरुष पद अर्थ है, वह भी सत् है, क्योंकि ब्रह्मसत्ता सर्वात्मरूप है। हे रामजी! प्रबोध हो जाने पर भी स्वप्न के पदार्थ विद्यमान प्रतीत होते हैं, इसी से कहा है, स्वप्न संकल्प ब्रह्म और जाग्रत तुल्य हैं, जैसे आगे उदाहरण कहा है, शुक्र का और इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र का, लवण और गाधिका, इनको मनोराज्य प्राप्त भ्रम प्रत्यक्ष हुआ है, आगे कहेंगे, दीर्घ तपा को स्वप्न प्रत्यक्ष हुआ है, इसी से कहा है कि सब तुल्य हैं और जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, क्योंकि संकल्प अपना अपना है, सृष्टि भिन्न भिन्न है और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, आत्मरूप आदर्श में सर्व सृष्टि प्रतिबिंबित होती है, सर्व सृष्टि आत्मा का अनुभव है, जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है और उस वृक्ष से अन्य वृक्ष होते हैं, विचार कर देखो कि बीज तो एक था और सब वृक्ष आदि बीज से उत्पन्न होते हैं, ऐसे एक आत्मा से अनेक सृष्टियां प्रकाशित होती हैं, परन्तु स्वरूप से इतर कुछ नहीं, जैसे एक पुरुष सोया है, उसको स्वप्न की सृष्टि प्रतीत होती है, फिर स्वप्न में जो बहुत जीव प्रतीत होते हैं, उनको भी अपने अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है। हे रामजी! जिससे आदि स्वप्न सृष्टि भासती है, वह पुरुष एक ही है, उस एक ही में अनन्त सृष्टि चित्त के फुरने से होती है, ऐसे आत्मसत्ता के आश्रय अनन्त सृष्टियां फुरती हैं, परन्तु स्वरूप से कुछ हुआ नहीं, सब आकाशरूप हैं और जीवों को अपनी सृष्टि अपने अज्ञान से भासती हैं। हे रामजी! जीव को अन्य की सृष्टि का ज्ञान नहीं होता, अपनी ही सृष्टि को जानते हैं, क्योंकि संकल्प भिन्न भिन्न हैं, एक के लिये हम स्वप्न के नर हैं और एक हमारे लिये स्वप्न नर हैं, वह अपर सृष्टि में सोये हैं और हमारी सृष्टि उनको स्वप्न में भासती है, उनके लिये हम स्वप्न के नर हैं और जो हमारी सृष्टि में सोये हैं, उनको स्वप्न में अन्य सृष्टि भास आयी है, वे हमारे स्वप्न नर हैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मतत्व के आश्रय अनन्त सृष्टियां भासती हैं और सृष्टि को सत् जानकर जीव विचरते हैं, वह मोक्ष मार्ग से शून्य हैं, जैसे यह पुरुष शयन करता है, उसका स्वप्न में परिणाम हुआ,

उसमें जो जीव हुए उनको फिर स्वप्न हुआ तब अपनी अपनी सृष्टि उनको भासती है, फिर उनको अपनी सृष्टि भास आयी अनन्त सृष्टि अनुभव के आश्रित होती है, ऐसे एक आत्मा के आश्रय असंख्य सृष्टियां फुरती हैं, वह सृष्टियां कैसी हैं, कई समान हैं, कई अर्धसमान हैं, कई विलक्षण भासती हैं, अपनी अपनी सृष्टि को जीव जानते हैं, जैसे एक मंदिर में दस पुरुष सोये हैं उनको अपना अपना स्वप्न आया, तब इसकी सृष्टि को वह नहीं जानता, उसकी सृष्टि को यह नहीं जानता, ऐसे यह सृष्टि भी अपर का ज्ञान है क्योंकि संकल्प अपना अपना है, जैसे पत्थर को पत्थर नहीं जानता और जो अन्तवाहक के शरीर योगीश्वर है, उनको सृष्टि का ज्ञान होता है। हे रामजी! वास्तव से सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है, ऐसे आत्मा में सृष्टि है, जैसे जेवरी में सर्प भासता है, ऐसे आत्मा में सृष्टि भासती है। हे रामजी! वास्तव से हुआ कुछ नहीं, सर्वदा काल सर्व प्रकार आत्मा ही अपने आप में स्थित है, जिनको आत्मा का प्रमाद हुआ, उनको जगत् भासता है, वास्तव में जगत् किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ, आभास रूप है, सम्यक् ज्ञान होने से ब्रह्म अद्वैत भासता है और असम्यक् ज्ञान से द्वैतरूप जगत् हो भासता है, जैसे जेवरी के सम्यक् ज्ञान से जेवरी ही भासती है और असम्यक् ज्ञान से सर्प भासता है, ऐसे आत्मा के असम्यक् ज्ञान से जगद्भान होता है। हे रामजी! मैंने उस देवी से प्रश्न किया कि हे देवी! तू कहां से आयी है, तेरा स्थान कौनसा है और तू कौन है, यहां किसलिये आयी है, देवी ने कहा–हे मुनीश्वर! ब्रह्मस्वरूप महाकाश का जो अणु है, फिर उस अणु का भी जो अणु है, उसको जो छिद्र है, उस छिद्र में भी जो छिद्र है, उसमें जो तुम रहते हो, तुम्हारा यह जगत् भी उसी में है, तुम्हारी सृष्टि का जो ब्रह्मा है, उसकी संवेदनरूप कन्या है, उसने यह जगत् रचा है, उस तुम्हारे जगत् में पृथ्वी है, उसके ऊपर समुद्र हैं, उनसे पृथ्वी आच्छादित है, उससे परवर्ती एक और दुगुना द्वीप है, उस द्वीप के आगे दुगुना समुद्र है, इस प्रकार पृथ्वी को लांघ

जाता है, तब आगे स्वर्ण की पृथ्वी आती है, वह दशसहस्र योजन पर्यन्त महासुन्दर प्रकाशरूप है, उसने सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश को भी लज्जित किया है, उससे दूर अपर लोकालोक पर्वत है, वह सर्वत्र प्रसिद्ध है, उसमें बहुत नगर बसते हैं और कहीं ऐसे स्थान हैं, जहां सर्वदा प्रकाश ही रहता है, जैसे ज्ञानी के हृदय में सदा प्रकाश रहता है और कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सर्वदा अन्धकार ही रहता है, जैसे अज्ञानी के हृदय में अन्धकार रहता है, कहीं ऐसे स्थान हैं जहां प्रत्यक्ष पदार्थ पाये जाते हैं, जैसे पंडित के हृदय में अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं, कहीं ऐसे स्थान है, जिनमें सदा दुःख ही रहता है, जैसे अज्ञानी की संगति में सदा दुःख रहता है, कहीं ऐसे स्थान है, जहां सूर्य उदय नहीं होता, कहीं सूर्य चन्द्रमा दोनों उदय होते हैं, कहीं पशु रहते हैं, कहीं मनुष्य ही रहते हैं, कहीं दैत्य ही रहते हैं, कहीं देवता ही रहते हैं, कहीं जाट कृषीवल ही रहते हैं, कहीं धर्म का व्यवहार होता है, कहीं विद्याधर रहते हैं, कहीं उन्मत्त हस्ती रहते हैं, कहीं बड़े नन्दनवन हैं, कहीं ऐसे स्थान हैं जहां शास्त्रों का विचार नहीं, कहीं शास्त्रों के विचारवान् रहते हैं, कहीं राज्य करते हैं, कहीं बड़ी बस्तियां है, कहीं उजाड़ वन हैं, कहीं पवन चलता है, कहीं बड़े खात तथा छिद्र हैं, कही ऊर्ध्व शिखर हैं, वहां विद्याधर देवता रहते हैं, कहीं यक्ष राक्षस रहते हैं, कहीं महामत्त विद्याधरी देवियां रहती हैं, इस प्रकार अनन्त देश स्थान की बस्तियां हैं, उस लोकालोक के शिखर पर शतयोजन का तालाब है, उसमें कमल खिले हैं और सब कल्पवृक्ष हैं, सब पत्थर चिन्तामणि हैं, वहां उत्तर दिशा में एक स्वर्ण की शिला पड़ी है, उसके शिखर पर ब्रह्मा विष्णु रुद्र आकर बैठते हैं और विलास करते हैं। उसके ऊपर शिला है, उस पर मैं रहती हूँ और मेरा भर्ता भी रहता है, संपूर्ण परिवार भी वहां रहता है। हे मुनीश्वर! उसमें एक ब्राह्मण रहता है, वह वृद्ध अब तक जीता है, वह ब्राह्मण एकान्त में जाकर बैठा है और सदा वेदाध्ययन करता रहता है, उसने अपने विवाह के लिये मुझको अपने मन से उत्पन्न किया है और अब मैं भी बड़ी हुई हूँ, जैसे वसंत ऋतु की मंजरी

होती है, अब विवाह नहीं करता जब का उत्पन्न हुआ है तब से ब्रह्मचारी है, वेदाध्ययन करता है और विरक्त चित्त है, हे मुनीश्वर! उस ब्राह्मण ने मुझको विवाह के लिये पैदा किया है और मैं वस्त्र भूषण युक्त उत्पन्न हुई हूँ और चन्द्रमा की नाईं सुन्दर हूँ, सब अंग मेरे सुन्दर हैं, सब जीवों को मोहित करने वाली हूँ, मुझको देखकर कामदेव भी मूर्छित हो जाता है और फूलों के समान मेरा हास्य है मुझमें सब गुण हैं, मैं महालक्ष्मी की सहेली हूँ, मेरा त्याग करके ब्राह्मण एकान्त में जा बैठा है और सदा वेदाध्ययन करता है और बड़ा दीर्घसूत्री है, जब मैं उत्पन्न हुई थी तब मुझे कहता था मैं तेरे साथ विवाह करूंगा, अब मैं यौवन अवस्था को प्राप्त हुई हूँ, तो त्यागकर एकान्त में जा बैठा है। हे मुनीश्वर! स्त्री को सदा भर्ता चाहता है, अब मैं यौवन अवस्था से पड़ी जलती हूँ, यह जो कमलों से भरे बड़े तालाब दृष्टि पड़ते हैं भर्ता के वियोग से मुझे अंगारे प्रतीत होते हैं, नन्दनवन आदि बाग मुझे मरुस्थल के समान भासते हैं, इनको देखकर मैं रोती हूँ, नेत्रों से जल चलता है, जैसे वर्षाकाल में मेघ बरसता है, ऐसा मेरे नेत्रों से जल निकलता है, जब मैं सुख आदि अपने अंगों को देखती हूँ, तब नेत्र जल में कामिनी डूब जाती है अर्थात् मुखरूप कमल, नेत्रकमल सब शोभाहीन हो जाते हैं और जब कल्पतरू तमाल वृक्ष के फूल पत्र शय्या पर बिछाकर शयन करती हूँ, तब फूलों के स्पर्श से अंग जलते हैं, जिस कमल के साथ मेरा स्पर्श होता है वह जल जाता है, हे भगवन्! भर्ता के वियोग से मैं तपी हुई हूँ, जब बर्फ के पर्वत पर जा बैठती हूँ, तब वह भी अग्निरूप हो जाता है और मैं नाना प्रकार के फूल गले में डालती हूँ, तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती और मैं सुन्दरी हूँ, भर्ता को सुख देनेवाली हूँ और मेरे भर्ता का देह त्रिलोकी है, उसके चरणों में सदा मेरी प्रीति रहती है और मैं गृह के सब कार्य करती हूँ, सर्व गुण सम्पन्न हूँ, सबको धारण कर रही हूँ, सबकी प्रतिपालक हूँ और ज्ञेय की सदा मुझको इच्छा रहती है। हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रता हूँ, जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ गृहस्थ करता है वह बहुत सुख पाता है तीनों

तापों से छूट जाता है, इसलिये मुझमें सब गुण हैं, पतिव्रता पति में सदा प्रीति करती है, भर्ता की प्रीति को अपने लिये चाहती है, ऐसी मुझ पतिव्रता को त्यागकर ब्राह्मण एकान्त में जा बैठा है और सर्वदाकाल वेद का अध्ययन और विचार करता रहता है, उसने सर्व कामनाओं का त्याग किया है, उसको कोई इच्छा नहीं रही। मैं उसके वियोग अनल में जलती हूँ। हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है, जिसका भर्ता विवाह करके मर गया हो और जिसको भर्ता मिला ही न हो, वह भी भली है, जो सदा कुमारी है, जो भर्ता के संयोग से प्रथम ही मर जाती है, वह भी श्रेष्ठ है, परन्तु जिसको भर्ता प्राप्त हुआ है, परन्तु स्पर्श नहीं करता, तब उसको बड़ा दुःख होता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्मा की भावना के संस्कार से रहित उत्पन्न हुआ है, वह निष्फल है, जैसे पात्र बिना अन्न निष्फल होता है, अर्थात् यह जो संत जन तीर्थ आदिक से रहित पाप स्थानों में लगा हुआ धन निष्फल होता है, जैसे सम दृष्टि बिना बोध निष्फल होता है, जैसे वेश्या की लज्जा निष्फल है, ऐसे मैं पति बिना निष्फल हूँ। हे भगवन्! जब शय्या बिछाकर शयन करती हूँ, तब फूल भी जल जाते हैं, जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाती है, ऐसे कमलों को मेरे अंग जलाते हैं। हे मुनीश्वर! जो सुख के स्थान हैं वे मुझे दुःखदायक प्रतीत होते हैं और जो मध्य स्थान हैं, न सुख देते हैं न दुःख देते हैं और जो सुख के स्थान हैं वे भर्ता के वियोग से दुःख की नाईं हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विद्याधरीविशोकवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२०३॥

चतुरधिकद्विशततमः सर्गः २०४

विद्याधरीवेगवर्णनम् ।

विद्याधरी बोली—हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं तप करती फिरती हूँ, अब मुझको भी भर्ता के वियोग से वैराग्य उत्पन्न हुआ है। भर्ता का

वैराग्य करके मेरी तृष्णा कमलिनी पर पड़ा है, उससे जल गयी हूँ, इसलिये जगत् मुझे फीका प्रतीत होता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं, इस कारण से मुझको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और मेरा भर्ता जो स्वभूत है वह संसार से विरक्त होकर एकान्त में जा बैठा है ब्रह्मविद्या के ही विचार में लगा रहता है, परन्तु अभी तक आत्मपद को प्राप्त नहीं हुआ, मन के स्थिर करने का उपाय करने में लगा है, अब तक मन स्थिर नहीं हुआ, सर्व ईषणा से रहित होकर शास्त्र को विचारता है, परन्तु आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ और मुझको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ है, अब दोनों वैराग्य से सम्पन्न हुए हैं और मुझे परम पद पाने की इच्छा हुई है और शरीर हमको विरस हो गया है, जैसे शरत्काल की वल्ली विरस होती है, इस कारण से मैं योग को धारण करने लगी हूँ यह शक्ति मुझमें उत्पन्न हुई है, आकाश मार्ग से आती जाती हूँ, योग धारणा से आकाश में उड़ने की शक्ति उत्पन्न हुई है, सिद्ध मार्ग की धारणा से सिद्धों के मार्ग से भी आती जाती हूँ परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ, प्राप्त करने योग्य आत्मपद प्राप्त नहीं हुआ, जिसके पाने से दुःख कोई न रहे अब मुझको निर्वाण की इच्छा हुई है, सिद्धों के गण भी मैंने देखे हैं, परन्तु जहाँ जाऊं वहां तुम्हारी स्तुति सुनती थी, कि वसिष्ठ मुनि ऐसे हैं जो वचन द्वारा बल से अज्ञान को निवृत्त करते हैं, जैसे बड़ा मेघ बरसता है परन्तु जब वायु चलता है, तब मेघ को दूर कर देता है, ऐसे तुम्हारे वचन अज्ञान को दूर करते हैं, जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी, तब मैंने इस सृष्टि में आने का अभ्यास किया, तब धारणा के अभ्यास से तुम्हारी सृष्टि में आयी हूँ, इसलिये हे मुनीश्वर! मुझको और मेरे भर्ता को शान्ति के लिये आत्मज्ञान का उपदेश करो, मेरा भर्ता जो कि मन स्थिर करने का यत्न कर रहा है, उसको ऐसा उपदेश करो कि शीघ्र ही स्थिर हो जाय और आत्मपद को प्राप्त कर सके और मुझे भी आत्मज्ञान का उपदेश कीजिये। हे भगवन्! मुझे आप माया से पर दृष्टि आते हो। इस कारण से मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ, स्त्री बुद्धि से मैं इससे

पहिले तुम्हारी शरण नहीं आयी, अब शिष्य भाव से शरण में आयी हूँ, मेरा मोह मिटाइये, मैं जानती हूँ कि मेरा अर्थ सिद्ध हो रहा है, क्योकि जो कोई महापुरुष की शरण में आता है वह कभी निष्फल नहीं जाता, उसका सब अर्थ सम्पूर्ण होता है, जिसका जो अभिलषित होता है महापुरुष सिद्ध कर देते हैं, जैसे कल्पवृक्ष के निकट कोई जाता है, उसका मनोरथ पूर्ण होता है, ऐसे ही मेरा कार्य सिद्ध हो जायेगा, कृपा करके मुझे आत्मज्ञान का उपदेश करो। हे मुनिवर! तुम दया के समुद्र हो, सबके मनोरथ पूर्ण करने में समर्थ हो और सुहृद निष्कारण उपकार कर्ता हो, प्रत्युपकार की इच्छा न रखकर उपकार करते हो, इसलिये मैं अनाथ शरण में आयी हूँ। मुझे आत्मपद की प्राप्ति कराओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विद्याधरीवेगवर्णनं
नाम चतुरधिकद्विशततमः सर्गः ॥२०४॥

पञ्चाधिकद्विशततमः सर्गः २०५

विद्याधर्यभ्यासवर्णनम्।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब इस प्रकार विद्याधरी ने कहा—उस समय आकाश में मैंने संकल्प का आसन रचा और उस पर बैठा और एक दूसरे आसन की कल्पना की, उस पर आधारभूत को जिसके आसन की कल्पना थी, उसको बैठाया, क्योंकि जो हमारा शुद्ध संकल्प है जो कुछ चिन्तन करें वह हो जाता है, तब मैंने कहा—हे देवि! तू कैसे कहती है कि गिटी में हमारी सृष्टि है, गिटी में तुम्हारी सृष्टि कैसे बसती है, कहो। विद्याधरी बोली—हे भगवन्! तुम्हारी सृष्टि में जो लोकालोक पर्वत है वह प्रसिद्ध है, उसके उत्तर दिशा शिखर पर शिला है, उस स्वर्ण की गिटी में हमारी सृष्टि है, जैसे तुम्हारी सृष्टि है, ऐसे उस गिटी में सृष्टि वसती है, उस सृष्टि का ब्रह्मा मेरा भर्ता है, मैं उसकी स्त्री हूँ और त्रिलोकी इस प्रकार वसती है, ऊर्ध्व लोक में देवता रहते हैं, पाताल में

दैत्य और नाग रहते हैं, मध्यमंडल में मनुष्य और पशु पक्षी रहते हैं, समुद्र भी हैं, पर्वत भी हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश है, समुद्र ने गंभीरता अंगीकार की है, जीव ने प्राण अंगीकार किये हैं, पवन ने आकाश में चलना अंगीकार किया है, आकाश ने पोल अंगीकार किया है, पृथ्वी ने धैर्य अंगीकार किया है, विद्याधर ने ज्ञान अंगीकार किया है, अग्नि ने उष्णता, सूर्य ने प्रकाश, दैत्यों ने क्रूरता, विष्णु ने अवतार अंगीकार किये हैं, जगत् की रक्षा के लिये नदी ने चलना, पर्वत ने स्थिरता, अंगीकार की है, इस प्रकार सब नीति परमात्मा के आश्रय रची हुई है, कल्पपर्यन्त ज्यों की त्यों मर्यादा रहती है, इस प्रकार जीव जन्मते मरते हैं, देवता विमानों पर आरूढ हुए फिरते हैं, दिन का स्वामी सूर्य है, रात्रि का स्वामी चन्द्रमा है, नक्षत्रों तारों का चक्र पवन से घूमता है और दो ध्रुव हैं, काल इस चक्र को घुमाता है, घुमाता घुमाता नाशरूप काल कल्प के अन्त में कालचक्र के मुख में जा रहता है। हे मुनीश्वर! परमात्मा अनन्त है, उसका अन्त कोई नहीं जान सकता, जब संवेदन फुरती है, तब जाना जाता है कि यह जगत् ईश्वर की सत्ता से है, जब फुरणे से रहित हो जाता है, तब जाना नहीं जाता कि जगत् कहां गया? हे मुनीश्वर! तुम चलो, हमारी सृष्टि का विलास देखो, तुम तो जगत् के विलास से पार को प्राप्त हुए हो, यद्यपि तुमको इच्छा नहीं तो भी कृपा करके शिला में हमारी सृष्टि देखो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार कहकर आकाश मार्ग में ले चली, जैसे गन्ध को वायु ले जाता है, ऐसे मुझको ले गयी, तब दोनों आकाश मार्ग में उड़े, भूताकाश में चिरकाल तक उड़ते गये, हमको लोकालोक पर्वत दृष्टि पड़ा, उसके पास जाकर उसके शिखर देखे, जो महाऊर्ध्व को गये हैं और मेघ पड़े विचरते हैं और शिखर ऐसे सुन्दर हैं मानों क्षीर समुद्र से चन्द्रमा निकला है, ऐसे सुन्दर शिखर को हमने देखा, वहां जाकर शिला देखी, कैसी शिला है, स्वर्ण की महासुन्दर शिला है, हम उसके निकट गये, तब मैंने कहा हे देवि! यह तो शिला पड़ी है, तुम्हारी सृष्टि कहां है, इसमें पृथ्वी कहां है, द्वीप की मर्यादा कहां है? समुद्र कहां है, जिनका आवरण चारों ओर होता है, वह

और उनके ऊपर दश सहस्र योजन पर्यन्त स्वर्ण की पृथ्वी होती है, कहां है, पर्वत कहां है, सप्तलोक कहां है, आकाश कहां है, दशों दिशा कहां है, तारामंडल कहां है, सूर्य चन्द्रमा कहां है, जो रात दिन के प्रकाशक हैं और भूत संचार कहां होता है, देवगण कहां हैं, विद्याधर सिद्ध गन्धर्व कहां हैं, योगीश्वर कहां हैं, वरुण कुबेर कहां हैं, जग की उत्पत्ति प्रलय का संचार कहां हैं, पाताल की भूमिका कहां हैं और न्याय करने वाले मंडलेश्वर कहां है और मरुस्थल की भूमिका कहां है और नन्दन वनादिक कहां है, देवता दैत्यों के विरोध संचार कहा है, यह तो शिला दृष्टि आती है। हे रामजी! आश्चर्य को प्राप्त होकर जब मैंने ऐसे कहा, तब विद्याधरी बोली—हे भगवन्! तुमको तो प्रत्यक्ष इस शिला में अपनी सृष्टि भासती है, जैसे शुद्ध आदर्श में अपना मुख भासताहै, ऐसे मुझको अपनी सृष्टि भासती है, जैसे मर्यादा देश देशान्तर की मुझको भासती है, इसका संस्कार पूर्व का मेरे हृदय में है, इसी से मुझको प्रत्यक्ष भासती है और तुम्हारे हृदय में इसका संस्कार नहीं, इसी से तुझको नहीं भासती, तुम्हारी सृष्टि की अपेक्षा करके यह शिला पड़ी है तुमको शिला का निश्चय है, इस कारण तुमको इसमें जगत् नहीं भासता, हे भगवन्! जिसका अभ्यास होता है वह पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और वही भासता है, हे मुनीश्वर! गुरु शिष्य को उपदेश करता है, जो कुछ इसकी वांच्छा होती है, वह उपदेश मात्र से इष्ट की प्राप्ति नहीं होती, जब इसका अभ्यास करे तब इसकी प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर! ऐसा शास्त्र कोई नहीं, जो अभ्यास करने से प्राप्त न हो सके, ऐसी कला कोई नहीं जो अभ्यास से अप्राप्य हो, ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास की प्रबलता से सिद्ध न हो, जो थक कर भ्रान्त न हों, वे अवश्य सिद्ध होते हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता है दृष्टि आता है, सब अभ्यास के वश से होता है, प्रथम जो मैं तेरे साथ आयी हूँ, तब मुझको भी शिला में सृष्टि नहीं भासी थी, क्योंकि जो सृष्टि अन्तवाहक शरीर में स्थित है, वह तुम्हारे साथ द्वैत रूप कथा के करने से अन्तवाहक शरीर मुझको

विस्मरण हो गया था, जो विश्व की चर्चा और तुम्हारी सृष्टि की चर्चा करके मुझको स्पष्ट नहीं भासती, जैसे मलीन आदर्श में मुख नहीं भासता, ऐसे तुम्हारी सृष्टि के संकल्प से मुझको भी सृष्टि नहीं भासती, परन्तु चिरकाल जो अभ्यास किया है, उससे फिर भासती है, क्योंकि जो कुछ दृष्टि अभ्यास होता है, उसकी जय होती है। हे मुनीश्वर! चिन्मात्र पद में स्फुरण से आदि जीवों के शरीर अन्तवाहक हुए हैं, अर्थात् यह जो आकाशरूप शरीर थे, जब वहां प्रमाद से दृढ़ अभ्यास हुआ तब अधिभूत होकर भासने लगे, जब भावना उलटी हुई और योग की भावना से तेरी आधिभौतिकता क्षीण हो जाती है और अन्तवाहक प्रकट होता है, उससे आकाश में पक्षी की नाईं उड़ता फिरता है, इसलिये तुम देखो कि अभ्यास के बल से सब कुछ सिद्ध होता है। हे मुनीश्वर! अज्ञान से जगत् को अहंकार रूप पिशाच लगा है, वह दृढ़ता से स्थित हुआ है, जब शास्त्रों के वचनों में दृढ़ अभ्यास होता है तब क्षीण हो जाता है। हे मुनीश्वर! तुम देखो जिस किसी सृष्टि की प्राप्ति होती है, अभ्यास के बल से होती है। हे मुनीश्वर! जो अज्ञानी होता है और ब्रह्म अभ्यास करता है तो ज्ञानी हो जाता है और अज्ञान से जगत् को अहंकाररूप पिशाच लगा है। पर्वत बड़ा होता है मनुष्य उसको भी अभ्यास से चूर्ण कर सकता है, सारे वृक्ष को खा जाना कठिन है, परन्तु अभ्यास से शनैः शनैः धीरे धीरे घुण खा जाता है, आप तो छोटा है, परन्तु जो वस्तु पानी कठिन हो, अभ्यास से सुगम हो जाती है, इसलिये पा लेता है, जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु के निकट जाकर जिस पदार्थ की वांछा करता है, वह सिद्ध होता है, ऐसे आत्मरूप चिन्तामणि कल्पतरु है, उसमें जिस पदार्थ का अभ्यास करता है वह सिद्ध होता है, अभ्यासरूप भूमिका फल देती है, जो बालक अवस्था से अभ्यास होता है, वह वृद्ध अवस्था पर्यन्त होता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष बाँधव नहीं होता और निकट आया रहता है, तब निकट के अभ्यास से बांधव हो जाता है, परन्तु विदेश रहता है, तो अभ्यास की क्षीणता से अबांधव हो जाता है। हे मुनीश्वर! विष होता है

और उसमें अमृत की भावना करता है, तो अभ्यास से अमृत हो जाता है, मिष्टान्न में कटु भावना होती है तो कटु भासता है और कटु में मिष्टान्न की भावना करे तो मिष्टान्न भासता है, जैसे किसी को निंब प्रियतम है, किसी को मिष्टान्न प्रियतम है। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्ध होता है, अभ्यास के बल से सिद्ध होता है, पुण्य किया होता है वह पाप किये नाश हो जाता है और पाप पुण्य के अभ्यास से नाश हो जाता है और माता भी अमाता हो जाती है, किसी अर्थ के अनर्थ हो जाते हैं और मित्र भी अमित्र हो जाता है, भाग्य अभाग्यरूप हो जाता है, इत्यादिक पदार्थ सब चल हो जाते हैं, परन्तु अभ्यास का नाश कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकट पड़ा होता है और इन्द्रिय साधक भी विद्यमान हैं, तो भी अभ्यास बिना प्राप्ति नहीं होती, जहां अभ्यासरूप सूर्य उदय होता है वहां दृष्टिरूप पदार्थ की प्राप्ति होती है, अज्ञानरूप विषूचिका रोग है, ब्रह्म चर्चा के अभ्यास से नाश हो जाता है। हे मुनीश्वर! संसाररूप समुद्र है आदि अन्त से रहित है, आत्मा अभ्यासरूप नौका से उसको तर जाता है, जब अभ्यास को न त्यागेगा, तब अवश्य तरेगा, हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय होता है, उसके अभाव की भावना करे तो अस्त हो जाता है, जो अस्त हो उसके उदय होने की भावना करे तब उदय होता है, जैसे सिद्ध के शाप से उदय हो प्राप्त हुआ पदार्थ भी नाश हो जाता है और वर से अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र के इष्ट पदार्थ का श्रवण करता है और उसका अभ्यास नहीं करता, वह नीच मनुष्य है, उसको इष्ट पदार्थ की प्राप्ति कभी नहीं होती। जैसे वन्ध्या का पुत्र नहीं होता, ऐसे उसको इष्ट पदार्थ सिद्ध नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो आत्मरूप इष्ट को त्यागकर अन्य किसी पदार्थ की इच्छा करता है, वह अनिष्ट से अनिष्ट को प्राप्त हुआ है, उसको शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी। अभ्यास के बल से इष्ट को पाता है, जैसे प्रकाश से पदार्थ देखा जाय कि वह पड़ा है, उसका नाम अभ्यास और देखकर जो उसके लिये यत्न करता है, उसका नाम

अभ्यास का अभ्यास है, जब यत्न और अभ्यास करता है तब पदार्थ को पाता है, बार बार चिंतन करने का नाम अभ्यास है, जब ऐसा अभ्यास हो तब इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती, हे मुनीश्वर! चौदह प्रकार के भूत जात हैं, जैसा जैसा जिसको अभ्यास है उसके बल से ऐसा ऐसा सिद्ध होता है, अभ्यासरूप सूर्य है, उसके प्रकाश से अपने इष्ट पदार्थ को पाता है, अभ्यास के बल से भय निवृत्त होता है, पृथ्वी, पर्वत, वन कन्दरा, आदि स्थानों में निर्भय होकर विचरता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विद्याधर्यवर्णनंभ्यास नाम पंचाधिकद्विशततमः सर्गः ।।२०५।।

षडधिकद्विशततमः सर्गः २०६

प्रत्यक्षप्रमाणजगन्निराकरणवर्णनम् ।

विद्याधरी बोली–हे मुनीश्वर! जो कोई पदार्थ सिद्ध होता है, वह निरन्तर अभ्यास से होता है, तुम्हारा शिला में दृढ़ निश्चय है, इसलिये तुमको शिला भासती है और मुझको इसमें सृष्टि भासती है, जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकल्प के साथ मिले तब तुमको जगत् प्रतीति हो, यह जगत् जो स्थित है, वह मेरे अन्तवाहक में है और आदि वपु सबका अन्तवाहक है, अन्तवाहक में सब की एकता है, जैसे समुद्र में सब तरंगों की एकता होती है। हे मुनीश्वर! जब तुम धारणा का अभ्यास करके शुद्ध बुद्धि में स्थिति पावोगे तब तुमको शिला में सृष्टि भासेगी। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार मुझको शुद्ध युक्ति कही तब मैं पद्मासन बाँधकर विषय त्याग किया और विषय जो कथा का क्षोभ था, उसको भी त्याग दिया, अपना अधिभूत भी त्यागा और निरंतर शुद्ध बोध का अभ्यास किया, उस अभ्यास के बल से मुझको बोध के अनुभव का उदय हुआ, जैसे मेघ के अभाव से शरत्काल का आकाश निर्मल होता

है, ऐसे कलना से रहित मुझको शुद्ध बोध का अनुभव उदय हुआ, वह कैसा बोध है जो उदय और अस्त से रहित शान्तरूप है, उसमें मुझको आकाशरूप शिला दृष्टि आयी और शिलातत्व के रूप से भी दृष्टि आयी, केवल बोधमात्र दृष्टि आयी है, पृथ्वी आदिक तत्व मुझको कोई दृष्टि नहीं आये, केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्वमात्र अपना आप ही दृष्टि आये, केवल बोध मात्र से अंतवाहक रूप होकर स्पंद फुरा, तब अन्तवाहक से शिला में सृष्टि भासने लगी, जैसे मनोराज्य की सृष्टि होती है और बोध से भिन्न भिन्न नहीं होती, ऐसे सृष्टि मुझको दृष्टि आयी और शिला क्या रूप भासी जैसे स्वप्न के गृह में शिला दृष्टि आवे तो वह अनुभव ही शिला और गृहरूप होकर भासता है, इतर कुछ नहीं होता, ऐसे वह शिला दृष्टि आयी, हे रामजी! जैसे वह आकाशरूप शिला देखी, ऐसे सब जगत् चिदाकाश है, कुछ बना नहीं, सर्वदा काल आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है और जो कुछ अद्वैत भासता है, वह आत्मा के अज्ञान से भासता है, जैसे कोई पुरुष स्वप्न में अपना सिर कटा देखता है और रोता है और जगने पर अपने आपको ज्यों का त्यों आनन्द में देखता है, ऐसे जब तक अज्ञान निद्रा में सो रहा है, तब तक जगद्भ्रम नहीं मिटता, जब स्वरूप में जगकर देखेगा अर्थात् जब आत्मसाक्षात्कार होगा, तब सब भय मिट जायेगा, केवल अपना आप भासेगा, हे रामजी! यह आश्चर्य देखो, जो वस्तु सत् है वह असत् की नाईं भासती है, आत्मा सदा सत् रूप है, वह बिना ज्ञान के भासता नहीं और असत् रूप है वह सत् की नाईं हो भासती है, शरीरादिक दृश्य असद्रूप हैं, वे सत्वत होकर भासते हैं, हे रामचन्द्र! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और शरीरादिक परोक्ष हैं, अज्ञान से प्रत्यक्ष भासते हैं और आत्मपद परोक्ष भासता है, हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो कुछ इस लोक अथवा परलोक की क्रिया सिद्ध होती है, वह आत्मसत्ता से सिद्ध होती है और जो कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण से जगत् प्रतीत होता है वह आत्मसत्ता से प्रतीत होता है, आदि प्रत्यक्ष आत्मा ही है और कुछ आत्मा के पीछे

जाना जाता है, जो पुरुष कहते हैं, आत्मा योग से प्रत्यक्ष होता है और मन से प्रत्यक्ष होता है वे मूर्ख हैं, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्षादिक प्रमाण भी आत्मा से सिद्ध होते हैं, यही माया है कि जो सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा है, उसको परोक्ष जानना और जो शरीरादिक असत् हैं, उनको सत् मानना, हे रामजी! जितने जीव हैं, उनका वास्तव रूप ब्रह्म ही है, उनमें आदि फुरना अन्तवाहक रूप हुआ है, उसके अनन्तर आधिभौतिक भासने लगा, भ्रम से आधिभौतिक भासने लगा है, भ्रम से आधिभौतिक को अपना आप जानते हैं और जो सदा निर्विकार निराकार निर्गुण स्वरूप है, अपना आप अनुभवरूप है, उसे कोई नहीं जानता, आदि शरीर सब जीवों का अन्तवाहक है, वह शुद्ध आत्मा का किंचन है, केवल आकाशरूप है, कुछ बना नहीं, संकल्प से अधिभूतता दृढ़ हुई है, वह मिथ्या भ्रान्ति से भासती है, जैसे स्वप्न में आधिभौतिक शरीर भासता है, ऐसे जाग्रत में अधिभूत शरीर भासता है और अंतवाहक अविनाशी है, इस लोक परलोक में इसका नाश नहीं होता, वास्तव बोध स्वरूप से इतर कुछ नहीं, भ्रम से अधिभूत प्रतीति होती है, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, जैसे सीपी में रूपा भासता है, जैसें जेवरी में सर्प प्रतीत होता है, जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा है, ऐसे ही भ्रम से अपने आप में अधिभूत शरीर भासता है, हे रामजी! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु है वह असत् हो भासती है और जो असत् वस्तु है सत् होकर भासती है, वह अविचार से जीव को भासती है, यह मोह का माहात्म्य है, जो सबका आदि प्रत्यक्ष आत्मा है, उसको अप्रत्यक्ष समझते हैं, अप्रत्यक्ष जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं, हे रामजी! जितना जगत् है, वह भ्रम करके भासता है, स्वप्न की नाईं मिथ्या है, जिनमें पदार्थ को सुख रूप मानता है, वह सबका कारण है, क्योंकि जो परिणाम इनका दुःख होता है, प्रथम क्षीण सुख भासता है, फिर इनके वियोग से दुःख होता है, इसी कारण से इनका नाम आपात रमणीय कहाता है, इनको पाकर शान्तिमान् कोई नहीं होता, जैसे मृग तृष्णा के क्षीण सुख भासते हैं फिर

इनके वियोग से दुःख होता है, जल को पाकर कोई तृप्त नहीं होता, ऐसे विषय के सुख से कोई तृप्त नहीं होता, उनमें जो पड़ते हैं, मूर्ख हैं, शुद्ध आकाशरूप अन्तवाहक में जगत् देखते हैं, हे रामजी! हुआ सा भासता है, परन्तु फिर भी हुआ कुछ नहीं, जैसे स्थाणु में पुरुष प्रतीति होती है, तो भी हुआ नहीं, जैसे स्वर्ण में भूषण भासते हैं, तो भी हुए नहीं, ऐसे यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है, तो भी हुआ कुछ नहीं, हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण भी है नहीं, असत्य है तो अनुमानादिक प्रमाण कैसे सत्य हों, जैसे–जिस नदी में हाथी बहे जाते हैं तो वहां रुई के बहने में क्या आश्चर्य है, ऐसे सब प्रत्यक्ष प्रमाणों ने जगत् को असत् जाना तो अनुमान प्रमाण से क्या सत् होता है, हे रामजी! केवल बोध मात्र में जगत् कुछ बना नहीं, हमको तो सदा ऐसे ही भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुष को स्वप्न में पर्वत दृष्टि आते हैं और जाग्रत पुरुष को नहीं भासते, ऐसे अज्ञानी को यह जगत् भासता है, हमको आकाश समुद्र पर्वत सब केवल बोधमात्र भासते हैं, जैसे कथा के अर्थ श्रोता के हृदय में होते हैं और जिसने नहीं सुनी, उसके हृदय में नहीं होते, ऐसे मेरे सिद्धान्त को ज्ञानवान् जानते हैं, अज्ञानी नहीं जान सकते, हे रामजी! जितना अधिभूत जगत् भासता है, वह अप्रत्यक्ष है और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है। जो इस लोक अथवा परलोक का अर्थ है वह अनुभव से सिद्ध होता है, क्योंकि जो सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष हैं, उसको त्यागकर जो देहादिक दृश्य को अपना आप जानते हैं और इन्हीं को प्रत्यक्ष मानते हैं, वे मूर्ख हैं, पशु हैं, पत्थरवत् हैं, सूखे तृण की नाईं तुच्छ हैं, जैसे घूमते हुए को पर्वत आदि घूमते प्रतीत होते हैं, ऐसे अज्ञानी को अधिभूत प्रतीत होता है, हे रामजी! यह जगत् सब परोक्ष है, क्योंकि जो इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है, नेत्र होते हैं तो रूप भासते हैं, यदि नेत्र न हों तो न भासें। इस प्रकार सब इन्द्रियों के विषय हैं, यदि हों तो प्रतीत हों, नहीं तो नहीं भासें और आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, उसको देखने में किसी की सापेक्षता नहीं, हे रामजी! जो इन्द्रियों से सिद्ध हो, वह असत्य क्यों हुआ, जगत्

ही असत् हुआ, उसके पदार्थ सत् कैसे हों? इसलिये इस जगत् की सत्यता त्यागकर शुद्ध बोध में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे प्रत्यक्षप्रमाणजगान्निराकरणं नाम षडधिकद्विशततमः सर्गः ॥२०६॥

सप्ताधिकद्विशततमः सर्गः २०७

शिलांतरवसिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मैंने उस शिला को देखा, जब बोध दृष्टि से देखता था तो मुझे ब्रह्मरूप भासता और जब संकल्प दृष्टि से देखूं तो जगत् दृष्टि आता था, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, लोक और लोकपाल सूर्य चन्द्रमा तारागण पाताल जगत् सब दृष्टि आवे, जैसे दर्पण में प्रतिबिंब भासता है, ऐसे आत्मरूप आदर्श में जगत् भासे, तब देवी ने शिला में प्रवेश किया, मैंने भी संकल्परूप शरीर से प्रवेश किया, दोनों जगत् के व्यवहार को निहारा, जहां परमेष्ठी ब्रह्मा का स्थान था वहां हम जाकर बैठे, तब देवी ने कहा हे भगवन्! तुमने ऐसे कहना कि मुझको यह ले आई है, उसको तुमने विवाह के लिये उत्पन्न किया फिर उसका त्याग क्यों कर दिया, यह आपने पूछना! हे मुनीश्वर! इसने मुझे विवाह के लिये उत्पन्न किया था, जब मैं बड़ी हुई तब मेरा त्याग कर दिया, इसको वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इसको देखकर अब मुझे भी वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इसीमें हम परमपदकी इच्छा रखते हैं, जहां न द्रष्टा है न दृश्य है, न शून्य है केवल शान्तरूप है, जो सर्ग के आदि और महाकल्प के अन्त में रहता है, उसमें स्थित होने की इच्छा है, जिसमें स्थित हुए पहाड़वत् समाधि हो जाये, ऐसे परमपद का उपदेश करो, हे रामजी! इस प्रकार कहकर भर्ता को जगाने के लिये निकट जाकर कहने लगी, हे नाथ! तुम जागो तुम्हारे घर में अन्य सृष्टि के ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ मुनि आये हैं, तुम उठकर उनको अर्घ्य पाद्य दो उनकी पूजा करो क्योंकि हमारे घर में

अतिथि आये हैं, महापुरुष पूजा से प्रसन्न हो जाते हैं, हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा, तब ब्रह्माजी की समाधि उतरी और प्राण देह नाड़ी में स्थित हुए, जैसे वसन्त ऋतु से सब वृक्षों में रस संचार होता है, ऐसे ही उनकी दशों इंद्रिय संतुष्ट हुए, अन्तःकरण में शनैः शनैः प्राण संचार हुआ, सब इन्द्रिय खिल उठे, तब मुझको और देवी को सन्मुख देखा और ज्ञान पूर्वक ओंकार का उच्चारण करके ब्रह्माजी सिंहासन पर बैठ गये, ब्रह्माजी के जगने से बड़ा शब्द होने लगा, विद्याधर गन्धर्व ऋषि मुनि आकर प्रणाम करने लगे, स्तुति पाठ से वह स्थान गूंजने लगा, वेदध्वनि के पवित्र प्रभाव से वहां का तत्कालीन वायु मण्डल परम सात्विक और तेजस्कर हो गया, तब ब्रह्माजी मुनिवर को कहने लगे, हे ऋषिवर! सकुशल 'हो? क्योंकि बड़े मार्ग से होकर आये हो और सार असार को जानने वाले हो, जैसे हाथ में बिल्व का फल होता है, ऐसे तुमको ज्ञान है, तुम ज्ञानरूप समुद्र हो, ऐसे कहकर अपने निकट आसन दिया और नेत्र से आज्ञा की कि इस आसन पर विश्राम करो, हे रामजी! जब इस प्रकार मुझको कहा तब मैंने प्रणाम किया और निकट जा बैठा, एक मुहूर्त पर्यन्त देवता, सिद्ध, तथा ऋषि लोगों के प्रणाम होते रहे, उसके अनन्तर विद्याधर और देवता सब गये, तब मैंने कहा हे भूत भविष्य वर्तमान के ज्ञाता परमेश्वर परमेष्ठी! ऊँचे आसन पर विराजमान हो और साक्षात् ब्रह्म ज्ञान के समुद्र हो और यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है, जिसको तुमने भार्या के निमित्त उत्पन्न किया है फिर विरस जानकर त्याग किया है, तुम्हारे वैराग्य करने से इसको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इसलिये मुझको ले आयी है कि परमात्मतत्व की वाणी से हमको उपदेश करो, इसका अभिप्राय क्या है, अन्य सृष्टि के ब्रह्मा बोले—हे मुनीश्वर! मैं शान्त हूं अजर हूं मेरे अन्दर उदय अस्त कभी नहीं जिससे मैं परम आकाशरूप हूं और अपने आपमें स्थित हूं, न मेरी कोई स्त्री है न मैंने किसीकी उत्पत्ति की है, तथापि जैसे वृत्तान्त हुआ है तैसे मैं कहता हूं क्योंकि महापुरुष के विद्यमान (सामने) ज्यों का त्यों कहना योग्य है, हे

मुनीश्वर! आदि शुद्धचिदात्मा चिन्मात्र पद है, उसको वचन अहं होकर फुरा है, जो कि मैं हूं, उसका नाम आदि ब्रह्मा है, वह मैं हूं, कैसा ब्रह्मा है, जैसा भविष्यत् सृष्टि का होना चाहिये, यह जो संकल्परूप द्रष्टा और संकल्परूप मैं हूं, वास्तव से क्या है—आकाशरूप हूं,सदा निरावरण हूं और अपने आपही में मेरी अहं प्रतीति है, उसमें आदि जो संकल्प का फुरना हुआ है उससे जगद्भ्रम रचा है। उस जगद्भ्रम में मर्यादा हुई है और संकल्प का जो अधिष्ठाता यह ब्रह्मशक्ति है, वह भी शुद्ध है, हे मुनीश्वर! उस मर्यादा को सहस्र चौकड़ी युग की बीती हैं, अब कलियुग है, कल्पकी और महाकल्प की भी मर्यादा पूरी हुई है, उससे मुझको परम चिदाकाश में स्थित होने की इच्छा हुई है, इसलिये इसको विरस जानकर त्याग दिया है, इसके त्याग से निर्वाण पद की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि यह मेरी इच्छा वासनारूप है, यदि वासना का त्याग हो तो निर्वाण पद की प्राप्ति होती है और यह जो शुद्ध चित्तकला है इसने धारणा अभ्यास किया था, इस कारण से इसको अन्तवाहक शक्ति प्राप्त हुई, अन्तवाहक शक्ति से आकाश में स्फुरण हुआ है और संसार से विरक्त हुई है, आकाश मार्ग में इसको तुम्हारी सृष्टि भास आयी और परम पद पाने की इच्छा हुई थी उस वासना से इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई, परमपद पाने की इच्छा इसको हुई है इसलिये तुम्हारी शरण में आयी है और तुमको ले आयी है, जो श्रेष्ठ हैं तो बड़ों की शरण में जाते हैं, अपने कल्याण के निमित्त तुमको ले आयी है, हे मुनीश्वर! यह मेरी वासना शक्ति है, आगे मैंने इसको मूर्तिरूप उत्पन्न किया था, तब इस जगज्जाल को रचा था, अब मुझको निर्विकल्प निर्वाण पद की इच्छा हुई है इस कारण मैंने इसका त्याग किया है, अब इसको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इस कारण से तू बोधरूप की शरण में प्राप्त हुई है, हे मुनीश्वर! यह जगद्विलास संकल्प में हुआ है, वास्तव में कुछ नहीं, परमात्म तत्व ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है और मैं तू, मेरा, तेरा इत्यादिक शब्द समुद्र के तरंग की नाईं हैं, जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न

होकर शब्द करते हैं, फिर लीन हो जाते हैं, ऐसे हमारा तुम्हारा बोलना मिलाप होता है, हे मुनीश्वर! वास्तव से कोई उत्पन्न हुआ है, न किसी में लीन होता है, जैसे तरंग जलरूप हैं, भिन्न कुछ नहीं, ऐसे सब जगत् ब्रह्म स्वरूप है, भिन्न कुछ नहीं, इन्द्रिय मन बुद्धि आदिक सब वही रूप है, हे मुनीश्वर! मैं चिदाकाशरूप हूं, चिदाकाश में स्थित हैं और यह ब्राह्मी शक्ति है, जिसने जगत् किया है, यह भी अजर है अमर है न कभी उत्पन्न हुआ है, न नाश होगा, शुद्ध आत्मा किंचन द्वारा जगत् हो भासता है जैसे सूर्य की किरणें जल हो भासती हैं और जल कुछ हुआ नहीं, ऐसे आत्मा ही है, विश्व कुछ हुआ नहीं हे मुनीश्वर! जगत् जाल होकर आत्मा भासता है, जगत् के उदय अस्त होने से आत्मा में कुछ क्षोभ नहीं होता ज्यों का त्यों एकरस स्थित है, जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होते और लीन होते हैं परन्तु समुद्र ज्यों का त्यों रहता है, न तरंग उत्पन्न होते हैं न लीन होते हैं, ऐसे जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, संकल्प से उत्पन्न हुए की नाईं भासता है, जैसे दृढ़ता से जल गड़ा हो जाता है, ऐसे चिन्मात्र में चैत्यता से पिंडकार भासता है, परन्तु उत्पन्न कुछ नहीं हुआ, हे मुनीश्वर! यह जो शिला है, जिसमें हमारी सृष्टि है वह शिला केवल चिद् घनरूप है, तुम्हारी सृष्टि में यह शिला है और हम चेतनघन हैं, आकाश चेतन आत्मा शिला होकर भासता है, जैसे स्वप्न में पतन सृष्टि सब जाग्रत भासती है, वह बोधरूप जगत् से भासता है, ऐसे यह जगत् शिलारूप होकर बोध ही भासता है, हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में ग्रह का चक्र फिरता दृष्टि आता है, सूर्य चन्द्रमा पर्वत नदी वरुण, कुवेर आदिक जगत् भ्रम से दृष्टि आते हैं, बने कुछ नहीं, चेतन का किंचन नहीं ऐसे भासता है, ऐसे यह जगत् शुद्ध आकाश का किंचन है, जैसे सूर्य की किरणों में किंचित् जलाभास होता है, ऐसे जहां आत्मसत्ता है वहां जगत् भासता है और जो पदार्थ हैं वह आत्मसत्ता से भासते हैं, ब्रह्मसत्ता सबमें अनुस्यूत है, इससे सबके अन्दर सृष्टि बसती है, जैसे एक शिला में हमारी सृष्टि में जो कुछ पदार्थ भासते हैं, उनमें सृष्टियां बसती हैं, वह परिच्छिन्न दृष्टि से नहीं भासती हैं, जब

अन्तवाहक सृष्टि से देखें तब सृष्टि भासती है, घटा में सृष्टि है, गर्तों में सृष्टि है, पृथ्वी में सृष्टि है, जल अग्नि पवन आकाश में सृष्टि है, सर्वत्र सृष्टि है और बना कुछ नहीं, जैसे जहां समुद्र है, वहां तरंग भी होते हैं परन्तु समुद्र से भिन्न तरंग हुए ही नहीं, वही रूप है, ऐसे यह जगत् उत्पन्न नहीं होता न मिटता है, ज्यों का त्यों आत्मसमुद्र अपने आपमें स्थित है और जगत् जो फुरता है संकल्प शक्ति से फुरता है, संकल्प शक्ति अहंरूपी किंचनमात्र उदय हुई है, वास्तवमें जगत् कुछ बना नहीं है, मूल से देवी भगवती ही जगत् रूप सुगन्धि को लेकर उदय हुई हैं, संकल्पशक्ति से जगत् बने की नाईं भासता है, हे मुनीश्वर! वास्तव से न कोई संकल्प है न प्रलय है, ज्यों का त्यों ब्रह्म अपने स्वभाव में स्थित है, जैसे आकाश आकाश में स्थित है, जैसे समुद्र समुद्र में स्थित है ऐसे ब्रह्म में ब्रह्म स्थित है, हे मुनीश्वर! यह जगत् न सत् है न असत् है, आत्मा न उदय हुआ न अस्त होगा, जैसे आकाश में नीलता न सत् है न असत् है, ऐसे ब्रह्म में जगत् न सत् है न असत् है और मैं उस ब्रह्म का किंचन ब्रह्म हूं, जब जगत् मेरे संकल्प में उत्पन्न हुआ है, अब मैं संकल्प का निर्वाण करता हूं, जब संकल्पनिर्वाण हुआ तब जगत् का अभाव हो जायेगा जैसे कमल के नाश हुए सुगन्धि का अभाव होता है, ऐसे मुझमें इच्छा स्फुरण हुआ था, उसमें वासना है वासना में जगत् है, अब मैं इसको निर्वाण करता हूं, इच्छा निर्वाण होने पर जगत् का स्वाभाविक अभाव हो जायेगा और तुम्हारा जो शरीर भासता है, वह इस संकल्प में भासता है, इसलिये तुम अपनी सृष्टि में जाओ नहीं तो तुम्हारा शरीर भी यहां निर्वाण हो जायगा हे रामजी! इस प्रकार मुझको कहकर पुनः देवी को कहा देवि! अब आप बोध को अपने आपमें लीन करते हुए आत्मपद में स्थित होकर निर्वाण हो जाइये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे शिलान्तरवसिष्ठब्रह्मसंवाद वर्णनं नामसप्ताधिकद्विशततमः सर्गः ॥२०७॥

अष्टाधिकद्विशततमः सर्गः २०८

अन्यजगत्प्रलयवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मा ने कहकर पद्मासन बांध और अकार उकार मकार को छोड़कर अर्ध मात्रा में स्थित हुआ, तब ब्रह्माजी की मूर्ति ऐसे दृष्टि में आती थी, जैसे कागज पर लिखी हो, उस समय ब्रह्मा निश्चेष्ट हो गये, जितना जगज्जाल है उस सबका विस्मरण किया और देवीने भी उसी प्रकार पद्मासन बाँधा, ब्रह्माजी ने निश्चय में लीन हो जाने लगी, तब ब्रह्माजी निर्वेदन ब्रह्म में लीन होने लगे, ब्रह्माजी के इस प्रकार समाधिस्थ हो जाने पर संसार में उपद्रवों की वृद्धि होने लगी, मनुष्य पाप करने लगे, स्त्रियाँ दुराचारिणी हो गयीं, सब जीवों ने धर्म का त्याग किया, कामी पुरुषों की संख्या बढ़ गयी, परस्त्री संग जैसे महान् अपराध होने लगे, पुरुषों और स्त्रियों की किसी का भय न रहा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष आदि दोष बढ़ गये, शास्त्र की मर्यादा का सबने त्याग किया, बहुत लोग नास्तिक हो गये, वर्षा न होने से कष्ट बढ़ने लगा, दुर्भिक्ष पड़ गया, दुष्ट लोग धनवान् और सज्जन निर्धन होने लगे, चोरियां अधिक होने लगीं, राजा लोग मद्यपान करने लगे, जीवों को अनेक दुःख होने लगे, तीनों तापों से जगत् जलने लगा, राजाओं ने न्याय करना छोड़ दिया, पापों का उदय हुआ, धर्म लोप हो गया, अज्ञानी लोग राज्य करने और ज्ञानी सेवा करने लगे, दुर्जनों की पूजा होने लगी, पंडितों का निरादर होने लगा तब जीवों के समूह इकट्ठे हो गये, पृथ्वी ने अपनी सत्ता का त्याग किया, जो पृथ्वी ब्रह्म के संकल्प में पड़ी थी, जब उसने अपना संकल्प खैंचा तब निर्जीव हो गयी, चेतनता निकल गयी, पृथ्वी नाश होने लगी पर्वत कांपने लगे, भूचाल हाहाकार शब्द होने लगे, जैसे शरत्काल में वल्ली सूख जाती है, जर्जर होती है, इसी प्रकार पृथ्वी जर्जर होने लगी, ज्यों ज्यों संकल्परूप चेतनता क्षीण होती जाये त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरी भाव को प्राप्त होने लगी

जैसे किसी पुरुष का अर्धांग मारा जाता है तब वह अंग शव जैसा हो जाता है, उसमें स्फुरण शक्ति नहीं रहती, ऐसे ब्रह्म के संकल्प चेतनता पृथ्वी से निकलती जाये इस कारण से पृथ्वी कमजोर होती जाये, धूड़ उड़े नगर नष्ट हों इस प्रकार उपद्रव उदय हुए क्योंकि पृथ्वी के नाश का समय निकट आ गया और समुद्र जो अपनी मर्यादा में स्थित थे उन्होंने भी अपनी मर्यादा त्याग दी, जैसे कामी पुरुष मद्यपान करने से अपनी मर्यादा को त्यागता है ऐसे समुद्र ने उछल कर किनारे गिरा दिये, पर्वत कंदराओं से निकल जाते और पृथ्वी का नाश करते। राजा और नगरवासी दोनों ने अपने नियम का पालन छोड़ दिया, जल तीक्ष्ण वेग से चलने लगा, बड़े बड़े पर्वत गिरने लगे और चक्र समान घूमने लगे, समुद्र के तरंगों के साथ पर्वत गिरें और उड़ें और तरंग उछलकर पाताल तक पहुँचे होंगे, पाताल का नाश होने लगा, बड़े बड़े रत्नों के पर्वत गिरने लगे, जब रत्नों का ऐसा चमत्कार होता कि जैसे तारामंडल का होता है, इसी प्रकार बड़ा क्षोभ होने लगा, तरंग उच्छल कर सूर्य चन्द्रमा के मंडल को जाते , प्रकाश मंद हो गया, बड़वाग्नि उदय हुई तब वरुण कुवेर यम इनके जो वाहन थे, वे डरने लगे, जल के वेग से पर्वत नृत्य करने लगे, मानों पर्वतों को पंख लगे हैं। स्वर्ग के कल्पतरु समुद्र में आ पड़े, चिन्तामणि और सिद्धगन्धर्व सब गिरने लगे, समुद्र इकट्ठे हो गये जैसे गंगा यमुना सरस्वती एकत्र होती है, ऐसे समुद्र मिलकर शब्द करने लगे और ऐसे मत्स्य निकले जिनके पुच्छ स्पर्श से पर्वत उड़ते जावें और कंदरा में जो हस्ती थे, चिंघाड़ने लगे, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण क्षोभ को प्राप्त हुए और समुद्र में गिरने लगे, हे रामजी! इस प्रकार प्रलय के क्षोभ से जितने लोकपाल थे सब समुद्र में आ पड़े, मत्स्य उनको भक्षण करने लगे और तरंग आपस में मदमत्त हस्तियों के समान युद्ध करने लगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अन्य जगत् प्रलयवर्णनं नामाष्टाधिक द्विशततमः सर्गः ॥२०८॥

नवाधिकद्विशततमः सर्गः २०९

निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वह विराट् जो ब्रह्मा था, जिसका देह सम्पूर्ण जगत् था, उसने अपने प्राणों को खैंखैंचा, तब छत्र चक्र को घुमानेवाला वायु अपनी मर्यादा त्यागकर क्षोभ करने लगा, तब वह चक्र नाश होने लगे, क्योंकि जो ब्रह्मा के संकल्परूप में थे, किसी कीसामर्थ्य नहीं जो उनको रक्खे और तेज में जो देवता थे, वे पवन के आधार थे, वे पवन के निकलने से निराधार हुए, तब समुद्र में गिरने लगे, ऐसे गिरते थे जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं जैसे संकल्प का नाश हुए संकल्प का वृक्ष गिरता है, जैसे पका फल समय पर गिरता है, ऐसे सब गिरने लगे, सुमेरु की कन्दरा गिर गयी, पवन का बड़ा क्षोभ हुआ और शब्द हुआ, अपनी शान्ति के लिये पवन के क्षोभ हुआ, जैसे पवन में तृण फिरता है, ऐसे आकाश में पवन फिरने लगा, देवताओंके रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था, वह गिर गया, रामजी बोले–हे भगवन्! संकल्परूप ब्रह्मा विराट् आत्मा है सब जगत् उसका देह है, भूमंडल उसका कौन अंग है, पाताल कौन अंग है, स्वर्गलोक कौन अंग है और संकल्परूप कैसे अंग होते हैं, संकल्प तो आकाश रूप होते हैं और जगत् प्रत्यक्ष पिंडाकार दृष्टि आता है, जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसी के समान होता है तो यह जगत् ब्रह्मा के अंग कैसे हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस जगत् से पूर्व केवल चिन्मात्र था, उसमें जगत् न सत् था न असत् था, केवल आत्मत्वमात्र अपने आपमें जगत् स्थित था, जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है, एक और दो शब्द से रहित है, उस केवल चिन्मात्र का किंचन अहं होकर स्थित हुआ है, उस अहंकार का चैत्य जो दृश्य है उसके साथ सम्बन्ध हुआ, उस दृश्य के अनुभव ग्रहण से निश्चय हुआ, उसका नाम बुद्धि है, उसके बाद उसीका नाम मन है उस मन के फुरने से जगत् दृष्ट हुआ है, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्य है वही ब्रह्म रूप से कहाता है, उसमें

स्फुरन से जगत् आगे खड़ा हो गया, उस संकल्प रूप जगत् का वह विराट् है, परन्तु क्या है! आकाशरूप है और बना तो कुछ नहीं और यह जो आकार सहित जगत् भासता है, वह ब्रह्म से भासता है, सब संकल्प आकाश रूप हैं, जैसे स्वप्न में जगत् भासता है वह सब आकाशरूप होता है, परन्तु निद्रा दोष से पिंडाकार भासता है और आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है, हे रामजी! अहं जो फुरा है, वह मिथ्या है, अज्ञान से दृढ़ स्थित हुआ है, असम्यक्दर्शी को दृढ़ भासता है, वह केवल संकल्पमात्र है, अन्य कुछ नहीं बना, इसलिये जितना कुछ जगत् भासता है सब चिदाकाश है, एक और द्वैत कलना से रहित है, सर्व शब्द से रहित आत्मामात्र है, मैं और तू शब्द कोई नहीं, यह जगत् उसका किंचिन है, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है, ऐसा आत्मा का आभास जगत् है, संकल्पकी दृढ़ता से दृश्य भासता है और है नहीं जैसे संकल्परूप गन्धर्व नगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, ऐसे यह जगत् है, हे रामजी! जिस प्रकार मैंने जगत् वर्णन किया है, जो पुरुष मेरे कहने को ज्यों का त्यों धारण करे तब उसकी वासना नष्ट हो जाय और पूर्ववत् आत्मा ज्यों का त्यों प्रतीत हो, जैसे जगत् के आदि में आत्मत्व मात्र था ऐसे ही प्रतीत होगा, क्योंकि अन्य कुछ हुआ नहीं, केवल आत्मत्व मात्र ज्यों का त्यों स्थित है, जब आतमा ही है तो समवायि कारण और निमित्त कारण कैसे हो, जगत् का उदय होना और नाश होना असत् है, अद्वैत अनन्त कहना भी कोई नहीं, जब सर्व शब्द का अभाव हुआ तब परम चिदाकाश अनुभव सत्ता ही शेष रहेगी, इसीका नाम मोक्ष है, हे रामजी! हमको तो अब भी संवित् सत्ता ही भासती है, मैं कैसा हूं, शुद्ध हूं सर्व कल्पना से रहित हूं, चिदाकाश हूं, और मेरे अन्दर जो वसिष्ठ अहं फुरा है, वह फुरा नहीं, फुरे की नाईं भासता है, एक भी आत्मा का किंचन है, हुआ कुछ नहीं, इसलिये तुम भी इसी प्रकार जानकर निर्वासनिक हो जाओ और अपना प्रकृत आचार करो अथवा न करो, जो इच्छा है करो, परन्तु करने न करने का संकल्प न करो, परम

मौन में स्थित हो जाओ, ज्ञानवान् को यह अनुभव होता है, इसलिये तुम भी ऐसे धारण करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० निर्वाणवर्णनं
नाम नवाधिकद्विशततमः सर्गः ।।२०९।।

दशोत्तरद्विशततमः सर्गः २१०

विराडात्मवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! बन्ध मोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है न असत् है, उदय भी नहीं हुआ अस्त भी नहीं होता, केवल ज्यों का त्यों आत्मा स्थित है, ऐसे तुमने मुझको उपदेश किया है, वह मैंने जाना है, सुनने से मैं तृप्त नहीं होता, अमृत के समान पान करता हूं और जगत् सत् असत् से रहित सन्मात्र है, उसको मैं जानता हूं, पुनः कहो कि संसार भ्रम कैसे उत्पन्न होता है और अनुभव कैसे होता है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो कुछ तुमको दृष्टि आता है स्थावर जंगम जगत् सर्वप्रकार देशकाल संयुक्त, उसके नाश का नाम महाप्रलय है, उसमें ब्रह्मा विष्णु रुद्र भी लीन हो जाते हैं, उनके पीछे जो शेष रहता है, वह स्वच्छ है अज है, अनादि है, केवल आत्मत्व मात्र है, उसमें वाणी की गति नहीं कैसे कहें केवल अपने आपमें स्थित है, परम सूक्ष्म है, उसमें आकाश भी सूक्ष्म है, जैसे सुमेरु पर्वत के निकट राई का दाना सूक्ष्म है, ऐसे ही आकाश से आत्मा सूक्ष्म है, सूक्ष्मता ऐसी है कि संवेदन से रहित चिन्मात्र है उसमें अहं किंचन हो फुरा है और आत्मा सदा निर्विकल्प है, सात समुद्र हैं देश काल के भ्रम से रहित है केवल चेतन घन अपने आप में स्थित है, जैसे स्वप्न में अपने भाव को लेकर स्थित होता है ऐसे आत्मा अपने भाव को लेकर चेतन किंचन होता है उसका नाम ब्रह्मा है वह भी चिद्रूप है, हे रामजी! चिद्णु जो अपने भाव को लेकर उदय हुआ है उसने चैत्य नामक दृश्य को देखा

है, तब उसका अनुभव क्या मिथ्या हुआ! जैसे स्वप्नमें अपना मरण देखता है वह अनुभव मिथ्या है, ऐसे चिद् अणुदृष्टि से दृश्य को देखता है, वह मिथ्या दृष्टि है जब चिद्णु ने अपने स्वरूप को देखा वह केवल निराकार रूप है परन्तु अहं जो ऐसे बीज दृढ होते हैं, उससे अपने आप से निकल दृश्य को संकल्प से देखता है, जैसे बीज से अंकुर निकलता है, ऐसे संकल्प से फुरणे से देशकाल द्रव्य, दृष्टादर्शन, दृश्य होता है, वास्तव में हुआ कुछ नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभाव में स्थित है, परन्तु संकल्प से हुए की नाईं भासता है, वह देश है, जहां चिद्णु भासे जिस समय भासे वह काल है और जो भान हुआ है वह क्रिया है, भान का ग्रहण है, वह द्रव्य है, देखने को जो वृत्ति दौड़ती है वह नेत्र होकर स्थित हुए हैं और देखने लगे जो जिसको देखते हैं वह भी शून्य है, देखनेवाले शून्य हैं, सब असत्य हैं, कुछ बना नहीं, जैसे आकाश में आकाश स्थित है, ऐसे आत्मा अपने आप में स्थित है, संकल्प द्वारा सब कुछ बनता जाता है, चिदणु जो भासा है, वह दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है, जब चिदणु में रूपकी वृत्ति फुरती है, तब चक्षु इन्द्रिय होकर स्थित होती है, जब श्रवण की वृत्ति फुरती है, तब श्रोत्र होकर स्थित होते हैं, जब स्पर्श की वृत्ति फुरती है, तब त्वचा इंद्रिय होकर स्थित होती है, जब सुगन्धि लेने की वृत्ति फुरती है, तब नासिका इंद्रिय होकर स्थित होती है, जब रस लेने की इच्छा होती है तब जिह्वा इंद्रिय होती है ओर स्वाद लेती है, हे रामजी! प्रथम यह चिदणु नाम से रहित फुरा है और सम्पूर्ण जगत् भी तद्रूप ही था, अब भी वही केवल आकाश रूप है और संकल्प से अपने में पिंड धन को देखा फिर शरीर को देखा अनादि सत्स्वरूप चिदणु इंन्द्रियों के संयोग से पदार्थों को ग्रहण करता है, स्पंद रूप जो वृत्ति फुरी है उसका नाम मन है, जब निश्चयात्मक बुद्धि होकर स्थित हुई तब चिदणु में यह निश्चय हुआ कि मैं द्रष्टा हूं, यह अहंकार हुआ, जब अहंकार के साथ चिद्अणुका संयोग हुआ, तब देशकाल का परिच्छेद को अपने में देखा, आगे दृश्य को देखा, पूर्व उत्तर दोनों काल देखे, अपने आपको ऐसा देखते हैं कि मैं इस देश में बैठा हूं, मैंने यह कर्म किया है, यह विषम अहंकार हुआ, देशकाल

क्रिया द्रव्य के अर्थ को भिन्न भिन्न कर ग्रहण करता है, आकाश होकर आकाश को ग्रहण करता है हे रामजी! आदि फुरणे से चिद्अणु में अन्तवाहक शरीर हुआ है, पुनः संकल्प के दृढ़ आभास से आधिभौतिक भासने लगा, उसका क्या रूप है जैसे आकाश में अपर आकाश हो, ऐसे यह आकाश है, अणु ही से भ्रम करके उदय हुए हैं और सत् की नाईं भासते हैं, जैसे मरुस्थल में भ्रम से नदी भासती है, ऐसे अविचार से संकल्प की दृढ़ता है पंचभूत आकार भासते हैं, उनमें अहं प्रत्यय हुआ है, उससे देखता है, यह मेरा सिर है, यह मेरा चरण है, यह मेरा अमुक अंग है, इत्यादि शब्द अर्थ को ग्रहण करता है, नाना प्रकार का जगत् शब्द और अर्थ सहित ग्रहण करता है, भाव अभाव को ग्रहण करता है, इस प्रकार कहता है कि यह देश है यह काल है, यह क्रिया है, यह पदार्थ है, हे रामजी! जब इस प्रकार जगत् के पदार्थ का ज्ञान होता है, तब चित्त विषय की ओर उड़ता है और रागद्वेष को ग्रहण करता है, जो कुछ देहादिक भूत फुरने से भासते हैं केवल संकल्पमात्र हैं संकल्प की दृढ़ता से दृढ़ हुए हैं, हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, इसी प्रकार विष्णु तथा रुद्र हुए हैं, इसी प्रकार कीट उत्पन्न हुए हैं, परन्तु प्रमाद अप्रमाद का भेद है, जो अप्रमादी है वह सदा आनन्दरूप है ईश्वर है स्वतंत्र है, उसको यह जगत् और वह जगत् अपना आप है और जो प्रमादी है वह तुच्छ है, सदा दुःखी है और वास्तव से परमात्तत्व से इतर कुछ नहीं, अपने आप स्वभाव में स्थित है जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, ऐसे आत्मसत्ता अपने आप स्थित है और सबका बीज है और त्रिलोकरूप बूंद का मेघ है कारण का कारण वही है, काल में नीति वही आत्मा है, क्रिया में क्रिया वही है, आदि विराट् पुरुष का शरीर भी नहीं और हम तुम भी नहीं, केवल चिदाकाशरूप अब भी इनका शरीर आकाशरूप है, आत्मसत्ता से इत्तर किसी अन्य अवस्था को प्राप्त नहीं हुए, केवल आकाशरूप जैसे स्वप्न में युद्ध होते हैं और मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं, इत्यादिक शब्द अर्थ भासते हैं, वे केवल आकाशरूप हैं, बना कुछ

नहीं परन्तु निद्रादोष से भासते हैं, जब जगता है तब जानता है, जो कि हुआ कुछ न था आकाश रूप है, ऐसे जो पुरुष अनादि अविद्या से जगा है उसको जगत् आकाशरूप भासता है, हे रामजी! बहुत योजन पर्यन्त विराट् पुरुष का देह है, तो भी ब्रह्म आकाश के सूक्ष्म अणु में स्थित है, यह त्रिलोकी एक चिदणु में स्थित है, विराट् पुरुष इसका ऐसा है, जिसका आदि अन्त मध्य नहीं भासता, ऐसा स्थूल देह इसका है तो भी एक चावल के समान नहीं, हे राम! यह जगत् और जगत् के भाग विस्तीर्ण दृष्टि आते हैं, तो भी एक कण के समान नहीं, जैसे स्वप्न के पर्वत के एक अणु के समान नहीं, ऐसे विचाररूप तराजू से तोलें तो परमार्थ सत्ता में कुछ सत्यता इनकी नहीं पाई जाती, दृष्टि भी आते हैं, परन्तु आत्मसत्ता से इतर कुछ हुआ नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, इसी का नाम स्वयंभू मनु कहते हैं, जगत् और विराट् कहते हैं इसी को जगत् कहते हैं, जगत् और विराट् में भेद कुछ नहीं, वास्तव से आकाशरूप है, सन्तान भी इसी को कहते हैं, रुद्र इन्द्र उपेन्द्र पवन मेघ पर्वत जल जितने भूत हैं, उसका वपु है, हे रामजी! आदि वपु जो इनका चिन्मात्र रूप है, उसमें चैत्यता करके अपना अणु जैसा वपु देखता है, जैसे तेज का कणका होता है उस तेज अणु से चैत्यता से क्रम पूर्वक अपना बड़ा शरीर जगत् रूप देखा, जैसे स्वप्न में कोई पुरुष आपको पर्वत देखे, ऐसे अपने आपको विराट् रूप देखा, जैसे पवन के दो रूप हैं, चलता है तो भी पवन है, नहीं चलता तो भी पवन है ऐसे जब चित्त फुरता है तो ब्रह्म सत्ता ज्यों की त्यों है और जब चित्त नहीं फुरता, तब भी ज्यों का त्यों है, परन्तु जब स्पन्द फुरता है तब विराट् रूप होकर स्थित होता है, जब चित्त अफुर होता है तब अद्वैत सत्ता भासती है और सदा अद्वैत ही विराट् स्वरूप कैसा है? हे रामजी! इस दृष्टि से उसके शिर पाद नहीं भासते हैं, ब्रह्मांड की जितनी पृथ्वी है वह उसका मांस हैं और सब समुद्र उसका रुधिर है, नदियां उसकी नाड़ियां हैं, दशों दिशाएं उसका वक्षस्थल है, तारागण रोमावली है, सुमेरु आदिक उसकी अंगुलियां हैं और सूर्यादिक

तेज उसके पित्त और चन्द्रमा कफ है और पवन उसका प्राणवायु है, सम्पूर्ण जगज्जाल उसका शरीर है, ब्रह्मा उसका हृदय है, वह आकाशरूप है, संकल्प से नाना रूप हो भासता है, स्वरूप से कुछ बना नहीं, आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप है और अपने आप ही में स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विराडात्मवर्णनं नाम दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१०॥

एकादशाधिकद्विशततमः सर्गः २११

विराट्शरीरवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आदि जो विराट् है वह ब्रह्मा है, उसका तो आदि अन्त कुछ नहीं और यह जगत् उसका छोटा वपु है, उस चेतन वपु का किंचन ब्रह्म रूप हुआ है, उसके अंग के विस्तार का क्रम सुनो, उस ब्रह्मा ने संकल्प से एक अंड रचा है, कैसा ब्रह्मा है, जिसका संकल्प ही वपु है, उस अंड को उस (ब्रह्मा) ने फोड़ा, तब उस अंड का ऊर्ध्व भाग ऊर्ध्व को चला गया और अधोभाग अधः को चला गया, वह (अधोभाग) पाताल ब्रह्मा का चरण हुआ और ऊर्ध्व शिर है, और मध्य जो अवकाश है वह ब्रह्मा का उदर है, दशों दिशाएं वक्षःस्थल हुआ और हाथ सुमेरु आदि पर्वत हुए और पृथ्वी मांस हुई, समुद्र आंत्र हुए, सब नदियां उसकी नाड़ियां हुईं, जल रुधिर हुआ, प्राण अपना वायु पवन हुआ, हिमालय उसका कफ है, सब तेज उसका पित्त है, चन्द्र सूर्य उसके नेत्र हैं, तारागण स्थूल लार हैं और लार प्राण के बल से निकलती है, जैसे ताराचक्र को पवन घुमाता है और ऊर्ध्व लोक उसकी शिखा है, मनुष्य पशु पक्षी उसके रोम हैं और सर्वभूत चेष्टा उसका व्यवहार है, पर्वत उसकी अस्थियां हैं, ब्रह्मलोक उसका सुख है, सब जगत् विराट् का वपु है, रामजी बोले–हे भगवन्! आपने यह जो संकल्परूप ब्रह्मा कहा है

और जगत् उसका वपु कहा है वह मैं मानता हूँ, परन्तु यह जगत् तो उसका शरीर हुआ, ब्रह्म लोक में ब्रह्मा कैसे बैठता है? अपने शरीर में ही भिन्न होकर कैसे स्थित होता है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है, यदि तुम ध्यान लगाकर बैठो और अपनी मूर्ति अपने अन्दर कल्पना करके स्थित हो जाओ तो भी वैसा हो जाता है और जैसे पुरुष को स्वप्न आता है, उसमें जगत् भासता है, सब अपना स्वरूप है, परन्तु अपनी मूर्ति धारण कर अन्य को देखने लगता है ऐसे ब्रह्म का एक शरीर ब्रह्मलोक में होता है, ब्रह्म और जीव में इतना भेद है कि जीव भी अपनी सृष्टि का विराट् है, परन्तु उसको प्रमाद से भासती नहीं और ब्रह्म सदा अप्रमादी है, उसको सब जगत् अपना शरीर भासता है, हे रामजी! देवता, सिद्ध, ऋषीश्वर, विद्याधर, विराट् पुरुष की ग्रीवा में स्थित हैं और भूत प्रेत पिशाच, सब विराट् पुरुष के मल से उत्पन्न हुए कीट की नाईं उदर में स्थित हैं, स्थावर जंगम जगत् सब संकल्प से रचा हुआ विराट् में स्थित है, सब उसी के अंग हैं, जगत् है तो विराट् भी है, जगत् नहीं तो विराट् जगत् कहिये, ब्रह्म कहिये, विराट् कहिये, तीनों पर्याय हैं, इसलिये सम्पूर्ण जगत् विराट् वपु है, निराकार क्या और साकार क्या अन्दर बाहिर सब विराट् का वपु है, जैसे अन्दर बाहिर आकाश में भेद नहीं, जैसे विराट् आत्मा में भेद नहीं, जैसे पवन के चलने ठहरने में भेद नहीं, ऐसे विराट् और आत्मा में भेद नहीं, जैसे चलना ठहरना दोनों रूप पवन के हैं, ऐसे साकार निराकार सब विराट् का शरीर है, हे रामजी! इस प्रकार जगत् हुआ है, कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, संकल्प से उत्पन्न हुए की नाईं भासता है, जैसे सूर्य की किरणों में जल हुआ कुछ नहीं और हुए की नाईं भासता है, ऐसे ब्रह्मसत्ता में जगत् उत्पन्न हुए की नाईं भासता है, परन्तु उत्पन्न कुछ नहीं हुआ, केवल अपने आप में स्थित है, शिला जठर की नाईं स्थित है, यह जो संकल्प विकल्प से रहित चेतन रूप से रहित चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, इसलिये कलना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवसिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विराट्शरीरवर्णनं नाम
एकादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२११॥

द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः २१२

जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! प्रथम प्रलय का प्रसंग पुनः श्रवण करो, मैं ब्रह्मपुरी में ब्रह्मा के पास बैठा था, जब नेत्र खोलकर देखा तब मध्याह्न का समय है, दूसरा सूर्य पश्चिम दिशा में आकर उदय हुआ है, उसका बड़ा प्रकाश देखा मानो सम्पूर्ण तेज इकट्ठा हुआ है, और बड़ा अग्नि की नाईं प्रकाश हुआ और बिजली की नाईं स्थित हुआ उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ, ऐसे देखता था तो एक और सूर्य उदय हुआ, पुनः उत्तर दिशा की ओर अन्य सूर्य उदय हुआ इसीप्रकार दश सूर्य आकाश में प्रकट हुए, और एक प्रथम था, एकादश सूर्य उदय होकर तपाने लगे, बारहवाँ बडनावल समुद्र से उदय हुआ, उससे एक सूर्य निकला, द्वादश इकट्ठे होकर विश्व को तपाने लगे, हे रामजी! प्रलय के तीन नेत्र आदि उदय हुए, एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र बडवाग्नि, तीसरा अग्नि बिजली हुई, तीनों नेत्र विश्व को जलाने लगे, दिशाए लाल हो गयीं, अट अट शब्द होने लगे, नगर, वन, कन्दरा, सब जलाने लगे, पृथ्वी क्षुब्ध होकर जलने लगी, देवताओं के स्थान जल जलकर गिरने लगे, पर्वत जलकर काले हो गये, ज्वाला के कण निकलकर पाताल को गये, पाताल जलने लगा, समुद्र जलकर सूख गये, हिमालय पर्वत बर्फ से जल बनकर जलने लगा, जैसे दुर्जनों के संग से साधु का हृदय तृप्त होता है, जब इसी प्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित हुई, तब मुझको भी तपश आने लगी, तब मैं वहाँ से दौड़कर नीचे जाकर स्थित हुआ, वहाँ मैंने देखा कि अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वत के पास आ पड़ा, मंदराचल जलकर गिरने लगा, सुमेरु गिरने लगा, अग्नि की ज्वालाएँ ऊर्ध्व को जाती थीं, भड़ भड़ शब्द होता था, हे रामजी! इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व जलने लगा, बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ, जहाँ कुछ रस था सब विरसता को प्राप्त हुआ, हे रामजी! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं, वह सब विरस है परन्तु अपने अपने काल

में रस संयुक्त दृष्टि आते हैं, जब मुझे ऐसा प्रतीत होता जैसे जली हुई वल्ली होती है, ऐसे सब विरस दृष्टि आते थे, हे रामजी! इस प्रकार सब विश्व जलता देखा, परन्तु ज्ञान से जिसका अज्ञान नाश हुआ है, उनको सुखी देखा, अन्य सब अग्नि में जलते दृष्टि आये, और बड़े भयानक शब्द होते थे, और सदा शिव के कैलास पर्वत तक अग्नि आती थी, तब सदाशिव ने अपने नेत्रों से अग्नि प्रकट की, उससे महान् क्षोभ हुआ, ब्रह्मांड जलने लगा, तब महापवन चला, बड़े बड़े पर्वत उड़ने लगे, जैसे तिनके उड़ते हैं, और स्थान जले थे उनकी अंधेरी होकर पुरियों के स्थान भी उड़ते जाते थे, बहुत बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ, इन्द्रादिक देवता अपने स्थानों को त्यागकर ब्रह्म लोक की शरण में जाने लगे, और बड़े बड़े मेघ जो पानी से पूर्ण थे, सूखकर जलने लगे, जलहीन हो गये, कल्परूप पुतली नृत्य करने लगी, जले स्थानों से धुआँ निकलता था, वह प्रलय की भयंकरता दिखा रहा है, बड़ा पवन चला, पर्वत जलकर उड़ने लगे, सुमेरु आदि पर्वत तिनकों के समान उड़ते जाते थे, जीव को इतना कष्ट प्राप्त हुआ कि कहा नहीं जाता।

इति श्रीयोगवसिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनं
नाम द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः ।।२१२।।

त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१३

ब्रह्मजलमयवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! अग्नि से सब स्थान जल गये, उसके अनन्तर प्रलय के महान् मेघ गर्जने लगे, और वरसने लगे, प्रथम मूसल की नाईं फिर स्तंभ की नाईं बरसने लगी, तदनन्तर नदी वर्षा तथा महानद वर्षा होने लगी, जिनकी गंगा यमुना नदी लहरें हैं, सब स्थान शीतल हो गये, जैसे अज्ञानी तीन ताप से जला हुआ, सत् पुरुषों के संग से स्वस्थ और शान्त होता है, ऐसे शीतल हो गये, हे रामजी! ऐसा जल

चढ़ा जिससे सुमेरु आदि पर्वत नृत्य करें, जैसे समुद्र में झाग होती है, ऐसे हो गये, पुनः कैसे दीखने लगी कि जैसे जलचर होते हैं, ऐसे पर्वत बहते जायँ। हे रामजी! ऐसा जल चढ़ा कि जो कहने में नहीं आता, बड़े बड़े स्थान बहते जायँ, देवता सिद्ध गन्धर्व बहते जाने लगे, जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकर सेवन करते हैं, वे भी बहुत दृष्टि आये, जैसे कोई कोई पुरुष कांटों भरे अन्धकूप में गिरते दुःख पाते हैं, ऐसे दृष्टि आते हैं, और मुझे सब ब्रह्म दृष्टि आने लगे, जब संकल्प की ओर देखता तब महाप्रलय दृष्टि पड़ता था, मेघ गर्जते, घटा बांधे दृष्टि आते, ब्रह्मलोक पर्यन्त जल चढ़ गया, मैं देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुआ।

इति श्रीयोगवसिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मजलमयवर्णनं
नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः ।।२१३।।

चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः २१४

वासनाक्षयप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ब्रह्मा का जगत् मैं देखूं तो भी जलमय हो गया, जल से इतर कुछ नहीं भासता, सब शून्य दीखता था, दिशा कोई नहीं दीखती, न ऊर्ध्व, न अधः न मध्य भासता था, न कोई तत्व भासता, न पर्वत भासता, सब ओर जल ही दीखता था, न कोई देवता न पशु, न पक्षी भासता, तब मैंने ब्रह्मपुरी को देखा कि क्या दशा है? जैसे प्रातःकाल का सूर्य अपनी प्रतिभा को पसारता है ऐसे ब्रह्मपुरी को दृष्टि पसारकर देखा, तब ब्रह्माजी मुझको परम समाधि में दृष्टि पड़े, और जो जीवमुक्त ब्रह्मा का परिवार था, सब पद्मासन से परम समाधि लगाकर बैठे जैसे–पत्थर के ऊपर मूर्तियां हों ऐसे सब परमसमाधि में अचल होकर बैठ गये, जो संवेदन फुरने से रहित स्थित हैं, वह किंचन कौन है, चारों वेद मूर्तिधारी स्थित हैं, शुक्र और बृहस्पति, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, चन्द्रमा, अग्नि देवता इत्यादि ऋषीवर मुनीश्वर जीवन्मुक्त जो थे

उन सबको मैंने ध्यान में स्थित देखा, द्वादश सूर्य जो विश्व को तपाते थे, पद्मासन बाँधकर समाधि में स्थित हुए हैं, एक मुहूर्त पर्यन्त मैं इसी प्रकार देखता रहा, जब एक मुहूर्त बीता तब सूर्य के बिना सब अन्तर्धान हो गये, जैसे स्वप्न की सृष्टि विद्यमान होती है, परन्तु जगने पर उसका अभाव हो जाता है, ऐसे ही सब अन्तर्धान हो गये, मेरे देखते देखते ब्रह्मपुरी शून्यवान की नाईं हो गयी, जैसे पत्तन राजमार्ग प्रलय हो जाते हैं, ऐसे प्रलय हो गयी, हे रामजी! जैसे स्वप्न में मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं और जगने पर उनका अभाव हो जाता है, यह दृष्टान्त तो बालक भी जानते हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभव को छिपाते हैं, वे मूर्ख हैं, मैं अनुभव से भी जानता हूँ और स्मृति भी होती है और सुना भी है, जब तक निद्रा है तब तक स्वप्न की सृष्टि भासती है, जगने से स्वप्न सृष्टि का अभाव हो जाता है, ऐसे ही जब तक ब्राह्मी वासना थी, तब तक सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई तब सृष्टि कहां रहे, जब वासना नष्ट हुई, तब अन्तवाहक अधिभूत शरीर नहीं रहते, हे रामजी! जब शुद्धमात्र पद से चित्तशक्ति फुरती है, तब पिण्डाकार हो भासती है, जब तक वह शरीर है तब तक संसार उत्पन्न होता भी है, नष्ट भी होता है, ऐसे ब्रह्मा की सुषुप्ति में जगत् लीन हो जाता है और जाग्रत में उत्पन्न होता है। जो ब्रह्मा का शरीर सुषुप्ति में लीन होता है, इसी का नाम प्रलय है और यदि कहो कि इस शरीर के नाश का नाम महाप्रलय है तो ऐसा नहीं क्योंकि जो मृतक हुए शरीर का नाश होता है और पुनः लोक भासता है, इसलिये इसका नाम महाप्रलय नहीं और जो कहें कि वह परलोक भ्रम मात्र है, ऐसे यह भी भ्रांतिमात्र है और जो कहो परलोक भ्रममात्र है, इसी का नाम महाप्रलय है, तो ऐसे नहीं क्योंकि जो श्रुति स्मृति पुराण सब कहते हैं कि महाप्रलय में कुछ नहीं रहता, आत्मसत्ता ही रहती है और जो कहें परलोक भ्रांतिमात्र है, इसका नाम होना क्या है, तो श्रुति शास्त्र का कहना व्यर्थ होता है और यदि इनका कहना व्यर्थ हो तो इसके कहने से ब्रह्माकार वृत्ति किसी को उत्पन्न न हो और यदि तुम कहो कि जैसे अंगोंवाला अंगों को सकुचा लेता है, ऐसे स्थूलभूत संकुचित होकर अपने

सूक्ष्म कारण में जाकर लीन होते हैं, इसी का नाम महाप्रलय है तो ऐसे भी नहीं, क्योंकि जो सूक्ष्म भूतों के रहते महाप्रलय नहीं होता और जो तुम कहो कि संवेदन जो अज्ञान है जिसमें अहं फुरता है, उस अज्ञान का नाम महाप्रलय है, तो यह भी नहीं, क्योंकि मूर्छा में इसका अज्ञान होता है, परन्तु पुनः सृष्टि भासती है और मृतक होती है, वह बड़ी मूर्छा है, उसमें भी पुनः पांच भौतिक शरीर भासते हैं और आगे जगत् भासता है इसलिये इसका नाम भी महाप्रलय नहीं और जो तू कहे जब तक यह पांचभौतिक शरीर है तब तक जगत् है, इसका अभाव हो तो महाप्रलय है, तो यह भी नहीं, क्योंकि जो शरीर को त्यागता है और उसकी क्रिया नहीं होती तो पिशाच होता है, इसका शरीर नीरूप होता है और तब सब मनुष्य हो जाते हैं, क्षत्रिय ब्राह्मण की संज्ञा नहीं रहती, इसलिये तुम देखो कि इस देह का नाम भी महाप्रलय नहीं और प्रमाद के विपर्यय का नाम भी महाप्रलय नहीं, महाप्रलय उसको कहते हैं, जो सर्वाभाव हो जाये, सबका अभाव तब होता है जब वासना क्षय हो जाती है, इसलिये वासना क्षय का नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं, जैसे जब तक निद्रा है तब तक स्वप्न का जगत् भासता है, जब जगा तब स्वप्न का अभाव हो जाता हैं, ऐसे जब तक वासना है तब तक जगत् है, जब वासना का क्षय हुआ तब जगत् का अभाव हो जाता है, हे रामजी! वासना भी फुरी नहीं, आभासमात्र है और यदि तुम कहो कि भासता क्यों है? तो जो कुछ भासता है वही अपने आप भाव में स्थित हैं, हे रामजी! भाव से उत्थान होने का नाम बन्धन है और उत्थान मिटने का नाम मोक्ष है, हे रामजी! नेत्रके खोलने और मूँदने में भी कुछ यत्न है और मुक्त होने में कुछ यत्न नहीं, वृत्ति बहिर्मुखी हुई तो बंधन हुआ और वृत्ति अन्तर्मुख हुई तो मुक्त हुआ, इसमें क्या यत्न है, इसलिये निर्वासनिक सुषुप्त की नाईं स्थित रहो, जब अहं संवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्य हो भासता है, आगे जो इच्छा है वह करो, जब अहं उत्थान से रहित होगा तब परम

निर्वाण पद को प्राप्त होगा, जहां एक और दो कल्पना कोई नहीं, परम शान्ति निर्विकल्प पद को प्राप्त होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे वासनाक्षयप्रतिपादनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः ।।२१४।।

पञ्चदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१५
जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये, जैसे तेल के बिना दीपक निर्वाण हो जाता है, ऐसे जब ब्रह्माजी ब्रह्मपद में निर्वाण हुए तब समुद्र उछले, ब्रह्मपुरी को अच्छादित कर लिया, द्वादश सूर्य पुनः ब्रह्मपुरी को जलाने लगे, जब सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी जल गयी, तब वह सूर्य भी ब्रह्मा की नाईं पद्मासन से स्थित हुए, जैसे तेल के बिना दीपक निर्वाण होता है, ऐसे द्वादश सूर्य भी निर्वाण हो गये, हे रामजी! जब द्वादश सूर्य निर्वाण हुए तब समुद्र उछले ब्रह्मपुरी को ढँक लिया, जैसे रात्रि में अन्धकार नगर को ढँक लेता है, ऐसे ब्रह्मपुरी को अच्छादित कर लिया, बड़े तरंग उछले, पुष्कर मेघ भी तरंगों से काटे गये, जलरूप हो गये, हे रामजी! तब एक पुरुष आकाश से निकला, वह मुझको दृष्टि पड़ा, महा भयानक श्यामरूप उग्र आकाश को भी उसने ढँक लिया, कृष्णमूर्ति रात्रि मानो कल्प पर्यन्त की इकट्ठी होकर स्थित हुई है, मुख से ज्वाला निकलती है और शरीर का बड़ा प्रकाश मानों कोटि सूर्य स्थित हैं, बिजली का प्रकाश इकट्ठा हुआ है, उसके पांच मुख हैं। दश भुजाएं हैं और तीन नेत्र मार्ग हैं। मानों तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं और हाथ में त्रिशूल है और आकाश की नाईं मूर्तिधारी है, जैसे क्षीर समुद्र के मथने को भुजाएं बड़ी कर के विष्णु ने शरीर धारण किया था और क्षीर समुद्र को क्षुब्ध किया था, वैसे नासिका के पवन से समुद्र को क्षोभ में प्राप्त किया, जैसा आकाश बड़ा वपु है, ऐसा स्वरूप धारण किया, मानों प्रलय काल

के समुद्र मूर्ति धारण करके स्थित हुए हैं, मानों सर्व अहंकार की समष्टिता स्थित हुई है, मानों महाप्रलय की बडवाग्नि मूर्ति धारण कर स्थित हुई है, मानों प्रलय के मेघ मूर्ति धारण कर स्थित हुए हैं, हे रामजी! मैं जानता हूँ कि यह महा रुद्र है, उसके हाथ में त्रिशूल है और तीन नेत्र हैं, पंख मुख हैं, इसलिये रुद्र है, ऐसा जानकर मैंने प्रणाम किया, रामजी बोले–हे भगवन्! उसका भयानक रूप क्या था और रुद्र किसको कहते हैं और बड़ा आकार क्या था, दश भुजाएं और पंचमुख क्या थे, तीन नेत्र क्या थे, हाथ में त्रिशूल क्या था और किसका भेजा आया था, उसने क्या किया और कहां गया, अकेला था अथवा और भी कोई साथ था और श्याम मूर्ति क्यों था? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! विषय में जो परिच्छिन्न अहंकार है वह त्यागने योग्य है और समष्टि अहंकार सेवन योग्य है, सर्व आत्मप्रतीति का नाम समष्टि अहंकार है, उसका नाम रुद्र है और कृष्ण मूर्ति इसलिये कि आकाशरूप है, जैसे आकाश में नीलता है, ऐसे उसमें कृष्णता है और सर्व जो जीव अपने अहंकार को त्याग कर निर्वाण हुए, उनकी समष्टिता होकर रुद्ररूप भासे, इसी से उग्र था और पंचमुख ज्ञान इन्द्रियों के समष्टिता और दश भुजाएं कर्म इन्द्रिय, पंचमुख की समष्टिता और सात्विक राजस तामस तीन गुण तीनों नेत्र हैं अथवा भूत भविष्य वर्तमान अथवा ऋग्, यजु, साम तीनों वेद नेत्र हैं, अथवा मन बुद्धि चित्त तीनों नेत्र थे, ओंकार की तीनों मात्राएं उसके नेत्र हैं, आकाश रूप वपु था, त्रिलोकी रूप हाथ में त्रिशूल थे और चित्त संवित् से फुरा था, उसी का भेजा आया था, फिर उसमें लीन होगा, केवल आकाशरूप था और जो कुछ उसने किया वह सुनो, हे रामजी! ऐसा जो रुद्र था, मानों आकाश को पंख लगे हैं, वही उड़ा है, उसने नेत्र और प्राणों को खैंच लिया, तब सब जल मुख में प्रवेश करने लगे, जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है, ऐसे सब जल में रुद्र लीन हुए, जैसे बडवाग्नि समुद्र को पान कर लेती है, ऐसे रुद्र ने एक मुहूर्त में सब जल को पान कर लिया, कहीं जल का अंश दृष्टि नहीं आता था, जैसे अन्धकार को सूर्य

निगल जाता है, ऐसे पान कर लिया, जैसे अज्ञानी का अज्ञान सत् पुरुष के संग से नष्ट हो जाता है, ऐसे जल को पान कर लिया, केवल शुद्ध आकाश हो गया, न कहीं पृथ्वी दृष्टि आवे, न अग्नि, न वायु, न कोई तत्व कहीं दृष्टि आता था, एक आकाश ही दृष्टि आता था, जैसे उज्ज्वल मोती होता है, ऐसे उज्ज्वल आकाश दृष्टि आता, अन्य चारों तत्व कहीं नहीं भासे, एक अधोभाग दृष्टि आये, मध्यभाग आकाश से रुद्र ही दृष्टि आये और एक ऊर्ध्वभाग दृष्टि आये, चौथा चिदाकाश दृष्टि आवे, जो सर्वात्मा है, अपर कुछ दृष्टि न आवे, हे रामजी! रुद्र भी आकाश रूप था, आकार कोई न था, भ्रांति से आकार भासता है, जैसे भ्रम से आकाश में नीलता तरवरे भासते हैं, जैसे स्वप्न में भ्रम से आकार भासते है, ऐसे रुद्र का आकार दृष्टि आया, केवल आत्मा आकाश से इतर कुछ न था, जैसे चिदाकाश में भूताकाश भ्रम से भासता है, ऐसे रुद्र का शरीर भासा, वह रुद्र सर्वात्मा था और आकाश होकर भासा, वह किंचन था, हे रामजी! आकाश में रुद्र निराधार भासा था, जैसे मेघ निराधार होते हैं, ऐसे निराधार दृष्टि आया था, श्रीराम बोले–हे भगवन्! इस ब्रह्मांड के ऊपर क्या है, फिर उसके ऊपर क्या है, वह कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह जो ब्रह्माण्ड का आकाश है, उस पर दस गुणा जल अवशेष है, जल के ऊपर दसगुणा अग्नि है, उसके ऊपर दसगुणा वायु है, उसके ऊपर दशगुणा आकाश है, राम बोले–हे भगवन्! यह तत्व जो तुमने वर्णन किये हैं वे किसके ऊपर हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह तत्व पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं और पृथ्वी भाग के आश्रय हैं, राम बोले–हे भगवन्! पृथ्वी आदिक तत्व सहित ब्रह्माण्ड किसके आश्रय है? निराधार किसके आश्रय स्थित हुआ है, उनका चलना ठहरना कैसे हुआ? नाश कैसे हुआ? कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! तुम कहो आकाश में मेघ किसके आश्रय होते हैं, सूर्य चन्द्रमा किसके आश्रय होते हैं, जैसे यह संकल्प के आश्रय हैं, ऐसे ब्रह्माण्ड भी संकल्प के आश्रय है, जैसे स्वप्न की सृष्टि होती है, उसे तुम देखो कि किसके आश्रय है, संकल्प के ही आश्रय है, क्यों? और संकल्प आत्मा के आश्रय है, ऐसे यह जगत्

और तत्व भी आत्मसत्ता के आश्रय स्थित है और इनका ठहरना गिरना भी आत्मा के आश्रय है, जैसे आदिचित्त स्पन्द होकर नीति हुई है, ऐसे ही है, इस प्रकार गिरना है, इस प्रकार ठहरना है, इस प्रकार इसका नाश होना है, इस प्रकार रहना है, ऐसे ही परमस्वरूप से इतर कुछ नहीं, केवल भ्रममात्र है, जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, चित्तसंवित् ही जगदाकार हो भासती है, जैसे आकाश में नीलता भासती है, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, जैसे तलवार में श्यामतां भासती है, ऐसे आत्मा में जगत् है, जैसे नेत्र दोष से आकाश में मोती भासते हैं, ऐसे ही आत्मा में जगत् भासता है और मिथ्या जगत् की संख्या करें तो नहीं होती, जैसे सूर्य की किरणों का आभास और रेत के कणों की संख्या नहीं होती, ऐसे जगत् की संख्या नहीं होती और वास्तव में कुछ बना नहीं, अजात जात है, जैसे स्वप्न में अन् होती सृष्टि भासती है, ऐसे यह जगत् भासता है, इसलिये दृश्य को मिथ्या जानकर जगत् की वासना त्यागो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जगन्मिथ्यात्व प्रतिपादनं नाम पंचदशाधिकाद्विशततमः सर्गः ।।२१५।।

षोडशाधिकद्विशततमः सर्गः २१६

देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! रुद्र तो बड़ा भयानक रूप मैंने देखा था, नेत्र बड़े तेज से पूर्ण, चन्द्रमा सूर्य अग्नि यह तीनों नेत्र हैं और बड़ा भयानक रूप मानो महाप्रलय के समुद्र मूर्ति धारण कर स्थित हुए हैं और रुंडमाला कंठ में धारण की हुई है, ऐसा रुद्र स्थित था, उसकी छाया जो निकलती थी, बड़ी और श्याम रंग की थी, उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि यहां सूर्य भी नहीं, अग्नि भी नहीं, अन्य किसी का नहीं, यह छाया किस प्रकार है और क्या है ऐसे देखता था कि छाया नृत्य

करने लगी, तब उस छाया से एक स्त्री निकली, जिसका शरीर दुर्बल जैसा नसें निकली हुई दृष्टि आती थीं। आकार बहुत ऊंचा, रंग काला मानों अंधेरी रात मूर्ति धारण कर स्थित हुई है, सुमेरु पर्वत के समान आकार, तीन नेत्र, बड़ी बड़ी भुजाएं, ऊंची ग्रीवा, मानो प्रलय काल के मेघ मूर्तिमान् होकर स्थित हुए हैं, गले में रुद्राक्ष की माला और रुंड माला पड़ी हुई है, ऐसे विकराल स्वरूप स्वभावयुत उसको देखा, उसकी बड़ी बड़ी भुजाएं और हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाण, ध्वज, ऊखल, मूसल आदिक आयुध हैं, ऐसा भयानक आकार देखकर मैंने विचार किया कि काली भवानी हैं, उसको जानकर नमस्कार किया, उनका बड़ा श्याम आकार है, जैसे आग से जले हुए पर्वतों के शिखर श्याम होते हैं, ऐसे श्याम आकार है, मस्तक में तीसरा नेत्र बड़वाग्नि की नाईं तेजवान् निकला है, कभी दो भुजाएं दृष्टि आतीं, कभी सहस्र भुजाएं दृष्टि आतीं, कभी अनन्त भुजाएं दृष्टि आतीं, कभी एक एक भुजा दृष्टि आती, कभी दो भुजाएं दृष्टि आतीं, कभी कोई भुजा दृष्टि नहीं आती, कभी शिर पाद कोई दृष्टि नहीं आता, एक ही रूप बहुत बड़ा भासे, इस प्रकार नृत्य करे, ज्यों ज्यों नृत्य करे, त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्टि पड़े, मानों आकाश को भी आच्छादित कर लिया है और दशों दिशाओं को आकार के साथ पूर्ण किया है। नख शिखा की मर्यादा कुछ दृष्टि नहीं आती, ऐसा आकार बढ़ाया, जब भुजा को हिलावे तब जानिये कि आकाश को मापती है, पाताल पर्यन्त चरण और आकाश जिसका शीश है और उदर उसका पृथ्वी है, सुमेरु आदिक पर्वत उसका नाभिस्थान हैं, दशों दिशाएं उसकी भुजाएं हैं, मानों प्रलय काल की मूर्ति धारण कर स्थित हुई हैं और बड़े पर्वत की कंदरावत् जिसकी नासिका है, लोकालोक पर्वत उसकी दाढ़ें हैं और कंठ में नदियों की माला है, जो जलाती है और कण्ठ में वरुण कुबेरादिक देवता के शिर की माला है, पवन नासिका के मार्ग से निकलता है, उससे सुमेरु आदि पर्वत तृण की नाईं उड़ें और ब्रह्माण्ड की माला गले में है, हाथों में ब्रह्माण्ड रूप भूषण हैं, कटि में ब्रह्माण्ड के घुंघुरू

तगड़ी हैं, जब नृत्य करें तब सब ब्रह्माण्ड नृत्य करता है, जैसे पवन से पत्र नृत्य करते हैं, ऐसे सुमेरु आदि नृत्य करते हैं, एक एक रोम में ब्रह्माण्ड है जैसे तारागण वायु के अधीन हैं और कान में धर्म अधर्मरूपी मुद्राएं हैं, बड़े कान हैं और बड़ा मुख है, मानों सम्पूर्ण ब्रह्मांड को भक्षण करता है और धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों स्थान हैं और स्थान में चारों वेद हैं और शास्त्रार्थ रूप दूध निकलता है और अपर भी सब जगत् की मर्यादा मुझको इसी में दृष्टि आती है, हंसे और नृत्य करने से कोई ब्रह्माण्ड नृत्य करें, अस्ताचल आदिक पर्वत तिनकों की नाईं नृत्य करें। सब कुछ विपर्यय होता दृष्टि आता, उसके शरीर में आकाश अधः को दृष्टि आता और पृथ्वी ऊर्ध्व को दृष्टि आती, तारामण्डल सिद्ध देवता विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जंगम सब उसमें दृष्टि आते, मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का आदर्श है, भुजा के उछलने से चन्द्रमा की नाईं नख का प्रकाश होता था, मन्दराचल, उदयाचल पर्वत कान में भूषण दृष्टि आते थे, हिमालय बर्फ के एक कण के समान दृष्टि आता था, हे रामजी! इस प्रकार देवी के शरीर में मुझको अनंत सृष्टि आती थी, कहीं इकट्ठी, कहीं भिन्न दृष्टि आई, कहीं एक ही जैसी चेष्टा करे, कहीं भिन्न भिन्न चेष्टा करे, मानो ब्रह्माण्डरूप रत्नों का डब्बा है, हे रामजी! जब संकल्प सहित देखूं तब मुझको सृष्टि दृष्टि आती थी, जब आत्मा की ओर देखूं तब केवल आत्मरूप भासे, अपर कुछ दृष्टि नहीं आता था और संकल्प दृढ़ करे संपूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्टि आता, जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय सब उसमें ही दृष्टि आते, जो कुछ क्रिया है वह उससे ही होती दृष्टि आती, सिद्ध, देवता, गंधर्व, अप्सरा, विमान पर आरूढ़ फिरें, नक्षत्र चक्र घूमते दृष्टि आते, मानों ब्रह्माण्ड पुनः उदय हुए हैं, जब आत्मदृष्टि से देखता था तो ब्रह्मस्वरूप भासते और जब संकल्प दृष्टि से जगत् प्रतीति होती थी, वह चित्तकला जो संकल्परूप है, उसमें सब ही दृष्टि आते, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, आदि सब उसमें दृष्टि आते, जैसे–मच्छर वायु से उड़ते हैं ऐसे अनन्त सृष्टि उसके शरीर में उड़ती दृष्टि आती थी, मैं महान् आश्चर्य को प्राप्त हुआ कि वह भैरव

था और यह भैरवी इसकी शक्ति है, दोनों मुझको दृष्टि आते, बड़े वपुर्धारी हैं, यह नित्य शक्ति सर्वात्मा है, परमात्मा की क्रिया शक्ति सर्व विश्व को अपने आप में जाने, जैसे तीर्थ समुद्र सब तरंगों को अपने में अपना आप जानता है, ऐसे सर्व ब्रह्माण्ड को अपने में अपना आप जानती थी और सदाशिव से भी बड़े अहंकार को धारण मानों सर्व ब्रह्माण्डों की माला कंठ में डाली हो और यमादिक सब उसकी मर्यादा हैं, हे रामजी! इस प्रकार मैंने रुद्र और काली भवानी को देखा, रुद्र के सिर पर मोर के पंख की नाईं जटाएं हैं और काली को मैंने देखा कि नाना प्रकार के भृंग, दम दम सो शब्द करती हैं, पुनः उसने जो शब्द किया, उसको सुनो "दिग्वं दिग्वं तुदिग्वं पंचमना वह संमंम प्रलय मिव तुय ।। त्रि पंत्रि त्रीलं त्रीषलुं षलुभं षनुषं सुमं षषमष श्रिगु ही गुंही, उगु, मियुंग दलुम ददारी मीता तंदती" हे रामजी! इस प्रकार के शब्द करती हुई श्मशान में नृत्य करती थी, हे रामजी! ऐसी देवी तुम्हारी सहायता करे, जो सर्व शक्ति परमात्मा है सब ब्रह्माण्ड उसके आश्रय क्षण में अंगुष्ठ प्रमाण हो जाय, क्षण में दीर्घ आकार को धारण करे, सब जगत् में जो क्रिया होती है उसके आश्रय होती है, कहीं उत्पत्ति होती है, कहीं शुद्ध होते हैं, नाना प्रकार की क्रिया उस देवी के आश्रय होती है, जैसे आदर्श में प्रतिबिंब होता है ऐसे देवी में क्रिया होती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनं
नाम षोडशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१६॥

सप्तदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१७

अन्तरोपाख्यानवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! यह जो तुमने रुद्र और कालिका का वर्णन किया है, वे कौन थे, महाप्रलय में तो रहता कुछ नहीं, यह काली कौन थी? उसके शरीर में तुमने सृष्टि कैसे देखी, महाप्रलय होकर उसके

शरीर में सृष्टि कैसे प्रवेश किया और उसके हाथ में बहुरियादिक शस्त्र क्या थे? कहां से आई थी और उसका आकार क्या था? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! न कोई रुद्र है न काली है, न कोई पुरुष है न कोई स्त्री है, न कोई नपुंसक है न पुरुष मिलकर कुछ हुआ है न ब्रह्मांड है न पिंड है केवल चिदाकाश है संकल्प से उत्पन्न हुए आकार भासते हैं, जैसे स्वप्न में आकार भासते हैं वैसे वे आकार भी भासे, वास्तव से केवल चिदाकाश ज्यों का त्यों है, हे रामजी! आत्मपद कैसा अनन्त चेतन है, सत्य प्रकाशरूप है, अविनाशी है, अपने आप स्वभाव स्थित है और रुद्र देव का आकार जैसे प्रतीत हुआ था, वह चेतन आत्मा ही ऐसा होकर भासता था। कोई अन्य आकार नहीं था, जैसे स्वर्ण ही भूषण होकर भासता है, ऐसे परम चिदाकाश ऐसा होकर भासा था क्योंकि चेतन स्वरूप है, जैसे मधुरता गन्ने का स्वरूप है, ऐसे आत्मा का चेतन स्वरूप है, हे रामजी! चेतन सत्ता अपने स्वरूप को नहीं त्यागती और आकार होकर भासती है, सदा अपने आपमें स्थित है, जैसे गन्ने के रस में मधुरता न हो तो उसको रस नहीं कहते, ऐसे आत्मसत्ता में चेतनता न हो तो चेतन कोई न कहे, यदि आत्मा चेतनता को त्यागे तो परिणामी हो, परन्तु सदा अपने आप स्वभाव में स्थित है, किसी अन्य अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, इसीसे कहा है, जो कुछ भासता है वह आत्मा का किंचन है, हे रामजी! जैसे गन्ने के रस में मधुरता होती है, ऐसे आत्मा में चेतनता है, चेतन मात्र में एक चैत्य का लक्षण रहता है, चेतनतारूप यह जगत् इससे अभावरूप मालूम पड़ता है और यदि शुद्ध चिन्मात्र में चित्त का उत्थान नहीं होता तो जगद्भावना मालूम किया जाता और आत्मसत्ता दोनों अवस्थाओं में ज्यों की त्यों है, जैसे वायु स्पन्द होता है, तब स्पर्शरूप उसका लक्षण भासता है और जब निस्पन्द होता है तब उसमें शब्द कोई नहीं प्रवेश कर सकता और वायु दोनों अवस्थाओंमें तुल्य है, ऐसे शुद्ध चेतन में किसी शब्द का प्रवेश नहीं, चेतनता भाव में है और आत्मसत्ता सदा तुल्य है, इसलिये वस्तुतः यह जगत् ही नहीं, हे रामजी! आदि,

मध्य, अन्त, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्य, असत्य, प्रकाश, अंधकार, पंडित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नाम, कर्म, रूप, अवलोकन, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, बन्ध, मोक्ष, जड़, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना, जगत् अजगत् है, नहीं बढ़ना, घटना, मैं, तू, वेद शास्त्र, पुराण, मंत्र, अकार, उकार, मकार, जयनाम आदिक, स्थावर, जंगम जगत् क्रिया, सब ब्रह्म स्वरूप है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं, जैसे समुद्र में तरंग बुद्बुदे, आवर्त सब जलरूप हैं, ऐसे सब ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में पर्वत भासते हैं, वे अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, जैसे सूर्य की किरणें जलरूप होकर भासती हैं, ऐसे आत्मसत्ता जगत्रूप होकर भासती है, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, आदिक जितने शब्द हैं, वे सब ब्रह्मसत्ता हो ऐसे होकर स्थित हुई है, परन्तु सदा अपने आपमें ज्यों की त्यों है, कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त हुई, वह सत्ता सबकी आत्मा है, जैसे समुद्र अपने तरंग भाव को त्यागे, तब अपने सौम्यभाव में स्थित हो, ऐसे ब्रह्मासत्ता फुरने को त्यागे तब अपने स्वभाव में स्थित हो, वह अनामय है, अर्थात् दुःख से रहित है, परम शान्तिरूप है, अनन्त है, निर्विकार है, जब इस प्रकार बोध हो, तब उस ब्रह्मसत्ता को प्राप्त हो और बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही है, जैसे जल और समुद्र की संज्ञा कही है और तरंग शब्द कहने से विलक्षण भासता है, जब जल तरंग बुद्धि को त्यागे तब केवल समुद्ररूप है, ऐसे यह जीव जब अपने जीवत्व भाव को त्यागे तब आत्मरूप समुद्र को प्राप्त हो, जीवत्व अर्थात् दृश्य के सम्बन्ध को जब यह जन त्यागेगा तब आत्मरूप होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अन्तरोपाख्यानवर्णनं
नाम सप्तदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१७॥

अष्टादशाधिकद्विशततमः सर्गः २१८

पुरुषप्रकृतिविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले– हे रामजी! तुझको जो चिदाकाश कहा है, वह परम चिदाकाश है और सदा अपने आपमें स्थित है, हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश मैंने तेरे लिये कहा है, वही यह रुद्ररूप है, वही नृत्य करता था, वहां आकार कोई न था, केवल चिद्घन सत्ता थी, वही ऐसी होकर किंचन होती थी, हे रामजी! जब आत्मदृष्टि से देखता था तब मुझे चिदाकाशरूप ही भासा था, हे रामजी! मेरे जैसा ही वही ऐसा रूप देखे, अन्य नहीं देख सके, हे रामजी! जिसका नाम कल्पान्त कहाता है, वही रुद्र और भैरव है, वह कल्पान्त की मूर्ति नृत्यकर के अन्तर्धान हो गयी और वास्तव से क्या रूप था? माया मात्र था, चेतन सत्ता के आश्रय से नाचते हैं, हे रामजी! जैसे सोने में भूषण हैं, परन्तु सोने विना नहीं होते, ऐसे चेतनता किंचन से जगत् भासता है, पुनः वही प्रमाद से अधिभूत हो जाता है और वास्तव से शुद्ध चिदाकाशरूप है, चेतनता से वही जगत् रूप हो भासता है, रामजी बोले–हे भगवन्! पहिले आपने आत्मतत्व अद्वैत कहा, यह जगत् प्रमाद से नाम रूप कल्पित है और जो है तो कल्प के अन्त में नाश हो जाता है, अद्वैत सत्ता रहती है, रामजी ने फिर कहा–चैत्यता से जगत् भासता है, वह अद्वैत में चैत्यता कैसे हुई और चेतनेवाला कौन हुआ, प्रलय के अनन्तर काली कैसे भासी? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! न कोई चेतन है कोई चैत्यता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, चेतनघन है परम निर्मल है और शान्तरूप है और शिवतत्व भी उसीको कहते हैं, वही शिवतत्व रुद्र आकार को धारण किये हुए दृष्टि आया है, दूसरा कुछ नहीं, केवल परम चिदाकाश है, वही चिदाकाश आकार होकर भासा है और आकार कुछ हुआ नहीं, न भैरव है न भैरवी है, न काली है न यह जगत् है, सब माया मात्र है, जैसे स्वप्न में आत्मसत्ता चैत्यता करके जगत् रूप हो भासती है, स्वरूप से न कुछ

चैत्यता है, न जगत् है आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, ऐसे इस जगत् को भी जानिये। अन्य कुछ हुआ नहीं अद्वैत सत्ता ही है, उसमें चैत्य और चेतन हारे के विषय में मैं तुझको क्या कहूं, सब वृत्ति से भासते हैं, आत्मा में इनकी उत्पत्ति नहीं हुई, केवल स्वच्छ चिदाकाश है, हमको तो सदा वही स्वरूप भासता है, अज्ञानी को नाना प्रकार का जगत् भासता है और आत्मा सदा एकरस है, चिन्तन से उसमें आकार भासते हैं, भैरव और काली सब निराकार हैं, भ्रांति से आकार भासते हैं, जैसे मनोराज्य में युद्ध भासते हैं, जैसे कथा के अर्थ भासते हैं, वह अनहोते संकल्प होते हैं, ऐसे चिदात्मा में यह जगत् भासता है, जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं ऐसे यह आकार भासते हैं, हे रामजी! यह जो जगदिग्प्रलय महाप्रलय के शब्द हैं उनका नाश करने के लिये तुम्हें कहता हूं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, चेतनता का अभाव कभी नहीं, अपने आप में स्थित है और किंचन है, जैसे सूर्य की किरणें किंचन रूप होती हैं, इनमें जल भासता है, ऐसे चैतन्य का किंचन जगत् भासता है, वही महाप्रलय में रुद्र और भैरवी हो भासती है, न कुछ रुद्र है न काली है, सर्व आत्मा ही है, हे रामजी! जो कुछ कहना सुनना होता है, वाच्य वाचक से कहता है, आत्मा में कहना सुनना कुछ नहीं, वही चिदाकाश संकल्प से रुद्र नृत्य करता है, जैसे स्वर्णभूषण होकर भासता है, ऐसे ही चिदाकाश संकल्प से आकार होकर भासता है, दूसरा कुछ बना नहीं, मैं तू और जगत् चैत्य अचैत्य सब वही रूप है, उसमें कोई शब्द फुरा नहीं, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के शब्द भासते हैं, वे कोई वास्तविक नहीं, पत्थर की नाईं मौन हैं, ऐसे जाग्रत् जगत् में भी जितने शब्द होते हैं सब स्वप्न हैं, कुछ हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है ऐसे ही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, जहां न एक है न द्वैत है, न सत्य है न असत्य है न चित् है न चैत्य है, न मौन है न अमौन है, न कोई चेतनेवाला है, चैत्य के अभाववत् है वह क्यों है? केवल अचैत्य चिन्मात्र आत्मसत्ता है, निर्विकल्प रूप है, हे रामजी! सबसे बड़ा शास्त्र

का सिद्धान्त यही है, इस दृष्टिं मौन में तुम स्थित रहो, हे रामजी! सर्व सिद्धान्त की समता यही है कि निर्विकल्प होना, उस निर्विकल्प समाधि में स्थित होना, यह सबका सिद्धान्त है, जैसे पत्थर की शिला परम मौन होती है, ऐसे चैत्य से रहित होना और जो कुछ प्रत्यक्ष आचार आकर प्राप्त हो उसमें प्रवृत्त होना, सदा आत्मनिश्चय रहना इसका नाम परम मौन है, सब क्रियाएं होती रहें और अपने में कुछ न देखना, जैसे नट स्वांग ले आता है उसके अनुसार विचरता है, परन्तु निश्चय उसका आदि ही वपु में होता है और चलायमान नहीं होता, ऐसे जो कुछ अनिश्चित आकार प्राप्त हो उसको यथा शास्त्र करना परन्तु अपने निर्गुण निष्क्रिय स्वरूप से विचलित न होना और अद्वैत स्वरूप में स्थित रहना पड़ता है। रामजी बोले–हे भगवन्! रुद्र क्या था और काली शक्ति क्या थी और उसके अंग जो बढ़ते घटते थे क्या थे? और नृत्य करना क्या था, वस्त्र क्या थे, कहिये, वसिष्ठजी बोले– हे रामजी! शिव तत्व ही आकार होकर भासता है, अन्य आकार कोई नहीं, वह शिव तत्व कैसा है? चिन्मात्र है अमल है, विद्या अविद्या के कार्य से रहित शान्त अवाच्यपद कहते हैं, यह संज्ञा भी संकल्प में तुझको कही है, आत्मवेत्ता आत्मपद को अवाच्यपद कहते हैं, तथापि कुछ मैं कहता हूं। हे रामजी! केवल आत्मतत्व मात्र चिदाकाश है, वही शिव भैरव है, उसके चमत्कार का नाम चिच्छक्ति है, उसीका नाम काली है, उसमें आत्मा में और शिव रूप में तथा काली में भेद कुछ नहीं, जैसे पवन और स्पंद में भेद कुछ नहीं अग्नि और उष्णता में भेद कुछ नहीं, ऐसेही चित्तकला और आत्मा में भेद कुछ नहीं, जैसे पवन जब निस्पन्द होता है, तब उसका लक्षण नहीं होला, अवाचक रूप होता है और जब स्पन्द होता है, तब उसका लक्षण भी होता है, उसमें शब्द प्रवेश करता है, ऐसे चित्तशक्ति से उसका लक्षण होता है, आगे उसके अनेक नाम हैं, इसीका नाम स्पन्द है, इच्छा है, इसीको चैत्योन्मुखत्व से वासना कहते हैं, इसीके स्वाद की इच्छा से जब चित्तसंवित् में वासना फुरी तब उसका नाम वासना करनेवाला वासक

कहाता है, फिर आगे चलकर जब वासना से त्रिपुटी हो जाती है तब वासक को जीव कहते हैं, जीवत्व भाव लेकर स्थित होती है, जब यह इच्छा इसको होती है कि मैं जीव हूं मेरा नाश कदाचित् न हो, इस इच्छा से जीव कहता है, ऐसी संज्ञा चिच्छक्ति की होती है, वह स्पन्द में होती है और शिवतत्व अफुर हैं, अचैत्य शक्ति में फुरणे की नाईं स्थित है, जैसे सूर्य की किरणों में जल है नहीं, हुए की नाईं भासता है, ऐसे यह जगत् है नहीं और हुए की नाईं प्रतीत होता है, उसमें यह संज्ञा देते हैं काली जो परमात्मा की क्रिया शक्ति है, वह प्रथम तो कारण रूप प्रकृति है, सब उससे हैं, इसीसे प्रकृति रूप है, विकृति नहीं, अर्थात् किसी का कार्य नहीं और महदादिक पंचभूत महातत्व और बुद्धि अहंकार सप्त प्रकृति विकृति हैं, अर्थात् यह कार्य भी है कारण भी है, कार्य आदिक देवोंके हैं और कारण षोडश हैं पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय पांच प्राण एक मन इनके कारण सप्तदश हैं और षोडश हैं, वह विकृत हैं, अर्थात् कार्य रूप हैं, कारण किसीका नहीं और पुरुष हैं, जो परमात्मा अद्वैत अचिन्त्य चिन्मात्र है, न किसीका कारण है न कार्य है, अपने आपमें स्थित है, इसलिये जितनी द्वैत कलना है कारण कार्य रूप वह सब चित्त शक्ति में स्थित है जब यह निस्पन्द होती है तब शिवपद तत्व में निर्वाण हो जाती है, कारण कार्यरूप भ्रम सब मिट जाता है, केवल आकाशवत् शेष रहता है, वह शुद्ध है अद्वैत है अचैत्य चिन्मात्र सदा अपने आप भाव में स्थित है, उसकी क्रिया शक्ति स्पन्दरूप इतनी संज्ञा है, पहिले तो सबका कारण रूप प्रकृति है और शोषरूप है, अर्थात् जैसे वडवाग्नि समुद्र को सुखाती है, ऐसे ही जगत् को सुखाती है और सिद्धि है, सिद्ध आश्रय लेकर आराधना करते हैं, जयंती है, अर्थात् जिसकी सदैव जय है, चंडिका है, जिसको क्रोध से जगत् प्रलय होता है और भयभीत होता है, वीर्य है अर्थात् जो अनन्त वीर्य का भंडार है दुर्गा है, अर्थात् जिसका रूप दुर्गम्य है, गायत्री है–अर्थात् जिसके गायन करने से संसार समुद्र से रक्षा होती है, सावित्री है–जगत् का पालन करती है और कुमारी है, अर्थात् कोमल स्वभाव वाली है, गौरी है–जिसके अंग गौरवर्ण हैं, शिवा है जिसके अर्द्धांग में

शिव निवास करते हैं, विजया है—सब जगत् को जीत रही है और स्वशक्ति है, अद्वैत आत्मा में जिसने विलास रचा है और इन्द्र सारा है, आत्मरूप इन्द्र तथा उसके सार तीनों मात्राओं अकार उकार मकार का अधिष्ठान है, हे रामजी! राजसी तामसी सात्विकी तीन प्रकार की क्रियाएं होती हैं वे इसीसे होती हैं, यह सब संज्ञा क्रिया शक्ति की कही है, अब शस्त्र और बढ़ना घटना उसको सुनो! हे रामजी! नित्य जो करती थी वह क्रिया है, वह क्रिया सात्विकी राजसी तामसी तीन प्रकार की है, ग्राम पुर नगर यह गुसल है, अंग उसके सृष्टि है जब शिव से अलग होती थी तब अंग बहुत हो जाते थे, जब शिवकी ओर आती थी तब सृष्टिरूप अंग थोड़े हो जाते थे और जब शिवसे आकर मिल जाती थी, तब शिवरूप हो जाती थी, सृष्टिरूप कोई अंग नहीं रहते थे, यह तो आत्मा की काली शक्ति की क्रिया का वर्णन तुझको सुनाया है, अब शिव का वर्णन सुनो, वाणी से अतीत है, तथापि कुछ कहता हूं, परम शुद्ध है, निर्मल है, अच्युत है, उसमें कुछ हुआ नहीं, क्रियाशक्ति के फुरने से जगत् हो भासता है, जब अपने अधिष्ठान की ओर देखता है, तब अपना स्वरूप दृष्टि आता है, क्रिया शक्ति और आत्मा में भेद कुछ नहीं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं क्योंकि आकाश का अंग शून्यता है, जैसे अवयवी और अवयव में भेद कुछ नहीं, जैसे अग्नि का रूप उष्णता है, ऐसे आत्मा का स्वभाव चिच्छक्ति है और उसका नाम काली है, जो कृष्णरूप है, जैसे आकाश ऊर्ध्व को श्याम भासता है, ऐसे ही यह आकाश वपु है, जैसे आकाश निराकार है, ऐसीही काली निराकार श्यामा भासती है, आकाश की नाईं उसका वपु है, इसलिये इसका नाम कृष्ण वपु है और काली जगत् के नाश के अर्थ है, वह जब स्वरूप की ओर आती है तब जगत् का नाश करती है, हे रामजी! स्पंदशक्ति जब तक शिव से अलग है, तब तक जगत् को रचती है, जहां यह है वहां जगत् है जगत् से विलक्षण नहीं रहती जैसे जहां सूर्य की किरणें हैं वहां जलाभास होता है, किरणों के बिना जलाभास नहीं रहता, ऐसे स्पंदशक्ति जगत् बिना नहीं

रहती, जैसे आकाश के अंग आकाश हैं, ऐसे इसके अंग जगत् हैं, जैसे समुद्र में तरंग समुद्ररूप हैं, ऐसे जगत् इसका रूप है और यह शक्ति चिदाकाश है, व्यतिरेक नहीं जब यह फुरती है तब जगदाकार हो भासती है, जब शिव की ओर आती है तब शिवरूप हो जाती है, जगदाभास कोई नहीं रहता, इसलिये हे रामजी! तुम्हारी चिच्छक्ति तुम्हारी ओर आवे तब जगद्भ्रम मिट जाय, इस चिच्छक्ति ने जगद्भ्रम रचा है, शिवपूजा है वह निर्मल शान्तरूप है, अजर अमर है, अचेत्य चिन्मात्र है, उसमें कुछ क्षोभ नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है, रामजी बोले—हे भगवन्! तुमने जो काली के अंग की सृष्टि देखी, वह आत्मा में सत्य है, अथवा असत्य है, यह कहो। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह काली देवी आत्मा की क्रियाशक्ति है, अर्थात् जो स्फुरण शक्ति है उससे आत्मा में सत्य है और वास्तव से आत्मा में कुछ नहीं, मिथ्या है, जैसे तुम मनोराज्य से अपने आपमें दूसरे की कल्पना करो तो वह कुछ नहीं, परन्तु उस समय सत्य भासता है, ऐसे ही जितनी सृष्टि है वह आत्मा में सत्य कोई नहीं परन्तु चिच्छक्ति से वसती दृष्टि आती हैं, जैसे कुछ विधि निषेध पदार्थ हैं, आकाश पर्वत समुद्र, वन जगत् तीर्थ कर्म बंध, मोक्ष, गुरु और शास्त्र युद्ध शस्त्र आदिक जो भासते हैं, वे सब चिदाकाश ब्रह्मस्वरूप हैं, वास्तव से इनका होना ब्रह्म से भिन्न नहीं, सर्व प्रकार सर्व काल आत्मा अपने आपमें स्थित है, शुद्ध अद्वैत निराकार है, निर्विकार हैं, ज्यों का त्यों है, जगत् उसमें कोई नहीं उत्पन्न हुआ, सब जगत् आत्मा में क्रिया शक्ति रची है, वह माया काल में सत्य है, वास्तव से कुछ नहीं, जैसे किसी पुरुष को स्वप्न में सृष्टि भासती है, उसके शरीर को कोई हिलावे तो वह नहीं जगता, जो कुछ सृष्टि होती है तो हिलाने से कोई स्थान गिर पड़ती है, इससे नाश किसी का नहीं होता वास्तव कुछ नहीं, हे रामजी! वह सृष्टि उसके चित्त स्पंद में स्थित है प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है, परन्तु जब तक निद्रा है, तब तक सृष्टि है, जब निद्रा निवृत्त हुई तब स्वप्न सृष्टि नहीं भासती, ऐसे यह कार्य सृष्टि कुछ वास्तव

नहीं, अज्ञान से चिच्छक्ति से भासती है, हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं, चित्त के फुरने में भासते हैं जिसका संकल्प शुद्ध होता है, उसके मनोराज्य की सृष्टि देशकाल से प्रत्यक्ष होती है तो संकल्परूप होती है बना कुछ नहीं, जब संकल्प फुरता है, तब संकल्प के अनुसार सृष्टि भासती है, इसलिये संकल्परूप हुई, क्यों अदृष्ट पदार्थ होता है, जब उसकी सत्यता हृदयमें होती है तब उसकी सत्यता हृदयमें होती हैं, तब इसका अर्थ हृदयमें अनुभव होता है, जैसे परलोक अदृष्ट है जब उसकी सत्यता हृदयमें होती है तब उसका रागद्वेष हृदय में फुरता है, क्योंकि जो संकल्प में उसका भाव खड़ा है, ऐसे जब तक चित्त स्पंद फुरता है तब तक जगत् सब खड़ा है, जब चित्त निस्पंद होता है तब जगत् की सत्यता नहीं भासतीं, हे रामजी! जितना कुछ जगत् भासता है, वह सर्व क्रिया शक्ति ने आत्मा में रचा है, जब तक यह काली क्रिया शक्ति शिव से व्यतिरेक होती है, तब तक नाना प्रकार के जगत् रचती है और क्षोभ को प्राप्त होती है और जब शिव की ओर आती है तब शान्तरूप हो जाती है पुनः उसकी प्रकृति संज्ञा नहीं रहती अद्वैत तत्व में अद्वैत रूप हो जाती है, जैसे जब तक पवन चलता है, तब तक शीत उष्ण सुगन्ध दुर्गन्ध बड़ा छोटा संज्ञाएं होती हैं और जब ठहरता है तब कहा नहीं जाता कि ऐसा है, अथवा ऐसा है, ऐसे जब तक चिच्छक्ति स्पन्द रूप होती है तब तक जगत् को रचती और प्रकृत कारणरूप कहाती है, उसमें दो प्रकार के शब्द होते हैं, विद्या और अविद्या रूप पड़े निकलते हैं, हे रामजी! जो कुछ कहना होता है, वह स्पंदरूप जो चित्र लेखा है, उसमें है और जब शिव तत्व में अंकुर होती है तब अद्वैत रूप हो जाती है, वहां किसी शब्द की गति नहीं, हे रामजी! शिव क्या है और शक्ति क्या है सुनो जितने जीव हैं सब शिवरूप हैं, इनके चित्त के फुरन ही कालीरूप हैं, अथवा चित्तशक्ति कहिये जब तक इच्छा से चित्तशक्ति बाहिर फुरती है तब तक भ्रम का अन्त नहीं होता और जब चित्तशक्ति उलटकर अधिष्ठान को देखती है, तब जगद्भ्रम

निवृत्त हो जाता है, परम शान्ति को प्राप्त होता है, हे रामजी! आत्मा और चित् संवित में भेद कुछ नहीं, जैसे वायु को स्पंद निस्पंद में भेद कुछ नहीं परन्तु स्पन्द होता है, तब जानता है और निस्पंद होता है तब नहीं जानता, ऐसे चित्त संवित् जब फुरता है, तब जानता है और नहीं फुरता तब नहीं जानता और जानना न जानना दोनों नहीं रहते, हे रामजी! जब तक इच्छाशक्ति शिव की ओर नहीं देखती तब तक नाना प्रकार का नृत्य करती है, अर्थात् जगत् को रचती है और जब शिव की ओर देखती है तब इसका नृत्य विरस हो जाता है और सब अंग इसके सूक्ष्म हो जाते हैं, हे रामजी! इस काली का जो आकार था, वह अप्रमाण था, मापा नहीं जा सकता था और शिवकी ओर देखनेसे सूक्ष्म हो गया, पहिले पर्वत समान हुआ, पुनः निकट आई तब ग्राम के समान हुआ, तदनंतर वृक्ष के समान हुआ, जब और पास आयी तब सूक्ष्म आकार हुआ, जब शिव के साथ मिली तब शास्त्र शिवरूप हो गयी, इसका जो विलास है वह शून्य हो जाता है और परमशान्त शिवपद को प्राप्त होती है, रामजी बोले—हे मुनिवर! यह जो परमेश्वरी काली शक्ति है, वह उसको मिलकर शान्त कैसे हुई, कहिये, वसिष्ठजी बोले—हे राम! देवी परमात्मा की इच्छा शक्ति है और जगन्माता इसका नाम है, जब तक शिवतत्व से अलग होती है, तब तक जगत् को रचती है, जब अपने अधिष्ठान की ओर आती है जो नित्य तृप्त है और अनामय है, निर्विकार है, परम शान्तरूप द्वैत भाव से रहित है, तब परम शान्ति को प्राप्त होती है, प्रकृति संज्ञा इसकी जाती रहती है, जैसे नदी जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं हुई, तब तक दौड़ती रहती है और शब्द करती है, जब समुद्र को प्राप्त होती है तब शब्द करना और दौड़ना बन्द हो जाता है और नदी संज्ञा भी नहीं रहती, समुद्र को मिलकर परम गम्भीर समुद्ररूप हो जाती है, ऐसे ही जब तक चित्तशक्ति शिव से अलग होती है, तब तक जगद्भ्रम को रचती है, जब शिव तत्व को मिलती है, तो शिवरूप हो जाती है और द्वैत भ्रम मिट जाता है, हे रामजी! जब यह चित्तशक्ति शिवपद में लीन हो जाती है, तब पहिले तो देह इंद्रियों के साथ तद्रूप हुई थी, इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में आपको

सुखी दुःखी मानती थी और रागद्वेष जानती थी, जो नित्य तृप्त अनामय पद के मिलने से सुख दुःख से रहित होती है, क्योंकि जो अनात्मदेह इन्द्रियों की तद्रूपता अभावरूप हो जाती है और आत्मतत्व के साथ तद्रूप होती है, जैसे पत्थर की शिला के साथ मिलकर खड्ग की धारा तीक्ष्ण होती है, ऐसे चित्तसंवित् जब आत्मपद में मिलती है, तब एक अद्वैत रूप हो जाती है, आत्मपद के स्पर्श से अनात्मभाव का त्याग करती है, जैसे लोहा पारस के स्पर्श से सोना बन जाता है फिर लोहा नहीं होता, ऐसे यह वृत्ति अनात्म भाव को नहीं प्राप्त होती और यह चित्तकला तब तक विषय की ओर दौड़ती है, जब तक अपने वास्तव स्वरूप को नहीं प्राप्त हुई, जब अपने वास्तव स्वरूप को प्राप्त होती है तब विषयों की ओर नहीं दौड़ती, जैसे जिस पुरुष को अमृत प्राप्त हुआ है और उसके स्वाद का अनुभव हुआ है, तब वह नीमपान करने की इच्छा नहीं करता, ऐसे ही जिसको आत्मानन्द प्राप्त हुआ वह विषय के सुख की इच्छा नहीं करता, हे रामजी! यह संसारभ्रम चित्तसंविद् में दृढ़ सत्य होकर स्थित हुआ है और संसार के सुख का त्याग नहीं कर सकता, जब आत्मसुख प्राप्त होगा तब त्याग देगा, जैसे जिस पुरुष को ज़ब तक पारस नहीं प्राप्त हुआ तब तक अन्य धन को त्याग नहीं सकता, जब पारस प्राप्त हुआ तब तुच्छ धन का त्याग करता है पुनः यत्न नहीं करता, ऐसे ही जब इसको आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषय सुख का त्याग करता है और पाने का यत्न नहीं करता, हे रामजी! भ्रमर तब तक अन्य स्थान पर भ्रमण करता है तब तक कमलों की कतार को नहीं पाता, जब कमल पंक्ति को प्राप्त हुआ, तब अन्य स्थान को त्याग देता है, ऐसे ही चित्तशक्ति जब आत्मपद में लीन हुई तब किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रहती निर्विकल्प पद को प्राप्त होती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पुरुषप्रकृतिविचारो नाम अष्टादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१८॥

ऊनविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २१९

अनन्तजगद्वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अब पूर्व का प्रसंग फिर सुनो, जब काली नृत्य करके निर्वाण हो गयी तब शिव अकेले ही रहे। एक रुद्र ही मुझको दृष्टि आता था ओर दो खण्ड आकाश के दृष्टि आते थे, एक अधोभाग एक ऊर्ध्वभाग और कुछ दृष्टि नहीं आता था, तब रुद्र ने नेत्र को पसारकर दोनों खण्ड देखे, जैसे सूर्य जगत्को देखता है ऐसे देखकर प्राणों को अन्दर खैंचा तब ऊर्ध्व अधः दोनों खड़े इकट्ठे हो गये, तब ब्रह्मांड को अन्तुर्मख हो पा लिया, एक शिव ही रहे, अन्य कुछ दृष्टि नहीं आता था, हे रामजी! जब एक क्षण व्यतीत हुआ तब रुद्र बड़े आकार को धारण किये हुए ब्रह्मांड को भी पारकर गये, एक वृक्ष के समान हो गया, पुनः अंगुष्ठमात्र शरीर हो गया, पुनः एक क्षण में सूक्ष्म अणु जैसा हो गया, फिर रेत के कण से भी सूक्ष्म हो गया, तब नेत्रों से दृष्टि नहीं आता था, दिव्य दृष्टि से मैं देखता रहा, तब वह भी लुप्त हो गया, केवल चिदाकाश ही शेष रहा, अन्य कोई वस्तु नहीं भासती थी, जैसे वर्षाकाल के मेघ शरत्काल में लुप्त हो जाते हैं, ऐसे रुद्र भी लुप्त हो गया, हे रामजी! उस समय मुझको तीनों इकट्ठे दिखाई दिये, एक देवी ब्रह्मा की शक्ति, दूसरी काली शक्ति, तीसरी शिला, तब मैंने विचार किया कि यह सब स्वप्न नगरवत् आश्चर्य था और कुछ नहीं, तब क्या देखता हूं कि स्वर्ण की शिला पड़ी है, यह श्रेष्ठ शिला के कोश में स्थित थी, तब मैंने विचार किया, कि इस सृष्टि शिला के एक कोश में अपर सृष्टि भी होगी, क्योंकि जो सर्व वस्तु सर्व प्रकार सब ठौर पूर्ण है इसलिये इसमें अपर सृष्टि भी होगी, हे रामजी! उसमें मैं सृष्टि को देखने लगा, तब नाना प्रकार की सृष्टि देखी, जब बोध दृष्टि से देखता था तब सर्व ब्रह्म प्रतीत होता था और जब संकल्प दृष्टि से देखता था तब आत्मरूप आदर्श में अनन्त सृष्टि दृष्टि आती थी, जब चर्म दृष्टि से देखा तो शिला

ही पड़ी है, इस प्रकार मैं शिला कोश में चला, घास तृण में सृष्टि भासे पत्थर में फल फूल में अनन्त सृष्टि दृष्टि आती और निःसंकल्प आत्म दृष्टि से देखूं तो अद्वैत आत्मा ही प्रतीत होता था, हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखी, कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है रचना करना चाहता है, कहीं ब्रह्मा ने चन्द्रमा सूर्य उत्पन्न किये हैं और काली मर्यादा की है और कोई उत्पन्न नहीं हुआ, कहीं सम्पूर्ण पृथ्वी आदि तत्व उत्पन्न किये हैं और प्राण नहीं है, कहीं समुद्र नहीं उत्पन्न हुए, कहीं आचार सहित सृष्टि दृष्टि आती है, कहीं चन्द्र सूर्य नहीं उत्पन्न हुए, कहीं उत्पन्न होते हैं, कहीं चन्द्रमा शिव से निकला है, क्षीर समुद्र नहीं मथा गया अमृत नहीं निकला, लक्ष्मी, हस्ती, घोड़ा, धन्वतरि वैद्य नहीं निकले, देवता पड़े मरते हैं, कहीं क्षीर समुद्र मथा है, उससे अमृत निकला है, धन्वन्तरि वैद्य निकला है, लक्ष्मी भी निकली हैं, कहीं प्रकाश नहीं होता, कहीं सदा प्रकाश रहता है, कहीं पृथ्वी के ऊपर पर्वत ही दृष्टि आते हैं, अन्य कुछ नहीं, कहीं इन्द्र के वज्र से पर्वत कटते हैं और उड़ते हैं, कहीं प्राणी को जरा मृत्यु नहीं होती कल्प पर्यन्त ज्यों के त्यों रहते हैं, कहीं प्रलय होती है, कहीं मेघ गर्जते हैं, कहीं सम्पूर्ण जल ही दृष्टि आता था, अन्य कुछ नहीं, कहीं आकाश दृष्टि आता, अपर प्राणी कोई नहीं, कहीं देवताओं के युद्ध होते हैं, कहीं देवों को दैत्य जीतते हैं, कहीं दैत्यों को देवता जीतते हैं कहीं देवों और दैत्यों की परस्पर प्रीति देखी है, कहीं बलि और इन्द्र का, रुद्र और वृत्रासुर का युद्ध हो रहा है, कहीं मधुकैटभ दैत्य ब्रह्मा की कन्या से उत्पन्न होता है, कहीं सदा प्रसन्नता रहती है और तीनों कालों को जानते हैं, कहीं सदा शोकवान् नहीं रहना पड़ता, कहीं सत्ययुग का समय है, दान, पुण्य तपश्चर्या करते हैं, कहीं कलियुग का समय है प्राणी पाप में विचरते हैं, कहीं अर्धयुग बीता है, कहीं राम रावण युद्ध हो रहा है, रावण को राम ने मर्दन किया है कहीं सुमेरु पर्वत नीचे है, पृथ्वी ऊपर है, कहीं शेष नाग के सिर पर पृथ्वी है, भू चाल से हिलती है, कहीं प्रलय का जल चढ़ा है, एक बालक वट के वृक्ष पर बैठा हुआ अपने पांवों का अँगूठा चूस रहा है, वह विष्णु भगवान् है, कहीं

ब्रह्मा के कल्प की रात्रि है, महा शून्य अन्धकार है, कहीं कौरवों से पाण्डवों की सहायता कृष्ण भगवान् करते हैं, कहीं महाभारत का युद्ध हो रहा है, दोनों ओर से अक्षौहिणी सेनाएं निकल रही हैं, कृष्ण भगवान् पांडवों की सहायता करते हैं, कहीं एक सृष्टि नाश होती है और उसी सृष्टि में उसी जैसे और उत्पन्न होती है, उसी जैसा कर्म उसी जैसा कुल जाति गोत्र होते हैं, कहीं उससे अर्धभाग मिलता है, कहीं चतुर्थ भाग उस जैसा मिलता है, कहीं विलक्षण भाग होता है, हे रामजी! इस प्रकार मैं अनन्त सृष्टि आत्म आदर्श में प्रतिबिंबित होती देखी हैं और जब मैं आत्म दृष्टि से देखूं तब सब चिदाकाश ही भासे जब संकल्प दृष्टि से देखूं जब जगत् भासे, कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां दशरथ का पुत्र राम रावण के मारने को समर्थ हुआ है, तुम्हारा रूप बड़ा तपस्वी रहता है और जिसका मन सदा प्रसन्न रहता है ऐसी अनन्त सृष्टि देखी, राम बोले–हे भगवन्! मैं आगे भी हुआ हूं और ऐसा ही हुआ हूं अथवा किसी अन्य प्रकार से हुआ हूं, कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! कई उसी जैसे होते हैं कई अर्ध लक्षण होते हैं, कई चतुर्थ भाग लक्षण होते हैं, जैसे अन्न का बीज उसी जैसा होता है, कोई उससे विशेष भी होता है, ऐसे यह पदार्थ सब बड़े परिणाम होता है, हे रामजी! तू भी आगे होगा और मैं भी आगे होऊंगा, परन्तु आत्मा का विवर्त है, जैसे समुद्र से तरंग होते हैं विलक्षण भी दृष्टि आते हैं परन्तु वही रूप है, ऐसे हमारे सदृश भी हमारे स्वरूप की मूर्तिवत् पुनः होंगे, परन्तु आत्मतत्व भिन्न कुछ नहीं, संकल्प करके इतर की नाईं विलक्षणरूप भासते हैं, जैसे समुद्र में वायु से तरंग भासते हैं, ऐसे आत्मा संकल्प करके जगत् रूप हो भासता है, यद्यपि नाना प्रकार हो भासता है, तो भी दूसरा कुछ हुआ नहीं, यह जगत् चेतन का विलास है, चित्त के फुरने से अनन्त सृष्टियां भासती हैं, जैसे स्वप्न की सृष्टि बड़े आरंभ से भासती है, परन्तु स्वरूप से कुछ इतर नहीं, ऐसे यह जगत् आरंभ परिणाम से कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अनन्तजगद्वर्णनं नाम
ऊनविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥२१९॥

विंशत्याधिकद्विशततमः सर्गः २२०

पृथ्वीधातुवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस प्रकार देखता रहा, तदनन्तर दृश्य भ्रम को त्यागकर अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हुआ, मैं अनन्त हूं, नित्य शुद्ध बोध चिदाकाश सर्वदा अपने आपमें स्थित हूं। हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसी स्थान में संवेदन आभास फुरा है, जैसे अनाज के कोठे से एक मुट्ठी भर निकालिये और क्षेत्र में डालिये, उसी से किसी ठौर में अंकुर निकलें ऐसे ही चेतन में संवेदन स्फुरण हुआ है, उस संवेदन से जगत् उत्पन्न हुआ है, जैसे जल के देने से अंकुर निकल आता है, ऐसे मेरे में सृष्टि का अनुभव होने लगा और मैंने जान लिया कि सृष्टि मुझमें फुरी है, रामजी बोले–हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपने आपसे स्थित थे उसमें सृष्टि आपको कैसे फुरी? दृढ़ बोध के लिये मुझे कहो, वसिष्ठजी बोले– हे रामजी! वास्तव में तो कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु जैसे हुआ है ऐसा सुनो, मैं अनुभव आकर अनन्त था उसके किसी स्थान में संवेदन चित्त् अहं फुरा, अर्थात मैं हूं उसके अहंभाव के होने से आपको मैंने सूक्ष्म तेज अणु जैसा जान लिया, उस अणु में जो अहं स्फुरण हुआ, उसको तुम्हारे जैसे अहंकार कहते हैं, उस अहंकार की दृढ़ता से निश्चयात्मक बुद्धि स्फुरण हुई, उस बुद्धि से संकल्प विकल्परूप मन फुरा, उस मन ने आगे प्रपंच रचा, उस मन में देखने का स्पन्द फुरा, तब चक्षु इन्द्रिय हुई, जिसको देखने लगा वह रूप दृश्य हुआ सुनने की इच्छा फुरी तब श्रवणेन्द्रिय हुई, उससे शब्द सुना जाने लगा, रस लेने की इच्छा हुई, तब जिह्वाइंद्रिय हुई, रस को ग्रहण करने लगी, स्पर्श की इच्छा हुई, त्वक् इंद्रिय की उत्पत्ति हुई और स्पर्श को ग्रहण करने लगी, सुगंधि लेने की इच्छा हुई, तब नासिका की उत्पति हुई और गन्ध ग्रहण करने लगी, इस प्रकार मुझको ज्ञानेन्द्रियों का स्फुरण हुआ उनमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उदय हुए, तब मैंने अपने साथ स्थूल शरीर को देखा, जैसे पुरुष सूक्ष्म

से उठकर स्वप्न देखता है, उसमें अपना शरीर देखता है, ऐसे मैंने देखा, हे रामजी! जिसको मैंने देखा वह दृश्य हुआ और जिनसे मैंने देखा वे इन्द्रिय हुए और जब दृश्य स्फुरण हुआ वह काल हुआ और जहां हुआ वह देश हुआ और जिससे हुआ वह क्रिया हुई, इस प्रकार सब देश काल पदार्थ हुए हैं, वे मैंने तुझे कहे हैं, हे रामजी! वास्तव में न कोई देह है, न इंद्रिय है, न सृष्टि है, चित्तकला में हुए की नाईं दृष्टि आते हैं, जैसे स्वप्न की सृष्टि भासती है, जब वह सृष्टि मुझको फुरी तब पूर्व स्वरूप विस्मरण हुआ जैसे सुषुप्ति में मुझको अपना स्वरूप विस्मरण की नाईं होता है, ऐसे मुझको विस्मरण हुए की नाईं भासा, जैसे स्वप्न में जाग्रत् स्वरूप का विस्मरण होता है, जाग्रत् में स्वप्न स्वरूप का विस्मरण होता है ऐसे पूर्व के स्वरूप का मुझको विस्मरण हुआ, जब शरीर इन्द्रिय मुझको अपने साथ भासीं उसमें मैंने अहंप्रत्यय करके ओंकार का उच्चारण किया जैसे बालक माता के गर्भ से उत्पन्न होकर शब्द करता है, ऐसे मैंने ओं शब्द का उच्चारण किया, जैसे कोई पुरुष स्वप्न में उठता है और शब्द करता है ऐसे मैंने ओंकार का उच्चारण क्रिया, कैसा ओं है, आदि मध्य अन्त से रहित परब्रह्म है, सर्व ब्रह्मांडरूपी तरंग के आधार समुद्र है हे रामजी! जब मैं अधिभूत दृष्टि से देखूं तो मुझे शिला ही भासे और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखूं तो अनन्त ब्रह्मांड दृष्टि आता था, नाना प्रकार की क्रिया मर्यादा सहित भासती थी और तत्व दृष्टि से देखूं तो अद्वैत अपना आप ही भासता था, हे रामजी! जैसे सूर्य की किरणों में मरुस्थल की नदी भासती है ऐसे मुझे सृष्टि भासती थी, जैसे मरुस्थल की नदी मिथ्या है ऐसे ही ग्रहण करनेवाली वृत्ति भी मिथ्या है, जैसे संवेदन में मनन फुरता है वह भी मिथ्या है क्योंकि नदी मिथ्या है, तो मनन उसका सत्य कैसे होवे जैसे वह मिथ्या है, ऐसे यह भी रूप अवलोकन मनुष्य का मिथ्या है, भ्रान्ति करके सत्य भासती है, जैसे स्वप्न सृष्टि भ्रान्ति मात्र है, जैसे संकल्प पुरी मिथ्या है, जैसे मनोराज्य का नगर और कथा का वृतान्त अनहोता भ्रांति से प्रत्यक्ष भासता है, ऐसे यह जगत् भ्रान्ति से

सत्य भासता है वास्तव कुछ नहीं, संकल्प विलास में बने दृष्टि आते हैं, हे रामजी! जिस प्रकार मुझको सृष्टि भासी वह सुनो, जब मेरे अंदर पृथ्वी धारणा हुई तब पृथ्वी मुझको शरीर होकर भासने लगी, क्योंकि मैं विराट् आत्मा था, उस पृथ्वी के ऊपर वन पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फूल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीवर, दैत्य, नाग आदिक जो स्थित हैं, वह पृथ्वी मेरा शरीर हुआ और पर्वत मेरे मुख हुए और सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजाएं हुईं और नदियां मेरे कंठ में माला सुशोभित हैं और वन मेरी रोमावली हुई, मरुस्थल की नदी मेरे ऊपर विस्तार भासता है और देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, दैत्य यह सब मेरे अन्दर कीट भास रहे हैं, शरीर में यू का आदिजीव है, किसी स्थान पर मुझे हिलाते हैं और बीज बोते हैं खेती उगती है, प्राणी खाते हैं कहीं खोदते हैं कहीं पूजा करते हैं, कहीं समुद्र स्थित हैं कहीं नदियां चलती हैं, कहीं राजा राज्य करते हैं मेरे ऊपर झगड़कर मरते हैं, वह कहता है पृथ्वी मेरी है, वह कहता है मेरी है, इस प्रकार ममता करके युद्ध करते हैं, हस्तीचेष्टा करते हैं, कई रुदन करते हैं, कई हंसी करते हैं, कहीं वृत्ति पसारते हैं, कहीं सुगन्धि है कहीं दुर्गन्धि है, नदियां चलती क्षोभ करती हैं, देवता और दैत्य मेरे ऊपर युद्ध करते हैं, शीतलता से जल मेरे ऊपर बर्फ हो जाता है, इत्यादिक इष्ट अनिष्ट स्थान मैंने अपने ऊपर देखे, राजसी, तामसी, सात्विकी, जितनी जीव की क्रियाएं होती हैं, सबका आधार मैं ही हुआ और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशाओं की संज्ञाएं हुईं, संवेदन स्फुरण से मैंने इस प्रकार अपने आपको जाना।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अंतरोपाख्यानेपृथ्वीधातु वर्णननंनामविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ।।२२०।।

एकविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२१

जलरूपवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! तुमको जो धारणा करके पृथ्वी का अनुभव हुआ, उसमें जगत् उत्पन्न हुआ, वह संकल्प रूप था, अथवा मन से उत्पन्न हुआ था, अथवा अधिभूत रूप था, पृथ्वी से कैसे उत्पन्न हुआ, यह कहिये? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जितना जगत् है, संकल्प रूप है और अधिभूत की नाईं भासता है, वह केवल चिदाकाश अपने आप में स्थित है, वह चिदाकाश मैं हूँ, न कदाचित् उत्पन्न हुआ हूँ, न कभी नाश होऊंगा, सर्वदा अचेत्य अद्वैत चिन्मात्र रूप हूँ, उसके संकल्प का नाम मन है, आभास का नाम संकल्प है, उसी का नाम ब्रह्मा है, उसी का नाम इच्छा है, उसमें जगत् स्थित है, वह जगत् आकाशरूप है, बना कुछ नहीं, हे रामजी! जिसको सत्य कहता है और असत्य कहता है, वह शुभ अशुभरूप जगत् मन में स्थित है और जितने आकार भासते हैं, वे निराकार रूप हैं, आकाशरूप भ्रांति करके पिंडाकार भासते हैं, जैसे स्वप्न में शुभ अशुभ पदार्थ भासते हैं, वह निराकार हैं, भ्रांति से पिंडाकार भासते हैं, ऐसे यह जगत् भी निराकार है, भ्रम से पिंडाकार भासता है, विचार करने से शून्य हो जाता है, जैसे मनोराज्य से आकार रचित हैं, ऐसे हमारे आकार जानो, स्वरूप से कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे मृत्तिका में बालक नाना प्रकार की सेना रचते हैं, उस मृत्तिका में भी उनको भिन्न भिन्न निश्चित होते हैं, ऐसे अद्वैत आत्मा में मनरूप बालक ने जगत् कल्पित किया है, वास्तव में कुछ नहीं, आत्मत्व सदा अपने आप में स्थित है, मृगतृष्णा का जल ही नहीं, तो उसमें डूबा किसको कहें, ऐसे मन आभास रूप है, उसका रचा जगत् कैसे सत् हो, हे रामजी! सब चिदाकाश रूप है, दूसरा कुछ बना नहीं, आत्मरूप आकाश में मनोरूप नीलता है, वह अविचार से सिद्ध है, विचार करने से नीलता कुछ वस्तु नहीं, जैसे दीपक की विद्यमानता में अन्धकार नहीं रहता, ऐसे विचार

किये से मन और मन की रचना जगत् नहीं रहती, मन का निर्वाण करना परम शान्ति है, अन्य कोई उपाय नहीं, हे रामजी! जितने क्षोभ हैं, उनका कर्ता मन है और जितनी शब्दार्थ कल्पनाएं उठती हैं, मन से उठती हैं, मन के निर्वाण हुए कोई नहीं रहती, राम बोले–हे मुनीश्वर! तुम जो अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी से होकर स्थित हुए कुछ अन्यरूप भी हुए या न हुए, कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे राम! आत्मरूप जो जाग्रत है, उसमें मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ, मैं चेतन था और जड़ की नाईं स्थित हुआ, वास्तव में न मैं था न जगत् था, केवल चिदाकाश है, उसमें न कुछ नाना है न अनाना है, जगत् न अस्ति है, न नास्ति है, अहं, त्वं, इदं का अभाव है, केवल परम आकाश है, आकाश से भी निर्मल चिदाकाश है और जो है सब शब्द ब्रह्म है, जगत् के होते ही अरूप है, क्योंकि जो कुछ आरंभ परिणाम से नहीं बना, केवल आत्मा का चमत्कार है, हे रामजी! जहां जहां पदार्थ सत्ता है वहां वहां जगत् वस्तु है, सर्वकाल सर्व पदार्थ का स्पंद ब्रह्म है, जहां ब्रह्मसत्ता है, वहां जगत् है, इस प्रकार अनन्त ब्रह्मांड को देखा, जब मैं अनंत ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ। जब जल की धारण की तब जलरूप होकर प्रसार को प्राप्त हुआ, वृक्ष, घास, फल, गुच्छे, टास और रसरूप होकर मैं तमाल पत्र में स्थित हुआ, स्तंभ मैं ही बल हुआ, समुद्र हुआ, नदियों के प्रवाह होकर बहने लगा, उनमें गडगड शब्द करने लगा, तरंग बुदबुदे फेन को प्रसारित कर विलास करने लगा, उसके कणरूप में मैं ही स्थित हुआ, आकाश में मेघ होकर स्थित हुआ, वर्षा करने लगा, प्राणियों को तृप्त करने लगा, उनमें रुधिरादि तथा रस होकर मैं ही स्थित हुआ, उनकी नाड़ियों में मैंने ही प्रवेश किया, जैसी जैसी नाड़ी होती है, ऐसा ऐसा रस होकर स्थित हुआ, रस आदि तथा कफ वात् पित्त मूत्र आदि के रूप में मैं ही स्थित हुआ, प्राणिमात्र की जिह्वा के आगे रसरूप होकर स्थित हुआ और स्वाद को ग्रहण करने लगा, हिमालय में बर्फ होकर स्थित हुआ हूँ, हे रामजी! मैं चेतन ही जड़ की नाईं स्थित हुआ, बीज होकर मैं ही

उत्पत्ति कर्ता बना, प्रलय मेघ बनकर मैं ही नाश कर्ता बना, इस प्रकार जल होकर स्थावर जंगम जगत् में मैं ही स्थित हुआ और सदा अपने आप में स्थित रहा, अपने स्वरूप का त्याग नहीं किया, जैसे स्वप्न में जगत् अनुभवरूप है, अणु होता प्रतीत होता है, ऐसे मैंने जलरूप होकर जगत् को धारण किया, हे रामजी! इससे लेकर जितने नाना प्रकार के स्थान हैं, उनमें मैं स्थित हुआ और फूलों की शय्या पर विश्राम करता था, गंध होकर फूलों में स्थित हुआ, मेघ होकर आकाश में विचरा, ओले बनकर वर्षा करता रहा, पर्वतों पर प्रवाह वेग से उतरता रहा, कण कण रूप समुद्रों तथा नदियों में विचरता रहा, यह प्रतिभास चित्त अणु में मुझको हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अन्तरोपाख्याने जलरूप वर्णनं नाम विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२२१॥

द्वाविंशत्यधिक द्विशततमः सर्गः २२२

अंतवाहकचिदचिद्वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जल के अनन्तर मैंने तेज की भावना की, अर्थात् तेज को धारण किया, तब मेरे इतने अंग उदय हुए, चन्द्रमा, सूर्य, अग्निरूप इन अंगों से जगत् की क्रियाएं सिद्ध होने लगीं, जैसे राजा के अनुचर हरकारे अंग कहाते हैं, जहां तमरूप चोर को दीपकरूप हरकारे भासते हैं, आकाशरूप मैं हूँ, मेरे गले में तारागणरूप माला पड़ी हैं, सूर्य होकर मैं जल को सुखाने लगा और दशों दिशाओं को प्रकाशित करने लगा, आकाश जो कि ऊर्ध्वता से श्याम भासता है, वह मेरे निकट होने से प्रकाशवान् रहता है, सब जगत् में फैल रहा हूँ, जहां मैं होता हूँ, वहां से तम का अभाव हो जाता है, चन्द्र सूर्यरूप एक डब्बा है, उसमें दिन रात्रि रूप रत्न हैं, दिन, रात्रि, काल और वर्षारूप अनेक रत्न हैं, वे सदा निकलते रहते है, सात्विकी राजसी तामसी क्रिया रूप कमलिनी का

मैं सूर्य हुआ और सब देवता पितरों को तृप्त किया, यज्ञ की अग्नि होकर अग्नि, रत्न, मोती, मणि आदिक जो प्रकाश्य पदार्थ हैं, उनमें मैं प्रकाशरूप हूँ और प्राण के अन्दर स्थित हुआ प्राण अपान के क्षोभ से अन्न को पचाता हूँ, जैसे आत्मा के प्रकाश से रूप अवलोकन मनस्कार प्रवेश पाते हैं, ऐसे सब पदार्थ मेरे प्रकाश से प्रकाशित हैं, क्योंकि मैं तेजोरूप हूँ, मानो चेतनसत्ता मैं दूसरा भाई हूँ, जैसे सब पदार्थ आत्मा से सिद्ध होते हैं, ऐसे मुझसे सिद्ध होते हैं, हे रामजी! राजा में तेज मैं हूँ, सिद्धों में वीर्यरूप होकर स्थित हूँ, बलरूप होकर जगत् की पुष्टि मैं करता हूँ, तेजवानों में तेज मैं हूँ, बलवानों में बल मैं हूँ, बड़वाग्नि दाहक शक्ति होकर जगत् को मैं नष्ट करता हूँ, नीचे भी मैं हूँ, मध्य में भी मैं हूँ, चन्द्रमा और सूर्य से रहित जो स्थान हैं, इनमें मैं हूँ, अग्निरूप दीपक से चन्द्र सूर्यरूप नेत्र से मध्य मंडल में स्पष्ट मैं ही देखता हूँ, हे रामजी! इस प्रकार तेजोरूप होकर अंदर बाहिर स्थावर जंगम पदार्थ में, मैं स्थित हुआ और जब बोध दृष्टि से देखूं, तब सब आत्मा ही भान होता था और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखूं तो अपने आपको विराट् रूप जानता था कि सर्व जगत् में मैं ही व्याप्त हो रहा हूँ, सब पदार्थ मेरे अंग हुए हैं, तेजवान् में तेज मैं हूँ, क्रोधवान् में क्रोध मैं हूँ, यतियों में यती मैं हूँ और अजित हूँ, सब ओर मेरी ही जय है, क्योंकि जय उसकी होती है, जिसमें बल और तेज होता है, बल मैं हूँ, ओज मैं हूँ, इसलिये मेरी जय है, स्वर्ण और रत्नों मणियों में मैं प्रकाश हुआ, अन्य जो रूप हैं वह मैं हुआ, रामजी बोले–हे भगवन्! इस प्रकार जो तुम जगत् की क्रिया को अनुभव करने लगे, जलरूप होकर अग्नि को बुझाने लगे, अग्नि होकर जल को जलाने लगे, इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर होती रही, इष्ट अनिष्ट के सुख दुःख का जो अनुभव किया अथवा न किया वह मेरे बोध के लिये कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे चेतन पुरुष स्वप्न में पर्वत, वृक्ष, देह, इन्द्रिय, नाना प्रकार के जड़ पदार्थ देखते हैं, वे उनमें तो नहीं केवल अनुभवरूप हैं, परन्तु निद्रा दोष से वह द्वैत की नाईं स्वप्न सृष्टि को

जानता है; जिसका रागद्वेष अपने में मानता है और अन्य कुछ है नहीं, द्रष्टा ही दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है, परन्तु निद्रादोष से जान नहीं सकता जब जगता है तब सब स्वप्नसृष्टि को अपना आप ही जानता है, ऐसे यह जगत् अपने स्वरूप में नहीं, जब बोधस्वरूप में जगेगा तब पदार्थ की भावना जाती रहेगी। सब जगत् बोधस्वरूप प्रतीत होगा, हे रामजी! जिस पुरुष की देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित अखंडसत्ता उदय हुई है, उसको ज्ञानी कहते हैं, जब यह पुरुष परमात्म अवलोकन करता है, तब सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जिस पुरुष को स्वप्न सृष्टि में पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ उसको अन्तवाहक कहते हैं, उसको पत्थर में प्रवेश करने से भी खेद नहीं होता और जल तथा अग्नि में प्रवेश करने से भी खेद नहीं होता, हे रामजी! मैं जो आकाश में उड़ता फिरता हूँ और आकाश को भी लांघकर ब्रह्मांड के खप्पर पर जाकर फिरा हूँ, वह अन्तवाहक से ही फिरा हूँ, जिसको अन्तवाहक शरीर प्राप्त होता है, उसको कोई आवरण रोक नहीं सकता, क्योंकि सब अंग उसके होते हैं, इसलिये मुझे शुद्ध आत्मा में स्वप्न हुआ है और पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ, इस कारण से सब जगत् मुझको अपना स्वरूप ही भासता है, अपने संकल्प से कल्पित अपने अंग ही भासते हैं, जैसे कि पुरुष ने मनोराज्य से अग्नि का समुद्र रचा और उसमें स्नान करे तो क्या होता है, उसको खेद भी नहीं होता, सब अपने संकल्प में उसको भासते हैं, अंतवाहक शरीर से विराट् सबको अपना आप देखता है, ऐसे सब जगत् मुझको अपना आप भासे, तो खेद कैसे हो, जैसे स्वप्नवाले स्वप्न में पर्वत नदियां अग्नि आदि होती हैं, वे वही रूप हैं और एक आप भी आकार धारण कर बन जाता है, पूर्व का स्वरूप उसको भूल जाता है, परिच्छिन्नता के कारण रागद्वेष से जलता है और मैं तत्वरूप बना हुआ जो अपने जड़रूप देखता है, मैं आपको चेतन रूप देखता था और जड़ की नाईं भी मैं आपको जाना, इस प्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न हुआ तब मैंने विराट रूप से सबको अपने अंगरूप देखा, इसलिये खेद कैसे हो, खेद तब होता है जब अपना स्वरूप भूलता है और

परिच्छिन्न बन जाता है, मैं बोधवान् था कि मैंने स्पंद करके सब रूप धारण किये हैं, हे रामजी! जिसको यह निश्चय है उसको दुःख कहां हो, सुख दुःखरूप जो पदार्थ हैं, उनको मैंने अपने में से देखा, जैसे आदर्श में प्रतिबिंब भासता है, जिसकी यह सृष्टि हो उसको दुःख कहां हो, हे रामजी! जिसको अन्तवाहक शक्ति प्राप्त होती है, वह समर्थ होता है, पाताल में जाये, आकाश में उड़े, जहां प्रवेश किया, चाहे वह सब होता है, क्योंकि सृष्टि संकल्प मात्र है, हे रामजी! अन्य कोई सृष्टि नहीं बनी, यह सृष्टि सब ब्रह्मरूप है, हमको तो सदा ऐसे ही भासती है, जब तू जगेगा तब तुझको भी ऐसे ही भासेगी, अब तू भी जगा है, इस प्रकार मैं अग्नि होकर स्थित हुआ, वह प्रकाशरूप मैं ही हूँ, चिद्रूप अपने स्वरूप अनुभव में मुझको जगत् भासे, उसमें मैं स्थित हुआ, अंधकार और उलूक आदिक भी मेरे प्रकाश से प्रकाशित होते हैं और भावरूप पदार्थों को भी मैंने अपने में जान लिया क्योंकि भावरूप पदार्थ तब भासते हैं, जब उनका रूप होता है, रूपवान् पदार्थ मैं ही था, इस कारण से सब मुझ से ही सिद्ध होते है, इस प्रकार मुझको प्रतिभा हुई ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अंतवाहकचिदचिद्ववर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ।।२२२।।

त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२३

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! पुनः मैंने पवन की धारणा का अभ्यास किया, तब पवन रूप होकर विचरने लगा, कमल फूल और वृक्ष को हिलाने लगा, तारा नक्षत्र का आधारभूत हुआ, तब मेरे द्वारा फिरने लगे, चन्द्र सूर्य के चलाने वाला मैं ही हुआ, समुद्र नदियों के प्रवाह मेरे द्वारा ही चलते हैं, मन का बडा वेग भी मैं ही हूँ, प्राणी के शरीर में मेरा ही निवास है और सब नाड़ियों के रस अपना अपना भाग मैं ही पहुँचाता

हूँ, हिलना, चलना, बोलना, लेना, देना, सब मुझ से ही सिद्ध होता है, प्रत्येक पदार्थ में स्पर्श शक्ति मैं ही हूँ, सब शब्द मुझ से ही सिद्ध होते हैं, क्रियारूप बूँद का मैं मेघ हूँ, आकाश रूप ग्रहों में मेरा निवास है, दशों दिशाएं मुझ में ही फुरी हैं, देवताओं को गन्ध द्वारा सुख मैं ही देता हूँ, दीपक को मैं ही प्रज्वलित करता हूँ, पक्षी में मेरा सदा निवास है, जैसे अग्नि में उष्णता रहती है, सबके सुखानेवाला मैं ही हूँ, हरा भरा करने वाला भी मैं ही हूँ, हे रामजी! इस प्रकार मैं पवन होकर स्थित हुआ, इसलिये रूप, अवलोकन, मनस्कार सब पदार्थ मैं ही हुआ, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, वरुण, कुबेर यम आदिक जगत् होकर मैं ही स्थित हुआ, पंचभूतों के रूप में भूतों के अंदर मैं ही और बाहिर भी मैं हूँ, प्राण अपान के क्षोभ से दुःख होता है, मैं ही साकार निराकार रूप हूँ, रक्त पीत श्याम रंग पदार्थ सब मैं ही हूँ, पंचभूत चिद्गुण से फुरे हैं, वह उसी का रूप है, जैसे स्वप्न की सृष्टि सब अपना ही रूप होती है, इतर कुछ नहीं, हाड (अस्थि) मांस पृथ्वी के रूप में भूतों में स्थित हुआ हूँ, वायुरूप प्राण होकर स्थित हुआ हूँ, अग्नि रूप क्षुधा होकर स्थित हुआ हूँ, आकाश रूप अवकाश होकर स्थित हुआ हूँ, इस प्रकार मैं सब में स्थित हुआ हूँ, मैं भी चेतन वपु हूँ, वह तत्व भी चेतन वपु हैं, जैसे स्वप्न में जगत् आकाश रूप है, ऐसे वह भी आकाशरूप है, हे रामजी! सबका सब काल सर्व प्रकार सर्वात्मा स्थित है, इससे दूसरा कुछ नहीं, आत्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है, इतर जानना भ्रांति मात्र है, यह दृष्टि ज्ञानवान् की है, जो असम्यक्दर्शी हैं, उनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण जगत् को अपने में ही देखा, हे रामजी! मैं कौन हूँ, मैं जो ब्रह्म रूप था, उसमें जगत् उत्पन्न होते दृष्टि आये और यदि मैं ब्रह्म से इतर कहूँ एक तृण उत्पन्न न हो, मैं जो ब्रह्मरूप था, उससे सृष्टि उत्पन्न होती है, हे रामजी! जब मैंने बोध दृष्टि से देखा तब आत्मा से इतर कुछ न देखा, जब अन्तवाहक दृष्टि से देखूं तब मेरे लिये स्पंद करके अणु अणु में सृष्टि भासती है, जैसे जहां चन्दन का अणु होता है, वहां

सुगन्धि होती है, ऐसे जहां जहां तत्व के अणु हैं वहां वहां सृष्टि है, हे रामजी! एक अणु में अनन्त सृष्टि मुझको भासती है, जैसे एक पुरुष शयन करता है और उसको स्वप्न में सृष्टि भासती है, फिर स्वप्न से स्वप्नान्तर की सृष्टि को देखता है तो एक ही जीव में वह क्यों भासे, ऐसे अणु में अनेक सृष्टियां हैं, हे रामजी! जो सृष्टि है वह आभास रूप है और आभास अधिष्ठान के आश्रय होता है, सबका अधिष्ठान ब्रह्म सत्ता है, देशकाल परिच्छेद से रहित है और अखंड अद्वैत सत्ता है, इसी से कहा है कि अणु अणु में सृष्टि है क्योंकि कोई अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्म सत्ता ही है, यदि सर्व ब्रह्म है तो सृष्टि भी ब्रह्म रूप है, इसलिये सब ब्रह्म ही जानो, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, जैसे वायु और स्पंद में भेद नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मजगदेकता प्रतिपादन नाम त्रयोविंशत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२२३।।

चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२४

आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनम् ।

वसिष्ठजी ने कहा—हे राम! जब इस प्रकार मुझमें सृष्टि फुरी तब मैं उनके भ्रम को त्यागकर संकल्प को खैंचकर अन्तर्मुख हुआ और अपनी कुटी की ओर आया, जब कुटी देखी तब उसमें एक पुरुष बैठा मुझको दृष्टि आया, तब मैंने विचार किया कि यह किंचन है और मेरा शरीर था वह कहां है, तब मैंने विचार कर देखा कि यह कोई महासिद्ध है और मेरा शरीर इसने मृतक जानकर गिरा दिया है, वह सिद्ध कैसे बैठा है, जो पद्मासन बांधे दोनों पांव ऊपर किये हैं और शिर ग्रीवा सीधे किये हैं, दोनों हाथ पट से ऊपर किये हैं, मानों कमल फूल हैं, मानों अन्तर का प्रकाश बाहिर आकर उदय हुआ है, नेत्र मूँदे हैं, मानों सब वृत्तियां बंद कर दी हैं, हे रामजी! इस प्रकार समाधि लगाकर पद्मासन से आत्मपद

में स्थित बैठा है, पुनः कैसा है, निरावरण बादल से रहित सूर्य की नाईं प्रकाशित होता है, जैसे धूम से रहित अग्नि प्रकाशित होता है, ऐसे वह सिद्ध प्रकाशवान् स्थित है, इस प्रकार मैंने उसको आत्मपद में स्थित होते देखा, जैसे दीपक निर्वाण स्थित होता है, ऐसे स्थित देखकर मैंने विचार किया कि यह यहां ही बैठा रहे और मैं अपने स्थान सप्तर्षि में जाऊं, इसी प्रकार कुटी के संकल्प को त्यागकर मैं उड़ा, हे रामजी! इस प्रकार उड़ते हुए मार्ग में मुझको विचार उत्पन्न हुआ कि अब सिद्ध की क्या दशा है, फिर उलटकर देखता हूँ तो सिद्ध वहां नहीं है और कुटी सहित नहीं है क्योंकि कुटी जो उसकी आधारभूत थी, वह मेरे संकल्प में स्थित थी, जब मेरा संकल्प निर्वाण हो गया तब कुटी गिर पड़ी, तब उसमें सिद्ध कैसे रहे, वह भी गिर पड़ा, हे रामजी! उसको गिरता देखकर मैं भी उसके पीछे हुआ, कि इसका कौतुक देखूं, तब आगे वह चला जाता था, मैं पीछे अधः को चला जाता था, परन्तु मैं स्वाधीन चला जाता था और वह पराधीन चला जाता था, जैसे मेघ से बूंदें गिरती हैं, वे ठहरती नहीं, जैसे आकाश से पत्थर गिरे ऐसे वह चला जाता था, सप्त द्वीप के पार दश सहस्र योजन स्वर्ण की धरती है, उसके ऊपर आन पड़ा, जैसे आकाश से रुई का फोहा गिरे ऐसे अनायास आन पड़ा और उसी प्रकार पद्मासन बांधे हुए शीश ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरे रहे क्योंकि उसके शीश ग्रीवा ऊर्ध्व (ऊपर) कीं ओर थे, हे रामजी! शरीर हिलता चलता प्राणों से है, जब प्राण ठहर जाते हैं, तब शरीर हिलता चलता नहीं, इस कारण से शरीर उसका सम ही रहा, जैसे कुटी में बैठा था, उसी प्रकार आसन से पृथ्वी पर आन पड़ा, तब मेरे मन में आया कि इसके साथ कुछ चर्चा भी करनी चाहिये, परन्तु यह तो समाधि में स्थित है, किस प्रकार इसको जगाऊँ, हे रामजी! ऐसा विचार करके मैं मेघ होकर वर्षा करने लगा, और बड़ा शब्द करने लगा, जिस शब्द से पहाड़ टूटने लगे, उस शब्द और वर्षा से भी वह न जगा, तब मैं करक (गडा) होकर उसके ऊपर वर्षा करने लगा, जैसे पत्थर की वर्षा होती है, जब ऐसे वर्षा की तब वह नेत्र खोलकर देखने लगा, जैसे पर्वत पर मोर मेघ को देखने लगे तब मैं

वपु को त्यागकर उसके आगे स्थित हुआ, तब उसने समाधि खोली, तब प्राण इन्द्रिय अपने स्थान में आये, हे रामजी! तब मुझको अपने आगे देखा तब मैं अद्वैत भाव को त्यागकर बोला, हे साधो! तुम कौन हो और कहां रहते हो, क्या करते हो? कुटी में किसलिये स्थित हुए थे, सिद्ध बोला—हे मुनीश्वर! मैं अपने प्रकृत भावमें स्थित हूं और सब कुछ कहूँगा, परन्तु शीघ्रता मत करो, मैं स्मरण करके कहता हूं, हे रामजी! मुझको इस प्रकार स्मरण करके कहने लगा, फिर स्मरण करके कहने लगा, हे ऋषिवर! मुझको क्षमा करना, संत का शान्त स्वभाव है, मेरे पास से तुम्हारी बड़ी अवज्ञा हुई है, परन्तु तुम क्षमा करो, मेरा तुमको नमस्कार है, हे रामजी! इस प्रकार नमस्कार करके निर्मल आनन्द दायक वचन बोला—हे मुनीश्वर! यह संसार रूप नदी है, इसका प्रवाह है, वह कदाचित् सूखता नहीं, चित्तरूप समुद्र से यह प्रवाह निकलता है, जन्म मरण दोनों इसके किनारे हैं, रागद्वेषरूप उसमें तरंग हैं और भोग की तृष्णा उसमें चक्र फिरता है, उसमें मैंने बड़ा दुःख पाया है, हे मुनीश्वर! अपने सुख के निमित्त देव के स्थानों में भी गया हूं और दिव्य भोग भोगे हैं, जो स्पर्श आदिकभोग हैं, सब मैंने भोगे हैं परन्तु शान्ति नहीं प्राप्त हुई, जिस सुख को मैं चाहता था, वह नहीं पाया, वह सुनिये। जैसे पपीहा मेघ की बूँद को चाहता है और मरुस्थल की भूमि में उसको शान्ति नहीं होती, ऐसे मुझको विषय सुख में शान्ति नहीं प्राप्त हुई, हे मुनीश्वर! इस जगत् को असार जानकर मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि इतने समय मैंने भोग भोगे परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली, असत् जानकर मैं वापिस हुआ और विचार किया कि जो सार हो उसमें स्थित हुआ हूं तब मैंने जाना कि सार अपना अनुभवरूप ज्ञान संवित् है, ऐसे जानकर मैं उसमें स्थित हुआ हूं, हे मुनीश्वर! जितने विषय हैं, वे विषयरूप हैं, विष के पान करने से भी मृत्यु होती है, जैसे स्त्री धन आदिक सुख हैं, वे मोह और दुःख के देने वाले हैं, ऐसा कौन पुरुष है जो इनमें आया सावधान रहता है, यह स्वरूप से नष्ट करने वाले हैं, हे मुनीश्वर! देहरूप एक नदी है, उसमें बुद्धिरूप एक मीन रहती है, वह जब सिर बाहिर निकालती है अर्थात्

जब कुछ इच्छा करती है, तब भोगरूप बगला इसको खा जाता है, अर्थात् आत्ममार्ग से विचलित कर देता है और यह भोग भयंकर चोर है जब इसका संग करता है तो इसको लूट लेते हैं, अर्थात् आत्मधन से शून्य कर देते हैं, जब आत्मज्ञान से शून्य हुआ तब जन्म जन्मान्तर का अन्तर नहीं रहता, अनेक शरीर धारण करने पड़ते हैं, जैसे चक्र पर चढ़ी हुई मृत्तिका अनेक वर्तनों के आकार धारण करती है, ऐसे ही आत्मज्ञान से रहित अनेक शरीर धारण करता है, मैं अब जगा हूं, मुझको अब लूट नहीं सकते, हे मुनीश्वर! भोगरूप भयानक नाग हैं, उनके दंश से शरीर मृत्तक होते हैं और विषयरूप सर्प के फूत्कार से मृतक हो जाता है, अर्थात् इच्छा करने से आत्मपद से शून्य होता है, जब इसको विषय की इच्छा के साथ सम्बन्ध होता है, तब इसका क्षण क्षण में निरादर होता है, जैसे कदली वन से रहित हुआ हस्ती महावत के वश में आकर निरादर पाता है, हे मुनीश्वर! जिस शरीर के लिये यह विषय की इच्छा करता है, वह शरीर भी नाशवान् है, उसमें अहं प्रतीति करनी परम आपत्ति का कारण है और शरीर में अहं बुद्धि न करना परम सुख का कारण है, जैसे सर्प के मुख में पड़ा हुआ दर्दुर मच्छर के खाने की इच्छा करता है, वह महामूर्ख है, किसी क्षण में काल इसको ग्रस लेगा, इसलिये इसकी इच्छा करना व्यर्थ है और दुःख का कारण है, हे मुनीश्वर! बालक अवस्था व्यतीत होती है, तब युवावस्था आती है, यौवन के बाद वृद्धावस्था आती है, तब जर्जरी भाव को प्राप्त होता है, जैसे वसन्त ऋतु की मञ्जरी ज्येष्ठ आषाढ़ में सूख जाती है ऐसे वृद्धावस्था में शरीर जर्जरी भाव को प्राप्त होता है, और दुःख पाता है, बालक अवस्था में खेलों में मग्न रहता है, यौवन के कामादि के वश में हो जाता है, वृद्धावस्था में चिन्तामग्न होता है, इसप्रकार यह तीनों अवस्थाएँ व्यतीत होती हैं, तदनन्तर मृत्यु हो जाती है, जीव की अवधि इस प्रकार बीत जाती है, परमपद से मनुष्य वंचित रहता है, हे मुनीश्वर! यह आयुर्बल बिजली के चमत्कार की नाईं है, उस क्षण भंगुर अवस्थामें भी लोग भोग की वांछा करते हैं, वे

महादुःख को प्राप्त होते हैं, इनमें सुख देखकर कहे कि मैं स्वस्थ रहूंगा तो यह कदाचित् न होगा, जैसे जल के तरंग की गोद में बैठकर स्थित हुआ चाहे तो वह नहीं रहेगा, अवश्य मरेगा, ऐसे विषय भोगों से शान्ति नहीं होती, जैसे कोई अति धूप से व्याकुल हुआ सर्प के फन की छाया के नीचे बैठकर सुख की इच्छा करे, वह नहीं हो सकता, जब आत्मज्ञानरूप वृक्ष की छाया के नीचे बैठे तब शान्त तथा सुखी होगा, जिन पुरुषों ने विषय सेवन किया है, वे परम दुःख को प्राप्त हुए हैं, जिन्होंने आत्मपद का सेवन किया है, वे परमानन्द को प्राप्त हुए हैं, जैसे नदी का प्रवाह अधः को चला जाता है, ऐसे मूर्ख का मन विषयों की ओर दौड़ता है, यह संसार मायामात्र है, इसमें शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, जैसे मरुस्थल की नदी जल से प्यास नहीं मिटती ऐसे विषय भोग से शांति कभी नहीं होती, कि आत्मपद से विमुख हैं, विषयों की ओर दौड़ते हैं और जो आत्मपद में स्थित हैं, वे विषयों की ओर नहीं दौड़ते, जैसे समुद्र में उत्पन्न होकर तरंग नष्ट होते हैं, जैसे नदी का वेग समुद्र की ओर गमन करता है और पत्थर की शिला गमन नहीं करती, ऐसे भोगरूप समुद्र की ओर अज्ञानरूप नदी गमन करती है, ज्ञानरूप पत्थर की शिला नहीं गमन करती, हे मुनीश्वर! कमल में सुगन्धि तब तक होती है, जब तक सर्प के मुख का वायु नहीं लगा, ऐसे ही बुद्धि में तब तक विचार है, जब तक चित्तरूप सर्प के मुख का भोगेच्छारूप वायु नहीं लगा, जब लगता है तब विचाररूप सुगन्धि को ले जाता है, विषरूप तृष्णा को छोड़ जाता है, बाण निशान की ओर तब दौड़ता है जब धनुष और चिल्ली को त्यागता है, त्यागने से फिर नहीं मिलता, ऐसे आत्मरूप चिल्ले से जब चित्तरूप बाण छूटता है, तब भोगरूप निशान की ओर दौड़ता है, जब जाता है, तब फिर आना कठिन हो जाता है, अर्थात् अन्तर्मुख होना कठिन होता है, हे मुनीश्वर! यह आश्चर्य है, जो पदार्थ सुखदायक नहीं उसकी और यह बड़ा यत्न करता है, तो भी सिद्ध नहीं होता और जो अयत्न सिद्ध आत्मपद है, उसको त्यागता है, जिनको यह सुखरूप जानता है वे सब दुःख के स्थान हैं, जिस अपने होने को यह भला जानता है, वह अनर्थ

का कारण होता है, जिस देह को यह सुखरूप जानता है, वह सब रोगों का मूल है, जिनको यह भोग जानता है वे इसको दुःख देनेवाले परम रोग हैं, जिनको यह सत् जानता है वे सब मिथ्या हैं, जिनको यह स्थित जानता है स्थिर नहीं, चलरूप है। जिनको यह रस जानता है वे सब विरस हैं, जिनको बांधव जानता है वे सब अबांधव है, दृढ़ बन्धन रूप हैं, जिसको यह सुख देनेवाली स्त्री जानता है, वह सर्पिणी है, परम विष के देनेवाली है, मृत्यु का रूप है, उस पर आसक्त मनुष्य की मृत्यु होती है वह नहीं जीता अर्थात् उसकी आत्मपद में स्थिति नहीं होती, हे मुनीश्वर! मैं देह को परम आपत्ति का कारण मानता हूं, इसके निवृत्त हुए परम पद को प्राप्त होता है जिस पुत्र धन आदि को यह संपत्ति जानता है, वह परम दुःखरूप आपत्ति है, इनमें सुख कदाचित् नहीं, यह बात मैं सुनकर ही नहीं कहता, किन्तु देखकर अनुभूत बात कहता हूं, यह संसार मायामात्र है और बड़े बड़े स्थानों में मैं भी गया हूं, परन्तु सार पदार्थ मुझको कोई नहीं दृष्टि आया, स्वर्ग में नन्दनवन के रूप में काष्ठ ही दृष्टि आया और पृथ्वी में आकर देखा तो पंचमहाभूत ही दृष्टि आये और शरीर में रक्त, मांस, हाड़, मूत्र आदि ही दृष्टि आये हैं, इसलिये उन सबको ऐसा देखकर मैं धिक्कार करता हूं, जो ऐसे शरीर में अहं प्रत्यय करते हैं, उनका आयुर्बल ऐसा है जैसे दोनों हाथों में जल लिया जाये तो वह चला जाता है ठहरता नहीं और जैसे जल में तरंग बुद्बुदे उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं, जैसे बिजली का चमत्कार होकर नष्ट हो जाता है, ऐसे यह शरीर नाशवान् है, जो ऐसे शरीर को पाकर सुख की तृष्णा करते हैं, वे महामूर्ख हैं, बालक अवस्था तरंग की नाईं नष्ट हो जाती है, यौवन अवस्था बिजली के चमत्कार की नाईं छिप जाती है, वृद्ध अवस्था में केश श्वेत हो जाते हैं, दांत घिसकर गिर पड़ते हैं, जैसे नीचे स्थान में जल आकर ठहर जाता है ऐसे सब रोग वृद्ध अवस्था में आकर डेरा जमा लेते हैं और तृष्णा दिन दिन बढ़ती जाती है, हे मुनीश्वर! सब पदार्थ जर्जरीभूत हो जाते हैं और तृष्णा जवान होती जाती है, जैसे वसन्त ऋतु

की मंजरी बढ़ती जाती है और जो सुख भोग प्राप्त होकर बिछुर जाते हैं, उनका दुःख होता है, हे मुनीश्वर! इस प्रकार इनको असत् जानकर मैं स्वरूप में स्थित हुआ हूं, जब पांचों इन्द्रियों के प्रिय विषय उत्तमरूप धारण कर स्थित हों तो भी हमें खींच नहीं सकते, जैसे मूर्ति की लिखी हुई कमलिनी भ्रमर को नहीं खींच सकती, ऐसे हमारे जैसों को विषय विचलित नहीं कर सकते, हे मुनीश्वर! तुम्हारा शरीर मैंने अवज्ञा से डाल दिया है, विचार करके नहीं डाला। जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक, त्रिकालज्ञ हैं तो भी इस चर्मदृष्टि से नहीं जान सकते, जब विचारकर देखते हैं तब जानते हैं, इस कारण से विचार बिना मैंने तुम्हारा शरीर डाल दिया है, अब तुम क्षमा करो, विचार करके भूत भविष्य वर्तमान को जानता है और इन नेत्रों से वही जानता है, जो अग्रभाग होता है, विशेष नहीं जानता, इस कारण से मुझसे तुम्हारा शरीर गिरा है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशम प्रकरणे उत्तरार्द्धे आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२२४॥

पंचविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२५

अन्तरोपाख्यानवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मुझसे भी तेरा गिरना विचार बिना हुआ है, जिसको मैं विचारता मैं उठ गया था, यह कुटी मेरे अंतवाहक संकल्प में थी, अपने स्थान को चलावे इस कारण से कुटी गिर पड़ी, तू भी गिर पड़ा, जो बीत गयी वही भली, उसका चिन्तन वृथा है, ज्ञानवान् गत बातों की चिन्ता नहीं किया करते जो हानि हुई वह हुई, हे साधो! अब चलिये जहां तुम्हें जाना है, जहां हमको जाना है हम भी जाते हैं। हे रामजी! इस प्रकार चर्चा करके हम दोनों आकाश मार्ग को उड़े जैसे पक्षी उड़ता है, तब परस्पर नमस्कार करके हम भिन्न भिन्न हो गये, वह

अपने स्थान को गया और मै अपने स्थान को चला, मैं बहुतेरे स्थान को देखता आऊं परन्तु मुझे कोई न जाने, हे रामजी! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा है तुम इस पर विचार करो, रामजी बोले–भगवन्! तुमने जो सिद्ध के साथ समागम किया था, तो आकाश मार्ग में शरीर के साथ कैसे घूमें, पांच भौतिक शरीर तो पृथ्वी पर डारा था वह तो पृथ्वी पर अणुरूप हो गया था तो किसके साथ विचरे थे, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अन्तवाहक शरीर के साथ मैं विचरता फिरा हूं, इसलिये मैं सिद्धों तथा देवताओं के स्थानों में इन्द्र, वरुण, कुवेर के स्थानों में फिरा हूं, मुझे कोई नहीं देख सकता, मैं सबको देखता था, संकल्प पुरुष के साथ मेरा व्यवहार हुआ और किसके साथ कहूं, मैं और किसी को नहीं भासा, रामजी बोले–हे मुनीश्वर! अन्तवाहक शरीर इन्द्रियों का विषय नहीं तो सिद्ध के साथ चर्चा कैसे की और तुमको उसने कैसे देखा, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ऐसा कहते हो तो सुनो! सिद्ध को मैं इसलिये दृष्टि आया हूं कि मेरा सत्य संकल्प है, मुझे यह स्फुरण हुआ कि सिद्ध मुझको देखे और चर्चा करे, इससे उसने मुझको देखा, उसका संकल्प भी मुझमें आया तब जाना और जो दोनों सिद्ध हो और उनका संकल्प भिन्न भिन्न हो तो एक दूसरे के संकल्प को नहीं जानते, परन्तु किसी का विशेष संकल्प हो तो वह दूसरे के संकल्प को जानता है इसलिये उसका संकल्प मेरे देखने में नहीं था और मेरा जो दृढ़ संकल्प था उससे उसके संकल्प को खैंचकर अपने ओर ले आया, जो बली होता है उसकी जय होती है, इससे उसने मुझको देखा, हे रामजी! जो अन्तवाहक में स्थित होता है, उसको तीनों कालों का ज्ञान होता है परन्तु व्यवहार में लगे तब भूल जाता है, जो वर्तमान पदार्थ होता है उसका ज्ञान होता है, इसी कारण से उसने मेरा शरीर डाल दिया था, वह समाधि के व्यवहार में लगा था और मेरे संकल्प से वह कुटी भी तब गिरी थी जब मैं अपने स्थान के व्यवहार को चला था ऐसा चिन्तन करके चला था, यदि मैं चिन्तन में न होता, अन्तवाहक शरीर में होता और उस कुटी के भविष्यत् को

विचारकर देखता और उस संकल्प को रहने देता तो सिद्ध न गिरता जो कि अपर व्यवहार में लगा इससे अन्तवाहक विस्मरण हो गया तब कुटी गिर पड़ी और सिद्ध भी गिर पड़ा, हे रामजी! इस प्रकार सिद्ध गिरा और चर्चा हुई, तब मैं वहां से चला, अंतवाहक शरीर आकाश मार्ग में फिरने लगा, सिद्धों के समूह देखे, देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि, मुनि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम आदिकों के सब स्थान देखे, मैं सबको देखता फिर मुझको कोई नहीं देखता था, मैं बड़े बड़े शब्द करता कि कोई सुने और मुझको देखे परन्तु मेरा शब्द कोई न सुनता था, न कोई देखता था, जैसे स्वप्न में कोई शब्द करे तब उसका शब्द जाग्रत् वाले कोई नहीं सुनते, जैसे असंकल्प वाला दूसरे की सृष्टि व्यवहार शब्द कोई नहीं जानता ऐसे मुझको कोई न जान सका, हे रामजी! इस प्रकार मैं आकाश पिशाच विचरा फिर देव स्थानों का पिशाच होकर विचरा मैं सबको देखता था, मुझे कोई नहीं देखता था, रामजी बोले–हे भगवन्! पिशाच का शरीर कौन होता है और पिशाच की जाति क्या होती है और पिशाच की क्रिया क्या होती है, उनके रहने का स्थान क्या होता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! पिशाच की कथा के साथ प्रयोजन तो कुछ न था, तथापि तुमने पूछा है इसलिये मैं कहता हूं, पिशाच का आकार नहीं होता और जो रूप धारण करते हैं वह सुनो! एक तो आकाश की नाईं शून्य होते हैं, एक विछावे की नाईं भय देते हैं, एक मेघ होकर स्थित होते हैं, एक कामरूप धारणकर स्थित होते हैं, ऐसे रूप धारण कर विचरते हैं कि वे सबको देखते जानते हैं, परन्तु उनको चलते बैठते कोई नहीं जानता परन्तु शीत उष्ण करके वे भी दुःख पाते हैं और इच्छा, द्वेष, लोभ, मान, मोह, क्रोध आदिक विकार उनमें भी रहते हैं, शीतल जल, भले भोजन की इच्छा, वह भी करते हैं और नगर में भी रहते हैं, वृक्षों पर भी रहते हैं, दुर्गन्ध स्थानों में भी रहते हैं, कहीं गीदड़ होकर दिखाई देते हैं, कहीं श्वान होकर दिखाई देते हैं, मन में भी जाकर प्रवेश करते हैं और मंत्र, पाठ, दान आदि से वश होते हैं, वह भी अपनी अपनी

वासना के अनुसार होता है, इनमें जो कई उत्तम होते हैं, कई मध्यम होते हैं, कई नीच होते हैं, जो उत्तम हैं, वे देवस्थानों में रहते हैं, जो मध्यम हैं वे मनुष्यों के स्थानों में रहते हैं, जो नीच हैं, वे नरक स्थानों में रहते हैं, इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र दृश्य से रहित है, हे रामजी! सबका अपना आपही चेतन सत्ता है, कल्पवृक्ष की नाईं उसमें जैसे जैसी वासना होती है ऐसा ऐसा पदार्थ हो भासता है, हे रामजी! न कहीं पिशाच है, न जगत् है, ब्रह्मसत्ता ही ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है, शुद्ध आत्मत्व मात्र में जो किंचन हुआ है, जो अहं होकर फुरा है, उसको जीव कहते हैं, उस अहं की दृढ़ता से मन फुरा है, वह मन ब्रह्म होकर स्थित हुआ है, उस ब्रह्मा ने मनोराज्य से आगे जगत् उत्पन्न किया है, ब्रह्मा ही जगत् रूप होकर स्थित हुआ है, ब्रह्मा में ही स्थित हुआ है, हे रामजी! ब्रह्मा का शरीर अन्तवाहक है, केवल आकाशरूप है, उसके दृढ़ संकल्प से अर्धभूत जगत् दृढ़ हुआ है, उसी मन से अपर मन हुआ है, हे रामजी! जैसे ब्रह्माका शरीर अन्तवाहक है, ऐसे सबका शरीर अन्तवाहक है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से अधिभूत भासता है सब मनोरूप है, दीर्घकाल का स्वप्न जाग्रत् होकर स्थित हुआ, उससे दृढ़ भासता है, अज्ञानी को जगत् अधिभूत भासता है और जो प्रबोध रूप हैं, उनको सब जगत् संकल्प रूप है और वास्तव से कहें तो उत्पन्न कुछ नहीं हुआ, न तू है, न मैं हूं, न ब्रह्मा है न जगत् है, सबही ब्रह्म रूप हैं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, जैसे अग्नि और उष्णता में भेद कुछ नहीं, जैसे वायु और स्पंद में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, ब्रह्म शब्द और जगत् दोनों अज हैं, न ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, न जगत् उत्पन्न हुआ है, दोनों ब्रह्मरूप हैं, जो ब्रह्म से इतर भासता है, भ्रान्तिमात्र है, हे रामजी! पंचभूत और छठामन इनका नाम जगत् है, जब तक यह भूत उसमें दृष्टि आते हैं, तब तक भ्रान्ति है, जब इनसे रहित केवल चेतन भासे तब इसीका नाम परमपद है, हे रामजी! आत्मपद में जगेगा तब पंच भूत भी आत्मा से इतर भासेंगे सबका अधिष्ठान चेतन सत्ता है, जब तक आत्मा

का प्रमाद है, तब तक संसार भ्रम न मिटेगा और सब जगत् निराकार संकल्प मात्र है, परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आकाश में स्थूल भूत दृष्टि आते हैं, ज्ञान काल में और अज्ञान काल में भी जगत् उत्पन्न नहीं, परन्तु अज्ञानी के हृदय में दृढ़ भासता है, जैसे किसी ने मनोराज्य से नगर रचा हो, वह उसीके हृदय में है और कहीं नहीं भासता, ऐसे जब तक अज्ञान निद्रा में सोया है, तब तक जगत् भासता है, जब जगेगा तब आकाशरूप देखेगा, हे रामजी! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता जब तक स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ तब तक ब्रह्माका संकल्प ब्रह्माको नहीं बंधन करता, स्वरूपकी अहं प्रत्यय से तो संकल्परूप है, अन्य दूसरी वस्तु सत्य कुछ नहीं, आत्मा ही है वास्तव से जगत् का न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, न जगत् का होना है, न अनहोना है, आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है , हे रामजी! जो सर्वात्मा है तो रागद्वेष किसका हो, सब अपना आप ही है, अपना आप जो आत्मतत्व है, उसका किंचन संवेदन फुरणे से जगत्रूप होकर स्थित हुआ है, जैसे किसी पुरुष ने मनोराज्य करके एक स्थान रचा, जब उसमें दृढ़ भावना हुई तब अधिभूत भासने लग जाता है, ऐसे यह जगत् भी ब्रह्मा का संकल्प है, चन्द्रमा सूर्य अग्नि रुद्र वरुण कुवेर आदिक सब संकल्परूप हैं, संकल्प की दृढ़ता से अधिभूत भासते हैं, हे रामजी! आत्मरूप एकताल है, इसमें चेतनरूप जल है, उसमें स्फुरण (फुरना) रूप कीचड़ है, इसमें चौदह प्रकार के भूतजात दर्दुर रहते हैं, वे संकल्पमात्र हैं, हे रामजी! आकाश में एक आकाश क्षेत्र है, उसमें शिला उत्पन्न होती है, स्वर्गलोक देवता बड़ी शिला है एक उनमें उज्ज्वल शिला है, वे ज्ञानवान् हैं, मध्यम शिला मनुष्यलोक है, तिर्यक् आदि योनि नीच शिला है वे सभी निर्बीज हैं अर्थात् कारण से रहित हैं, आत्मा अद्वैत सदा अपने आपमें स्थित है उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु भ्रांति से भिन्न भिन्न भासता है, जैसे फेन बुद्बुदे तरंग सब जलरूप हैं ऐसे यह जगत् सब आत्मरूप है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारणरूप होती है, जैसे संकल्पसृष्टि कारण बिना होती है, ऐसे यह जगत् कारण बिना संकल्प से उत्पन्न होता

है, जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हुआ है ऐसे पिशाच भी उदय हुए हैं, हे रामजी! जैसे किंचन आत्मा में होता है, ऐसा होकर भासता है, वास्तव से पृथिवी आदिक तत्व कहीं नहीं, न कहीं ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है न कोई जगत् उत्पन्न हुआ है सब भ्रममात्र है, जितने वपु भासते हैं, सब निर्वपु हैं चेतनता से फुरे हैं, सब जीवों का आदि अंतवाहक शरीर है जैसे ब्रह्मा का शरीर था, ऐसे सब जीवों का अन्तवाहक शरीर होता है, परन्तु संकल्प की दृढ़ता से अधिभूत हो भासता है और सब जीवों का अपना अपना भिन्न संकल्प है, उनके अनुसार अपनी अपनी सृष्टि होती है और यदि तुम कहो भिन्न भिन्न है तो जीव इकट्ठे क्यों दृष्टि आते हैं, ऐसा चाहिये कि अपनी अपनी सृष्टि में हो, उसका उत्तर यह है, जैसे एक नगरवासी अन्य नगर में जाये और दूसरा नगरवासी दूसरे नगर में आये दोनों इकट्ठे बैठें, ऐसे सब जीव इकट्ठे भासते हैं, उनके इकट्ठे होने पर उसकी सृष्टि वह नहीं देखता और उसकी सृष्टि वह नहीं देखता, जैसे स्वप्न में भिन्न भिन्न भूतजात होते हैं अनुभव इकट्ठे दृष्टि आते हैं और एक अनुभव में भिन्न भिन्न होते हैं, एक दूसरे की सृष्टि को नहीं जानते, जीव अंतवाहक भूल गया है, आधिभूत दृढ़ हो रहा है, जैसा अनुभव में अभ्यास होता है ऐसा ही भासता है, जहां पिशाच होता है वहां अंधकार भी होता है, मध्याह्न का सूर्य उदय हो और पिशाच आगे आये तो अन्धकार हो जाता है, ऐसा तमोरूप होता है, जैसे उलूकादिक को प्रकाश में अंधकार होता है ऐसे अनेक सूर्यों का प्रकाश हो तो भी पिशाच का अन्धकार रहता है, हे रामजी! जैसा उनमें निश्चय होता है ऐसा ही भान होता है, क्योंकि उनका ओज तमोरूप है, जैसे किसी का निश्चय होता है, ऐसा भासता है, हमको तो सदा आत्मा का निश्चय है इसीसे सदा आत्मतत्व का भान होता है, जैसे पिशाच पांच भौतिक शरीर से रहित चेष्टा करते हैं, ऐसे मैं पांच भौतिक शरीर से रहित आकाश में चेष्टा करता रहा हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम पंचविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२२५॥

षड्विंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२६

अन्तरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं, पांच भौतिक शरीर से रहित अंतवाहक शरीर के साथ विचरता रहा हूं, परन्तु मुझको देखता कोई नहीं, चंद्रमा, सूर्य इन्द्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं और सिद्ध गंधर्व ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्रह्मा विष्णु रुद्र भी इस चर्मदृष्टि के साथ कोई नहीं देख सकता था, मैं सबको देखता था, इन्द्र के निकट जाकर मैंने उसके अंग हिलाये, परंतु उसने मालूम नहीं किया, जैसे संकल्प नगर किसीको हिलावे, वह देखे और आधिभौतिक शरीर न हिले, ऐसे ही उनके शरीर मेरे हिलाने से नहीं हिलें, तब मैं अतिमोह को प्राप्त हुआ, कि बड़ा आश्चर्य है, इतने समय तक मैं रहा मुझको नहीं देख सका, तब मैंने यह इच्छा की कि मुझको देखे, तब मेरा जो सत्य संकल्प रूप था उससे देखने लगे जैसे कोई इन्द्रजाल को देखे ऐसे मुझको देखने लगे, जिन्होंने पृथ्वी से उत्पन्न हुआ देखा वे पृथ्वी से उत्पन्न वसिष्ठ जानने लगे, मनुष्य लोक में कई लोगों ने जल से उत्पन्न जाना, जिन ऋषिश्वरों ने जलरूप तीर्थ से उत्पन्न देखा उन्होंने वारिवसिष्ठ जाना, कि यह वारिवसिष्ठ है, कई वायु से उत्पन्न जाने, सिद्धादिक कई जाने कि यह सप्तर्षि के मध्य है जो तेज वसिष्ठ है, इस प्रकार जगत् में मुझको देखने लगे, तब सबके साथ व्यवहार करने लगा, जब बहुत काल व्यतीत हुआ तब भावना की दृढ़ता से मुझको पांच भौतिक शरीर देखने लगे, प्रथम वृत्तांत सबको विस्मृत हो गया, आधिभौतिकता दृढ़ हो गयी, जैसे स्वप्न नरको अज्ञान से आधिभौतिक देखता है, ऐसे ही मेरे साथ आकार को देखने लगे और मुझको सदा अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय से इतर द्वैत कुछ भासता न था, क्योंकि मैं ब्रह्मरूप हूं, और वसिष्ठ नाम मेरा ऐसा है जैसा जेवरी में सर्प होता है, मैं चिदकाश रूप हूं, और दूसरों को वसिष्ठ की प्रतीति होती है, हे रामजी! जैसे तुम सरीखे को मेरा आकार दृष्टि

आता है और मुझको आधिभौतिक अन्तवाहक दोनों शरीर चिदाकाश का किंचन भासता है, मैं सदा निराकार अद्वैत रूप हूं, चेष्टा हमारी तुम्हारी समान है, परन्तु मुझको सदा आत्मपद का निश्चय है, इस कारण से मैं जीवन्मुक्त होकर विचरता हूं, अज्ञानी को क्रिया में द्वैत भासता है, और हमको क्रिया में अद्वैत भासता है, ब्रह्मा भी ब्रह्मरूप भासता है, और उसका संकल्प जो जगत् है वह भी ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्र में तरंग होते हैं, वे जलरूप हैं, भिन्न कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है, भिन्न कुछ नहीं, सब ब्रह्म ही है, इसलिये मैं चिदाकाशरूप हूं, द्वैत कुछ नहीं फुरता, जब अहंता फुरती है, तब जगत् द्वैतरूप होकर भासता है, जैसे अहं के फुरने से स्वप्नसृष्टि होती है, ऐसे जाग्रत् सृष्टि होती है,वह संकल्पमात्र है, ब्रह्मा और ब्रह्मा का जगत् संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक नाईं भासता है, वास्तव से न ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, न जगत् उत्पन्न हुआ है, चिदानन्द ब्रह्म अपने आप में स्थित है, सदा एक रस है, हे रामजी! सृष्टि के आदि और प्रलय पर्यन्त तो कुछ क्षोभ है, उसमें आत्मा सदा एक रस है, उसमें क्षोभ कदाचित् नहीं, क्योंकि वास्तव में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, जो कुछ प्रतीत होता है, वह अज्ञान से सिद्ध है, ज्ञान से जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे स्वप्न सृष्टि में इसको कहीं निधि भासी उसकी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और जब जगा तो मालूम हुआ कि यह तो स्वप्न है, तब उसके पाने का यत्न नहीं करता, ऐसे ही इसको आत्मबोध होता है तो फिर इस जगत् में जगद्बुद्धि नहीं रहती, अज्ञान ही जगत् भ्रम का कारण है, इस अज्ञान की निवृत्ति का उपाय यही है कि महारामायण का विचार करना, इससे संसार भ्रम निवृत्त होगा, यह संसार अविद्या से वासनामात्र है, इसको सत्य जानकर जो इसकी ओर दौड़ते हैं, वे मूर्ख हैं, परमार्थ शून्य हैं (शून्य जीरो) मढ़ हैं, कीट हैं और वानर की नाईं चंचल हैं, जिनको भोग में सदा इच्छा रहती है वे नीच पशु हैं, उनका संसार निवृत्त होना कठिन है, तृष्णा अन्दर सदा रहती है, वैराग्य को नहीं प्राप्त होते, हे रामजी! भोग तो ज्ञानवान्

भी भोगते हैं, परन्तु भोग बुद्धि से नहीं भोगते, प्रवाह पतित जो कुछ प्रारब्ध वेग से आकर प्राप्त होता है, उसको भोगते हैं और जानते हैं कि गुण गुणों में वर्तते हैं और इन्द्रियों सहित भोग की भ्रांति मात्र जानते हैं और जो अज्ञानी हैं, वे आसक्त होकर भोगते और तृष्णा करते हैं, भोग की तृष्णा से मन जलता है इसीका नाम बन्धन है, और भोग दुःखरूप हैं, जो इनका सेवन करते हैं, वे अन्दर से सदा तृष्णा से जलते हैं, इनका द्वैतरूप जगद्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता और जो ज्ञानवान् हैं, वे सदा आत्मा से तृप्त रहते हैं, इसलिये शान्तरूप हैं, जैसे हिमालय पर्वत पर पदार्थ शीतल हो जाता है ऐसे आत्मज्ञान से अंतःकरण शीतल हो जाता है, आत्मानन्द की प्राप्ति होती है, दुःख कोई नहीं करता, और जिनका चित्त सदा स्त्री, पुत्र, धनादि में आसक्त है और इच्छा करते हैं, वे महामूर्ख हैं, नीच हैं, उनको धिक्कार है, जिसको आत्मपद की इच्छा हो उसको सदा सत्संग करना चाहिये, वह शास्त्रों का श्रवण विचार करे, इस अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होगी, हे रामजी! यह शास्त्र विचार करने से परमपद को प्राप्त करानेवाला है जो लोग इस शास्त्र को छोड़कर दूसरी ओर लगते हैं, वे मूर्ख हैं, वाल्मीकि मुनि महाराज बोले—हे राजन्! जब इस प्रकार वसिष्ठजी ने कहा, तब सायंकाल का समय हुआ, सब श्रोता परस्पर नमस्कार करके चले गये, तब सूर्य भगवान् की किरणें निकलकर प्रकाश देने लगीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अंतरो पाख्यान समाप्तिवर्णनं नाम षड्विंशत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२२६।।

सप्तविंशत्यधिक द्विशततमः सर्गः २२७

जीवन्मुक्तसंज्ञावर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तुझको अन्तरोपाख्यान श्रवण कराया है, उसके विचार से जगद्भ्रम नष्ट हो जायेगा, ऐसे जब तू विचारकर

देखेगा तब अनन्त ब्रह्मांड आत्मा में बसते दृष्टि आवेंगे, हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ वास्तव नहीं हुआ, इसीसे मिटना भी नहीं, चित्त के फुरने से भासता है, जब चित्त का फुरना अधिष्ठान में लीन हो जावेगा, तब अद्वैत तत्व आत्मा ही भासेगा, हे रामजी! अद्वैत तत्व में जगत् भ्रम से भासता है, ज्ञानवान् की दृष्टि में सदा अद्वैत भासता है, जगत् भी सब चिदाकाशरूप है, मैं भी चिदाकाश हूं, तू भी चिदाकाश हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मसत्ता ही जगत् होकर भासती है जैसे अपना अनुभव स्वप्न में स्वप्नसृष्टि होकर भासता है, वह अनुभवरूप ही है, ऐसे यह जगत् भी चिदाकाशरूप है, नाना प्रकार के विकार भी दृष्टि आते हैं, तो भी आत्मसत्ता अनुस्यूत अखंडरूप है, आत्मसत्ता और जगत् में भेद कुछ नहीं, जैसे स्वर्ण और भूषण में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, ब्रह्म ही चेतना से जगत्रूप हो भासता है, जैसे स्वप्न में अपने ही अनुभव से वृथा हो भासते हैं, इतर कुछ नहीं, अनुभव से जैसे समुद्र और तरंग में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् और अनुभव तीनों में भेद कुछ नहीं, असम्यक् दृष्टि से भेद भासता है, सम्यक् दृष्टि से भेद कोई नहीं, हे रामजी! आत्मसत्ता में प्रथम आभास फुरा है, वह ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआ है, वह चिदाकाशरूप है, वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, उसी ब्रह्मसत्ता ने अपने भाव को नहीं त्यागा, और ब्रह्मरूप होकर स्थित हुई है, पुनः उसने जगत् रचा है, वह जगत् भी आकाशरूप है, वास्तव से न जगत् उत्पन्न हुआ है न ब्रह्म उत्पन्न हुआ है, न स्वप्न हुआ है, परमार्थ सत्ता सदा अपने आपमें स्थित है, वह शुद्ध अनन्त अविनाशी है, अचेत चिन्मात्र है और जगत् भी वही रूप है, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूं, न मेरे साथ कोई आकार है न मैं कभी उत्पन्न हुआ हूं, न मैं कदाचित् मृतक होता हूं, नित्य शुद्ध अजर अमर सदा अपने स्वभाव में स्थित हूं, अनेक विकारों से भी एक रस हूं, जैसे स्वप्न में बड़े क्षोभ होते हैं, तो भी जाग्रत् वपु को स्पर्श नहीं करते, क्योंकि जो उसमें कुछ हुए नहीं आभासमात्र हैं, ऐसे जगत् की उत्पत्ति प्रलयादि के क्षोभ में

आत्मसत्ता को स्पर्श नहीं, अर्थात् क्षोभ से रहित सदा अनुभवरूप है, जिस पुरुष ने ऐसे अनुभव को नहीं पहचाना कि सब कुछ जिससे सिद्ध होता है और उसको छिपाया है, वह महामूर्ख है, वह आत्महत्यारा है, वह महान् आपत्ति के समुद्र में डूबेगा और जिसको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय हुआ है, उसको मानसिक दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करता, जैसे पर्वत को चूहा नहीं चूर्ण कर सकता ऐसे ही उसको दुःख स्पर्श नहीं करता, और आत्मा में जिसको अहं प्रत्यय नहीं उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती, जैसे वायु में उड़ा हुआ तृण स्थिर नहीं होता, ऐसे देहाभिमानी को शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, अपने शुद्धस्वरूप को त्यागकर देह के साथ अपने आपको मिला हुआ जानता है, वह क्या करता है, जैसे कोई चिन्तामणि को त्यागकर राख को अंगीकार करे, ऐसे शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूप को त्यागकर देह में आत्माभिमान करता है, हे रामजी! जब यह पुरुष अनात्म में आत्माभिमान करता है, तब अपने आपको विचारवान् जानता है और जन्म मृत्यु के अधीन मानता है, जब देहाभिमान को त्यागकर आत्मा को आत्मा मानता है, तब न जन्म लेता है न मरता है, न शस्त्र से काटा जा सकता है, न अग्नि से दग्ध होता है, न जल में डूबता है, न पवन से सूखता है, निराकार, अविनाशी चिदाकाशरूप है, हे रामजी! यदि चेतन की मृत्यु हो तो पिता के मरने पर पुत्र भी मर जाय, एक के मरने पर सब मर जायँ क्योंकि चेतन आत्मसत्ता एक है, अनुस्यूत है, एक के मरे सब नहीं मरते इसलिये चेतन आत्मा की मृत्यु कदाचित् नहीं, शरीर के काटने से आत्मा नहीं कटता, शरीर के दग्ध हुए आत्मा दग्ध नहीं होता, सम्पूर्ण विश्व के भस्म हो जाने पर भी आत्मा निर्लेप है, आत्मा नित्य शुद्ध, अनन्त अच्युतरूप है, कदाचित् स्वरूप से अन्यथा भाव को प्राप्त नहीं हुआ हे रामजी! मैं ब्रह्म हूं, अहंरूप हूं, अर्थात् सबमें अहंरूप निराकार अंड मैं हूं, न मेरा जन्म है न मृत्यु है, न सुख की इच्छा है न दुःख से द्वेष है, न हर्ष है न शोक है, न जीने की इच्छा है न मरणे की, जैसे जेवरी में सर्प कल्पित है जैसे स्वर्ण में

भूषण की कल्पना होती है उसी प्रकार आत्मा में वसिष्ठ नामरूप है, देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित अनन्त आत्मा हूं, नित्य शुद्ध बोधरूप हूं, सबका स्वरूप आत्मतत्व है, परन्तु वास्तव स्वरूप के प्रमाद से अन्यवस्तु को प्राप्त हुए की नाईं भासता है जो पुरुष स्वरूप में स्थित नहीं हुए, संसारमार्ग की ओर दृढ़ हुए हैं, उनका जीना वृथा है, कहना चैत्य है नहीं तो पाषाण की शिलावत् है, जैसे लुहार की धौंकनी से पवन निकलता है, ऐसे उनका जीवन वृथा है, घटीयंत्र की नाईं वासना में भटकते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते सदा तपते रहते हैं और जिनकी आत्मपद में स्थिति हुई है उनको दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करता, जब प्रलयकाल का पवन चले और पुष्कर मेघ की वर्षा हो वडवाग्नि लगे और बारह सूर्य तपें तो ऐसे क्षोभ में भी विचलित नहीं होती, क्योंकि सर्व जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानता है, जैसे तृण से पर्वत नहीं विचलित होता ऐसे वह बड़े दुःख से भी नहीं फिसलता, दुःख तब होता है जब आत्मा से इतर कुछ भासता है, उसको आत्मा से इतर कुछ नहीं भासता हे रामजी! यह सब जगत् आत्मानुभवरूप है, क्योंकि जो परमात्मा का स्वरूप है, स्वप्न में अनुभव से इतर कुछ वस्तु नहीं होती, इसी कारण से सब जगत् अनुभवरूप है और जो इतर भासता है, वह भ्रांतिमात्र है, यह जगत् जो नाना प्रकार का भासता है आत्मा में अव्यक्तरूप है, भ्रम से प्रकट भासता है, जैसे आकाश में नीलता भ्रम से सिद्ध है ऐसे आत्मा में जगत् भ्रम से सिद्ध है, वास्तव से ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, आत्मसत्ता ही जगत्‌रूप होकर भासती है, उसमें जैसा जैसा निश्चय होता है ऐसा ही अधिष्ठानरूप भासता है और जिनके कारण से सृष्टि का अधिष्ठान दृढ हो रहा है, उनको ऐसा ही सत्य भासता है, जिनको परमाणु से सृष्टि उत्पत्ति निश्चित् हुई है, उनको ऐसे ही सत्य भासती है, माध्यमिक सत्य असत्य के मध्य वस्तु को मानते हैं, एक म्लेच्छ हैं चार्वाकी जो कि चारों तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं, बौद्ध कहते हैं जो वस्तु है वह बोध है, इसके न होने पर शून्य ही रहता है, एक अनेक,

तुम तो आगे भी जानते हो, आगे भी मारे हैं और अब भी मारोगे, मनुष्य भी आत्मपद से गिरे हुए हैं, इनको सदा इच्छा रहती है, कि गृह बनाइये, खाने और धनसंचय करने के लिये जगत् व्यवहार करते हैं, विषयों में डुबे हुए हैं, पाताल में नाग रहते हैं, जिनका जल में निवास है, सुन्दर नागिनियों में आसक्त रहते हैं, वे भी आत्मानन्द से गिरे हुए हैं, इत्यादिक भूत प्राणी विषय सुखों में लगे हुए हैं, आत्मपद से विमुख हैं और सब जातियों में विरले जीवन्मुक्त भी हैं और ज्ञानवान् भी हैं, वह श्रवण करो, देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सदा आत्मानंद में मग्न हैं, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराज, वरुण, कुबेर, बृहस्पति, नारद, शुक्र कच आदि जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सप्तऋषि और दक्ष प्रजाति आदि जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार चारों जीवन्मुक्त हैं और भक्त पुरुष बहुत हैं, सिद्धों में कपिल मुनि आदि जीवन्मुक्त हैं, यक्षों में, विद्याधरों में, योगिनियों में भी जीवन्मुक्त हैं, दैत्यों में हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बलि, विभीषण, इन्द्रजित्, सारमेय, चित्रासुर, नमुचि, आदिक जीवन्मुक्त हैं, मनुष्यों में राजर्षि, ब्रह्मर्षि, नागों में शेषनाग, वासुकि आदि जीवन्मुक्त हैं, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक हैं, कोई कोई विरले जीवन्मुक्त हैं, हे रामजी! जाति जाति में जो जो जीवन्मुक्त हुए हैं संक्षेप से तुझको कहे हैं और जहां जहां देखा है वहां वहां अज्ञानी बहुत हैं, ज्ञानवान् कोई विरला ही दृष्टि आता है, जैसे जहाँ कहीं अन्य वृक्ष तो बहुत हैं परन्तु कल्पवृक्ष बिरला होता है, ऐसे संसार में अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं, ज्ञानी कोई विरला है, हे रामजी! शूरवीर पुरुष दूसरा कोई नहीं, जिसको आत्मपद में स्थिति प्राप्त है, वही शूरवीर है संसार समुद्र को तरना उन्हीं को सुगम है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्त संज्ञावर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२२७॥

अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमः सर्गः २२८

जीवन्मुक्तव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो विवेकी पुरुष विरक्त चित्त हैं, जिनकी स्वरूप में स्थिति हुई है, उनके इतने विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य के उदय हुए अंधकार स्वाभाविक निवृत्त हो जाता है ऐसे ही उनके राग द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दंभ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे वाण को देखकर कौआ भाग जाता है ऐसे विवेक रूप बाण को देखकर विकार रूप कौए भाग जाते हैं और इतने उनके हृदय में स्वाभाविक आकर निवास करते हैं, वह पुरुष किसी पर क्रोध नहीं करता और जो करते दृष्टि आते हैं वे किसी निमित्त मात्र जानना, उनके हृदय में कोई विकार नहीं, सदा शीतलता और दया उनके हृदय में रहती है, जो कोई निकट आता है, वह भी शीतल हो जाता है, क्योंकि जो निरावरण स्थित है जैसे चन्द्रमा के निकट आने से शीतल होता है ऐसे ज्ञानवान् की समीपता से हृदय शीतल होता है, कोई पुरुष उनसे उद्वेगवान् नहीं होता और जो कोई निकट आता है उसको विश्राम के निमित्त स्थान देते हैं और उसका अर्थ भी पूर्ण करते हैं, जैसे कमल के निकट भँवरा जाता है उसको विश्राम का स्थान देते हैं और सुगन्धि से उसका अर्थ पूर्ण करते हैं, ऐसे संत जन अर्थ पूर्ण करते हैं और यथा शास्त्र चेष्टा करते हैं, हेयोपादेय की विधि को भी जानते हैं, जो कुछ स्वाभाविक आकर प्राप्त हो उसको शास्त्र की विधि सहित अंगीकार भी करते हैं और हृदय में सबकी भावना से रहित हैं, स्नान दानादि शुभ क्रियाएँ इनमें स्वाभाविक होती हैं और उदारता, वैराग्य, धैर्य, शम, दम आदिक गुण उनमें स्वाभाविक होते हैं, इस लोक में भी सुख देने वाले हैं परलोक में भी सुख देने वाले हैं, हे रामजी! जिन पुरुषों में ऐसे गुण पाइये वे संत हैं, संसार समुद्र के पार करने हारे संत जन

ब्राह्मण, हस्ती, गौ, श्वान, घोड़ा, सूर्य आदिक में भिन्न भिन्न प्रतीत हो रही है, जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं, वे सबमें एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखते हैं, हे रामजी! वस्तु तो एक है उसमें जिसका जैसा निश्चय हुआ है वैसा ही भासता है, जैसे चिंतामणि और कल्पतरू में जैसी भावना की जाती है ऐसा रूप हो भासता है हे रामजी! बुद्धिमान् वैद्यों द्वारा निर्णय किया गया है कि सारभूत आत्मसत्ता है जब उसमें दृढ़ अभ्यास करेगा तब आत्मसत्ता ही भासेगी उस निश्चय से विचलित न होगा, रामजी बोले–हे भगवन् बुद्धिमान कौन हैं, जगत् में पाताल में कौन हैं, भूतल में कौन हैं, स्वर्ग में कौन हैं? जिसके पूर्वापर के विचार से परावर का साक्षात्कार हुआ है और आत्मस्वरूप के कैसा निश्चय करते हैं? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जगत् के समस्त प्राणी इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा से जलते हैं, इष्ट की प्राप्ति में हर्ष करते हैं, अनिष्ट की प्राप्ति में शोक करते हैं, ऐसा कोई जो जगत् में सूर्य की नाईं प्रकाशित करता है, नहीं तो सब तृणवत् भोगरूप वायु में भटकते हैं, जो सबसे श्रेष्ठ कहाता है वह भी विषयरूप अग्नि में जलता है जैसे क्रम और शुभ स्थान में रहते हैं और उससे अपने आपको प्रसन्न मानते हैं, वे मेरे मत में दुर्गन्ध के कृमि हैं और गन्धर्व तो मूढ़ हैं, उनको तो कुछ शुद्धि नहीं अर्थात् आत्मपद की गन्ध भी नहीं, वह तो मत में मृग हैं, जैसे मृग को राग से आनन्द भासता है ऐसे गन्धर्व राग से उन्मत्त रहते हैं, आत्मपद से विमुख हैं और विद्याधर भी मूर्ख हैं, क्योंकि वेद की अर्थरूप चतुराई को अग्नि में जलाते हैं, वेद का सार भूत अमृत है, उसको नहीं जानते आत्मपद से विमुख हैं और सिद्ध हैं, वह मेरे मत में पक्षी है, जो पक्षियों की नाईं उड़ते फिरते हैं, अभिमानरूप पवन के चलने से अनात्मरूप गर्त में आ पड़ते हैं, वास्तव स्वरूप में स्थित नहीं होते और यक्ष धन के अभिमान से मूर्ख की प्रीति से जलते हैं, आत्मपद में स्थिति नहीं पाते, योगिनी भी मद से सदा उन्मत्त रहती है, आत्मपद में स्थिति नहीं पाती और दैत्यों को भी सदा देवताओं की मारने की इच्छा रहती है सदा शोक में रहते हैं, आत्मपद से विमुख हैं

बहुत हैं, जैसे जहाज के आश्रय से समुद्र से पार होता है इसी प्रकार ऐसे ही संसार समुद्र से पार करनेवाले संत जन हैं, जिनको संत जनों का आश्रय मिला है, वे तरे हैं, फिर कैसे हैं, संत जन जो संसार समुद्र के पार के पर्वत हैं, जैसे समुद्र में बहुत जल होता है और बड़े तरंग उछलते हैं, उसमें बड़े मत्स्य रहते हैं, जब प्रवाह उछलता है तब पर्वत उस प्रवाह को रोकता है उछलने नहीं देता, ऐसे चित्तरूप समुद्र है, उसमें इच्छा रूप तरंग हैं, राग द्वेष रूप मच्छ रहते हैं, जब इच्छा रूप तरंग का प्रवाह उछलता है तब संतरूप पर्वत उसको रोकते हैं, वे सन्त अपने चित्त को भी रोकते हैं और जो कोई उनकी शरण में जाता है उसकी रक्षा भी करते हैं और शरीर नष्ट होने लगे अथवा नगर नष्ट होने लगे अथवा निकट अग्नि लगे तो भी ज्ञानवान् का हृदय स्वरूप से विचलित नहीं होता, वह सदा अपने स्वरूप में स्थिर रहता है, जैसे भूकम्प से मेरु विचलित नहीं होता, ऐसे वह विचलित नहीं होता मैंने यह स्नान दान आदि जो शुभ गुण तुम्हें कहे हैं, जीव को सुख देनेवाले हैं और दुःख को निवृत्त करते हैं, इनसे सुख की प्राप्ति होती है और दुःख नष्ट हो जाता है, वह श्रवण कर, जब स्नान दान की ओर यह पुरुष आता है तब संत की संगति में भी इसका चित्त लगता है, जब संत की संगति में भी इसका चित्त आया तब क्रम से इसको परम पद की प्राप्ति होती है, इसलिये इस पुरुष का यही कर्तव्य है कि जो शास्त्र की आज्ञा है उसके अनुसार शुभ गुणों में चेष्टा हो और संत के निश्चय का अभ्यास हो, हे रामजी! जिसको संत की संगति प्राप्त होती है वह भी सन्त होकर रहता है सन्त का संग वृथा नहीं जाता, जैसे अग्नि के साथ मिला हुआ पदार्थ अग्निरूप हो जाता है, ऐसे सन्त के संग से असन्त भी सन्त हो जाता है और जब मूर्ख की संगति करता है तब साधु भी मूर्ख हो जाता है, जैसे उज्ज्वल वस्त्र मल के संग से मलिन हो जाता है, ऐसे मूढ़ के संग से साधु भी मूढ़ हो जाता है, जैसे पाप के वश से साधु को भी दुर्जनों की संगति से दुर्जनता आकर अपना प्रभाव दिखाती है, इसलिये हे रामजी! दुर्जनों की

संगति से कुछ बचना ही भला है, अर्थात् दुर्जनों का संग कभी नहीं करना चाहिये, सदा सत्संग का आश्रय रखना शुभ है, परमहंस सन्त जन मिलें तो उनके गुणों को ग्रहण करना चाहिये कभी अयोग्य वचन मुख से संतों के प्रति न निकले उनके गुण वर्णन करो उनमें यदि कोई दोष भी दीखे तो भी उसको उनका गुण गान ही करना चाहिये, जैसे भँवरा केतकी के कंटक की ओर नहीं देखता उसकी सुगन्धि ग्रहण करता है, हे रामजी! संसार मार्ग को त्यागकर संत की संगति करो, तब संसार भ्रम निवृत्त होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० जीवन्मुक्तिव्यवहारो
नामाष्टविंशत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२२८॥

ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २२९

परमार्थरूपवर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! हमारे दोष तो सत् शास्त्र सत् संग और युक्तिओं से दूर होते हैं, तथा तीर्थ—स्नान, दान, जप, पूजा पाठ से निवृत्त होते हैं, अन्य जीव जो कीट पतंग पशु पक्षी आदिक हैं, उनके दुःख कैसे निवृत्त होंगे, यह कहिये, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जो वास्तव सत्ता है उसका नाम ब्रह्म है, अखंड है, अद्वैत है, उसमें कुछ द्वैत का विभाग नहीं, परन्तु उसमें चित्त किंचन आभास फुरा है, वह फुरणा नानात्व हुए की नाईं स्थित हुआ है, वास्तव में कुछ हुआ नहीं, जैसे स्वप्न में स्वप्नसृष्टि भासती है, परन्तु वास्तव में कुछ हुई नहीं, निद्रा दोष से भासती है, ऐसे जाग्रत् सृष्टि भी कुछ वास्तव हुई नहीं, अज्ञान से जीव को भासती है, वास्तव से सब ब्रह्मरूप है, अपने स्वरूप के प्रमाद से जीवत्व भाव को अंगीकार किया है, उस जीवत्व के अंगीकार करने से जैसा निश्चय करता है, अनात्म देहादिक में आत्माभिमान करके ऐसी ही गति को पाता है

और देश, काल क्रिया द्रव्य का संकल्प जैसा दृढ़ होता है ऐसा अनुभव सत्ता में हो भासता है, उसमें चार अवस्थाएँ कल्पित होती हैं, जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार अवस्था का अनुभव होता है, वह अवस्था कौन कौन है, सुनो! हे रामजी! पर्वत पाषाण घन सुषुप्ति में स्थित है, जैसे सुषुप्ति अवस्था में कुछ फुरता नहीं, जड़ीभूत हो जाता है, ऐसे उनको फुरणा कुछ नहीं फुरता, घन सुषुप्ति में स्थित हैं और वृक्ष क्षीण सुषुप्ति में स्थित हैं, जैसे क्षीण सुषुप्ति में कुछ फुरणा फुरता है, ऐसे वृक्ष में भी फुरणा होता है, इसलिये क्षीण सुषुप्ति में तिर्यक् जो पक्षी कीट पतंग जीव हैं, वे स्वप्न अवस्था में स्थित हैं, जैसे स्वप्न में पदार्थ भासता है परन्तु दृढ़ समदृष्टि नहीं भासता, ऐसे इनको थोड़ा सूक्ष्म ज्ञान है, इसलिये स्वप्न अवस्था में स्थित हैं और मनुष्य देवता हैं जाग्रत्‌रूप जगत् का अनुभव करते हैं हे रामजी! यह चारों अवस्थाएँ आत्मा में स्थित हैं और आत्मसत्ता ही में स्थित है, सबका अहं प्रत्ययरूप आत्मा है, बड़े का क्या और छोटे का क्या? उसमें जैसा संकल्प दृढ़ होता है, ऐसा ही हो भासता है, हे रामजी! हमको एक दिन बीतता है और कीट को उसमें युग का अनुभव होता है और उनके युग में हमको एक क्षण का अनुभव होता है और हमारे लिये जो सूक्ष्म अणु होता है उनको वह पर्वत के समान होता है, हे रामजी! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है, परन्तु भावना से भिन्न भासता है और एक कीट है वह बहुत सूक्ष्म है, जब वह चलता है तब वह जानता है कि मेरा गरुड़ का सा वेग है, उसको वही सत् हो रहा है और वालखिल्य अंगुष्ट प्रमाण शरीर है, उनको वही बड़ा भासता है, विराट् को वही अपना बड़ा शरीर भासता है, जैसी जिसकी भावना होती है, ऐसा ही उसको प्रतीत होता है, मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, सबका अपना भिन्न भिन्न सकल्प है, जैसा संकल्प किसी को दृढ़ हो रहा है, उसको ऐसा ही स्वरूप भासता है, जैसे मनुष्य, राग, द्‌वेष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि विकारों से आक्रान्त होता है, ऐसे कीट, पतंग, पक्षी आदिकों पर भी इसका आक्रमण

होता है, परन्तु इतना भेद है कि जैसे हमको यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, ऐसे उनको नहीं भासता, संसारी सब है, परन्तु वासना के अनुसार घटवत् भासते हैं और दुःख का अनुभव स्थावर जंगम को भी होता है, जब किसी स्थान पर आग लग जाती है, उसमें वृक्ष, पाषाण जलते हैं, तब उनको भी दुःख होता है परन्तु सूक्ष्म स्थूल का भेद है, जैसे अपर जीव को शस्त्र प्रहार करने से शरीर नष्ट होने का दुःख होता है, ऐसे वृक्षादिक को भी होता है, परन्तु घन सुषुप्ति क्षीण सुषुप्ति स्वप्न और जाग्रत का भेद है, पर्वत पाषाण को सूक्ष्म जैसा दुःख होता है, वृक्ष को पाषाण से विशेष होता है, परन्तु स्पष्ट मान अपमान का दुःख नहीं होता, स्वप्न की नाईं होती है और मनुष्य देवता को स्पष्ट राग द्वेष जाग्रत की नाईं होता है, क्योंकि जो जाग्रत अवस्था में स्थित हैं और वृक्ष पाषाण आदि को स्पष्ट दुःख का विकल्प नहीं उठता, जड़ता स्वभाव में स्थित है और दुःख कहें तो सबको होता है और तू अन्य आश्चर्य देख कि कीट महादुःखी रहते हैं, जब मृतक हों तब सुखी हों और अज्ञान से जो इस शरीर में आस्था हुई है, उसको भी मरना बुरा भासता है तो अन्य जीव को भला कैसे लगे, हे रामजी! अपने स्वरूप के प्रमाद से भय, क्रोध, लोभ, मोह, जरा, मृत्यु, तृषा, राग द्वेष, हर्ष, शोक इच्छादिक विकारों की अग्नि से जीव जलते हैं, आत्मानंद को नहीं प्राप्त होते, घटी यंत्र की नाईं वासना के अनुसार भटकते हैं, जब वासना दृढ़ पाप की होती है तब पाषाण वृक्ष योनि को प्राप्त होते हैं, जब क्षीण वासना तामसी होती है तब तिर्यक् पक्षी सर्प कीट पतंगादि योनियों को पाते हैं, हे रामजी! राजसी वासना से मनुष्य होते हैं, सात्विकी वासना से देवता होते हैं और जब मनुष्य शरीर धारणकर निर्वासनिक होते हैं तब मुक्ति को पाते हैं, जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जीव का दुःख नष्ट हो जाता है, दुःख का नाश करने का अन्य कोई उपाय नहीं। यह जगत् के दुःख तब तक भासते हैं जब तक इसको आत्मज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ, जब ज्ञान उत्पन्न हो तब जगद्भ्रम मिट जाता है और यदि मुझसे पूछो तो वास्तव में न कोई देवता है, न

मनुष्य है, न पशु है, न पक्षी है, न पाषाण है, न वृक्ष है न कीट है, सब चिदाकाश रूप है, दूसरा कुछ बना नहीं, भ्रांति से नाना स्वरूप भासता है, सदा सर्वदाकाल सर्वप्रकार आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, हे रामजी! न कुछ जगत् का होना है, न अनहोना है, न आत्मसत्ता है, न परमात्मता है, न मौन है, न अमौन है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अचेत्य चिन्मात्र अपने आप में स्थित है, उसमें जन्म जन्मान्तर भ्रम से भासते हैं, जैसे स्वप्न से स्वप्नान्तर भ्रम से भासता है और जैसे स्वप्न में एक अपना आप होता है, निद्रा दोष से द्वैत भासता है, ऐसे एक अब भी आत्मा अद्वैत रूप है, अविचार से नानात्व भासता है और दुःख भी अज्ञान से भासता है, विचार करने से दुःख नहीं पाता, जो यह पुरुष मृतक होकर उत्पन्न होता है तो शान्ति हुई, दुःख कोई नहीं और जो मृत होकर शान्त हो जाता है, उत्पन्न नहीं होता, तो भी दुःख कोई नहीं, मुक्त हुआ और यदि मरता नहीं, तो भी ज्यों का त्यों हुआ, दुःख कोई नहीं हुआ और जो सर्व चिदाकाश है तो भी दुःख कोई नहीं हुआ, हे रामजी! अज्ञानी के निश्चय में दुःख है, विचार करने से दुःख कोई नहीं और यह जगत् आत्मारूप आदर्श में प्रतिबिंबित है परन्तु यह जगत् रूप कैसा प्रतिबिंब है, जो अकारणरूप है, इसका कारणरूप बिंब कोई नहीं, कारण से रहित है, जैसे नदी में नीलता का प्रतिबिंब पड़ता है, वह अकारणरूप है, ऐसे यह जगत् अकारणरूप है, अज्ञानी को उसमें सत्यता है, प्रमाद दोष से ज्ञानी को द्वैत नहीं भासता, अज्ञानी को द्वैत भासता है, हे रामजी! हमको तो सदा चिदाकाश ही भासता है, हम जगे हुए हैं, इसलिये द्वैत कुछ नहीं भासता, जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं भासता, ऐसे हमको द्वैत कुछ नहीं भासता, ऐसे हमको द्वैत नहीं भासता, जो ज्ञानी है उसको ब्रह्म से इतर कुछ नहीं भासता, सब ब्रह्म ही भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे परमार्थरूपवर्णनं
नाम ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२२९।।

त्रिंशदधिद्विशततमः सर्गः २३०

नास्तिकवादनिराकरणम् ।

श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! जो कुछ तुमने कहा है वह मैं जानता हूं, परन्तु नास्तिकवादी का कल्याण भी किसी प्रकार होता है, जो नास्तिकवादी कहते हैं कि जब तक जीव है तब तक सुखी जीवे, जब मर जायेगा तब भस्मीभूत होगा, न कहीं आना है न कहीं जाना है, उनका कल्याण किस प्रकार होगा, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! आत्मसत्ता आकाश की नाईं सर्वत्र पूर्ण है, जब तक उसका भान नहीं होता, तब तक मन की तप्तता नष्ट नहीं होती, जब आत्मसत्ता का भान होता है तब शान्ति होती है, अपने आपको अमर जानता है, जिस पुरुष ने अखंड निश्चय धारण किया है उसको दुःख स्पर्श नहीं करता, वह ब्रह्मदर्शी होता है और जिसको ब्रह्मसत्ता का निश्चय नहीं हुआ, उसके मन को ताप नहीं छोड़ते, स्वरूप के प्रमाद से अपने आपको मरता जानता है और महाप्रलय रूप आत्मा में सर्व शब्द का अभाव है, जैसे महाप्रलय में सर्व शब्द का अभाव होता है, ऐसे आत्मा में सर्व शब्द का अभाव है, जिसको आत्मा में निश्चय हुआ है, उसको सर्व शब्द का अभाव हो जाता है, वह महाज्ञानवान् है, उसको आत्मसत्ता ही भासती है, जो वास्तव है, उसको हमारा उपदेश नहीं, वह ज्ञानी है, हे रामजी! आत्मसत्ता में द्वैत जगत् कुछ बना नहीं, परमार्थ सत्ता सदा अपने आप में स्थित है, उसमें जो सृष्टि भासती है, वह स्वप्नवत् अकारण है, इसलिये ज्ञानवान् पुरुष सर्व शब्द अर्थ को नहीं जानता, ऐसा पुरुष हमारे उपदेश के योग्य नहीं, क्योंकि जो सर्व शास्त्रों का सिद्धान्त आत्मपद है, उसको जो जानता है, उसको और कर्तव्य कुछ नहीं और जिसको ऐसी दशा प्राप्त नहीं हुई, वह उपदेश का अधिकारी है और यह जगत् आत्मा का किंचन है, अज्ञानी को सत् भासता है और ज्ञानी के निश्चय में कुछ नहीं, जैसे किसी ने संकल्प से एक वृक्ष रचा, उसके पत्र, शाखाएँ, फूल, फल उसको प्रतीत होते हैं, दूसरे

के मन से शून्य होते हैं, ऐसे अज्ञानी के निश्चय में जगत् होता है, ज्ञानी के निश्चय में विलास है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, हे रामजी! आत्मसत्ता सर्व व्यापी है, उसमें जैसा निश्चय फुरना होता है, अहं प्रत्यय भावना की दृढ़ता से वैसे ही भासता है, जिस पदार्थ का निरतंर दृढ़ अभ्यास होता है, शरीर के त्यागने पर भी यही अभ्यास रूप धारण कर लेता है और आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है, केवल अद्वैत संवित् सबका अपना आप है, जैसे इसको स्वरूप का ज्ञान हुआ है, वह शास्त्र के दण्ड से रहित होता है और वेद शास्त्र जो पदार्थ को भला, बुरा, सत्य और असत्य वर्णन करते हैं, जिस पुरुष को उसमें निश्चय होता है उसको वासना के अनुसार वेद फल देते हैं और जिसके निश्चय में आत्मा से भिन्न सर्व शब्द का अभाव हुआ है, उसको आत्म अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती, देह रहे अथवा न रहे, हे रामजी! जिसकी संवित् जगत् के शब्द अर्थ में बँधी हुई है, उसको पदार्थ में राग द्वेष उत्पन्न होता है, जैसे सुषुप्ति में आत्मसत्ता है और अभाव की नाईं स्थित है, ऐसे नास्तिकवादी भी अपने जड़स्वरूप को देखते हैं, क्योंकि उनको जड़शून्य का अभ्यास है, इसलिये उनकी सम्पत्ति दृश्य सुख के साथ बेधी हुई है, इससे इनका जगद्भ्रम नहीं मिटता, उस मलिन वासना के साथ जो संवित् मिली है, इससे उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं, उस जड़ता को भोग से वासना के अनुसार परिणाम को प्राप्त होंगे और सुख दुःख भोगेंगे, उस भावना से कुछ जगत् भानशून्य हो जाता है, कुछ समय के बाद चेतन होकर पुनः उन्हीं कर्मों को भोगते हैं, जैसे सूर्य के आगे बादल आकर पुनः निवृत्त हो जाय, ऐसे जगत् होता है और स्फुरणरूप जो जीव है उसमें जैसा निश्चय होता है ऐसा ही भासता है, जिसको एक आत्मा में निश्चय होता है वह जन्म मृत्यु आदि विकारों से रहित होता है और जिसको नाना स्वरूप जगत् में निश्चय होता है, वह जन्म मरण से नहीं छूटता हे रामजी! जिस बुद्धि में पदार्थ का रंग चढ़ता है वह रागद्वेषरूप नरक से मुक्त नहीं होता और जिसको एक आत्मा का अभ्यास होता है, उसके अभ्यास के बल से जगत्

आत्मरूप से भासता है और रागद्वेष से मुक्त होता है जैसे स्वप्न में किसी को अपना जाग्रत स्वरूप स्मरण आता है, तब सर्व स्वप्न का जगत् उसको अपना आप प्रतीत होता है, सर्वदा आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योति है, जिसको ऐसी आत्मसत्ता में नास्तिक भावना होती है वह ऐसी अवस्था को प्राप्त होता है, गर्त में कीट होता है, पाषाण, वृक्ष, पर्वत, आदिक स्थावर योनियों को प्राप्त होता है, चिरकाल पर्यन्त वहां रहता है, जब तक उसकी बुद्धि को द्वैत का संयोग होता है, तब तक जगत् भ्रम को देखता है और भ्रम नहीं मिटता, जब उसकी संवित् को द्वैत का संयोग मिट जाय, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है, हे रामजी! सम्यग् ज्ञान से जगत् भ्रम का अभाव हो जाता है, अभाव निश्चय का स्फुरण हो तब पुनः जगत् नहीं भासता और जब संसार पदार्थ विद्ध संवित् है तब जैसा निश्चय होगा उसके अनुसार गति को प्राप्त करेगा, राम बोले–भगवन्! नास्तिक का वृत्तांन्त आपने कहा मैंने जान लिया, जिस पुरुष के हृदय में जगत् की सत्यता स्थिर है और आत्मबोध के मार्ग से शून्य है शुद्ध स्वरूप को नहीं जानता, उसको ज्ञान नहीं है वह अज्ञानी है, उसकी क्या अवस्था होती है, उसकी किस युक्ति से मुक्ति होगी, मेरे दृढ़ बोध के लिये इस बात पर प्रकाश डालिये। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसका उत्तर तो मैं पहिले ही कह चुका हूं, यदि तुम पुनः सुनना चाहते हो तो फिर कहता हूं सुनो, पहिले तो पुरुषशब्द का अर्थ सुनिये कि पुरुष किसको कहते हैं हे रामजी! यह जगत् नेत्र में स्थित नहीं, श्रवण में नहीं, न नासिकादि इंद्रियों में स्थित है, चेतन संवित् में जगत् स्थित है, वह चेतन संवित् ही पुरुषरूप है, जिस पुरुष को उसमें निश्चय है वह ज्ञानवान् है, उसको द्वैत कलना नहीं फुरती जो प्रत्यक्ष दृष्टि भी आती है परन्तु उसके निश्चय में नहीं होती, जैसे आकाश में धूल भी दृष्टि आती है परन्तु स्पर्श नहीं करती, ऐसे ज्ञानवान् को द्वैत कलना स्पर्श नहीं करती और जिस चेतन संवित् के साथ फुरने का सम्बन्ध है, उसको जगत् का आकार भासता है और जिस पुरुष की संवित् में देश, काल, क्रिया, द्रव्य का

सम्बन्ध है, वह कलंक दृढ़ हो रहा है और अपने वास्तव अद्वैत स्वरूप के अभ्यास से मार्जन नहीं करता, वह वास्तव चेतन आकाशरूप भी है तो भी कलंक से वासना के अनुसार जगत् उसको अपने से भिन्न भासता है, द्वैत भ्रम नहीं मिटता, हे रामजी! जो पुरुष ऐसा भी है कि देह की इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में सम रहता है और आत्मसत्ता यथावत् नहीं भासती तो अज्ञानी है, आत्मसत्ता जाने बिना संसार उसका निवृत्त नहीं होता, जब आत्मसत्ता का साक्षात्कार होगा तब सब भ्रम निवृत्त हो जायेगा, हे रामजी! यह पुरुष न जीव है न स्फुरणरूप है, न शरीर के नाश होने से नाश होता है, यह पुरुष केवल चिन्मात्र स्वरूप है और वासना से भ्रम को देखता है और जो शून्यवादी हैं, वे वृक्ष पर्वत आदि जड़ योनियों को पाते हैं, जो सदा उसके अनुभव को त्यागकर अन्य कुछ इष्ट जानते हैं वे मूर्ख हैं, उनको आत्मसुख नहीं प्राप्त होता, आत्मा के प्रमाद से अहं, त्वं, अन्तर बाहिर शब्द भासते हैं और जब आत्मज्ञान होता है तब सर्व शब्द आत्मरूप हो जाता है, जिन पुरुषों ने आत्मानात्म का निर्णय करके नहीं देखा, वे नीच हैं और जिन पुरुषों ने निर्णय करके आत्मा में अहं प्रतीत की है, अनात्मा का त्याग किया है, वे महापुरुष हैं, उनको मेरा नमस्कार है, जिसने आत्मा को त्याग कर अनात्मा में अहं प्रतीति की है वह बालक है, जैसे आकाश में बादल के चक्र, हस्ती, घोड़े के आकार भासते हैं और जैसे समुद्र में तरंग भासते हैं, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, वह द्वैत कुछ नहीं, जैसे स्वप्न के नगर अपने अपने अनुभव में स्थित होते हैं और बाहिर द्वैत की नाईं भासते हैं, वे आभास मात्र हैं, ऐसे आत्मा में जो जगत् भासता है, वह आभास मात्र है, वास्तव कुछ नहीं, जिसको आत्मसत्ता का अनुभव हुआ है, उसको जगत् के शब्द अर्थ, राग द्वेष किसी की कल्पना नहीं रहती, उसको पुण्य, पाप फल स्पर्श नहीं करता, हे राम! ज्ञान संवित् का नाश कदाचित् नहीं होता, इसलिये विश्व भी अनुभव रूप है, इस जगत् का निमित्त कारण और समवायि कारण कोई नहीं, क्योंकि अद्वैत है और जो तू कहे कि प्रत्यक्ष घटादिक समवाय और निमित्त कारण उत्पन्न होते दीखते हैं तो जैसे स्वप्न में कारण कार्य

अनहोते भासते हैं, ऐसे यह भी जान पहिले स्वप्न में बने हुए दृष्टि आते हैं और बाद में कारण से होते दृष्टि आते हैं, ऐसे ऐसे भी जानों केवल भ्रम मात्र है, जैसे स्वप्न सृष्टि का जगने पर अभाव होता है, ऐसे ज्ञान से इसका अभाव हो जाता है, यह दीर्घ काल का स्वप्न है, इसलिये जाग्रत कहा जाता है, जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने आप होती है, निद्रा दोष से भिन्न भासती है, ऐसे यह जगत् अपना आप है, परन्तु अज्ञान से भिन्न भासता है, ज्ञान जाग्रत से सब अपना भासता है, उसमें रागद्वैष का अभाव हो जाता है, जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमा की चांदनी में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, आत्मा ही जगद्रूप हो भासता है, हे रामजी! तुम अपने अनुभव में स्थित होकर देखो कि सब ब्रह्मरूप है, जगत् कुछ नहीं भासता, सर्वात्मरूप है और साध्य है, जैसे शरत्काल का आकाश शुद्ध होता है, ऐसा आत्मसत्ता स्फुरण रूप बादल से परम शुद्ध शान्त रूप है, उसमें स्थित होने से भान और मोह का अभाव हो जाता है, तृष्णा किसी पदार्थ में नहीं रहती, प्रारब्ध वेग से जो कुछ आकर प्राप्त होता है, उसको भोगता है, आत्मदृष्टि से दुःख से रहित हुआ प्रत्यक्ष आचार को करता है, उसको शास्त्र का दंड नहीं रहता, परम शान्तरूप विराजता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे नास्तिकवाद निराकरणं नाम त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ।।२३०।।

एकत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३१

परमोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मैं चिदाकाश रूप हूं और दृश्य दर्शन द्रष्टा यह त्रिपुटी जो भासती है, वह भी चिदाकाश रूप है, आत्मसत्ता ही त्रिपुटी रूप हो भासती है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं और नास्तिकवादी कहते हैं कि परलोक कोई नहीं, अर्थात् आत्मसत्ता कोई नहीं, वे मूर्ख हैं,

हे रामजी! यदि अनुभव आत्मसत्ता न हो तो नास्तिक कैसे सिद्ध हो, जिससे नास्तिक भी सिद्ध होता है, जो इष्टानिष्ट पदार्थों में राग द्वेष करते हैं ओर आत्मा को नाश कहते हैं, महामूर्ख हैं, जैसे जाग्रत के प्रमाद से स्वप्न में इष्टानिष्ट में रागद्वेष करते हैं, इष्टको ग्रहण करता है, अनिष्ट को त्याग देता है और जगने पर सब अपना ही स्वरूप भासता है, ग्रहण त्याग, राग द्वेष किस पदार्थ में नहीं रहता, ऐसे आत्मा के अज्ञान से किसी पदार्थ में राग करते हैं, किसी में द्वेष करता है, जब आत्मज्ञान होता है तब सब अपना ही स्वरूप भासता है, रागद्वेष किसी में नहीं रहता और चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है, चित्त के शान्त हुए जगत् लय हो जाता है, इसलिये जगत् मन में स्थित है, वह मन आत्मा के अज्ञान से हुआ है, जब आत्मज्ञान हुआ, तब मनुष्य, देवता, हस्ती, नाग आदिक स्थावर जंगम सब जगत् आत्मरूप भासता है, रागद्वैष किसी में नहीं रहता और नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं, नास्ति का साक्षी सिद्ध होता है, जिस से नास्ति भी सिद्ध होता है, वह अस्ति आत्मपद है, उस अस्ति अनुभव के इतने नाम शास्त्र कहते हैं, सत् आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहं ब्रह्म अस्मि कहते हैं, एक कहते हैं शून्य ही रहता है, एक कहते हैं अस्ति पद रहता है, हे रामजी! यह सब संज्ञाएँ आत्मसत्ता की हैं, वह आत्मसत्ता अपना ही आप स्वरूप है, वह मैं आत्मा हूँ, यह अंग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं इनको इष्ट पदार्थों से लिप्त कीजिये अथवा चूर्ण कीजिये, तो मुझको हर्ष शोक कुछ नहीं, इनके बढ़ने से मैं बढ़ता नहीं, इनके नष्ट हुए मैं नष्ट नहीं होता, हे रामजी! तीन शब्द होते हैं, जो मैं जन्मा हूं और जीता हूं और मरूंगा, जो पहिले न हो और उत्पन्न हो, उसको जन्म कहते हैं, मध्य में जीवित कहते हैं, उसके अनन्तर नाश हो उसको मरना कहते हैं, आत्मा में तीनों विकार नहीं, आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि आदि सिद्ध है, मरता भी नहीं, क्योंकि अविनाशी है, चेतन आकाश सबका अधिष्ठान है, काल का भी अधिष्ठान है, फिर उसका नाश कैसे हो, अर्थात् उदय अस्त से रहित है,

उसमें देशकाल जगत् का किंचन होता है, इसलिये आत्मा का नाश कैसे हो, अतः आत्मा अविनाशी है, हे रामजी! जिस वस्तु को देशकाल का परिच्छेद होता है, उसका नाश भी होता है, देशकाल वस्तु तीनों आत्मा में कल्पित हैं, जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित होता है, ऐसे आत्मा में तीनों कल्पित हैं, कल्पित वस्तु के साथ सत्य का अभाव कैसे हो, अतः आत्मा अविनाशी है और अद्वैत है, उसमें दूसरी वस्तु कुछ नहीं, जैसे शून्यस्थान में बेताल कल्पित होता है, ऐसे आत्मा में जगत् कल्पित है, उस अभावरूप जगत् के प्रमाद से एक को अभाव हो जानता है, एक को सद्भाव जानता है, जब इस निश्चय को त्यागकर अन्तर्मोक्ष हो तब इसको शांति प्राप्त होगी और विचार करके देखें तो इस संसार में दुःख कहीं नहीं, जो मरकर पुनर्जन्म लेता है तो भी समझो कि दुःख कहीं नहीं हुआ, क्योंकि जो शरीर वृद्धभाव को प्राप्त होकर क्षीण हुआ तब उसको त्यागकर नूतन ग्रहण किया तो बहुत उत्साह हुआ यदि मरकर उत्पन्न नहीं हुआ तो भी आनन्द हुआ क्योंकि जब तक जीता था, तब तक इसको ताप था, उसी का भाव जानता था, किसी का ग्रहण करता, किसी का त्याग करता था, उनसे तपता था, जब इनसे छूटा तब बड़ा आनन्द हुआ और जो सर्व चिदाकाशरूप है तो भी अपना आप आनन्दरूप है, दुःख कुछ न हुआ, हे रामजी! एक प्रमाद से दुःख होता है, अन्य किसी प्रकार दुःख नहीं होता, यह जगत् सब आत्मरूप है जो आत्मरूप हुआ तो दुःख कैसे हो और यदि तू कहे मैं अपने कर्मों से डरता हूं, परलोक में मुझको भय का कारण होगा, तो बुरे कर्म का दुःख यहां भी होता है और परलोक में भी होगा, इसलिये दुष्कर्म मत करो, मैं तुमको ऐसा उपाय कहता हूं, जिससे तेरे सब दुःख नष्ट हो जायँ, वह उपाय यह है, कहो कि मैं नहीं, अथवा ऐसा जानो कि सब मैं ही हूं, सकल वासना त्यागकर अपने आपको अविनाशी जानो और आत्मसत्ता में स्थिति प्राप्त करो, यह जगत भी सब तेरा स्वरूप है, जब ऐसे आत्मा को जान लेगा, तब शरीर के त्याग करने से भी दुःख कोई न होगा और शरीर के होते भी

दुःख कभी न होगा, जब पूर्व शरीर को त्यागकर नूतन जन्म लिया तो भी आनंद हुआ, परमशान्ति प्राप्त हुई और यदि चिदाकाश रूप है तो भी परमानन्द हुआ, हे रामजी! सर्व प्रकार आनन्द है परन्तु भ्रांति से दुःख भासता है, जब स्वरूप का साक्षात्कार होगा तब सर्व जगत् ब्रह्मानन्द स्वरूप भासेगा, हे रामजी! जिसको आत्मसत्ता का प्रकाश है वह पुरुष सदा आनन्द में मग्न रहा है और प्रकृत आचार को भी करता है, परन्तु इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में स्वरूप से विचलित कदाचित् नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वत वायु से विचलित नहीं हो सकता, ऐसे ही ज्ञानी भी इष्ट अनिष्ट में विचलित नहीं होता, परम गंभीरता में रहता है, अतः जो कुछ आत्मा से इतर उत्थान होता है उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थिति प्राप्त करो, चिन्मात्र सत्ता शरत्काल के आकाशवत् निर्मल है, ऐसे स्वच्छ केवल चिन्मात्र का जब अनुभव होगा तब जगत् द्वैत रूप होकर न भासेगा, व्यवहार में भी द्वैत न फुरेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे परमोपदेशवर्णनम्
नाम एकत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२३१।।

द्वात्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३२

चेतनाकाशपरमज्ञानवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! जिन पुरुषों को आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है, वे कैसे हो जाते हैं और उनका आचार कैसा होता है, यह मुझे सुनाने की कृपा कीजिये, वसिष्ठजी ने कहा–हे राम! उनकी जैसी चेष्टा होती है और जैसे विचार आचार होते हैं सुनो! उनका सबके साथ मित्रभाव होता है और तो और पाषाण (पत्थर) के साथ भी मित्रभाव होता है, बान्धओं में तथा स्त्री पुत्रादिकों में उनका किंचित् भी मोहलेश नहीं होता और जैसी माता की पुत्र पर दया और स्नेह की भावना बनी रहती है, ऐसी भावना सबके साथ रखते हुए वे सबको प्यार

और प्रेम से देखते हुए सुखी रखते हैं और चित्त से उदासीन रहते हुए वे रागद्वेष तथा अपना वेगानापन की भेद भावना से कोसों दूर रहते हैं, जैसे आकाश किसी के साथ स्पर्श नहीं करता, ऐसे वे भी किसी के साथ स्पर्श नहीं करते, परम आपत्ति में भी उनका अन्तःकरण दुःख से मुक्त रहता है, वे परम सुखी दीखते हैं और संसार में जितने रस हैं वे उनको विरस हो जाते हैं, उनका न किसी से राग है, न द्वैष है, तृष्णा करते दृष्टि भी आते हैं, परन्तु अन्दर से जड़ पत्थर की नाईं होते हैं, व्यवहार करते भी हैं, परन्तु निश्चय से परम शून्य मौन होते हैं, अर्थात् सदा समाधिस्थ रहते हैं, सब क्रिया करते दृष्टि आते हैं, वह किस प्रकार करते हैं, वे सबके स्तुति करने योग्य हैं, यत्न से रहित सब क्रिया का आरंभ करते हैं, परन्तु निश्चय से अपने आपको सदा अकर्ता जानते हैं और जो कुछ प्रारब्ध वेग से प्राप्त होता है उसे भोगते हैं और देश काल क्रिया सबको अंगीकार करते हैं और जो पर स्त्री आदि अनिष्ट आकर प्राप्त हो, उसका भी त्याग करते हैं, परन्तु निश्चय से सदा अकर्ता यथावत् बने रहते हैं और सुख दुःख की प्राप्ति में सम बुद्धि रहते हैं और प्रकृत आचार में यथा शास्त्र विचरते हैं परन्तु स्वरूप से कदाचित् विचलित नहीं होते, जैसे पुष्प के प्रहार से सुमेरु विचलित नहीं होता, ऐसे सुख दुःख की प्राप्ति में नहीं फिसलते, सदा स्वभाव में स्थित रहते हैं, सुख दुःख को भोगते दृष्टि आते हैं, परन्तु अपने यथार्थ निश्चय से नहीं फिसलते, अटल अचल रहते हैं, जैसे स्फटिक मणि के पास किसी रंग की कोई वस्तु रक्खी जाय वही रंग उसमें प्रतीत होने लगेगा, परन्तु उसके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् उस रंग का जो कि उसमें प्रतिबिंबित हुआ है, उस पर कोई असर नहीं होता, स्फटिक मणि यथावत् रहती है, ऐसे ही सुख दुःख के भोग ज्ञानवान् में दृष्टि आते हैं, परन्तु स्वरूप से वे कभी विचलित नहीं होते, चेष्टा अज्ञानी की करते हैं परंतु निश्चय से परम समाधि है, जैसे अज्ञानी को भविष्यत् का राग द्वैष, सुख दुःख कुछ नहीं होता, ऐसे ज्ञानी को वर्तमान का राग द्वैष नहीं होता और स्वाभाविक

चेष्टा उसकी ऐसी होती है कि सबके साथ उसका मित्रभाव होता है, न उससे कोई खेदवान् होता है न वह किसी से खेदवान् होता है और जब उसको सुख मिलता है तो रागवान् दृष्टि आता है और दुःख की प्राप्ति में शोकवान् सा दृष्टि आता है, परन्तु वास्तव में उसको किंचित् हर्ष शोक नहीं है, जैसे नट स्वांग लाता है, जैसा स्वांग होता है वैसी चेष्टा करता है, राजा का स्वांग हो अथवा निर्धन का, निश्चय अपने रूप में होता है, ऐसे ज्ञानवान् में सुख दुःख दृष्टि आते हैं, परन्तु निश्चय उनका आत्मस्वरूप में होता है और पुत्र, धन, बांधव आदिक को बुद्‌बुदे की नाईं जानते हैं, जैसे जल में तरंग बुद्‌बुदे होते हैं, फिर लीन भी हो जाते हैं, परन्तु जल को रागद्वेष कुछ नहीं, ऐसे ही ज्ञानवान् को रागद्वेष कुछ नहीं होता, उसका सब पर दया भाव रहता है। स्वाभाविक जो सुख दुःख आ जाते हैं, उनको भोगता है, जैसे वायु चलता है, तब दुर्गन्ध को, सुगन्ध को साथ ले जाता है, परन्तु वायु को रागद्वेष कुछ नहीं, ऐसे ज्ञानवान् को रागद्वेष कुछ नहीं, बाहिर अज्ञानी की नाईं व्यवहार करता है, परन्तु अन्दर से जगत् को भ्रान्ति मात्र जानता है, अथवा सब ब्रह्म जानता है, सदा स्वभाव में स्थित होता है, अनिच्छित प्रारबध को भोगता है, परन्तु जाग्रत में सुषुप्त की नाईं स्थित है, पूर्व और भविष्यत् की चिन्ता नहीं करता, वर्तमान में विचरता है, अन्दर से शीतल रहता है, बाहिर से इष्ट अनिष्ट दृष्टि आते हैं, अंदर से अद्वैत रूप है, ज्ञानवान् कर्म करता है, परन्तु कर्म में अकर्म जानता है और जीता हुआ भी मृतक के समान है, हे रामजी! जैसे मृत पुरुष को जगत् की कलना नहीं फुरती, ऐसे ही जिसको आत्मपद में अहं प्रत्यय हुआ है उसको द्वैत नहीं भासता, प्रत्यक्ष व्यवहार उसमें दृष्टि भी आता है, परन्तु निश्चय में अर्थ शान्त हो गया है, रामजी बोले–हे भगवन्! यह ज्ञानी के लक्षण जो तुमने कहे, इनको वही जाने, अन्य कोई नहीं जानता, क्योंकि बाहिर की चेष्टा अज्ञानी के तुल्य है और अंदर से शान्त रूप है, एक पुरुष ऐसे हैं, जो ब्रह्मचर्य से धैर्यवान् हैं, तथा तपस्या करने से द्वेष नहीं रहता, और एक ऐसे हैं, कि मिथ्या तपस्वी हैं, उसी प्रकार हो बैठते हैं, उनका निश्चय सत् है अथवा असत्

है, उन्हें किस प्रकार जानना चाहिये, कृपा करके कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह निश्चय सत् हो अथवा असत् हो, यह लक्षण सन्त के हैं, आत्मसाक्षात्कार का अनुभव अपने आप से होता है, दूसरे से नहीं हो सकता, इसलिये उसका लक्षण ज्ञानी ही जानता है, अन्य कोई नहीं जानता, जैसे सर्प के पैर को सर्प जानता है, ऐसे ज्ञानी का लक्षण स्वसंवेद्य हैं, हे रामजी! यह जितने गुण कहे हैं, ज्ञानवान् में स्वाभाविक भी रहते हैं, दूसरे के लिये यत्न साध्य है, सर्व जगत् उसको भ्रांतिमात्र है, अथवा अनुभव दृष्टि से अपना आप ही भासता है, इस कारण से परम शान्त है, राग द्वेष उसके अन्दर नहीं फुरते और अपने निश्चय को बाहिर नहीं प्रकट करता और जो अधिकारी हो उसको बतला भी देता है, जो अनधिकारी हो, वह समझ भी नहीं सकता, जैसे बावन चन्दन की बड़ी सुगन्धि है परन्तु दूर से नहीं भासती, ऐसे अज्ञानी उसके निश्चय से दूर हैं, इस कारण से वह जान नहीं सकता, जो चर्म दृष्टि से देखे वह उसको देख नहीं सकता और अधिकारी के बिना जाना भी नहीं जाता, जैसे अमूल्य चिन्तामणि किसी मूर्ख नीच पुरुष को दी जाये तो वह उसके माहत्म्य को नहीं जानता, इसलिये इसका निरादर करता है, इसीलिये ज्ञानवान् अनधिकारी को आगे उस तत्व को प्रकट नहीं करता, हे रामजी! अपने ऐश्वर्य को जो इसलिये प्रकट करता है कि हमको अर्थ की प्राप्ति होगी हमारा मान होगा, हमारे चेले बनेगा हमारी पूजा होगी, वह अज्ञानी है। ज्ञानवान् पुरुष सांसारिक पदार्थों को गन्धर्व नगर और इन्द्रजाल की नाईं जानते हैं, फिर वह किसकी इच्छा करे, इस कारण से वे अनधिकारी से अपना इष्ट नहीं प्रकट करते, यदि कोई उनके निकट बैठे तो भी अपने निश्चय को अंदर ही सकुचाये रखते हैं और यदि अधिकारी देखें तो उसके सामने प्रकट करते हैं, हे रामजी! पात्र को दिया हुआ पदार्थ शोभा पाता है और अपात्र को दिया हुआ वृथा ही जाता है, जैसे गौ को घास दिया जाय, वह दूध बन जाता है और सर्प को दूध दिया जाय तो वह विष बन जाता है, ऐसे ही अधिकारी को दिया हुआ शुभ होता है, अनधिकारी को दिया हुआ अनिष्ट हो जाता है, हे रामजी! अणिमा से लेकर जितनी

सिद्धियां हैं वह जपसे द्रव्यसे काल से अथवा देश से प्राप्त होती हैं, वह सिद्धियां अभ्यास के बल से अज्ञानी को भी प्राप्त होती हैं और ज्ञानी को भी परन्तु यह ज्ञान का फल नहीं, यह जप आदि का फल हैं, जिस सिद्धि के लिये पुरुष दृढ़ता से लग जाता है वही सिद्ध हो जाती है, जो इन सिद्धियों का दृढ़ अभ्यास करता है, तब उनके बल से वह आकाश मार्ग में उड़ने और आने जाने लगता है और यह पदार्थ तब तक रस देते हैं, जब तक आत्ममार्ग से शून्य हैं, हे रामजी! इनसे परम सिद्धि नहीं प्राप्त होती, वह परम सिद्धि आत्मपद है, जिसको आत्मपद की प्राप्ति हुई है, वह उनकी अभिलाषा नहीं करता, ऐसा पदार्थ पृथ्वी में कोई नहीं, आकाश में देव स्थानों में भी नहीं, जिस में ज्ञानी का चित्त मोहित हो, सब पदार्थ ज्ञानवान् को मृगतृष्णा के जलवत् प्रतीत होते हैं और मेरे सिद्धान्त में ही यथार्थ बात है कि सदा विषयों से उपरत होना और आत्मपद को परम इष्ट जानना, इसी का नाम ज्ञान है, जो प्रारब्ध के अनुसार आकर प्राप्त हो, वही करता है, परन्तु उसके करने से न कोई उसका अर्थ सिद्ध होता है, न कोई हानि होती है, न किसी अर्थ का आश्रय लेता है, न उसके लिये किसी भूत का आश्रय लेता है, सर्वदा अपने आप में स्वभाव स्थित रहता है, ऐसा निश्चय पाकर आश्चर्यवान् होता है और कहता है कि बड़ा आश्चर्य है, स्वरूप स्थिति में कैसा परम सुख है, अपने आपके विस्मरण से इतना समय मैं यों ही घूमता रहा हूं, अब मुझे परम शान्ति प्राप्त हुई है, अब वह जगत् को देखकर हँसता है। क्योंकि यह जगत् अनायास रूप है, अपने ही संवित् में स्थित है, जैसे आरसी में प्रतिबिंब स्थित होता है, ऐसे अपने संवित् में जगत् स्थित है, उसको वह अज्ञानी द्वैत समझते हैं और राग द्वेष से जलते हैं, ऐसे अज्ञानी को देखकर हंसता है और व्यवहार करता भी हँसता है, जैसे किसी ने स्वप्न में हाथ सुवर्ण दिया और देकर फिर लिया और इसने उसको स्वप्न जाना, तब चेष्टा करता है परन्तु हँसता है, कहता है कि यह मेरा ही स्वर्ण है, ऐसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चय में हंसता है और जैसे किसी ग्राम को अग्नि लगती है,

उस ग्राम से निकल कर एक पुरुष पर्वत पर जा बैठे, तब जल को देखकर हँसता है, ऐसे ज्ञानवान् पुरुष भी संसार रूप जलते नगर से निकल कर आत्मरूप पर्वत पर जा बैठा है, अज्ञानी को दग्ध होता देख हँसता है, आप अशोक होकर उसको सशोक देखता है, हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोध दृष्टि से देखता है, तब अद्वैत सत्ता भासती है और जब अन्तवाहक में स्थित होकर देखता है तब यथावत् स्थित हुओं को देखता है, अपने आप को शान्तरूप देखता है, अर्थात् आत्मतत्व परमानन्द स्वरूप है, उससे इतर जितने पदार्थ हैं, सब दोषरूप हैं, सिद्धता से लेकर जितनी कुछ क्रियाएँ हैं वे संसार के कारण हैं, जैसे समुद्र में कई तरंग बड़े होते हैं कई छोटे होते हैं, परन्तु समुद्र ही में है, जिस तरंग का आश्रय लेगा वह सिद्ध होगा, हिलने डोलने कहने से मुक्त होगा, ऐसे ही सिद्धता आदि जो क्रियायें हैं, वे कहीं बड़ा ऐश्वर्य है, कहीं छोटा ऐश्वर्य है, परन्तु संसार ही में है, जो पुरुष इस क्रिया को त्याग कर अन्तर्मुख होगा, वह संसाररूप समुद्र को त्यागकर आत्मरूप पार को प्राप्त होगा, हे रामजी! जिस पुरुष को जिस पदार्थ का अभ्यास होता है वही उसको मिलता है, जैसे पाषाण को निरन्तर घिसते रहने से वह भी चूर्ण हो जाता है, ऐसे जिस पदार्थ का सर्वदा अभ्यास करता है वह प्राप्त होता है, जिसको आत्मपद अभ्यास से प्राप्त होता है वह परम श्रेष्ठ हो जाता है और जगत् में सर्वोपरि विराजता है और परम दयानिधि होता है, जैसे मेघ समुद्र से जल लेकर वर्षा करते हैं, जल का स्थान समुद्र होता है, ऐसे जितने कुछ दया करते दृष्टि आते हैं, ज्ञानवान् के प्रसाद से करते हैं। सर्व दया का स्थान ज्ञानवान् है और ज्ञानवान् सबका सुहृद है, जो कुछ प्रवाह पतित कार्य आकर प्रतीत होता है, उसको करता है और जो शरीर को दुःख आकर प्राप्त होता है ऐसा उसको देखता है जैसे अन्य शरीर को होता है, अपने आप में सुख दुःख दोनों का अभाव देखता है और जिसको अभ्यास नहीं प्राप्त हुआ, वह शरीर के रागद्वेष से जलता है, ज्ञानी को शान्तिमान् देखकर दूसरे को भी प्रसन्नता प्राप्त होती है, जैसे पुण्य से जो स्वर्ग में

गया है, उसको वहां इष्ट पदार्थ दृष्टि आते हैं, कल्पवृक्ष सुन्दर मंजरियों सहित और सुन्दर अप्सरा आदिक दृष्टि आते हैं, उन पदार्थों को देखकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है, ऐसे ज्ञानवान् की संगति में जो पुरुष जाता है, उसको प्रसन्नता उत्पन्न होती है, जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतलता उत्पन्न करता है, ऐसे ज्ञानवान् की संगति शीतलता उत्पन्न करती है, ज्ञानवान् आत्मपद को पाकर आनन्दवान् होता है, वह आनन्द दूर नहीं होता, क्योंकि आप ही उस आनन्द से अष्ट सिद्धियां स्वयं तृण समान भासती हैं, हे रामजी! ऐसे पुरुषों का आचार और वह जिन स्थानों में रहते हैं, उन्हें सुनो, कई तो एकान्त में जा बैठते हैं, कई शुभ स्थानों में रहते हैं, कई गृहस्थ ही रहते हैं, कई अवधूत हुए सबको दुर्वचन कहते हैं, कई तपस्या करते हैं, कई परमध्यान लगाकर बैठते हैं, कई नंगे फिरते हैं, कई बैठे राज्य करते हैं, कई पंडित होकर उपदेश करते हैं, कई परम मौन धारण किये हुए हैं, कई पर्वत कंदराओं में जा बैठते हैं, कई ब्राह्मण हैं, कई सन्यासी हैं, कई अज्ञानी की नाईं विचरते हैं, कई नीच पामर होते हैं, कई आकाश में उड़ते हैं, इत्यादिक नाना प्रकार की क्रियाएँ करते दृष्टि आते हैं, परन्तु सदा अपने स्वरूप में स्थित हैं, हे रामजी! जिसको पुरुष कहते हैं, वह देह इन्द्रिय पुरुष नहीं और अन्तःकरण चतुष्टय भी पुरुष नहीं, पुरुष केवल चिदाकाशरूप है, वह न कुछ करता है, न किसी से उसका नाश होता है, जैसे नट स्वांग ले आता है और सब चेष्टाएँ करता है परन्तु नट भाव से अपने आपको असंग देखता है, ऐसे ज्ञानवान् व्यवहार भी करता है परन्तु अपने आपको असंग अकर्ता देखता है कि मैं अच्छेद्य हूं, अदाह्य हूं, अक्लेद्य हूं, अशोष्य हूं, नित्य हूं, सर्वगत हूं, स्थित हूं, अचल हूं, सनातन हूं, हे रामजी! इस प्रकार आत्मा में जिसको अहं प्रतीति हुई है, उसका नाश कैसे हो और वह बद्ध कैसे हो, वह पुरुष चाहे जैसे आरम्भ करे, चाहे जिस स्थान में रहे, उसको कुछ बन्धन नहीं होता, पाताल में चला जाये या आकाश में उड़ता फिरे अथवा देशान्तर में भ्रमता फिरे, उसको न कुछ अधिकता है, न कुछ ऊनता है, पर्वत से भी चूर्ण नहीं होता,

यह तो चेतन पुरुष है। शरीर का नाश हुए इसका नाश कैसे हो? ऐसे अपने स्वरूप में सदा स्थित है, आकाशवत् परम निर्मल है, अजर अमर शिवपद है, इसलिये हे रामजी! ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उत्तरार्द्धे परमज्ञानवर्णनं
नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२३२॥

त्रयस्त्रिंदधिकद्विशततमः सर्गः २३३

सर्वपदार्थाभाववर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! एक भाव मात्र है, एक आभास मात्र है, एक भासित मात्र है, भाव मात्र कहते हैं, केवल चेतन मात्र को, उसमें चैत्योन्मुखत्व अहंकार का उत्थान हुआ है, उसका नाम भासा है, फिर उसमें जो जगत् हुआ, उसका नाम भासित है, वह भासित कल्पित का नाम है, कल्पित का नाश होने पर अधिष्ठान का नाश नहीं होता, क्योंकि जो अधिष्ठान कुछ अपर भाव हो तो नाश भी हो, वह तो कुछ अपर बना नहीं, उसके फुरने में तीन संज्ञाएँ हुई हैं, वह फुरना भी उसका किंचन है, आत्मा फुरने न फुरने में यथावत् है, जैसे निस्पंद निस्पन्द में वायु एक है, ऐसे बोध अबोध में आत्मा एक है, बोध अबोध फुरना अफुरना एक ही अर्थ है, हे रामजी! वह आत्मा किससे और कैसे नाश हो, चेतन भी मरता हो तो उसका किंचन जगत् कैसे रहे, किंचन कहते हैं आभास को, आभास अधिष्ठान के बिना नहीं होता, इसलिये आत्मा का नाश नहीं होता और तुम यदि चेतन को भी मरता मानो, जो मरकर फिर नहीं उत्पन्न होता तो भी आनन्द हुआ, मेरा भी यही उपदेश है कि चेतनता मिटे, जब चेतनता उत्पन्न होती है, तब जगत् भासता है, उसके मिटने पर आत्मा ही शेष रहेगा, ब्रह्म चेतन का तो नाश नहीं होता और

यदि तुम कहो कि वह चेतन नाश हो जाता है, यह अपर चेतन है, जिससे जगत् होता है, तो हे राम! अनुभव तो एक है, उसका नाश कैसे माना जाये, जैसे बरफ शीतल है, चाहे किसी ओर से पान करें, सबके लिये शीतल ही है और अग्नि उष्ण ही है, ऐसे आत्मा का स्वरूप चेतन है, वह एक अखंडरूप है, जहां कोई पदार्थ भासता है, वह उसी चेतनता से प्रकाशित होता है और चेतन सत्ता स्वच्छ निर्मल है, अद्वैत है, सदा अपने आप में स्थित है, उसका नाश कैसे हो और जो तू शरीर के नाश हुए आत्मा का नाश होता माने तो ऐसा नहीं, क्योंकि शरीर यहां अखंड पड़ा है वह परलोक में चेष्टा करता है और पिशाच आदि का शरीर भी दृष्टि नहीं आता, यदि शरीर के बिना अभाव होता तो उनका भी अभाव हो जाय, इसलिये शरीर का अभाव होने पर आत्मा का अभाव नहीं होता, क्योंकि शरीर के मृत हो जाने पर शरीर के साथ कुछ चेष्टा नहीं होती, क्योंकि पुर्यष्टका जीवकला बीज नहीं, शरीर तो अखंड पड़ा है, उससे कुछ नहीं होता, जीव परलोक में सुख दुःख भोगता है, तो शरीर के नाश होने पर नाश क्यों नहीं हुआ और यदि तुम कहो, सब स्वभाव उसमें रहता है तो सर्वकाल उसको क्यों नहीं देखता, उसी समय अपने आपको मृतक देखता है और बन्धु बान्धव सब उसे मृतक जानते हैं और यदि तुम कहो कि जीवित धर्म से वेष्टित है, इसी से सब अवस्थाओं का अनुभव नहीं करता। मृत्यु समय जब जीवत्व भाव नष्ट हो जाता है तब मृतक होता है, यदि ऐसा हो तो परलोक का अनुभव न करे, परन्तु ऐसा नहीं, जब शरीर पास होता है तब सब अवस्थाओं को भी जानता है और परलोक में शब्द होता है, उसका अनुभव करता है, अपने कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है और देश स्थान को प्राप्त होता है, यह बात शास्त्र द्वारा भी प्रसिद्ध है, जो वेद शास्त्र पढ़ा करते हैं और अनुभव करके भी प्रसिद्ध है कि मृतक को किसने जाना और अभाव को किसने जाना? जिसने जाना वह आत्मा है, एक अखंड है, इसलिये हे रामजी! शरीर के नाश में आत्मा का नाश नहीं, वह नित्य है, शुद्ध है, जैसा जैसा निश्चय

उसमें होता है, ऐसा ही हो भासता है, जैसा मिलता है, ऐसा प्रकाशित होता है, ऐसा जो सत्य आत्मा है वह किसी बन्धन में नहीं होता, जैसे जेवरी में सर्प आकार भासता है तो वह जेवरी सर्प तो नहीं हो जाती। कल्पित सर्प का अभाव हो जाता है और जेवरी यथावत् रहती है, इसी कारण से आत्मा बद्ध नहीं होती। ऐसी आत्मसत्ता में जो विकार भासते हैं वे भ्रममात्र हैं, हे रामजी! यह जगत् आभास मात्र है, उस आभास मात्र में जो राग द्वेष आदिक फुरते हैं, उनकी निवृत्ति का उपाय मैं तुझको कहता हूं और जो कुछ उपदेश मैंने किया है, उसके विचारने से भ्रान्ति निवृत्त हो जायेगी और आत्मपद की प्राप्ति होगी। अभ्यास के बिना आत्मपद की प्राप्ति हो तो कदाचित् न होगी, जब बार बार अभ्यास करेगा, तब द्वैत भ्रम मिट जायेगा और आत्मपद प्राप्त होगा, जिसका नित्य अभ्यास करता है और विशेष यत्न भी उसके लिये करता है, वह प्राप्त होता है, वह कौन पदार्थ है जो अभ्यास से प्राप्त नहीं होता, यदि व्याकुल होकर यत्न को छोड़े नहीं और दृढ़ अभ्यास करता ही जाये तो अभीष्ट को अवश्य पाता है। राजलक्ष्मी तब मिलती है जब रण में दृढ़ता से युद्ध करके रिपुओं पर विजय पाता है और केवल मुख से कहे कि मेरी जय हो तो नहीं होती, ऐसे ही आत्मपद भी तब प्राप्त होगा, जब दृढ़ अभ्यास करेगा। अभ्यास के बिना कथन मात्र से कुछ नहीं मिलता। हे रामजी! इस मन के दो प्रवाह हैं, एक जगत् का कारण है, एक स्वरूप की प्राप्ति का कारण है, जो असत्य शास्त्र है, जिनमें आत्मज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं, उनका त्यागकर यह जो महारामायण है, मोक्ष का परम साधन है, इसमें मैंने चारों वेदों षट् शास्त्रों और सर्व इतिहासों तथा पुराणों का सिद्धान्त कहा है, इसके समान इतर पुरुष कोई न कहेगा और न किसी ने कहा है, इस शास्त्र में विचार पूर्वक मन को लगाने से शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! आत्मज्ञान वर शाप के समान नहीं है, जो कि कथन मात्र से सिद्ध हो जाये, इसकी प्राप्ति तब होगी, जब पुनः पुनः विचार करके दृढ़ अभ्यास करेगा, जवना

होगी। तब मुक्ति पद को प्राप्त होगा, ऐसा कल्याण माता पिता नहीं करते और बन्धु बान्धव मित्र सुहृद कोई भी ऐसा परम कल्याण न कर सकेगा, जैसा कल्याण बार बार विचार करने से यह मेरा उपदेश करेगा, इसलिये अन्य सब उपायों को छोड़कर इसी का विचार करो, तब सब भ्रान्ति मिट जायेगी और शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी, हे रामजी! अज्ञानरूप विषूचिका रोग है उससे जीव दुःख पाते हैं, जो मेरे शास्त्र की शरण लेगा, उसका यह रोग नष्ट होगा और परमानन्द की प्राप्ति होगी। ईश्वर की इस महामाया के प्रभाव से मिथ्या भ्रम से जीव दुःखी होता है, जो अपना दुःख नाश करना है, तो मेरे शास्त्र का विचार करे, जितने सुन्दर पदार्थ दृष्टि आते हैं, यह मिथ्या हैं, इनकी प्राप्ति के लिये यत्न करना परम आपत्ति को गले में डालना है, यह पदार्थ आपात रमणीय है, देखने मात्र में सुन्दर है, अन्दर से शून्य है, इनकी प्राप्ति में मूर्ख आनन्द मानते हैं, हे रामजी! यह पदार्थ तब तक सुन्दर भासते हैं, जब तक इसको मृत्यु नहीं पकड़ता, मृत्यु के आने पर सब क्रियाएँ बन्द हो जायँगी, इनके निमित्त जो यत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं, जिस समय मृत्यु आता है, उसी समय इसको कष्ट आकर घेर लेता है, चंदन के लेप से भी तब इसको शीतलता नहीं मिलती और जिस द्रव्य के लिये बड़ा यत्न करता है और प्राणों की भी परवाह नहीं करता, धन के लिये युद्ध करता है, वही धन स्थिर नहीं रहता, किन्तु इसका उससे वियोग हो जाता है, उसके वियोग से अत्यन्त कष्ट पाता है और मैं इसको दुःख से मुक्त करने के लिये ऐसा उपाय करता हूं जिसमें यत्न भी थोड़ा हो और सुगमता से शीघ्र ही सुख शान्ति की प्राप्ति हो, इसलिये जब शास्त्र के अर्थ ज्ञान में दृढ़ अभ्यास होता है, तभी अजर अमर पद की प्राप्ति होती है, इसलिये तुम बोधवान् बनो, बोध के लिये यत्न करो अर्थात् दृढ़ अभ्यास करो, यदि यत्न न करोगे तो अज्ञान रूप रिपु तुम्हें बहुत दुःख देगा, यदि इस शत्रु का नाश चाहते हो, तो निर्मान और निर्मोह होकर आत्मपद की प्राप्ति के लिये अभ्यास करो, हे रामजी! जब तक पुरुष अज्ञानरूप शत्रु

के मारने का यत्न नहीं करता, तब तक वह परम कष्ट पाता रहेगा, कभी संसार दुःख से मुक्त नहीं होगा, जगत् के बंधन से निकलने का उपाय यही है कि इस ब्रह्म विद्यारूप महारामायण के उपदेश से पुनः पुनः विचार करके हृदय में धारण करे। यह सर्व सिद्धान्त सार है, इसके आश्रय से भ्रांति मिट जाएगी, ऐसा दूसरा कोई शास्त्र नहीं है जिससे आत्मपद की प्राप्ति हो, इस महारामायण की शरण में आने से जीव जन्म मरण के बन्धन से सदा के लिये छूट जाता है, जैसे तिलों से तेल निकलता है, खल से नहीं निकलता, अतः यह तिलों के समान है, अन्य सब शास्त्र खल के तुल्य हैं, हे रामजी! समस्त शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्त का साररूप वह सिद्धान्त मैंने तुम्हें कहा है कि आत्मा नित्य है, उसको भ्रान्ति से अविद्यमान जानता है, उसी को विद्यमान दिखाने के लिये सब शास्त्र प्रवृत्त हुए हैं, जो अनेक विचार से भी आत्मा को सर्वत्र विद्यमान नहीं जानता, वह मेरे उपदेश से आत्मतत्व को विद्यमान नहीं जानेगा, हे रामजी! अन्य शास्त्रों के दृढ़ विचार और यत्न से जो सफलता मिलती है, वह इस शास्त्र से अनायास मिलेगी, शास्त्रकर्ता की अन्य बातों के विस्तार में न पड़कर केवल शास्त्र की युक्ति पर विचार करना चाहिये, जो कुछ सारे शास्त्रों का सिद्धान्तसार है, वह मैंने तुम्हें सुगममार्ग से कहा है, इसको विचार कर इसकी युक्ति देखे, जो कुछ अज्ञानी लोग मुझको कहते हैं और हंसते हैं वह सब मैं जानता हूं, परन्तु मेरा जो दया का स्वभाव है, उसमें मैं चाहता हूं कि किसी न किसी प्रकार जीव संसाररूप नरक से निकलें। इस कारण से उपदेश करता हूं, हे रामजी! मैं तुम्हें जो उपदेश करता हूं, वह किसी स्वार्थ सिद्धि के लिये नहीं करता कि इससे मेरा अमुक अर्थ सिद्ध होगा, उपदेश भी तुझे कौन करता है, सुन। तुम्हारा जो महान् पुण्य है, वही शुद्ध संवित् होकर मलिन संवित् को उपदेश करता है, वह संवित् न देवता है, न मुनष्य है, न यक्ष है न राक्षस है, पिशाच आदिक भी नहीं, केवल जो ज्ञानमात्र है वह भी तू ही है और मैं भी वही हूं, जगत् भी वही है, यदि सब कुछ वही है तो वासना किसकी

करनी है? हे रामजी! इसके दुःख का कारण वासना ही है, जो पुरुष इस संसार बन्धनरूप दुःख की चिकित्सा न करेगा, वह आत्महत्यारा है, बड़े दुःख में जा पड़ेगा, जिससे निकलना असंभव होगा, तब क्या करेगा, इसलिये अभी उपाय करना चाहिये, जब कि सब प्रकार की वासना निवृत्त नहीं होती, तब तक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होगा, इसी का नाम बंधन है, जब वासना क्षय होगी, तब आत्मपद की प्राप्ति होगी, जितने पदार्थ भासते हैं, अविचार सिद्ध हैं, विचार करने पर नहीं रहते, जो विचार करने पर न रहें, उनकी अभिलाषा करनी व्यर्थ है, जो वस्तु होती हो उसके पाने का यत्न किया जाय तो उचित भी है और जिस वस्तु का सर्वथा अभाव है, उसके पाने का यत्न करना मूर्खता है, यह जगत् के असत्यरूप है, जैसे शशश्रृंग असत् है, जैसे मरुस्थल की नदी असत् होती है, ऐसे यह जगत् असत् है, जो सम्यग्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है वह जानता है, कि यह जगत् शशश्रृंगवत् असत्, भ्रान्तिमात्र है, इसके लिये यत्न करना मूर्खता है, जो पदार्थ कारण बिना दृष्टि आता हो, उसको भ्रांतिमात्र जानना चाहिये, आत्मा जगत् का कारण नहीं, इसलिये जगत् मिथ्या है, आत्मपद सब इन्द्रियों और मन से अतीत है, जगत् पांचभौक्तिक है, मन इन्द्रियों का विषय है और आत्मपद मन और इन्द्रियों का विषय नहीं, तो जगत् का कारण कैसे कहें? जो अशब्द पद है, वह नाना प्रकार के शब्द का कारण कैसे हो, जो निराकार आत्मपद है, वह पृथ्वी आदिकभूत नाना प्रकार के आकार का कारण कैसे हो? हे रामजी? जैसा कारण होता है, उससे ऐसा कार्य उत्पन्न होता है, वह आत्मा निराकार और जगत् साकार है, तो निराकार साकार का कारण कैसे हो, जैसे वट का बीज साकार होता है, उसका कार्य वट भी साकार होता है, और साकार से निराकार कार्य तो नहीं होता। ऐसे निराकार से साकार कार्य भी नहीं होता, इसलिये इस जगत् का कारण आत्मा नहीं, न समवायि कारण है, न निमित्त कारण है, निमित्त कारण तब होता है, जब कुछ द्वितीय वस्तु होती है, जैसे मृत्तिका का कुलाल घट बनाता है,

वह आत्मा अद्वैत है, निमित्त कारण कैसे हो और समवायि कारण भी तब होता है, जब साकार वस्तु होती है, जैसे मृत्तिका परिणामी का घट होता है। आत्मा निराकार अपरिणामी है, जगत् का कारण कैसे हो? दोनों कारणों से जो रहित प्रतीत हो, उसको भ्रान्तिमात्र जानिये, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आकार भासते हैं, वे कारण बिना भासते हैं, इसलिये भ्रांतिमात्र हैं, ऐसे यह जगत् भी कारण बिना भ्रांतिमात्र भासता है, आत्मा में जगत् कदाचित् नहीं हुआ, जैसे प्रकाश में तम नहीं होता, ऐसे आत्मा में जगत् नहीं और यदि तुम कहो, भासता क्यों है तो उसी का किंचन भासता है, वही रूप है, जैसे चलती है तो भी वायु है और ठहरती है तो भी वायु है, चलने और ठहरने में भेद कुछ नहीं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, वही आत्मसत्ता फुरने से जगत्रूप हो भासती है, जैसे जल और तरंग में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं और कुछ द्वैत वस्तु है नहीं, जो कहते हैं, जगत् कर्मों से होता है, वह असत्य है। कर्म भी बुद्धि से होते हैं। आत्मा में बुद्धि ही नहीं तो कर्म कैसे हों, यदि कर्म ही नहीं तो जगत् कैसे हो? जैसे शश के श्रृंग के धनुष के साथ बाण चलाना असत्य है, ऐसे कर्म से जगत् का होना असत्य है और एक कहते हैं, सूक्ष्म परमाणुओं से जगत् हो जाता है, यह भी असत्य है, क्योंकि यदि सूक्ष्म परमाणु परिणाम से जगत्रूप हुए होते तो बुद्धिरूप जगत् न भासता, यह तो बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्टि आती है। यदि परमाणु से जगत् होता तो इन्हीं से बढ़ता जाता, क्योंकि परमाणु जड़ हैं, वही बढ़ते जाते हैं, वह ऐसे तो नहीं, बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्टि आती है, इसी से कहा है कि असत् कहते हैं, क्योंकि सूक्ष्म भी किसी से उत्पन्न हुआ चाहिये और कोई रहने का स्थान भी चाहिये, आत्मा में देश काल वस्तु तीनों कल्पित हैं। यदि आत्मा में यह न हुए तो परमाणु कैसे हों, जगत् कैसे हो, आत्मा अद्वैत है, इसलिये जगत् न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है। यदि उत्पन्न हुआ होता तो नष्ट भी होता। उत्पन्न ही नहीं हुआ तो नष्ट कैसे

हो, आत्मसत्ता यथावत् अपने आप में स्थित है, इसलिये हे रामजी! मैं भी आकाशरूप हूं, तुम भी आकाशरूप हो, सब जगत् ही आकाशरूप है, किसी के साथ आकार नहीं, सब निराकार रूप है और यदि तुम कहो कि बोलते चालते क्यों हैं तो जैसे स्वप्न में सब आकाशरूप होते हैं और नाना प्रकार की चेष्टा करते दृष्टि आते हैं और बोलते चालते हैं, ऐसे यह भी बोलते चालते हैं, परन्तु आकाशरूप है और जो तेरा स्वरूप है, श्रवण कर, देश को त्यागकर जो देशान्तर को संवित् जाता है और उसमें मध्य में जो ज्ञान संवित् है, वह तेरा स्वरूप है, अनामय सर्व दुःख से रहित है, जैसे जाग्रत देश को त्यागकर स्वप्न में जाती है, जाग्रत त्याग दिया और स्वप्न आया नहीं, मध्य में जो अचेत् चिन्मात्र सत्ता है, ऐसे ब्रह्मरूप है, उसमें पंडित ज्ञानवान् का निश्चय है। ब्रह्मा, विष्णु रुद्रादिक उसमें स्थित रहते हैं, उनका कदाचित् उत्थान नहीं हो तो जैसे बरफ से अग्नि कदाचित् नहीं उत्पन्न होती, ऐसे उनका स्वरूप से उत्थान कदाचित् नहीं होता, वह आत्मसत्ता कैसी है, न उत्पन्न हुई है न नाश होती है, न अपर की अपर होती है, सर्वदा अपने स्वभाव में स्थित है, हे रामजी! जितना जगत् तुम देखते हो, वह वास्तव में उत्पन्न नहीं हुआ, भ्रम से प्रतीत होता है, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आरम्भ होते दृष्टि आते हैं और जगने पर अत्यन्ताभाव रूप प्रतीत होते हैं, ऐसे यह जगत् भी है, आदि काल में जो अद्वैत तत्व में स्वप्न हुआ है, उसमें ब्रह्मा उत्पन्न हुआ और उसने आगे जगत् रचना की। वह ब्रह्मा भी आकाशरूप है, स्वरूप से इतर कुछ हुआ नहीं, सब असत्यरूप है, जैसे स्वप्न में नदी पर्वत दृष्टि आते हैं, परन्तु कोई उत्पन्न नहीं हुए, अनुभव सत्ता यथावत् स्थित है, ऐसे ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जगत् सब असत्यरूप है, जिसको तुम ब्रह्मा कहते हो, वह वास्तव में उत्पन्न नहीं हुआ, तो जगत् की उत्पत्ति मैं तुझे कैसे कहूं, जैसे मरुस्थल की नदी उत्पन्न नहीं हुई, उसमें मछलियां कैसे कही जायँ, ऐसे ही आदि में ब्रह्म ही नहीं, उससे जगत् उत्पन्न हुआ कैसे कहा जाये, केवल आत्मचेतन सत्ता सदा अपने आप में स्थित है और यह जगत् भी वही रूप है, परन्तु अज्ञान से विपर्यय रूप प्रतीत होता है, जैसे स्वप्न में

पुरुष अनुभव रूप होता है और अपने प्रमाद से नाना प्रकार के पदार्थ प्रतीत होते हैं, पर्वत, जल, पृथ्वी, जन्म, मरणादिक विकार देखता है, परन्तु हुआ कुछ नहीं, आत्मसत्ता यथावत् स्थित है, अज्ञान से विषयरूप भासते हैं, ऐसे इस जगत् को भी जानिये, आत्मसत्ता से इतर कुछ नहीं, सब चिदाकाशरूप है, अज्ञान से आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है, इसलिये हे रामजी! जिसके अज्ञान से यह जगत् भासता है और जिसके ज्ञान से निवृत्त हो जाता है, ऐसा जो आत्मतत्व है, उसके पाने का यत्न करो, वह कैसा पद है, नित्य शुद्ध परमानन्द स्वरूप है और सदा अपने स्वभाव में स्थित है, तेरा अनुभवरूप है, जो सदा अनुभव से प्रकाशित होता है, उसमें स्थित होने में कायरपन क्यों किया जाय, हे रामजी! जितना प्रपंच है, वह भ्रांति मात्र है, जैसे जेवरी में सर्प भ्रान्ति मात्र है, ऐसे आत्मा में जगत् भ्रम मात्र है, उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित रहो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सर्वपदार्थवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२३३।।

चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३४

जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस प्रकार जगदाभास फुरा है और प्रतीत होता है, सुनो, आदि जो शुद्ध है, अचिन्त्य चिन्मात्र है, उसमें जब चेतनता फुरती है, वह वेदन होती है, उसमें शब्द तन्मात्र होता है, शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है, फिर स्पर्श की इच्छा होती है, तब वायु उत्पन्न होता है, जब आकाश में उत्थान हुआ, तब उस वायु और आकाश के संघर्षण भाव से अग्नि उत्पन्न होता है, जब अग्नि में उष्ण स्वभाव होता है, तब जल उत्पन्न होता है, स्वेदवत् जल जब बहुत इकट्ठा होता है, तब उससे पृथ्वी उत्पन्न होती है, इस प्रकार आकाश वायु से

जल उत्पन्न होता है और पृथ्वी उत्पन्न होती है, तब तत्व से शरीर उत्पन्न होते हैं, स्थावर जंगम भूत नाना प्रकार जगत् दृष्टि आता है, वह पांच भौतिक है और वास्तव से न कोई पंचभूत है, न कोई उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् आरंभ परिणाम सहित भासता है, परन्तु वास्तव कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, आत्मसत्ता ही चित्त के फुरने से जगत्रूप होकर प्रतीत होती है, ऐसे यह जाग्रत जगत् भी जानिये, हे रामजी! यह जगत् सब अपना अनुभवरूप है, भ्रम से आकार सहित भासता है, जब भली भान्ति विचारकर देखा जाये तो जगत् भ्रम मिट जाता है। केवल चेतन आत्मत्व शेष रहता है, जैसे निद्रा दोष से स्वप्न में नाना प्रकार के क्षोभ भासते हैं, जब जगता है तब एक अपना आप ही प्रतीत होता है, ऐसे आत्मसत्ता में जगने से अद्वैत ही अद्वैत भान होता है, हे रामजी! बोध के समय द्वैत कुछ न भासे तो अबोध के समय भी जानिये कि द्वैत कुछ नहीं हुआ और यदि बोध के समय सत्य भासे तो जानिये कि सर्वदाकाल यही सत् है, हे रामजी! यह निश्चय धारण करो कि अपर जगत् कुछ वस्तु नहीं, जैसे आकाश में नीलता भासती है, जैसे किरणों में जल प्रतीत होता है, जैसे जेवरी में सर्प भासता है, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है। विचार करने पर कुछ नहीं, हे रामजी! अपनी कल्पना ही इसको जगत्रूप हो भासती है और कुछ नहीं, जैसे स्वप्न सृष्टि अपनी कल्पनारूप है परन्तु निद्रा दोष से भिन्न हो भासती है, उसमें राग द्वेष उत्पन्न होता है और जगने से सब क्षोभ मिट जाते हैं, ऐसे अज्ञान से जगत् सत्य भासता है, उसमें रागद्वेष प्रतीत होते हैं, ज्ञान से सब शान्त हो जाते हैं, हे रामजी! यह जगत् भ्रम मात्र है, ज्ञानवान् के निश्चय में सब चिदाकाश है और अज्ञानी के निश्चय में जगत् है, यदि महान् क्षोभ पैदा हो तो भी ज्ञानवान् को विचलित नहीं कर सकता, उसके निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता, सदा एकरस रहता है, यदि प्रलयकाल के मेघ आकर गर्जने लगें और समुद्र उछलें, पहाड़ों पर पहाड़ गिरने लेगे अति भयानक शब्द हो तो भी

ज्ञानवान् के निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता, जैसे कहीं पुरुष सोया पड़ा है, उसके स्वप्न में बड़े क्षोभ होते हैं और जगते हुए को पास बैठे हुए नहीं भासते, ऐसे ही ज्ञानवान् के निश्चय में द्वैत कुछ नहीं भासता, क्योंकि जो है ही नहीं और अज्ञानी को द्वैत भासता है, जैसे बंध्या स्त्री स्वप्न में अपने पुत्र को देखती है, वह अनहोता भ्रम से भासता है, ऐसे अज्ञानी को अनहोता जगत् सत्य होकर भासता है, हे रामजी! अनहोता भ्रम से प्रतीत होता है और हुए का अभाव भासता है, जैसे बंध्या अनहोते पुत्र को देखती है और पुत्रवाली स्वप्न में पुत्र का अभाव देखती है, ऐसे अज्ञान से अनहोता जगत् सत्य भासता है और सदा अनुभवरूप आत्मा का अभाव भासता है, भ्रम से अपर का अपर भासता है, जैसे दिन को सोया हुआ स्वप्न में रात्रि को देखता है और रात को सोया हुआ स्वप्न में दिन को देखता है और शून्य स्थान में नाना प्रकार का व्यवहार देखता है और अंधकार में प्रकाश को देखता है, वह भ्रम करके देखता है। पृथ्वी पर सोया है और आकाश में स्वप्न दौड़ता फिरता है और अपने आपको गर्त में गिरता देखता है, वह भ्रम से देखता है, ऐसे यह जाग्रत जगत् भी विपर्ययरूप भ्रम से देखता है, जाग्रत और स्वप्न में भेद कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में मरे हुए भी बोलते चालते दृष्टि आते हैं, हे रामजी! जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् तुमको भासता है और जगकर कहते हो, सब भ्रममात्र था, ऐसे हमको यह जाग्रत जगत् भ्रम मात्र भासता है, जैसे जल और तरंग में भेद कुछ नहीं, ऐसे जाग्रत और स्वप्न में भेद कुछ नहीं, जैसे दो मनुष्य एक जैसे होते हैं, जैसे दो सूर्य हों, उनमें भेद कुछ नहीं होता, ऐसे जाग्रत और स्वप्न में भेद कुछ नहीं जानिये। रामजी बोले—हे भगवन्! स्वप्न की प्रतिभा अल्पमात्र भासती है, शीघ्र ही जगकर कहता है, एक भ्रममात्र थी और जाग्रत दृढ़ होकर भासती है, तुम दोनों को समान कैसे कहते हो? वसिष्ठजी बोले—हे राम! जिस प्रतिभा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वह जाग्रत कहाती है और जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, चित्त में स्मृति होती है, वह जाग्रत और स्वप्न दो प्रकार का है,

जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वह जाग्रत है, उसमें सो जाने पर स्वप्न आता है, उस स्वप्न में जगत् का भान हुआ, जहां जगत् भासा, वहीं उसको जाग्रत हो गयी और जहां सोया था, वह स्वप्न भासा और यहां जो स्वप्न भासा, उसको जाग्रत जानकर चेष्टा करने लगा, भाई बन्धुओं के साथ जब वहां मृत्युवश हुआ, फिर उसमें आया। आकर पूर्व का स्वप्न जानने लगा तो चित्त के भ्रम से स्वप्न को जाग्रत देखने लगा और जाग्रत को स्वप्न देखने लगा था, हे रामजी! वह क्या हुआ, जैसे किसी को स्वप्न आया, उसमें अपनी चेष्टा व्यवहार करने लगा, पुनः उसमें स्वप्न हुआ, उस स्वप्नान्तर से जब जगा फिर उस स्वप्न में आया। आकर उसको स्वप्न जानने लगा और उस स्वप्न को जाग्रत जानने लगा, हे रामजी! जैसे वह स्वप्नान्तर से जगकर उसको स्वप्न कहता है और स्वप्न को जाग्रत कहता है, ऐसे यहां जाग्रत स्वरूप है और आगे जो होता है वह स्वप्नान्तर है, एक और प्रकार है, जो इस जगत् में मृतक हुआ शरीर छूट गया तब परलोक देखता है, वह परलोक जाग्रत् हो गया और इस जाग्रत को स्वप्न जानने लगा, जैसे स्वप्न से जगा स्वप्न को भ्रम कहता है, ऐसे इस जाग्रत को परलोक में भ्रम जानता है, पुनः परलोक में स्वप्न आया, तब परलोक की जाग्रत स्वप्नवत् हो गयी और जो स्वप्न में सृष्टि भासती, उसको जाग्रत जानने लगा, फिर वहां से मरकर यहां आया, तब यह जाग्रत हो गयी, परलोक स्वप्न हो गया, इसलिये हे रामजी! स्वप्न और जाग्रत दोनों मिथ्या हैं, मूर्ख स्वप्न से जब जगता है तब जानता है, इसका नाम जगना है, इसको जाग्रत मानता है, उसको स्वयं जानता है और हैं वह स्वप्नान्तर और यह स्वप्न है, इसमें जो तीव्र संवेदना है, इससे उसको जाग्रत जानता है और उसको स्वप्न जानता है, परन्तु हैं दोनों तुल्य भेद कुछ नहीं, आत्मा में एक दोनों असत्य रूप हैं, इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है और आत्मा न कदाचित् उत्पन्न होता है, न मरता है और उत्पन्न भी है, मरता भी है, उत्पन्न इस कारण से नहीं कि पूर्व सिद्ध है और मरता इस कारण से नहीं कि भविष्यत् काल में भी सिद्ध है, परलोक में सुख दुःख भोगता है, भ्रमकाल में जन्मता भी है, वह प्रत्यक्ष

भासता है और वास्तव से यथावत् है, हे रामजी! यह जगत् उसको आभास है, चेतना का चमत्कार चैत्य होकर भासता है, जैसे घट मृत्तिका से इतर कुछ नहीं, ऐसे चेतन रूप है, चेतन से इतर जगत् कुछ नहीं, स्थावर जंगम जगत् सब चिन्मात्र है, हे रामजी! जैसे तुमको स्वप्न आता है, उसमें पत्थर पहाड़ भासते हैं, वह तुम्हारा ही अनुभव रूप है और कुछ नहीं, ऐसे यह दृश्य सब चिन्मात्र रूप हैं, जैसे घट मृत्तिका से भिन्न नहीं, ऐसे जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं, जैसे काष्ठ के पात्र काष्ठ से भिन्न नहीं, सब काष्ठरूप है, ऐसे जगत् चेतनरूप है, चेतन से इतर कुछ नहीं, जैसे पाषाण की मूर्ति पाषाण रूप है, ऐसे जगत् भी चेतन रूप है, जैसे समुद्र तरंग रूप हो भासता है, ऐसे चेतन जगत् रूप हो भासता है, जैसे अग्नि उष्ण रूप है, ऐसे चैत्य चेतनरूप है, जैसे वायु स्पन्द रूप है, ऐसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे पृथ्वी घन रूप होती है, जैसे आकाश शून्य रूप होता है, जहां शून्यता है, वहां आकाश है, ऐसे जहां चैत्य है, वहां चेतन है, जैसे स्वप्न में श्रद्धा संवित् पहाड़ नदियां रूप हो भासती हैं, ऐसे चिन्मात्रसत्ता जगत् रूप हो भासती है, हे रामजी! कुछ पदार्थ तुझको भासते हैं, उनको त्यागकर आत्मा की ओर देख, यह विश्व सब आत्मरूप है, शुद्ध चिदाकाश रूप निर्दुःख आकाश में निर्मल है, ऐसा जानकर उसमें स्थित हो, हे रामजी! जब तुझको स्वभाव सत्ता का अनुभव साक्षात्कार होगा, तब जितनी द्वैत कलना भासती है, सब शान्त हो जायेगी, केवल आत्मतत्वमात्र शेष रहेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जाग्रत स्वप्नैकताप्रतिपादनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२३४॥

पंचत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३५

जगन्निर्वाणवर्णनम् ।

रामजी बोले–भगवान्! चिदाकाश कैसा है? जिसको तुम परब्रह्म कहते हो, उसका रूप क्या है? तुम्हारे अमृत वचनों को पान करता हुआ मैं तृप्त नहीं होता, इसलिये कृपा करके कहो। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे एक माता के गर्भ से दो पुत्र युगल रूप से उत्पन्न होते हैं, उनका एक जैसा आकार होता है, परन्तु जगत् व्यवहार निमित्त उनका नाम भिन्न भिन्न होता है और भेद कुछ नहीं, जैसे दो पात्र में जल रक्खें तो जल एक ही हैं, पात्रों के नाम भिन्न होते हैं, ऐसे स्वप्न और जाग्रत नाम दो हैं, परन्तु एक जैसे हैं, वह आत्मा में दोनों कल्पित हैं, वह चिदाकाश हैं और वृत्ति जो फुरती है, देश देशान्तर को जाती है, उसके मध्य में जो संवित् ज्ञानरूप है, जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है, वह चिदाकाश संवित् है और वृक्ष जो रस को खैंचकर ऊर्ध्व को जाते हैं, वे उसके आश्रय जाते हैं, ऐसी सत्ता चिदाकाश रूप है, हे रामजी! जितने वृक्ष हैं, फूल, फल, शाखा सहित रस के आश्रय से फुरते हैं, ऐस यह सब जगत् चिदाकाश के आश्रय से फुरता है, उसके आश्रय से वृत्ति फुरती है, ऐसी जो सत्ता है वह चिदाकाश है, जिसकी सकल इच्छाएँ निवृत्त हो गयी हैं और राग द्वेष रूप मल का नाश हो गया है, शरत्काल के आकाशवत् जो शुद्ध संवित् है, उसको चिदाकाश जानिये, हे रामजी! जगत् का जब अंत होता है और जड़ता आई नहीं, उसके मध्य जो अद्वैत सत्ता है, वह चिदाकाश है और वल्ली फूल, फल, गुच्छे, वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं, वह चिदाकाश है और रूप अवलोकन मनस्कार इन तीनों का जहां अभाव है, ऐसी शुद्ध संवित् है, वह चिदाकाश है और पृथ्वी पर्वत नदियां सबका आश्रय है, वह चिदाकाश है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य यह तीनों जिससे उत्पन्न हुए हैं और जिसमें लीन होते हैं, ऐसी जो

अधिष्ठान सत्ता है, वह चिदाकाश है, और जिससे सब उत्पन्न होते हैं और जो यह सब है, ऐसा जो सर्वात्मा है, वह चिदाकाश है, अर्ध रात्रि को जो उठता है, इंद्रियों की चपलताका विषय से अभाव होता है, अफुर सत्ता उस समय होती है, वह चिदाकाश है, हे रामजी! जिस संवित् में स्वप्न सृष्टि फुरती है, फिर जाग्रत भासती है, दोनों के करनेवाले में शोभित है, वह चिदाकाश है और जैसा फुरना होता है, ऐसा ही जगत् में भासता है, वही द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होकर भासता है, दूसरा कुछ नहीं और आत्मरूप सूत्र है और असत् सत् जगत् रूप माणिक्य जिसमें पिरोये हुए हैं, जिसके आश्रय इनका फुरना होता है, वह चिदाकाश है, हे रामजी! जिसके आश्रय निमेष में जगत् उत्पन्न होता है और उन्मेष में लीन हो जाता है, ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है, उसको चिदाकाश जानिये, यह सब जगत मिथ्या है, भ्रांति से प्रतीत होता है, जैसे मरुस्थल की नदी भासती है, इससे जो रहित है, जिसमें संकल्प विकल्प क्षोभ नहीं और सदा अपने आप में स्थित है, दुःख से रहित निर्विकल्प सत्ता है, वह चिदाकाश है, हे रामजी! नेति नेति करने जो अनादि पद पीछे शेष रहता है, उसको तुम चिदाकाश जानो और आत्मसत्ता शुद्ध चेतन सबका अपना आप है, उसका अनुभवरूप होकर प्रकाशित होता है, जैसा उसमें फुरना होता है कि यह ऐसे है, ऐसा हो भासता है, वह चिदाकाश रूप है, इसलिये शुद्ध आत्मसत्ता ही फुरणे से जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे जाग्रत के अन्त में अद्वैत सत्ता होती है, फिर उससे स्वप्न सृष्टि भासती है, स्वप्न सृष्टि वास्तव में उत्पन्न नहीं हुई, वही अनुभव स्वप्न सृष्टि हो भासती है, ऐसे यह जगत् कार्यरूप दृष्टि आता है, वह अविद्या से प्रतीत होता है, वास्तव में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे स्वप्न सृष्टि अकारण प्रतीत होती है, ऐसे यह सृष्टि अकारण है। ब्रह्मा से चींटी पर्यन्त जो कुछ स्थावर जंगमरूप प्रतीत होता है, वह सब चिदाकाशरूप है, कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। यदि दूसरा कुछ न हुआ, तो कारण कार्य भी कुछ न हुआ, हे रामजी! न कोई द्रष्टा है, न दृश्य है, न भोक्ता है, न भोग है, सब कल्पना

मात्र है। आत्म अज्ञान से कल्पना उठती है और आत्मज्ञान से लीन हो जाती है, जैसे समुद्र के जानने से अन्य तरंग कल्पना मिट जाती है। (अनुभव) आत्मा में कारण कार्य कुछ नहीं और यदि तुम कहो कि कारण कार्य भासते क्यों हैं? तो जैसे इन्द्रजाल की बाजी में नाना प्रकार के पदार्थ दृष्टि आते हैं परन्तु वास्तव में कुछ बने नहीं, ऐसे ही यह जगत् कारण कार्य कुछ बना नहीं, जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही नगररूप हो भासता है, ऐसे यह जगत् भासता है, हे रामजी! आत्मसत्ता ही फुरणे से जगत् की नाईं भासती है, जिस जगत् को यह इन्द्ररूप कहाता है, वह भी अहंरूप है, जिसको यह समुद्र कहाता है, वह भी अहंकार रूप है, यह रुद्र कहता है, वह भी इसका अनुभव रूप है, इत्यादि जितना जगत् भासता है, वह भावना मात्र है, जैसी इसकी भावना दृढ़ होती है, ऐसा रूप होकर भासता है, जैसे चिन्तामणि और कल्पान्तर में जैसी भावना होती है, वैसे ही सिद्ध होता है, ऐसी आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है, ऐसी हो भासती है, इसलिये चिदाकाश का निश्चय दृढ़ होता है, तब अज्ञानों से जो विरुद्ध भावना हुई थी, वह निवृत्त हो जाती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जगन्निर्वाणवर्णनं
नाम पंचत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२३५।।

षट् त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३६

कारणकार्याभाव वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब मन थोड़ा भी फुरता है, तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है और जब फुरणे से रहित होता है, तब जगत् भावना मिट जाती है। इस प्रकार जो जानता है, वह ज्ञानवान् पुरुष है। इन्द्रियों से देखता, सुनता, ग्रहण करता भी निर्वासनिक हो जाता है और जगत् की ओर से घन सुषुप्ति होती है, हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक शान्त हुआ है, वह बोलता, चालता, खाता, पीता भी

पाषाणवत् मौन हो जाता है, इसलिये यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे मृगतृष्णा की नदी अनहोती भासती है, जैसे भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है, ऐसे मन के भ्रम से आत्मा में जगत् भासता है, आदि कारण से कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। जिसका आदि कारण न पाया जाय वह कार्य भी असत् जानिये, इसलिये सब जगत् कारण बिना ही भासता है, उत्पन्न नहीं, हे रामजी! जो पदार्थ कारण बिना भासता है और जिसमें भासता है, वह अधिष्ठान सत्ता है। अधिष्ठान सत्ता में जो भासा, उसको भी वही रूप जानिये और जो अधिष्ठान से भिन्न भासे, उसे भ्रममात्र जानिये, जैसे स्वप्न में इन्द्रियादिक पदार्थ भासने लगते हैं, उसमें दृश्य दर्शन सब मिथ्या है, हुआ कुछ नहीं। ऐसे यह जाग्रत जगत् भी मिथ्या है, न कुछ उत्पन्न हुआ है, न स्थित हुआ है, न आगे होना है, न नाश होना है। जो उत्पन्न ही नहीं हुआ तो नाश कैसे हो, न कोई द्रष्टा है, न दृश्य है, न दर्शन है, केवल चिन्मात्र सत्ता अपने आप में स्थित है, रामजी बोले–हे भगवन्! यह द्रष्टा, दर्शन, दृश्य क्या है और कैसे भासता है, यह आगे भी कहा है और पुनः कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह दृश्यरूप है, कारण रहित दृश्य हो भासता है। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जितना जगत् विस्तार सहित भासता है, वह आदि स्वरूप से सब परमात्म स्वरूप है, जैसे स्वप्न में आकाश का वन भासे और अन्य पदार्थ भासे वे सब चिदाकाशरूप हैं, ऐसे यह जगत् भी चिन्मात्ररूप है, कारण कार्यभाव कहीं नहीं, जैसे वायु स्पंदरूप होता है, तब भासता है, निस्पन्द हुए नहीं भासता। ऐसे जो आत्मा में चित्त फुरता है, तब आत्मसत्ता जगत् होकर भासती है। वह क्या वस्तु है? वही आत्म सत्तारूप भाव में भाव है, जैसे आकाश में शून्यता है, ऐसे आत्मा में जगत् आत्मरूप है, इसलिये जो कुछ भासता है, वह चेतन का आभास प्रकाश है, परमार्थ सत्ता केवल अपने आप में स्थित है। इससे इतर कहो तो न द्रष्टा है, न दृश्य है। आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों है, रामजी बोले–हे ब्रह्मवेत्ता! यदि इस प्रकार है तो कारण कार्य का भेद कैसे प्रवृत्त होता दृष्टि आता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसा

जैसा फुरना उसमें होता है, ऐसा ऐसा रूप हो भासता है। चेतन आकाश ही जगत् रूप होकर भासता है और नहीं कारण है, न कार्य है, जैसे स्वप्न सृष्टि कारण कार्य सहित भासती है, वह किसी कारण से तो नहीं उत्पन्न हुई, अकारणरूप है, ऐसे यह सृष्टि किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुई, अकारणरूप है, न कहीं कर्ता है, न भोक्ता है, भ्रम से कर्ता भोक्ता भासता है, स्वप्न की नाईं विकल्प उठते हैं, वास्तव से ब्रह्मसत्ता ही है, हे रामजी! जैसे–स्वप्न में नगर और जगत् भासता है, वह चिदाकाश अनुभवसत्ता ही ऐसी होकर भासती है, अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जंगत् संपूर्ण चिदाकाश है, जब इस प्रकार जानेगा, तब जगत् भी भ्रमतत्व भासेगा, हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से उत्पन्न हुआ है, जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाईं में बैताल की कल्पना करता है, ऐसे चित्त के भ्रम से जगत् की कल्पना करता है, इस कारण ब्रह्म ही है, अन्य कारण कहीं नहीं, क्योंकि महाप्रलय में चिदाकाश ही रहता है, वह कारण किसका हो, वही सत्ता इंद्ररूप है, वही रुद्ररूप है। नदियां पर्वत आदिक जितना जगत् भासता है, वही रूप है, उससे इतर तो द्वैतरूप कुछ नहीं, जैसा जैसा फुरना उसमें होता है, ऐसा ऐसा रूप भासता है, जैसे चिंतामणि कल्पवृक्ष में जैसी भावना करता है, ऐसा रूप भासता है, ऐसे आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है, ऐसे ही पदार्थरूप हो भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे कारणकार्याभाववर्णनं
नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२६६।।

सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३७

अभाव प्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अचेत्य चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है, वह जगत्‌रूप हो भासती है। शुद्ध चिन्मात्र में जब अहं

फुरना होता है, तब जगत् हो भासता है, वह अहं रूप जीव है, जगत् में जीव तो दृष्टि आता है, परन्तु मृतक की नाईं स्थित है और तू मैं आदिक सब जगत् जीता, बोलता, चलता, व्यवहार करता भी दृष्टि आता है, परन्तु काष्ठ मौनवत् स्थित है, आत्मरूप रत्न का जगत्रूप चमत्कार है, जो प्रकाश आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं, जैसे मरुस्थल में जल भासता है, जैसे धुएँ का पर्वत मेघ भासता है, वह भ्रांति मात्र है, ऐसे यह जगत् लक्षण भी भासता है, परन्तु वास्तव से कुछ नहीं, अवस्तुभूत है, उत्पन्न कुछ नहीं हुआ, हे रामजी! चित्तरूप बालक ने जगत् जालरूप सेना रची है, वह असत् है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक भूत भ्रांति मात्र है, उनमें सत् प्रतीति करनी मूर्खता है, बालक की कल्पना में सत् प्रतीति करना बालकों का ही काम है। इस जगत् को आश्रय करने जो सुख की इच्छा करते हैं, वे क्या करते हैं, जैसे कोई आकाश के धोने का यत्न करे, ऐसे उनका यत्न व्यर्थ है। यह सब जगत् भ्रांतिरूप है, इसमें जो आस्था करते हैं और इसके पदार्थ पाने का यत्न करते हैं, वे क्या करते हैं? जैसे वंध्या कहीं पुत्र पाने का यत्न करे, वह व्यर्थ है, ऐसे जगत् में जो सुख पाने का यत्न करते हैं, वह व्यर्थ है, हे रामजी! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं, भ्रांतिमात्र हैं। यदि भ्रांतिमात्र हैं तो उनकी उत्पत्ति किससे कैसे कहें, जो मूर्ख बालक हैं, उनको पृथ्वी आदिक जगत् के पदार्थ सत्य भासते हैं। ज्ञानवान् को सत्य नहीं भासते, यह अज्ञानी को सत्य भासते हैं, उनके साथ हमारा क्या प्रयोजन है, जैसे सोये हुए को स्वप्न में आत्म अनुभव सत्ता ही पृथ्वी, पहाड़, नदियां, जगत् हो भासती हैं, वह सब आकार भासते भी निराकार रूप हैं, ऐसे यह जगत् आकार सहित भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं, वही निराकार सत्ता ही जगत्रूप हो भासती है, वह निराकार ही हैं, अन्य जगत् कुछ नहीं, आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अभावप्रतिपादनं
नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२३७।।

अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २३८

विपश्चित्समुद्रप्राप्तिवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! तुम कहते हो जगत् अविद्यमान है और अज्ञान से स्वप्न की नाईं सत् भासता है, विद्यमान भी स्वप्न नगर शून्यरूप है, ऐसे यह जगत् अज्ञानरूप है, वह अज्ञान क्या है और कितने समय से अविद्या हुई है और किसको है? इसका प्रमाण क्या है? यह कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे राम! जो कुछ तुम्हें जगत् दृष्टि आता है, वह सब अविद्या है, वह अविद्या अनन्त है, देश और काल से इसका अंत कदाचित् नहीं होता, इसलिये अनन्त है, जिसको अपने वास्तव स्वरूप का अज्ञान है, उसको सत्य दिखाई देता है, इस पर एक इतिहास सुनो। हे राम! आत्मरूप चिदाकाश है, उस चिदाकाश के अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं, उनमें एक ब्रह्मांड इसी जैसा है, उस ब्रह्माण्ड के जग में तुरमत नाम देश है, उसका राजा विपश्चित था, वह एक समय अपनी सभा में बैठा था और चारों दिशाओं में उसकी सेनाएँ हैं, बड़ा तेजस्वी और अग्नि देवता का पुजारी था, अन्य किसी देवता की पूजा नहीं करता था, अग्नि को ही देवता मान कर पूजता था और लक्ष्मी से सुशोभित था, बहुत गुणों से सम्पन्न था, ऐश्वर्यवान् था, एक समय सभा में बैठा था कि पूर्व दिशा की ओर से पत्र वाहक आया और कहने लगा, हे भगवन्! तुम्हारा पूर्व दिशा का मंडलेश्वर मर गया है, वह मानो यम को जीतने गया है, इसलिये पूर्व दिशा की रक्षा करो, वहां और मंडलेश्वर आता है, हे रामजी! इस प्रकार वह कहता ही था कि दूसरा आदमी शीघ्र ही आया और कहने लगा, हे भगवन्! आपने जो पश्चिम दिशा में मंडलेश्वर नियत किया था, मर गया है, वहां और मंडलेश्वर आता है, उससे उसकी रक्षा करो, हे रामजी! इस प्रकार दूसरा पत्र वाहक कहता ही था कि अन्य पत्र वाहक आकर कहने लगा, हे भगवन्! दक्षिण दिशा का मंडलेश्वर पूर्व पश्चिम दिशा की रक्षा के लिये गया था, वह मार्ग ही में मर गया है,

इसलिये दोनों की रक्षा के वास्ते सेना में जो कि शत्रु आकर स्थिर हो गया है, विलम्ब का समय नहीं है, सेना शीघ्र भेजो, हे रामजी! इस प्रकार सुनकर राजा बाहिर निकलकर कहने लगा कि सब सेना मेरे पास उपस्थित हो और सब दिशाओं की रक्षा के लिये जाये। हाथी, घोड़े और अस्त्र शस्त्र साथ ले लिये जायँ, हे रामजी! इस प्रकार राजा कहता था कि एक और पुरुष आया और कहने लगा—हे भगवन्! उत्तर दिशा की ओर जो तुम्हारा मंडलेश्वर था, उस पर और शत्रु चढ़ आया है और बड़ा युद्ध हो रहा है, उस की रक्षा के लिये सेना भेजो। विलंब का समय नहीं है और भी बहुत दुष्ट चले आ रहे हैं, अब मैं जाता हूं, क्योंकि मेरा स्वामी युद्ध कर रहा है, हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह चला गया तब द्वारपाल ने आकर कहा—हे भगवन्! उत्तर दिशा का मंडलेश्वर आया है, आज्ञा हो तो ले आऊ, राजा ने कहा, तदनुसार वह ले आया और मंडलेश्वर ने आकर राजा को प्रणाम किया, राजा ने देखा कि अंग टूट गये हैं, मुख से रुधिर चला आता है, ऐसी अवस्था में भी धैर्य संयुक्त मंडलेश्वर कहने लगा—हे भगवन्! मेरे अंगों की यह दशा हुई है। मैं आपके देश की रक्षा के लिये गया था। मुझ पर शत्रु ने आक्रमण किया, मेरी सेना थोड़ी थी, इसलिये दौड़ता हुआ आपके पास आया हूं कि प्रजा की रक्षा करो, हे रामजी! जब इस प्रकार उसने कहा तब राजा ने मंत्री बुलवाये और उन्हें इस पर विचार करने को कहा। मंत्रियों ने कहा—हे भगवन्! अब तीन उपाय छोड़ दो और एक उपाय करो। एक नम्रता छोड़ो, दूसरा धन देना और तीसरा बुद्धि भेद भी छोड़ो। इन तीन की अब आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे नम्रता मानने वाले नहीं, नीच पापी हैं, धन इस कारण से नहीं देना चाहिये कि यह अधीन है और बुद्धि भेद भी नहीं जानते, क्योंकि सब मिलकर इकट्ठे हुए हैं, इसलिये इन तीनों उपायों को छोड़ दो और एक उपाय ही करो कि युद्ध हो, विलंब का समय नहीं, उनकी सेना अब निकट आई है, अब उत्साह से कर्म करना है, प्राणों की परवाह नहीं करनी है, हे रामजी! इस प्रकार मंत्री के

कहने पर राजा ने कहा कि मेरी आज्ञा से सब सेना, हाथी घोड़ों समेत रथों पर सवार और पियादे नौबत नक्कारे बाजे बजाती हुई जाय राजा की आज्ञा पाकर सेना आकर खड़ी हो गयी, नौबत नक्कारे बजने लगे, नाना प्रकार के शस्त्र लिये चारों प्रकार की सेना इकट्ठी हुई तब राजा ने कहा—वीरो! जाओ, सेना के पीछे सेनापति जाये, जाकर शत्रु के साथ युद्ध करो, मैं भी स्नान करने चला आता हूं, हे रामजी! इस प्रकार कहकर मंत्री को भेज दिया और आप राजा ने गंगाजल से एक स्थान में अग्नि का कुंड था, उसके पास जाकर हवन किया, जब अग्नि बहुत प्रज्वलित हुई तब राजा ने कहा—हे भगवन्! इतना समय मुझको व्यतीत हुआ है, मैं यथाशास्त्र सब कार्य करता रहा हूं, मैंने अपनी प्रजा को सुखी रक्खा है तथा निर्भय किया है। मैं शत्रुओं को मारने वाला हूं, शत्रु को मारकर सिंहासन के नीचे दिया है, आप सिंहासन पर बैठा हूं, पाताल वासी दैत्य सब मैंने जीत रक्खे हैं, दशों दिशा अपने अधीन की हैं। सात समुद्र पर्यन्त मेरे भय से काँपते हैं, सब जगह मेरा यश हो रहा है, मेरे भंडार रत्नों से भरे हुए हैं, सेना हाथी घोड़े आदि भी बहुत हैं और मैंने भोग भी बहुत भोगे हैं, दान भी बहुत किये हैं। सिद्धों और देवताओं में भी मेरा यश हुआ है और शरीर भी बड़ा हुआ है, क्षोभ भी बहुत प्राप्त हुआ है, अब मेरा जीवन से मरना भला है, हे भगवन्! मैं तुमको शीर्ष (सिर) निवेदन करता हूं, कृपा करके लो और जब मुझ पर प्रसन्न होगे, तब एक की चार मूर्ति देना, जो चारों ओर जावें और जहां मुझको कुछ कष्ट न हों, वहां दर्शन देना, हें रामजी! इस प्रकार खड्ग निकाल अपना सिर काटकर अग्नि में डाल दिया और धड़ आप ही अग्नि में जा पड़ा, सिर और धड़ दोनों भस्म हो गये, अग्नि ने भक्षण कर लिये, तब उसी जैसी चार मूर्तियां निकल आईं, उसी जैसे आकार वस्त्र, भूषण, मुकुट, कवच पहिने हुए, नाना प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए उदय हुए, हे रामजी! इस प्रकार बड़े तेज संयुक्त चारों राजा विपश्चित् प्रकट हुए, रथ, हाथी, घोड़े पियादे, चारों प्रकार की सेना भी प्रकट हुई और चारों ओर से वहां शस्त्रु आकर युद्ध करने लगे। बड़ा युद्ध होने लगा। नगर

जलातें हैं, हाहाकार शब्द होता है, शूरवीर युद्ध में प्राणों को त्याग रहे हैं, उछल उछलकर लड़ते हैं, रुधिर के प्रवाह चलते हैं, खड्गों और वर्छियों की वर्षा हो रही है, अग्नि का अट्ट अट्ट शब्द होता है, मानों समय बिना प्रलय आने लगी है, बड़ा युद्ध हो रहा है, वीर पुरुष युद्ध में मरने को जीवन मानते हैं और जीवन को मृत्यु समझते हैं, ऐसा निश्चय धारण किये युद्ध करते हैं और जो कायर हैं, वे भाग भाग जाते हैं, जैसे गरुड़ के भय से सर्प भाग जाते हैं और शूर सामने होकर लड़ते हैं। इस प्रकार बड़ा युद्ध होने लगा, रुधिर की नदियां चलीं, उनमें हाथी, घोड़ा, रथ, शूरवीर तथा बड़े बड़े वृक्ष नगर बहते जाते हैं, मांस खाने के लिये योगिनियां आ बैठी हैं, युद्ध में जो जो मरता है, अप्सराएँ और विद्याधर स्त्रियां विमानों पर बिठाकर स्वर्ग को ले जाती हैं, हे रामजी! इस प्रकार जब युद्ध हुआ, तब राजा विपश्चित् की सेना सब शून्य हो गयी है अर्थात् थोड़ी हो गयी और राजा ने सुना कि सेना बहुत मारी गयी है, तब राजा ने अश्वारूढ़ होकर जाकर देखा कि सेना थोड़ी हो गयी है, एक एक राजा एक एक ओर को गये। चारों राजा चारों ओर गये और विचार किया कि यह महागंभीर सेनारूप समुद्र है, उसमें शस्त्ररूप जल है, धारारूप तरंग है, मछली रूप शूरवीर हैं, ऐसा जो समुद्र है, उसको अगस्त्य बनकर मैं पान करूं, ऐसा विचार कर उद्योग किया, क्योंकि विशेष सेना देखी। एक तो आगे ही को चले जाते थे और एक एक शूरवीर तेज से सेना को जलाते थे और तीसरी बहुत हैं। ऐसी तीन प्रकार की सेना के तीन उपाय किये, पहिले तो वायव्यास्त्र हाथ में लिया, परमात्मा को नमस्कार किया और मंत्र पढ़कर पवन का अस्त्र चलाया, उससे अन्धकार छा गया, तब सेना जितनी आगे चली जाती थी, उतनी ही पीछे उलटकर उड़ने लगी, तब मेघ रूप अस्त्र चलाया तो वर्षा होने लगी। उसमें जो तेज सेना को जलाता था, शान्त हो गया, उसके बाद शिव अस्त्र चलाया। वह कैसा चलाया, कि पहिले शस्त्रों की नदी चली, त्रिशूल की नदी चली, चक्रों की, वज्रों की और बरछियों की नदी चली, बिजली की नदी चली, अग्नि की

नदी चली, इत्यादि जो शस्त्रास्त्र हैं, उनकी वर्षा हुई। जब इस प्रकार नदियां चलीं तब जो सेना सम्मुख आती थी, मरने लगी, जैसे कमलिनी काटी जाती है, ऐसे शूरवीर काटे जाने लगे। पहाड़ों की कंदराओं में बहुत गिरें और उड़ते जायँ, समुद्र में जा पड़ें, सुमेरु की कंदराओं में जाकर छिपें, कोई सेना समुद्र में जाकर डूबती थी, जैसे अज्ञानी विषयों में डूबते हैं, इस प्रकार दोनों ओर से सेना शून्य हुई, चारों दिशाओं की सेना मारी गयी, चीन महाचीन देश के लोग और पर्वतों की कन्दराओं में रहने वाले बहने लगे, हे रामजी! कई तो शस्त्रों से और कई आंधी से उड़े, वे सब क्षेत्रों में जा पड़े, मरकर वे स्वर्ग को प्राप्त हुए और पापी नीच देशों में जा गिरे, उससे दुर्गति को प्राप्त हुए, कई पिशाच हुए, कितनों की विद्याधरी ले गयीं, कई ऋषीश्वरों के स्थानों में जीते जा पड़े, उनकी उन्होंने रक्षा की, इसी प्रकार बाणों से छेदे हुए नाश को प्राप्त हुए। रुधिर की नदियों में बहते समुद्र की ओर चले जाने लगे, हे रामजी! जब सब सेना शून्य हो गयी तब आकाश शुद्ध हुआ, जैसे ज्ञानी का मन निर्मल होता है, ऐसे आकाश अधिक क्षोभ से रहित हुआ, जब सब सेना शून्य हुई तब चारों राजा आगे को चले जाने लगे, हे रामजी! चारों विपश्चित् चारों दिशाओं मे समुद्र के ऊपर चले गये। तब क्या देखते हैं कि बड़े गंभीर समुद्र हैं, रत्न चमकते हैं, कहीं हीरा मोती चमकते हैं, इत्यादि रत्नों तथा मणियों की सब जातियां उन्होंने देखी और बड़े गंभीर समुद्र में बड़े बड़े मच्छ देखे, तरंग उछलते हैं और किनारें पर नाना प्रकार के वृक्ष लगे हुए हैं, लौंग, इलायची तथा चन्दन के वृक्ष समुद्र पर जाकर देखे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विपश्चित समुद्रप्राप्तिवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२३८।।

एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२३९॥

जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब इस प्रकार राजा विपश्चित समुद्र पार जाकर स्थित हुए, तब उनको मंत्रियों ने सब स्थान दिखाये, जहां कि बड़े गंभीर समुद्र, जिन्होंने चारों ओर से पृथ्वी को वेष्टित कर रक्खा है और बड़े तमाल वृक्ष बावलियां, पर्वत कंदराएँ और तालाब हैं, ऐसे नाना प्रकार के स्थानों को उन्होंने देखा, ऐसे स्थान दिखाकर मंत्रियों ने राजा को कहा, हे रामजी! तीन पदार्थ बड़े अनर्थ के कारण हैं और परम सार के कारण हैं, एक तो लक्ष्मी, दूसरा निरोग शरीर और तीसरी यौवन अवस्था। जो पापी जीव हैं, वे लक्ष्मी को पाप में लगाते हैं और नीरोग शरीर से लोग विषयों का सेवन करते हैं और यौवन अवस्था में भी सुकृत नहीं करते, पाप करते हैं और जो पुण्यवान् हैं, वे मोक्ष में लगाते हैं, लक्ष्मी से यज्ञादिक शुभ कर्म करते हैं, पाप नहीं करते, हे राजन्! समुद्र और पर्वतों के किसी भाग में रत्न होते हैं, किसी स्थान में दुर्दुर होते हैं, ऐसे ही संसार समुद्र में रत्नों के समान किसी स्थान पर ज्ञानवान् होते हैं और कहीं अज्ञानी रूप दुर्दुर होते हैं, हे राजन्! यह समुद्र कैसा है, मानों जीवन्मुक्त है, क्योंकि जलकर भी मर्यादा नहीं छोड़ता और राग द्वेष से रहित है, किसी स्थान में दैत्य रहते हैं, कहीं पक्षयुक्त पर्वत हैं, कहीं बडवानल है, कहीं रत्न है परन्तु समुद्र को न किसी स्थान में रोग है, न द्वेष है, जैसे ज्ञानबान् को किसी में राग द्वेष नहीं, परन्तु सब में ज्ञानवान् कोई विरला होता है, जैसे—जिस बांस से मोती निकलता है, वह बांस विरला ही होता है और जिस सीप में मोती निकलता है वह सीप भी विरली होती है, ऐसे ही तत्वदर्शी ज्ञानवान् कोई विरला होता है, हे रामजी! संपूर्ण रचना यहां की देख, पर्वत कैसे हैं, जिनके किसी स्थान में पक्षी रहते हैं, किसी स्थान में विद्याधर हैं, देवियां विलास करती हैं, कहीं योगी करते हैं, कहीं ऋषीश्वर मुनीश्वर रहते हैं, कही ब्रह्मचारी विरागी

रहते हैं, यह द्वीप है, सात समुद्र हैं, जिनके बड़े-बड़े तरंग उछलते हैं और पर्वत का कौतुक देखो। आकाश, चन्द्रमा, सूर्य तारे देखो, ऋषि मुनि देखो, आकाश सबको स्थान दे रहा है और आप सदा असंग रहता है, शुभ अशुभ दोनों में तुल्य है, स्वर्गादिक शुभ स्थान है और चांडालो पापियों के लिये नरक स्थान हैं और अपवित्र हैं, परन्तु आकाश में दोनों तुल्य हैं, असंगता से निर्विकार है, जैसे ज्ञानी का मन सर्वस्थान से निर्लेप होता है, ऐसा आकाश सब पदार्थों से असंग और न्यारा रहता है और महात्मा पुरुषों की नाईं सर्व व्यापी है, हे आकाश! तुम कैसे हो, सर्व प्रकाश हो, तुझमें अंधकार दृष्टि आता है, यह आश्चर्य है, हे आकाश! तू सबका आधार है, तुझको जो शून्य कहते हैं, वे मूर्ख हैं, दिन को तुझमें श्वेतता भासती है और रात्रि में अंधकार होता है; सन्ध्याकाल में तुझमें लाली भासती है और तू तीनों से न्यारा है, यह तीनों राजस, तामस और सात्विक गुण हैं, तू इनके होते हुए भी असंग है, हे आकाश! तू निर्मल है, तुझे आकाश और तप दृष्टि आते हैं, परन्तु तू सदा यथावत् है, यह अनित्य रूप है, चन्द्रमा तुझमें शीतलता करता है, सूर्य दाहक है, तीर्थ आदि पवित्र स्थान हैं और पापी लोग अपवित्र वस्तु हैं, तू सबमें यथावत् समान स्थित है, बढ़ने और ऊंचा होने के लिये तू ही स्थान देता है, अपनी महिमा को तू आप ही जानता है और कोई तेरी महिमा को पा नहीं सकता, तू निष्किंचन अद्वैत है और सबको धारण कर रहा है और सबका अर्थ तुझसे सिद्ध होता है, तृण जल नीचे को जाता है, तू सबसे ऊंचा है और विभु है, अनेक पदार्थ तुझमें उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, तू सदा जैसा है, वैसा ही रहता है, जैसे अग्नि में चिनगारियां उत्पन्न होती और अग्नि में लीन हो जातीं हैं, ऐसे तुझको अनन्त जगत् उत्पन्न होते और तुझ में ही लीन हो जाते हैं, तू सदा ज्यों का त्यों ही रहता है, जो तुझको शून्य कहते हैं, वे मूढ़ हैं, हे राजन्! ऐसा आकाश कौन है-सुनो, ऐसा आकाश आत्मा है, जो चेतन आकाश है, उसमें अनन्त जगत् उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं, उसको जो शून्य कहते हैं, वे

महामूर्ख हैं, जो सबका अधिष्ठान है, सबको धारण कर रहा है और सदा नि.संग है, ऐसे चिदाकाश को नमस्कार है, हे राजन्! यह आश्चर्य है कि जो सदा एक रस है, उसमें नाना तरंग भासते हैं, यही माया है, हे राजन्! एक विद्याधर और विद्याधरी थे, उनके गृह में एक ऋषि आ निकले, उनका विद्याधर ने आदर भाव न किया, तब ऋषिवर ने शाप दिया कि तू द्वादश वर्ष पर्यन्त वृक्ष होगा, तब वह विद्याधर वृक्ष हो गया, अब हम आये हैं, हमारे देखते ही वह शाप से मुक्त हुआ। वृक्षभाव को त्यागकर फिर विद्याधर हुआ है, यह ईश्वर की माया है, कभी कुछ हो जाता है, कभी कुछ हो जाता है, हे मेघ! तू धन्य है, तेरी चेष्टा भी सुन्दर है और तीर्थ में सदा तेरा स्नान होता है, तू सबसे ऊंचा होकर विराजमान होता है, तेरा सब आचार भला प्रतीत होता है, परन्तु एक तुझमें नीचता है जो कि ओलों की वर्षा करता है, उसमें खेतियां नष्ट हो जाती हैं, फिर उत्पन्न नहीं होतीं, ऐसे अज्ञानी की चेष्टा देखने मात्र सुन्दर है और अन्दर से मूर्ख है, उनकी संगति खोटी है और ज्ञानवान् की चेष्टा देखने मात्र भली नहीं तो भी उनकी संगति कल्याण करती है, हे राजन्! सबसे नीच श्वान है क्योंकि जो कोई उसके निकट आता है, उसको काटता है और घर घर में भटकता फिरता है, मलिन स्थानों में जाता है, ऐसे अज्ञानी जीव श्रेष्ठ पुरुषों की निन्दा करता है और मन में तृष्णा रहती है और विषयरूप गन्दे स्थानों में गिरता है, वह मूर्ख मनुष्य मानो श्वान है, श्वान नीच से नीच है, ब्रह्मा से सम्पूर्ण जगत् को रचा है, उसमें शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की रचना है, श्वान नीच है, किसी ने श्वान से पूछा हे,श्वान! तुझसे भी कोई नीच है, अथवा नहीं। श्वान ने कहा–मूर्ख मनुष्य मुझसे भी नीच है, मैं उससे श्रेष्ठ हूं, पहली बात तो यह कि मैं शूर हूं और जिसका अन्न खाता हूं, उसकी रक्षा करता हूं, उसके घर के द्वार पर बैठा रहता हूं परन्तु मूर्ख से यह तीनों काम नहीं होते, इसलिये मैं उससे श्रेष्ठ हूं। मूर्ख को देहाभिमान है, इसलिये भी वह श्वान से नीच है, हे राजन्! देहाभिमान् परम अनर्थ का कारण है, देहाभिमान

से परम आपत्ति की प्राप्ति होती है, मूर्ख मनुष्य, मनुष्य नहीं है, काक है, काक क्या करता है, सबसे ऊंचे स्थान पर जा बैठता है और कांव कांव करता है, मानों मुख की ध्वजा विराजती है, हे राजन्! कमलों से भरे सरोवर के पास एक काक जा बैठा, वहां वह क्या देखता है कि भ्रमर कमलों की सुगन्धि बैठे ले रहे हैं, उनको देखकर हँसने लगा और कांव कांव शब्द करने लगा, उसको देखकर भँवरे हँसे कि यह कमलों की सुगन्धि क्या जाने, ऐसे जिज्ञासु भंवरे के समान हैं, परमार्थ रूप सुगन्धि लेते हैं, अज्ञानी कौए हैं, वे परमार्थ रूप सुगन्धि को जानते ही नहीं, इसलिये उन मूर्खों को देखकर जिज्ञासु हंसते हैं, जो आत्मरूप सुगन्धि को नहीं जानते, अरे काक! तू हंस की रीस क्या करता है, हंस तो मोती चुगते हैं और तू नीच स्थानों का सेवन करने वाला है। मन्त्री ने कहा–हे भँवरे! ऐ कोयल! तुम कमल को देखकर क्या प्रसन्न होते हो। प्रसन्न होने का समय तो वसन्त ऋतुं है, यह तो वर्षा काल का समय है, यह फूल ओलों से नष्ट हो जायँगे, हे राजन्! कोयल रूप जिज्ञासु है, उनको यह उपदेश है, हे जिज्ञासु! जो सुन्दर पदार्थ तुमको दृष्टि आते हैं, उन पर क्यों प्रसन्न होते हो यदि सत्य हो तो भी, यह तो मिथ्या है, अविद्या से रचे हो, तुम क्यों प्रसन्न होते हो। अपने उचित स्थान में जाकर बैठो, अज्ञानी का मार्ग छोड़ दो, जैसे कौआ हंसों में जा बैठे तो भी उसका चित्त अपने गंदगी के खाने में लगा होता है। हंस का आहार मोती है, उन मोतियों की ओर तो कौआ देखता भी नहीं, ऐसे ही यदि कदाचित् अज्ञानी जीव सत्संग में जाकर बैठे भी तो उसका मन विषयों की ओर भटकेगा, स्थिर कभी न होगा और जैसे कोयल का बच्चा कौओं को माता–पिता जानकर उसमें जा बैठता है, तब उनकी संगति से यह भी गंदगी खाने वाला हो जाता है, उसको हटाते हैं कि बेटा! तुम कौओं की संगति में मत बैठो, अपने जैसों में बैठो, नहीं तो तुम्हारा भी नीच आहार हो जायेगा, ऐसे जिज्ञासु जो अज्ञानी का संग करता है, उनके अनुसार उसको विषय की तृष्णा उत्पन्न होती है, उससे सत् पुरुष हटाते हैं कि हे जिज्ञासु! तू मूर्ख अज्ञानियों में न

बैठ। सत् पुरुषों के संग में बैठा कर, जैसे कोयल के बच्चे को कौए सुख देने वाले नहीं होते, ऐसे तुझको मूर्ख सुख देने वाले नहीं होंगे, मंत्री ने फिर कहा—अरी चील! तू हंस की रीस क्यों करती है, तू भी बहुत ऊँचा उड़ती है, परन्तु हंस का गुंण तुझमें कोई नहीं, जब तू मांस पृथ्वी पर देखती है तब शीघ्र ही उस पर गिरती है, परन्तु मोती खाने वाले हंस ऐसा नहीं करते, ऐसे ही मूर्ख मनुष्य ऊँचे कर्म करते हुए भी जब विषयोंको देखते हैं तो झट उन पर गिरते हैं, सन्त नहीं गिरते तो मूर्ख सन्तों की रीस कैसे करें, मंत्री ने फिर कहा—अरे बक! तू हंस की क्या रीस करता है, अपने पाखंड को छिपाकर अपने आपको हंस बनाकर दिखाता है, जब मछली निकलती है तो झट अंदर कर लेता है, यह तेरे अंदर विशेष अवगुण है और हंस तो मानसरोवर के मोती चुगने वाला है, इसलिये मछली खाने वाला तू अपने आपको हंस क्यों मानता है, ऐसे अज्ञानी जीव विषयों की तृष्णा करते हैं और ज्ञानवान् विवेक से तृप्त हैं, उनकी समानता अज्ञानी क्या कर सकता है, हे राजन्! जो हंस हैं वे सदा अपनी महिमा में रहते हैं, अपना जो आहार है, वही भोजन करते हैं, अर्थात् मोती चुगते हैं, अन्य किसी पदार्थ को स्पर्श नहीं करते, जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर खिलते हैं, चंद्रमा के बिना शोभा नहीं पाते, ऐसे बुद्धि भी तब शोभा पाती है, जब ज्ञान उदय होता है, आत्मज्ञान बिना बुद्धि शोभा नहीं पाती और बड़े बड़े सुगन्धिवाले जो वृक्ष हैं, उनका माहात्म्य भँवरे ही जानते हैं, इतर जीव नहीं जानते, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! राजा विपश्चित् को मंत्री ऐसा कहकर फिर बोले—हे राजन्! पृथ्वी पर अब नगर नगर के मंडलेश्वर स्थापित करो, हे रामजी! मंत्री के ऐसा कहने पर दिशाओं में मंडलेश्वर स्थापित किये गये, चारों राजाओं ने अपनी दिशा के समुद्र पर अपने मंत्री से कहा कि हे साधु पुरुषो! अब हमने दिग्विजय किया है, समुद्र पर्यन्त अब हमारी विजय हुई है। अब दृश्य विभूति को देखो, समुद्र के पार द्वीप है, फिर समुद्र है फिर द्वीप है, फिर समुद्र है, ऐसे सात द्वीप और सात समुद्र हैं,

उनके पार क्या है, इस प्रकार सर्व दृश्य देखने की इच्छा से अग्निदेवता का आह्वान किया, तब इनकी दृढ़ भावना से अग्नि देवता सामने स्थित हो गये और कहने लगे–हे राजन्! जो इच्छा है मांगो। राजा ने कहा–हे भगवन्! जो ईश्वरी मायारूप पांच भौतिक दृश्य में भूत हैं, उनके देखने की हमारी इच्छा पूर्ण करने वाले तुम हो, हे देव! हम इस शरीर के साथ दृश्य देखने जायँ, जब यह शरीर चलने से रहित हो जाय, तब मंत्र सत्ता से जायँ, जहां मंत्र की गति भी न हो, वहां मन के वेग से जायँ, मृत भी न हो जायँ, यह वर हमको दो, हे रामजी! जब इस प्रकार राजा ने कहा तब अग्निदेव ने कहा–ऐसा ही हो, इस प्रकार कहकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये, जैसे समुद्र से तरंग उठकर फिर लय हो जायँ, ऐसे अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। जब राजा विपश्चित् वर को पाकर चलने को समर्थ हुए तब जितने मंत्री मित्र थे, सब रोने लगे। हे राजन्! तुमने यह क्या निश्चय किया है? ईश्वर की माया का अन्त किसी ने नहीं पाया, तुम अपने स्थान पर चलो, यह तुमने क्या निश्चय धारण किया है, हे रामजी! इस प्रकार मंत्री कहते रहे परन्तु राजा ने उनको आज्ञा देकर एक एक दिशा में समुद्र में प्रवेश किया। चारों दिशाओं में चारों राजाओं ने प्रवेश किया। बड़े बड़े गुणज्ञ मंत्री राजा के साथ चले, तब राजा ने मंत्रशक्ति से समुद्र को पार किया, जैसे कोई पृथ्वी पर चले, ऐसे वह चला गया और अन्य द्वीप में जा निकला, तब बड़ा समुद्र आया, उसमें प्रवेश किया, बड़े बड़े तरंग, जिनका सौ सौ योजन तक विस्तार हो, उछलने लगे, कभी ऊपर को, कभी नीचे को जाते थे। हे रामजी! ऐसे तरंग उछले, जैसे पर्वत उछलते हैं, जब ऊपर को उछलें तब स्वर्ग तक उछलते प्रतीत होते थे, जब नीचे की ओर उछलें तब पाताल पर्यन्त चलते प्रतीत होते थे, जैसे तिनका घूमता है, ऐसे राजा घूमता था। इस प्रकार कष्ट से रहित समुद्र को पार किया और दिशा को पार किया, परन्तु मध्य में जो वृत्तान्त हुआ, उसे सुनो, क्षीर समुद्र में एक मत्स्य रहता था, उसको सब देवता नमस्कार करते थे, वह विष्णु भगवान् के मत्स्यावतार के परिवार

में से था। जब राजा ने क्षीर समुद्र में प्रवेश किया तब राजा को उसने मुख में डाल लिया, तब राजा मंत्र के बल से उसके मुख से निकल गया, आगे एक और मत्स्य था, उसने भी राजा को मुख में डाल दिया, उससे भी निकल गया, आगे एक पिशाचिनी का देश था, उसने राजा को काम से मोहित किया और राजा ने दक्ष प्रजापति की कुछ अवज्ञा की, उसने शाप दिया, उससे राजा वृक्ष हो गया, चिरपर्यन्त वृक्ष बना रहा, उससे छूटकर एक देश में जाकर दर्दुर हुआ, सौ वर्ष तक खाई में पड़ा रहा, उससे छूटकर मनुष्य हुआ, वहां किसी सिद्ध के शाप से शिला हुआ, सौ वर्ष पर्यन्त शिला बना रहा, उसके बाद अग्नि देव ने शिला भाव से छुड़ाया, फिर मनुष्य हुआ है, यह तो मुझसे भी बड़ा सिद्ध हुआ है, ऐसा जानकर उसके साथ मैत्री की। इस प्रकार दूसरे समुद्र को पार किया। क्षीर समुद्र, क्षारसमुद्र इक्षुरस के समुद्र को, द्वीप को भी राजा ने पार किया, राजा फिर एक अप्सरा से मोहित हो गया, बहुत देर बाद वहां से छूटा, तब एक देश में पक्षी हुआ, बहुत काल पर्यन्त पक्षी होकर छूटा, तदनन्तर एक गोपी ने जो कि पिशाचिनी थी, बल बनाकर रक्खा, तब दूसरे विपश्चित् ने बैल विपश्चित् को जगाया, हे रामजी! चारों दिशाओं में चारों विपश्चित् भ्रम से फिरे, दक्षिण दिशा का तो पिशाचिनी से मोहित हुआ, कामुक हुआ। इससे लेकर वह जन्म पाने लगा और पूर्व का बहता हुआ मत्स्य के मुख में चला गया, उसने निकाल डाला, इससे लेकर तो वह अवस्था देखने लगा, उत्तर दिशा का था, इसी से लेकर वह अवस्था देखने लगा, पश्चिम दिशा का हेमचूड़ पक्षी की पीठ पर जो प्राप्त हुआ, उसने कुशद्वीप में जा फेंका, इससे लेकर वह भी अनेक अवस्थाओं को प्राप्त हुआ, हे रामजी! एक एक विपश्चित् अनेक योनि और अवस्थाओं को भिन्न भिन्न अनुभव करने लगे, रामजी बोले–हे भगवन्! तुम कहते हो विपश्चित् एक ही था, उसकी संवित् भी एक ही थी, आकार भी एक ही था, तो भिन्न भिन्न रुचि कैसे हुई वह पक्षी हुआ, वह वृक्ष हुआ, इनसे लेकर वासना के अनुसार शरीर पाते फिरे? वसिष्ठजी

बोले–हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है, उनकी संवित् एक थी, परन्तु भ्रम से भिन्नता हो जाती है, जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है, उसमें पशु पक्षी हो जाते हैं और भिन्न भिन्न रुचि भी हो जाती है, ऐसे उन की भिन्न भिन्न रुचि हो गयी और अन्य देख जो शरीर एक ही होता है, उसमें नेत्र श्रवण, नासिका, जिह्वा, त्वचा की रुचि भिन्न भिन्न हो जाती है, अपने अपने विषय को ग्रहण करती है, वह एक ही शरीर में अनेकता भासती है, ऐसे उनकी एक ही संवित् थी, परन्तु संकल्प भिन्न भिन्न हो गया, मन के फुरने से एक में अनेक भासे, ऐसे एक ही योगेश्वर होता है वह इच्छा करके और और शरीर धारण कर लेता है, एक में अनेक हो जाता है और एक सहस्रबाहु अर्जुन था, वह एक भुजा के साथ युद्ध करता था, दूसरी भुजा के साथ दान करता था और एक के साथ लेता था। इसी प्रकार भुजाओं के साथ चेष्टा करता था, वह भी भिन्न भिन्न हुए, एक ही शरीर में भिन्न भिन्न चेष्टा होती है और विष्णु भगवान् कहीं दैत्यों के साथ युद्ध करते हैं, कहीं कर्म करते हैं, कहीं लीला करते हैं, कहीं शयन करते हैं, संवित् तो एक ही है, परन्तु चेष्टा तो भिन्न भिन्न होती है, ऐसे उनकी संवित् में अनेक प्रकार की रुचि हुई, इसमें क्या आश्चर्य है? हे रामजी! इस प्रकार जन्म से जन्मान्तर को अविद्यक संसार में उन्होंने देखा। राम बोले–हे भगवन्! वे तो बोधवान् विपश्चित थे, बोधवान् तो जन्म नहीं पाते, उनका जन्म किस प्रकार हुआ, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वे विपश्चित् बोधवान् न थे, परन्तु बोध के निकट थे, धारणा अभ्यास वाले थे, यदि ज्ञानवान् होते तो दृश्य भ्रम देखने की इच्छा किस लिये करते, इसलिये वे ज्ञानवान् न थे, धारणा अभ्यासी थे और समुद्र को पार कर गये और मछली के पेट में से बल से निकले, यह योग शक्ति प्रसिद्ध है, ज्ञान का लक्षण वसंवेद्य है, परसंवेद्य नहीं, राजा विपश्चित् ज्ञानवान् न थे, इस कारण से देश देशान्तर में भ्रमण करते रहे, ज्ञान के बिना अविद्यक संसार में जन्म मरण में भटकते रहे, राम बोले–हे भगवन्! ज्ञानवान् योगीश्वर को भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल का

ज्ञान कैसे होता है, जैसे तीनों काल उसको विद्यमान् हैं और एक देश में स्थित हुआ सर्वत्र कर्मों को कैसे करता है? यह सब मुझे कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह मैंने तुम्हें अज्ञानी की बात कही है और जितना जगत् है सब चिदाकाश स्वरूप है, जिनको ऐसी सत्ता का ज्ञान हुआ है, वे महापुरुष हैं, जैसे स्वप्न में कोई पुरुष जगा है तो स्वप्न की दृष्टि सब उसको अपना ही स्वरूप प्रतीत होता है, उसमें वह बद्ध नहीं होता, हे रामजी! जितना नानात्व भासता है, वह नाना नहीं और अनाना भी नहीं, केवल आत्मसत्ता यथावत् स्थित है, यह जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, यह तीनों काल भी ज्ञानवान् को भ्रमरूप हो जाते हैं, सब जगत् ब्रह्म रूप हो जाता है, द्वैत भाव उसका मिट जाता है, ऐसे ज्ञानवान् को ज्ञानी ही जानता है, अन्य कोई जान नहीं सकता, जैसे अमृत को जो पान करता हैं, वही स्वाद जानता है–अन्य कोई नहीं जान सकता, हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तो तुल्य भासती है, परन्तु ज्ञानी के निश्चय में कुछ और है, अज्ञानी के निश्चय में और है, जिसका अंतःकरण शीतल हुआ है, वह ज्ञानवान् है और जिसका अन्तःकरण जलता है वह अज्ञानी है, वह बंधा हुआ है, ज्ञानवान् का यदि शरीर भी चूर हो जाय अर्थात् अतिकष्ट हो अथवा राज्य की प्राप्ति हो तो भी उसको राग द्वेष नहीं होता, सदा यथावत् स्वरूप में स्थित रहता है, बह जीवन्मुक्त है, परन्तु उसका यह लक्षण अन्य कोई नहीं जान सकता, वह आप ही जानता है, शरीर को दुःख भी प्राप्त होता है, सुख भी आकर प्राप्त होता है, मरता भी है और रुदन भी करता है, हंसता भी है, लेता भी है, देता भी है, इससे लेकर सब चेष्टा करता दृष्टि आता है, अपने निश्चय में न दुःखी होता है न सुखी होता है, न देता है, न लेता है, सदा ज्यों का त्यों रहता है, हे रामजी! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईं दृष्टि आता है परन्तु अन्दर से उसका यह निश्चय होता है, अद्भुत पद में स्थित रहता है, गिरता कदाचित् नहीं, परम उदित रूप होता है, राग सहित दृष्टि भी आता है, परन्तु अन्दर से राग किसी से

नहीं, क्रोध करता भी दृष्टि आता है, परन्तु उसको क्रोध कदाचित् नहीं, जैसे आकाश शुभ पदार्थों को धारण करता है, धूम और बादल से आच्छादित भी दृष्टि आता है, परन्तु किसी के साथ स्पर्श नहीं करता, ऐसे ज्ञान में सब क्रियाएँ दृष्टि आती हैं, परन्तु अपने निश्चय में किसी के साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे नट स्वांग ले आता है, चेष्टा करता दीखता है, अन्दर से अपने नटत्वभाव में निश्चय होता है, ऐसे ज्ञानवान् को भी सब क्रियाओं में अपना आप भी निश्चय होता है, जैसे जिनको स्वप्न आता है और स्वप्न में अपना पूर्वरूप स्मरण आता है, तब स्वप्न के पदार्थ में वर्तता है तो भी उनके सुख में अपने आपको सुखी नहीं मानता, दुःख में दुःखी नहीं मानता, सब सृष्टि उसको अपना आप भासती है, ऐसे ही ज्ञानवान् को अपने स्वरूप के निश्चय से सुख दुःख का क्षोभ नहीं होता और जो ऐसे पुरुष हैं, उनको क्या होता है, जैसे उनकी इच्छा होती है, ऐसे ही सिद्ध होकर भासती है, हे रामजी! यह जितनी सृष्टि है, सब चित् सत्ता में है, जो योगीश्वर पुरुष उसमें स्थित होकर जहां प्राप्त होना चाहते हैं, वहां अन्तवाहक के साथ जाकर प्राप्त होते हैं और तीनों काल उनके विद्यमान होते हैं, ज्ञानी किसी कारण से यत्न नहीं करता, जैसा आकर प्राप्त होता है, उसी में प्रसन्न रहता है, हे रामजी! एक काल में सामवेद को ऊर्ध्वमुख करके गायन करते थे, उन्होंने सदाशिव का मनन किया, अपमान किया, तब सदाशिव ने अपने नख से ब्रह्मा के पांच सिर काट डाले परन्तु ब्रह्माजी के मन में कुछ क्रोध न फुरा और वह विचारने लगे कि मैं तब भी चिदाकाश था, अब भी चिदाकाश हूं, मेरा तो कुछ गया नहीं, शिर से मेरा क्या प्रयोजन है, न कुछ हानि है, न कुछ लाभ है, हे रामजी! इस प्रकार सर्व विश्व रचने वाले ब्रह्माजी का शिर काटा जो फिर भी सिर लगा लेने में समर्थ है, परन्तु उसको लगाने का कुछ प्रयोजन न था, न लगाने में कुछ हानि थी, उसका भी सदा निश्चय आत्म पद में है, इस कारण से क्षोभ कुछ न हुआ, हे रामजी! काम जैसा अन्य कोई विकार नहीं, जो सदाशिव पार्वती को वामांग में धारण करते हैं

और कामदेव के पांच बाण चलने से समस्त विश्व मोहित होता है, उस कामदेव को सदाशिव ने भस्म कर दिया है, तो क्या वह स्त्री के त्यागने में समर्थ नहीं हैं क्या? परन्तु उसको रागद्वेष कुछ नहीं, इस कारण से त्याग नहीं करते, त्यागने से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता, रखने से कुछ अनर्थ नहीं होता, जो कुछ प्रवाह पतित कार्य हुआ है, उसको करता है, खेद कुछ नहीं मानता, इसलिये जीवन्मुक्त है, विष्णुजी सदा विक्षेप में रहते हैं, आप भी कर्म करते हैं और लोगों से भी कराते हैं, शरीर को धारण करते हैं, त्यागी होते हैं, वृद्धि करते हैं, इत्यादिक क्षोभ में रहते हैं, त्यागने में समर्थ भी हैं, परन्तु त्यागने में उनका कुछ कार्य सिद्ध नहीं ही होता,और करने से हानि नहीं होती, उनको कई गुणों से गुणवान् जानते हैं और मुझको तो शुद्ध चिदाकाश भासता है, मूर्ख कहते हैं श्याम है, सुन्दर है, विष्णु तो शुद्ध चिदाकाशरूप है, सदा शुद्धस्वरूप में उनको अहं प्रत्यय है और आकाशमार्ग में जो सूर्य स्थित है, वह कभी ऊर्ध्व को जाता है, कभी नीचे को जाता है, उसको स्थित होने की क्या सामर्थ्य नहीं है, क्यों नहीं, परन्तु चलना और ठहरना, उसके लिये दोनों सम है, खेद से रहित होकर प्रवाह पतित कार्य में रहता है, इसलिये जीवन्मुक्त है और जीवन्मुक्त चन्द्रमा भी है, वह घटता घटता सूक्ष्म होता दृष्टि आता है, कभी बढ़ता जाता है, शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष उसमें रहते हैं, रात को प्रकाशित होता है, अपनी क्रिया को त्याग नहीं सकता। परन्तु क्षोभ से रहित होकर प्रवाह पतित कार्य में विचरता है, अतः जीवन्मुक्तहै, अग्निदेव सदा दौड़ते रहते हैं, यज्ञ हवन का भोजन करने के लिये सब ओर जाते हैं, क्या उनको घर में बैठने की सामर्थ्य नहीं, क्यों नहीं, परन्तु जो अपना आचार है उसको त्यागते नहीं, ठहरने में कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और चलने में कुछ हानि नहीं होती, दोनों में तुल्य जीवन्मुक्त है, हे रामजी! बृहस्पति और शुक्र को बड़ा क्षोभ होता है, बृहस्पति देवताओं की जय के लिये यत्न करता है और शुक्र दैत्यों की जय के लिये यत्न करता है। क्या इनको त्यागने की सामर्थ्य नहीं? परन्तु दोनों इनको तुल्य

हैं, इसी कारण से खेद रहित होकर अपने काम में प्रवृत्त रहते हैं, जीवन्मुक्त पुरुष हैं, हे रामजी! राज्य में बड़े क्षोभ होते हैं, वह राजा जनक आनन्द सहित राज्य करता है और जीवन्मुक्त है। प्रह्लाद, वलि, वृत्रासुर और सुर से लेकर जो दैत्य जीवन्मुक्त हुए हैं, समता भाव को लिये खेद से रहित नाना प्रकार की चेष्टा करते थे, परन्तु अन्दर से शान्त जीवन्मुक्त रहे हैं, राजा नल, दिलीप और मांधाता से लेकर जो हुए हैं, उन्होंने समता भाव को लेकर राज्य किया है, वे जीवन्मुक्त हुए हैं, ऐसे अनेक राजा लोग हुए हैं, जो राज्य में रागवान् भी दृष्टि आये हैं, परन्तु अन्तःकरण में राग द्वेष से रहित शीतल चित्त रहे हैं, हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है, परन्तु भेद इतना है कि ज्ञानी का चित्त शान्त है और अज्ञानी के मन में क्षोभ है, इष्ट की प्राप्ति में हर्षवान् होता है और अनिष्ट हो जाने पर द्वेष करता है, ग्रहण त्याग की इच्छा से जलता है, संसार उसको सत्य प्रतीत होता है और जिसका चित्त शान्त हो गया है, उसके अन्दर न राग है, न द्वेष है, स्वाभाविक शरीर का जो प्रारब्ध है, वह होता है, उसमें कुछ अपना अभिमान नहीं होता, उसके निश्चय सब आकाशरूप हैं, जगत् कुछ बना नहीं, भ्रममात्र है, जैसे आकाश में नीलता भ्रम मात्र है और दूर नहीं होती, ऐसे ही यह जगत् भ्रम से प्रतीत हो रहा है, परन्तु है नहीं, जैसे आकाश में नाना प्रकार के तरवरे भासते हैं, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, जैसे काष्ठ की पुतली काष्ठरूप होती है, ऐसे जगत् भ्रमरूप है, जो कुछ भ्रम से इतर भासता है, वह सब भविष्यत् नगर में असत् है और जो कुछ तुझे दृष्टि आता है, वह कुछ नहीं, सर्व कलना से रहित शुद्ध संवित् जड़ता से मुक्त स्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है, केवल आकाशरूप है, उसमें जगत् भी वही रूप है, पाषाण की शिलावत् घन मौन है, तुम भी उसी रूप में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जीवन्मुक्त लक्षणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२३९॥

चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४०

विपश्चित उपाख्यान वर्णनम् ।

रामजी बोले—हे भगवन्! उस राजा विपश्चित् ने फिर क्या किया? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! उसकी जैसी दशा हुई सुनो। पश्चिम दिशा का राजा विपश्चित् वन में विचरता फिरता था। वह एक मत्त हाथी के वश में पड़ गया, उसने पहाड़ की कन्दरा में राजा को मार डाला, दूसरा विपश्चित् बड़वानल ने भस्म कर दिया और तीसरे विपश्चित् को एक विद्याधर स्वर्ग में ले गया, उसने इन्द्र का मान न किया, उसको शाप से भस्म होना पड़ा। इसी प्रकार चौथे के एक मत्स्य ने आठ टुकड़े कर दिये, जैसे प्रलय काल में संसार भस्म हो जाता है, ऐसे चारों ही विपश्चित् मारे गये, तब उनकी संवित् आकाशरूप हुई, परन्तु इनमें जो जगत् देखने का संस्कार था, उससे इनकी आकाश रूप संवित् पुनः फुरी, उससे जाग्रत की प्रतीति हुई। पृथ्वी द्वीप समुद्र स्थावर जंगमरूप जगत् को देखने लगे और अन्तवाहक शरीर के साथ चेष्टा करने लगे, उनसे एक पश्चिम दिशा का विपश्चित् विष्णु भगवान् के परम पवित्र अति सात्विक स्थान पर मरने से निर्वाणरूप हो गया, उसकी संवित् में सर्व अर्थ शून्य हो गये। वह वहां मुक्त हो गया और एक सहस्र वर्ष पर्यन्त मत्स्य के पेट में रहा और निकला तो एक देश का राजा हुआ और वहां राज्य करने लगा। एक चन्द्रमा के निकट आया और वहां मर कर चन्द्रलोक को प्राप्त हुआ। एक बहता हुआ समुद्र के पार को प्राप्त हुआ। आगे चौरासी हजार योजन पृथ्वी तथा भूत समूह को पार कर गया। इसी प्रकार चारों फिर जीवित हो गये, समुद्र को और वन पर्वतों को पार कर गये। आगे दशसहस्र योजन स्वर्ण की पृथ्वी आई, वहां देवताओं के विचरने के स्थान हैं, उनको भी लांघ गये, आगे लोकालोक पर्वत आया, जिसने सर्व पृथ्वी को आवृत किया है, जैसे वृक्ष को वन का आवरण होता है, ऐसे उसने पंचाशत् कोटियोजन पृथ्वी को आवृत किया है। पचास हजार योजन

ऊँचा लोकालोक पर्वत है, वहां तारागण (नक्षत्र चक्र) घूमते हैं, उनको भी वे पार कर गये अर्थात् उनके भी आगे चले गये। आगे एक शून्य नक्षत्र था, वह कैसा था कि महा शून्य जैसा, जहां पृथ्वी जल आदि तत्व कोई नहीं, एक शून्य आकाश है, न कोई स्थावर पदार्थ है, न कोई जंगम पदार्थ है, न कोई उत्पन्न हो, न किसी का नाश हो, उसको देखा, उसी प्रकार सारे भूगोलों को देखा। राम बोले—भगवन्! भूगोल क्या है और किसके आश्रय है और उसके ऊपर क्या है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे गेंद होती है, ऐसे भूगोल है और सकल्प के आश्रय है, सब ओर उसके आकाश है। सूर्य चन्द्रमा, नक्षत्र सहित चक्र फिरता है, हे रामजी! यह बुद्धि से बना नहीं, संकल्प से बना है, जो वस्तु बुद्धि से बनी होती है, वह क्रम से स्थित होती है, यह तो विपर्यय रूप से स्थित है, पृथ्वी के चारों और दशगुण जल है, उसमें दशगुण अग्नि है, उससे परवर्ती, दशगुण वायु अग्नि रस से ब्रह्माण खर्पर है, उस खर्पर का अर्ध भाग नीचे को और दूसरा ऊर्ध्व को गया है, उसके मध्य में जो पोल है, वह आकाश है, वह वज्रसार की नाईं है, अनन्तकोटि योजन का विस्तार है, उस ब्रह्माण्ड का उसमें भूगोल है, उससे उत्तर दिशा सुमेरु पर्वत है, पश्चिम दिशा में लोकालोक पर्वत है, ऊपर नक्षत्रों का चक्र फिरता है, जहां वह आता है वहां प्रकाश होता है, जहां नहीं होता, वहां तमोरूप भासता है, वह संकल्प रचना है, जैसे बालक संकल्प से पत्थर रचे, ऐसे चेतनरूप बालक ने यह संकल्परूप भूगोल रचा है, हे रामजी! जैसे जैसे उस समय उसमें निश्चय हुआ है, ऐसे ही ऐसे स्थित हुआ है, जहां पृथ्वी स्थित रही है, वहां स्थित है, जहां—खात रची है, वहां खात ही है और है क्या? जैसे स्वप्न में अविद्यमान प्रतिभा होती है, ऐसे भूगोल है, हे रामजी! जिनको ऐसे भासता है, जो सुमेरु में देवता है, उत्तर दिशा और अपर दिशा मनुष्यादि जीव रहते हैं, ऐसा जिनको ज्ञान है, वह पण्डित हैं तो भी मूर्ख हैं, यह तो भ्रममात्र है, बना कुछ नहीं, जो हम से लेकर अन्य भी तत्ववेत्ता हैं उनको ज्ञान नेत्र से आत्मसत्ता ज्यों की त्यों भासती है, जो मनसहित षड्

इन्द्रियों से अज्ञानी देखते हैं, उनको जगत् भासता है और ज्ञानवान् को परब्रह्म सूक्ष्म यथावत् प्रतीत होता है, जगत् को असत् जानता है, जैसे आकाश में अनहोती नीलता भासती है, ऐसे आत्मा में अनहोता जगत् भासता है, जैसे नेत्रदूषण से आकाश से तववरे भासते हैं, ऐसे अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है, वह केवल आभास मात्र है। हे रामजी! जगत् उत्पन्न हुआ भी दृष्टि आता है और नष्ट होता भी दृष्टि आता है, परन्तु बना कुछ नहीं, जैसे संकल्प का रचा फुरना अपने मन में प्रतीत होता है, ऐसे यह जगत् मन में फुरता है, यह संपूर्ण भूगोल संकल्प में स्थित है। जैसे बालक संकल्प से पत्थर को रचे, ऐसे यह ब्रह्माण्ड भूगोल कोटि योजन पर्यन्त है, उसका एक भाग अधः को गया है, एक ऊर्ध्व को गया है, उसमें चेतनरूप बालक ने यह भूगोल रचा है, वह संकल्प के आश्रय खड़ा है, जैसे आदि नीति हुई है, ऐसे प्रतीत होता है, इस पृथ्वी की उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत है और पश्चिम दिशा की ओर लोकालोक पर्वत है और ऊपर तारागण (नक्षत्र चक्र) फिरता है, लोकालोक के जिस ओर से आता है, उस ओर प्रकाश होता है और भूगोल ऐसे है जैसे गेंद होता है, उसके एक ओर पाताल है और एक और स्वर्ग है, एक और मध्य मंडल है और आकाश सब ओर है, पातालवासी जानते हैं, हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जानते हैं कि हम ऊर्ध्व हैं, मध्यवासी समझते हैं कि हम ऊर्ध्व हैं। इस प्रकार भूगोल है, उनके परवर्ती एक खात है, शून्य जैसा महा तमोरूप है, जहां न पृथ्वी है, न कोई पहाड़ है, न स्थावर है न जंगम है, न कुछ उत्पन्न होता है, कवि महात्मा जैसा है और उससे पर स्वर्ण की कंथ है, दशसहस्र योजन उसका विस्तार है, उससे पर दशगुण जल है, पृथ्वी के चारों ओर वेष्टन है, उससे परवर्ती दशगुण अग्नि हैं, उस पर दशगुण वायु है, उससे आगे आकाश है, उससे परे ब्रह्माकाश महाकाश है, उसमें अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं, वह क्या है और कैसे स्थित है? तत्व है, जैसे कपूर के आश्रय तृण ठहरते हैं, ऐसे पृथ्वी भाग के आश्रय तत्व हैं, वस्तुतः क्या है? शुद्ध चेतन ब्रह्म का चमत्कार है, ब्रह्म आकाशवत् निर्मल है, उसमें कोई क्षोभ

नहीं, परमशान्त है और अनन्त है, सबका अपना आप है, हे रामजी! अब विपश्चित् की वार्ता सुनो, जब वह लोकालोक पर्वत जाकर शान्त स्थित हुए तब एक शून्य जैसा खात दृष्टि आया, पर्वत से उतरकर खात में जा पड़ा, खात भी पर्वत के शिखर पर था और वहां पक्षी भी शिखर की नाईं बड़े थे, उन पक्षियों चंचुओं से उसका शरीर चूर्ण किया, सब यह अपने स्थूल शरीर को त्यागकर सूक्ष्म अन्तवाहक शरीर अपना जानने लगा, रामजी बोले–हे भगवन्! आधिभौतिकता कैसी होती है और अन्तवाहक क्या है, फिर उसने क्या किया? कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे संकल्प से दूर से चला जावे और जिस शरीर के साथ जाये वह अन्तवाहक है और जो पांचभौतिक शरीर प्रत्यक्ष यह भासता है, वह आधिभौतिक है, जहां मार्ग से जाने को चित्त संकल्प उठता है तब स्थूल शरीर में गये बिना पहुंच नहीं सकता जब मार्ग से चले तब पहुंचता है, वह आधिभौतिक है और यह प्रमाद से होता है जैसे जेवरी के भूलने से सर्प भासता है, जैसे आत्मा के अज्ञान से आधिभौतिक शरीर भासता है, जैसे मनोराज्य के पुर बनाए उसमें आपभी एक शरीर बनकर चेष्टा करता फिरे, जब तक पूर्व का शरीर विस्मरण नहीं हुआ, तब तक संकल्प शरीर के साथ चेष्टा करता है वह अन्तवाहक है, उसको संकल्पमात्र जानना विशेषबुद्धि कहाती है और आत्मबोध नहीं हुआ, जब उस संकल्पशरीर में दृढ़ भावना होती है उसका नाम आधिभौतिक होता है, वह घट बढ़ कहाता है, इसलिये जब तक शरीर का स्मरण है, तब तक आधिभौतिकता नहीं होती, जब विस्मरण होता है तब आधिभौतिकता हो जाती है और जो विपश्चित् आधिभौतिक थे, आत्मबोध से रहित थे, जहां चाहें वहां चले जाते, स्वरूप से न कुछ अन्तवाहक है, न कुछ आधिभौतिक है, प्रमाद से आकार भासता है, वास्तव में सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं, सब वही है, उसके प्रमाद से विपश्चित् अविद्यक जगत्को देखने वाले थे, वह अविद्या कुछ वस्तु नहीं ब्रह्म ही है, तो ब्रह्म का अन्त कहाँ आय, वहां से चला परन्तु जानता था

कि मेरा अन्तवाहक शरीर है समग्र पृथ्वी को लांघ गया, उससे आगे जल को भी पार किया उससे आगे जो सूर्यवत् दाहक अग्नि का आवरण है, प्रकाशवान् उसको भी पार कर गया, मेघ और वायु के आवरण को भी लांघ गया, आकाश को भी लांघा, उससे भी आगे ब्रह्माकाश था, वहां इसको संकल्प को अनुसार पुनः जगत् भासने लगा, उसको भी लांघ गया, फिर उसके आगे ब्रह्माकाश है, फिर पांचभौतिक का भान हुआ, उसके आवरण को भी पार किया, फिर उस ब्रह्माण्ड कपाट के आगे तत्व को लांघकर ब्रह्माकाश आया, उसमें अपर पांचभौतिक ब्रह्माण्ड था उसको पार किया और अन्त न पाया, स्वरूप के प्रमाद से दृश्य का अन्त लेने के लिये भटकता फिरा, अविद्यारूप संसार का अन्त कैसे आ सके तब तक अन्त लेने को भटकता फिरता है जब तक अविद्या है, जब अविद्या नष्ट होगी तब ही अविद्यारूप संसार का अन्त आयेगा, हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं, वही ब्रह्माकाश ज्यों का त्यों स्थित है, उसका न जानना ही संसार है, जब तक उसका प्रमाद है तब तक जगत् का अन्त न आयेगा, जब स्वरूप का ज्ञान होगा, तब अन्त मिलेगा, वह जानना क्या है? चित्त को निर्वाण करना ही जानना है, जब चित्तनिर्वाण होगा, तब जगत् का अन्त आयेगा, जब तक चित्त भटकता फिरता है तब तक संसार का अन्त नहीं आता, इसलिये चित्त का नाम ही संसार है, जब चित्त आत्मपद में स्थित होगा, तब जगत् का अन्त होगा, इस उपाय के बिना शान्ति नहीं मिलती।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उ० विपश्चिदुपाख्यान वर्णनं
नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२४०॥

एक चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४१

विपश्चिच्छरीरप्राप्तिवर्णनम् ।

राम बोले–हे भगवन्! वह जो दो विपश्चित् थे, उनकी क्या दशा हुई? कृपा करके कहिये। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! एक तो निर्वाण हुआ था और दूसरा ब्रह्माण्डों को तय करता गया, जाता जाता एक ऐसे ब्रह्माण्ड में गया वहां उसको सत्संग की प्राप्ति हुई, सन्तों की कृपा से वह ज्ञानवान् हो गया और निर्वाण को प्रात हुआ और एक अब तक दूर फिरता है, एक यहां पर्वत की कंदरा में मृग होकर विचरता है, हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभास है, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, जब तक किरणें हैं, तब तक जलाभास निवृत्त नहीं होता, ऐसे ही जब तक आत्मसत्ता है तब तक जगत् का चमत्कार निवृत्त नहीं होता, आत्मा के जानने से जगत्सत्ता नहीं रहती जैसे किरणों के जानने से जलाभास नहीं रहता, जो भासता है तो भी किरणों ही की सत्ता भासती है, भिन्न जगत् की सत्ता नहीं भासती, रामजी बोले–हे भगवन्! विपश्चित् एक ही था एक ही संवित् में भिन्न भिन्न वासना कैसे हुई है और एक मुक्त हो गया, एक मृग होकर फिरता रहा, एक आगे निर्वाण हो गया यह भिन्नता कैसे हुई है? संवित् एक ही थी, उसमें फल की घटा बढ़ी कैसे हुई यह कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वासना, देशकाल पदार्थ से होती हैं, उसमें जिसकी दृढ़ भावना होती है उसकी जय होती है, जैसे एक पुरुष ने मनोराज्य से अपनी चार मूर्तियाँ कल्पना की उनमें भिन्न भिन्न वासना रखी, वह संवित् तो एक है परन्तु पूर्व का शरीर भूलकर वह दृढ़ हो गये, तो जैसी जैसी भावना उन शरीरों में दृढ़ होती हैं वही प्राप्त होती है, ऐसे संवित् में नाना प्रकार की वासनाएँ फुरती हैं, जैसे एक ही संवित् स्वप्न में नाना प्रकार धारण करती है और भिन्न भिन्न वासना होती है, हे रामजी! संवित् एक थी, परन्तु देशकाल क्रिया करके

वासनाएँ भिन्न भिन्न हो गयीं, पूर्व की संवित् स्मृति भूल गयी, उससे घट बढ़ फल को प्राप्त हुए, वह संवित् क्या रूप है, हे रामजी! संवेदन देश से देशान्तर को जाती है उसके मध्य में जो संवित् सत्ता है वह ब्रह्म सत्ता है, जैसे एक जाग्रत् के आकार को छोड़ा और स्वप्न आया नहीं उसके मध्य में जो ब्रह्मसत्ता है, वह किंचनरूप जगत् होकर भासती है, परन्तु किंचन भी भिन्न वस्तु नहीं, एक है न दो है, एक कहना भी नहीं होता दो कहां हों और जगत् कहां हो, यही अविद्या है, जो है नहीं और भासती है जिस जिस आकार में जैसी जैसी वासना फुरती है, फिर जो दृढ़ हो जाती है, उसी की जय होती है, इस कारण से एक विपश्चित् जनार्दन विष्णु के स्थान में निर्वाण हो गया, दूसरा दूर से दूर ब्रह्मांडको लांघता गया उसको सत्संग मिला, उससे ज्ञान उदय हुआ, वासना मिट गयी, उसके अज्ञान का नाश हुआ, जैसे सूर्योदय से अंधकार नष्ट हो जाता है, ऐसे ही अज्ञान का नाश हुआ, वह परम पद को प्राप्त हुआ, तीसरा अज्ञान से दूर से दूर भटकता है और चौथा पहाड़ की कन्दरा में मृग होकर विचरता है, हे रामजी! जगत् कुछ वस्तु नहीं, अज्ञान के वश से भटकते हैं, इसलिये अज्ञान ही जगत् है, जब तक अज्ञान है तब तक जगत् है जब ज्ञान उदय होता है तब अज्ञान का नाश करता है तब जगत् का भी अभाव हो जाता है, राम बोले–हे भगवन्! वह जो मृग हुआ है वह कहां कहां फिरा है और कहां स्थित है और किन स्थानों में फिरते रहे हैं, यह कहने की कृपा कीजिये। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ब्रह्माण्डों को लांघते हुए दो दूर से दूर चले गये थे, एक अब तक चला जाता है, पृथ्वी, समुद्र, वायु, आकाश उसकी संवित् में फुरते हैं, यह तो दूर से दूर चला गया है, यह हमारी आधिभौतिक दृष्टि का विषय नहीं और एक ब्रह्मांड को लांघता गया था, अब इस जगत् में पहाड़ की कंदरा का मृग हुआ है वह हमारी इस दृष्टि का विषय है, राम बोले–हे भगवन्! यह दूर गये थे और एक इस जगत्में अब मृग हुआ है तुमने कैसे मालूम किया कि आगे ब्रह्माण्ड में था। अब इस जगत् में है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मैं ब्रह्म

हूं, जितने ब्रह्माण्ड हैं, वे मेरे अंग हैं, मुझको सबका ज्ञान है, जैसे अवयवी पुरुष अपने अंग को जानता है कि यह अंग फुरता है और यह नहीं फुरता, ऐसे मैं सबको जानता हूं, परन्तु तुमको जानने की सामर्थ्य नहीं, जैसे समुद्र में अनेक रंग फुरते हैं और समुद्र सबको जानता है, ऐसे मैं समुद्ररूप हूं। ब्रह्माण्डरूप मुझमें तरंग है, इसलिये मैं सबको जानता हूं, हे रामजी! वह मृग दूर ब्रह्माण्ड में फिरता है, वह विपश्चित्, यह मृग नहीं परन्तु जैसा है सुनो, हे रामजी! यह ब्रह्माण्ड इस हमारे ब्रह्माण्ड जैसा है, एक ही जैसा आकार है, एक ही जैसी चेष्टा, एक ही जैसा जगत् है, स्थावर जंगम सब एक ही जैसे हैं, वहां जो देशकाल क्रिया का विचरना होता है, वह इसके समान होता है, जैसे नाम रूप आकार यहां होते हैं, जैसे बिंब का प्रतिबिंब तुल्य ही होता है, जैसे एक ही आकार का प्रतिबिंब जल में होता है और द्वितीय प्रतिबिंब दर्पण में होता है, वह दोनों तुल्य हैं, ऐसे दोनों ब्रह्माण्ड एक समान हैं, ब्रह्मरूप आदर्श में प्रतिबिंब होता है, इस कारण से यह मृग विपश्चित् है। इसी निश्चय को धारण किये हुए हैं। यह और वह दोनों तुल्य हैं, पहाड़ की कन्दरा में हैं, राम बोले—हे भगवन्! यह विपश्चित् अब कहां है और उसका क्या आचार है? अब मैं जानता हूं कि उसका कार्य हुआ है, चलकर मुझे दिखाओ और उसको दर्शन देकर अज्ञान पाश से मुक्त करो, वाल्मीकि बोले—हे अंग! जब रामजी ने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तुम्हारा जो लीलास्थान है, जहां तुम क्रीड़ा करते हो, उसी स्थान पर वह मृग बन्धा हुआ है, तुम्हें तिरग देश के राजा ने लाकर दिया है, वह बहुत सुन्दर है, इसलिये तुमने रक्खा है, उसको मंगवाओ, तब रामजी के सखा बालकों में जो निकटवर्ती थे, उनसे कहा कि उस मृग को सभा में ले आओ, हे राजन्! जब इस प्रकार रामचन्द्र महाराज ने कहा, तब मृग को सभा में ले आये, जितने श्रोता लोग सभा में बैठे थे, आश्चर्य मानने लगे। बड़ी सुन्दर ग्रीवा और कमल के समान उसके नेत्र थे, घास खाता था, कभी सभा में खेलता, कभी खड़ा रहता, तब रामजी ने कहा—हे भगवन्!

इसको उपदेश करके जगाओ कि हमारे साथ प्रश्न उत्तर करे, कृपा करो कि मनुष्य हो जाये, अब तो प्रश्न उत्तर नहीं करता। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस प्रकार उपदेश इसको नहीं लगेगा, क्योंकि जिसको कोई इष्ट होता है, उससे उसको सफलता होती है, इसलिये मैं इसके इष्ट का ध्यान करके विद्यमान करता हूं, उससे इसका कार्य सिद्ध होगा, वाल्मीकिजी बोले—हे अंग! इस प्रकार कहकर वसिष्ठजी ने कमंडलु हाथ में लेकर तीन आचमन किये और पद्मासन बाँधकर नेत्र मूँद लिये। ध्यान में स्थित होकर अग्नि का आह्वान किया और कहा हे वह्नि! यह तुम्हारा भक्त है, इसकी सहायता करो, इसके ऊपर दया करो, आपका दयालु स्वभाव है, जब ऐसा वसिष्ठजी ने कहा, तब सभा में बड़े प्रकाश वाली अग्नि की ज्वाला प्रकट हुई। काष्ठ और अंगार से रहित ही बड़े प्रकाश को लिये जले, जब ऐसी अग्नि जगी, तब मृग देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और चित्त में बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई, तब वसिष्ठजी ने नेत्र खोलकर अनुग्रह सहित मृग की ओर देखा। उससे उसके सब पाप दग्ध हो गये और वसिष्ठजी ने अग्निदेव से कहा—हे भगवन् वह्निदेव! यह तेरा भक्त है, इसकी पूर्व की भक्ति स्मरण करके इस पर दया करो। इसके मृग शरीर को दूर करके इसको विपश्चित शरीर दो, कि यह अविद्या से मुक्त हो जाये, हे राजन्! जब इस प्रकार वसिष्ठजी ने अग्नि से कहकर रामजी से कहा—हे राम! अब यह मृग अग्नि में प्रवेश करेगा, तब इसका मनुष्य शरीर हो जायेगा, ऐसे वसिष्ठजी कह रहे थे कि मृग ने अग्नि को देखकर एक चरण पीछे धरा और उछलकर अग्नि में प्रवेश किया। ऐसा प्रवेश किया जैसा कि बाण निशान में प्रवेश करते हैं, हे राजन्! तब उस मृग को कुछ खेद न हुआ, उसको अग्नि आनन्दवान् दृष्टि आया, तब उसका शरीर अन्तर्धान हो गया और महा प्रकाशवाले मनुष्य शरीर को धारण किये अग्नि से निकला, जैसे पट के ओट से स्वांगी स्वांग धारणकर निकल आता है। सुन्दर वस्त्र पहिरे हुए शीश पर मुकुट कंठमें रुद्राक्षकी माला और यज्ञोपवीत धारण किये हुए था, अग्नि के समान तेजोवान्, प्रकाशवान्

अन्य सभासदों से भी अधिक तेजस्वी अग्नि को भी मानो लज्जित कर रहा हो, जैसे सूर्य का उदय हुए चन्द्रमा का प्रकाश लज्जित होता है ऐसे सब ओर से जल ही जल हो गया, तब जैसे समुद्र से तरंग निकलकर लीन हो जाता है, ऐसे अग्नि अन्तर्धान हो गया, उसको देखकर रामजी आश्चर्य को प्राप्त हुए। सर्व सभा विस्मय को प्राप्त हुई, तब बड़े प्रकाश धारण करनेवाला विपश्चित् निकलकर ध्यान में जुड़ गया, विपश्चित से लेकर इस शरीर पर्यन्त सबका स्मरण करके नेत्र खोल दिये, वसिष्ठजी के निकट आकर साष्टांग प्रणाम किया,और कहा–हे ब्रह्मन्! ज्ञान के सूर्य हे प्राणदाता! तुझको नमस्कार है, हे राजन्! जब इस प्रकार उसने कहा, तब वसिष्ठजी ने उसके सिर पर हाथ रक्खा,और कहा–हे राजन्! तू उठ खड़ा हो, अब तेरी अविद्या मैं दूर करूँगा, तू अपने स्वरूप को प्राप्त होगा, तब राजा विपश्चित् ने उठकर राजा दशरथ को प्रणाम किया और कहा–हे राजन्! तेरी जय हो, तब राजा दशरथ ने आसन से उठकर कहा–हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहे हो, अब यहां मेरे पास बैठो, तब राजा विपश्चित् बैठ गया। विश्वामित्र आदि ऋषि बैठे थे, इनको यथा योग्य प्रणाम करके बैठ गया, तब राजा विपश्चित को दशरथ ने भास नाम से बुलाया, विपश्चित का बड़ा प्रकाश था, इस कारण से राजा दशरथ ने कहा–हे भास! तुम तो संसार भ्रम के लिये चिरकाल फिरते रहो हो, थक गये होंगे, विश्राम करो,और जो जो देश काल क्रिया की है, देखी है, वह कहो, यह आश्चर्य है,कि अपने मंदिर में सोया हो और निद्रा दोष से गर्त में गिरता फिरे और देश देशान्तर को भटकता फिरे, यही अविद्या है, हे भास! जैसे वन का विचरने वाला हस्ती सांकल से बँधा हो, जैसे वह बांधा हुआ दुःख पाता है, ऐसे तू (विपश्चित्) भी था। अविद्या से तू जगत् के देखने के लिये भटकता है, हे राजन्! जगत् कुछ वस्तु नहीं,और भासता है, यही माया है, जैसे भ्रम से आकाश में नाना प्रकार के रंग भासते हैं, ऐसे अविद्या से यह जगत् भासता है और सत्य प्रतीत होता है, वह है क्या? आकाशरूप ही आकाश में स्थित है, उस

आकाश में जो कुछ तुमने देखा है, आत्मरूप चिन्मामणि के चमत्कार सहित कहो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विपश्चित शरीरप्राप्तिर्नाम एक चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२४१।।

द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४२

वटधानोपाख्यानवर्णनम् ।

दशरथ बोले—हे भास! बड़ा आश्चर्य है, कि तू विपश्चित् बुद्धिमान् था, परन्तु चेष्टा से तू अविपश्चित् हुआ, इस बुद्धि से तू अविद्या के देखने को समर्थ हुआ था, जगत् प्रतिभा तो मिथ्या ही उठी है, असत्य को ग्रहण करने की इच्छा तुमने क्यों की? वाल्मीकि बोले—हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दशरथ ने कहा—तब प्रसंग को पाकर विश्वामित्र बोले, हे राजा दशरथ! यह चेष्टा वही करता है, जिसको परम बोध नहीं होता और केवल मूर्ख अज्ञानी भी नहीं होता, क्योंकि जिसको परमबोध आत्मा का अनुभव होता है, वह जगत् को अविद्यक जानता है, अविद्यक अन्त लेने को इतना यत्न नहीं करता, वह तो असत्य जानता है, और जो देहाभिमानी मूर्ख अज्ञ है, वह भी यह यत्न नहीं करता, क्योंकि उसको देखने की सामर्थ्य भी नहीं होती, इसलिये तू मध्यभावी है, आत्मबोध से रहित है, आधिभौतिक शरीर त्याग किया है, यत्न करता है, जिनको उत्तम बोध नहीं हुआ, वे बहुत इस प्रकार भटकते, हैं, हे राजन्! इसी प्रकार वट धाना भी फिरते हैं, सत्तर लाख वर्ष उनके व्यतीत हुए हैं, जो इसी ब्रह्मांड में फिरते हैं, उन्होंने भी यही निश्चय धारण किया है कि देखें पृथ्वी कहां तक चली जाती है, इस निश्चय से निवृत्त नहीं होते और इसी ब्रह्मांड में घूमते हैं, परन्तु उनको अपनी वासना के अनुसार विपरीत जैसे अपर ही अपर स्थान में पड़े भासते हैं, हे राजन्! जैसे किसी बालक को संकल्प का रचा वृक्ष आकाश में हो, ऐसे यह भूगोल ब्रह्मा के संकल्प में

स्थित है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांचों तत्वों का ब्रह्माण्ड रचा है संकल्प से, जैसे एक खेत हो उसके चारों और कीड़ी फिरे और जिस ओर से वह जाती है, वही और ऊर्ध्व भासता है, तो अपर ही अपर नित्य होता है, ऐसे यह संकल्प का रचा भूगोल है, इसके किसी कोण में वटधाना इस प्रकार जीव हुए हैं, एक राजा था, उसके तीन पुत्र थे, उनके मन में संकल्प हुआ कि हम जगत् का अन्त देखा चाहते हैं, इसी संकल्प से वे फिरते हैं, पृथ्वी पर चलते हैं, फिर जल आता है, जल यात्रा भी करते हैं, फिर आकाश आता है,और पृथ्वी जल वायु आते हैं, पुनः उसी भूगोल के चारों ओर घूमते हैं, यह भूगोल कैसा है, जैसे आकाश में कन्दुक हो, ऐसे यह पृथ्वी आकाश में है, इसका अधः ऊर्ध्व कोई नहीं,और चरण वह अर्ध शिर के पास ऊर्ध्व उसके चारों और घूमते रहे, परन्तु अपने निश्चय से अपर का अपर जानते हैं और जब तक स्वरूप का प्रमाद है, तब तक जगत् का अभाव नहीं होता। जब आत्म साक्षात्कार होता है, तब जगत् ब्रह्मरूप हो जाता है, जगत् कुछ बना नहीं, कुछ फुरने से भासता है, जैसे स्वप्न में अज्ञान से अनन्त जगत् देखता है, कि यह हुआ है, वह फुरना परब्रह्म में हुआ है, जो फुरने में हुआ है, वह भी परब्रह्म है, अपर कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है, जैसे पत्थर की शिला घन रूप होती है, ऐसे आत्मतत्व चेतन घन है, जैसे आकार और शून्यता में कुछ भेद नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, कल्पना पर ब्रह्म रूप है और ब्रह्म ही कल्पना रूप है, इस जड़ और चेतन में कुछ भेद नहीं, हे राजन्! जिसको जगत् कहता है, वह ब्रह्म सत्ता ही है, न कुछ उत्पन्न हुआ है न प्रलय होता है, सब ब्रह्म ही है, जैसे पहाड़ में पत्थर से इतर कुछ नहीं, ऐसे जगत् ब्रह्मसत्ता से इतर कुछ नहीं, जैसे पाषाण की पुतली पाषाणरूप ही है, ऐसे जगत् ब्रह्मरूप ही है। एक सूक्ष्म अनुभव अणु से अनेक अणु होते हैं, जैसे एक पहाड़ से अनेक शिलाएँ होती हैं, हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको जगत् ब्रह्मरूप भासता है और जो अज्ञानी हैं, उनको नाना प्रकार का जगत् प्रतीत होता है, वह जगत् कुछ वस्तु

नहीं, परन्तु जब तक संकल्प है, तब तक जगत् फुरता है, जैसे रत्न का चमत्कार होता है, ऐसे जगत् आत्मा का चमत्कार है और चेतन आत्मा के आश्रय अनंत सृष्टियां फुरती हैं, सब आत्मरूप हैं, आत्मा से इतर कुछ वस्तु नहीं, जो जाग्रत पुरुष ज्ञानवान् हैं, उनको ब्रह्म रूप ही भासता है और जो अज्ञानी हैं, उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है, हे राजन्! कई एक इसको शून्य कहते हैं कि शून्य ही है, अपर कुछ नहीं और कई इसको जगत् कहते हैं और कई ब्रह्म कहते हैं, जो किसी को निश्चय होता है, उसको वही रूप भासता है, आत्मा चिन्तामणि है, जैसा संकल्प फुरता है, ऐसा हो भासता है, सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जैसा जैसा उसमें निश्चय होता है, ऐसा ऐसा होकर वही भासता है, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, यह जो त्रिपुटी भासती है, वह भी ब्रह्म होकर भासती है, अन्य कोई वस्तु नहीं और अपर जो भासता है, वह अज्ञान है, हे राजन्! जब तक इसकी वासना नष्ट नहीं होती, तब तक इसके दुःख भी नहीं मिटते, जब वासना मिट जाये तो सब जगत् ब्रह्मरूप अपना आप ही भासे, राग द्वेष किसी में न रहे, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की सृष्टि भासती है, जो पूर्व स्वरूप स्मरण आता है तो सर्वरूप आप हो जाता है, राग द्वेष उसका मिट जाता है, ऐसे ज्ञानवान् को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप भासता है और समान रूप विचार से रहित होता है। पूर्व अपूर्व अपर का विचार, यह शुभ है, यह अशुभ है, अशुभ का त्याग करना, यह गुणविचार है, जब तक पूर्व अपर विचार मन में रहता है, तब तक जगत् में भटकता रहता है और बांधा रहता है, क्योंकि जो शुभ अशुभ दोनों जगत् में है, जब इनका विस्मरण हो जाये, सम्पूर्ण जगत् को भ्रम मात्र जानकर आत्मपद में सावधान हो, तब मुक्त होगा। इस जीव को अपनी वासना ही बन्धन का कारण है, जब तक जगत् में वासना होती है, तब तक राग द्वेष उत्पन्न होता है, जिससे बांधा रहता है, जिनको जगत् के दुःख सुख में राग द्वेष की भावना नहीं उत्पन्न होती और वासना भी नष्ट हुई होती है, उनको

यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप ही भासता है, जगत् में कोई वस्तु दुःखदायक नहीं भासती। उनको सब ब्रह्म भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे वटधानोपाख्यान वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२४२।।

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४३

विपश्चित्कथावर्णनम् ।

राजा दशरथ बोले–हे भास! तुम बहुत समय तक जगत् में घूमते रहे हो, जिस प्रकार तुमने चेष्टा की है और देश काल पदार्थ देखे हैं, वह सब कहो, भास बोला–हे राजन्! मैं जगत् को देखता फिरा हूं, फिरता फिरता थक गया हूं, परन्तु देखने की इच्छा थी, इसलिये मुझे दुःख प्रतीत नहीं हुआ, जो कुछ मैंने चेष्टा की है और जो देखा है, कहता हूं, हे राजन्! मैंने बहुत जन्म धारण किये हैं और बहुत बार मरा हूं, बहुत बार शाप पाये हैं, उच्च नीच जन्म लिये हैं, बार बार मरता रहा हूं, बहुत ब्रह्माण्ड देखे हैं, परन्तु अग्नि देवता के वर से एक बार में वृक्ष हुआ हूं, सहस्र वर्ष पर्यन्त फलता फूलता रहा हूं, जब कोई काटता तब मुझे दुःख होता था। अन्तःकरण में बहुत पीड़ा होती थी। वहां से शरीर छूटा तब सुमेरु पर्वत पर स्वर्ण का कमल हुआ, वहां का जल पान किया, फिर एक देश में पक्षी हुआ, सौ वर्ष तक पक्षी रहा, उसके बाद गीदड़ हुआ, वहां मुझको हाथी ने मार डाला। सुमेरु पर्वत पर मैं सुन्दर मृग हुआ। देवता और विद्याधर मुझमें प्रीति करें, इस प्रकार कितनी देर रहकर मृत्यु वश हुआ, फिर देवताओं के वन में मंजरी हुआ, देवियां विद्याधरियां मुझको स्पर्श करती थीं, सुगन्धि लेती थीं, तब मैं देवताओं की स्त्री हुआ, तदनन्तर मैं सिद्ध हुआ, मेरा वचन फुरने लगा फिर और शरीर धारण किया, एक ब्रह्मांड को लांघ गया, फिर और फिर और, इस प्रकार कितने ही ब्रह्माण्ड लांघ गया। एक ब्रह्माण्ड में जो आश्चर्य देखा, उसे सुनो। एक स्त्री

देखी, उसके शरीर में कई ब्रह्माण्ड देखे, देख कर मैं आश्चर्य को प्राप्त हुआ और देशकाल क्रिया से पूर्ण त्रिलोकी को देखता हुआ विस्मित हुआ, जैसे दर्पण में प्रतिबिंब दृष्टि आता है, ऐसे मुझको जगत् भासे, तब मैंने उसको कहा—हे देवि! तुम कौन हो, यह शरीर तुम्हारे क्या हैं? देवी बोली—हे साधो! मैं शुद्ध चित्तशक्ति हूं और यह सब मेरे अंग हैं, मुझमें स्थित हैं, और मेरी क्या बात पूछनी है, जितना जगत् तू देखता है, सब चिद्रूप है, चेतन से इतर और कुछ नहीं, और सब में ब्रह्माण्ड त्रिलोकी आकर स्थित है, जो अपना आप ही है, जो पूर्व अपने स्वभाव में स्थित है, उनको अपने ही में भासते हैं और अपना ही स्वरूप भासता है और जो स्वभाव में स्थित नहीं, उनको जगत् बाह्य भासते हैं, और अपने आप से भिन्न भासते हैं, हे राजन्! यह जगत् कुछ बना नहीं, जैसे स्वप्न में नगर भासता है, जैसे गन्धर्व नगर भासता है, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, जल में तरंग भासते हैं, वे जलरूप हैं, तरंग कुछ इतर वस्तु नहीं होते, ऐसे सब जगत् चिद्रूपमें भासता है, वह चेतन से इतर कुछ नहीं, परन्तु जब स्वभाव में स्थित होकर देखेगा, तब ऐसे भासेगा और यदि अज्ञान दृष्टि से देखेगा तो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आयेगा। हे राजन् दशरथ! इस प्रकार उस देवी ने मुझे कहा, तब मैं वहां से चला, आगे अन्य सृष्टि में गया, वहां देखा कि सब पुरुष ही रहते हैं, स्त्री कोई नहीं, पुरुष से पुरुष उत्पन्न होते हैं, उससे भी आगे अन्य सृष्टि में गया, वहां न सूर्य है, न चन्द्रमा है, न तारे हैं, न अग्नि है, न दिन है, न रात है, जैसे चन्द्रमा सूर्य तारे का प्रकाश होता है, ऐसे सब अपने प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, उनको देखकर मैं आगे और सृष्टि में गया, वहां क्या देखा कि आकाश से जीव उत्पन्न होते हैं, और आकाश ही में लीन हो जाते हैं। इकट्ठे ही सब उत्पन्न होते हैं और इकट्ठे ही लीन हो जाते हैं, न वहां मनुष्य हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्र हैं, न जगत् है, मन से विलक्षण ही प्रकार है, हे राजन्! इस प्रकार मैंने कई सृष्टियां देखी हैं, मुझको वे स्मरण आती हैं, आगे और सृष्टि में गया। वहां क्या देखा कि सब जीव

एक समान हैं, न किसी को रोग है, न दुःख है, सब एक जैसे गंगा के तीर पर बैठे हैं, हे राजन्! एक और आश्चर्य देखा है, वह सुनिये, एक और सृष्टि में मैं गया, वहां क्षीर समुद्र मन्दराचल से मथा जाता है, एक ओर विष्णु भगवान् और देवता हैं, रत्नों से जड़ा मंदराचल है, शेषनाग से रस्सी की नाईं लपेटा हुआ है, मथने के लिये दूसरी ओर से दैत्य लगे हैं, बड़ा सुन्दर शब्द होता है, वहां महाकौतुक देखकर मैं आगे आया, एक और सृष्टि देखी, वहां मनुष्य और देवता आकाश में उड़ते फिरते हैं, पृथ्वी के ऊपर मनुष्य विचरते हैं, वेद शास्त्र जानते हैं, हे राजन्! और एक आश्चर्य देखा कि मैं एक सृष्टि में जा निकला, वहां मन्दराचल के ऊपर कल्पतरु मंदार वृक्ष का वन है, उसमें मंदरका नाम की अप्सरा रहती थी, वहां मंदराचल पर जाकर सो रहा, रात का समय था, वह मेरे कंठ से आ लगी, तब मैंने जगकर देखा और कहा हे सुन्दरि! तुमने मुझे किसलिये जगाया। मैं तो सुख से सोया था, तब अप्सरा ने कहा—हे राजन्! मैंने तुम्हें इसलिये जगाया है कि चन्द्रोदय हुआ है, चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमा को देखकर स्रवेगी और नदी की नाईं प्रवाह चलेगा, उसमें तू बह जायेगा, इस कारण से मैंने तुम्हें जगाया है। हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार उसने कहा तब तत्काल ही नदी का प्रवाह चलने लगा, तब वह प्रवाह को देखकर मुझे आकाश में ले उड़ी। पर्वत के ऊपर गंगा का प्रवाह चलता था, उस पर मुझको स्थापित किया। सप्तवर्ष पर्यन्त मैं वहां रहा, फिर एक ब्रह्माण्ड में गया, वहां तारा नक्षत्रचक्र, सूर्य कुछ न था, उसको देखकर आगे गया, अनन्त ब्रह्माण्ड देखता फिरता हूं, हे राजन्! ऐसा देश कोई न होगा और ऐसी पृथ्वी कोई न होगी, ऐसे नदी पहाड़ कोई न होंगे, जिनको मैंने न देखा होगा और ऐसी चेष्टा कोई न होगी, जो मैंने न की होगी। शरीर के कई सुख भोगे हैं, कई दुःख भोगे हैं, वन गुप्तस्थान और कंदराएँ मैंने सब देखे हैं, परन्तु अग्नि देवता के वर को पाकर। हे राजन्! फिरता फिरता मैं थक गया तो भी आगे चला जाता था, अनेक अविद्यक ब्रह्मांड मैंने फिर देखे हैं और अन्त अब आया है कि

यह जगत् भ्रममात्र है, और मैंने शास्त्र में सुना है कि यह जगत् है नहीं, यद्यपि है नहीं तो दुःख देता है, जैसे बालक को अपनी परछाईं में बेताल भासता है, ऐसे यह जगत् अविचार से भासता है, विचार करने से निवृत्त हो जाता है। एक और आश्चर्य सुनो। एक ब्रह्माण्ड में मैं गया, वहां महाआकाश था, उस महाकाश से गिरा, पृथ्वी पर आ पड़ा, तब वहां सो गया, महागाढ़ सुषुप्तिरूप हो गया और सब जगत् विस्मृत हुआ, जब गाढ़ सुषुप्ति क्षीण हुई तब एक स्वप्न आया, उस स्वप्न में यह जगत् तुम्हारा मुझको भास आया, उसमें पहाड़ कंदरादेश गुप्त प्रकट स्थान मुझको भास आये, जो सिद्धगम्य स्थान है, वहां भी मैं गया हूं, और जो सिद्धगम्य स्थान नहीं है, वहां भी मैं गया हूं, इस प्रकार यत्न देखे हैं, परन्तु आश्चर्य है कि स्वप्न की सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रत में दृष्टि आती है और स्वप्न के शरीर जाग्रत में दृष्टि आते हैं और स्वप्न के शरीर जाग्रत में पड़े भासते हैं, इसलिये सब जगत् भ्रममात्र है, असत् ही सत् होकर दिखाई देता है, इस प्रकार देखकर मैं आश्चर्य को प्राप्त हुआ हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विपश्चित्कथावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२४३॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४४

महाशववृत्तान्तवर्णनम् ।

विपश्चित ने कहा—हे राजन्! एक सृष्टि में जो मैंने देखी है, वह किस आकाश में है, इस महाकाश में है, जो इस महाकाश से भिन्न नहीं, और वहां तुम्हारी भी पहुंच नहीं, जैसे स्वप्न की सृष्टि कोई जाग्रत में देखना चाहे, तो वह दृष्टि नहीं आती, ऐसे वह सृष्टि है, हे राजन्! पृथ्वी का एक स्थान था, वह मेरे देखते देखते प्रतिछाया की नाईं फुरने लगा, फिर वह आकाश में पहाड़ की नाईं भासने लगा और मनुष्य का शरीर और

दशों दिशाओं को रोक लिया। वह आकाश में भी समाता नहीं, सूर्य चन्द्रमा को मेरे देखते देखते आच्छादित कर लिया, फिर भूकम्प जैसा आया, मानों प्रलयकाल आया है, तब मैंने अपने इष्टदेव अग्नि की ओर देखा और कहा—हे भगवन्! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षा करते आये हो, अब भी मेरी रक्षा करो, मैं नष्ट हो रहा हूं, तब अग्निदेव बोले—तुम भय मत करो, तब मैंने अग्नि में प्रवेश किया, मेरे जीवरूप से अग्नि में प्रवेशकर अग्निदेव ने मुझे कहा—मेरे वाहन पर आरूढ़ होकर मेरे स्थान में चलो, तब मुझे अपने वाहन तोते पर चढ़ाकर आकाश मार्ग से ले उड़े, जब हम उड़े तब पीछे से वह शवत्रितय पृथ्वी पर गिरा, उसके गिरने से सुमेरु जैसे पर्वत पाताल को चले गये, बड़ा भारी शरीर जैसे सैंकड़ों सुमेरु गिरें, ऐसे गिरा और मंदराचल, मलयाचल और अस्ताचल से लेकर जो पर्वत थे, अधः को चले गये और पृथ्वी जर्जर होकर फट गयी, गर्त पड़ गये, उस शरीर के नीचे वृक्ष मनुष्य, दैत्य, स्थावर जंगम, जो आये, सब नष्ट हो गये, बड़ा उपद्रव हुआ, उसके शरीर के साथ सब दिशाएँ पूर्ण हो गयीं और अंग उसके ब्रह्माण्ड से भी पार निकल गये, हे राजन्! जब मैंने इस प्रकार भयानक दशा देखी, तब अपने इष्ट अग्नि को कहा—हे देव! यह उपद्रव क्यों हुआ है और यह सब कौन है, ऐसा बड़ा शरीर आगे तो कोई देखा सुना नहीं, तब अग्नि ने कहा—तुम अब तूष्णीं (चुप) हो जाओ। यह सब वृत्तान्त मैं तुझको कहूंगा, इसको तू शान्त होने दे, एक थोड़ा सा समय ठहर। इस प्रकार अग्नि कहता था कि देवता, विद्याधर, गन्धर्व, सिद्ध, जितने भी स्वर्गवासी थे वे सब आकर मिले और विचार करने लगे, कि यह उपद्रव प्रलयकाल बिना हुआ है, इसका नाश करने के लिये भगवती की आराधना कीजिये। हे राजन्! ऐसा विचार कर वे लोग भगवती की स्तुति करने लगे। हे देवि! शववाहिनि! चंडिके! हम तेरी शरण आये हुए हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। ऐसा कहकर स्तुति करने लगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे महाशव वृत्तान्त वर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२४४।।

पंचचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४५

स्वयं माहात्म्यवृत्तान्तवर्णनम् ।

विपश्चित् ने कहा—हे राजा दशरथ! वह देवता स्तुति करके शव की तरफ देखने लगे कि सप्तद्वीप इसके उदर में समा गये हैं और अंग उसके ब्रह्माण्ड को भी पार कर गये हैं और साथ ही पाताल को गये हैं, उनकी मर्यादा कहीं नहीं पाई जाती, एक अंग ही से पृथ्वी छिप गयी, इस प्रकार देखकर विद्याधर, देवता, गन्धर्व, सिद्ध आदि सब नभचर स्तुति करने लगे, हे अम्ब! चंडिके! अपने गण को साथ लेकर इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो, हम तुम्हारी शरण में आये हैं, हे राजन्! इस प्रकार स्तुति करने पर भगवती अपने गण को साथ लिये आकाश मार्ग से आ गयी। यज्ञ, बेताल, भैरव, आदि गण सब साथ आये, जैसे मेघ दिशाओं को ढंक लेता है, ऐसे सब तरफ से गण आ गये और उन्होंने आकाश को ढंक लिया, जैसे मेघ सब दिशाओं को ढंक लेते हैं, इस प्रकार चारों ओर गण ही गण हो गये। भगवती बड़ा तेजःपूर्ण रूप धारण किये आ रही थी, लाल आंखे थीं, मुख मंडल से तेज बरस रहा था, अनेक प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए थे और कई कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार है, सब दिशाओं से आकाश को शरीर ने ढक लिया है, कंठ में रुण्ड की माला है, शव (मुर्दा) के वाहन पर आरूढ़ है और परमात्मपद में उसकी स्थिति है, और हृदय प्रकाश संयुक्त शरीर है, अपने तेज से भगवती ने सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि के प्रकाश को भी लज्जित किया है, हाथों में खड्ग, मूसल, ध्वजा, ऊखल आदिक नाना प्रकार के शस्त्र धारण किये हैं, जो कि आकाश में तारागण के समान प्रकाशित हो रहे हैं। इस प्रकार, गणों सहित चली आ रही हैं, मानों समुद्र से निकल कर बड़वाग्नि चली आ रही हो। निकट आने पर देवता प्रार्थना करने लगे कि हे अम्ब! इस शव का नाश करो। अपने गणों को आज्ञा दो। इसको खा जाओ, हम इसको

देखकर शोक से व्याकुल हुए हैं, आपकी शरण में हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो, हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार देवताओं ने कहा तब चंडिका ने प्राण वायु को खैंचा, देवी ने इस प्रकार प्राण वायु के खींचने से शव के शरीर में जो रक्त था, उसको पान कर लिया, जैसे अगस्त्य ने समुद्र को पान किया था, इससे देवी का उदर और अंग सब भरकर पूर्ण हो गये, नेत्र लाल हो गये, देवी नृत्य करने लगी, और गण शव को खाने लगे , कई मुख को लग गये, कई उदर को, कई भुजाओं को, कई वक्षस्थल को, कई टांगों को, कई पाओं को खाने लग गये। इस प्रकार सब अंगों को गण खाने लग गये, कई गण आज्ञा लेकर आकाश को गये। सूर्यमंडल में पहुंचे, कई गण अंगों का अन्त पाने के लिये उड़े परन्तु मार्ग में ही मर गये, परन्तु अन्त नहीं पाया। देवी उस शव को देख रही थी, उसके देखने से नेत्रों से अग्नि निकलती थी, उस अग्नि से मांस परिपक्व होता था और गण भोजन करते थे, पकने के समय जो शरीर से कहीं रक्त की बूंद निकले उससे मंदराचल और हिमाचल लाल हो गये, मानों पर्वतों ने लाल वस्त्र पहिने हैं और रक्त की नदियां बही हैं। बड़े सुन्दर स्थान और दिशाएँ लाल हो गयीं और पृथ्वी पर के जीव सब नष्ट हो गये। पहाड़ की कन्दरा में जो देव थे, बच गये, अन्य सब नष्ट हो गये। राम बोले—हे भगवन्! तुम कहते हो उसके नीचे आकर सब प्राणी नष्ट हो गये, और अंग उसके ऐसे कहते हो कि ब्रह्माण्ड को भी लांघ गये, फिर कहते हो देवता बच गये, यह क्या कारण है? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जो इसके शरीर के तथा अंगों के नीचे आये। वे नष्ट हो गये। मुख और ग्रीवा में कुछ भेद नहीं, उसमें जो पोल है, गोदी और टांगों के नीचे जो पोल है सुमेरु, मंदराचल, उदयाचल, अस्ताचल में जो पोल है, वहां बैठे हुए देवता बच गये। अंगों के छिद्रों के जो रहे वे बच गये और कहने लगे बड़ा कष्ट है। हमारे बैठने के कई स्थान नष्ट हो गये हैं, वृक्ष कहां गये और जन समूह कहां गये, बर्फ का पर्वत हमारा कहां गया। इनकी सुन्दरता कहां गई। वन और बगीचे कहां गये? चन्दन के वृक्ष कहां गये, वे ऊँचे वृक्ष कहां गये, कि ब्रह्मलोक पर्यन्त जिनके फूल और

टास जाते थे? वह क्षीर समुद्र कहां गया, जिसके मथने से बड़ा शब्द उदय होता था, उसमे पुत्र जो रत्न कल्पतरु और चन्द्रमा थे, कहां गये, जम्बूद्वीप कहां गया, जिस जम्बू के फल की नदी चलाई थी और स्वर्णवत् जल के चक्र उठते थे, वह नहीं है, कहां गयी और गन्ने के रस का समुद्र कहां गया? हा कष्ट! महाकष्ट आ पड़ा है, खांड के पर्वत, मिशरी के पर्वत, अप्सराओं के विचरने के स्थान कहां गये? पृथ्वी कहां गयी, यह नन्दनवन के स्थान कहां गये, जहां अप्सराओं के साथ विलास करते थे, उन विषयों का अभाव नहीं हुआ, मानों हमको शूल चुभते हैं, हे रामजी! सब शोकवान् हुए और कहने लगे–हा कष्ट! हा कष्ट! इस प्रकार स्मरण करके देवता शोक करते हैं और गण वहां शव का भोजन करते हैं, उसके जितने अंग थे, गणों ने खा लिये और तृप्त हो गये, कुछ मेदा का शेष रह गया और सुगन्ध भी बहुत थी, तब उसका जो पिंड था, पृथ्वीरूप हो गया, इससे इस पृथ्वी का नाम मेदिनी हो गया और मोटे मोटे जो हाड़ होते हैं, उनके सुमेरु आदि पर्वत हो गये, तब ब्रह्माजी ने देखा कि सब विश्व शून्य जैसा हो गया है, इसलिये मैं फिर रचूँ। तब पहिले की तरह सृष्टि को रचा गया, जगत् का सब कर्म व्यवहार चलने लगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२४५॥

षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४६

मशकव्याधवर्णनम् ।

विपश्चित् ने कहा–हे राजन्! जब यह कर्म हो रहा था तब मैंने अपने इष्ट देवता से प्रश्न किया हे देव! सर्व जगत् के ईश्वर और जगत् के भोक्ता! यह सब क्या था और कहां स्थित था, किस प्रकार गिरा है, अग्निदेव बोले–हे राजन्! अनन्त त्रिलोकी जिसका आभास है, उसमें

वृत्तान्त वर्णन होगा, एक त्रिलोकी में इन सबका वृत्तान्त नहीं होता इसलिये सुनो, हे राजन्! एक परम आकाश है, वह चिन्मात्र पुरुष है, सर्वज्ञ है, अनामय है, अनन्त है, वह आत्मतत्व केवल अपने आपमें स्थित है, उसका जो आभास है वह संवेदन फुरना है, वही किंचन होता है, उसके किसी स्थान में फुरता है, तब ऐसी भावना होती है कि मैं तेज अणु हूँ, उस भावना के वश से ऐसा हो जाता है कि जैसे कोई पुरुष सोया है और स्वप्न में अपने आपको मार्ग में चलता देखता है, जैसे तुम स्वप्न में अपने आपको सोये देखते हो, ऐसे चित्संवेदन आपको अणु जानती है, जैसे फुरना ब्रह्मा को हुआ है ऐसे धूर के कनका हुआ है, अधिष्ठान में फुरता तुल्य हुआ है, तब उस अणु को शरीर की भावना होती है, जो अपने साथ शरीर देखता है, शरीर के होने से नेत्रआदि इन्द्रिय घन होते हैं, तब शरीर और इन्द्रियों के साथ अपने आपको मिला हुआ जानता है, अपना आप जानकर उसको ग्रहण करता है, इंन्द्रियों से विषयों को ग्रहण करता है, तब वही चिद्रूप जीव प्रमाद से आधाराधेय भाव को मानता है और अधिष्ठान सत्ता में कुछ हुआ नहीं, अद्वैत सत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है, जैसे स्वप्न में प्रमाद से अपने आपको किसी घर में बैठे देखता है, ऐसे यहां प्रमाद से आधाराधेय भाव को देखता है, प्राण मन और अहंकार को धारण करता है और जानता है, मेरे माता पिता हैं और मैं अनादिका जीव हूं, अपना शरीर जानकर अपने पांचभौतिक शरीर को देखता है, अपने फुरने के अनुसार हे अंग! इसी प्रकार जो आदि शुद्ध चिन्मात्र तत्व में फुरना हुआ है तब चित्तकला फुरी इसने अपने आपको तेज अणु जाना उसमें अहं वृत्ति से अहंकार हुआ और निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैत्यता रूप चित्त हुआ, संकल्प विकल्प रूप मन हुआ, यह उत्पत्ति होने पर तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई, उनकी इच्छा से शरीर इन्द्रिय उत्पन्न हुए फिर उन इन्द्रियों के वश से देखने की इच्छा हुई, उस संवित् काल में तब आगे दृश्य भासने लगा, तब संवित् शक्ति ने प्रमाद दोष से अपने आपको दैत्य जाना, कि मैं दैत्य हूं,और उसके साथ

ही अपने माता पिता फुर आये, कि यह मेरी माता है यह पिता है, यह कुल है, यह चिरकालीन है, इस प्रकार एक दैत्य अहंकार सहित विचरने लगा, तब एक कुटी में एक ऋषि बैठा था, उस कुटी की ओर दैत्य गया, वह किस लिये गया कि उसकी कुटी को चूर्ण करने लगा, जब ऋषि निकट गया तब ऋषि ने कहा, अरे दुष्ट! तुमने क्या चेष्टा ग्रहण की है, अब तू मर जायेगा और मच्छर होगा हे विपश्चित्! उस ऋषि की शापाग्नि से उसका शरीर भस्म हो गया तब उसकी निराकार चेतन संवित् भूताकाश रूप हो गयी, तब आकाश में उसका वायु के साथ संयोग हुआ, तब उस ऋषि मौनीके के शाप की वासना उदय हुई, जैसे पृथ्वी में समय पाकर बीज सें अंकुर उत्पन्न होता है, ऐसे पंचतन्मात्रायें उदय हुईं और अपना मच्छर का शरीर भास आया अज्ञान से मच्छर हुआ, जैसे जिस मच्छर की दो अथवा तीन दिन आयु होती है, उसका शरीर पाया, राम बोले–हे भगवन्! जीव जो जन्म पाते हैं वह जन्म जन्मान्तर से चले आते हैं अथवा ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं, यह कहने की कृपा कीजिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! कई जन्म जन्मान्तर से चले आते हैं और कई ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं, जिनको पूर्व वासना का संसरन होता है वह वासना के अनुसार शरीर को धारण करते हैं, वे जन्म जन्मान्तर से चले आते हैं और कई ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं, हे रामजी! आदि सब जीव संस्कार रूप जो कारण है, उसके बिना उत्पन्न हुए हैं,और पीछे से इनको जन्मान्तर होता है, जिसको संस्कार बिना भूत भासे उसे जानिये ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ है,और जिसको संस्कार से सृष्टि भासे उसे जानिये इसके जन्मान्तर हैं, जो यह जो प्रकार से भूतों की उत्पत्ति मैंने तुमको कही हैं, अब फिर उस मच्छर का क्रम सुनो, हे रामजी! जब यह मच्छर के जन्म को प्राप्त हुआ, तब कमलनियां और हरे घास तृण पत्रों में मच्छर को साथ लिये रहे, वहां एक मृग आया, जैसे किसी के ऊपर सुमेरु पर्वत आ पड़े, तब वह मच्छर चूर्ण हुआ, अर्थात् मर गया मरते समय उसने मृग की ओर देखा, उसके देखने से उसका शरीर मृग हो गया, तब वह मरकर

तत्काल ही मृग हुआ और वन में विचरने लगा, एक समय उसको वधिक ने देखा और बाण मारा, बाण से विंधा हुआ, वधिक की ओर देखने लगा, उसकी ओर देखने से वह मरकर वधिक हुआ, तब धनुषबाण लेकर मृगों तथा पक्षियों को मारता फिरने लगा, एक समय फिर वन में गया, तब उसने एक मुनीश्वर को देखा, उनके पास जा बैठा, मुनि महाराज ने कहा अरे भाई! इतना पाप क्यों करता है नरक प्राप्ति होगी, इसलिये किसी जीव को दुःख न दो, जिन भोगों के पीछे पडे हो वह भोग तो बिजली के चमत्कार तुल्य क्षण स्थायी हैं जैसे मेघ में बिजली का प्रकाश होता है, तत्क्षण मिट जाता है, ऐसे ही भोग होकर मिट जाते हैं, जैसे कमल के पत्र पर जल की बूँद ठहरती है, उसकी आयु कुछ नहीं क्षण भर में गिर पड़ती है, ऐसे ही इस शरीर की आयु कुछ नहीं, जैसे अंजली में जल नहीं ठहरता, चला जाता है, इसी प्रकार यौवन अवस्था चली जाती है। क्षणभंगुर है असार है, उसमें भोगसुख क्या हैं, इनसे शांति कदाचित् नहीं होती, यदि तुझको शान्ति की इच्छा है तो निर्वाण का प्रश्न कर, तब दुःख से मुक्त होगा, अपने इस हिंसाकर्म को त्याग दो नहीं तो इसके करने से नरक की प्राप्ति होगी, कदाचित् शान्ति न मिलेगी। अपने हाथों से अपने पाओं पर कुल्हाड़ा क्यों मारता है, अपने नाश के लिये विष वृक्ष क्यों लगाता है, इस कर्म से तू दुःखमय संसार में भटकता फिरेगा, शान्त कभी न होगा, इसलिये वह उपाय करो जिससे संसार समुद्र से पार हो जाऊं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे मशकव्याधवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२४६॥

सप्तचत्वरिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४७

हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनम् ।

अग्निदेव बोले–हे राजन्! जब इस प्रकार ऋषीश्वर ने उस बधिक को कहा तब वधिक ने धनुष और बाण डाल दिया और बोला–हे भगवन्! जिस प्रकार संसार समुद्र से पार हो जाऊं, वह उपाय कृपा करके मुझे कहिये, परन्तु कैसे हो, जो न दुःसाध्य हो, न मृदु हो, अर्थात् जो हो तो पूरा उपाय परन्तु करने में अति कठिन न हो, सुगम हो। ऋषिवर बोले–हे बधिक! मन को एकाग्र करना, इसका नाम शम है और इन्द्रियों को रोकना इसका नाम दम है, वही मौन है, मन को एकाग्र करने और शम दम से अन्तःकरण शुद्ध होता है,और शुद्ध अन्तःकरण में आत्मज्ञान उत्पन्न होता है, उस आत्मज्ञान से संसार भ्रम निवृत्त हो जाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है, अग्निदेव बोले–हे राजन्! जब इस प्रकार ऋषीश्वर ने कहा, तब वह बधिक उठ खड़ा हुआ और प्रणाम करके जाकर तप करने लगा। इन्द्रियों को संयम में रखकर यथा प्राप्त पर संतोष करके अन्दर से सब क्रियाओं में मौन व्रत अर्थात् अनासक्ति धारण करके वह तप करने लगा। इस प्रकार तप करते उसको पर्याप्त समय बीत गया, तब उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ, ऋषीश्वर के निकट जाकर प्रणाम करके बैठ गया और कहने लगा–हे भगवन्! बाहर का दृश्य अन्तःप्रवेश कैसे करता है और स्वप्न में जो सृष्टि भासती है, वह अन्दर की बाह्यरूप हो भासती है, वह कैसे भासती है, यह कृपा करके कहिये, ऋषिवर बोले–हे वधिक! यह बड़ा गूढ़ प्रश्न तुमने किया है, यही प्रश्न पहले मैंने भी संदेह युक्त होकर गणपतिजी से किया था, तब जो कुछ उनके कहने से मैंने ग्रहण किया, उसे सुनिये। हे बधिक! एक समय इसी संदेह के दूर करने का उपाय मैंने किया था, पद्मासन बांधकर बाह्य इन्द्रियों को रोका। रोककर मन से युक्त किया। मन, बुद्धि आदिक को

पुर्यष्टका में स्थित किया, स्थित करके पुर्यष्टका को शरीर से विरक्त किया और आकाश में उसको निराधार ठहराया। जब विलक्षण हुआ, चाहे तब विलक्षण हो जाय और जब शरीर में व्याप्त होना चाहे, व्याप्त हो जाय, हे बधिक! इस प्रकार जब मैं योग धारण से पूर्ण हुआ, तब एक काल में एक पुरुष हमारी कुटी के पास सोया था, उसके श्वास अन्दर बाहिर आते जाते थे। उसको देखकर मैंने यह इच्छा व्यक्त की कि इसके अन्दर जाकर कौतुक देखें कि अन्दर क्या अवस्था होती है, ऐसा विचार कर मैंने पद्मासन बांध और योग की धारणा से उसके श्वास मार्गसे मैंने अन्दर प्रवेश किया, जैसे ऊष्ट्र ऊँघता हो और उसके श्वास मार्ग से सर्प जाकर प्रवेश करे, ऐसे मैंने जाकर प्रवेश किया, उसके अनन्तर अपने अपने रस को ग्रहण करने वाली नाड़ियां मुझको दिखाई दीं। कई वीर्य को ग्रहण करने वाली हैं, कई रक्त को, कई कफ को ग्रहण करती हैं, कई मलमूत्र वाली हैं, वे सब मैंने देखीं और अनेक विकार जो उसके अन्दर थे, सब देखे, देखकर मैं अप्रसन्न हुआ, महासकंल्प रूप स्थान है, रक्तमज्जा से युक्त अंधकार महानर के तुल्य जीव का गर्भवास है, फिर आगे गया, वहां एक कमल देखा, उस हृदय कमल में उनकी संवेदन फुरती देखी। उस संवेदन फुरने में जो कुछ मैंने देखा वह सुनिये। वह संवेदन कैसी है, जो महान् तेजोवती संवित् शक्ति है, हृदयाकाश वहां वह स्थित है, कैसी स्थित है, त्रिलोकी का आदर्श है, त्रिलोकी में जो पदार्थ हैं, उनका दीपक है और सर्व पदार्थ सत्तारूप है, ऐसी जो संवित् रूप जीव सत्ता है, वहां स्थित है, उस सत्ता के साथ में तद्रूपता को प्राप्त हुआ, वहां उसके अन्दर मैंने देखा है, उसे सुनिये। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, देवता और गन्धर्व, इनसे लेकर जो नाना प्रकार का जगत् है, स्थावर जंगम सब विश्व को मैंने देखा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सहित सम्पूर्ण सृष्टि को देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ, उसके अन्दर सृष्टि क्यों भासी? उसे सुनिये। हे बधिक! जाग्रत में उस सृष्टि को इन्द्रियों से अनुभव किया था और अन्दर चित्तत्व में उसका संस्कार हुआ

था, वही अन्दर भास भासने लगा और अन्दर जो भूत सत्ता थी, वह उसके स्वप्न में यह सृष्टिरूप बाह्य बनी और मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी, जैसे जाग्रत प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, ऐसे यह सृष्टि मुझको भासने लगी। हे बधिक! इस जाग्रत सृष्टि और उस सृष्टि में भेद कुछ न देखा, दोनों तुल्य हैं, चिर पर्यन्त प्रतीति का नाम जाग्रत है और अल्पकाल की प्रतीति का नाम स्वप्न है, स्वरूप से दोनों तुल्य हैं, जो उसके स्वप्न के अनुभव में था, वह मुझको जाग्रत भासा और जो मुझको जाग्रत भासा, वह उसे स्वप्न भासा। निद्रा दोष से उसको स्वप्न हुआ, उसे भी उस कालमें जाग्रतरूप भासने लगा, क्योंकि स्वप्नरूप है, वह जाग्रत में स्वप्न है, स्वप्न में जाग्रत है, ऐसे जाग्रत भी अपने काल में जाग्रत नहीं तो स्वप्न रूप है, जाग्रत में भी जो सत्य प्रतीति है, वही प्रमाद है, इन दोनों में भेद कुछ नहीं, क्योंकि जाग्रत् और स्वप्न का अधिष्ठान चेतन सत्ता परब्रह्म है, उसके प्रमाद से इसका प्राण के साथ सम्बन्ध हुआ है। जब प्राणों के साथ चित्त संवेदन मिली तब उस फुरने रूप के इतने नाम हुए, उसका नाम जीव हुआ। मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदिक सब उसके नाम हैं, वही संवेदन जो बाह्यरूप होकर फुरती है, तब जाग्रतरूप जगत् हो भासती है, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, चतुष्टय अन्तःकरण यह चौदह इन्द्रिय अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं। इसका नाम जाग्रत है। जब चित्त स्पन्द निद्रा दोष करके अन्तर्मुख फुरता है, तब नाना प्रकार की स्वप्न सृष्टि देखता है, निद्रादोष से उस काल में ही जाग्रतरूप हो भासता है, अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है, जब संवेदन उसकी ओर फुरती है, बाह्य विषय के फुरने से रहित अफुरण होती है, तब न जाग्रत भासती है, न स्वप्न भासता है, केवल आत्मसत्ता निर्विकल्प शेष करती है, हे बधिक! मैंने विचारकर देखा कि जगत् अपर कुछ वस्तु नहीं, फुरने का नाम है, जब चित्त संवेदन स्फुरण रूप होती है, तब जगत् भासता है और जब चित्त संवेदन फुरने से रहित होती है तब जगत् की कल्पना मिट जाती है, इसलिये मैंने निश्चय किया है कि वास्तव में केवल चिन्मात्र है, जगत् कुछ

वस्तु नहीं, मिथ्या कल्पना मात्र है, हे बधिक! जगत् भावना त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो, अब वही वृत्तान्त फिर सुन। जब उसके अन्तर स्वप्न जाग्रत् अवस्था देखी, तब मैंने यह इच्छा की सुषुप्ति अवस्था भी देखूं और विचार किया कि सुषुप्ति नाम है प्रलय का, जहां द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों का अभाव हो जाता है, परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ, वहां महाप्रलय कैसे होगी और यदि मैं जाननेवाला न होऊं, तब सुषुप्ति के कौन जानेगा? हे बधिक! तब मैंने विचार कर देखा कि अपर सुषुप्ति कोई नहीं, जहां चित्त की वृत्ति फुरती नहीं, उसी का नाम सुषुप्ति है, ऐसा विचार कर चित्त को फुरने से रहित किया तब सुषुप्ति उसकी देखी, वहां क्या देखा, वह सुनो। न कोई वहां अहं त्वं शब्द है, न शुभ है, न अशुभ है, न जाग्रत स्वप्न है, न सुषुप्ति की कल्पना है, सर्व कल्पना से रहित चित्त सत्ता को मैंने देखा और जो तुम कहो, सुषुप्ति निर्विकल्प तुमने कैसी देखी, इसका उत्तर यह है कि हे बधिक! अनुभव ज्ञान रूप आत्मसत्ता सर्वदा हर समय ज्यों की त्यों है, उसमें जैसा आभास फुरता है, ऐसा ज्ञान होता है, यह जो तुम भी प्रतिदिन देखते हो, सुषुप्ति से उठकर जानते हो कि मैं सुख से सोया था, अनुभव करके देख, ऐसे मैंने भी उसे देखा, यहां चित्त संकल्प कोई नहीं फुरता, निर्विकल्प है, परन्तु कैसा निर्विकल्प है, जो सम्यक् बोध से रहित है, इस अभाव वृत्ति का नाम सुषुप्ति है, फिर मुझे तुर्या देखने की इच्छा हुई, वह तुर्या देखनी महाकठिन है, तुरीया नाम है साक्षी भूत वृत्ति का, वह सम्यक् ज्ञान से उत्पन्न होती है, वह जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति अवस्था की साक्षी भूत अवस्था है और सुषुप्ति की नाईं है, जैसे सुषुप्ति में अहं त्वं आदिक कल्पना कोई नहीं, ऐसे तुरीया में भी नहीं, ब्रह्म का सम्यक् बोध होता है और सुषुप्ति जड़ी भूत तम रूप अविद्या होती है। तुरया में जड़ता नहीं होती, सुषुप्ति और तुरीया में इतना ही भेद होता है, सच्चिदानन्द साक्षी वृत्ति होती है, सम्यक् बोध का नाम तुरीया पद है, अन्य तुरीया पद इससे भिन्न कोई नहीं, ऐसा निश्चय करके मैंने उस को देखा, हे बधिक! चारों अवस्थाएँ

मैंने भिन्न भिन्न देखीं और माया जो है, फुरना उसके सहित मैंने देखा, आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, उसमें न कोई जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, न तुरीया है, इनका भेद वहां कहीं भी नहीं, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है और यह चारों चित्त संवेदन में होती हैं, हे बधिक! ऐसा अनुभव करके बाहर आया, बाहिर भी मुझको भासने लगा, तब मैंने कहा—यही जगत् मुझको उससे अन्तर भासा था, बाहिर कैसे आया, तब मैंने फिर उसके अन्दर प्रवेश किया, पहिले जो उसके अंदर प्रवेश किया था और उसके अन्दर सृष्टि देखी थी, तब उसकी संवेदन और मेरी संवेदन मिल गयी थी, जब मैंने अपनी संवेदन उससे भिन्न की, तब ब्रह्माण्ड भासने लगा। एक उसकी संवेदन फुरने की और एक मेरी संवेदन में भासने लगा, क्योंकि प्रथम उसकी सृष्टि को देखकर मैंने अर्थरूप ज्ञान ग्रहण किया, उसका संस्कार हो गया, आत्मसत्ता के आश्रय जैसे संवेदन फुरती गयी, ऐसे होकर भासने लगा, उसका स्वप्न मुझको जाग्रत हो भासने लगा, जैसे एक दर्पण में दो प्रतिबिंब भासें, ऐसे एक अनुभव में दो सृष्टियां भासने लगीं, तब मैंने विचार किया कि सृष्टि संकल्परूप है, संकल्प जीव का अपना अपना है और संकल्प की भिन्न भिन्न सृष्टि है, और अनुभव के आश्रय जैसा जैसा संकल्प फुरता है, वैसी सृष्टि भासती है, सृष्टि का कारण और कोई नहीं, हे बधिक! अष्ट निमेष पर्यन्त तुझको दो सृष्टियां भासती रहीं, फिर मैंने उसके चित्त की वृत्ति और अपने चित्त की वृत्ति इकट्ठी करके मिलाई, तब दोनों तद्रूप हो गये, जैसे जल और दूध मिलकर एकरूप हो जाता है, ऐसे दोनों चित्त मिलकर एक हो गये, तब दूसरी सृष्टि का अभाव हो गया, जैसे भ्रम दृष्टि से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं, भ्रम निवृत्त हो जाने पर दूसरे चन्द्रमा का अभाव हो जाता है, ऐसेही द्वितीया वृत्ति के अभाव हुए दूसरी सृष्टि का अभाव हो गया। एक इसी की सृष्टि भासने लगती है। नाना प्रकार के व्यवहार होते दृष्टि आते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासने लगे, कितने समय के बाद उसके चित्त की वृत्ति सुषुप्ति की ओर

आयी। स्वप्न सृष्टि का विस्तार लीन होने लगा, जैसे संध्या के समय सूर्य की किरणें सूर्य में लय हो जाती हैं, जब सृष्टि चित्त में लय होने लगी, तब स्वप्न में मिट गयी, सुषुप्ति अवस्था हुई, सब इन्द्रिय स्थिर हो गये। हे वधिक! सुषुप्ति तब होती है, जब अन्न खाता है, तब वह समवाही नाड़ी के ऊपर आकर स्थित होता है, तब जाग्रत वाली ठहर जाती है, उससे प्राण भी ठहर जाते हैं, मन भी ठहर जाता है, उसका नाम सुषुप्ति होता है, जब मन फिर फुरता है, तब जाग्रत होता है, राम बोले—हे मुनीश्वर! जब मन प्राणों ही से चलता है, तब मन का अपना रूप तो कहीं न हुआ, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! परमार्थ से कहा जाये तो देह भी नहीं, फिर मन क्या है? जैसे स्वप्न में पहाड़ भासते हैं, ऐसे यह शरीर भासता है, क्योंकि सबका आदि कारण कोई नहीं, इसलिये जगत् मिथ्या भ्रम है, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, जो तत्ववेत्ता हैं, उनको तो ऐसा भासता है और अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते, जैसे सूर्य उलूक के अनुभव को नहीं जानता और उलूक सूर्य के निश्चय को नहीं जानता, ऐसे ज्ञानी अज्ञानी का निश्चय भिन्न होता है और शुद्ध चिन्मात्र आकाश में जगत् भ्रम कोई नहीं, स्फुरण भाव से अपने चेतन वपु को बिना ज्ञान ही मनोभाव को प्राप्त होता है, तब मन आत्मसत्ता के आश्रय होकर प्राणवायु को अपना आश्रयभूत कल्पना करता है कि मेरा प्राण है, हे रामजी! मन जैसी जैसी कल्पना करता है, ऐसे ऐसे देह इन्द्रिय जगत् भासते हैं, परब्रह्म, सर्वशक्ति सम्पन्न है, उसमें जैसी जैसी भावना से मन फुरता है, ऐसा रूप हो भासता है, वास्तव से अपर कुछ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, मन का फुरना, जैसे जैसे दृढ़ होता है, ऐसे ऐसे देह इन्द्रिय जगत् भासने लगता है, जैसे स्वप्न में कल्पना मात्र जगत् भासता है, ऐसे ही इसे भी जान लो, हे रामजी! जितने विकल्प उठते हैं, सब मन के रचे हुए हैं, जब मन उदय होता है, तब यह फुरना होता है कि यह पदार्थ सत्य है, यह असत्य है, जब चित्त शक्ति का मन के साथ सम्बन्ध होता है, तब पहिले प्राण उदय होते हैं, प्राणों को ग्रहण

करके मन कहाता है। मैं जीव हूं, प्राण ही मेरी गति है, प्राणों के बिना मैं कहां था और फिर कहता है, जब प्राणों का वियोग होगा, तब मैं मर जाऊंगा, फिर न रहूंगा, फिर ऐसा कहता है, मरा हुआ भी मैं जिऊंगा। हे रामजी! जब तक चाहिये तब तक यह तीन कल्प उठते हैं, संशय वाले को न इस लोक में सुख है, न परलोक में, जब तक आत्मबोध का साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक चित्त निर्वाण नहीं होता और तीन विकल्प भी नहीं मिटते, हे रामजी! मन के मरने का उपाय, आत्मज्ञान से इतर कोई नहीं, और मन के शान्त हुए बिना कल्याण नहीं, दोनों उपायों से मन शान्त होता है। मन की वृत्ति स्थित करनी और प्राणस्पन्द को रोकना, जब मन स्थिर होता है, तब प्राण रोका जाता है और प्राणस्पन्द रोकने से मन स्थिर हो जाता है। जब प्राण क्षुब्ध होते हैं, तब मन भी क्षुब्ध होता है, तब आध्यात्मिक आधिभौतिक ताप से अग्नि जलता है और मन के स्थिर करने से परम सुख प्राप्त होता है, मन की स्थित दो प्रकार की है, एक ज्ञान की स्थित है और एक अज्ञान की स्थिति होती है, जब प्राण बहुत अन्न खाते हैं, तब नाड़ीके ऊपर जाकर अन्न स्थित होता है,और प्राण ठहर जाते हैं। जब प्राण ठहरें तब मन भी जड़ीभूत हो जाता है, उसका नाम सुषुप्ति है। वह नाड़ी कौन है, जिसके ऊपर जानकर अन्न स्थित होता है, वह नाड़ी वही है जिसके मार्ग से जाग्रत में प्राण निकलते हैं, वासना सहित वही नाड़ी जब रोकी जाती है तब मन सुषुप्त हो जाता है। यह अज्ञानी के मन की स्थिति है, जैसे पृथ्वी में बीज समय पाकर अंकुर ले आता है, ऐसे वह संस्कार से पुनः सुषुप्ति से उठता है और जो ज्ञानवान् सम्यग्दर्शी हैं, उनका चित्त चेतना के लिये स्थित होता है, वह चेतनता दो प्रकार की है, एक योगी की चेतनता है, जिस समाधि से मन को स्थित किया है, वह समाधिनिष्ट चित्त है, वह जड़ता नहीं, जैसे सुषुप्ति में जड़ता होती है, ऐसे जड़ता नहीं और ज्ञानवान् जीवन्मुक्त की सम्यक् ज्ञान से चित्त की वृत्ति स्थित है, उनका चित्त वासना से रहित स्थित है, जिसका चित्त इस प्रकार स्थित है, उस पुरुष

को शान्ति है और जिसका चित्त वासना सहित है, उसको शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती और दुःख भी नहीं मिटते। निर्वासनिक चित्त करने के लिये सम्यक् ज्ञान का कारण यह मेरा शास्त्र है, इसके समान अपर कोई नहीं, हे रामजी! यह जो मोक्ष उपाय शास्त्र मैंने कहा है, इसके विचार से शीघ्र ही स्वरूप की प्राप्ति होगी, इसलिये सर्वदा इसका विचार कर्तव्य है, जब इसको भले प्रकार विचारेगा, तब चित्त निर्वासनिक हो जायगा, अब वही प्रसंग बधिक को कहा जाता है। हे बधिक! जब मैंने उस पुरुष के चित्त में प्राण के मार्ग से प्रवेश किया, तब क्या देखता हूं कि उसके प्राण रोके गये हैं, अन्न से जाग्रत नाड़ी जो फुरती थी, वह रोकी गयी है, क्योंकि जो अन्न पचा नहीं, इस कारण से वह सुषुप्ति में है, उसकी सुषुप्ति में मुझको भी अपना आप विस्मरण हो गया, जब कुछ अन्न पचा तब उसके प्राण फुरने लगे, जब प्राण फुरे तब चित्त की वृत्ति ने भी कुछ जड़ता त्यागी। संपूर्ण जड़ता का त्याग नहीं किया, परन्तु कुछ अल्पत्याग तो किया, तब फुरने से चन्द्रमा सूर्य आदिक जो विश्व है, वह फुर आया, तब मैंने नाना प्रकार के जगत् को देखा, मुझे अपना पूर्व संस्कार भूल गया, वहां मैं भी अपने कुटुम्ब में रहने लगा, साथ ही मुझे अपनी कुटी भासी और स्त्री, पुत्र, भाई, जन, बान्धव सब भास आये, तब मेरे देखते देखते पुष्कर मेघ गर्जने लगे और मूसलाधार वर्षा होने लगी। सातों समुद्र उछले, और भी प्रलयकाल के जो उपद्रव होते हैं, उदय हुए, पहिले तो आग लगी, जब आग से सब स्थान जल रहे थे, तब जल उपद्रव उदय हुआ, तब क्या देखता हूं कि नगर, ग्राम, मनुष्य पक्षी सब बहते जाते हैं और हाहाकार मचा रहे हैं। महान् क्षोभ हुआ है, तब एक आश्चर्य मैंने देखा कि मेरी कुटी भी बहती है। स्त्री, पुत्र, भाई, जन इत्यादिक सब मैंने वहां देखे कि वे सब जल के प्रवाह में बहते जाते हैं, और जिस स्थान में थे, वह स्थान भी बहता जाता है, और मैं लुढ़कता जाता हूं, बहते बहते मुझको ऐसा कष्ट मिला कि कहा नहीं जा सकता, एक तरंग के साथ ऊपर चला जाता और दूसरे तरंग से नीचे को चला

जाता था। जब पूर्व शरीर मुझको स्मरण आया तब जितना जगत् है मुझे सब भासने लगा, मिथ्या राग द्वैष सब मिट गया और शरीर की चेष्टा सब ऐसी होती थी कि तरंग के साथ कभी नीचे आ पड़ा हूं, कभी ऊपर चला गया हूं, परन्तु मेरा अन्तःकरण शान्त हो गया। उस समय नगर देश मंडल सब बहते जाते थे। त्रिनेत्र सदाशिव बहते जाते थे। विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध आदिकों से लेकर और भी बहते जाते थे। अष्टदल कमल की पंखड़ी पर बैठे ब्रह्माजी बहते जाते थे। इन्द्र कुबेर अपनी पुरियों सहित बहते जाते, विष्णुजी अपनी वैकुंठपुरी सहित बहते जाते थे। बड़े बड़े पर्वत द्वीप लोकपाल और पातालवासी सब प्रलय के जल में बहते जाते थे। यम भी अपने वाहन सहित बहते जाते थे। किसी को कोई निकाल सके, ऐसा सामर्थ्य किसी में नहीं। बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् देवता इसी प्रकार गोते खाते और बहते जाते हैं, वहां जो मनुष्य संसार सुख के लिये यत्न करते हैं, वे महामूर्ख हैं और जिनके निमित्त यत्न करते हैं, वे सुख भी और सुख देनेवाले भी बहते जाते हैं, ऐसे सप्तऋषीश्वर बहते जाते हैं, हे बधिक! इस प्रकार महाप्रलय होती थी, उसके स्वप्न में मैंने देखा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२४७॥

अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः २४८

हृदयान्तरप्रलयाग्निदाहवर्णनम् ।

बधिक बोला—हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमने कही, जिसमें ब्रह्मादिक भी बहते जायँ, वह ब्रह्मा, विष्णु रुद्रादिक तो स्वतन्त्र हैं, ईश्वर हैं, यह परतंत्र हुए बहते तुमने कैसे देखे, अन्तर्ध्यान क्यों न हुए? मुनिवर बोले—हे बधिक! यह जो प्रलय हुई है, वह एक क्रम से नहीं हुई, जब क्रम से हो तब यह ईश्वर समाधि से शरीर को अन्तर्ध्यान कर लेते हैं, परन्तु

अन्तर्ध्यान होने का जल चढ़ जाता है, उनका कुछ नियम नहीं, क्योंकि यह जगत् भ्रमरूप है, इसमें क्या आस्था करनी है,और स्वप्न में क्या नहीं बनता? सभी बन जाता है। स्वप्न भ्रान्ति से विपर्यय भी होते हैं, इसके लिये उनको बहते देखा है, व्याध बोला–हे मुनिवर! जब वह स्वप्न भ्रम था, तो उसका क्या वर्णन करना, मुनिवर बोले–हे बधिक! समानता के लिये तुझे यह कहता हूं, सुन। स्थावर जंगम जगत् बहता देखा, साथ ही मैं बहता जाता था,और जल तरंग उछलते थे, उन तरंगों में मैं उछलता था, परन्तु मुझको कष्ट कुछ न होता था, तब मैं बहता बहता एक किनारे जा लगा, उसके पास एक पर्वत था, उसकी कंदरा में जाकर स्थित हुआ, वहां देखने लगा कि जीव बहते हैं और जल भी सूखता जाता है, तब जल के सूखने से कीच हो गया। किसी स्थान पर पानी रहा, उसमें कई डूबते दृष्टि आये, ब्रह्मा के हंस दृष्टि आते थे, कहीं यम के वाहन, कहीं विष्णु के वाहन गरुड़ दृष्टि आते। कीचड़ में पहाड़ के समान डूबे दृष्टि आते, कहीं इन्द्र के हस्ती, कहीं विद्याधर दृष्टि आते, अन्य भी कई वाहन कीच में डूबते दृष्टि आते थे। देवता, सिद्ध, गन्धर्व लोकपाल दृष्टि आये, देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ, हे बधिक! इस प्रकार देखता हुआ मैं पहाड़ की कंदरा में सो गया, तब मुझको अपनी संवित् में स्वप्न आया, उस स्वप्न में मुझको चन्द्रमा, सूर्य आदि नाना प्रकार भूत जलते दृष्टि आये। नगर पत्तन जल रहे हैं, जगत् बड़े खेद को प्राप्त हुआ है, तब वहां रात हो गयी। वहां सोये हुए मैंने और स्वप्न देखा। दूसरे दिन मैंने उसमें फिर जगत् को देखा। सूर्य, चन्द्रमा, देश, पत्तन, नदियां, समुद्र, मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, नाना प्रकार की क्रियाओं समेत दृष्टि आने लगे, और मैंने अपना सोलह वर्ष का शरीर देखा। अपने माता–पिता मुझे दृष्टि आये। उनको मैंने माता पिता जान लिया और उन्होंने मुझको अपना पुत्र जाना। स्त्री, कुटुम्ब समस्त मुझको दृष्टि आने लगे, वह मैं कैसा था? बोध से रहित और तृष्णा सहित अहं मम का अभिमान आकर फुरा, एक ग्राम में मेरा घर था, उसमें हम सबने कुटी बनाई। उसके चारों ओर बूटे

लगाये, वहां मैंने एक आसन बनाया, वहां कमंडलु और माला पड़ी रहती थी। मैं ब्राह्मण था, मुझे धन की इच्छा हुई, जो कुछ ब्राह्मण का आचार चेष्टा है, वह मैं करता था। बाहर जाकर ईंटें और काष्ठ ले आता था और आकर कुटी बनाता था, यही चेष्टा हमारी होने लगी। शिष्य, सेवक हमारी पूजा करते थे। मैं यथायोग्य उनको आशीर्वाद देता था। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में मैं चेष्टा करता था, मुझको यह विचार उत्पन्न होता था कि यह कर्तव्य है, इसके करने से भला होता है। नदियों और तालों में स्नान्द करता था, गौओं की सेवा और आए अतिथियों का स्वागत सत्कार करता था, हे बधिक! इस प्रकार चेष्टा करते मुझे सौ वर्ष बीत गया, तब एक समय मेरे घर में एक मुनिवर आये। मैंने उनको पहिले स्नान कराया। तदनन्तर भोजन से उनको तृप्त किया और रात को शय्या पर शयन कराया। इस प्रकार उनकी सेवा की। रात को बातचीत करने लगे, उसमें मुझको उसने बड़े पर्वत कन्दरा और सुन्दर देश स्थान चित्त के मोहने हारे सुनाये और नाना प्रकार के स्वाद सुनाये और कहने लगा कि हे ब्राह्मण! जितने सुन्दर स्थान और संवाद तुझको सुनाये हैं, उनमें सार चिन्मात्ररूपं है, इसलिये सब चिन्मात्र स्वरूप है, सब जगत् उसका चमत्कार है, आभास किंचन है, उससे इतर कुछ वस्तु नहीं, इसलिये हे ब्राह्मण! उसी सत्ता को ग्रहण कर, जो सत्ता सबका अनुभवरूप है, और परमानन्द स्वरूप हैं, उसमें स्थित हो जाओ, हे बधिक! जब इस प्रकार उस मुनीश्वर ने मुझे कहा तब आगे जो मेरा मन योग से निर्मल था, इसलिये उसके वचन मेरे चित्त में चुभ गये। अपनी स्वभाव सत्ता में मैं ज़ग उठा, तब क्या देखता हूं कि सब मेरा ही संकल्प मुझसे भिन्न कोई नहीं, मैं तो मुनीश्वर हूं, यह स्वप्न आया था, मैं जगकर देखता हूं कि उसी पुरुष का स्वप्न था, तब मेरे चित्त में आई कि किसी प्रकार इसके चित्त से बाहिर निकलूं और अपने शरीर में जा प्रवेश करूं, तब फिर विचार किया कि यह जगत् तो उस पुरुष का वपु है, वही पुरुष विराट् है, जिसके स्वप्नं में यह जगत् है परन्तु उस पुरुष को अपने विराट्

स्वरूप का प्रमाद है, इसलिये जैसा वपु हमारा बना है, उसके स्वप्न में वह भी ऐसा, एक विराट् से इतर बन पड़ा है, फिर उस विराट् को कैसे जाना जाये जो उसके चित्त से निकल जायँ, हे बधिक! इस प्रकार विचार करो, कि मैंने पद्मासन बांधा और योग की धारणा की। उस विराट् स्वरूप के शरीर को देखने लगा, देखकर जहां चित्त की वृत्ति फुरती थी, उसके साथ मिला, प्राण के मार्ग से निकल कर अपनी कुटी को देखा, फिर मैंने उसमें अपने शरीर को पद्मासन में देखा, उसमें प्रविष्ट होकर नेत्र खोले, तब अपने सामने शिष्य बैठे देखे और वह पुरुष सोया था, उसको देखते एक मुहूर्त व्यतीत हुआ, तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि भ्रम में क्या चेष्टा देखने में आती है, यहां एक मुहूर्त व्यतीत हुआ है, और वहां मैंने सौ वर्ष का अनुभव किया है, बड़ा आश्चर्य है कि भ्रम से क्या नहीं होता? फिर मेरे मन में यह बात आई कि उसके चित्त में प्रवेश करके कुछ और कौतुक भी देखूं, तब फिर प्राण के मार्ग से उसके चित्त में प्रवेश किया, तब क्या देखता हूं कि अगला कल्प बीत गया है, और बांधव, बेटे, स्त्री, माता, पिता आदि नष्ट हो गये हैं और दूसरा कल्प हुआ है, उसकी भी प्रलय होती है, बाहिर सूर्य उदय हुए हैं, विश्व को भस्म करने लगे हैं और बड़वाग्नि जलाने लगी है, मंदराचल और अस्ताचल चलकर टूक टूक हो गये हैं, पृथ्वी जर्जर भाव को प्राप्त हुई है, स्थावर जंगम जीव हाहाकार कर रहे हैं, बिजली चमक रही है, बहुत क्षोभ पैदा हुआ है, हे बधिक! मैं अग्नि में जा पड़ा, मेरा शरीर भी जले परन्तु मुझे कष्ट न हुआ, जैसे किसी पुरुष को स्वप्न में कष्ट प्राप्त हो और जगे तो कुछ कष्ट नहीं होता, ऐसे अग्नि का कष्ट मुझे कुछ न हुआ। मैं अपने आपको वही जाग्रत् वाला रूप जानता था, और जगत् प्रलय को भ्रममात्र जानता था, इस कारण से मुझे कुछ कष्ट न होता था और चेष्टा तो मैं भी उसी प्रकार देखता और करता था, परन्तु अन्दर से यथावत् शीतलचित्त रहता था और अन्य लोग अग्नि के क्षोभ से कष्ट पाते थे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे हृदयान्तरप्रलयाग्निदाहवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२४८॥

एकोनपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २४९

कर्मनिर्णयवर्णनम् ।

मुनिवर बोले—हे बधिक! प्रलय के क्षोभ में मैं भी भटकता था, जल में बहता जाता था, परन्तु पूर्व शरीर मुझको विस्मरण नहीं हुआ, इस कारण से शरीर का दुःख मुझको स्पर्श न करता था और मैं विचारता था कि यह जगत् तो मिथ्या है। इसमें विचारने से मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, यह तो स्वप्नमात्र है, इसमें किसलिये खेद पाऊं, इसलिये इस जगत् से बाहिर निकलूं, बधिक ने कहा—हे मुनिवर! तुमने जो उसके स्वप्न में जगत् को देखा, वह जगत् क्या वस्तु था और स्वप्न क्या था, उसकी संवित् में जगत् था और उस जगत् का उसको ज्ञान था, वह प्रमादी था, तुमने तो जाग्रत होकर उसका स्वप्न देखा। उसके हृदय में पहाड़ कहां से आया और नदियां, वृक्ष, नाना प्रकार के भूत जात और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदिक विश्व की रचना कहां से आई, वह क्या थे, यह संशय मेरा दूर करो और यदि तुम कहो कि अपने स्वप्न में तू अपनी सृष्टि देखता है तो हे भगवन्! हमको जो स्वप्न आता है, उसको हम अपने स्वरूप के प्रमाद से देखते हैं,और तुमने जाग्रत होकर देखा है, वह कैसे देखा? मुनिवर बोले—हे वधिक! पहिले जो मैंने देखा था, अपने आपको विस्मरण करके उसके हृदय में जगत् देखा था, फिर दूसरी बार जो देखा था, अपने आपको जानकर जगत् देखा था, वह क्या वस्तु है? श्रवण कर, हे वधिक! जो वस्तु कारण से होती है, वह सत्य होती है और जो कारण बिना भासती है, वह मिथ्या होती है और मुझको सृष्टि जो उसके स्वप्न में भासी, वह कारण बिना थी, क्योंकि कारण दो प्रकार का होता है, एक निमित्त कारण है, जैसे घट का कारण कुलाल होता है और दूसरा समवायि कारण है, जैसे घट मृत्तिका का होता है, दोनों कारणों से उत्पन्न हो वह सकारण पदार्थ कहाता है, वह आत्मा दोनों प्रकार जगत् का कारण नहीं, आत्मा अद्वैत है, इसलिये

निमित्त कारण नहीं और समवायि कारण इससे नहीं कि अपने स्वरूप से अन्यथा भाव नहीं हुआ, जैसे मृत्तिका परिणामी से घट होता है, ऐसे आत्मा का परिणाम जगत् नहीं, आत्मा अच्युत है,और वह जगत् कारण बिना भास आया, इसलिये भ्रममात्र,था, हे बधिक! वस्तु वही होती है और जगत् की भ्रांति आत्मा में भासी तो जगत् आत्मरूप क्यों हुआ? जब सृष्टि फुरी नहीं तब अद्वैत आत्मसत्ता थी, उसमें संवेदन फुरने से जगत् हुए की नाईं उदय हुआ, वह क्या हुआ, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, वह किरणें जलरूप भासती हैं, ऐसे यह जगत् आत्मा का आभास है, वह आत्मा ही जगत्‌रूप हो भासता है, वहां न कोई शरीर था, न कोई हृदय था, न पृथ्वी, जलवायु अग्नि प्रकाश था, न उत्पत्ति प्रलय न अपर कोई था, केवल चिन्मात्र रूप ही था, हे बधिक! ज्ञान दृष्टि से हमको सच्चिदानन्द ही भासता है, वह शुद्ध है, सर्व दुःख से रहित परमानन्द है, जगत् भी वही रूप है, तुम्हारे जैसे को जगत् भासता है, शब्द अर्थरूप से आत्मा में कुछ हुआ नहीं, केवल चिन्मात्र सत्ता है, सर्वदा हमको आत्मसत्ता ही भासता है, यदि तू चाहे तो तुझको भी चिन्मात्र रूप ही भासे। सर्व कल्पना मन से त्यागकर उसके पीछे जो शेष रहेगा, वह आत्मसत्ता है, सबका अनुभवरूप वही है, वह प्रत्यक्ष है,और शुद्ध है, सर्वदा स्वभावसत्ता में स्थित है और अमर है, तुम भी उस स्वभाव में स्थित हो, हे बधिक! आत्मसत्ता परम सूक्ष्म है, जिसमें आकाश भी स्थूल है, जैसे सूक्ष्म अणु से पर्वत स्थूल होता है, ऐसे आत्मा से आकाश भी स्थूल है, आत्मा में क्या सूक्ष्मता है, यही सूक्ष्मता है, जो आत्मत्व मात्र है, जिसमें उत्थान कोई नहीं, केवल निर्मल स्वभाव सत्ता है और निराभास है, उसमें यह जगत् भासता है, इसलिये वही रूप है, जैसे काल होता है, उसी में क्षण, पल, घड़ी, प्रहर, दिन, मास वर्ष युग संज्ञाएँ होती हैं, वह काल ही है, ऐसे एक ही आत्मा में अनेक नाम रूप जगत् होता है, जैसे बीज में पत्र टास फल फूल नाम होते हैं, ऐसे एक आत्मा में अनेक नाम रूप जगत् होता है, वह आत्मा से इतर कुछ वस्तु नहीं, सब आत्मरूप हैं,

जो आत्मा से इतर भासे तो भ्रम मात्र जानो, जैसे संकल्पपुर होता है, ऐसे यह जगत् है, हे बधिक! आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं, आत्मा तेरा अपना आप अनुभव रूप है और परम शुद्ध है, उसमें न जन्म है, न मरण है, चिदाकाश है, अपना आप है, जो तेरा है, आप अनुभव रूप शुद्ध सत्ता है, उसको नमस्कार है। हे बधिक! तू इसमें स्थित हो, तब तेरे दुःख नष्ट हो जायेंगे। यह जगत् अज्ञानी को सत् भासता है, ज्ञानवान् को सदा आकाश रूप प्रतीत होता है, जैसे एक पुरुष सोया है और एक जगता है, जो सोया है, उसको स्वप्न में महल माडी जगत् भासता है और जाग्रत को आकाश रूप है, ऐसे अज्ञानी को जगत् भासता है और ज्ञानवान् को आत्मरूप है। बधिक बोला—हे मुनिवर! एक कहते हैं, जीव कर्म से होता है और एक कहते हैं कर्म के बिना उत्पन्न होता है, दोनों में सत्य क्या है, मुनिवर बोले—हे बधिक! आदि में परमात्मा से जो ब्रह्मादिक फुरे हैं, वे कर्म से नहीं हुए, कर्म बिना ही उत्पन्न हुए हैं, न कहीं जन्म है, न कर्म है, वह ब्रह्मस्वरूप ही है, उनका शरीर भी ज्ञानरूप है, वह अपर अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ। सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्मा में अहं प्रतीति है। हे बधिक! सृष्टि के आदि में जो ब्रह्मादिक फुरे हैं, वे ब्रह्म से इतर नहीं और अन्य जो अनन्त जीव फुरे हैं, जिनका आदि ही आत्मपद से प्रकट हुआ है, वे भी ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, आदि में सब ब्रह्मा चेतन स्वयम्भू हैं, परन्तु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक का अविद्या स्पर्श नहीं किया। वे विद्यारूप हैं और जीव अविद्या के वश से प्रमाद करके परतंत्र हुए हैं, फिर कर्म से कर्म के वश हुए हैं। संसार में शरीर धारण करते हैं, जब उनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्म के बन्धन से मुक्त होकर आत्मपद को प्राप्त होते हैं, हे बधिक! आदि में जो सृष्टि हुई है, वह कर्म बिना उत्पन्न हुई है और तदनन्तर अज्ञान के वश से कर्म के अनुसार जन्म मरण देखते हैं, जैसे स्वप्न सृष्टि आदि में कर्म बिना उत्पन्न होती है और बाद में कर्म से उत्पन्न होती भासती है, ऐसे यह जगत् है, आदि जीव कर्म बिना उत्पन्न हुए हैं, बाद में कर्म के अनुसार जन्म पाते हैं, ब्रह्मादिक

शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं, ईश्वर में जीवभाव दृष्टि आता है तो भी अर्थात् उस समय भी ब्रह्म ब्रह्मस्वरूप ही है, उनके कर्म कोई नहीं, उनको केवल आत्मा ही भासता है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में द्रष्टा ही दृश्य रूप होता है और नाना प्रकार के कर्म दृष्टि आते हैं, परन्तु अपर कुछ हुआ नहीं, जितना जगत् भासता है, सब चिन्मात्र स्वरूप है, अपर कुछ नहीं, सुख दुःख भी वही भासता है, परन्तु अज्ञानी को जगत् प्रतीति होती है, तब कर्म पाश से बन्धा हुआ दुःख पाता है, जब स्वरूप में स्थित होगा तब कर्म के बन्धन से मुक्त होगा, वास्तव से न किसी को बन्धन है, न कोई कर्म है, यह मिथ्या भ्रम है, केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, दूसरा कुछ हो तो मैं कहूं कि यह कर्म है और इसको बंधन किया है, यह जगत् आत्मा में ऐसे हैं, जैसे जल में तरंग होता है, वह भिन्न कुछ नहीं, जल से तरंग उत्पन्न होता है, वह किस कर्म से होता है और उसका रूप क्या है, जैसे वह जलरूप ही है, ऐसे यह जगत् आत्मस्वरूप है। आत्मा से इतर कुछ नहीं, जो कल्पना की जाये, वह अविद्या मात्र है, हे बधिक! जब तक यह संवित् बहिर्मुख फिरती है, तब तक जगत् भासता है और कर्म होते दृष्टि आते हैं और जब संवित् अन्तर्मुख होगी, तब न कोई जगत् रहेगा, न कोई कर्म दृष्टि आवेगा, सब आत्मसत्ता भासेगी, जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है, ऐसे तुझे भी भासेगी, हे बधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको जगत् आत्मरूप दिखाई देता है और जो अज्ञानी हैं, उनको प्रमाद से अद्वैत रूप भासता है, उसमें पदार्थ को सुख रूप जानकर पाने का यत्न करता है, सुख से प्रसन्न होता है, दुःख से द्वेष करता है, उस परमानन्द रूप आत्मपद के पाने का यत्न नहीं करता। ज्ञानवान् सदा परमानन्द में स्थित है और सब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप भासता है, हे बधिक! जितना कुछ जगत् तुझको दृष्टि आता है, वह सब ही चिन्मात्र स्वरूप है, न कोई स्वप्न है, न जाग्रत है, न कोई कर्म है, न कोई अविद्या है, सब ब्रह्मस्वरूप है, सदा अपने आप में स्थित है, उसमें अपर कुछ नहीं, जैसे जल में आवर्त स्थित होता है परन्तु जल से इतर

कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म में जगत् हुए की नाईं भासता है, परन्तु ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, सब जगत् ब्रह्म स्वरूप है, तू विचार कर देख तेरे सब दुःख मिट जायँगे, जब तक विचार करके स्वरूप को न प्राप्त करेगा, तब तक दुःख न मिटेगा, जब स्वरूप को प्राप्त करेगा, तब सब कर्म नष्ट हो जायँगे, जितना विचार होता है, उतना सुख होता है, जहां विचार उत्पन्न होता है, वहां से अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे जहां प्रकाश होता है वहां अन्धकार नहीं रहता, ऐसे जहां सत् असत् का विचार उत्पन्न होता है, वहां अविद्या का अभाव हो जाता है, पुनः संसार चक्र में न गिरेगा और परमपद को प्राप्त होगा। जिस ज्ञानवान् को यह पद प्राप्त हो जाये, वह दुःखी नहीं होता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे कर्मनिर्णयो नामैकोनपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२४९।।

पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५०

महाशवोपाख्यानेनिर्णयोपदेशवर्णनम् ।

मुनिवर बोले–हे बधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं, जिस आनन्द के पाने से इन्द्रिय सुख तुच्छ प्रतीत होता है और जैसा सुख पृथ्वी, आकाश, पाताल में कहीं नहीं, ऐसा सुख ज्ञानवान् को प्राप्त होता है, जिसको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ है, वह किसकी इच्छा करे और आत्मानन्द तब प्राप्त होता है, जब आत्म अभ्यास हो, आत्मा शुद्ध है और सदा अपने आप में स्थित है, जो कुछ आगे दृष्टि आता है वह अविद्या का विलास है, जब तू अपने स्वरूप में स्थित होगा, तब सब जगत् तुझको ब्रह्म भासेगा, हे बधिक! पृथ्वी आदिक जो तत्व हैं, वह हैं नहीं, यदि कुछ होते तो इनका कारण भी कोई होता, यदि यह भी नहीं तो कारण किसको कहिये? जब इनका कारण कहीं नहीं तो कार्य

किसका कहा जाये? अतः यह भ्रममात्र है, विचार करने से जगत् का अभाव हो जाता है। आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों भासती है, जैसे किसी को जेवरी में सर्प भासता है, जब वह भले प्रकार देखे, तब सर्प भ्रम मिट जाता है, ज्यों की त्यों जेवरी ही भासती है, ऐसे विचार करने पर आत्मसत्ता ही भासती है, जैसे कहीं आकाश में संकल्प का वृक्ष रचे तो आकाश में हो ऐसा भासता है, जैसे किसी पुरुष ने संकल्प से देवता की प्रतिमा रची और उसके आगे अपनी प्रार्थना करने लगा, उस भावना से उसका कार्य सिद्ध हुआ, वह किस प्रकार सिद्ध हुआ? अनुभव से सिद्ध हुआ, जिसके आश्रय वह प्रतिमा हुई, उससे कार्य सिद्ध हुआ, हे बधिक! जितना तू जगत् देखता है, सब संकल्पमात्र है, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की सृष्टि भासती है, वह स्वप्नमात्र है, ऐसे सब विश्व ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है, आदि में जो परमात्मा से फुरना हुआ है, वह कर्म बिना सृष्टि उत्पन्न हुई है, वह किंचन आभासरूप है, पुनः आगे जो ब्रह्मा ने रचा है, वह संकल्परूप है, पुनः आगे अज्ञान से कर्म करने लगे तब कर्म से उत्पत्ति होती दृष्टि आयी। जैसे स्वप्न में स्वप्न की सृष्टि भ्रममात्र ही दृढ़ हो भासती है, जब तक स्वप्न अवस्था में है तब तक जैसा वहां कर्म करेगा, वैसा ही भासेगा और जग उठे तो न कहीं कर्म है, न जगत् है। ऐसे यह सब संकल्पमात्र है, ज्ञानवान् की नाईं अभाव हो जाता है, हे बधिक! यह जो तुझको मनुष्य भासते हैं, वह मनुष्य नहीं, उनके कर्म तुझे कैसे कहूं, जैसे स्वप्न के निवृत्त हुए स्वप्न सृष्टि का अभाव होता है, ऐसे अविद्या के निवृत्त हुए अविद्यक सृष्टि का अभाव हो जाता है और आत्मसत्ता अद्वैत है, उसमें जगत् कुछ बना नहीं, वही रूप है, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, जैसे वायु और स्पंद में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, जब चित्त संवित् फुरती है, तब जगत् होकर भासती है और जब नहीं फुरती, तब अद्वैत होकर स्थित होती है और आत्मसत्ता फुरने, अफुरने में ज्यों की त्यों है। जन्म मरण, बढ़ना घटना जो नाम होते हैं, वह मिथ्या हैं, क्योंकि दूसरी वस्तु कुछ नहीं, जैसे किसी ने जल कहा,

किसी ने अंबु कहा, दोनों एक ही के नाम हैं, ऐसे ही आत्मा और जगत् एक ही के नाम हैं, परन्तु अज्ञान से भिन्न भिन्न भासते हैं, जैसे स्वप्न में कार्य भासते हैं, परन्तु हैं नहीं, वास्तव में आत्मतत्व हैं, उस आत्मा में जो चित्त फुरता है, अहं मम इस उत्थान से आगे जो कुछ फुरना होता गया, वही जगत् हुआ है, उस जगत् में जैसा जैसा निश्चय हुआ है, ऐसा ऐसा भासने लगा है, उसका नाम नेति है, उसमें देशकाल पदार्थ की संज्ञा होने लगी है और कारण कार्य दृष्टि आते हैं। वह क्या है, केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और कुछ हुआ नहीं, परन्तु हुए की नाईं भासता है, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् भासता है और कारण कार्य भी दृष्टि आता है, परन्तु जगे हुए कुछ दृष्टि नहीं आता, क्योंकि है नहीं। ऐसे यह जगत् कारण कार्य रूप दृष्टि आता है, परन्तु है नहीं, आत्मा से दृष्टि आता है, इसलिये आत्मा ही है, जैसे संकल्प नगर दृष्टि आता है, ऐसे आत्मा में घन चेतनता से जगत् भासता है। वही रूप है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसा उसमें निश्चय होता है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है, जितना कुछ जगत् दृष्टि आता है, सब संकल्प मात्र है, संकल्प ही जहां तहां उड़ते फिरते हैं। अनुभव सत्ता वैसी की वैसी ही है। संकल्प ही मरकर परलोक देखता है, बधिक बोला—हे भगवन्! परलोक में जो यह मरकर जाता है, उस शरीर का कारण कौन होता है और वहां हंत्री और हंता कौन होता है और यह शरीर तो वहां ही रहता है, वहां भोक्ता शरीर कौन होता है, जिससे सुख दुःख भोगता है और यदि कहो उस शरीर का कारण धर्म अधर्म होता है तो धर्म अधर्म तो मूर्ति हैं, उनसे सम्मूर्ति साकार कैसे उत्पन्न हुआ? मुनिवर बोले—हे बधिक! शुद्ध अधिष्ठान में जो आत्मसत्ता है, उसके फुरने की इतनी संज्ञाएँ होती हैं। कर्म, आत्मा, जीव, फुरना, धर्म, अधर्म इनसे लेकर नाना प्रकार के नाम होते हैं। जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं का उत्थान होता है, तब देह की भावना होती है और देह ही भासने लगता है, आगे जगत् भासता है, स्वरूप के प्रमाद से संकल्प रूप जगत् दृढ़ हो जाता है, फिर उसमें जैसा

जैसा फुरना होता है, ऐसा ऐसा होकर भासता है। हे बधिक! यह जगत् संकल्पमात्र है, परन्तु स्वरूप के प्रमाद से सत् भासता है और प्रमाद से शरीर में अभिमान हो गया है, उससे कर्तव्य भोक्तव्य अपने में मानता है। वासना दृढ़ हो जाती है, उस वासना के अनुसार परलोक को देखता है, हे बधिक! वहां न कोई परलोक है, न यह लोक है, जैसे एक स्वप्न को छोड़कर अन्य स्वप्न को प्राप्त होता है, ऐसे अविदित वासना से इस लोक को त्यागकर परलोक को देखता है, जैसे स्वप्न में निराकार ही साकार शरीर उत्पन्न होता है, ऐसे परलोक में है, वास्तव से क्या है? सकंल्प ही पिण्डाकार होकर भासता है, जैसी जैसी वासना होती है, ऐसा ही उसके अनुसार होकर भासता है और शरीर पदार्थ सब ही आकाश रूप हैं, हे बधिक! असत् ही सत् होकर जन्म मरण भासता है, जैसा जैसा फुरणा होता है, ऐसा ऐसा भासता है, जगत् आभास मात्र है और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको आत्मभाव ही सत् है, उसमें जैसा निश्चय होता है, ऐसा होकर भासता है। ज्ञान ज्ञेय ज्ञातारूप जगत् भासता है, वह अनुभव से भिन्न कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में अनेक पदार्थ भासते हैं, वह अनुभव ही अनेक रूप हो भासता है और प्रलय में एक हो जाते हैं, ऐसे ज्ञानरूप प्रलय में सब एकरूप हो जाते हैं, जब संवित् फुरती है तब नाना प्रकार का जगत् भासता है और संवित् अफुर होती है, तब प्रलय हो जाती है, तब एकरूप हो जाता है, एक चिन्मात्र सत्ता अपने आप में स्थित है। पृथ्वी आदिक पदार्थ उसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कुछ नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है, उसमें निराकार और साकार भी कल्पित हैं, इनसे रहित निराकार है, जो पुरुष दृश्य के साथ मिले, चेतन है, वह जड़ धर्म है, उसको नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं। ज्ञानवान् को सत्रूप चिन्मात्र ही भासता है, हे बधिक! यह जगत सब चिन्मात्र है, जब चित्त संवित् फुरती है, तब स्वप्नरूप जगत् भासता है और जब चित्त संवित् फुरने से रहित होती है तब सुषुप्ति होती है, ऐसे चित्त संवित् फुरने से सृष्टि होती है और चित्त के स्थिर होने से प्रलय हो जाती है, जैसे स्वप्न

और सुषुप्ति आत्मा में कल्पित है, ऐसे आत्मा में सृष्टि और प्रलय कल्पित आभास मात्र हैं। अपर कुछ जगत् बना नहीं, फुरने से जगत् भासता है, इसलिये जगत् भी आत्मरूप है, पंचतत्व भी आत्मा का नाम है और सदा अद्वैतरूप जगत् आभास मात्र है, जैसे आत्मा में साकार कल्पित हैं, ऐसे ही निराकार कल्पित हैं, जैसे स्वप्न में किसी को साकार जानता है, किसी को निराकार जानता है। दोनों फुरनेमात्र से है, जो फुरने से रहित है, वह आत्मसत्ता है और साकार भी निराकार वही है। आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, निराकार ही साकार हो भासता है, हे बधिक! जितना जगत् तुझको दृष्टि आता है, सब चिन्मात्र स्वरूप है, इतर कुछ नहीं, परन्तु अज्ञान से नाना प्रकार कार्य कारण भासता है और जन्म मरण आदि विकार भासता है। वास्तव से न कोई जन्म है, न मरण है, न कोई कार्य है, न कारण है और यदि यह पुरुष मरता हो तो परलोक भी देखे और अपने मरने को भी न जाने, जो परलोक देखता है, अपने मरणे को देखता है, वह मरता नहीं, जब यह मृतक हो तब पूर्व संस्कार को न पाये, पूर्व स्मृति इसको न हो, वह तो पूर्व संस्कार से क्रिया में प्रवृत्त होता है और प्रतियोगी से पदार्थ की स्मृति भी हो आती है, फिर कर्म को भोगता है, पूर्व लोक में तो यह पुरुष मृतक नहीं होता। भ्रम से मरण भासता है और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं। जब मरकर परलोक देखता है और सुख दुःख भोगता है, शरीर किसी कारण से नहीं बना, जैसे वह शरीर अकारण है, ऐसे अपर जो आकार दृष्टि आते हैं, वह भी अकारण हैं, इसी से आभास मात्र है, जैसे स्वप्न के शरीर के साथ नाना प्रकार की क्रियाएँ होती हैं और देश देशान्तर को देखता है, वह सब मिथ्या है, ऐसे यह जगत् मिथ्या है और मरण भी मिथ्या है, यदि तुम कहो, इसके साकार का अभाव देखता है, वह मृतक है, तो हे बधिक! यह पुरुष परदेश जाता है तो भी इसका आकार दृष्टि नहीं आता, जैसे दृष्टि के अभाव में असत् होता है, ऐसे देह के त्याग में भी इसका असत् भाव होता है, इस पुरुष का अभाव कदाचित् नहीं होता

और यदि तुम कहो कि परदेश गया, फिर भी आ मिलता है, शरीर के त्याग से फिर नहीं मिलता, परदेश गया हुआ फिर मिलने पर आकर बातचीत करता है, मरा हुआ कभी नहीं करता, मरा हुआ भी चर्चा करता है, उसे सुनो। जिसके पितर प्रीति से बंधे हुए मरते हैं और यथाशास्त्र उनकी क्रिया नहीं होती, तब वह स्वप्न में आकर मिलते हैं और यथार्थ कहते हैं कि हमारी क्रिया तुमने नहीं की, हम अमुक स्थान में पड़े हैं और अमुक वस्तु, अमुक स्थान पर पड़ी है, तुम वहां से निकाल लो, तब जैसे परदेश गये मिलते हैं और बातचीत करते हैं, ऐसे मरे हुए भी करते हैं, हे बधिक! वास्तव से न कोई जगत् है, न मरता है, केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, जैसा जैसा उसमें फुरणा होता है, ऐसे हो भासता है, हे बधिक! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसा उसमें फुरना फुरता है, ऐसा हो भासता है, एक संकल्प सिद्ध वस्तु है और अपर दृष्टि सिद्ध वस्तु है, जब उनकी दृढ़ भावना होती है, तब यह दोनों सिद्ध होती है, जो इन्द्रियों के विषय सम्बन्धी द्रव्य पदार्थ हैं, वह दृष्टि सिद्ध वस्तु कहाती है, इसकी भावना होती है तो यह प्राप्त होती है और यदि अपने मनमें आप ही मान लें कि मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र वर्ण हू अथवा वैश्य अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी संन्यासी आश्रम हूं, इत्यादिक मानना संकल्प सिद्ध है, जब तक इनमें अभ्यास होता है, तब तक आत्मसत्ता की प्राप्ति नहीं होती और यदि आत्मसत्ता का अभ्यास हो तो इन दोनों का अभाव हो जाता है, आत्मा ही प्रत्यक्ष अनुभव से भासता है, हे बधिक! जिस वस्तु का अभ्यास होता है, उसी की सिद्धि होती है, यदि भावना करे और थक कर नहीं फिरे तो अवश्य सफल होता है। बिना अभ्यास के कुछ सिद्ध नहीं होता, जैसे कोई पुरुष कहे मैं अमुक देश को जाता हूं तो जब तक उसकी ओर नहीं चले, तब तक अनेक उपायों से भी नहीं पहुंच सकता। जब उसकी ओर चलेगा तब पहुंच जायेगा, ऐसे जब आत्मा का अभ्यास बहुत एकाग्र होकर करेगा तब प्राप्त होगा, अन्यथा आत्मपद न मिलेगा, हे बधिक! जिस पुरुष को जगत् के पदार्थ की इच्छा है, उसको आत्मपद

नहीं प्राप्त होता और जिसको आत्मपद की इच्छा है, उसको वही प्राप्त होगा, जगत् के पदार्थ न भासेंगे, जैसी भावना होगी कि मेरी मूर्ति देवता की सी हो, उससे मैं स्वर्ग में विचरूँ और एक स्वरूप से भूलोक में मृग होने की भावना हो, तब दृढ़ अभ्यास से वही हो जाता है, क्योंकि जगत् संकल्प मात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है, ऐसा ही प्रतीत होने लगता है, हे बधिक! दो स्वरूप की तो क्या बात है, यदि सहस्र मूर्ति की भावना करे तो भी वही तद्रूप हो जायेगा, जैसी यह पुरुष भावना करता है, ऐसा ही रूप हो जाता है और यह अविद्यक भ्रममात्र जगत् है, इसकी भावना त्यागकर आत्मपद का अभ्यास करो, तब तुम्हारे दुःख मिट जायँगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशो नाम पचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२५०।।

एकपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५१

कार्यकारणाकारनिर्णयवर्णनम् ।

मुनिवर बोले–हे बधिक! जैसे अगाध समुद्र में अनेक तरंग फुरते हैं, ऐसे आत्मा में अनेक सृष्टियाँ फुरती हैं, जीव जीव के प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, परन्तु परस्पर अज्ञात है। एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता ओर दूसरे की सृष्टि को वह नहीं जानता, जैसे एक ही स्थान में दो पुरुष सोये हों, उनको अपने अपने फुरने की सृष्टि भास आती है, उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता और उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता, परस्पर अज्ञात है, ऐसे ही सब सृष्टियां आत्मा में फुरती हैं, परन्तु एक की सृष्टिको दूसरा नहीं जानता और जो धारणाभ्यासी योगी होता है, उसको अंतवाहक शरीर प्रत्यक्ष हुआ है, वह दूसरे की सृष्टि को भी जानता है, जैसे एक तालाब का दर्दुर होता है और एक कूप का दुर्दुर होता है और एक समुद्र का दुर्दुर होता है, वे स्थान तो भिन्न होते हैं, परन्तु जल एक ही है, चाहेकैसा दर्दुर हो, उसको जल जानता है कि मेरे

में है, ऐसे जगत् भिन्न भिन्न अंतःकरण में है, परन्तु आत्मसत्ता के आश्रय है, आदि में जो संवेदन उसमें फुरी है, वह अन्तवाहक है, जब अन्तवाहक में योगी स्थित होता है, तब अपर के अन्तवाहक को भी जानता है। इस प्रकार अनन्त सृष्टियां आत्मा के आश्रय अन्तवाहक में फुरती हैं। वह आत्मा का किंचन है, फुरती भी हैं और मिट जाती हैं, संवेदन के फुरने से सृष्टि उत्पन्न होती है और संवेदन के ठहरने पर मिट जाती है, आकाशरूप होती है और वायु के ठहरने से जल एकरूप हो जाता है, जल से इतर कुछ नहीं भासता, ऐसे फुरने से आत्मा में अनन्त सृष्टियां भासती हैं और संवेदन के ठहरने से सब आत्मरूप हो जाती हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं भासती हैं, उससे इतर प्रमाद से भासती हैं, फिर कारण कार्य भ्रम भासता है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है, कारण कार्य के क्रम से रहित फुरी है, पीछे से कारण कार्य भ्रम भासा, फिर उसका संस्कार हृदय में हुआ, तब संस्कार के वश से भासने लगी, पहिले संस्कार से रहित अकस्मात् भासी है, उसमें जिनको स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ, उनको सदा परब्रह्म का निश्चय रहता है और जगत् अपना संकल्पमात्र भासता है और जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है, उनको संस्कार पूर्वक जगत् भासता है, अपर संस्कार भी कुछ वस्तु नहीं, हे बधिक! यदि जगत् ही मिथ्या है तो उसका संस्कार कैसे सत् हो, परन्तु ज्ञानवान् को इस प्रकार भासता है और जो अज्ञानी हैं, उनको स्पष्ट भासता है, हे बधिक! जैसे तुम संकल्प के रचे पदार्थ को असत् जानते हो, जैसे स्मृति सृष्टि को असत् जानते हो, जैसे स्वप्न सृष्टि को असत् जानते हो, ऐसे हम इस जाग्रत सृष्टि को भी असत् जानते हैं, जैसे मृगतृष्णा का जल असत् भासता है, ऐसे हमको यह जगत् असत् है, फिर कारण कार्य कर्म संस्कार हमको कैसे भासें? अज्ञानी को तीनों भासते हैं, हे बधिक! जब चित्तसंवित् बहिर्मुख होती है, तब जगत् हो भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब अपने स्वरूप को देखती है, जब आत्मतत्व का किंचन संवेदन फुरती है, तब स्वप्न जगत् हो भासता है और जो ठहर जाती है, तब

सुषुप्ति प्रलय हो जाती है, फुरने का नाम सृष्टि की उत्पत्ति है और ठहरने का नाम प्रलय है, जिसके आश्रय फुरना फुरता है, वह शुद्ध सत्ता अव्यक्त निराकार है, वही आकाररूप भासता है और जो अकारण निराकार है, उसमें अकारण आकार भासता है, इसलिये जानता है कि वही रूप है, अन्य कुछ नहीं, आकार भी निराकार है। सृष्टि दृश्यरूप हो भासती है, जगत् आभास मात्र है, जैसे समुद्र का आभास तरंग होते हैं, ऐसे आत्मा का आभास वह आत्मानन्द चिदाकाश है और सर्व जगत् का अपना आप है, बधिक ने कहा—हे ईश्वरूप मुनिवर! आप जगत् को अकारण कहते हैं तो कारण बिना कैसे उत्पत्ति संभव हो सकती है? जो प्रत्यक्ष भासता है, यदि कारण द्वारा उत्पत्ति कहो तो स्वप्नवत् क्यों कहते हो? स्वप्न सृष्टि तो कारण बिना होती है, इसलिये यह सृष्टि कारण सहित है, अथवा कारण से सहित अकारण है। वह कहो। मुनिवर बोले—हे बधिक! यह जगत् आदि अकारण है, आत्मा का आभास मात्र है, प्रथम कारण से रहित है, वह आत्मा में अत्यन्त अभाव है, अपर पदार्थ कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है, चिदाकाश चिन्मात्र है, उसका किंचन चेतनता है, जैसे सूर्य की किरणों का आभास जल भासता है, परन्तु जड़ है, ऐसे आत्मा का किंचन भी चेतन है, वह किंचन संवेदन अहं भाव को लेकर फुरती गयी है, जैसे जैसे फुरती है, ऐसा ऐसा जगत् हो भासता है, जो जो उसमें निश्चय किया है कि यह कर्तव्य है, इसके करने से पुण्य है। इसके करने से पाप है। यह करना है। यह नहीं करना है। देशकाल क्रिया क्रम है, यह इस प्रकार है, यह ऋषि है, यह देवता है, यह मनुष्य है, यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है, इससे इसको बन्धन है, इससे इनका मोक्ष है, हे बधिक! जो आदि नीति रची गयी है, ऐसे ही अब तक स्थित है, अन्यथा नहीं होती, इसमें कारण कार्यक्रम है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है, वह बुद्धिपूर्वक नहीं बनी, आकाशमात्र फुरी है, जैसे फुरी है, वैसे ही स्थित है और पदार्थ जो एक भाव को त्यागकर अपर भाव को अंगीकार करते हैं, वह कारण से करते हैं, कारण बिना नहीं होते, क्योंकि प्रथम सृष्टि अकारण हुई है, पीछे से

सृष्टि भाव में कारण कार्य हुए हैं, परन्तु हे बधिक! जिन पुरुषों को आत्मा का साक्षात्कार हुआ है, उनको यह जगत् कारण बिना ब्रह्मस्वरूप भासता है और जिनको आत्मसत्ता का प्रमाद है, उनको जगत् कारण असत् भासता है। परन्तु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है, उसमें संवेदन के फुरने से अब्रह्मता भासती है और निराकार में आकर भासता है और अकारण में कारणता भासती है और जब संवेदन जो मन का फुरना है, वह स्थिर होता है, तब सर्व जगत् का कारण कार्य सहित भासता है, पहिले अकारण फुरा है, पीछे से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश पदार्थों की मर्यादा हुई है। बंध और मोक्ष की नीति हुई है, वह ज्यों की त्यों है, जो जल शीतल ही है, अग्नि उष्ण ही है, इत्यादि जैसे नीति है, ऐसे स्थित है और जब आत्मसत्ता में जगता है, तब जगत् कारण कार्य सहित नहीं भासता, जैसे स्वप्न सृष्टि पहिले अकारण भास आती है, जब दृढ़ हो जाती है, तब कारण से कार्य होता है, दृढ़ हो आता है, मृत्तिका बिना घट नहीं बनता और जग उठे तो सर्व जगत् आत्मरूप हो जाता है, हे बधिक! यह जगत् संवेदन में स्थित है, जब तक अहंभाव का फुरना है, तब तक जगत् है, जब अहंभाव मिटता है, तब सब जगत् शून्य आकाशवत् होता है, जब तक अहं फुरती है, तब तक नाना प्रकार का जगत् भासता है, जैसी भावना होती है, ऐसा प्रतीत होता है और सब पदार्थ सदा अपनी अपनी शक्ति में जैसे आदि नीति हुई है, ऐसे ही स्थित हैं, जो जीव जैसी क्रिया का अभ्यास करेगा, उसके फल को प्राप्त होगा, जो बन्धन के निमित्त करेगा, वह बन्धन को पायेगा, मोक्ष के निमित्त करेगा तो मोक्ष को पायेगा, ऐसे ही आदि नीति हुई है, हे बधिक! इस प्रकार किंचन होकर मिट जाता है और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और जगत् की उत्पत्ति प्रलय ऐसे हैं, जैसे हाथी अपने शुंड को पसारे और खींचे, ऐसे चित्त संवेदन के प्रसार से जगत् उत्पन्न होता है और निस्पंद में प्रलय हो जाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे कार्यकारणाकारनिर्णयो नाम एकपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२५१।।

द्विपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५२

जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिविचारवर्णनम् ।

मुनिवर बोले–हे बधिक! यह संपूर्ण जगत् चित्त अणु के ओज में है और उस संबन्ध के अभ्यास से आत्मा ने चित् अणु की संज्ञा पायी है, ओज अन्तःकरण हृदय तीनों अभिन्न हैं, उसमें स्थित चेतन सत्ता है, बाहिर से मृतक स्वरूपवत् होती है और उसमें जीवित् रूप है और वहां बड़े प्रकाश से प्रकाशित होती है, उस सत्ता का आगे चित्त के साथ संयोग हुआ है, चित्त और प्राणकला का संयोग हुआ है, हे बधिक! जब प्राण लब्ध होते हैं तब चित्त को खेद प्राप्त होता है, जब चित्त खिन्न होता है, तब प्राण भी खिन्न होते हैं, जब प्राण स्थित होते हैं तो जीव शान्ति को प्राप्त होता है। यदि प्राण स्थित नहीं होते तब जीव जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भटकता है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाएँ भिन्न भिन्न होती हैं, सुनो। हे बधिक! जब यह पुरुष अन्न खाता (भोजन करता) है, वह अन्न जाग्रत् वाली नाड़ी के ऊपर जाकर स्थित होता है, तब वह नाड़ी रोकी जाती है, उससे सुषुप्ति आती है, जिस नाड़ी में चित्त की वृत्ति गयी हुई जाग्रत जगत् को देखती है, वह जाग्रत नाड़ी कहाती है। उसके ऊपर अन्न जाकर स्थित होता है और चित्त सत्ता जो चित्त में प्रतिबिंबित है, वह चित्त नाड़ी उसके नीचे आ जाती है, तब प्राण वायु भी इस नाड़ी में ठहर जाता है और चित्त स्पंद भी ठहर जाता है, तब सुषुप्ति होती है और जब पित्त बहुत होता है, तब सूर्य, अग्नि आदिक उष्ण पदार्थ स्वप्न में देखता है और जब वह अन्न पचता है और उन नाड़ियों में प्राण जाते हैं तब स्वप्न अवस्था आती है, जब जल के सुखाने के लिये वायु बहता है, तब जीव स्वप्न में उड़ता है और जब कफ बहुत होता है, तब किसी को देखता है, नदियां और तालाब देखता है, उनमें जाता है, डूबता

है, जब उष्ण नाड़ी में अन्न जल पहुंचता है तब जाग्रत अवस्था होती है, इस प्रकार जीव तीनों अवस्थाओं में भटकता है, जगत् न कुछ अन्दर है, न बाहर है, केवल अद्वैत सत्ता ज्यों की त्यों स्थित है। उसके प्रमाद से चित्त की वृत्ति जब बहिर्मुख फिरती है, तब जगत् को जाग्रतरूप से देखता है और जब बाहर की इन्द्रियों का त्यागकर अन्दर आता है, तब स्वप्न जगत् को देखता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब अपर कल्पना मिट जाती है, सब जगत् ब्रह्म ही प्रतीत होता है, इसलिये सब कल्पनाओं को त्याग कर अपने स्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिविचारो नाम द्विपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२५२।।

त्रिपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५३

जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिवर्णनम् ।

मुनिवर बोले–हे बधिक! यह तीनों अवस्थाएँ होती हैं और जाती हैं, इनके अनुभव करने वाली जो सत्ता है, वह आत्मसत्ता है और सदा एक रस है, जिस पुरुष को अपने स्वरूप का अनुभव हुआ है, उसको अपना किंचन भासता है, जिसको इन्द्रियों का प्रमाद है, उसको जगत् भासता है और जगत् चित्त का कल्पित किया हुआ है, जब इन्द्रिय विषयों के सन्मुख होते हैं, तब जगत् को देखती हैं, उस संकल्प जगत् को देखकर राग द्वेषवान् होते हैं, इंद्रियों के अर्थ (विषय) को पाकर जीव प्रसन्न और शोकवान् होता हैं, हे बधिक! जिस चिद्णु का इंद्रियों के साथ सम्बन्ध है, उसको संसार का अभाव नहीं होता। नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका, श्रोत्र से अपने आपको देखता, स्पर्श करता, रस लेता, सूंघता, सुनता मानता है, तब संसारी होकर देखता है, दुःख पाता है। जब इनके अर्थ को त्याग कर अपने स्वभाव की ओर आता है, तब सर्व जगत् को आत्मरूप जानकर सुखी होता है, हे बधिक! चित्त के फुरने का नाम जगत् है और

चित्त के स्थित होने का नाम ब्रह्म है, जगत् अपर कुछ नहीं, इसी का नाम आभास है, चित्त के आश्रय सब नाड़ियां हैं, उनमें स्थित होकर जीव तीनों अवस्थाओं को देखता है, वास्तव से यह जीव चिदाकाश आत्मा है, अज्ञान से जीव संज्ञा को प्राप्त हुआ है, हे बधिक! ओज धातु है, हृदय उसमें चिदणु स्थित होकर दीपक ज्योतिवत् प्रकाशित होता है। उस ओज के आश्रय सब नाड़ियां हैं, अपने रस को ग्रहण करती हैं, जब यह प्राणी भोजन करता है और अन्न जाग्रत नाड़ी में पूर्ण होता है, तब जाग्रत् का अभाव हो जाता है, चित्त की वृत्ति और प्राण आने जाने से रहित हो जाते हैं। वह नाड़ी मुँद जाती है, फिर जब कफ नाड़ी में प्राण फुरते हैं, तब स्वप्न भासता है, हे बधिक! जब इन्द्रिय के ग्रहण से चित्त की वृत्ति बाह्य निकलती है, तब जाग्रत जगत् हो भासता है और जब तन्मात्रा को लेकर चित्त की वृत्ति ओज धातु में फुरती है, तब स्वप्न भासता है और जब ओज धातु के ऊपर अन्नादिक द्रव्य का बोझ आ पड़ता है, तब सुषुप्ति होती है और जब निद्रा तथा जाग्रत का बल होता है, तब दोनों भासते हैं और जब दोनों में एक का बल अधिक होता है, तब वही भासता है, जाग्रत् अथवा सुषुप्ति और निद्रा से रहित जब मंद संकल्प हैं तब वह मनोराज्य कहलाता है और जब बाह्य विषय को त्यागकर चित्तवृत्ति अन्तर्मुख होती है, तब स्वप्न होता है, वहां फिर जिस सिद्धान्त में जाता है, उसके अनुसार अन्तर जगत् भासता है। कफ के बल से चन्द्रमा और क्षीर समुद्र, नदियाँ, तालाब जलपूर्ण देखता है तथा वृक्ष, फल, फूल, बगीचे, सुन्दर वन, हिमालय, कल्पवृक्ष, तमाल सुन्दर स्त्रियां देखता है, जब पित्त का बल अग्नि होता है, तब सूर्य अग्नि और सूखे वृक्ष फल शाखाएँ देखता है और संध्याकाल के मेघ की लाली देखता है। वन में आग लगी हुई देखता है, पृथ्वी तप्त देखता है, मरुस्थल की नदी दृष्टि आती है, पानी गरम लगता है, हिमालय का शिखर गरम लगता है, इत्यादि उष्ण पदार्थ दृष्टि आते हैं, जब वायु का बल अधिक होता है, तब स्वप्न में आंधी आई देखता है और पाषाण की वर्षा होती दृष्टि आती है।

अन्धकूप में गिरता है। हाथी, घोड़े उड़ते दृष्टि आते हैं, अपने आपको उड़ता फिरता देखता है, अप्सराओं के पीछे दौड़ता है, पहाड़ों की वर्षा होती है, वायु बहुत तेजी से चलता है। अन्नादिक पदार्थ चलते दृष्टि आते हैं, विपरीत रूप से देखने में आते हैं। इस प्रकार वात पित्त कफ से स्वप्न में जाग्रत देखता है, जिसका बल विशेष होता है, उसके धर्म में दृष्टि आता है, वासना के अनुसार न्यूनाधिक तामस राजस सात्विक पदार्थ को देखता है। जब तीनों कुपित हो जाते हैं तब प्रलयकाल दृष्टि आता है, हे बधिक! जब तक वात पित्त कफ के अंश के साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफ के स्थान में प्रवेश करता है, तब तक समान जल के क्षोभ भासते हैं, इस प्रकार वात, पित्त, कफ जिसके स्थान में अपर के स्वभाव को लेते हुए जाते हैं, तब तक समान क्षोभ भासता है और जब केवल बात का क्षोभ होता है, तब महा प्रलयकाल के पवन चलते हैं और पहाड़ पर पहाड़ गिरते हैं, भूकम्प आते हैं, ऐसे ऐसे क्षोभ होते हैं और जब कफ का क्षोभ होता है, तब समुद्र उछलते हैं और पित्त से आग लगती है, महाप्रलय की नाईं तत्व क्षोभवान् होते हैं, जब प्राण जाग्रत नाड़ी में जाते हैं और वह अन्न से पूर्ण होती है, तब जीव उसके नीचे आ जाते हैं, जैसे दीवार के नीचे दर्दुर आ जाय, जैसे शिला के नीचे कीट आ जाय, जैसे काष्ठ की पुतली काष्ठ में हो, जैसे इनमें अवकाश नहीं रहता, ऐसे उस नाड़ी में अवकाश नहीं रहता, रुक जाती है, तब इसको सुषुप्ति होती है, जब कुछ अन्दर पचता है, तब चित्त संवित् अपने अन्दर स्वप्न देखती है, जब अन्न और जल पचता है, तब फिर जाग्रत को देखता है और जब जाग्रत और स्वप्न का बल सम होता है, तब दोनों को देखता है और अनुभव करता है, हे बधिक! इस प्रकार तीनों अवस्थाएँ होती और मिट जाती हैं, वह तीनों गुणों से होती हैं, इनका द्रष्टा इनको अनुभव करने वाला है, वह गुण से अतीत है, सबका आत्मा है, यह जगत् और स्वप्न जगत् संकल्प मात्र है, बना कुछ नहीं। ब्रह्मसत्ता ही किंचन करके जगत् रूप हो भासती है, परन्तु अज्ञानी उसको जगत् जानते हैं, जगत् को सत् जानकर इष्ट

अनिष्ट में राग द्वैष करते हैं, इष्टराग संयुक्त ग्रहण करते हैं, अनिष्ट की प्राप्ति में द्वैष करते हैं, बाह्य इन्द्रिय सुषुप्त होते हैं, तब अंतर स्वप्न में भटकता है, उसमें सूर्य, चन्द्रमा, वन, फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत् को देखता है और जब स्वरूप का अनुभव होता है, तब सब भटकना मिट जाता है और शान्ति पद को प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जाग्रतस्वप्नसुषुप्ति वर्णनं नाम त्रिपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२५३।।

चतुष्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५४

सुषुप्तिवर्णनम् ।

बधिक बोला–हे मुनिवर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने जगत् और प्रलय देखे थे, उसके अनन्तर क्या हुआ था और क्या अवस्था देखी, मुनिवर ने कहा–हे बधिक! उसके चित्तस्पंद में मैंने देखा कि बड़े बड़े पहाड़ प्रलय की वायु से सूखे तृण की नाईं उड़ते हैं और पाषाण वर्षा होती है। इस प्रकार मैंने प्रलय के क्षोभ को देखा, मेरे देखते देखते जाग्रतवाली नाड़ी में अन्न आकर स्थित हुआ। वहां जो अन्न के दाने गिरें, वह सर्पवत् प्रतीत हों, तब चित्तस्पंद जो संवित् थी, वह रुक गयी, उसमें मैं था, तामस नरक में जा पड़ा, मानों वहां मैं भी जड़ हो गया, मुझको ज्ञान कुछ न रहा, जब कुछ अन्न पचा और कुछ अवकाश हुआ, तब प्राण का स्पंद फुरा, जैसे निस्पंद वायु स्पंद होकर चले, ऐसे वहां संवित् फुरी। तब सुषुप्ति दृश्य होकर भासने लगी, जैसे आत्मा द्रष्टा ही दृश्यरूप होकर भासने लगा, परन्तु अपर कुछ बना नहीं, जैसे अग्नि और उष्णता में भेद कुछ नहीं, जैसे जल और द्रवता में कुछ भेद नहीं, जैसे मिरच और तीक्ष्णता में भेद नहीं, ऐसे आत्मा और दृश्य में कुछ भेद नहीं। हे बधिक! इस प्रकार मैंने जगत् को देखा, सुषुप्ति जाग्रत दृश्य उत्पन्न हुई। मुझको दृष्टि आई, जैसे कुमारी कन्या से सन्तान उत्पन्न हो, ऐसे उत्पन्न हुई,

बधिक बोला—हे मुनिवर! आपने जो कहा, सुषुप्ति आत्मा से दृश्य उत्पन्न हुई, वह सुषुप्ति क्या है? जिसमें तुम दब गये थे, वही सुषुप्ति है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ, वह मुझे कहो। मुनीश्वर बोले—हे बधिक! जहां सर्व सम्बन्ध का अभाव है, केवल आत्मसत्ता से इतर कुछ कहना नहीं, उसका नाम सुषुप्ति है, उसमें जो फुरना हुआ, उस फुरने के तीन उपाय हैं, वे सब सन्मात्र के हैं, जो वस्तु स्वरूप है और देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित है और तीनों के परिच्छेद से रहित है, वह सन्मात्र है, उस सन्मात्र में अपर कुछ बना नहीं, उसके सब पर्याय भी वही रूप हैं, वही सद्वस्तु अपने आप में विराजमान है, कदाचित् अन्यथा भाव को नहीं प्राप्त होता, किंचन में भी वही रूप है और अकिंचन में भी वही रूप है। आत्मा का ही नाम सुषुप्ति है, इसी से सब जगत् होता है, उस सत्ता का नाम सुषुप्ति है, वही स्वप्न दृश्य होकर भासता है, उससे इतर कुछ नहीं, जैसे वायु स्पंद निस्पंद में वही रूप है, ऐसे आत्मा दोनों अवस्थाओं में एक रूप है, हे बधिक! हमारी बुद्धि में और कुछ बना नहीं, सदा यथावत् स्थित है। शरीर के आदि अन्त में वही रूप है, इसमें जो किंचन द्वारा भासा है, वह भी वही रूप है, जैसे सुषुप्ति अवस्था में मुझको अद्वैत का अनुभव होता है और कहीं फुरना नहीं होता, उससे जो स्वप्न और जाग्रत प्रतीति होती है, वह भी वही रूप है, जिससे फुरती है और जिसमें भासती है, उससे इतर कुछ नहीं, इसलिये यह जगत् आत्मा का किंचन है, वह आत्मरूप है, जब तू जगकर देखेगा, तब तुझको आत्मरूप भासेगा, जैसे स्वप्नपुर और संकल्प नगर का अनुभव होता है और आकाशरूप है, ऐसे यह जगत् आकाशरूप है, शक्ति भी वही है, सर्वशक्ति आत्मा है, निष्किंचन भी वही है और किंचन भी वही है और शून्य भी वही है, जो वाणी से कहा नहीं जाता, उस अवस्था में ज्ञानी स्थित है, हे बधिक! ज्ञानवान् को अनुभव प्रत्यक्ष करके अनुभव रूप ही भासता है, जैसे स्वप्न में जीव और ईश्वर भिन्न भिन्न भासता है, उपाधि से अनुभव भेद भासता है, वास्तव से भेद कुछ नहीं, ऐसे जाग्रत में अज्ञान उपाधि से भेद भासता

है, स्वरूप से आत्मा एकरूप है, जब अज्ञान निवृत्त होता है, तब सब आत्मरूप भासता है, हे बधिक! सर्व जगत् अपना स्वरूप है, परन्तु अज्ञान से भेद होता है, जब आपको जाने, तब द्वैत भेद भी मिट जायें, जैसे कहीं पुरुष अपनी भुजा पर सिंह की मूर्ति रखे और उसके भय से दौड़ता फिरे और कष्ट पाये, वह प्रमाद से भयवान् होता है। वह तो अपना ही अंग है, जैसे जाने तब भय मिट जाता है, ऐसेही स्वरूप के ज्ञान से जगत् भय मिट जाता है, जैसे स्वप्न में अज्ञान से नानात्व भासता है और बना कुछ नहीं, ऐसे जाग्रत् में नानात्व भासता है परन्तु बना कुछ नहीं, जब वह पुरुष अन्तर्मुख होता है तब इसको बोध की दृढ़ता हो जाती है, जैसे प्रातःकाल को ज्यों ज्यों सूर्य की किरणें प्रकट होती हैं, त्यों त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, ऐसे ही ज्यों ज्यों अंतर्मुख होता है त्यों त्यों ही बोध विकसित होता है, विषयों से वैराग्य करने और आत्मा का अभ्यास करने से बुद्धि अन्तर्मुख होती है। उससे आत्मपद की प्राप्ति होती है तब आत्मा सर्वत्र एकरस भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सुषुप्तिवर्णनं नाम चतुष्पचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२५४॥

पंचपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५५

सुषुप्तिवर्णनम् ।

मुनीश्वर बोले–हे बधिक! तब मैंने उसकी सुषुप्ति से जगकर जगत् को देखा जैसे कोई पुरुष समुद्र से निकल आया हो, जैसे सकंल्प सृष्टि फुरे, जैसे आकाश से बादल निकल आते हैं, जैसे वृक्ष से फल निकल आते हैं, ऐसे उसकी सुषुप्ति से सृष्टि निकल आई, मानो आकाश से उड़कर आई है, मानो कल्पवृक्ष से चिन्तामणि निकल आई हो, जैसे शरीर के रोम खड़े होते हैं, जैसे गंधर्व नगर फुर आता है, जैसे पृथ्वी से अंकुर

निकल आता है, ऐसे सृष्टि फुरी है, जैसे दीवार पर पुतलियां लिखी हों, जैसे स्तंभ में पुतलियां लिखी हों, ऐसे मैंने सृष्टि देखी, जैसे स्तंभ में से पुतलियां निकालीं तो नहीं, परन्तु शिल्पी कल्पना करता है कि इतनी पुतलियां निकलेंगी, ऐसे ही अन हुई सृष्टि आत्मरूप स्तंभ में से निकल आती है, आत्मरूप माटीसे पदार्थरूप वासना निकलते हैं, परन्तु यह आश्चर्य है कि आकाश में चित्र होते हैं और निराकार चैतन्य आकाश में पुतलियों की कल्पना मनुष्य करता है, हे बधिक! जैसे आकाश में मकड़ी के समूह निकल आते हैं, ऐसे शून्य आकाश से सृष्टि निकलकर पुरुष के हृदय में मुझको स्पष्ट प्रतीत होने लगीं और देशकाल क्रिया द्रव्य से अकस्मात् सत् असत् पदार्थ भासने लगते हैं और असत् पदार्थ सत् हो भासते हैं, जैसे मणि मन्त्र औषधि द्रव्य के बल से असत् पदार्थ सत् होकर भासने लगते हैं और सत् पदार्थ असत् भासते हैं, ऐसे अभ्यास के बल से मुझको पुरुष के हृदय में सृष्टि भासने लगी, हे बधिक! जैसा निश्चय संवित् में दृढ़ होता है, ऐसा रूप होकर भासता है। वास्तव में न कोई पदार्थ है, न अन्तर है, न बाहिर है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह सब सृष्टि इसके अंतर ही स्थित है और प्रमाद दोष बाहिर से फल की उत्पत्ति देखता है, जैसे स्वप्न में सब पदार्थ अपने अन्तर बाहिर होते भासते हैं, ऐसे यह पदार्थ अपने अन्तर से बाह्य फुरते भासते हैं, हे वधिक! यह जगत् जो आकारयुक्त दृष्टि में आता है, सब निराकार है और कुछ बना नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अज्ञान से जगत्‌रूप हो भासती है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको जगत् सत् असत् कुछ नहीं भासता, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित प्रतीत होती है और जो अज्ञानी हैं, उनको भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है और जब चित्त की वृत्ति बाहिर फुरती है, उसको जाग्रत कहता है और जब अन्तर्मुख फुरती है, तब उसको स्वप्न कहता है। जब वृत्ति स्थिर होती है, तब उसको सुषुप्ति कहता है, एक ही चित्त की वृत्ति के तीन पर्याय हुए और वास्तव नहीं, इसी जगत् के आदि में शुद्ध केवल आत्मसत्ता थी उसमें चित्त संवित् फुरी तब जगत् रूप

भासने लगी और किसी कारण से जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, जिसका कारण कोई नहीं, उसको असत् जानिये, वास्तव से जगत् कुछ बना नहीं, सर्व जगत् शान्त रूप ब्रह्म ही है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सुषुप्तिवर्णनं नाम पंचपंचादशधिकद्विशततमः सर्गः ॥२५५॥

षट्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५६

स्वप्ननिर्णयवर्णनम् ।

बधिक बोला–हे मुनीश्वर! प्रलय के अनन्तर तुमको क्या अनुभव हुआ था? मुनिवर बोले–हे बधिक! तब मुझको उसके अन्दर सृष्टि भास आयी। अपने पुत्र कलत्र सम्पूर्ण कुटुम्ब भास आये, उनको देखकर मुझको ममत्व हुआ और पूर्व स्मृति भूल गया मुझे सोलह वर्ष की अपनी आयु प्रतीत हुई, गृहस्थाश्रम में स्थित हुआ, रागद्वैष सहित मुझको जीव के धर्म भास आये, क्योंकि दृढ़ ज्ञान तो मुझे हुआ न था, हे बधिक! जब दृढ़ बोध होता है तब रागद्वैष आदि जीव धर्म विचलित नहीं कर सकते, संसार को सत्य जानकर कोई वासना नहीं होती, इसी कारण से विचलित नहीं होता और जिसको बोध की दृढ़ता नहीं, उसको जगत् की वासना खींच ले जाती है, हे बधिक! अब मुझको दृढ़ बोध हुआ है, इसको तरना महा कठिन है, यह पिशाचिनी महाबलवती है, क्योंकि चिरकाल का दृश्य का अभ्यास है, इस कारण से विचलित करती है, जब सत् शास्त्र का विचार और सत्संग जीव को मिलता है और अभ्यास दृढ़ होता है तब दृश्य सद्भाव निवृत्त होता है, जब तक यह मोक्ष का उपाय नहीं मिला, तब तक यह भ्रम दृढ़ हो रहा है, जब सत्संग और सत् शास्त्र के अभ्यास से इसको यह विचार उत्पन्न हो कि मैं कौन हूं और यह जगत् क्या है, इसको विचारकर आत्मपद का दृढ़ अभ्यास हो तब दृश्य भ्रम मिट जाता है क्योंकि असम्यक् ज्ञान से जगत् सत् भासा है, जब सम्यक् ज्ञान हुआ

तब जगत् का सद्भाव कैसे रहे? जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है, जैसे बाजीगर की बाजी, जैसे जेवरी में सर्प, भ्रम से भासता है, ऐसे आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है। जब अपने स्वरूप से जगता है, तब जगद्भ्रम मिट जाता है, जब तक स्वरूप में जगता नहीं तब तक जगद्भ्रम नहीं मिटता, बधिक बोला—हे मुनीश्वर! यह तुम सत्य कहते हो कि जगद्भ्रम मिटना कठिन है, मैं तुम्हारे मुख से पुनः पुनः सुनता हूं और विचारता हूं और पद पदार्थ का ज्ञान मुझको दृढ़ हुआ है, परन्तु संसार भ्रम नष्ट नहीं होता। यह मैं जानता हूं और सुनता हूं कि सत्संग और सत् शास्त्र के विचार किये बिना शांति नहीं प्राप्त होती, मुझको यह संशय होता है कि तुम जाग्रत् जगत् को स्वप्नवत् कैसे कहते हो, कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, मुनीश्वर बोले—हे बधिक! यह जितना कुछ जगत् पृथ्वी आदि पदार्थ सत् भासते हैं और शशे के श्रृंग आदिक असत् भासते हैं, सब मिथ्यारूप हैं, जैसे स्वप्न में सत् असत् पदार्थ भासते हैं, वे सब असत् रूप हैं, ऐसे यह जगत् असत् रूप है, इसमें अल्प प्रतीति और चिरकाल की प्रतीति का भेद हैं, जाग्रत् चिरकाल की प्रतीति है, उससे पदार्थ सत् भासते हैं और स्वप्न अल्पकाल की प्रतीति है, उससे स्वप्न पदार्थ असत् भासते हैं, परन्तु दोनों भ्रमरूप हैं और असत् हैं, इस कारण से मैं तुल्य कहता हूं, असत् ही पदार्थ भ्रम से सत् की नाईं भासते हैं और यह सब जगत् स्वप्न मात्र है, इसमें सत् क्या कहूँ और असत् क्या कहूं, जैसे स्वप्न में कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, वे सब ही असत्य हैं, ऐसे जाग्रत् में कई पदार्थ सत् भासते हैं, कई असत् भासते हैं, परन्तु दोनों भ्रममात्र हैं इसलिये असत्य हैं, हे बधिक! प्रतीति का भेद है पदार्थ में भेद कुछ नहीं, जिसमें प्रतीति दृढ़ हो रहे है, उसको सत् कहता है और जिसमें प्रतीति दृढ़ नहीं उसको असत् कहता है। एक ऐसे पदार्थ हैं, जो स्वप्न में उनकी भावना दृढ़ हो गयी है, जाग्रत् में भी प्रत्यक्ष भासता है और मनोराज्य की दृढ़ता जाग्रत् रूप हो जाती है वह भावना की दृढ़ता है। अपर भेद कुछ नहीं जिसमें भावना दृढ़ हो गयी है वह सत्

भासने लगा है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको जगत् संकल्प मात्र ही भासता है। संकल्प से इतर जगत् का कुछ रूप नहीं, उससें मैं सत् क्या कहूं और असत् क्या कहूं, सब जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं, उनको सत् असत् कुछ नहीं, उनको सब ज्ञानरूप भासता है और जिसको स्वप्न में जाग्रत् की स्मृति आई है उसको फिर स्वप्न नहीं भासता, ऐसे जिसको जाग्रत् रूप स्वप्न में बोध स्मृति हुई है वह फिर मोक्ष को नहीं प्राप्त होता इसलिये न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्न है न कोई नीति है, क्योंकि नीति भी कुछ अपर वस्तु नहीं निकलती, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं, उनकी मर्यादा नीति भी भासती है, वह नीति किससे है, सब ज्ञानरूप होती है, ऐसे जाग्रत् में भी सब ज्ञानरूप है, संवित् के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं, उनमें नीति भी भासती है, अतः न कोई जगत् है, न कोई नीति है इसका कारण कोई नहीं, कारण के बिना ही जगत् अकस्मात् फुर आता है और मिट जाता है, संवेदन के फुरने से जगत् फुर आता है और संवेदन के मिटे मिट जाता है, इसलिये जाग्रत् संवेदन रूप है, जैसे वायु स्पन्द रूप होता है ऐसे संवेदन ही जगत् रूप हो भासता है, वायु स्पंद रूप होता है तब फुरणा रूप हो भासता है और निस्पन्द कोई नहीं जानता, परन्तु वायु को दोनों तुल्य हैं ऐसे चित्त संवेदन के फुरने में जगत् भासता है और ठहरने में जगत् किंचन मिट जाता है, फुरना और ठहरना दोनों उसके किंचन हैं, आप दोनों में तुल्य है, हे बधिक! नीति भी अज्ञानी के समझाने के लिये कही है, स्वप्न भी असत् है सब कोई जानता है और स्वप्न का वृत्तान्त जाग्रत् में सिद्ध होता दृष्टि आता है, कोई कहता है कि रात्रि को मुझे स्वप्न आया है, अमुक कार्य इसी प्रकार होगा, वह जाग्रत् में होता दृष्टि आता है और पुत्र को पिता कह जाओ कि मेरी गति करो और अमुक स्थान में द्रव्य पड़ा है, तुम निकाल लो उसी प्रकार दृष्टि आता है, नीति होती तो कार्य कोई सिद्ध न होता, वह तो होता है, इसलिये नीति भी कुछ वस्तु नहीं, आत्मा से इतर कुछ वस्तु नहीं, जाग्रत् नाम उसका हैं, जिसको आत्म शब्द

कहता है और जिसको तुम जाग्रत् कहते हो वह कुछ वस्तु नहीं, मन सहित षट् इन्द्रियों की संवेदन को जाग्रत् कहते हैं, स्वप्न में मन सहित षट् इन्द्रियोंकी संवेदना होती है, जाग्रत् वस्तु कुछ नहीं, जो जाग्रत् में अर्थ सिद्ध होता है और स्वप्न में भी हो तो जाग्रत् में कुछ वस्तु हुई, यदि तुम कहो स्वप्न कुछ वस्तु है तो स्वप्न भी नहीं, स्वप्न वहां होता है, जहां निद्रा भ्रम होता है, केवल शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है, जगत् उसका किंचन है जैसे रत्न की लाट का चमत्कार होता है, लाट इतर कुछ वस्तु नहीं, रत्न ही व्याप्त हुआ है, ऐसे जाग्रत् जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्मा का चमत्कार है, वह बोध सत्ता केवल अपने आपमें स्थित है, वह अनन्त है, उसमें जगत् कुछ बना नहीं, जो आत्मा में इतर जगत् भासता है, वह नाशरूप है, आत्मा सदा अविनाशी है, हे बधिक! जब यह पुरुष शरीर को छोड़ता है, तब परलोक में सुख दुःख कैसे भोगता है, जैसे जल में एक तरंग उठकर फिर मिट जाता है, दूसरे स्थान पर दूसरे प्रकार से उठता है, वह जल ही जल है, आगे भी जल था, पीछे भी जल है, तरंग भी जल है, जल ही का विलास इस प्रकार फुरता है, ऐसे यह शरीर भी अनुभव रूप है, अनुभव से इतर कुछ नहीं, जैसे एक स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्न देखता है तो क्या है, अपना आप है, ऐसे यह जगत् आत्मरूप है, हे बधिक! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया यही चारों वपु हैं। जाग्रत् सृष्टि की समष्टिता है, उसका नाम विराट् है और स्वप्न जो कि लिंग शरीर की समष्टिता है, उसका नाम हिरण्यगर्भ है और सुषुप्ति शरीर की समष्टिता अव्यक्‍त माया है और तुरीया सर्व शरीर की समष्टिता है, वह चेतन रूप आत्मा है, तुरीया कहते हैं साक्षीभूत जानना, उसकी समष्टिता रूप चेतना वपु है, चारों शरीर उसके हैं और सदा निराकार हैं, चिन्मात्र है, हे बधिक! यह चारों परमात्मा के शरीर हैं। वह परमात्मा निराकार है और आकार जो दृष्टि आते हैं, वे भी वही रूप हैं। वे आकार कल्पना मात्र हैं, आत्मा सर्व कल्पना से रहित है, इसलिये सब जगत् चिदाकाश रूप है, जैसे पत्थर की शिला में कमल फूल नहीं लगते, उनका होना असंभव है,

ऐसे आत्मा में जगत् का होना असंभव है। हे बधिक! आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, तू जगकर देख जितने पदार्थ भासते हैं, संकल्पमात्र हैं, जिसमें कल्पित हैं वह नाम रूप से रहित हैं, उसको देखेगा तब आत्मरूप सब जगत् भासेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे स्वप्ननिर्णया नाम षट्पंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ।।२५६।।

सप्तपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः २५७

स्वप्नविचार वर्णनम् ।

व्याध ने कहा—हे मुनिवर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने सृष्टि देखी थी, उसमें तुम किस प्रकार विचरते थे और क्या देखा था? वह कहिये। मुनिमहाराज बोले—हे बधिक! सुनो, जब मैंने उसके हृदय में नाना प्रकार का जगत् देखा तब मैं अपने कुटुम्ब में रहने लगा। पूर्व की स्मृति का विस्मरण किया और चेष्टा करने लगा। षोडश वर्ष पर्यंत सत् जानकर मैंने चेष्टा की, तब मेरे घर में एक उग्रतपा नाम माननीय ऋषि आये उनका मैंने बहुत आदर किया, चरण धोकर सिंहासन पर बैठाया और नाना प्रकार के भोजन से उनको तृप्त किया। उस ऋषि ने भोजन करके विश्राम किया, तब मैंने कहा—हे परम बोधवान्! अदृष्ट क्रोध को मैं जानता हूं और तुम परम बोधवान् हो, आपको आपही जानते हो, आने के समय आप थके हुए थे, परन्तु तुम्हारे अन्दर क्रोध दृष्टि नहीं आया। नाना प्रकार के भोजन करने पर आप प्रसन्न हुए, मुझे मालूम हुआ कि आप परम बोधवान् हो आप में रागद्वेष नहीं है, इसलिये मैं संशययुक्त होकर एक प्रश्न करता हूं, कृपा करके उसको दूर कीजिये। हे भगवन्! इस जगत् रूप नगर में दुर्भिक्ष पड़ता है, जनता मृत्यु वश हो जाती है, सब लोग कष्ट पाते हैं, इसका क्या कारण है, यह तो मैं जानता हूं कि जीव जैसे शुभ अशुभ कर्म करता है, ऐसे ही फल को प्राप्त करता

है, जैसे धान्य को बोता है तो समय पाकर फल भी अवश्य पाता है, ऐसे कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है, जिसने किया है वही भोगता है और इकट्ठा कष्ट क्यों आ पड़ता है, उग्रतपा बोले—हे साधो! पहले सुनो कि जगत् क्या वस्तु है, यह जगत् बिना कारण के उत्पन्न हुआ है, जो कारण बिना दृष्टि आये उसे भ्रम मात्र जानिये, इसलिये तुम विचार कर देखो कि जगत् क्या है और तू कौन है और इसमें क्या है और इसका अन्त परिणाम कहां तक है? हे व्याध! यह जगत् स्वप्नमात्र है और यह शरीर भी स्वप्न मात्र है, तू मेरा स्वप्न नगर है और मैं तुम्हारा स्वप्न नगर हूँ, सब जगत् स्वप्न नगर है, कारण कार्य कोई नहीं, सब आभासमात्र है, अभ्यास में कुछ अन्य वस्तु नहीं होती, इसलिये सब जगत् आत्मस्वरूप है, जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र होता है, सर्प कोई नहीं रस्सी होती है ऐसे सब जगत् चिन्मात्र रूप है, उसमें बना कुछ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, इसमें अहं होकर इस प्रकार चेतनता संवेदन फुरती है तब जगत् आकार का स्मरण होता है, जैसे जैसे संकल्प फुरता है ऐसा ऐसा जगत् भासता है जैसे स्वप्न सृष्टि नाना प्रकार हो भासती है, परन्तु अनुभव से इतर कुछ नहीं जैसे संकल्प नगर भासता है वह अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् भासता है। जिस संवित् में अपना स्वरूप स्मरण होता है उसको जगत् कारण कार्यरूप भासता है, वही जीव है, जिस संवित् को कर्म की कल्पना स्पर्श करती है, उसको उन कर्मों का फल नहीं लगता, कर्तव्य दृष्टि भी आता है, परन्तु उसके हृदय में कर्तव्य का अभिमान स्पर्श नहीं करता और जिनके हृदय में कर्तव्य का अभिमान होता है, उसको फल भी होता है। हे साधो! इस सृष्टि का एक विराट् पुरुष है उसका शरीर है और यह विराट् भी अपर विराट् के संकल्प में है, यह विराट् का रोमांच है, जब विराट् पुरुष के अंग में क्षोभ होता है और जीव की पाप वासना इकट्ठा आकर उदय होती है, जब वासना और अंग का क्षोभ इकट्ठा होता है तब उस स्थान में उपद्रव तथा कष्ट होता है, जैसे वन में बहुत वृक्ष होते हैं, उन पर वज्र आ पड़े, उससे सब चूर्ण हो जायँ, ऐसे इकट्ठे पाप से इकट्ठे ही मारे जाते हैं, इकट्ठे दुर्भिक्ष से कष्ट पाते

हैं, जैसे किसी पुरुष के शरीर को मक्खी काट जाये तो उससे वह अंग कांपता है, उस अंग के कांपने से रोम काँपने लग जाते हैं और यदि सर्पादि जीव कभी डस जाय तो सारा शरीर कष्ट पाता है और रोम रोम कष्ट पाता है, ऐसे यह जगत् विराट् पुरुष का शरीर है, जब किसी नगर में पाप उदय होता है, तब रोमरूप नगर जीव कष्ट पाते हैं और यदि सारे अंगरूप देश में पाप उदय होता है तो सर्प के काटने के समान विराट् का सारा शरीर क्षोभवान् होता है। उसके शरीर के रोम रूप जीव कष्ट पाते हैं, केवल आत्मसत्ता अनुभव रूप है, उसके प्रमाद से यह आपत्ति देखने में आती है कि यह जगत् कारण से उत्पन्न हुआ होता तो सत् होता। कारण से तो उत्पन्न हुआ नहीं सत् कैसे हो, इस जगत् प्रतीति करनी यही अज्ञान है, हे साधो! इस आकाश का कारण कोई नहीं पृथ्वी का कारण कोई नहीं, अविद्या का कारण भी कोई नहीं, स्वयंभू भी अकारण है, स्वयंभू उसका नाम है, जो अपने आपसे प्रकट है, उसका कारण कौन हो, जल अग्नि, वायु का कारण भी कहीं नहीं, यदि तुम कहो कि सबका कारण आत्मा है, तो आत्मा को निमित्त कारण मानोगे या समवायिकारण कहोगे, तो प्रथम पक्ष निमित्त कारण कहो तो नहीं बनता क्योंकि आत्मा अद्वैत है, जो दूसरी वस्तु नहीं तो निमित्त कारण किसका हो और समवायि कारण कहें तो भी नहीं बनता, समवायिकारण आप परिणामी से कार्य होता है आत्मा अच्युत है, अपने स्वरूप को नहीं त्यागता वह समवायिकारण कैसे हो, इसलिये आत्मा में कारण कार्य भाव नहीं, तो फिर जंगत् किसका कार्य हो, हे अंग! जो कारण से देखने में आवे उसको ज़ानिये कि भ्रम मात्र भासता है और यदि कहो कि कारण बिना पिंडाकार नहीं होते, कहीं कारण भी होगा तो हे अंग! जो यह पुरुष देह को त्यागता है और परलोक देखता है, कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है, उस शरीर का कारण कौन कहा जायेगा, वह तो कारण से उत्पन्न नहीं हुआ, भ्रममात्र है, ऐसे यह भी भ्रम मात्र जानिये, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आकार भासते हैं, वह किसी कारण से नहीं,

उत्पन्न हुए, जैसे आकाश में तरवरे और रंग भासते हैं, वे भ्रम मात्र हैं, ऐसे यह जगत् भ्रम मात्र है, जैसे बालक को अनहोता बैताल भासता है, उससे भीत होता है, ऐसे यह जगत् अनहोता स्वरूप के प्रमाद से भासता है, वास्तव से परमात्म सत्ता ज्यों की त्यों है, वही संवेदन से जगत् रूप होकर भासती है, इसलिये जगत् वही रूप है, जैसे वायु चलने ठहरने में एक ही रूप है, परन्तु चलने से भासता है ठहरने से नहीं भासता, ऐसे चित्त संवित् फुरने से जगत्रूप होकर भासती है, उसमें नाना प्रकार के शब्दार्थ दृष्टि आते हैं और जब फुरने से रहित होती है, तब अपने स्वभाव को देखती है, जब संकल्प की दृढ़ता हो गयी तब कारण भासने लगा, जिसको कारण कार्य सहित भासता है, उसको जगत् सत् भासता है और जिसको कारण कार्य से रहित भासता है उसको जगत् आत्मरूप है, जिसको कारण कार्य बुद्धि है उसको वही सत् है, पुण्य करेगा तब स्वर्ग सुख भोगेगा, पाप करेगा तब नरक दुःख भोगेगा, इसलिये उसको पुण्य करना भला है, जीवों के पाप जब इकट्ठे होते हैं, तब दुर्भिक्ष पड़ता है और मृत्यु आती है, जैसे पत्थरों की वर्षा होने से दुःख होता है ऐसा कष्ट पाते हैं और यदि मेरा निश्चय पूछो तो न पाप है न पुण्य है, न दुःख है, न जगत् है, जब स्वरूप के प्रमाद से अहंता उदय होती है, तब नाना प्रकार के विकार भासते हैं जब प्रमाद निवृत्त होता है तब सब आत्मरूप भासता है, इसलिये तू सब कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो, तब सब संशय मिट जायेंगे।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे निर्वाणप्रकरणे उ० स्वप्न विचारो नाम सप्तपंचाशदधिक द्विशततमः सर्गः ॥२५७॥

अष्टपंचाशदधिकद्विशततमः सर्गः ॥२५८॥

रात्रिसंवादवर्णनम् ।

मुनिवर बोले–हे बधिक! इस प्रकार उग्रतपा मुनि ने उपदेश किया, उससे मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ और मुझे अकृत्रिम पद की प्राप्ति हुई, जैसे साक्षात् विष्णु भगवान् आकर बैठ गये हो ऐसे उग्रतपा मुनि महाराज के उपदेश से मैं जगा, जैसे कोई धूलि धूसरित पुरुष स्नान करके उज्ज्वल हो, ऐसे मैं हो गया, अपनी पूर्वस्मृति और अवस्था स्मरण आ गयी, समाधिवाले शरीर को भी जाना ओर आत्मवपु को भी जाना, वह उग्रतपा यह तेरे पास बैठे हैं, अग्नि बोला–हे राजन्! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक विस्मय को प्राप्त हुआ और बोला–हे मुनीश्वर! बड़ा आश्चर्य है, जो तुम कहते हो स्वप्न में उग्रतपा ने उपदेश किया था फिर जाग्रत् में कहते हो कि यह बैठा है, तो यह बात तुम्हारी कैसे मानी जाये, जैसे बालक अपनी छाया में बैताल की कल्पना करे और कहे कि प्रत्यक्ष बैठा है, जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता ऐसे तुम्हारा वचन यथार्थ नहीं भासता, यह अपूर्व बात सुनकर मुझको संशय उत्पन्न हुआ है, उसे तुम दूर करो, मुनिवर बोले–हे बधिक! यह बात आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है, परन्तु जैसा वृत्तान्त हुआ है, संक्षेप से कहता हूं सुनो–जब उग्रतपा ने मुझे उपदेश किया तब मैंने कहा हे भगवन्! तुम यहां विश्राम करो जिस प्रकार मैं रहता हूं ऐसे तुम रहो, तब रहने लगा और मैं उसका उपदेश पाकर विचरने लगा, कि यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है, इसके सुख के लिये मैं क्या यत्न करता हूं, इन्द्रिय तो ऐसे हैं जैसे सर्प होते हैं इनका सेवक संसार बन्धन से कभी मुक्त नहीं होता, मेरे जीवनको धिक्कार है, वे महामूर्ख हैं, जो मृगवत् मरुस्थल के जलपान के लिये दौड़ते हैं, थक जाते हैं, तृप्त कदाचित् नहीं होते, मैं अविद्या से सुख के लिये यत्न करता था, इनसे तृप्ति कदाचित् नहीं होती, हे बधिक!

बांधव ममता का रूप हैं, समझो कि पावों में बेड़ियां हैं, अन्धकूप में गिरने का कारण हैं, उनके साथ बंधा हुआ विषयरूप कूप में पड़ा था, विचार किया कि बन्धन का कारण जो कुटुम्ब है, उसको मैं त्याग दूं, फिर विचार किया कि इनके त्याग में सुख नहीं मिलता, अब अविद्या को नष्ट करूं, हे बधिक! ऐसा विचारकर मैं गुरु के पास गया और मन में विचारा कि जगत् भ्रममात्र है, गुरु भी स्वप्नमात्र है, इनसे क्या मिलना है, फिर विचार किया कि यह ज्ञानवान् पुरुष हैं, इनको अहंब्रह्म का निश्चय है, इसलिये यह ब्रह्मस्वरूप हैं, कल्याण मूर्ति हैं, इनसे जाकर प्रश्न करू, तब मैंने जाकर प्रणाम किया और कहा—हे भगवन्! उस अपने शरीर को देख आऊँ और इसके शरीर को भी देखूं कि कहां है, जो इस जगत् का विराट् पुरुष है, हे बधिक! जब इस प्रकार मैंने कहा तब ऋषि ने हँसकर मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! वह तेरा शरीर कहां है, वह शरीर दूर गये हैं, अब कहां देखेगा, तू स्वयं जान लेगा, तब मैंने हाथ जोड़कर ऋषि से कहा, हे ऋषिवर! अब मैं जाता हूं, मैं जब तक आऊँ तब तक यहां बैठे रहना, हे बधिक! ऐसा कहकर मैं आधिभौतिक देह के अभिमान को त्यागकर अन्तवाहक शरीर के साथ उड़ा, आकाशमार्ग में उड़ता मैं थक गया, परन्तु शरीर कहीं न मिले, तब फिर ऋषिवर के पास आया और कहा—हे पूर्व अपर के वेत्ता! भूत भविष्य के ज्ञाता! वे दोनों शरीर कहां गये? न इस सृष्टि के विराट् का शरीर प्रतीत होता है, जिसके स्कन्दमार्ग हम आये थे और न अपना शरीर भासता है, हे संशयरूप अन्धकार के नाशक सूर्य! कहिये, उग्रतपा बोले—हे कमलनयन! और तपरूप कमल की खान के सूर्य! हे ज्ञानरूप कमल के धारण करने वाले विष्णु की नाभि! हे आनन्दरूप कर्म के निधान! तुम भी सब कुछ जानते हो, आत्मपद में जगे हुए हो, योगीश्वर हो ध्यान करकें देखो कि सब वृत्तान्त तुम्हें देखने को मिले, हे मुनिवर! यह जगत् असत्यरूप है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं, तुम विचार कर देखो कि शरीर की अवस्था तुमको दृष्टि आये और यदि मुझसे पूछता है तो मैं कहता हू, हे मुनीश्वर! जिस वन में तुम रहते थे, तुम्हारे शरीर कहां थे, एक समय उस वन में आग लगी, वहां

जो नाना प्रकार के वृक्ष तथा बेलें थीं सब जल गयीं और जल भी अग्नि से क्षुब्ध होने लगे और वनचर पशु पक्षी सब जल गये, महाकष्ट को प्राप्त हुए, वहां तुम्हारे शरीर भी जल गये, कुटी जल गयी, मुनिवर बोले–हे भगवन्! अग्नि से जो सारा वन जल गया, उस अग्नि का कारण कौन था? जो आग लग गयी, उग्रतपा बोले–हे मुनीश्वर! जिस जगत् में हम तुम बैठे हैं इसीका विराट् वही है, जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था और जिसमें उसका शरीर है और तुम्हारा समाधिवाला शरीर है, उसका विराट और है, वह सृष्टि उस विराट् का शरीर है, हे मुनीश्वर! उस विराट् के शरीर में जो क्षोभ हुआ, इससे अग्नि उत्पन्न हुई, शरीर और वृक्ष सब जल गये, इस सृष्टि के विराट् का नाम ब्रह्मा है, उस ब्रह्मा का विराट् अपर है, उसका विराट् आत्मा है, जो सदा अपने आपमें स्थित है, उसमें अपर कुछ बना नहीं, जिस पुरुष को उसका प्रमाद है, उसको उपद्रव होते भासते हैं और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं, इससे कर्मानुसार सुख दुःख को भोगता है, जिसको स्वरूप का साक्षात्कार है उसको जगत् आत्मरूप से भासता है, सर्वत्र ब्रह्म प्रतीति होती है, हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार वन के पशु पक्षी सब जल गये तब तुम्हारी कुटी को आग लगी और कुटी समेत तुम्हारे शरीर भी जल गये, जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था वह भी जल गया और तुम्हारे शिष्य भी जल गये, उसको ओज भी जल गया, तुम दोनों की संवित् आकाशरूप हो गयी, वह अग्नि भी वन को जला कर अन्तर्धान हो गयी। जैसे अगस्त्य मुनि समुद्र आचमन करके अन्तर्धान हो गया था, ऐसे ही अग्निदेव वन को जलाकर अन्तर्धान हो गये, तुम्हारे शरीर की राख भी नहीं रही, जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में दिखाई नहीं देती ऐसे तुम्हारे शरीर अदृष्ट हो गये, हे मुनीश्वर! जितना जगत् दीखता है सब स्वप्नमात्र है, मैं तुम्हारे स्वप्न में हूं और जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, वह सबका अपना आप है, जगत् उसका आभास है, जैसे संकल्प सृष्टि होती है, जैसे स्वप्ननगर होता है, जैसे गन्धर्व नगर होता है, ऐसे यह जगत् है, हे मुनीश्वर! यह जगत्

तेरे स्वप्न में स्थित है और तुझको चिरकाल की प्रतीति से जाग्रत् में कारण कार्य नाना प्रकार का सत् होकर भासता है, मुनीश्वर बोले—हे भगवन्! जो यह स्वप्ननगर सत् हो गया है तो सब ही स्वप्ननगर सत् होंगे, उग्रतपा बोले—हे मुनीश्वर! पहले तुम सत् को जान लो कि सत् क्या वस्तु है, जितना जगत् तुमको भासता है सबही स्वप्ननगर है, इसमें कोई पदार्थ सत् नहीं, इस जगत् को तू समाधिवाले शरीर की अपेक्षा असत् कहता है और जिसको तू जाग्रत् वपु कहता है उसको किसकी अपेक्षा कहेगा, यह तो अदृष्टरूप है क्यों, इसलिये इसको स्वप्न जान और जिस सत्तामें यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्न है उसकी सत्ताको तू जान, तब तुझे सत्पद की प्राप्ति हो जैसे यह जगत् आत्मसत्ता में आभास स्फुरण हुआ है ऐसे वह भी है, तू जगकर देख, इसमें और सबमें भेद कुछ नहीं और जितना जगत् भासता है सब आत्मरूप रत्न का चमत्कार है, जैसे सूर्य की किरणों से अन होता जल भासता है, ऐसे सब जगत् आत्मा में अन होता भासता है, आत्मा के प्रमाद से सत् भासता है, तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख, मुनीश्वर बोले—हे बधिक! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रि के समय कहते हुए, शय्यापर सो गये तब कुछ समय बाद जगे तब मैंने कहा—हे भगवन्! अन्य वृत्तान्त मैं पीछे पूछूंगा परन्तु यह संशय पहले दूर करो, कि आपने मुझे व्याध का गुरु किसलिये कहा, मैं तो व्याध को जानता भी नहीं, कि व्याध कौन है? उग्रतपा ऋषि बोले—हे दीर्घतपस्वी तू ध्यान करके देख, तू तो सब कुछ जानता है, जिस प्रकार का वृत्तान्त है, उसको जानेगा और यदि मुझसे पूछे तो मैं भी कहता हूं और यह वृत्तान्त तो बड़ा है, मैं तुझे संक्षेप से कहता हूं, हे मुनीश्वर! तुम्हारे देश में राजा की बांधी हुई मर्यादा और लोकधर्म को छोड़ देंगे तो दुर्भिक्ष पड़ेगा, बादल नहीं बरसेंगे, लोक दुःख पायँगें और मर मरकर समाप्त होंगे, तेरा कुटुंब भी मर जावेगा, कुटी भी नष्ट हो जायगी, वृक्ष फल फूल से रहित होंगे, एक तू और मैं दोनों मन में रह जायेंगे, क्योंकि हमको सुख और दुःख की वासना नहीं, हम विदित वेद्य हैं, विदित वेद्य

को दुःख कैसे हो, हे मुनीश्वर! कुछ समय तो इस प्रकार चेष्टा होगी, फिर कुटी के चारों ओर फूल फल तमालवृक्ष कल्पतरु कमलताल इत्यादि से लेकर नाना प्रकार की सामग्री होगी, बड़ी सुगंधि रहेगी, मोर कोकिलादि आकर विराजेंगे, भँवरे कमलों पर गुंजार करेंगे, ऐसा विलास प्रकट होगा, मानों इन्द्र का नन्दनवन यही है, ऐसी दशा होगी।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे रात्रि संवादोनामाष्ट पंचादशधिकद्विशततमः सर्गः ॥२५८॥

एकोनषष्टचधिक द्विशततमः सर्गः २५९

रात्रिप्रबोधवर्णनम् ।

मुनीश्वर बोले–हे बधिक! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीवर मुझको कहने लगे, हे मुनीश्वर! इस प्रकार वह वन होगा, तब तू और मैं तप करने में एक समय बैठे हुए होंगे, वहां एक व्यांध मृग के पीछे दौड़ता हुआ तेरी कुटी के निकट आयेगा, उसको तू सुन्दर कथा द्वारा उपदेश करेगा, उसमें स्वप्न का प्रसंग चलेगा उस प्रसंग को पाकर स्वप्न और जाग्रत् का वृत्तान्त वह पूछेगा उसको तू स्वप्न का प्रसंग कहेगा, उस स्वप्न प्रसग में उसको परमार्थ उपदेश करेगा, क्योंकि सत् पुरुषों का स्वभाव यह है और मेरे समागम का वृत्तान्त उपदेश करेगा, तेरे वचनों को पाकर वह पुरुष विरक्त चित्त होकर तप करेगा, उससे उसका अन्तःकरण निर्मल होगा और स्वप्न पद को प्राप्त होगा, हे मुनीश्वर! इस प्रकार वृत्तान्त होना है, वह मैंने तुझको संक्षेप से कहा है, तू भी ध्यान कर देख, तो इस प्रकार होना है, इस प्रकार से मैंने तुझको व्याध का गुरु कहा है, हे व्याध! इस प्रकार जब उग्रतपा ने मुझको कहा तब मैं सुनकर विस्मित (हैरान) हुआ, इसने क्या कहा बड़ा आश्चर्य है, ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती, कि क्या होना है, हे बधिक! इसी प्रकार मेरी और इसकी चर्चा हुई तब रात बीत गयी, प्रातःकाल मैंने स्नान करके उसको प्रसन्न करने के लिये

उसकी सेवा करनी आरम्भ कर दी और वहां रहने लगा, फिर मैंने विचार किया कि यह जगत् क्या है और इसका कारण कौन है, मैं क्या हूँ, तब विचार किया कि यह जगत् अकारण है, किसीका बनाया नहीं स्वप्न मात्र है, आत्मरूप चन्द्रमा की जगत्रूप चांदनी है उसका चमत्कार है वही आत्मसत्ता ही घट पट आदिक आकार हो भासती है इसलिये न कोई कर्म है, न क्रिया है, न कर्ता है न मैं हूं न जगत् है और यदि तू कहे क्यों नहीं, सर्व अर्थ सिद्ध होते हैं, ग्रहण त्याग सिद्ध होते हैं? तो सुन ग्रहण त्याग जो होता है वह पिंड से होता है और पिंड तत्व का होता है, वह पिंड न किसी तत्व से बना है, न अन्य किसी माता पिता से, यह तो स्वप्न में फुर आया, इसका कारण कौन कहें, यदि कहें भ्रममात्र है, तो भ्रम का कारण कौन है, भ्रांति का द्रष्टा कौन है, जिस शरीर से दृष्टि आता था उसका दृष्टारूप मैं तो भस्म हो गया, इसलिये जगत् अपर कुछ वस्तु नहीं, केवल आदि अन्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, वह मेरा स्वरूप है, वहां यह जगत्रूप होकर भासता है, अपर जगत् कुछ वस्तु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि पदार्थ सब आत्मरूप हैं, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, परन्तु कुछ अपर नहीं, ऐसे नाना प्रकार हो भासता है, आत्मा अपर नहीं और ब्रह्म सत्ता ही निराभास है, आभास भी हुआ नहीं, केवल चेतन सत्ता ऐसा रूप होकर भासती है, हे बधिक! इस प्रकार मैं विचार करके विगतज्वर हुआ, मुनीश्वर के वचनों से पर्वत की नाईं अचल अपने स्वभाव में स्थित हुआ, जो कुछ इष्ट अष्टि पदार्थ प्राप्त हो उसमें सम रहता था, निरभिलाष होकर अपनी सब चेष्टा करता परन्तु अपने स्वभाव में स्थित रहता, हे बधिक! सुख भोगने के लियें न मुझे जीने की इच्छा है न मरने की, न जीने में हर्ष है न मरने में शोक है, सदा आत्मपद में स्थित हूं, मुझको संशय नहीं, सब संशय फुरने में हैं, वह फुरना मुझमें नहीं इसलिये संसार भी नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे रात्रिबोधो नाम एकोनषष्टचधिक द्विशततमः सर्गः ॥२६०॥

षष्टयधिक द्विशततमः सर्गः २६०

यथार्थोपदेशवर्णनम् ।

मुनिवर बोले–हे व्याध! इस प्रकार मैंने निर्णय किया तब तीनों ताप मेरे नष्ट हुए और मैं वीतराग निःशंक हुआ, किसी पदार्थ की तृष्णा मुझको नहीं रही और निरहंकार हुआ, आत्मा में जो आत्माभिमान था निवृत्त हो गया, परम निर्वाण हुआ, निराधार और निराधेय हुआ, अपने स्वभाव आत्मतत्व में स्थित होकर सर्वात्मा हुआ, हे बधिक! जो कुछ शरीर का प्रारब्ध आकर प्राप्त हो उसमें यथा शास्त्र विचरने लगा, कर्तृत्व का अभिमान नहीं हुआ और जगत् मुझको आत्मरूप भासता और तृष्णा उत्पन्न करनेवाली मिथ्या बुद्धि आभास मात्र है, आभास कुछ वस्तु नहीं चिदाकाश आत्म सत्ता अपने आपमें स्थित है, हे बधिक! मुनीश्वर का कहा वृत्तान्त हो गया है, तू मेरे पास आ पहुंचा है, जो कुछ उपदेश किया है वह मैंने तुझको कहा है जो परम पावन सबका सार है, वह मैंने उपदेश किया है जिस प्रकार जगत् के पदार्थ तू और मैं जाग्रत् वृत्तान्त है, वह मैंने तुझे कहा है, व्याध बोला हे मुनीश्वर! इस प्रकार हुआ तब तू और मैं तथा ब्रह्मादिक भी सब स्वप्न के हुए क्यों, असत् ही सत की नाईं भासते हैं, मुनिमहाराज ने कहा–हे व्याध! तू मैं और ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब जगत् के पदार्थ हैं, न यह जगत् सत् है, न असत् है, न मध्य है, अनिर्वचनीय है, क्योंकि अनुभव रूप है, हे व्याध! यदि अनुभव से देखें तो वही रूप है, अनुभव से भिन्न कहें तो हैं ही नहीं, जैसे स्वप्न की सृष्टि अनुभव में फुरती है, यदि अधिष्ठान की तरफ देखें तो वही रूप है, उससे इतर कहने में नहीं आता, हे बधिक! जैसे कहीं नगर देखा है, परन्तु अब दूर है, यदि स्मृति से देखें तो भासता है, परन्तु कुछ बना नहीं, स्मृति मात्र है, ऐसे जितने पदार्थ भासते हैं, सब संकल्प मात्र हैं, बने नहीं तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख तू तो बोधवान् है, मिथ्या भ्रम में क्यों पड़ा है, हे व्याध! मैंने तुझे उपदेश किया है, उससे तुझको विश्राम हुआ

है या नहीं हुआ, पदपदार्थ में विश्राम हुआ है, जो ऐसी सत्ता है, उस परम पद में क्षण भर भी विश्राम नहीं पाया, क्योंकि दृढ़ भावना नहीं हुई है, हे बधिक! परम पद पाने का मार्ग यह है, कि सत्संग और सत् शास्त्र का विचार हो, इन दोनों में दृढ़ अभ्यास हो, इस मार्ग के बिना शान्ति नहीं मिलती, जब दृढ़ अभ्यास होगा तब शान्ति प्राप्ति होगी, चित्त भी निर्वाण होगा, द्वैत अद्वैत कल्पना मिट जाती है, इसीका नाम निर्वाण है, जब तक चित्त निर्वाण नहीं हुआ, तब तक राग द्वेष नहीं मिटता, जब अभ्यास के बल से चित्त निर्वाण हो जाता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है और आत्मपद प्राप्त होता है, शान्त शिव पद को पाता है, जो मान और मोह से रहित है और जिसनें संग दोष को जीता है, किसीके संग से बद्ध नहीं होता और नित्य आध्यात्मिक विचार करता है, जिसकी सब कामनाएँ निवृत्त हो गयी हैं और इष्ट अनिष्ट के विषय में राग द्वेष द्वन्द्व से मुक्त है, सुख दुःख में सम रहता है, ऐसा ज्ञानवान् पुरुष अविनाशी आत्मपद को पाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे यथार्थोपदेशो नाम षष्टयधिक द्विशततमः सर्गः ॥२६०॥

एकषष्टयधिक द्विशततमः सर्गः २६१

भविष्यत् कथावर्णनम् ।

अग्निदेव बोले—हे राजा विपश्चित! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब बधिक बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ, मुनीश्वर के वचन सुनकर मूर्तिवत् हो गया, जैसे कागज पर मूर्ति लिखी होती है, ऐसे आश्चर्य से स्थित हुआ और संशय के समुद्र में डूब गया, जैसे चक्र पर चढ़ा वर्तन घूमता है उसी प्रकार संशय चक्र में घूमने लगा, मुनिवर का उपदेश सुना, परन्तु अनाभ्यास के कारण आत्मपद में विश्रान्ति प्राप्त न हुई, हे राजन्! उसने परमार्थ के वचनों को अंगीकार नहीं किया, जैसे राख में डाली हुई आहुति व्यर्थ होती है, ऐसेही मूर्ख को उपदेश करना वृथा होता

है, मूर्खता से संशय में रहा और विचार करने लगा, कि यह संसार अविद्यक है, यदि मैं इसका अन्त मालूम करूँ तो मुझको आत्मपद भासे, इसलिये तब करूँ, हे राजन्! विपश्चित्! इस प्रकार विचार कर उठा, उठकर उनके पास फिरने लगा और पवित्र चेष्टा करने लगा, व्याध का धर्म उसने त्याग दिया, जिस प्रकार वह चेष्टा करे, ऐसे वह भी अधिक चेष्टा करे, बड़ा उग्र तप करने लगा, जब सहस्त्र वर्ष तप करते बीत गया परन्तु मन में कामना यही रखी कि मेरा शरीर बड़ा हो, प्रतिदिन बहुत भोजन बढ़े, मैं अविद्यक संसार का अन्त ले सकूं कि कहां तक चला जाता है, जब अविद्या का अन्त आयेगा, तब आगे आत्मा का दर्शन होगा, तब सहस्त्र वर्ष के अनन्तर समाधि से उतरा और गुरु के निकट आकर प्रणाम किया और कहा, हे भगवन्! मैंने इतने समय तक तप किया है, मुझे शान्ति नहीं मिली, मुनिवर बोले—हे बधिक! तुझे उपदेश किया है, इसका तुमने भले प्रकार अभ्यास नहीं किया इस कारण से तुझे शान्ति नहीं मिली, हे बधिक! मैंने तेरे हृदय में ज्ञानरूप अग्नि की चिनगारी डाली थी, परन्तु तुमने अभ्यास के पवन से इसको जगाया नहीं, इससे आच्छादित हो गयी, जैसे बड़े काष्ठ के नीचे छोटी सी चिनगारी रखी हुई आच्छादित हो जाती है, हे बधिक! तू न मूर्ख है, न पंडित है, यदि तू पंडित होता तो आत्मपद में स्थिति पाता और यह भी जब नष्ट नहीं होगा, तब अभ्यास की दृढ़ता होगी, तब वह ज्ञान और शान्ति उदय होगी, अब जो तुम्हारे हृदय में है, भविष्यत् में भी होनी है, वह मैं तुझको कहता हूं, हे व्याध! यही तुमने भली प्रकार विचारा है, कि संसार अविद्यक है, इसका मैं अन्त लूं कि कहां तक चला जाता है, इसलिये मैं शरीर बढ़ाऊं और इसको किसी प्रकार देखूं, अब तुम्हारे चित्तमें ही यही निश्चय है और आगे यही करना है, यदि सौ युग पर्यन्त उग्र तप करेगा तब तुझ पर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होगा, तब देवताओं सहित तेरे घर में आयेगा, तुझसे कहेगा कि कुछ वर मांगो, तब तुम कहोगे हे देव! कैसा अविद्यक जगत् है, अविद्या किसी अणु में है, जैसे दर्पण किसी ठौर मलिनता होती है, उसके नाश होने पर दर्पण शुद्ध होता है, ऐसे आत्मा

के किसी कोने में अविद्यारूप मलीनता है उसका नाश हुए चिदात्मा का साक्षात्कार मुझको होगा, जब अविद्यारूप जगत्का अन्त देखूंगा, तब मुझको आत्मा भासेगा, मेरा शरीर घड़ी घड़ी में योजन पर्यन्त बढ़ता जाय, जैसे गरुड़ का वेग होता है, ऐसे बढ़ता जाय और मृत्यु भी मेरे वश में हो, शरीर भी आरोग्य है और ब्रह्मांड खर्पर को भी लांघ जाऊँ, जहां मेरी इच्छा हो वहां चला जाऊं, मुझको कोई न रोके, जब संसार का अन्त देखूंगा तब आत्मा को पाऊंगा, हे देव! इतना वर दो, जिससे मेरा मनोरथ पूर्ण हो और मैं कुछ नहीं कहता, हे बधिक! जब तू इस प्रकार वर मांगेगा, तब ब्रह्माजी कहेंगे कि ऐसाही हो, तब तेरा तप से दुर्बल हुआ शरीर चन्द्रमा और सूर्य के समान पुनः प्रकाशवान् होगा और घड़ी में योजन पर्यन्त बढ़ता जायेगा, जैसे गरुड़ तीक्ष्ण वेग से चलता है ऐसे तेरा शरीर वेग से बढ़ता जायेगा, जैसे प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है और प्रकाश बढ़ता जाता है, ऐसे तेरा शरीर बढ़ता जायेगा और चन्द्रमा सूर्य की अग्नि की नाईं प्रकाशवान् होगा, ब्रह्माजी वर देकर अन्तर्धान हो जायेंगे। अपनी ब्रह्मपुरी में जा पहुंचेंगे और तेरा शरीर प्रलयकाल के समुद्र की नाईं बढ़ता जायेगा और जैसे वायु से सूखे तृण उड़ते हैं, ऐसे तुझको ब्रह्माण्ड उठते भासेंगे तब तेरा शरीर बढ़ता हुआ ब्रह्माण्ड खर्पर को भी लांघ जावेगा, उसके आगे आकाश भासेगा, पुनः ब्रह्मांड भासेगा आगे फिर ब्रह्मांड इसी प्रकार तू कई ब्रह्माण्ड लांघता जायेगा, परन्तु तुझको खेद कुछ न होगा, महा आकाश को भी तू आच्छादित कर लेगा, वहां किसी तत्व का आवरण आयेगा, उसको तू वर प्राप्त देह से सूक्ष्मता से लांघता जावेगा, हे बधिक! इसी प्रकार कई सृष्टियां लांघ जायेगा, वह सृष्टियां कैसी हैं? इन्द्र जालवत् हैं, जो दीर्घदर्शी हैं, वे इसको असत् जानते हैं और जो प्राकृत जन हैं, उनको जगत् सत् भासता है और ज्ञानवान् को मिथ्या भासता है, उस मिथ्या जगत् को तू लांघता जायेगा, वहां जाकर स्थित होगा जहां अनन्त सृष्टियाँ फुरती भासेंगी, परन्तु जिसमें सृष्टि फुरती है उस अधिष्ठान का तुझको ज्ञान न होगा वहां तू देखेगा कि मैं बड़ा उत्कृष्ट हुआ हूं और ऐसा अभिमान तुझको उदय होगा, तब तप का फल

वैराग्य भी आकर उदय होगा और साथ ही यह संस्कार तेरे हृदय में फुरेगा, उससे शरीर का तू निरादर करेगा और कहेगा–हा कष्ट! हा कष्ट! हे देव! यह क्या शरीर तुमने मुझको दिया है, जगत् का अन्त लेने को मैंने शरीर बढ़ाया था, वह तो अन्त कहीं नहीं मिला क्योंकि अविद्या नष्ट नहीं हुई अविद्या तब नष्ट होती है तब ज्ञान होता है आत्मज्ञान तब होता है जब सच्छास्त्र का विचार और सत् संग होता है, यदि सत्संग और सत् शास्त्र मुझको प्राप्त हो तब ज्ञान उत्पन्न होगा, यह तो मुझको ऐसा शरीर प्राप्त हुआ है, कि बड़ा बोझ उठाये फिरता हूं, अनेक सुमेरु पर्वत हों इसके आगे तृणवत् हैं, ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीर है, इस शरीर के साथ मैं किसी की संगति करूं और किस प्रकार शास्त्र का श्रवण करूं, यह शरीर मुझको दुःखदायी है, इसलिये इस शरीर का त्याग करूं हे बधिक! ऐसा विचार कर तू प्राणायाम करेगा, उसकी धारण से शरीर को त्यागेगा जैसे पक्षी फल को खाकर बीज को त्याग देता है, जैसे इन्द्र के वज्र से खंडित हुए पर्वत गिरते हैं, ऐसे एक सृष्टि भ्रम में तेरा शरीर गिरेगा उसके नीचे कई पर्वत नदियाँ जीव चूर्ण हो जायँगे, वहां बड़ा खेद होगा, तब देवता चंडिका की आराधना करेंगे, वह चंडिका भगवती तेरे शरीर का भोजन कर जायेगी, तब सृष्टि में बहुत कल्याण होगा, इस वन में जो तमाल वृक्ष है उसके नीचे तू तप करेगा, यह तेरा मैंने भविष्य कहा है, अब जैसी तेरी इच्छा है ऐसा कर व्याध बोला–हे भगवन्! बड़ा कष्ट है कि मैं इतना खेद पाऊंगा, इसलिये वही उपाय करो जिससे यह भावना निवृत्त हो जाय, मुनीश्वर बोले–हे बधिक! जो कुछ होना हो वह अन्यथा कभी नहीं होता, जो कुछ शरीर का प्रारबध है वह अवश्य होता है, जैसे धनुष से छूटा हुआ बाण तब तक चला जाता है जब तक उसमें वेग होता है, वेग जब पूर्ण होता है तब पृथ्वी पर गिर पड़ता है, अन्यथा नहीं होता, ऐसेही जैसा प्रारबध का वेग उछलता है ऐसाही जो होता है वही होता है, उससे विपरीत नहीं होता, ज्योतिः शास्त्र वाले तो भविष्यत् दशा पहले ही कह देते हैं और वैसे ही होता है, तब उसी प्रकार होता हैं क्योंकि जो

होनी होती है यदि न हो तो कही क्यों जाय, इसलिये भावी मिटती नहीं, हे बधिक! मैंने तुझको दो मार्ग कहे हैं, जब तक इसको कर्म की कल्पना स्पर्श करती है तब कर्म के बन्धन से नहीं छूटता और यदि कर्म की कल्पना आत्मा को स्पर्श न करे तो कर्म कोई बंधन नहीं करता, क्योंकि उसको अद्वैत आत्मा का अनुभव होता है द्वैत रूप कर्म दिखाई नहीं देते, सुख दुःख सब आत्मरूप हो जाते हैं और कर्म तब तक बंधन करते हैं, जब तक आत्मबोध नहीं हुआ, जब आत्मबोध होता है तब सब कर्म दग्ध हो जाते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भविष्यत्कथा वर्णनं नाम एकषष्टचधिकद्विशततमः सर्गः ।।२६१।।

द्विषष्टचधिकद्विशततमः सर्गः २६२

सिद्धनिर्वाण वर्णनम् ।

व्याध बोला—हे भगवन्! यह जो मुझे आपने कहा है, उसे सुनकर आश्चर्यान्वित हुआ हूं, भला शरीर गिरने के बाद मेरी क्या अवस्था होगी, जब विस्ताररूप वासना आकाशरूप होगा। मुनिवर बोले—हे बधिक! तेरा शरीर गिरेगा तब तेरी संवित् प्राणवासना सहित आकाशरूप हो जायगी, महासूक्ष्म अणुवत् हो जायगी, उस संवित् में तुझको फिर नाना प्रकार का जगत् भासेगा, पृथ्वी, देश, काल पदार्थ सब भास आयँगे, जैसे सूक्ष्म संवित में स्वप्न का जगत् भास आता है, ऐसे तुझको जगत् भास आयेगा, वहां तेरी संवित् में यह स्फुरण होगा कि मैं राजा हूं, आठ वर्ष का हूं और मेरे पिता का नाम इन्द्र है और माता का नाम प्रद्युम्न की पुत्री बधलेखा है और मेरा पिता मुझे राज्य देकर वन को गया है और तप करने लगा है, चारों ओर समुद्र पर्यन्त हमारा राज्य है, हे बधिक! वहां तेरा नाम सिद्ध होगा, वहां तू कई शतवर्ष पर्यन्त राज्य करेगा और नाना प्रकार के विषय भोगेगा, हे बधिक! एक विदूरथ नाम

का राजा पृथ्वी पर होगा, वह तेरे साथ युद्ध करेगा, तेरी पृथ्वी सीमा लेने का यत्न करेगा, तब तू मन में विचार करेगा कि मैं बड़ा सिद्ध हूं, सैंकड़ों वर्ष मैंने निर्विघ्न भोग भोगे हैं। परन्तु एक विदूरथ नाम का शत्रु है, उसका नाश करूं, हे बधिक! उसके मारने के लिये तू सेना लेकर चढ़ाई करेगा, तब चार प्रकार की सेना का नाश होगा, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, यह चार प्रकार की सेना है, दोनों ओर की सेनाएं नष्ट होंगी और तुम रथ से उतरकर परस्पर युद्ध करोगे, तुम्हें भी बहुत से शस्त्र लगेंगे, शरीर कट जायेगा तो भी तू उसके सामने जाकर युद्ध करेगा, उसको मारेगा टांगें काट देगा, कुल्हाड से उसको मारकर अपने घर में आयेगा, सब दिक्पाल तुझसे डरेंगे, तू बड़ा तेजस्वी होगा, कि बड़ा आश्चर्य है विदूरथ को जीतकर यमलोक भेज दिया है, बड़ा आश्चर्य है, महान आश्चर्य है, तब तू सिद्ध राजा कहलायेगा, हे मंत्री! इसमें क्या आश्चर्य है, मेरे भय से तो दिक्पाल काँपते हैं और प्रलयकाल के समुद्र मेघवत् मेरी सेना है, जिसका किसी ओर से आदि अन्त नहीं आता, विदूरथ को जीतने में मुझे बड़ा आश्चर्य है, तब मंत्री कहेगा हे राजन्! इतनी सेना तुम्हारे साथ है तो क्या हुआ, उस विदूरथ की स्त्री को आप नहीं जानते, वह कैसी देवी है, जिसके क्रोध से सम्पूर्ण विश्व का नाश हो सकता है, उसको उसकी स्त्री लीला ने तपोबल से वश में किया है, वह सरस्वती माता है, ज्ञानशक्ति है, सर्वभूतों के हृदय में स्थित है, जैसा कोई अभ्यास करता है सरस्वती वही सिद्ध करती है, हे राजन्! वह राजा और उसकी स्त्री लीला सरस्वती से मोक्ष मांगते थे कि किसी प्रकार हम संसार बन्धन से मुक्त हों, इस कारण से वह मोक्षभाव को प्राप्त हुए और तेरी जय हुई, राजा बोले–हे अंग! जो सरस्वती मेरे हृदय में स्थित है तो मुझको मुक्त क्यों नहीं करती, मैं भी सदा सरस्वती की उपासना करता हूं, मंत्री बोला–हे राजन्! सरस्वती जो चितसंवित् है उसमें जैसा निश्चय होता है उसकी सिद्धता होती है हे राजन्! तू अपनी जय ही सदा मांगता था, इस कारण से तेरी जय हुई और वह मुक्ति मांगता था उसकी मुक्ति

हुई, उसका संस्कार पिछला उज्ज्वल था, उससे मुक्त हो गया और तेरा संस्कार पूर्व जन्म का तामसी था, इस कारण से तुझको इच्छा न हुई और शान्ति भी नहीं मिली, आदि परमात्मसत्ता से जो सब पदार्थ प्रकट हुए हैं सुनो, केवल जो आत्मसत्ता निष्किंचन पद है वह सदा अपने स्वभाव में स्थित है, उसमें चेतनता संवेदन फुरती है, अहं, अस्मि जो मैं हूं, इस भावना का नाम चित्त है इस चेतनता ने देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् की कल्पना की है, इस कल्पना से चित्त विश्व में स्थित है और चित्तआत्मा में फुरा है, प्रमाद से देहादिक की कल्पना की गयी है, राजा बोला–हे साधो! आत्मा तो निष्किंचन केवल पद निर्विकार है उसमें तामस देह की उत्पत्ति कैसे हुई, मंत्री बोला–हे राजन्! जैसे स्वप्न में प्रमाद से तामसी वपु दृष्टि आता है, परन्तु है नहीं, ऐसे यह आकार भी दृष्टि आते हैं, परन्तु हैं नहीं अज्ञान से भासते हैं, इसलिये मुझे प्रमाद हुआ है, तब वासना के अनुसार जन्म पाता फिरा है, इस प्रकार तुम्हारे बहुत जन्म बीते हैं, परन्तु पिछला शरीर जो तुमने भोगा है वह महातामसी था, इस कारण से तुझको मोक्ष की इच्छा न हुई, हे राजन्! तुम्हारे बहुत जन्म बीते हैं उनको मैं जानता हूं, तुम नहीं जानते, राजा ने कहा–हे निर्मल आत्मन्! तामस तामसी किसको कहते हैं, मंत्री बोला–हे राजन्! एक सात्विक सात्विकी है, एक केवल सात्विकी है, राजस राजसी है, एक केवल राजसी है, एक तामस तामसी है, एक केवल तामसी है, भिन्न भिन्न सुनो, हे राजन्! जो निर्विकल्प अचेतन चिन्मात्र सत्ता से संवित फुरी है, उसकी अहंप्रतीति अधिष्ठान में रही है, अपर निश्चय को नहीं प्राप्त हुई, अनात्म भाव को स्पर्श नहीं किया, ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं वे सात्विक सात्विकी हैं और जिनको विभूति सात्विकी पदार्थ भासने लगे हैं और स्वरूप का प्रमाद है, बुद्धि के साथ स्पर्श किया भी और न किया भी वह केवल सात्विक है और जिसकी संवित् को बुद्धि के साथ सम्बन्ध हुआ है और नाना प्रकार के राजसी पदार्थ में सत्य

प्रतीति हुई है और राजस कर्म में दृढ़ अभ्यास है, उसके अनुसार शरीर को धारण करते चले गये, स्वरूप की ओर नहीं आये, चिरपर्यन्त ऐसे रहे, वह राजस राजसी फुरता है और जिनको बोध में अहं प्रतीति हुई स्वरूप का प्रमाद है और जगत् सत्य भासता है, राजसी पदार्थ में अधिक प्रतीति है, राजसी कर्म का अभ्यास है, उसके अनुसार जन्म पाते हैं, पुनः शीघ्र ही स्वरूप की ओर आवे, उनका नाम केवल राजसी है, वह राजस राजसी से श्रेष्ठ है और जिनको स्वरूप का प्रमाद है और जगत् में सत् प्रतीति हुई है, उस जगत् में जो तामस कर्म हैं, उन कर्मों में दृढ़ अभ्यास हुआ हैं, उससे महागूंढ जन्म को पाते चिरपर्यन्त चले जाते हैं, दैवयोग से कभी मोक्ष की संगति प्राप्ति होती है तो भी त्याग जाते हैं वे तामस तामसी है और जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है और तामसी कर्म की रुचि है और उन कर्मों के अनुसार जन्म पाते जाते हैं, पाते पाते जी तटस्थ हो गया, अर्थात् तामसी कर्म को त्यागकर मोक्ष परायण हो गया, वह केवल तामसी है, तामस तामसी श्रेष्ठ है, हे राजन्! तू तामस तामसी था, इस कारण से सरस्वती से तू अपनी जय ही माँगता रहा, मोक्ष के लिये यत्न तुमने नहीं किया, राजा बोला–हे निर्मल चित्त मंत्री! मैं तामस तामसी था, इस कारण से मोक्ष की इच्छा न की, परन्तु अब मुझको वही उपाय कहो जिससे मेरा अहंभाव निवृत्त हो और आत्मपद की प्राप्ति हो, मंत्री बोला–हे राजन्! निश्चित बात है कि जो कोई जैसे वस्तु की इच्छा करता है, उसको वह पदार्थ प्राप्त होता है और जिसकी भावना से अभ्यास करता है वह पदार्थ निसन्देह प्राप्त होता है और जिसका दृढ़ अभ्यास करता है वही रूप हो जाता है, ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जो अभ्यास द्वारा प्राप्त न हो, पहले दिन यदि कोई किसी के विकर्म (निषिद्धकर्म) हुआ हो और अगले दिन शुभ कर्म करे तब उस विकर्म का लोप हो जाता है, शुभकर्म ही सुख हो जाता है, इसलिये जब तू आत्मपद का अभ्यास करेगा, तब तुझे आत्मपद प्राप्त होगा, तेरा जो तामस तामसी भाव है, वह निवृत्त हो जायेगा, हे राजन्! जो पुरुष

किसी पदार्थ के पाने की इच्छा करता है, अगर उसमें दृढ़ रहे तो अवश्य उसको पाता है, देह इन्द्रियों का अभ्यास इसको दृढ़ हो रहा है, उससे बार बार देह इन्द्रियों को पाता है, जब उनसे उलटकर आत्मपद का अभ्यास करे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी, देह इन्द्रियों का वियोग हो जायेगा, इसलिये सदा आत्मपद का अभ्यास करो, उससे आत्मपद प्राप्त होगा। मुनिवर बोले–हे बधिक! इस प्रकार तू सिद्ध राजा होगा और मंत्री तुझको उपदेश करेगा, तब तू राज्य का त्याग करेगा और वन में चला जायेगा, उपदेश करनेवाला मंत्री और अन्य मंत्री सेनायुक्त तुझको कहेंगे कि तू राज्य कर, सब कहेंगे परन्तु तेरा चित्त विरक्त रहेगा, राज्य को अंगीकार न करेगा, उस वन में महात्मा का स्थान होगा, तू वहां जायेगा, उस समय परम वैराग्ययुक्त होगा, उनका कथा प्रसंग तुझे स्पर्श करेगा, सन्तों से कुछ मांगों नहीं तो भी अमृत वर्षा करते हैं, जैसे पुष्प से सुगन्धि न मांगो तो भी मिलती है, ऐसे सज्जन से मांगे बिना भी अमृत प्राप्त होता है, जब सन्त के अमृत वचन सुनते हैं, तब इसको विचार उत्पन्न होता है कि मैं कौन हूं और यह जगत् क्या है, जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, तब तू उनके हृदय को पाकर इस प्रकार जानेगा कि मैं अचेतन चिन्मात्र स्वरूप हूं और जगत् मेरा अभ्यास है और चित्त का फुरना ही जगत् का कारण है, वह चित्त ही मुझमें नहीं तो जगत् कैसे हो, जगत् भी मेरे में है नहीं, मैं अपने ही आपमें स्थित हूं, हे बधिक! इस प्रकार सर्व अर्थ से मन को शून्य करके अपने स्वरूप में स्थित होगा, तब परमानन्द निर्वाण पद को प्राप्त होगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सिद्धनिर्वाणवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२६२॥

त्रिषष्टयधिक द्विशततमः सर्गः २६३

विपश्चितद्देशान्तरभ्रमवर्णनम् ।

मुनीश्वर बोले—हे बधिक! इस प्रकार तेरी भावी है वह सब मैंने तुझे कही है आगे तू जैसे अच्छा समझता है ऐसा कर, अग्निदेव बोले—हे राजा विपश्चित्! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने बधिक को कहा तब बधिक आश्चर्य को प्राप्त हुआ और वहां से उठ खड़ा हुआ। मुनीश्वर सहित स्नान को गये, दोनों वही तप करें और शास्त्र को विचारें। जब कितना काल बीत गया, तब मुनीश्वर निर्वाण को प्राप्त हुए। वहां अधिक ही तप करने को समर्थ हुआ कि किसी प्रकार मेरी अविद्या नाश हो, हे राजा विपश्चित! सौ युग पर्यन्त वधिक ने तप किया, तब ब्रह्माजी देवताओं को साथ लेकर आये और कहा—वर मांगो, तब उस वधिक ने कहा—मेरा शरीर बड़ा हो, मैं अविद्या को देखूं। हे राजन्! वधिक ने समझा कि इस वर के मांगने से मेरा भला नहीं, परन्तु दृढ़ भाव के चल से जानकर यहीं वर मांगा कि मेरा शरीर बड़ा हो, घड़ी घड़ी में योजन पर्यन्त बढ़े, तब ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही होगा। इस प्रकार कहकर भगवान् ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये। उसका शरीर बढ़ने लगा। कई ब्रह्माण्डों पर्यन्त चला गया, जिस ओर देखो अनन्त सृष्टि दृष्टि में आती, अविद्या रूप जब थका, तब वापिस हुआ कि अविद्या का कहीं अन्त नहीं आता। इस शरीर को मैं कहां तक लिये फिरूं, इसका अब त्याग करूं, तब ही आत्मपद की प्राप्ति होगी, हे राजा विपश्चित्! तब प्राणों को खींचकर शरीर का त्याग कर दिया, वही शरीर यहां आ पड़ा है, जिस ब्रह्मांड से यह गिरा है, वह हमारे स्वप्न की सृष्टि है, अर्थात् अन्य सृष्टि का था, स्वप्नवत् इस सृष्टि में इसकी प्रतिमा आ पड़ी है और यहां जाग्रत सृष्टि में आ पड़ा है, उसने पृथ्वी पहाड़ सब नाश कर डाले हैं और जहां गिरा है, वहां आकाश में तरवरे की नाईं उनको भासता है और यहां इस प्रकार गिरा

है, जैसे इन्द्र का वज्र होता है, हे विपश्चितों में श्रेष्ठ! वही वधिक का महा शव था, जब उसका शरीर गिरा तब भगवती ने उसका रक्त पान किया, उससे उसका नाम रक्ता भगवती हुआ और अन्य जो शरीर की सामग्री रही, वह मेघा पृथ्वी हुई, जब बहुत समय बीता, तब मृत्तिका पृथ्वी हो गयी, उस पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा और ब्रह्माजी ने नूतन सृष्टि रची है, उस पृथ्वी पर अब कल्याण हुआ है, अब जहां तुम्हारी इच्छा है, वहां जाओ। मैं भी अब जाता हूं, इन्द्र को यज्ञ करना है, उसने मेरा आह्वान किया है, वहां मैं जाता हूं। भास बोला—हे राजा दशरथ! इस प्रकार मुझको कहकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये, जैसे महाश्याम मेघ से सौदामिनी चमक कर अन्तर्धान हो जाती है, ऐसे अग्निदेव अन्तर्धान हो गये, तब मैं वहां से चला, एक सृष्टि में गया, वहां अन्य प्रकार के शास्त्र और अन्य प्रकार के प्राणी थे और एक सृष्टि में गया, वहां ऐसे प्राणी देखे जिनकी टाँगें काष्ठ की और आचार मनुष्य का था। आगे अपर सृष्टि में गया, उसके शरीर पाषाण के और दौड़ते हैं, व्यवहार करते हैं, उससे आगे अन्य सृष्टि में गया, वहां उनकी शास्त्र रूप मूर्ति थी, उसके आगे गया, वहां क्या देखता हूं कि प्राणी बैठे ही रहें, बातें करते हैं, परन्तु खाते पीते नहीं, हे राजा दशरथ! इस प्रकार मैं चिरकाल तब फिरता रहा, परन्तु अविद्या का अन्त नहीं आया, तब मैंने विचार किया कि आत्मज्ञानी हो सकूं तो अन्त मिलेगा, ऐसा विचार करके मैं एक वन में गया और ज्ञान प्राप्ति के लिये तप करने लगा। जब कुछ काल तप किया, तब चित्त में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि किस प्रकार सन्तों के पास जाऊं, उनकी संगति से मुझे शान्तपद मिले। हे राजन्! ऐसा विचारकर मैं वहां से चला, कल्पवृक्ष के वन में आया, वहां मुझको एक पुरुष मिला, उसने कहा—हे साधो! कहां चले हो, मेरे पास तो आओ, मैंने उसे पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—मैं तुम्हारा तप हूं, ज़ो तुमने किया है। अब जो कुछ वर तुम मांगो, मैं तुम्हें दूं, इसलिये मांगो, मैंने कहा—हे साधो! मेरी

इच्छा यही है कि मैं आत्मपद को प्राप्त करूं, तब उसने कहा–हे साधो! अब तुझे एक और मृग का जन्म पाना है, वह शरीर तेरा अग्नि में जलेगा, तब तू मनु शरीर पायेगा और ज्ञानवानों की सभा में जायेगा, वहां तुझे सब जन्मों और कर्मों की स्मृति आ जायेगी और स्वरूप की प्राप्ति होगी, अब तू मृग शरीर धारण कर। हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार उसने कहा, तब मैंने चिन्तन किया कि मृग हो जाऊं, तब मुझमें स्वप्नरूप प्रतिमा फुरी, मैं मृग हो गया। तुम्हारी सृष्टि में एक पहाड़ की कन्दरा में विचरने लगा और उसका राजा शिकार खेलने चला, उसने मुझे देखा और मेरे पीछे घोड़ा दौड़ाया, उसके आगे मैं दौड़ता जाता था, घोड़े का वेग तीक्ष्ण था, मुझको उसने पकड़ लिया, अपने घर में ले आया। तीन दिन रक्खा परन्तु बहुत सुन्दर चेष्टा देखी। इस कारण से यहां ले आया। हे राजा दशरथ! अब मैंने मृग के शरीर को त्यागकर मनुष्य का शरीर पाया है, जो कुछ तुमने पूछा था, मैंने सुना दिया है। वाल्मीकि बोले–हे अंग! जब इस प्रकार विपश्चित कह रहा था, तब रामजी ने विपश्चित से प्रश्न किया। रामजी बोले–हे विपश्चित्! वह मृग तो अपर दृष्टि का था, यहां क्योंकर आया? भास बोला–हे रामजी! जहां वह शव पड़ा था, वह भी अपर सृष्टि का था, एक समय आकाश में दुर्वासा ऋषीश्वर ध्यान लगाये बैठे थे, इस मार्ग से इन्द्र पृथ्वी पर आये, यज्ञ के लिये मार्ग में दुर्वासा बैठे थे, उनको शव जानकर इन्द्र ने चरण स्पर्श किया, तब समाधि से उतरकर उन्होंने इन्द्र को देखा और शाप दिया कि हे शक्र! तुमने शव जानकर मुझको चरण लगाया, इसलिये तेरे यज्ञ को एक शव नाश करेगा, जिस स्थान पर वह पड़ेगा, वह पृथ्वी भी नाश हो जायेगी, जब ऐसा उस ऋषि ने शाप दिया और इन्द्र यज्ञ करने लगा, तब अपर सृष्टि से वह शव आ पड़ा। पृथ्वी चूर्ण हो गयी, वह तो उस प्रकार गिरा और मैं तब मुनीश्वर के वर से मृग होकर तुम्हारी सभा में आया हूं, हे रामजी! जो असत् होता तो प्रकट न होता और यदि सत् होता तो स्वप्नरूप न होता, जो स्वप्न की सृष्टि का था, हे रामजी! तुम हमारी स्वप्न सृष्टि में

हो और हम तुम्हारी सृष्टि के स्वप्न में है, जैसे यह स्वप्न पदार्थ का होना हुआ है, ऐसे यह शव का होना हुआ है और मृग का भी हुआ है, जैसे यह सृष्टि है, ऐसे वह भी सृष्टि है, यदि यह सृष्टि सत् है तो वह भी सत् है, परन्तु वास्तव से न यह सत् है, न वह सत् है, यह भी भ्रममात्र है, वह भी भ्रममात्र है, सत् वस्तु वही है, जो मनसहित षट् इन्द्रियों से अगम है, वह परमसत्ता है, जिससे यह सर्व है और जिसमें सर्व है, ऐसी जो परमात्मसत्ता है, वह परमसत्ता है, उसमें सब कुछ बनता है, हे रामजी! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प का मिलना क्या आश्चर्य है? छाया और धूप एक नहीं होती, सत् और झूंठ भी इकट्ठा नहीं होता, ज्ञान अज्ञान इकट्ठा नहीं होता, परन्तु आत्मा में इकट्ठे होते देखते हैं, हे रामजी! जब यह पुरुष शयन करे तब अनुभवरूप होता है, फिर स्वप्न में स्वप्न नगर भास आता है। ज्ञान अज्ञान सत् झूंठ भास आते हैं, जैसे विरुद्ध पदार्थ आकाश में यह भास आते हैं, ऐसे संकल्प से संकल्प मिल जाता है, इसमें क्या आश्चर्य है और सब जगत् आकाशवत् शून्य है, निराकार निर्विकार है, निराकार में आकार, निर्विकार में विकार भासते हैं, यही आश्चर्य है और जितने आकार दृष्टि आते हैं, वही निराकार रूप हैं, ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार होकर भासती है, जगत् को असत् कहना भी नहीं बनता, जो असत् होता तो प्रलय होकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अग्नि से आकाश पुनः प्रकट न होता। प्रलय होकर जो पुनः उत्पन्न होते हैं, इसलिये असत् नहीं, चेतनरूप आत्मा ही का स्वभाव है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, हे रामजी! जब प्रलय होती है, तब सब भूत पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, नष्ट होकर पुनः उत्पत्ति होती है, इसलिये असत् नहीं चेतन रूप आत्मा ही का स्वभाव है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, हे रामजी! जब प्रलय होती है, तब सब भूत पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, नष्ट होकर जो फिर उत्पत्ति होती है, इसी से कहा है कि यह सृष्टि आत्मा का आभास मात्र है और ब्रह्मसत्ता में अनन्त जगत् फुरते हैं और अपनी सृष्टि ही को जीव जानते हैं। यह जीव सब ब्रह्मरूप समुद्र के कण है, वह अपर की

सृष्टि को अपर नहीं जानता, जैसे सिद्ध की सृष्टि अपने अपने अनुभव में फुरती है, जैसे स्वप्न की सृष्टि भिन्न भिन्न होती है, ऐसे यह अपनी अपनी सृष्टि है और मिल भी जाती है। आत्मा में सब कुछ बनता है, यदि अनादि और आदि इकट्ठी नहीं होती, विधि और निषेध इकट्ठे नहीं होते। विकार और निर्विकार इकट्ठे नहीं होते। वह आकाश में और आत्मसत्ता स्वप्न में इकट्ठे दृष्टि आते हैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं। आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, हे रामजी! चार सत्ताएँ इस जगत् में फुरी हैं, सारघी, गोपती, समान, ब्रह्मसत्ता और अविद्या, उनमें सारघी और गोपती सत्ता जिज्ञासु की भावना में भासती है और समान सत्ता ज्ञानी को भासती है और अविद्या अज्ञानी को भासती है, वह चारों ब्रह्म से भिन्न नहीं, ब्रह्म ही के नाम हैं, ब्रह्म सत्ता स्वभाव चेतनता से ऐसे हो भासती है, जैसे वायु फुरने से चलती भासती है और ठहरने से अचल भासती है, ऐसे चेतनता फुरणे से नाना प्रकार के कौतुक उठते हैं, फुरणे से रहित निर्विकल्प हो जाता है, ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो इसमें सत् नहीं और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं जो असत् नहीं, सब समान् है, जैसे आकाश के फूल हैं, ऐसे घटपटादिक हैं और जैसे इनके उत्थान का अनुभव होता है, ऐसे उनको अनुभव होता है। सब पदार्थ सत्ता ही से सत् भासते हैं और जितने शब्द अर्थ फुरे हैं, सब मिट जाते हैं, इसलिये असत् हैं, आत्मसत्ता यथावत् है, उसका नाश कदाचित् नहीं होता, हे रामजी! जगत् के आदि में भी ब्रह्मसत्ता थी और अन्त में भी वही होगी। यदि आदि और अन्त में वही है, तो मध्य में भी वही जानिये, इसलिये सब जगत् आत्मरूप है, जितने शब्द हैं, सब अर्थ संयुक्त है, सर्व शब्द और अर्थाकार अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, इसलिये सब जगत् ब्रह्मरूप है, जिसको यथार्थ अनुभव होता है, उसको ऐसे भासता है और जिसको यथार्थ का अनुभव नहीं हुआ, उसको नाना प्रकार का जगत् भासता है और आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं, सब आकाशरूप है, ब्रह्म सत्ता अपने आप में स्थित है और ब्रह्म से इतर जो कुछ भासता है,

वह ब्रह्ममात्र नाशरूप है। दृश्य पदार्थ सब नाश रूप हैं, जिसने सत् को जाना है, उसके साथ कुछ प्रयोजन नहीं, दूसरा कुछ बना नहीं, तो मैं क्या कहूं, जिसमें यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं, उस अधिष्ठान को देखें तो सब वही रूप भासेंगे और जो पुरुष स्वभाव में स्थित हैं, उसको यह वचन शोभाप्रद होते हैं। मैंने अनन्त सृष्टियां देखी हैं, और भिन्न भिन्न उसके आचार देखे हैं, दशों दिशाओं में मैं फिरा हूं, भोग बहुत भोगे हैं, बड़ी बड़ी विभूतियां पाई हैं और देखी हैं, अनेक प्रकार की चेष्टाएँ की हैं, परन्तु मुझको स्वप्न ही प्रतीत हुआ, क्योंकि सब भोग पदार्थ और कर्म अविद्या से रचे हुए हैं, उस अविद्या का अन्त लेने के लिये बहुत काल पर्यन्त फिरता रहा हूं, अनेक युगों पर्यन्त फिरा हूं, अन्त कहीं नहीं आया और वसिष्ठ की कृपा से अब मुझको स्वरूप का साक्षात्कार हुआ है और अविद्या नष्ट हुई है। परमानन्द को प्राप्त हुआ हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विपश्चित देशान्तरभ्रमवर्णनं नाम त्रिषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः ।।२६३।।

चतुःषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः २६४

स्वर्ग नरक प्रारब्धवर्णनम् ।

वाल्मीकि मुनि बोले–हे साधो! जब इस प्रकार विपश्चित ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ। सूर्य भगवान् अस्ताचल को चले गये, मानों विपश्चित का वृत्तान्त जानने के लिये अन्य सृष्टि में गये हैं, नौवत्त नक्कारे बजने लगे, मानों महाराजा दशरथ की जय मना रहे हैं, उस समय राजा दशरथ ने धन से जवाहिरात भूषणों और वस्त्रों से राजा विपश्चित का आदर सत्कार किया। दशरथ से लेकर सब राजाओं ने महर्षि वसिष्ठजी को प्रणाम किया और सब परस्पर प्रणामादि करके अपने अपने स्थानों की ओर चले गये और जाकर स्नान भोजन से निवृत्त

हुए और रात को आराम किया। प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही सब परस्पर प्रणामादि करके अपने अपने स्थानों की ओर चले गये और जाकर स्नान भोजन से निवृत्त हुए और रात को आराम किया, प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही परस्पर प्रणाम नमस्कारें करके अपने अपने स्थान पर आकर विराजमान हो गये। वसिष्ठजी पूर्व के प्रसंग को लेकर बोले–हे रामजी! यह अविद्या अविद्यमान है और भासती है, यह आश्चर्य है जो वस्तु सदा विद्यमान है, वह नहीं भासती और जो अविद्या है ही नहीं, वह सदा भासती है, इसी का नाम अविद्या है, हे रामजी! आत्मसत्ता अनुभव रूप है, इसका अनुभव होना निश्चय हो रहा है और अविद्यक जगत् जो कभी कुछ हुआ ही नहीं, वह स्पष्ट होकर भासता है, यह अविद्या है, हे रामजी! सिद्ध राजा के मंत्री का उपदेश भी तुमने श्रवण किया और विपश्चित का वृत्तान्त भी श्रवण किया। विपश्चित के मुख से भी श्रवण किया। अब इस विपश्चित की अविद्या नष्ट होती है, हमारे आशीर्वाद से और यथार्थ वचनों से अब यह जीवन्मुक्त होकर विचरेगा, इसकी अविद्या अब नष्ट होती है। मेरे उपदेश से जीवन्मुक्त होकर जहां इसकी इच्छा है, वहां विचरे, परन्तु जब आत्मा की ओर आया तब अविद्या नष्ट हुई, आत्मतत्व को यथार्थ न जानना, इसका नाम अविद्या है, वह आत्मज्ञान से नष्ट हो जाती है, जैसे अन्धकार तब तक रहता है, जब तक सूर्य उदय नहीं हुआ, जब सूर्य उदय होता है, तब अन्धकार नहीं रहता, ऐसे अविद्या तब तक अनन्त है, जब तक आत्मा की ओर नहीं आया। जब आत्मा का साक्षात्कार हुआ कि अविद्या का अत्यन्ताभाव हो जाता है, अविद्या अविद्यमान है, असम्यक्दर्शी को सत् भासती है, जैसे मृगतृष्णा का जल अविद्यमान है, उसको विचार किये अभाव हो जाता है, इसी प्रकार सम्यक् विचार द्वारा अविद्या का अभाव हो जाता है। हे रामजी! अविद्यारूप विष की लता है, वह देखने में पुष्पित होने से सुन्दर प्रतीत

होती है, परन्तु स्पर्श करने से कांटे लगते हैं और फल खाने से महान् कष्ट देती है। उसके पुष्प फल क्या हैं, इन्द्रियों के शब्दादि सब विषय जो देखने मात्र में सुन्दर भासते हैं, वही फलफूल हैं, जब इनको स्पर्श करता है, तब तृष्णारूप कांटे चुभते हैं और इन्द्रियों के भोग भोगने से रागद्वेष रूप कष्ट मिलता है, हे रामजी! आकाश में इन्द्रधनुष नाना प्रकार के रंगोंवाला देखने में आता है, परन्तु अन्दर से शून्य है, अनहोता प्रतीत होता है, ऐसे अविद्या अन होती भासती है, जैसे वह धनुष जलरूप मेघ का आश्रय रहता है, ऐसे यह अविद्या जड़, मूर्ख के आश्रय रहती है और अविद्या रूप धूल है, वह जिसको स्पर्श करती है, उसको आवरण कर लेती है, जब तक अर्थ नहीं जाना, तब तक भासती है, विचार करने से कुछ नहीं निकलता, जैसे सीपी में रूपा भासता है, विचार करने से अभाव हो जाता है, ऐसे विचार करने से अविद्या नष्ट हो जाती है, चंचल हो भासती है, हे रामजी! अविद्यारूप नदी है और तृष्णा रूप उसमें जल है, इन्द्रियों के विषय आवर्त हैं, रागरूप तेंदुए हैं, जो पुरुष इस नदी के प्रवाह में पड़ा है, उसके बड़े कष्ट मिलते हैं जो तृष्णा जल के प्रवाह में बहते जाते हैं, उनकी अविद्यारूप नदी का अन्त नहीं आता और जो किनारे के सामने होते ही पार चले गये हैं, उनको कोई कष्ट नहीं होता, क्योंकि वे वैराग्य और अभ्यासरूप बेड़ी पर चढ़े हैं, जो लोग अविद्या के कार्यों में भावना रखते हैं, वे मूर्ख हैं, यह जगत् अविद्या का विलास है, एक ऐसी सृष्टि है, जिसमें सैंकड़ों चंद्रमा उदय होते हैं और हजारों सूर्य उदय होते हैं, और कई ऐसी सृष्टियां हैं, उनमें जीव सदा समता भाव को लिये विचरते हैं और सदा आनन्दी ही रहते हैं और कई ऐसी सृष्टियां हैं, जहां अंधकार नहीं होता और कई ऐसी सृष्टियां हैं, जहां प्रकाश और तम जीव के अधीन हैं, जितना प्रकाश चाहो, उतना ही करे, कई ऐसी सृष्टियां हैं, जहां जीव न मरते हैं, न बूढ़े होते हैं, सदा एकरस रहते हैं, प्रलयकाल में सब इकट्ठे ही

मरते हैं, कहीं ऐसी सृष्टि हैं, जहां स्त्री कोई नहीं, कहीं पहाड़ की नाईं जीव के शरीर हैं, हे रामजी! इनसे लेकर जो अनंत ब्रह्माण्ड हैं, वे फुरते हैं, वह अविद्या का विलास है, जैसे समुद्र में वायु से तरंग फुरते हैं, वायु के बिना नहीं फुरते, ऐसे ही अविद्यारूप वायु के संयोग से परमात्मरूप समुद्र में जगत्रूप तरंग उठते हैं और मिट भी जाते हैं, हे रामजी! बड़े बड़े मणिमय, मुक्तामय, स्वर्णमय और धातुमय जो स्थान हैं और भक्ष्य, भोज्य, चोष्य लेह्य चार प्रकार के तृप्ति कारक पदार्थ हैं, घृतरूप पदार्थ हैं, ईख के रस के समुद्र हैं, मक्खन दूध दही के समुद्र हैं, अमृत के तालाब हैं और बड़े बड़े कल्पवृक्ष तथा तमाल वृक्षों के स्थान हैं, सुन्दर अप्सराएँ हैं, दिव्य वस्त्र हैं और भी जो पदार्थ हैं, सब संकल्परूप हैं, अविद्या के रचे हुए हैं, इनकी तृष्णा करने वाले मूर्ख हैं, उनके जीवन को धिक्कार है। हे रामजी! यह अविद्या का विलास है, विचार करने से कुछ नहीं निकलता, जैसे मरुस्थल में अनहोती नदी भासती है, विचार करने से नहीं रहती, ऐसे ही आत्म विचार करने से अविद्या का विलास जगत् नष्ट हो जाता है, जिसको आत्मा का प्रमाद है, उसको देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि इष्ट अनिष्ट कई प्रकार के पदार्थ भासते हैं, कारण कार्य भाव से जगत् स्पष्ट भासता है और जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है, उसको सब आत्मा भासता है, हे रामजी! एक सदृष्ट दृष्टि है, एक अदृष्ट दृष्टि है, यह जो प्रत्यक्ष भासती है, वह सदृष्ट दृष्टि है और जो दृष्टि नहीं आती, वह अदृष्ट दृष्टि है, दोनों तुल्य हैं और आकाश में जो सृष्टि सिद्ध रच लेते हैं, वह क्या है, संकल्पमात्र है, क्योंकि उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है और अनेक प्रकार की रचना है, उनकी स्वर्ण की पृथ्वी है, रत्नों और मणियों से जड़ी हुई है और इन्द्रियों के अनेक प्रकार के विषय हैं, अमृत कुंड भरे हुए हैं, तम प्रकाश अपने अधीन हैं और अनेक प्रकार की रचना बनी हुई है, वह क्या है, संकल्पमात्र है? इसी प्रकार यह जगत् संकल्प मात्र है, जैसा जैसा संकल्प होता है, ऐसी ऐसी सृष्टि आत्मा में हो भासती है, हे रामजी! सृष्टिरूप अनेक रत्न आत्मरूप डब्बे

में हैं, जिस पुरुष को आत्मदृष्टि प्राप्त हुई है, उसके लिये सर्व सृष्टि आत्मरूप है और जिसको आत्म दृष्टि प्राप्त नहीं, उसको सर्व सृष्टि जगत् भिन्न भिन्न भासता है, जैसा संकल्प दृढ़ होता है, ऐसा पदार्थ भासता है, जितना जगत् भासता है, सब संकल्प मात्र है। यदि तुझे ऐसा तीव्र संवेग हो कि आकाश में नगर स्थित हो जाये, तब वही भासने लग जायेगा, हे रामजी! जिस ओर यह पुरुष दृढ़ निश्चय करता है, वही सिद्ध हो जाता है, यदि आत्मा की ओर एकत्र होता है, तब वही सिद्ध हो जाता है, यदि दोनों ओर हो तो भटकना पड़ता है। यदि जगत् की सत्यता को छोड़कर आत्मपरायण हो रहे तो तीव्र भावना से मोक्ष प्राप्त होता है, यदि संसार की भावना होती है तो संसार की प्राप्ति होती है, जैसा अभ्यास करता है, तदनुसार सिद्धि होती है और जो आदि सृष्टि हुई है, वह अकारण है, उसमें दूसरी वस्तु कुछ नहीं, वही रूप है, फिर जैसी जैसी भावना होती है, उसके अनुसार जगत् भासता है, जिसकी भावना धर्म की ओर होती है और सकाम होती है, उसको स्वर्गादिक सुख प्रतीत होते हैं और जिसकी भावना अधर्म में होती है, उसको नरकादिक दुःख भोगते हैं, शुभकर्म से शान्ति की इच्छा नहीं भासती, क्योंकि शुभ कर्म भी दो प्रकार के हैं, एक से स्वर्ग सुख भासते हैं, दूसरे से सिद्धि की भावना से सिद्धलोक भासते हैं और जिसको अशुभ भावना होती है, उसको नाना प्रकार के नरक भासते हैं, हे रामजी! जब यह संवित् अनात्मा में आत्माभिमान करती है, उनके कर्म में अपने आपको कर्ता जानती है, वह पाप से अनेक दुःख पाती है, वे दुःख अकथनीय हैं, जैसे पहाड़ों के नीचे पिस जाने से कष्ट होता है, अंगारों की वर्षा से जैसे कष्ट होता है, जैसे अन्धकूप में गिरने से कष्ट होता है, परंतु स्त्री का सुख भोगने से अंगारों के साथ स्पर्श करता है, आग से तपाये हुए लोहे को कंठ से लगाता है और जिस स्त्री ने पर पुरुष को भोगा है, वह अन्धेरे कूप रूप उलूखल में खड्गरूप मूसल से कटती है और जो देह अभिमानी पुरुष देवता पितर अतिथि को दिये बिना भोजन करता है, उसको भी यमदूत

बड़ा कष्ट देते हैं, उसका मांस खड्ग और बरछी से काटा जाता है, परलोक में भूख प्यास से बहुत कष्ट मिलता है और जिन नेत्रों से पर स्त्री को देखा है, उन नेत्रों को शस्त्रों से प्रहार किया जाता है, एक वृक्ष के पत्र हैं, वे लगते हैं, खड्ग के प्रहार की तरह लगते हैं, शूली पर चढ़ाया जाता है, इत्यादि कष्ट इनको होते हैं और जो शुभकर्म करते हैं, वे स्वर्ग को भोगते हैं, इसलिये जैसा जैसा कर्म करते हैं, उसके अनुसार जगत् को देखते हैं, जिस जिस भाव का चिन्तन करते हैं, उसको प्राप्त होते हैं, केवल वासनामात्र संसार है, जैसे निश्चय होता है, वैसे ही भासता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे स्वर्गनरक प्रारब्धवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२४६।।

पंचषष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः २६५

निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

राम बोले—हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर और वधिक का वृत्तान्त कहा है, बड़ा आश्चर्यरूप है, यह वृत्तान्त स्वाभाविक हुआ है अथवा किसी कारण कार्य से हुआ है। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! समुद्र से तरंग उठते हैं ऐसे ब्रह्म से यह प्रतिमा स्वाभाविक उठती है, वृत्तान्त कहा है, बड़ा आश्चर्यरूप है, यह वृत्तान्त स्वाभाविक उठती है, जैसे पवन में फुरना स्वाभाविक होता है, वह आत्मा का चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होती है, वह वही रूप है, उससे इतर कुछ नहीं, चिन्मात्र में जो चेतनता फुरी है, वह जैसे फुरी है, वैसे स्थित है, जब तक इससे इतर अपर फुरना नहीं होता तब तक वही रहता है, जिस प्रतिभा से कार्य कारण भासता है, जैसे शुद्ध चिदाकाश में स्वप्न की सृष्टि भासती है, उसमें साररूप वही है, वही चित्त चमत्कार से फुरता है, जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं, वे समुद्ररूप हैं, उससे इतर कुछ वस्तु नहीं, ऐसे जितना

शब्द अर्थ जगत् भासता है, वही चिन्मात्र है, इतर कुछ वस्तु नहीं, जिनको ऐसा यथार्थ अनुभव हुआ है, जिनको जगत् स्वप्नपुर और संकल्प नगरवत् भासता है, पृथ्वी आदिक पदार्थ पिंडाकार नहीं भासते, उनको सब ब्रह्मरूप हो जाता है, हे रामजी! जो वस्तु व्याभिचारी नाशवान् है, वह अविद्यारूप है और जो अव्यभिचारी अविनाशी वस्तु है, वह ब्रह्मसत्ता है, वह ब्रह्मसत्ता ज्ञान संवित्‌रूप है, अपने भाव को कदाचित् नहीं त्यागती। अनुभव करने सर्वदाकाल प्रकाशित है, उसमें अविद्या कैसे हो, जैसे समुद्र में धूल का अभाव है, ऐसे आत्मा में अविद्या का अभाव है, जितने आकार दृष्टि आते हैं, सब चिदाकाश रूप हैं, जैसे तू मन में संकल्प धारणकर इन्द्र हो बैठे और चेष्टा भी इन्द्र जैसी करने लगे, अथवा ध्यान से इन्द्र रचे, जैसे वह ध्यान से प्रतिभा सिद्ध हो तो जब तक संकल्प रहे, तब तक वही भासे, जब इन्द्र का संकल्प क्षीण हो जाये, तब इन्द्रभाव की चेष्टा भी निवृत्त हो जाती है, संकल्प से वही चिन्मात्र इन्द्ररूप हो भासती है, ऐसे जितना जगत् भासता है, सब चिन्मात्ररूप है, संवेदन से पिंडाकर हो भासता है, जब संवेदन फुरना निवृत्त होता है, तब सब जगत् आत्मरूप हो भासता है और ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, जैसे फुरना होता है, ऐसा हो भासता है, सब जगत् उसका चमत्कार है और निराकार है, जैसे समुद्र में तरंग समुद्ररूप होते हैं, ऐसे निराकार परमात्मा में जगत् भी आकाशरूप है, इतर कुछ नहीं, सर्व ब्रह्मस्वरूप है, इसका नाम परमबोध है, जब इस बोध की दृढ़ता होती है, तब मोक्ष होता है, जिसको सम्यक् बोध होता है, उसको जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है और अपना आप भासता है और जिसको सम्यक् बोध नहीं हुआ, उसको नाना प्रकार का द्वैतरूप जगत् भासता है, हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्र से तीक्ष्ण हुई है और वैराग्य के अभ्यास से सम्पन्न निर्मल हुई है, उसको आत्मपद प्राप्त होता है और जिसकी बुद्धि शास्त्र के अर्थ से निर्मल नहीं हुई है उसको अज्ञान सहित जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषके नेत्र में दूषण होता है, उसको आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं और तरवरे

भ्रम से भासते हैं, ऐसे अज्ञान से जगत् भासता है जितना जगत् जाग्रत जगत् है, स्वप्नमात्र है, जब स्वप्न में होता है, तब स्वप्न भी जाग्रत प्रतीत होता है और जाग्रत स्वप्नवत् हो जाता है और जाग्रत में स्वप्न हो जाता है। जाग्रत सत् भासती है, वह अल्पकाल का नाम स्वप्न है, दीर्घकाल का नाम जाग्रत है, आत्मा में दोनों का तुल्य भाव होता है, जैसे क्षण में दो भाई जोड़े के रूप में जन्म लेते हैं, वह नाम मात्र दो हैं, वास्तव से एक रूप है, ऐसे जाग्रत स्वप्न तुल्य ही है और जब यह पुरुष शरीर को त्यागता है, तब परलोक इसको जाग्रत हो जाता है और यह जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे स्वप्न से जगा हुआ स्वप्न के पदार्थों को भ्रममात्र जानता है और जाग्रत को सत् जानता है, ऐसे सब परलोक जाता है, तब इस जगत् को स्वप्नवत् भ्रममात्र जानता है और कहता है, स्वप्न जैसा मैंने देखा था, वह परलोक सत् हो भासता है, फिर वहां से गिरता है, इस लोक में आ पड़ता है, तब इस लोक को सत् जानता है और जाग्रत मानता है और वह परलोक को स्वप्न भ्रम मानता है, हे रामजी! जब तक इसका शरीर के साथ सम्बन्ध है, तब तक अनेक बार जाग्रत देखता है और अनन्त ही स्वप्न देखता है, हे रामजी! जैसे मृत्यु पर्यन्त इसको अनेक स्वप्न आते हैं, ऐसे मोक्ष पर्यन्त इसको अनेक जाग्रत रूप जगत् भासते हैं। भ्रमान्तर में इनकी सत्यता और जाग्रत में स्वप्न के पदार्थ कोई स्मरण करता है, जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकर अपने जन्म को स्मरण करता है और कहता है सब भ्रममात्र थे, ऐसे जब यह जायेगा, तब कहेगा, जब भ्रम मात्र प्रतिभा मुझको भासी थी, न कोई बंध है, न कोई मोक्ष है, क्योंकि अविद्यक दृश्य है तो बन्ध मोक्ष कैसा? जब चित्त की वृत्ति निर्विकल्प होती है, तब मोक्ष भासता है और जब तक वासना विकल्प सत् है, तब तक बंध भासता है, हे रामजी! आत्मा में बंध मोक्ष दोनों नहीं, बंध हो तो मोक्ष भी हो, बंध नहीं तो मोक्ष कैसे हो, बंध और मोक्ष दोनों चित्त संवेदन में भासते हैं, इसलिये चित्त को निर्वाण करो, तब सब कल्पना मिट जायेगी, जितने पदार्थ के प्रतिपादन करने वाले

शब्द हैं, उनको त्यागकर निर्मल ज्ञान मात्र जो आत्मसत्ता है, उसमें स्थिति प्राप्त करो, जो कुछ खान–पान, बोल–चाल आदि क्रियाएँ, उन सबको करो, परन्तु अन्दर से परमपद पाने का यत्न करो, हे रामजी! नेति नेति से सर्व शब्द का अनुभव करो, फिर अभाव का भी अभाव करो, उसके पीछे जो शेष रहेगा, वह आत्मसत्ता परम निर्वाण रूप है, उसमें स्थित हो और जो कुछ अपना आचार कर्म है, उसको यथा शास्त्र करो और हृदय से सर्व कल्पना का त्याग करो, इस प्रकार आत्मसत्ता में स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे निर्वाणोपदेशो नाम पंचषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः ।।२६५।।

षट्षष्टयधिकद्विशततमः सर्गः २६६

अविद्यानाशोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं, वे सब चिदाकाश रूप हैं, ज्ञानवान् को सदा वही भासते हैं। आत्मा से इतर कुछ नहीं भासता। रूप, दृश्य अवलोक इन्द्रिय, मनस्कार फुरना इसी का नाम संसार है, यह भी आत्मरूप है। आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जैसे अपनी संवित् स्वप्न में रूप अवलोकन मनस्कार होकर भासती है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, परन्तु अज्ञान से भिन्न भिन्न भासती है और जो जगा है, उसको अपना आप भासता है, जैसे अपनी चेतनता ही स्वप्नपुर होकर भासती है, ऐसे जगत् के पूर्व जो चेतनसत्ता थी, वह जगत् रूप होकर भासती है और जगत् आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं, वही स्वरूप है, जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत होता है, इससे तरंगरूप हो भासता है, ऐसे आत्मा का स्वभाव चेतन है, वही आत्मसत्ता चेतनता से जगत् आकार हो भासती है, इस प्रकार जानकर जो परम शान्त निर्वाणपद है, उसमें

स्थिति प्राप्त करो। हे रामजी! जगत् कुछ है नहीं और प्रत्यक्ष भासता है, असत् ही सत् होकर भासता है, यह आश्चर्य है। जो निष्किंचन है और किंचन की नाईं होकर भासता है, आत्मसत्ता सदा अद्वैत और निराकार है, परन्तु अज्ञान दृष्टि से नाना प्रकार के विकार भासते हैं, जब समस्त विकारों का निषेध करके असत्‌रूप जान लिया जाये, तब सबका अभाव होने पर आत्मसत्ता शेष रहती है, जैसे शून्यस्थान में अन होता बेताल भास आता है, ऐसे अज्ञानी को अन होता जगत् आत्मा में भास आता है और जो पुरुष स्वभाव में स्थित हुए हैं, उनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासता है, जब सच्छास्त्र का विचार और सत्संग होता है और उनके तात्पयार्थ में जब दृढ़ अभ्यास होता है, तब स्वभाव सत्ता में स्थिति होती है और जिन पदार्थों को पाने के लिये यह यत्न करता है, वे मायिक पदार्थ बिजली के चमत्कारवत् उदय भी होते हैं और नष्ट भी होते हैं, यह पदार्थ विचार बिना सुन्दर भासते हैं, इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं, क्योंकि उनको जगत् सत् भासता है और ज्ञानवान् को जगत् पदार्थ की तृष्णा नहीं होती, क्योंकि वह जगत् को मृगतृष्णा की नाईं असत् जानता है और ब्रह्मभावना में दृढ़ है और अज्ञानी को जगत् की भावना है, इसलिये ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता, ज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी ही जानता है, जैसे सोये हुए पुरुष को निद्रादोष से स्वप्न आता है, उसमें जगत् भासता है, जाग्रत पुरुष जो उसमें निकट बैठा है, उसको वह स्वप्नवत् जगत् नहीं भासता है, वह असत् है, उसके निश्चय को स्वप्नवाला नहीं जानता और स्वप्नवाले के निश्चय को वह जाग्रतवाला नहीं जानता, ऐसे ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मृत्तिका की सेना को बालक सेना करके मानता है, जो जानने वाले बड़े पुरुष हैं, उनको सब मृत्तिकारूप भासता है, जब वह बालक भले प्रकार जानता है, तब उसको भी सेना और वेताल का अभाव हो जाता है, मृत्तिकारूप भासती है, ऐसे ज्ञानवान् को सब जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है, हे रामजी! जब इस पुरुष को आत्मा का अनुभव होता है, तब जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं

रहती, जैसे स्वप्न में किसी को मणि प्राप्त होती है, तब प्रेम से उसको रखता है, जब जगता है तब उसको भ्रम जानकर उसकी इच्छा नहीं करता, ऐसे जब आत्मपद में जगेगा, तब जगत् के पदार्थों की इच्छा न करेगा, जैसे मरुस्थल की नदी को असत् जानता है, तब उसमें जलपान के लिये यत्न नहीं करता, ऐसे जब जगत् को असत् जानता है, तब जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करता। जिस शरीर के निमित्त यत्न करता है, वह शरीर भी क्षण भंगुर है, जैसे पत्र के ऊपर जल की बूंद आकर स्थित होती है, वह क्षणभंगुर है, असार है, पवन लगने से क्षण में गिर जाती है, ऐसे यह शरीर नाशवान् है, जैसे मृग धूप से तपा हुआ मरुस्थल की नदी को सत् जानकर जलपान करने के लिये दौड़ता है, वह मूर्खता से कष्ट पाता है, परन्तु तृप्त नहीं होता, ऐसे मूर्ख मनुष्य विषय सम्बन्धी पदार्थों को सत् जानकर उनके लिये यत्न करते हैं और तृप्त कदाचित् नहीं होते, हे रामजी! यह पुरुष अपना आप ही मित्र है और अपना आप ही शत्रु है, जो अपने आपको यत्न करके उद्धृत करता है, सन्मार्ग पर चलता है, तब इसका अपना आप ही मित्र होता है, जो सन्मार्ग पर नहीं चलता और पुरुषार्थ से अपना उद्धार नहीं करता, वही अपने आपका आप ही शत्रु है, क्योंकि वह स्वयं अपने उद्धार के लिये पुरुषार्थ नहीं करता और जन्म मरण रूप संसार में अपने आपको डालता है, जो पुरुष पुरुषार्थ करके अपना उद्धार करता है, वह अपने आप पर दया करता है, हे रामजी! सांसारिक विषय कीचड़ है, जो इसमें गिरा हुआ है और अपने आपको निकालने की दया नहीं करता, वह महान् अज्ञानरूप अन्धकार को प्राप्त होता है, जो पुरुष इंद्रियों को जीतकर आत्मपद में स्थित नहीं होता, उसको शान्ति नहीं मिलती। बाल्यकाल में बुद्धि शून्यता होती है, वृद्ध अवस्था में अंग क्षीण हो जाते हैं और युवावस्था में इन्द्रियों के जीतने की सामर्थ्य नहीं होती तो फिर कब होती है और जो तिर्यगादियोनियां हैं, वे मृतकवत् हैं, यत्न करने का समय तो युवावस्था है, क्योंकि बालक अवस्था तो जड़रूप है, वृद्धावस्था अति निर्बल है, उसमें तो अपने अंग

उठाने कठिन हो जाते हैं, तो विचार करने की सामर्थ्य कहां होगी, वह अवस्था तो बालक अवस्था के ही समान है, इसलिये यदि कुछ हो सकता है तो यौवन में ही होगा, यदि इस अवस्था में भी लंपट ही रहे तो महाअनिष्ट नरक की प्राप्ति होगी। हे रामजी! विषयों में प्रसन्न न होना, यह शरीर नाशवान् है, तो विषयों को किससे भोगना है। वेद शास्त्र भी कहते हैं और अपना अनुभव भी यही मानता है कि शरीर नाशरूप है, क्योंकि इस शरीर में सद्भावना करके जो विषयों के सेवन की इच्छा करता है, उससे आगे मूर्ख कोई नहीं, इसलिये जब इन्द्रियों को जीतेगा, तब जन्म जन्मान्तर नहीं पाने पड़ेंगे, हे रामजी! तुम जगो, अपने आपको अविनाशी रूप जानो, अच्युत परमानन्दरूप समझो, यह जगत् मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, इसको त्याग दो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अविद्यानाशोपदेशो नाम षट्षष्टयधिकद्विशततमः सर्गः ।।२६६।।

सप्तषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः २६७

इन्द्रियजयवर्णनम् ।

श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! आप सत्य कहते हैं कि इन्द्रियों के जीते बिना शांति नहीं मिलती, इसलिये इंद्रियों के जीतने का उपाय कहिये। वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस पुरुष को बड़े भोग प्राप्त हुए हैं और इन इन्द्रियों को जीता नहीं, तब तक वह पुरुष शोभा नहीं पाता, जिसको त्रिलोकी का राज्य मिला हो और इंद्रियों को नहीं जीता तो उसकी कुछ शोभा नहीं, जो बड़ा शूरवीर होकर भी इंद्रियों पर विजय नहीं पा सका, उसकी भी कोई महिमा नहीं, जो बड़ा बलवान् है, दीर्घायु है, परन्तु इंद्रियों पर विजय नहीं पा सकता, उसका जीवन व्यर्थ है, जिस प्रकार इन्द्रियों को जीता जा सकता है और आत्मपद मिलता है, वह प्रकार

सुनो। हे रामजी! इस पुरुष का स्वरूप अचिन्त्य चिन्मात्र है, उसमें जो संवित् फुरी है, उस ज्ञान संवित् को अन्तःकरण दृश्य जगत् के साथ सम्बन्ध हुआ है, उसका नाम जीव है, जहां से चित्त फुरता है, वहां ही चित्त को स्थित करो, तब इंद्रिय अभाव हो जायेगा। इंद्रियों का नायक मन है, जब मनरूप मतवाले हाथी को वैराग्य और अभ्यास के अंकुश से वश में करो, तब तुम्हारी जय होगी, सब इन्द्रियों के वश में हो जायँगे, जैसे राजा के वश में कर लेने से सब सेना भी उसके वश में हो जाती है, ऐसे मन को स्थित करने से सब इन्द्रिय वश में हो जाते हैं, हे रामजी! जब इन्द्रियों को वश करेगा, तब शुद्ध आत्मसत्ता तुझको भास आयेगी, जैसे वर्षाकाल के अभाव से शरत्काल में शुद्ध निर्मल आकाश भासता है, ओस और बादल का अभाव हो जाता है, ऐसे जब मनरूप वर्षाकाल का अभाव हो जायेगा और वासना रूप ओस का अभाव हो जायेगा, तब शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता भासेगी, हे रामजी! जितने पदार्थ जगत् में दृष्टि आते हैं, सब असत्रूप हैं, जैसे मरुस्थल की नदी असत् रूप होती है, ऐसे जगत् के पदार्थ असत् रूप हैं, इनमें तृष्णा करना अज्ञान है, यदि पदार्थ प्रत्यक्ष आकर प्राप्त हों, उनको त्यागकर वृत्ति आत्मा की ओर आ जाये, तब जानिये कि मुझको इन्द्र का पद प्राप्त हुआ है, विषयों में आसक्त होना ही बड़ी कृपणता है, इनसे उपरति ही बड़ी उदारता है, इसलिये मन को वश करो, तब तुम्हारी जय हो, जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ में पृथ्वी तप्त होती है, यदि पावों में जूता पहिरा हो तो तप्त नहीं होती और सब पृथ्वी शीतल हो जाती है, ऐसे अपना मन वश करने से जगत् आत्मरूप हो जाता है, हे रामजी! जिस प्रकार तपस्वियों ने मन को वश में किया है, ऐसे तुम भी मन को वश में करो, जिस जिस ओर मन जाये, उस उस ओर से रोको, जब दृश्य जगत् की ओर से मन को रोकोगे, तब वृत्ति संवित् ज्ञान की ओर आयेगी और तुझको परम उदारता प्राप्त होगी तथा शुद्ध आत्मसत्ता का अनुभव होगा, तप करके संवित् का अनुभव होना कठिन है और तीर्थदान से भी कठिन है, परन्तु मन के स्थिर करने

से अनुभव की प्राप्ति सुगम होती है, मन को स्थिर करने का उपाय यही है कि सत्संग करना और रात दिन सच्छास्त्रों को विचार करना। सर्वदा इस उपाय से मन शीघ्र ही स्थिर हो जाता है, जब मन स्थिर हुआ तब आत्मपद का अनुभव होता है, जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है, वह संसार समुद्र में डूबता नहीं, चित्तरूप समुद्र है, उसमें तृष्णारूप जल है, कामनारूप लहरें हैं, जिस पुरुष ने शमसन्तोष से इंद्रियों पर विजय पायी है, वह चित्तरूप समुद्र में गोते नहीं खायेगा। इंद्रियों को जीतकर जिसने आत्मपद प्राप्त किया है, उसको नानात्व जगत् पुनः नहीं भासता, जैसे मरुस्थल की निराकार नदी में लहरें प्रतीत होती हैं, जब भले प्रकार निकट जाकर विचारकर देखें तो लहरों समेत बहती हुई दृष्टि नहीं आती, ऐसे यह जगत् आत्मा का आभास है, भले प्रकार विचारकर देखने से नानात्व दृष्टि नहीं आता, आत्मसत्ता ही किंचन से जगद्रूप होकर भासती है, जैसे जल अपने द्रवता स्वभाव से तरंगरूप प्रतीत होता है, ऐसे आत्मसत्ता चेतनता से जगत्रूप हो भासती है, हे रामजी! जब आत्मबोध होता है, तब पुनः दृश्य भ्रम नहीं भासता, जैसे साकार रूप नदी का भाव निवृत्त हुये फिर बहती है और जब निराकार नदी का सद्भाव निवृत्त होता है तब फिर नदी का सद्भाव क्यों होता है? निराकार मृगतृष्णा की नदी जब यथावत् (ज्यों की त्यों) जान ली गयी तब फिर सत्य नहीं होती, हे रामजी! वास्तव से न कर्म है, न इन्द्रिय है, न कर्ता है, कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, नाना प्रकार दृष्टि आते हैं, परन्तु कुछ हुआ नहीं, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की क्रियाएँ और कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु आकाशरूप हैं, कुछ हुआ नहीं, ऐसे इसे भी समझो, आकाशरूप आत्मा में आकाशरूप जगत् स्थित है, जैसे अवयवी और अवयव में कुछ भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं, जैसे अवयव अवयवी का रूप है, ऐसे जगत् आत्मा का रूप है, जब आत्मा में स्थित होगा, तब अहं त्वं आदिक शब्द का अभाव हो जायेगा और द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहेगा, द्वैत अद्वैत शब्द भी बालक अज्ञानी के समझाने के लिये कहे हैं, जो

वृद्ध ज्ञानवान् हैं, इन शब्दों पर हंसते हैं, जो अद्वैतमात्र में इन शब्दों का प्रवेश कहा है, जिनको यह दशा प्राप्त हुई है उनको न बंध है न मोक्ष है। हे रामजी! सुषुप्ति और तुरीया में कुछ थोड़ा भेद है, जो सुषुप्ति में अज्ञान जड़ता रहती है और तुरीया में अज्ञान जड़ता नहीं, चेतन अनुभवसत्तारूप है और स्वप्न जाग्रत् में भी भेद नहीं, परन्तु इतना भेद कहाता है कि अल्पकाल की अवस्था को स्वप्न कहते हैं और चिरकाल की अवस्था को जाग्रत् कहते हैं, हे रामजी! जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों स्वप्न और सुषुप्ति रूप हैं, जाग्रत् और स्वप्न यह उभय स्वप्न रूप हैं और सुषुप्ति अज्ञान रूप है और जाग्रत् तुरीया रूप है और जाग्रत् कोई नहीं, जिस जगने से फिर भ्रम प्राप्त हो उसको जगत् कैसे कहें उसको भ्रममात्र जानिये और जिस जगने से फिर भ्रम में न पड़े, उसको जाग्रत् कहते हैं, स्वप्न सुषुप्ति तुरीया चारों अवस्थाओं में चेतन मात्र घनीभूत हो रहा है, चारों को नहीं देखता ज्ञानवान् जब प्राण का स्पन्द रोककर आत्मा की ओर चित्त को लगाते हैं और परस्पर ज्ञानमात्र का निर्णय चर्चा करते हैं, ज्ञानमात्र का कथा कीर्तन करते हैं और उससे प्रसन्न होते हैं, ऐसे जो नित्य जाग्रत् पुरुष है और निरंतर प्रीति पूर्वक आत्मा को भजते हैं, उनको आत्म विषयिनी बुद्धि उदय होती है, उससे शांति प्राप्त करते हैं, जिनको सदा अध्यात्म अभ्यास है और अभ्यास में उत्तम हुए हैं उनको आत्मपद प्राप्त होता है, वही हंसी करते हैं, क्योंकि उनको शान्त पद प्राप्त हुआ है और जो अज्ञानी हैं, वे राग द्वेष से जलते हैं और जिनको आत्मा का दृढ़ अभ्यास हुआ है उनको अवेदन सत्ता शान्ति प्राप्त होती है और आत्म स्थिति मिलती है, जिसके आगे इन्द्र का राज्य भी सूखे तृणवत् भासता है, ऐसा परमानन्द आत्म सुख है, सर्व जगत् उनको आत्मरूप भासता है और जो अज्ञानी है, उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है जैसे सोये हुए पुरुष को स्वप्नकी सृष्टि सत् होकर भासती हैं और सत् रूप भासती है और जाग्रत् के स्मरण वाले को स्वप्न की सृष्टि अपना रूप भासती है और सत् रूप भासती है और ज्ञानवान् को सब आत्मरूप

भासता है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता, जब आत्म अभ्यास का बल हो और अनात्म के अभाव का अभ्यास दृढ़ हो तब जगत् का अभाव हो जाय, अद्वैत सत्ता का भान हो, हे रामजी! मैंने तुझको बहुत उपदेश किया है, जब इसका अभ्यास हो तब इसका फल जो ब्रह्म बोध है वह प्राप्त हो, अभ्यास बिना नहीं प्राप्त होता और यदि एक तृण लोप करना होता है तो भी कुछ यत्न होता है यह तो त्रिलोकी लोप करना है, हे रामजी! जैसे बड़ा भार जिसके ऊपर पड़ता है, वह बड़े ही बल से उठाता है, बिना बड़े बल के नहीं उठता, ऐसे इस जीव के ऊपर दृश्य रूप बड़ा भार पड़ा है जब बड़ा आत्मरूप अभ्यास का बल हो तब इसको निवृत्त करे, नहीं तो निवृत्त नहीं होता और यह जो मैंने तुम्हें उपदेश किया है इसको खूब विचारो, मैंने तो तुम्हें बहुत प्रकार से बहुत बार कहा है। हे रामजी! अज्ञानी को ऐसे बहुत कहने से भी कुछ नहीं होता, तुझको मैंने उपदेश किया है वह सब शास्त्र का सिद्धान्त है और वेद का सिद्धान्त है, जिस प्रकार वेद का पाठ किया जाता है इसी प्रकार इसका पाठ कीजिये, विचारिये और इसके रहस्य को हृदय में धारण कीजिये, तब आत्मपद की प्राप्ति हो सकती है, इसके देखने से अन्य शास्त्रों की बातें भी सुगमता से समझी जायँगी इसलिये दिन रात इस शास्त्र को श्रद्धा से पढ़ो और श्रद्धा से सुनो, इसको आदि से अन्त तक सुनो और प्रयोग में लाओ, अमोघ रत्न है, इस (वेदान्त शास्त्र) के आद्योपान्त पढ़ने सुनने और मनन करने से बिलकुल जड़ रूप महा अज्ञानी जीव को भी अवश्य ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, जो एक बार सुनकर कहने लग जाये कि एक बार सुन लिया उसके बार बार सुनने से क्या लाभ है, उस पुरुष की भ्रांति निवृत्त नहीं होगी और बार बार सुनता कहता और मनन करता है उसकी भ्रांति निवृत्त हो जायेगी, मैंने सर्वोत्तम संहिता कही है, बहुत शीघ्र ही समझ में आनेवाला पदार्थ है, जो पुरुष मेरे इस शास्त्र को सुनने वाले हैं और मननशील हैं उनको बोध उदय होता है अर्थात् वे परम ज्ञानवान् हो जाते हैं, उनके लिये अन्य

शास्त्रों का तत्वार्थ भी भली प्रकार समझने में आ जाता है, जैसे नमकीन व्यंजन में नमक डालने से वह स्वादिष्ट हो गया होता है, उसको मनुष्य प्रीति सहित ग्रहण करता है, ऐसे जो इस शास्त्र के सुनने कहने वाले हैं, वे अन्य शास्त्र का भी सुन्दर अर्थ करेगा, हे रामजी! ऐसा न कीजिये कि किसी अपर पक्ष को अपना मान कर इसका श्रवण भी न करें, जैसे किसी के पिता का खारा कुआँ था और उसके पास ही एक मीठे जल का कुंआँ था, वह अपने पिता का कूप मानकर खारा ही जल पीता था, निकट मीठा जल था, अर्थात् मीठे जल वाला कुआँ पास ही था, परन्तु उसने उसका त्याग किया था, ऐसे अपना पक्ष मान कर मेरे शास्त्र का त्याग न करना, जो ऐसा जान कर मेरे शास्त्र को न सुनेगा, उसको ज्ञान प्राप्त न होगा, जो पुरुष इस शास्त्र में दोषारोपण करेगा कि यह सिद्धान्त यथार्थ नहीं कहा, उसको ज्ञान प्राप्त न होगा, वह आत्महन्ता है, उसके वाक्य श्रवण करने योग्य नहीं और जो प्रीति पूर्वक पूज्य भाव से श्रवण करे, विचार पाठ करे, उसको निर्मल ज्ञान प्राप्त होगा और क्रिया भी निर्मल होगी, इसलिये यह नित्य विचार करने योग्य है, हे रामजी! जो तुमको उपदेश किया है, वह किसी अर्थ के निमित्त नहीं किया, दया करके किया है और तुम यदि किसी को कहोगे तो भी अर्थ बिना दया करके कहना।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे इन्द्रियजयवर्णनं
नाम सप्तषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः ।।२६७।।

अष्टषष्टयधिकद्विशततमः सर्गः २६८

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! आत्मा में जगत् हुआ नहीं, जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं फुरना होता है, तब वही संवेदन फुरना जगत् रूप होकर भासता है, जब अधिष्ठान की ओर देखता है, तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप हो जाता है, अपने रूप को त्याग देता है, अचेत चिन्मात्र

होता है, हे रामजी! फुरने में भी वही है और अफुरने में भी वही है, परन्तु फुरने से जगत् भासता है, वह जगत् भी कुछ अपर वस्तु नहीं, वही रूप है और जब संवित् संवेदक फुरने से रहित होती है, तब अपना चिन्मात्र रूप हो जाती है। इस कारण से ज्ञानवान् को जगत् आत्मरूप प्रतीत होता है, ब्रह्म से इतर नहीं भासता, जैसे किसी पुरुष का मन दूसरी ओर गया होता है, उस समय उसके आगे शब्द होता है, तो भी उसको प्रतीत नहीं होता और कहता है, मैंने कुछ नहीं सुना। जिस ओर चित्त होता है, उसी का अनुभव होता है, जैसे जिनका मन आत्मा की ओर लगता है, उनको सब आत्मा ही भासता है। आत्मा से इतर जगत् कुछ नहीं भासता और जिसको आत्मसत्ता का प्रमाद है और जगत् की ओर चित्त है, तो उनको जगत् ही प्रतीत होता है, हे रामजी! ज्ञानवान् के निश्चय में ब्रह्म ही भासता है और अज्ञानी के निश्चय में जगत् भासता है, तो ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय एक कैसे हो, जो पुरुष स्वप्न में है, उसको स्वप्न का जगत् भासता है, जाग्रत को वही जगत् नहीं भासता, उनका एक ही निश्चय कैसे हो, नहीं होता। जगत् के आदि में भी ब्रह्मसत्ता थी, अन्त में भी वही रहेगी, मध्य में जो भासती है, वह भी वही है, आत्मसत्ता ही चेतनता से जगत्रूप प्रतीत होती है, जैसे स्वप्न सृष्टि के आदि भी ब्रह्म सत्ता होती है और अन्त भी ब्रह्म सत्ता होती है और मध्य जो भासता है, वह भी वही है। आत्मा से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् आदि, अन्त, मध्य में भी आत्मेतर कुछ नहीं और ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय है कि जगत् उत्पन्न नहीं हुआ और न उत्पन्न होगा। आत्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है, जो सब ब्रह्म ही है, अहं, त्वं यह सब अज्ञान से भासता है, जैसे स्वप्न में अहं, त्वं आदि करके अनुभव होता है, तो अहं, त्वं आदि कभी कुछ नहीं, सब अनुभवरूप है, ऐसे यह जगत् सब अनुभवरूप है, हे रामजी! जैसे एक ही रस फूल फल टास वृक्ष होकर भासता है, परन्तु रस से इतर कुछ नहीं, ऐसे नानास्वरूप जगत् भासता है, परन्तु आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर अपने

अपने अनुभव से इतर कुछ नहीं निकलता, परन्तु स्वरूप के विस्मरण से आकाररूप भासते हैं, ऐसे यह जगत् आकार भासता है, वह ज्ञानरूप से इतर कुछ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है, परन्तु अज्ञान से भिन्न भिन्न भासता है और यह जगत् सब अपना आप है, इतर कुछ नहीं, जो आत्मरूप है तो ग्राह्य ग्रहण कैसे भास हो? यह मिथ्या भ्रम है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश पर्वत घट पट आदिक सब जगत् भ्रमरूप है, ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय रहता है कि अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है, ब्रह्मादिक भी कुछ फुरकर उदय नहीं हुए ज्यों के त्यों हैं, उत्थान कुछ न हुआ और अज्ञानी के निश्चय में नाना प्रकार का जगत् है, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय ब्रह्मादिक संपूर्ण हैं, हे रामजी! यह कुछ उत्पन्न नहीं हुआ कारणत्व के अभाव से सदा एक रस आत्म सत्ता ही है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नामाष्ट षष्ट्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२६८॥

ऊनसप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः २६९

जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जाग्रत् और स्वप्न का निर्णय अब सुनो! जब इस जगत् में सो जाता है तब स्वप्न की सृष्टि देखता है, उसमें जाग्रत् होती है, जाग्रत् होकर भासती है और जब वहां सो जाता है, तब फिर यह सृष्टि देखता है, यही जाग्रत् हो भासती है, यहां सोकर स्वप्न में जाग्रत् होती है, वहां सोकर यहां जाग्रत् होती है तो स्वप्न जाग्रत् हुआ, जाग्रत् का जाग्रत् नहीं होता, जाग्रत् जो वस्तु है वह आत्म सत्ता है, उसमें जगना वही जाग्रत् की जाग्रत् है अपर सब स्वप्न जाग्रत् हैं जब यहां शयन करता है तब स्वप्न का जाग्रत् सत् होकर भासता है, यह असत् हो जाता

है और स्वप्न में वहां से शयन करता है, अर्थात् स्वप्न से निवृत्त होता है और जाग्रत् में जगता है, तब वहां असत् हो जाता है, वह स्वप्न जाग्रत् में स्मृति को प्राप्त होता है और जब जाग्रत् में सोया और स्वप्न में जगा, तब जाग्रत् स्वभाव को प्राप्त हुई और जब स्वप्न से उठकर जाग्रत् में आया तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृति भाव को प्राप्त हुई और जाग्रत् जाग्रत्रूप हुई तो हे रामजी! स्वप्न तो कोई न हुआ, इसको सब जगह जाग्रत् क्यों हुई और जाग्रत् तो कोई न हुई क्योंकि जब जाग्रत् से स्वप्न में गया, तब स्वप्न जाग्रत्रूप हो गया और जाग्रत् स्वप्न हो गयी और जब स्वप्न से जाग्रत् में आया, तब जाग्रत् जाग्रत्रूप हो गयी और जब स्वप्न जाग्रत् स्वप्नरूप हो गयी तो क्या हुआ वह भी जाग्रत् नहीं, सब स्वप्न असत् रूप है, अपने काल में यह जाग्रत् है और है स्वप्नरूप और जब यहां से जाता है अर्थात् मरता है तब यह जगत् स्वप्नरूप होता है, स्वप्नरूप परलोक जाग्रत् होता है, जाग्रत् स्मृति प्रत्यक्ष हो जाती है तो उसमें वह नहीं रहता और उसमें वह नहीं रहता और जाग्रत् स्वप्न दोनोंमें परलोक नहीं रहता और इस जाग्रत् में देखिये तो स्वप्न और परलोक दोनों नहीं भासते और स्वप्न में इस जाग्रत् और परलोक दोनों का अभाव हो जाता है, तो क्या सिद्ध हुआ, यह सिद्ध हुआ कि सब स्वप्न मात्र है, हे रामजी! चिरकाल की प्रतीति को जाग्रत् कहते हैं और अल्पकाल की प्रतीति को स्वप्न कहते हैं जो आदि स्वप्न हुआ और उसमें दृढ़ अभ्यास हो गया, उससे जाग्रत् हो भासती है, इसलिये जो आकर तुझको सत् भासते हैं वे सब निराकार आकाशरूप हैं, कुछ बना नहीं, जैसे स्वप्न में त्रिलोकी जगत् भ्रम उदय होता है परन्तु सब आकाशरूप होता है, ऐसे यह जगत् के पदार्थ अविद्या से साकार भासते हैं, सब निराकार आकाशरूप हैं, जब अधिष्ठान तत्व में जो ग्राह्य ग्राहक भाव भासते हैं सब मिथ्या कल्पना है, वासना से कुछ नहीं, सब जगत् मृग तृष्णा के जलवत् मिथ्या हैं, इसमें मिथ्या कल्पना है, वास्तव से कुछ नहीं, सब जगत् मृग तृष्णा के जलवत् मिथ्या है, इसमें ग्रहण क्या करें और त्याग क्या करें, इन दोनों की कल्पना को त्याग

करो, यह हो, यह न हो, ऐसी कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित करो, तब सर्व शांति प्राप्त हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जाग्रत् स्वप्न प्रतिपादनं नामैकोन सप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२६९॥

सप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः २७०

शिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस अर्थ का जो आश्रय भूत है, वह मैं तुझसे कहता हूं इस जगत् के आदि में अचेत चिन्मात्र था, उसमें किसी शब्द की प्रवृत्ति न थी अशब्द पद था, उसमें जानना फुरा उसका आभास जगत् हुआ, उस आभास में जिसके अधिष्ठान की अहं प्रतीति रही है, उसको जगत् आकाश रूप भासता है, वह संसार में डूबता नहीं उसको अज्ञान का अभाव है, जो डूबता नहीं तो निकलता भी नहीं, अज्ञान निवृत्ति ज्ञान का भी अभाव है, वह स्वतः ज्ञान स्वरूप है और जिनको प्रमाद हुआ है, उसको दोनों अवस्थाएँ होती हैं, जो ज्ञानवान् है उसको जगत् आत्मरूप भासता है और जो ज्ञान से रहित है, उसको भिन्न भिन्न नाम रूप जगत् भासता है, हे रामजी! आत्मा निराख्यात है चारों आख्यात से रहित निराभास सत्ता है, चारों आख्यात उसमें आभास हैं, उनके नाम सुनो एक तो आख्यात है, एक विपर्ययाख्यात है, एक असत्याख्यात है, चौथा आत्माख्यात है, आख्यात ज्ञान को कहते हैं जिसको यह ज्ञान है कि मैं अपने आपको नहीं जानता इसका नाम आख्यात् है और देह इन्द्रिय रूप अपने आपको जानना, इसका नाम विपर्ययाख्यात है, जगत् असत् जानना, इसका नाम असत्याख्यात है और आत्मा को आत्मा जानना, इसका नाम आत्माख्यात है, यह चारों ख्यात चिन्मात्र आत्मतत्व का आभास है, आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र

है उसमें बाणी की गति नहीं, हे रामजी! जगत् भी वही स्वरूप है अपर कुछ बना नहीं घन शिला की नाईं अचिन्त्य स्वरूप है, इसके ऊपर एक आख्यान है, वह श्रवण का भूषण है तुमको सुनाता हूं, वह कैसा उपाख्यान है, जो द्वैत दृष्टि को नाश करता है, ज्ञानरूप कमल को विकसित करनेवाला सूर्य है, परम पावन है, उसको सुनो, हे रामजी! एक शिला पड़ी है, कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार है, अनन्त है, किसी ओर से उसका अन्त नहीं आता शुद्ध है निर्मल है, अपनी सत्ता से परिपूर्ण है, बहुत सुन्दर है, जैसे शालग्राम की प्रतिमा होती है, ऐसी सुन्दर है, शालग्राम के ऊपर शंख चक्र गदा पद्म की रेखा होती है ऐसे उसके ऊपर रेखाएँ हैं और वही रूप है, वज्र से भी क्रूर है, शिला की नाईं निर्विकार है और निराकार है, अचेतन है और परमार्थ है, यह जो कुछ चेतन सत्ता भासती है और निराकार है, अचेतन है और परमार्थ है, यह जो कुछ चेतन सत्ता भासती है, उसके ऊपर रेखा है अनन्त कल्प बीत गये हैं, परन्तु उसका नाश नहीं होता, अविनाशी है, पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश यह सब उसके ऊपर रेखाएँ हैं और आप पृथ्वी आदिभूतों से रहित है और शिलावत् है और इन रेखाओं को जीवित की नाईं चेतती है, रामजी बोले–हे भगवन्! यदि वह अचेतन है और शिला की नाईं निर्विकार है तब उसमें चेतनता कहाँ से आई, जिससे जीवित धर्मा हुई, वह तो अचेतन थी? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वह तो न चेतन है, न जड़ है, शिलारूप है, पत्थर से भी उज्ज्वल है और यह चेतनता जो तुम कहते हो, वह चेतनता स्वभाव से दृष्टि आती है, जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत हो जाता है, ऐसे चेतनता भी इसका स्वभाव है, जैसे जल से तरंग स्वाभाविक भासते हैं ऐसे इससे चेतना स्वाभाविक भासती है, परन्तु भिन्न कुछ नहीं, सदा अपने आपमें स्थित है और किसीसे जाना नहीं जाती, अब तक किसीने जानी नहीं, रामजी बोले–हे भगवन् अब तक किसीने उसको देखा भी है अथवा नहीं देखा और किसीसे वह भंग भी हुई है कि नहीं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मैंने उस शिला को देखा

है और तुमभी उसके देखने का अभ्यास करोगे तो उसको देखोगे, परमशुद्ध है, उसको मैल कदाचित् नहीं लगती, चिह्न से रहित है, पोल से रहित है, आदि मध्य अन्त से रहित है, उसके भेद को न कोई समर्थ है न वह भेद के योग्य है, क्योंकि उससे कोई अन्य हो तो उसको भेदे, यह जितने पदार्थ हैं सब उसीकी रेखाएँ हैं, उसकी अनेको रेखाएँ हैं, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, जल, तेज, वायु, आकाश, देवता, दानव, सूर्य चन्द्रमा यह उसमें रेखाएँ हैं, उसके अन्दर स्थित हैं, यह शिलामहासूक्ष्म है, निराकार है, आकाशरूप है, रामजी बोले–हे भगवन्! आदि मध्य अन्त से रहित है, तो आपने उसको कैसे देखा है यह कहने की कृपा कीजिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वह अन्य किसीसे जानी नहीं जाती, अपने आपको अनुभव से जानी जाती है, मैंने जो उसको देखा है, अपने स्वभाव में स्थित होकर देखा है, जैसे स्तंभ को अणुस्तंभ में स्थित होकर देखें ऐसे मैंने उसमें स्थित होकर देखा है, हमभी उस शिला की रेखाएँ हैं, इसलिये मैंने उसमें स्थित होकर देखा है, रामजी बोले–हे भगवन्! वह कौन शिला है, उसके ऊपर कौन रेखा है? कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! परमात्मरूप शिला है, अपर कौन हो, मैंने जो तुम्हें शिलारूप कहा है वह इसलिये कि वह धन चेतनरूप है, उससे इतर कुछ नहीं और अचिन्त्यरूप है, उसके ऊपर पंचतत्व रेखा है वह रेखा भी वही रूप है, एक रेखा बड़ी है, उसमें अन्य रेखाएँ रहती हैं, वह बड़ी रेखा आकाश में है, अपर तत्व आकाश में रहते हैं, सब पदार्थ आकाश में है सब वहीरूप है, तू भी वही रूप है, मैं भी वही रूप हूं, अन्य कुछ हुआ नहीं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब ब्रह्मरूप हैं, जितने पदार्थ और कर्म भासते हैं सब ब्रह्मरूप हैं शिला की रेखाएँ हैं और कुछ हुआ नहीं, सर्वकाल में ब्रह्म सत्ता ही स्थित है, नाना प्रकार के व्यवहार भी दृष्टि आते हैं, परन्तु वही रूप हैं अपर कुछ है नहीं, ऐसे इसे भी जानो, घट पट पहाड़ कदंरा, स्थावर जंगम जितना जगत् भासता है, सब आत्मरूप है, आत्मा ही फुरने से ऐसे भासता है जैसे जल ही तरंग लहर होकर भासता

है, ऐसे ब्रह्मसत्ता ही जगत्‌रूप होकर भासती है और जितने यह पदार्थ हैं, पवित्र, अपवित्र सत् असत् विद्या अविद्या सब आत्मसत्ता ही के नाम हैं, इतर वस्तु कुछ है नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, हे रामजी! यह सबही घन ब्रह्मरूप है, चिन्मात्र घन ही यह सब व्याप्त हो रहा है, वह परमार्थ सत्ता घन शान्त रूप है और यह भी सब परमार्थ घनरूप हैं इसलिये संकल्परूप कलना को त्यागकर उसमें स्थिति प्राप्त करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे शिलोपाख्यान समाप्तिवर्णनं नाम सप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२७०।।

एकसप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः २७१

जाग्रत्वस्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो पुरुष स्वभाव सत्ता में स्थित हुए हैं उनको जो यह चारों आख्यात कहे हैं इनसे लेकर जितने शब्दार्थ हैं शशश्रृंगवत् असत् भासते हैं, जगत् का निश्चय उनमें नहीं रहता, सर्व ब्रह्माण्ड उनको आकाशवत् भासता है। आख्यात की कल्पना भी कुछ नहीं फुरती और जितना जगत् दृष्टि आता है, निराकार परम चिदाकाशरूप है, परम निर्वाण सत्ता से युक्त भासता है और उसमें निर्वाण हो जाता है, इसलिये वही रूप है, हे रामजी! जब इस प्रकार जानकर तुम इस पद पर स्थित हो जाओगे तो महान् शब्द करते हुए भी पाषाण शिलावत् मौन रहोगे, देखोगे, खावोगे, पियोगे सूंघोगे, परन्तु अपने निश्चय में कुछ न फुरेगा, जैसे शिला में कुछ फुरना नहीं फुरता, ऐसे तुम रहोगे, यदि पावों से दौड़ते जाओगे तो भी निश्चय से विचलित न होवोगे, जैसे आकाश अचल है, जैसे सुमेरु स्थिर है, ऐसे तुम भी स्थित रहोगे, क्रिया तो सब करेगा परन्तु अन्दर से क्रिया का अभिमान तुम्हें कुछ न होगा, स्वभाव सत्ता में स्थित होगी, जैसे मूढ़ बालक अपनी छाया में वैताल की कल्पना कर लेता है, उसकी वह कल्पना अविचार सिद्ध है,

विचार करने पर कुछ नहीं निकलता, ऐसे मूर्ख अज्ञानी आत्मा में मिथ्या आकार की कल्पना करता है, विचार करने से सब आकाश रूप है, बना कुछ नहीं, जैसे मरुस्थल में नदी तब तक भासती है जब तक विचार कर नहीं देखता, विचार करने पर नदी नहीं रहती, ऐसे यह जगत् विचार कर नहीं रहता, चैतन्यरूप रत्न का चमत्कार है, चेतन आकाश का किंचन फुरने से जगत्रूप हो भासता है, रामजी बोले—हे भगवन्! इस जगत् का कारण मैं स्मृति मानता हूँ वह स्मृति अनुभव से होती है और स्मृति से अनुभव होता है, स्मृति और अनुभव परस्पर कारण हैं, जब अनुभव होता है तब उसको स्मृति भी होती है वह स्मृति संस्कार फिर स्वप्न में जगत् रूप हो क्यों भासती है? वसिष्ठ महर्षि बोले—हे रामजी! यह जगत् जो उत्पन्न हुआ है किसी संस्कार से उत्पन्न नहीं हुआ, जो किसी स्मृति का संस्कार हो, वह बात नहीं, तब क्या है? काकतालीयवत् अकस्मात फुर आया है, हे रामजी! यह जगत् आभास मात्र है, आभास का अभाव कदाचित् नहीं होता, क्योंकि उसका चमत्कार है, यदि इतर कुछ बना हो तो उसका नाश भी हो, इतर जो कुछ हुआ नहीं, नाश कैसे हो, यह जगत् भी नहीं असत् भी नहीं, अपने स्वभाव में आत्मसत्ता स्थित है, जगत् उसका आभास है, हे रामजी! तुम जो स्मृति कारण कहते हो, वह कारण कार्य भाव आभास वहां भासते हैं जहां द्वैत है स्वरूप में कुछ कारण कार्यभाव नहीं, जैसे स्वप्न में मरुस्थल में जल भासा उसमें जल मानकर गया, तो तुम देखो आगे जाकर उसको जल की स्मृति हुई अथवा स्वप्न के व्यवहार कर्ता को स्वप्नान्तर हुआ, उस स्वप्नान्तर में फिर जाकर उसने व्यवहार किया, तो हे रामजी! तुम देखो कि उसकी स्मृति भी असत् हुई और जो उसने अनुभव किया वह भी असत् है, ऐसे यह संसार भी है कुछ भेद नहीं, हे रामजी! इसलिये न जाग्रत् है न स्वप्न है न कोई सुषुप्ति भी है न तुरीया है, तो क्या है? अद्वैत सत्ता सर्व उत्थान से रहित चिन्मात्र स्थित है, इसलिये जगत् भी वही रूप है, यदि क्रिया भी दृष्टि आती है, तो भी कुछ हुआ नहीं, जैसे स्वप्न में अंगना कंठ के साथ आ

मिलती है, तब उसकी क्रिया तो कुछ सच्ची नहीं, ऐसे यह क्रिया भी सच्ची नहीं और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया इन शब्दों का अर्थ स्वभान निश्चय ज्ञानवान् पुरुष को है, शशश्रृंग और आकाश पुष्पवत् असत् भासते हैं, जैसे वंध्या का पुत्र और जैसे श्याम चन्द्रमा शब्द कथन मात्र हैं इनका अर्थ असत् है, ऐसे ज्ञानी के निश्चय में पांचों अवस्थाओं का होना असंभव है अथवा सर्वदा काल में जाग्रत् है, जाग्रत् उसका नाम है जहां कुछ अनुभव हो वह अनुभव सत्ता सदा जाग्रत् रूप है, जैसा पदार्थ आगे आता है, उसीका अनुभव करता है, इसलिये सर्वदा सर्वकाल जाग्रत् है, अथवा सर्वदाकाल स्वप्न है, स्वप्न उसका नाम है जहां पदार्थ विपर्यय भासते हैं, वे जितने पदार्थ भासते हैं, वह विपर्यय ही भासते हैं, विपर्यय से रहित आत्मा है, उसमें जो पदार्थ भासते हैं, विपर्यय है, इसलिये सर्वकाल में स्वप्न ही है, अथवा सर्वकाल सुषुप्त ही है, सुषुप्ति उसका नाम है जहां अज्ञान वृत्ति हो, वह अज्ञान कहता है, मैं आपको भी नहीं जानता, न जानने से सर्वदा काल सुषुप्ति है, अथवा सर्वकाल तुरीया है, तुरीया उसका नाम है, जो साक्षीभूत सत्ता हो, जाग्रत् स्वप्न अवस्था का जिसमें अनुभव होता है वह सर्वदाकाल सबका अनुभव करता है, वह प्रत्यक् चेतन इसलिये सर्वदा काल में तुरीया पद है अथवा दीर्घकाल सर्वदाकाल तुरीयातीत पद है, तुरीयातीत उसको कहते हैं, जो अद्वैत सत्ता है, जिसके पास द्वैत कुछ नहीं, वह सर्वदाकाल अद्वैत सत्ता है, उसमें जगत् का अत्यन्ताभाव है, जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है, इसलिये सर्वदाकाल में तुरीयातीत पद है और यदि मुझसे पूछो तो हे रामजी! मुझको तरंग बुद्बुदे झाग आवर्त कुछ नहीं भासते, सर्वदा चित् समुद्र ही भासता है, उससे इतर कुछ नहीं, उदय अस्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और पृथ्वी आदिक तत्व जो भासते हैं, वे भी कोई उत्पन्न नहीं हुए, आत्मसत्ता का किंचन इस प्रकार भासता है, जैसे नख और केश उत्पन्न होते हैं और उनका अभाव भी हो जाता है, ऐसे आत्मा में जगत् उत्पन्न होता है और लीन भी हो जाता है, जैसे नख और केश के उत्पन्न

होने और काटने में शरीर यथावत् रहता है, ऐसे जगत् के उत्पन्न होने और लीन होने में आत्मा ज्यों का त्यों रहता है, हे रामजी! यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, इसमें सत् क्या कहें ओर असत् कया कहें, कल्पना क्या कही जाय और स्मृति क्या कही जाय, अन्तर क्या कहा जाय और बाह्य (बाहिर) क्या कहा जाय, अद्वैत सत्ता में कल्पना कुछ नहीं बनती और यदि तुम कहो बाह्य से अन्तर स्मृति होती है, परन्तु अन्तर से बाहिर दृष्टि आती है, अन्तर अनुभव की अपेक्षा से हुई है, वह भी उत्पन्न नहीं हुई, अन्तर और बाहिर क्या कहूँ, जैसे स्वप्न की सृष्टि भास आती है, वह अपना ही अनुभव होता है, वही सृष्टिरूप हो भासता है, वहां तो अन्तर बाहिर कुछ है नहीं, ऐसे यह जगत् भी अन्तर बाहिर कुछ है नहीं, सब भ्रमरूप है, जिसको इच्छा कहते हैं, स्मृति कहते हैं, विद्या, अविद्या, इष्ट अनिष्ट जितने कुछ शब्द हैं सब आत्मा के नाम हैं आत्मा से इतर अपर पदार्थ कुछ वस्तु नहीं, हे रामजी! जगकर देखो सब तुम्हारा ही स्वरूप है, मिथ्या भ्रम को अंगीकार करके क्यों इतर कुछ देखते हो जितने शब्द हैं अर्थ बिना कहीं नहीं और शब्द अर्थ का विचार संकल्प से होता है और संकल्प तब फुरता है, जब चित्त में अहं अभिमान होता है, उस चित्त को आत्मसार में लीन करो, जब चित्त को निर्वाण करोगे, तब सब जाग्रत् शान्त हो जायेगा जैसे दर्पण में जगत्रूप प्रतिबिंब होता है, वह जगत् कुछ वस्तु नहीं, जब चित्त निर्वाण हो जायेगा तब द्वैत कल्पना सब मिट जायेगी, यह जो मोक्ष शास्त्र मैंने तुझे कहा है, इसके अर्थ को विचारो और संकल्प को त्यागकर अपने परमानन्द स्वरूप में स्थित हो जाओ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनमं नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ।।२७१।।

द्विसप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः २७२

सालभजन कोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह जगत् किसी कारण से उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे समुद्र में तरंग स्वाभाविक फुरते हैं ऐसे संवित् सत्ता से आदि सृष्टि फुरी है, जैसे जल स्वाभाविक द्रवता से तरंगरूप अपनी सत्ता से बढ़ता जाता है, ऐसे आत्मसत्ता से जगद् विस्तार होता है, वह आत्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, जब आत्मसत्ता चिन्मात्र का अभ्यास बहिर्मुख फुरता है तब अन्तःकरण चतुष्टय होते हैं, उसमें जो निश्चय होता है, उसका नाम नेति हुआ है, प्रथम अकस्मात से स्वाभाविक बिना फुर आया है, वह आभासमात्र है, जब दृढ़ हो गया, तब नीति स्थित हुई और वास्तव से द्वैत कुछ बना नहीं, जो सम्यक् दर्शी पुरुष है, उसको सब आत्मा दृष्टि आता है, जैसे पत्र, फूल, फल, शाखा सब वृक्ष के ऊपर हैं इतर कुछ नहीं, हे रामजी! वृक्ष में जैसे पुष्प फल शाखा आदि होते हैं, वह किस कारण से बुद्धि पूर्वक तो नहीं होते, ऐसे यह जगत् भी जान लीजिये, जो सम्यक्दर्शी है उसको भिन्न भिन्न रूप भी पत्र शाखा आदि विस्तार एक वृक्षरूप भासता है ऐसे यथार्थ ज्ञानी को सब आत्मा ही प्रतीत होता है और मिथ्या दृष्टि को भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, सम्यक्दर्शी को एक वृक्ष ही भासता है, हे रामजी! वृक्ष का देखने वाला भी अपर होता है और दृष्टान्त में दूसरा कोई नहीं, चैतन्य आत्मा का आभास ही चैतन्य है, वही चैतन्य रूप हो भासता है, उस चैतन्य आभास को असम्यक् दृष्टि से भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं, सम्यक्दर्शी सबको आत्मरूप देखता है, जैसे पत्र आपको भिन्न जाने फूल फल सब आपको भिन्न भिन्न जाने, वृक्ष सब अपना आप जानता है, ज्ञानी अज्ञानी सब आत्मरूप हैं, जैसे दीवार पर पुतलियां लिखी होती हैं, वे दीवार से इतर कुछ नहीं, दीवाररूप है, ऐसे स्वर्ग गत आत्मरूप दीवार

के चित्र हैं आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे आकाश में शून्यता है, जैसे पुष्प में सुगन्धि है, जैसे जल में द्रवता है, जैसे वायु में स्पन्द है, जैसे अग्नि में उष्णता है, ऐसे ब्रह्म में जगत् है, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, जैसे फूल और सुगन्धि में भेद कुछ नहीं, जहां जल है वहां द्रवता भी है, जहां अग्नि है वहां उष्णता है, जहां वायु है वहां स्पन्द भी है, ऐसे जहां चित्तसत्ता है वहां जगत् भी है, जगत् और ब्रह्म में भेद कुछ नहीं, हे रामजी! जगत् आत्मा का आभास है, इसलिये वही रूप है, यह जगत् भी अचैत्य चिन्मात्र है, और यदि तुम कहो कि अचैत्य चिन्मात्र है तो पृथ्वी पहाड़ आदिक आकर क्यों भासते हैं, तो हे रामजी! नित्य प्रति जो तुम्हें स्वप्न आता है उस अनुभव आकाश में पृथ्वी आदिक तत्व भास आते हैं तब वही चिन्मात्र ही आकार हो भासता है क्योंकि अपर कुछ नहीं, ऐसे यह भी जानिये, जितना जगत् तुझको भासता है, वह सब अनुभवरूप है, जैसे चिन्मात्र आत्मा में सृष्टि आभासमात्र है ऐसे कारण कार्य भाव भी आभासमात्र है, परन्तु वही रूप आत्मसत्ता ही इस प्रकार होकर भासती है और यह पदार्थ जो कारण कार्य से उत्पन्न हुए दृष्टि आते हैं, वे अभ्यास की दृढ़ता से भासते हैं, आदि सृष्टि कारण से उत्पन्न नहीं हुई, पश्चात् कारण से कार्य उत्पत्ति दृष्टि आती है, यद्यपि कार्य कारण दृष्टि आते हैं तो भी कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, सदा अद्वैत रूप है, जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के कार्य कारण भास आते हैं, परन्तु हुए नहीं सदा अद्वैत रूप हैं ऐसे जाग्रत् में भी जान लीजिये, पदार्थ की स्मृति भी स्वप्न में होती है, अनुभव भी स्वप्न में होता है, यदि स्वप्न ही नहीं फुरा तो मृत्यु कहां है और अनुभव कहां है, न जगत् का अनुभव है, न जगत् है अनुभव सत्ता ही जगत् रूप होकर भासती है, वह जाग्रत् रूप है, जब उसका अनुभव होगा, तब स्मृति रहेगी न जगत् रहेगा, इसलिये हे रामजी! जो अनुभव है उसका अनुभव करो, यह जगत् भ्रम रूप है, उत्पन्न नहीं हुआ स्वतः सिद्ध है ओर जो उत्पन्न हुआ है और जिसमें भासता है उसको उसीका रूप जानो, इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्नमें पदार्थ भासते हैं, वे उत्पन्न नहीं हुए

परन्तु उत्पन्न हुए दृष्टि आते हैं, अनुभव मे उत्पन्न हुए हैं, अनुभव स्वतः सिद्ध है, उसमें जो पदार्थ भासते हैं अनुभव रूप है अनुभव ही इस प्रकार हो भासता है, ऐसे यह सब अनुभव रूप हैं, इतर कुछ नहीं, जितना जगत् है सब आत्मरूप है, इसलिये हे रामजी! जितना जगत् है वह अकारण है, आत्मा का आभास है, कारण से कुछ बना नहीं, अनन्त ब्रह्मांड ब्रह्म सत्ता में आभास फुरते हैं और अज्ञानी को कार्य कारण सहित भासते हैं, उसमें नेति हुई हैं, जब जगकर देखेगा तब सब अद्वैत रूप भासेगा, न कोई नेति है न जगत् है, जब तक अज्ञान निद्रा में सोया हुआ है, तब तक जो पदार्थ उस सृष्टि में हैं, वही प्रतीति होंगे, जैसा कर्म है वह भासेगा और यह जगत् रूप स्वप्न है उसमें स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं और नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं, इनके प्राप्त होने का साधन धर्म अधर्म है, धर्म स्वर्ग का सुख का साधन है अधर्म नरक दुःख का साधन है, जब तक अविद्या रूप निद्रा में सोया हुआ है तब तक इसको यथार्थ जानता है जब जानेगा तब सब आत्मरूप होगा, इष्ट अनिष्ट कोई न रहेगा और जितना जगत् भासता है सब अनुभव रूप है, वह अनुभव सदा जाग्रत ज्योति है, उसको जानो, जिन पुरुषों ने इस अनुभव को नहीं जाना, वे उन्मत्त पशु हैं, क्योंकि वे आत्मबोध से शून्य हैं, आत्मा को सदा समीप नहीं जानते, उन्मत्त अपने आपको भूल जाता है, जैसे किसी को पिशाच लगता है, तब उसको अपना स्वरूप विस्तृत हो जाता है, पिशाच ही देहमें बोलते हैं, ऐसे जिसको अज्ञान रूप भूत लगा है, वह उन्मत्त हुआ है, आत्मस्वरूप को नहीं जानता विपर्यय बुद्धि से देहादिकों आत्मा जानता है जिनको स्वरूप में अहं प्रतीति है, उनको सर्व जगत् आत्मरूप प्रतीत होता है, हे रामजी! यदि आदि सृष्टि किसी कारण से बनी होती तो इसके पीछे प्रलयादिक में कुछ शेष रहता, वह तो अत्यन्ताभाव होता है, इसलिये सब जगत् अकारण है, जैसे चिन्तामणि से अकारण पदार्थ दृष्टि आता है, ऐसे यह अकारण है, न कहीं संस्कार है न स्मृति है, सब आत्मा के पर्याय हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, इसलिये सर्व जगत् को आत्मरूप जानो,

रामजी बोले–हे भगवन्! यदि संस्कार से अनुभव न होता और अनुभव से स्मृति नहीं होती तो इस प्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्टि आते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संशय भी तुम्हारा दूर करता हूं, जैसे हाथी के बालक को मारने में सिंह को यत्न नहीं करता पड़ता, ऐसे इस संशय को काटने के लिये मुझे यत्न नहीं करना पड़ता, जैसे सूर्य के उदय हुए तिमिरका अभाव होता है ऐसे मेरे वचनों से तेरा संशय दूर हो जायेगा, हे रामजी! जितना जगत् तू देखता है, सब चिन्मात्र स्वरूप है, उसमें इतर कुछ नहीं, जैसे शिल्पी स्तम्भमें पुतलियों की कल्पना करता है परन्तु पुतलियां कुछ बनी नहीं, उसके चित्त में पुतलियों का आकार है, ऐसे आत्मरूपी स्तम्भ है, उसमें चित्तरूप शिल्पी पुतलियों की कल्पना करता है, हे रामजी! स्तम्भ से पुतलियां निकाले तो भी निकलती हैं, परन्तु आत्मा तो अद्वैत है निराकार है उसमें और कुछ नहीं निकलता, उसमें वाणी की भी गम नहीं, चेतनमात्र है, उसमें अहं ऐसा जो फुरना फुरा है तब इसने अपने आपको चेतन जाना, फिर आगे शब्दार्थ की कल्पना की है, अपने आपको अधिष्ठान शुद्ध चेतन जाना, वही स्वर्ग है, ईश्वर है, जीव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादि शब्द और अर्थ फुरणे ही में हुए हैं, जैसे एक ही समुद्र में द्रवता से आवर्त, तरंग, फेन, बुद्‌बुदे नाम होते हैं, वे सब ब्रह्म के नाम हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, ब्रह्म से अपने आपमें स्थित है, वही फुरने से रहित जगदाकार हो भासता है, फुरने से रहित जगदाकार मिट जाता है, परन्तु फुरने अफुरने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है, जैसे स्पंद निस्पंद में वायु ज्यों का त्यों है, ऐसे ब्रह्म ज्यों का त्यों है और जितने पदार्थ भासते हैं, सब ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्न में अपना ही अनुभव पहाड़ वृक्ष आदिक नानाप्रकार का जगत् होकर भासता है, ऐसे यह ब्रह्मसत्ता जाग्रत् जगत्‌रूप हो भासती है, उसमें कहीं अन्तवाहकता को भासता है कहीं आधिभौतिक भासता है, कहीं ईश्वर कहीं जीव होकर भासता है, इससे लेकर शब्द अर्थ संयुक्त जीव फुरता गया है, वह ब्रह्मसत्ता इस प्रकार स्थित हुई है, जैसे स्तंभ में

पुतलियां स्तंभरूप होती हैं, ऐसे आत्माकाश में जगत् आत्मस्वरूप है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे उसमें जगत् आभास है, ऐसे स्मृति अनुभव भी आभास है, स्मृति जो संस्कार हैं, उनसे जगत् की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न हो, वह तो स्मृति संस्कार भी आभास है, यह जगत् का कारण कैसे हो, स्मृति भी तब होती है, जो प्रथम जगत् होता है, जगत् नहीं तो स्मृति कैसे हो, इसलिये जगत् आभासमात्र है इसका कोई कारण नहीं, हे रामजी! स्मृति संस्कार जगत् का कारण तब हो यदि जगत् आगे हुआ कहें, वह कुछ न था नहीं और अनुभव उसका होता है, जो पदार्थ भासता है वह तो इस जगत् के आदि में जगत् का कुछ अंश न था, फिर अनुभव किस प्रकार कहूं, यदि अनुभव ही न हुआ तो स्मृति किसको हो, स्मृति ही न हुई तो फिर उससे जगत् कैसे कहूं, इसलिये हे रामजी! आदि में जो जगत् फुरा है वह अकारण अकस्मात् फुरा है, जैसे रत्न की लाट होती है ऐसे जगत् है, पीछे से कारण कार्यरूप भासती है, आदि अकारणरूप है, हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो उसको जानिये, कि उत्पन्न नहीं हुई, जिसमें भासती है वही रूप है, अधिष्ठान से इतर कुछ नहीं, इसलिये सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, स्मृति भी भ्रम में आभास फुरी है, अनुभव भी आभास है, वह ब्रह्म से इतर कुछ नहीं और आभास भी फुरा नहीं, आभास की नाईं जगत् भासता है, आत्मसत्ता अद्वैत है, जिसमें आभास भी नहीं बनता, न स्मृति है न अनुभव है, न जाग्रत् है, न स्वप्न है, यह कल्पना नहीं तो क्या है? ब्रह्म ही है और फुरना जो कहते हैं वह कुछ वस्तु नहीं, जैसे स्तंभ में पुतलियों की कल्पना करता है ऐसे स्पंद चेतना आत्मा में जगत् कल्पना करती है और जो शिल्पी कल्पना करता है वह आप भिन्न होकर कल्पना करता है और यह चित्त सत्ता ऐसी है कि अपने ही स्वरूप में कल्पना करती है, जगत्‌रूप पुतलियां देखती हैं, वह आत्माऽऽकाश स्तंभ है, उसमें जगत् भी आकाशरूप पुतलियां हैं जैसे आकाश अपने आकाशभाव में स्थित है, ऐसे ब्रह्मा अपने ब्रह्मत्व भाव में स्थित है, जगत् भिन्न भी दृष्टि आता है, परन्तु अचैत्य चिन्मात्रस्वरूप है,

भेदभाव को प्राप्त नहीं सहुआ, विकारवान् भी दृष्टि आता है, परन्तु विकार कुछ हुआ नहीं, जैसे स्वप्न में आपही सब स्पष्ट भासता है, ऐसे यह जगत् अपने आपमें भासता है, परन्तु है कुछ नहीं, हे रामजी! यही आश्चर्य है, जो मैंने ऐसा उपदेश किया है, अपने अनुभव को प्रकटकर कहा है और जीव आपभी जानते हैं, स्वप्न में नित्य नित्य देखते हैं और सुनते भी हैं, परन्तु निश्चय से जान नहीं सकते और स्वप्न पदार्थ को मूर्खता से त्याग नहीं सकते यह आश्चर्य है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सालभजनकोपदेशो नाम द्विसप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२७२॥

त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७३

जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनम्।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के इष्ट विषयों को पाकर सुख नहीं मानता और अनिष्ट विषय की प्राप्ति में दुःख नहीं मानता इनके भ्रम से मुक्त है, जिसको बड़े भोग प्राप्त हुए हैं और अपने स्वरूप से विचलित नहीं होता, उसको जीवन्मुक्त जानिये, हे रामजी! जितने शब्द अर्थ हैं, वे जिसको द्वैतरूप नहीं भासते, उसे जीवन्मुक्त जानिये, जिस अविद्यारूप जाग्रत् में अज्ञानी जगते हैं, उसमें ज्ञानवान् सो रहे हैं और परमार्थरूप जाग्रत् में अज्ञानी सो रहे हैं, वे नहीं जानते कि यह अर्थ है, उसमें जीवन्मुक्त स्थित है, इस कारण से ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषय को पाकर सुखी और दुःखी नहीं होते उनका चित्त सदा आत्मपद में स्थित है, रामजी बोले–हे भगवन्! जो पुरुष सुख को पाकर सुखी नहीं होता और दुःख के साथ दुःखी नहीं होता, वह जो जड़ हुआ, चेतन तो नहीं हुआ, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सुख दुःख तब तक होता है, जब तक चित्त को जगत् से सम्बन्ध होता है, जब चित्त जगत् के

सम्बन्ध से रहित, चिन्मात्र होता है तब औपाधिक सुख दुःख नहीं रहते, जो पुरुष अपने स्वभाव में स्थित है वह परम विश्राम पाता है, सब कुछ करता है परन्तु उसको स्वरूप से कर्तव्य का उत्थान कुछ नहीं होता, उसका निश्चय सदा अद्वैत में रहता है, नेत्रों से देखता है, परन्तु उसकी द्वैत की भावना नहीं फुरती, जैसे अत्यन्त उन्मत्त होता है, उसको सब पदार्थ दृष्टि भी आते हैं, परन्तु पदार्थ का ज्ञान कुछ नहीं होता, ऐसे जिसकी बुद्धि अद्वैत में घनीभूत हुई है उसको द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते, जिनको द्वैत नहीं भासता उनको सुख दुःख कैसे भासें, उन पुरुषों ने उस अवस्था में विश्राम प्राप्त किया है, जहां न शय्या है न जाग्रत् है, न स्वप्न है न सुषुप्ति है, सर्व द्वैत से रहित अद्वैतरूप शय्या में विश्राम कर रहे हैं संसार मार्ग से पार हो गये हैं, आत्मा के प्रमाद से इसको कष्ट होता है, अपनी विभूति विद्या को त्यागकर प्रसन्न होता है, फिर संसार के क्रूर मार्ग में कष्ट पाता है, वह मनुष्य नहीं मानो मृग है, संसाररूप जंगल में कष्ट पाता है जब तृषा से दीन होता है तब जल की ओर दौड़ता है, जहां जाता है वहां मरुस्थल की नदी भासती है, जल प्राप्त नहीं होता फिर आगे बढ़ता है, दौड़ता है, जहाँ जाता है वहाँ मरुस्थल की नदी भासती है, जल प्राप्त नहीं होता, फिर आगे दौड़ता है, तृषा अधिक हो जाती है, इस प्रकार दौड़ता दौड़ता जड़ हो जाता है, दुःखी होकर मर जाता है, परन्तु जल प्राप्त नहीं होता, वह जल और दौड़ना और जड़ता तथा मरना भिन्न भिन्न सुनो, हे रामजी! मनरूप तो मृग है और संसाररूप जंगल में आ पड़ा है और इन्द्रियों के विषयरूप जलभास है, इनको सत् जानकर शान्ति के तृषारूप मार्ग से दौड़ता है, वह विषय आभासमात्र है उनमें शान्तिरूप जल नहीं है, दौड़ता दौड़ता वृद्ध अवस्था में जा पड़ता है, तब जड़ हो जाता है, ऐसे कष्ट को प्राप्त होता है और जब तक शान्तिरूप जल नहीं पाता तृप्त नहीं होता, हे रामजी! यह मनुष्य ही मानों यात्री है उसके सिर पर बड़ा बोझ है और क्रूर मार्ग में चला जाता है और मार्ग में इसको चोरों ने लूट

लिया है इसलिये जलता इस पुरुषरूप मुसाफिर के सिर पर जन्म का बड़ा भार है संशयरूप मार्ग में खड़ा है, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों के जो इष्ट अनिष्ट विषय हैं उनके रागद्वैषरूप तस्कर ने इससे विचाररूप धन हर लिया है, इसलिये रागद्वेष और तृष्णारूप अग्नि से जलता है, बड़ा आश्चर्य है, जो ऐसे क्रूर मार्ग को त्यागकर परम पद में विश्राम पाता है अन्य आनन्द को त्यागकर परम पद के आनन्द को प्राप्त हुए हैं, उन मुक्त पुरुषों को संसार का दुःखसुख नहीं व्याप सकता, परम अद्वैत शुद्धसत्ता को प्राप्त हुए हैं, सबको देखते हैं, ग्रहण और त्यागरूप जो अग्नि है उसको त्यागकर उन्होंने परम पद में विश्राम पाया है, सदा सोये रहते हैं, प्रकट सुख के साथ जो सोते हैं, वही सोते हैं, उनके अन्दर सदा शांति रहती है परन्तु जड़ता से रहित हैं, आकाश से भी अधिक सूक्ष्मसत्ता को प्राप्त हुए हैं, जैसे समुद्र में धूड़ नहीं होती, जैसे सूर्य में तम नहीं होता, ऐसेही उनमें लोभ अर्थात् विषयसुख तृष्णा नहीं होती उससे रहित होकर उन्होंने विश्राम पाया है, यह आश्चर्य है, अणु से अणु होकर और महत् से महत् होकर केवल विश्रामवान् हुए हैं, हे रामजी! जो आत्मसत्ता की ओर से सोये पड़े है, उनको दुःख होता है, ज्ञानवान् द्वेत जगत् की ओर से जड़ हुए हैं और अपने स्वरूप में, चेतन को दुःख कुछ नहीं, वे जाग्रत् की ओर से सोये हैं, उनको पुनः दुःख कैसे हो, क्योंकि उनका अविद्यक जगत् में जो दृश्य सम्बन्ध है वह दूर हो गया है वे इस ओर से सोये हैं, उनको फिर दुःख कैसे हो, वह पुरुष सदा अद्वैत रूप है जो अनन्त जगत् का कर्ता है और आपको सदा अकर्ता जानता है, ऐसे आश्चर्य पद में उन्होंने विश्राम पाया है और जगत् की सामूहिक समत्वसत्ता में स्थित होकर विश्राम पाया है, यह आश्चर्य है, वे सम्पूर्ण क्रियाएँ करते हैं परन्तु सदा अक्रिय पद में स्थित हैं, सम्पूर्ण पदार्थों को स्वप्नवत् जानकर सुषुप्त हुए हैं। आकाश से भी अधिक सूक्ष्म हुए हैं, आत्मसत्ता में विश्राम प्राप्त किये हुए हैं, वह आत्मसत्ता आकाश को भी व्याप्त कर रही है, उसको आत्मवत् जानकर स्थित हुए हैं, जो परम स्वच्छ पद है, उसमें सर्व शब्द अर्थ आकाशरूप हो

जाते हैं, आकाश भी आकाश हो जाता है, वे उस पद में विश्राम पा रहे हैं, यह आश्चर्य है, नेत्र खुले हुए हैं, सुषुप्ति में स्थित हैं, सुषुप्ति क्या है, कि दृक् और दृश्य भाव उनका दूर हो गया है और जगत् के प्रकाश से रहित हैं, परम प्रकाशरूप हैं, हे रामजी! बाह्य जो भोग पदार्थ हैं उनसे रहित हैं, अन्तरात्मा में स्थित हैं, प्रकट में जो सोता है और सुषुप्ति में जगता है और जाग्रत् से उसे सुषुप्ति है वह कर्म करता है परन्तु कर्ता करण भाव से रहित है, क्रोध भी करता है क्रोध से फुरने से रहित है, सब ओर से प्रकाशवान् होकर विराजमान है, ऐसे पुरुष निर्भय होकर विश्राम करते हैं, कामना करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु तृष्णा से रहित हैं, निस्संकल्प पद में स्थित हुए हैं, यह आश्चर्य है, जिस क्रिया की ओर देखते हैं, उसी ओर उनको शान्ति भासती है, क्योंकि एक मित्र उनके साथ रहता है, इससे कोई दुःख उनके निकट नहीं आता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जीवन्मुक्तलक्षण वर्णनं
नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२७३॥

चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७४

जीवन्मुक्तिबाह्यव्यवहारवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! वह मित्र कौन है, ज्ञानी का कोई कर्म मित्र है अथवा आत्मा में विश्राम का नाम मित्र है, संक्षेप से मुझे यह कहने की कृपा कीजिये। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! एक अकृत्रिम कर्म है, अपना सुकर्म उसका नाम है, अपना ही जो प्रयत्न है वह उनका मित्र है, उसे मैं कहता हूँ, सुनो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक यह तीन ताप सदा अज्ञानी को जलाते हैं, वह ज्ञानी को नहीं भासते, जो बड़ा कष्ट आकर पड़ जाय तो उसका निभाना कठिन है, बहुत कोप हो वह भी उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे मल को जल नहीं स्पर्श करता ऐसे ज्ञानी

को कष्ट नहीं स्पर्श करता, क्योंकि मित्र उसके साथ रहता है, जैसे बालक का मित्र बाल होता है, बड़ा भय भी उसका हेतु होता है, ऐसे चिरकाल जो ज्ञानवान् ने अभ्यास किया है, वह अभ्यास उसका मित्र होकर रहता है, दुष्ट क्रिया की ओर वह विचरने नहीं देता और शुभ की ओर प्रवृत्त कराता है, जैसे पिता पुत्र को अशुभ की ओर से हटाकर शुभ की ओर लगाता है, ऐसे उसको विचाररूप मित्र तृष्णा की ओर से हटाता है और आत्मा की ओर स्थिर करता है और रागद्वेषरूप अग्नि से निकालकर समतारूप शीतलता में स्थित करता है, ऐसा उसका विचाररूप मित्र है और जितने दुःख क्लेश हैं, उन सबसे वह बचाकर ले जाता है, जैसे मल्लाह नदी से पार पहुँचा देता है, हे रामजी! विचार रूप मित्र बहुत सुन्दर है, शान्तरूप है, यह सब मैल को जलानेवाली अग्नि है, जैसे सुवर्ण के मैल को अग्नि जलाकर निर्मल करती है ऐसे विचार रूप अग्नि रागद्वैषरूप मल को जलाती है और जब विचार रूप मित्र आता है, तब इसकी चेष्टा स्वाभाविक निर्मल हो जाती है, इसके विचार वैदिक होते हैं, सब कोई उसको देखकर प्रसन्न होता है, दया और कोमलता अमान अक्रोध आदिक गुण स्वाभाविक आकर प्राप्त होते हैं, जैसे तिलों में तेल रहता है फूलों में सुगन्धि रहती है, अग्नि में उष्णता रहती है, ऐसे विचार से ज्ञानी में शुभ आचार रहते हैं और विचाररूप मित्र बड़ा शूर है, वह शत्रुओं का नाश करता है, अज्ञान रूप भंयकर शत्रु को अनायास नष्ट कर देता है, जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है और जिसका प्रकाश सर्वदा साथ देता है, संसार के विषय भोग एक गंदगी से भरा अन्धेरा कूप है, उसमें विचार मित्र गिरने नहीं देता सब ओर से रक्षा करता है, और जिस ओर से वह पुरुष जाता है, उस ओर सबको प्रसन्नता होती है, हे रामजी! उसके वचन अति कोमल, मधुर, स्निग्ध क्षोभ से रहित होते हैं, वह परम उदार, उपकारी स्वभाव, प्रसन्न मूर्ति और शान्त रूप होता है, जैसे पतिव्रता स्त्री भर्ता को सदा प्रसन्न रखती है, ऐसे ही विचाररूप मित्र

इसको सदा प्रसन्न रखता है, सदा सदाचार में रखता है और दान, तप यज्ञादि जितनी शुभ क्रियाएँ हैं सब करता है और दूसरों से भी करता है, जिसके अंदर विचार रूप मंत्री आता है, वह अपने परिवार को भी साथ ले आता है, रामजी बोले–हे भगवन्! उसका परिवार कौन है और उसका स्वरूप क्या है, आचार क्या है संक्षेप से सब कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! स्नान, दान, तपस्या, ध्यान, यह चारों उसके बेटे हैं, सदा पवित्र रहने का नाम स्नान है, शक्ति के अनुसार पात्र को देना दान है, बाह्य वृत्ति को अन्तर स्थित करना अर्थात् मन का समाहित करना तप है, वृत्ति को आत्माकार करने का नाम ध्यान है, यह चारों उसके बेटे हैं, मुदिता उसकी स्त्री है, सदा प्रसन्न रहने का नाम मुदिता है, वह ऐसा आत्मदर्शी नमस्कार के योग्य है, जैसे द्वितीया की चन्द्र रेखा को देखकर सब कोई प्रसन्न होता है और नमस्कार करता है, ऐसे उसको देखकर सब कोई प्रसन्न होता है, और नमस्कार करता है और मुदिता रूप स्त्री के साथ एक सहेली रहती है करुणा और दया उसका नाम है और समता रूप द्वारपालिन सामने खड़ी रहती है, जब विवेक राजा अन्तःपुर में जाता है, तब सामने होकर सब स्थान दिखाती है और सदा साथ रहती है जिस ओर राजा देखता है उस ओर समता ही दृष्टि आती है, वह आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, दो पुत्रों को साथ लेकर पुरी में विचरती है, जिस ओर राजा भेजता है उस ओर धैर्य और धर्म को लिये फिरती है, जब राजा असवार होकर चलता है, तब वह भी तमरूप वाहनपर आरूढ़ होकर राजा के साथ जाती है, जब राजा शत्रुओं के साथ लड़ाई करता है (पांचों विषय शत्रु हैं,) तब धैर्य संतोषरूप मंत्री मंत्र (सलाह) देते हैं, विचार रूप बाण से शत्रुओं का नाश करता है, हे रामजी! विचार सदा उसके अंग रहता है और सब काम करता है, यह उसकी स्वाभाविक चेष्टा है और स्वयं सदा अमान रहता है, कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान उसको कोई नहीं फुरता, जैसे कागज पर लिखी हुई मूर्ति अभिमान से रहित होती है ऐसे वह अभिमान से रहित है और जो

निश्चय होता है, ऐसा उसको सर्व रूप होकर फल देता है और कुछ बना नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम सप्तसप्तधिकद्विशततमः सर्गः ।।२७७।।

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७८

ब्रह्मगीता परम निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस जगत् के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी, उसमें जो जगत् आभास फुरा है, उसको भी तुम वही स्वरूप जानों, जैसे स्वप्न के आदि अनुभव आकाश होता है, उसमें स्वप्न सृष्टि फुर आती है, वह अनुभवरूप है और कुछ नहीं, जैसे समुद्र द्रवता से तरंग रूप हो भासता है, ऐसे ब्रह्म चेतनता जगत् रूप होकर भासती है, वह जगत् भी वही रूप है, हे रामजी! वास्तव में न कोई सुख है, न दुःख है, सुख और दुःख अज्ञान से भासते हैं जैसे–एक निद्रा में दो वृत्तियां भासती हैं, एक स्वप्नवृति और सुषुप्तिवृति, ऐसे अज्ञानी को दो वृत्तियाँ सुख की और दुःख की, और ज्ञानवान् को सब ब्रह्मस्वरूप है, जैसे कोई पुरुष स्वप्न से जगता है तो उसको स्वप्न की सृष्टि असत् रूप भासती है, ऐसे ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत् भासती है, जैसे मरुस्थल की नदी के जल का अत्यन्त अभाव जिसने जाना है, वह जल पान की इच्छा नहीं करता, ऐसे ही सम्यक्दर्शी ने जगत् को असत् जाना है, इसलिये जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करता और जो असम्यकदर्शी है, उसको जगत् सत् भासता है, वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता है किसीका त्याग करता है, हे रामजी! परमात्मा में जगत् इस प्रकार है, जैसे समुद्र में तरंग होते हैं, जैसे समुद्र और तरंग में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, यदि तुम कहो अविद्या ही जगत् का कारण है, तो अविद्या तब

जगत् का कारण कहाती है कि यदि जगत् से प्रथम सिद्ध होती हो, वह अविद्या तो अविद्यमान है, जैसे परमात्मा में जगत् आभास मात्र है, ऐसे अविद्या भी आभासमात्र है, जो आपही आभास मात्र हो वह जगत् का कारण कैसे कहा जाय, जगत् का आभास और अविद्या का आभास इकट्ठा ही फुरा है, जैसे स्वप्न में सृष्टि भास आती है उसमें घट पटादिक पदार्थ भासते हैं, वह किसी कुलाल से मृत्तिका लेकर तो नहीं बनाये, जैसे घट भासा है, ऐसे कुलाल और मृत्तिका भी भास आये, सबका भासना इकट्ठा ही होता है, ऐसे जगत् और अविद्या इकट्ठे ही फुरे हैं, अविद्या पूर्ण तो सिद्ध नहीं होती तो अविद्या को जगत् का कारण कैसे माना जाय, हे रामजी! परमात्मा से जगत् और अविद्या इकट्ठा ही आभास फुरा है, वह आभास कुछ वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, न कहीं अविद्या है न जगत् है, आत्मसत्ता सदा यथावत् स्थित है, हे रामजी! निर्विकल्प में जगत् का अत्यन्त अभाव होता है, वह निर्विकल्प कैसे हो, जो निर्विकल्प होता है तब जडता आती है और जब विकल्प उठता है, तब संसार उदय होता है और जब ध्यान लगाता है तब ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी हो जाती है, इस प्रकार तो निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि निर्विकल्प में भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, निर्विकल्प उसका नाम है जहां चित्त की वृत्ति न फुरे, तो तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि वहां भी आभावृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है, वह जडात्मक सुषुप्तिरूप है और सविकल्प सुषुप्ति है उसमें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सम्यक् बोध का नाम निर्विकल्प है, सम्यक् बोध निर्विकल्पता से जगत् का अत्यन्ताऽभाव जिसको हुआ है, वह जीवन्मुक्त है वहीं निर्विकल्प कहाता है और वही परम जडता है, जहां जगत् का परम असंभव है, हे रामजी! यह जो निर्विकल्प और सविकल्प हैं, उससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, यही दोनों मन की वृत्तियां हैं, जैसे एक निद्रा की दो वृत्तियाँ हैं, स्वप्न सुषुप्तिरूप, ऐसे यह निर्विकल्प और

सविकल्प दोनों मन की वृत्तियां हैं, निर्विकल्प सुषुप्तिरूप पत्थरवत् और सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप और निर्विकल्प में भी अभाव वृत्ति रहती है, उससे भी मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तब होती है जब दृश्य का अत्यन्त अभाव हो, हे रामजी! आत्म अनुभव आकाश से इतर कुछ उत्थान नहीं होता, उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पता है, हे रामजी! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तो भी कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान तुझको न होगा, आत्मा को अद्वैत जानना, जगत् का अत्यन्ताभाव जानना, इसका नाम बोध है, इस बोध की दृढ़ता हो और इसके ध्यान की दृढ़ता हो, तब उसका नाम परम पद है, उसीका निर्वाण नाम है, उसीका नाम मोक्ष है, वह कैसा पद है, किंचन भी वही है, सदा अपने आपमें स्थित है, उससे न नानात्व कहना है न अनाना शब्द है, न सविकल्प कहता है न निर्विकल्प है, न सत् है न असत् है, न एक है न दो है, सर्व शब्द का अन्त है, जिसमें किसी शब्द से वाणी नहीं प्रवृत्त होती, उस सत्ता को प्राप्त होने का उपाय मैं कहता हूं, हे रामजी! यह मोक्ष उपाय ग्रन्थ मैंने तुझे कहा है, इसको विचारना चाहिये, जो पुरुष अर्द्ध प्रबुद्ध है, जो पदपदार्थ जाननेवाला है और जिसको मोक्ष की इच्छा है, वह इस ग्रन्थ को विचारता है और शुभाचार से बुद्धि को निर्मल करता है और अशुभ क्रिया का त्याग करता है, उसको शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी, हे रामजी जो पद मोक्ष उपाय शास्त्र के विचार से प्राप्त होता है, वह तीर्थ स्नान, तप दान से नहीं प्राप्त होता, तप दानादि से स्वर्ग को पाता है मोक्ष को नहीं प्राप्त होता, मोक्षपद आध्यात्मशास्त्र के अर्थाभ्यास से प्राप्त होता है, यह जगत् आभासमात्र है, वही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है, जैसे जलही तरंगरूप होकर भासता है, जैसे वायुस्पंदरूप होकर भासता है ऐसे ब्रह्म जगत्‌रूप होकर भासता है, जैसे स्पंद और निस्पन्द में वायु ज्यों का त्यों है, परन्तु स्पन्द होता है तो भासता है और निस्पंद होता तो नहीं भासता, ऐसे ही ब्रह्म में संवेदन

स्फुरन होता है तो जगत् हो भासता है और निर्वेदन होती है अन्तर्मुख अधिष्ठान की ओर आती है, तब जगत् समेटा जाता है, परन्तु संवेदन के फुरने में भी वही है और अफुरने में भी वहीं है, इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म से इतर कुछ बना नहीं, जो इतर भासता है उसे भ्रममात्र ही जानना चाहिये, जब आत्मपद का आभास हो तब भ्रान्ति शान्त हो जाती है, जैसे प्रकाश से अंधकार नष्ट हो जाता है, ऐसे आत्मपद के अभ्यास से भ्रान्ति निवृत्त होती है, यद्यपि नाना प्रकार की सृष्टि भासती है, परन्तु कुछ हुई नहीं, जैसे स्वप्न में सृष्टि दृष्टि आती है, परन्तु कुछ बनी नहीं, वह अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, ऐसे यह जगत् सब अनुभवरूप है, जैसे रत्न और रत्न के चमत्कार में कोई भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं, हे रामजी! तू स्वभाव निश्चय से देख भ्रम मिट जाय, सृष्टि स्थिति प्रलय सब उसकी संज्ञाएँ हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मगीतापरमनिर्वाण वर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२७८।।

एकोनाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७९

परमार्थगीता वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जितने आकार तुझको भासते हैं, संवेदनरूप हैं, अपर कुछ बना नहीं, सृष्टि के आदि भी अद्वैत सत्ता थी और अंत में भी वही है, मध्य में जो आकर भासते हैं, उन्हें भी वही रूप जानिये, जैसे स्वप्नसृष्टि के आदि में शुद्ध संवित् होती है उसमें आकार भास आता है, वह भी अनुभवरूप है और कुछ नहीं बना, आत्मसत्ता ही पिंडाकार हो भासती है और जितने पदार्थ भासते हैं, वह वही, आकाशरूप अभ्यासमात्र है अपर कुछ नहीं बना, आत्मसत्ता सदा शुद्ध है,

षट् सप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७६

स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे स्वप्न में पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं, वे अविद्यमान हैं, कुछ हैं नहीं, ऐसे पिता माता जो आदि ब्रह्माजी हैं उनको भी आकाशरूप जानिये, वे भी हुए नहीं, आत्मसत्ता से इतर कुछ होता नहीं जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे उठते हैं, वे स्वाभाविक हैं तरंग कहना भी उनको नहीं बनता, वे तो जलरूप हैं, ऐसे जिसको तुम ब्रह्माजी कहते हो वह अपर कोई नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, ब्रह्माजी इस जगत् के विराट् हैं, जैसे पत्र, फूल फल शाखाएँ वृक्ष के अंग हैं, ऐसे सब भूत विराट् के अंग हैं, जो विराट् ब्रह्मा ही आकाशरूप है तो उसके अंग जगत् की बात क्या कही जाय, हे रामजी! विराट् के नाम प्राण हैं, न आकार है न इन्द्रिय है न मन है न बुद्धि है, न इच्छा है, केवल अद्वैत चिन्मात्र सत्ता अपने आपमें स्थित है, यदि विराट् नहीं तो जगत् कैसे हो, यदि तुम कहो आकाशरूप के अंग कैसे भासते हैं, तो हे रामजी! जैसे स्वप्न में बड़े पहाड़ पर्वत प्रत्यक्ष दृष्टि आते हैं, परन्तु कुछ बने नहीं, आकाशरूप हैं ऐसे विराट् भी कुछ बना नहीं, आकाशरूप है, मैं उसके अंग साकार कैसे कहूं, सब आकार संकल्प पुर की नाईं कल्पित हैं, एक आत्मसत्ता ही सदा यथावत् स्थित है, उसमें स्मृति क्या कहें और अनुभव क्या कहें, अनुभव स्मृति भी उसका आभास है, जैसे समुद्र में तरंग आभास होते हैं ऐसे आत्मा में अनुभव स्मृति भी आभास हैं और स्मृति भी उसकी होती है जिसका प्रथम अनुभव होता है, वह अनुभव भी जगत् में होता है, जहां जगत् भी उत्पन्न न हुआ हो, तो अनुभव और स्मृति उसकी कैसे हो, इसलिये न अनुभव है न स्मृति है, इस कल्पना को त्याग दो, जहां पृथ्वी होती है वहां धूड भी होती है जहां पृथ्वी से रहित आकाश ही हो वहां धूड कैसे हो, ऐसे जहां पदार्थ होते हैं,

वहां अनुभव और स्मृति भी होती है, जहां पदार्थ नहीं तो यह कैसे हो, इसलिये दोनों का अभाव है, रामजी बोले—हे भगवन्! स्मृतिवान् में इष्ट स्मृति का अनुभव तो प्रत्यक्ष होता है, प्रथम पदार्थ का अनुभव होता है, पीछे उसकी स्मृति होती है, उस स्मृति संस्कार से पुनः अनुभव होता है, ऐसेही भ्रमादिक का क्यों न हो, यह जो प्रत्यक्ष भासता है तुम कैसे इसका अभाव कहते हो और अभाव में विशेषता क्या है? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! स्मृति अनुभव वहां होता है जहां कार्य कारण भाव होता है और ब्रह्मा से लेकर काष्ठ पर्यन्त जितना जगत् तुझको भासता है, सब आकाश रूप है कुछ बना नहीं, अविद्यमान ही भ्रम से विद्यमान भासता है जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, वह अविद्यमान है भ्रम से भासता है, ऐसे यह जगत् भ्रम से भासता है और स्मृति उसकी होती है जिस पदार्थ का प्रथम अनुभव होता है, अगर कहो, कि भ्रमादिक स्मृति संस्कृति से उत्पन्न हुआ है तो ऐसा नहीं बनता क्योंकि प्रथम तो ज्ञानवान् का स्मृति से होना नहीं होता तो उनका स्मृति कारण कैसे कहें और दूसरा यह कि इस जगत् के आदि कोई जगत् न था जिसकी स्मृति मानी जाय, इस जगत् के आदि के बल अद्वितीय आत्मसत्ता थी, उसमें स्मृति क्या और अनुभव क्या, इसलिये ब्रह्मादिक का होना और जगत् का होना किसी कारण कार्यभाव से नहीं अकारण है, हे रामजी! प्रथम तो तुम यह देखो कि ज्ञानी को जगत् नहीं भासता तो स्मृति किसकी कहें? उसको तो केवल ब्रह्म सत्ता ही भासती है, जैसे सूर्य को रात्रि की स्मृति नहीं होती ऐसे ज्ञानी को जगत् की स्मृति नहीं होती, हमारे निश्चय में तो यह है कि जगत् न हुआ है न आगे होगा केवल अपने आपमें ब्रह्म स्थित है, वह अद्वैत है और सब उसका आभास है, जो आभास को सत् जानता है तो स्मृति को भी सत् जान और यदि आभास को असत् जानता है तो स्मृति को भी असत् जान, जैसे स्वप्न में सृष्टि का आभास होता है उसमें अनुभव भी होता है तो स्मृति भी होती है, जगने पर उसमें सृष्टि अनुभव स्मृति का अभाव हो जाता है, ऐसे ही परमात्सत्ता

अद्वैत के जाग्रत् में अनुभव और स्मृति का अभाव है, उसमें जाग्रत् कुछ बना नहीं, जैसे कोई पुरुष मरुस्थल में भ्रम से नदी देखता है और सत् जानकर उसकी स्मृति करता है, जो नहीं देखी थी वह उसके निश्चय ही में नहीं है और कुछ नदी तो नहीं, जब नदी का असत् है, तो स्मृति अनुभव कैसे हो, ऐसे अज्ञानी के निश्चयमें जगत् भास है, वह जगत् ही असत् है उसकी स्मृति अनुभव कैसे हो, ज्ञानवान् के निश्चय में ऐसा भासता है। हे रामजी! स्मृति जो होती है पदार्थ की होती है पदार्थ कोई नहीं सब ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है, जैसा जैसा उसमें फुरना होता है, ऐसा ऐसाही होकर भासता है, परन्तु अन्य कुछ वस्तु नहीं जैसे वायु चलता भी है और ठहरता भी है, चलने और ठहरने में वायु को भेद कुछ नहीं, ऐसे ज्ञानवान् को जगत् के फुरने अफुरने में ब्रह्म सत्ता अभिन्न भासती है, कारण कार्य नहीं भासता, जैसे पत्र शाखा फूल फल सब वृक्ष के अवयव हैं, ऐसे जगत् आत्मा के अवयव हैं, आत्मा में प्रकट होते हैं पुनः लीन भी हो जाते हैं, इतर कुछ नहीं, जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकर भासता है, आरम्भ और परिणाम से नहीं होता, आभास मात्र है, जैसे घट पट आदिक आत्मा का अभास है ऐसे स्मृति भी आभास है, जैसे स्मृति भी जगत् में उदय हुई है, यदि जगत् ही असत् है तो स्मृति कैसे सत् हो और जो यर्थाथ दर्शी है उनको सब ब्रह्मरूप भासता है, हमको न कुछ मोक्ष उपाय भासता है न इसका कोई अधिकारी भासता है, हमारे निश्चय में अद्वैत ब्रह्म सत्ता ही भासती है, जैसे नट स्वांग धारण करता है, तो सारे स्वांग को आभास मात्र जानता है, किसीको सत् नहीं जानता है, ऐसे हमको ब्रह्म से इतर कुछ नहीं भासता और अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते जिस प्रकार उसको जगत् शब्द है, उसके निश्चय को कोई नहीं जानता है, हमारे निश्चय में सब चिन्मात्र है, अज्ञानी को जगत् द्वैत रूप भासता है और विपर्यय भावना होती है, ज्ञानवान् को चिन्मात्र से इतर कुछ नहीं भासता जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने अनुभव में स्थित होती है, सबका अधिष्ठान अनुभव

सत्ता है, परन्तु निद्रा दोष से भिन्न भिन्न भासती है, ऐसे अज्ञानी को जगत् भिन्न भिन्न भासता है और जो जगे हुए ज्ञानवान् हैं, उनको भिन्न कुछ नहीं भासता, न उसको अविद्या भासती है, न मूर्खता, न मोह भासता है, सब अपना आप हमको ब्रह्म स्वरूप भासता है, जहां कुछ दूसरी वस्तु बनी नहीं वहां स्मृति और अनुभव किसका कहें, यह कलना सबही मिथ्या है, हे रामजी! सर्व अर्थ का जो अर्थभूत है वह ब्रह्म है, सब पदार्थ उसमें कल्पित हैं, स्मृति और अनुभव मन में होता है, वह मन आत्मा से ऐसे है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है, उसमें स्मृति क्या कहें और अनुभव क्या कहें? सब कल्पित है और पृथ्वी आदिक तत्व आत्मा में कुछ बने नहीं, ब्रह्म सत्ता ही इस प्रकार भासती है, ज्ञानवान् को सदा ऐसेही भासता है आभास भी आत्मा में आभास है कारण कार्य भाव कदाचित् नहीं भासता, जैसे सूर्य को अन्धकार कदाचित् नहीं भासता, ऐसे ज्ञानवान् को कारण कार्य भाव दिखाई नहीं देता, जैसे स्वप्न के आदि अद्वैत सत्ता होती है, उसमें अकारण स्वप्न की सृष्टि फुर आती है, ऐसे अद्वैत सत्ता में अकारण आदि सृष्टि फुर आई है न पृथ्वी है कोई अपर पदार्थ है, सब चिदाकाश रूप है और कुछ बना नहीं आभासमात्र जगत् में स्मृति की कल्पना कैसे हो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे स्मृत्यभाव जगत्परमाकाश वर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२७६॥

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७७

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनम् ।

रामजी बोले-हे भगवन्! जिसमें सर्व अनुभव होता है, उसके देह में अहं प्रत्यय किस प्रकार होता है, वह तो सर्वात्मा है, उस सर्वात्मा को एक देह में अहं प्रत्यय होना यह क्यों कर हो सकता है, काष्ठ पाषाण

पर्वत और चेतन का अनुभव किस प्रकार हो गया है, वह तो अद्भूत स्वरूप है, उसमें जड़ चेतन वह दोनों भेद कैसे हुए, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे शरीर में हाथ आदि अपने अंग हैं, उन अंगों में एक शरीर फुरणा व्याप्त हुआ है और जो उन अंगों में एक अंग को पकड़कर कहे कि नाम लो कौन है, तब वही अपनी नामसंख्या कहता है, तो तू देख कि उस एक अंग में अपने आप क्यों कहा, परन्तु सब अंगों में उसकी आत्मता तो नाश नहीं हो जाती, ऐसे आत्मा अनुभवरूप है, तो भी एक अंग में उसकी आत्मता फुरती है, उससे उसकी सर्वात्मता खंडन तो नहीं हो जाती, जैसे पत्रफूल फल शाखा आदि सब अंगों में वृक्ष एक ही व्याप्त हुआ है, परन्तु जब एक शाखा अथवा पत्र को पकड़कर कहता है तो कहता है यह वृक्ष है, तो इसके एक अंग में वृक्ष भावना कहना, इससे वृक्ष का सर्वात्मभाव नहीं नष्ट नहीं होता, ऐसेही सर्वात्मा, एक देह में अहंभाव सिद्ध होता है, जड और चेतन भी दोनों भाव एक ही के हैं एक ही के दोनों स्वरूप हैं, जैसे एकही शरीर में दोनों सिद्ध होते हैं, हाथ पांव आदिक जड है और नेत्र का द्रष्टा चेतन है एकही शरीर दोनों धारण किये हैं और दोनों एक ही शरीर के स्वरूप है, ऐसे एक आत्मा ने दोनों धारण किये हैं और एक ही स्वरूप हैं, जैसे वृक्ष अपने अंग को धारण करता है और वृक्षस्वभाव को भी धारण करता है, ऐसे सर्वात्मा सबको धारण करता है जैसे स्वप्नसृष्टि सबको अनुभव धारण करती है और सब क्रिया को भी धारण करता है, ऐसे आत्मसत्ता सब जगत् और जगत् की क्रियाओं को भी धारण करती है, क्योंकि सर्वात्मा है, वह क्यों न धारण करे, जैसे एक ही समुद्र में अनेक तरंग उठते हैं परन्तु सबही समुद्र के आश्रय हैं और वही रूप है, ऐसे जितने जीव हैं वे परमात्मा में फुरते हैं और परमात्मा के आश्रय हैं और वही रूप हैं, जैसे तरंग आपको जाने कि मैं जल ही हूं, तब उसकी तरंग संज्ञा दी जाती रहती है, जलरूप ही देखता है, ऐसे जीव जब परमात्मा के साथ अपने आपको अभिन्न जाने कि मैं आत्मा ही हूँ, तब उसके जीवत्व भाव का अभाव हो जाता है, परमात्मा को ही देखता है। हे

रामजी! जैसे जल में द्रवता से तरंग भासते हैं, परन्तु जल से इतर कुछ वस्तु नहीं, ऐसे शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से आदि ब्रह्मा का स्फुरण हुआ है, उसने इस जगत् की मनोराज्य से कल्पना की है, वह आकाशरूप निराकार है, अन्य कुछ बना नहीं, और यदि विराट् ही आकाशरूप हुआ, तो उसका शरीर कैसे साकार हो, वह भी निराकार है, जैसा अपना अनुभव स्वरूप में पर्वत नदियाँ जड चेतन होकर भासती हैं, ऐसेही जितना जगत् भासता है, सब आत्मरूप है, हे रामजी! जैसे एक निद्रा के दो स्वरूप हैं, स्वप्न और सुषुप्ति ऐसे एक ही आत्मा ने जड़ और चेतन दो स्वरूप धारण किये हैं और जगत् आत्मा में कुछ बना नहीं, यह आभासरूप है, आत्मसत्ता ही अपने वचन द्वारा जगत्रूप हो भासती है, जैसे आकाश में घन शून्यता से नीलता भासती है, वह अविचार सिद्ध है, नीलता कुछ बनी नहीं, ऐसे आत्मा में घन चेतनता से जगत् भासता है, परन्तु जगत् आकार कुछ बना नहीं, सर्वकाल अद्वैत आत्मा निराकार है, अनंत सृष्टि आत्मा में आभास उपजकर लीन हो जाती है, आत्मा ज्यों का त्यों हैं। जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होकर लीन हो जाते हैं, परन्तु जलरूप है, ऐसेही परब्रह्म में सृष्टि परब्रह्मरूप है, हे रामजी! यह जगत् विराट् का शरीर है, सिर उसका महा आकाश है, दशों दिशाएँ उसकी भुजाएँ हैं, पृथ्वी उसके चरण है, पातालरूप तलियाँ हैं अन्तरिक्ष मध्यलोक उसका उदर है, सब जीव उसकी रोमावली हैं, इनसे लेकर अन्य सब पदार्थ विराट् के अंग हैं, वह विराट् आकाशरूप है, जैसे विराट् ब्रह्माजी आकाशरूप हैं, ऐसे उनका जगत् भी आकाशरूप है, इसलिये सब जगत् विराट्रूप है, वह ब्रह्म ही है, अपर कुछ बना नहीं, चन्द्रमा सूर्य उसके नेत्र हैं, मैं तू और यह इत्यादि से लेकर जितने शब्द हैं उन शब्दों का अधिष्ठान ब्रह्म है, वह ब्रह्म मैं हूं, कैसा हूं कि जिससे दूसरा कुछ नहीं बना, मैं सदा अपने आपमें स्थित हूं, हे रामजी! जितने भी शास्त्रों के मत हैं–शून्यतावादी, शैव, शाक्त, पांचरात्रिक आदि, इन सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, सबका साररूप वह सर्वात्मरूप है, जैसे किसीको

निश्चय होता है, ऐसा उसको सर्व रूप होकर फल देता है और कुछ बना नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम सप्तसप्तधिकद्विशततमः सर्गः ।।२७७।।

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७८

ब्रह्मगीता परम निर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस जगत् के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी, उसमें जो जगत् आभास फुरा है, उसको भी तुम वही स्वरूप जानों, जैसे स्वप्न के आदि अनुभव आकाश होता है, उसमें स्वप्न सृष्टि फुर आती है, वह अनुभवरूप है और कुछ नहीं, जैसे समुद्र द्रवता से तरंग रूप हो भासता है, ऐसे ब्रह्म चेतनता जगत् रूप होकर भासती है, वह जगत् भी वही रूप है, हे रामजी! वास्तव में न कोई सुख है, न दुःख है, सुख और दुःख अज्ञान से भासते हैं जैसे–एक निद्रा में दो वृत्तियां भासती हैं, एक स्वप्नवृति और सुषुप्तिवृति, ऐसे अज्ञानी को दो वृत्तियाँ सुख की और दुःख की, और ज्ञानवान् को सब ब्रह्मस्वरूप है, जैसे कोई पुरुष स्वप्न से जगता है तो उसको स्वप्न की सृष्टि असत् रूप भासती है, ऐसे ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत् भासती है, जैसे मरुस्थल की नदी के जल का अत्यन्त अभाव जिसने जाना है, वह जल पान की इच्छा नहीं करता, ऐसे ही सम्यक्दर्शी ने जगत् को असत् जाना है, इसलिये जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करता और जो असम्यकदर्शी है, उसको जगत् सत् भासता है, वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता है किसीका त्याग करता है, हे रामजी! परमात्मा में जगत् इस प्रकार है, जैसे समुद्र में तरंग होते हैं, जैसे समुद्र और तरंग में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, यदि तुम कहो अविद्या ही जगत् का कारण है, तो अविद्या तब

जगत् का कारण कहाती है कि यदि जगत् से प्रथम सिद्ध होती हो, वह अविद्या तो अविद्यमान है, जैसे परमात्मा में जगत् आभास मात्र है, ऐसे अविद्या भी आभासमात्र है, जो आपही आभास मात्र हो वह जगत् का कारण कैसे कहा जाय, जगत् का आभास और अविद्या का आभास इकट्ठा ही फुरा है, जैसे स्वप्न में सृष्टि भास आती है उसमें घट पटादिक पदार्थ भासते हैं, वह किसी कुलाल से मृत्तिका लेकर तो नहीं बनाये, जैसे घट भासा है, ऐसे कुलाल और मृत्तिका भी भास आये, सबका भासना इकट्ठा ही होता है, ऐसे जगत् और अविद्या इकट्ठे ही फुरे हैं, अविद्या पूर्ण तो सिद्ध नहीं होती तो अविद्या को जगत् का कारण कैसे माना जाय, हे रामजी! परमात्मा से जगत् और अविद्या इकट्ठा ही आभास फुरा है, वह आभास कुछ वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, न कहीं अविद्या है न जगत् है, आत्मसत्ता सदा यथावत् स्थित है, हे रामजी! निर्विकल्प में जगत् का अत्यन्त अभाव होता है, वह निर्विकल्प कैसे हो, जो निर्विकल्प होता है तब जडता आती है और जब विकल्प उठता है, तब संसार उदय होता है और जब ध्यान लगाता है तब ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी हो जाती है, इस प्रकार तो निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि निर्विकल्प में भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, निर्विकल्प उसका नाम है जहां चित्त की वृत्ति न फुरे, तो तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि वहां भी आभावृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है, वह जडात्मक सुषुप्तिरूप है और सविकल्प सुषुप्ति है उसमें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सम्यक् बोध का नाम निर्विकल्प है, सम्यक् बोध निर्विकल्पता से जगत् का अत्यन्ताऽभाव जिसको हुआ है, वह जीवन्मुक्त है वहीं निर्विकल्प कहाता है और वही परम जडता है, जहां जगत् का परम असंभव है, हे रामजी! यह जो निर्विकल्प और सविकल्प हैं, उससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, यही दोनों मन की वृत्तियां हैं, जैसे एक निद्रा की दो वृत्तियाँ हैं, स्वप्न सुषुप्तिरूप, ऐसे यह निर्विकल्प और

सविकल्प दोनों मन की वृत्तियां हैं, निर्विकल्प सुषुप्तिरूप पत्थरवत् और सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप और निर्विकल्प में भी अभाव वृत्ति रहती है, उससे भी मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तब होती है जब दृश्य का अत्यन्त अभाव हो, हे रामजी! आत्म अनुभव आकाश से इतर कुछ उत्थान नहीं होता, उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पता है, हे रामजी! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तो भी कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान तुझको न होगा, आत्मा को अद्वैत जानना, जगत् का अत्यन्ताभाव जानना, इसका नाम बोध है, इस बोध की दृढ़ता हो और इसके ध्यान की दृढ़ता हो, तब उसका नाम परम पद है, उसीका निर्वाण नाम है, उसीका नाम मोक्ष है, वह कैसा पद है, किंचन भी वही है, सदा अपने आपमें स्थित है, उससे न नानात्व कहना है न अनाना शब्द है, न सविकल्प कहता है न निर्विकल्प है, न सत् है न असत् है, न एक है न दो है, सर्व शब्द का अन्त है, जिसमें किसी शब्द से वाणी नहीं प्रवृत्त होती, उस सत्ता को प्राप्त होने का उपाय मैं कहता हूं, हे रामजी! यह मोक्ष उपाय ग्रन्थ मैंने तुझे कहा है, इसको विचारना चाहिये, जो पुरुष अर्द्ध प्रबुद्ध है, जो पदपदार्थ जाननेवाला है और जिसको मोक्ष की इच्छा है, वह इस ग्रन्थ को विचारता है और शुभाचार से बुद्धि को निर्मल करता है और अशुभ क्रिया का त्याग करता है, उसको शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी, हे रामजी जो पद मोक्ष उपाय शास्त्र के विचार से प्राप्त होता है, वह तीर्थ स्नान, तप दान से नहीं प्राप्त होता, तप दानादि से स्वर्ग को पाता है मोक्ष को नहीं प्राप्त होता, मोक्षपद आध्यात्मशास्त्र के अर्थाभ्यास से प्राप्त होता है, यह जगत् आभासमात्र है, वही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है, जैसे जलही तरंगरूप होकर भासता है, जैसे वायुस्पंदरूप होकर भासता है ऐसे ब्रह्म जगत्‌रूप होकर भासता है, जैसे स्पंद और निस्पन्द में वायु ज्यों का त्यों है, परन्तु स्पन्द होता है तो भासता है और निस्पंद होता तो नहीं भासता, ऐसे ही ब्रह्म में संवेदन

स्फुरन होता है तो जगत् हो भासता है और निर्वेदन होती है अन्तर्मुख अधिष्ठान की ओर आती है, तब जगत् समेटा जाता है, परन्तु संवेदन के फुरने में भी वही है और अफुरने में भी वहीं है, इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म से इतर कुछ बना नहीं, जो इतर भासता है उसे भ्रममात्र ही जानना चाहिये, जब आत्मपद का आभास हो तब भ्रान्ति शान्त हो जाती है, जैसे प्रकाश से अंधकार नष्ट हो जाता है, ऐसे आत्मपद के अभ्यास से भ्रान्ति निवृत्त होती है, यद्यपि नाना प्रकार की सृष्टि भासती है, परन्तु कुछ हुई नहीं, जैसे स्वप्न में सृष्टि दृष्टि आती है, परन्तु कुछ बनी नहीं, वह अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, ऐसे यह जगत् सब अनुभवरूप है, जैसे रत्न और रत्न के चमत्कार में कोई भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं, हे रामजी! तू स्वभाव निश्चय से देख भ्रम मिट जाय, सृष्टि स्थिति प्रलय सब उसकी संज्ञाएँ हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मगीतापरमनिर्वाण वर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२७८।।

एकोनाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २७९

परमार्थगीता वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जितने आकार तुझको भासते हैं, संवेदनरूप हैं, अपर कुछ बना नहीं, सृष्टि के आदि भी अद्वैत सत्ता थी और अंत में भी वही है, मध्य में जो आकर भासते हैं, उन्हें भी वही रूप जानिये, जैसे स्वप्नसृष्टि के आदि में शुद्ध संवित् होती है उसमें आकार भास आता है, वह भी अनुभवरूप है और कुछ नहीं बना, आत्मसत्ता ही पिंडाकार हो भासती है और जितने पदार्थ भासते हैं, वह वही, आकाशरूप अभ्यासमात्र है अपर कुछ नहीं बना, आत्मसत्ता सदा शुद्ध है,

परन्तु अज्ञान से अशुद्ध की नाईं भासती है, विकार से रहित है परन्तु विकार सहित भासती है अनाना है परन्तु नाना की नाईं प्रतीत होती है, आकार से रहित है परन्तु आकार सहित प्रतीत होती है, जैसे स्वप्न सृष्टि अपने अनुभव स्वरूप होती है, परन्तु स्वरूप के प्रमाद से नाना प्रकार भिन्न भिन्न हो भासती है, जगने से एक आत्मरूप हो जाती है, ऐसे यह सृष्टि भी अज्ञान से नाना प्रकार भासती है, ज्ञान से एकरूप प्रतीत होती है विद्यमान भासती है, तो भी असत् जानिये, आत्मासदा शुद्धरूप है और शान्त है, अनन्त है, उसमें देशकाल पदार्थ आभास मात्र है, यदि तुम कहो आभासमात्र हैं, तो अर्थाकार क्यों होते हैं, इसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्न में अंगना कंठ के साथ मिलती है, उसमें प्रत्यक्ष राग होता है, विषय रस होता है, वह आभास मात्र है, ऐसे यह जाग्रत् में अर्थाकार क्षुधा को अन्न तृषा को जल अपर भी सब ऐसे होते हैं और जितने पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, यदि इनका कारण विचारें तो कारण कोई नहीं पाया जाता जिसका कारण कोई नहीं पाया जाय, उसे जानिये कि आभास मात्र है, हे रामजी! यह जगत् बुद्धि पूर्वक नहीं बना, आदि में जो आभास फुरा है, वह बुद्धि पूर्वक है उसमें जगत् संकल्प दिखाई पड़ा, तब कारण से कार्य भासने लगा, परन्तु जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ, उनको कारण से कार्य भासने लगे, जो आत्म स्वभाव में स्थित हुए हैं, उनको सब जगत् आत्मस्वरूप है, हे रामजी! कारण से कार्य तब हो जब पदार्थ भी कुछ वस्तु हो, जैसे पिता की संज्ञा तब होती है, जब पुत्र होता है, यदि पुत्र ही न हो तो पिता कैसे कहा जाय, ऐसे ही कारण तब कहें जब कार्य हो, यदि कार्य जगत् ही कुछ नहीं, तो कारण कैसे कहें, हे रामजी! कारण और और कार्य अज्ञानी के निश्चय में होते हैं, जैसे चरखे के ऊपर बालक चढ़ता है, वह आप ही घूमता है उसको पृथ्वी घूमती प्रतीत होती है, ऐसे अज्ञानी को मोह दृष्टि से कारण कार्य भाव दृष्टि आता है और ज्ञानी को कारण कार्य भाव नहीं भासता और स्मृति भी जगत् का कारण तब कहें

जो स्मृति जगत् से पूर्व हो, स्मृतिभाव अनुभव भी इस जगत् में ही फुरा है, यह भी आभास मात्र है, परन्तु जिसको प्रतीत हुई है उसको ऐसा ही है, हे रामजी! स्मृति संस्कार और अनुभव यह तीनों आभासमात्र हैं, जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, ऐसे आत्मा में तीनों भासते हैं, इसलिये इस कल्पना को त्यागकर जगत् आभासमात्र जानिये, जैसे स्वप्न में घट भासते हैं, यदि उनका कारण मृत्तिका कहें तो बनती नहीं, क्योंकि घट और मृत्तिका आभास इकट्ठा ही फुरा है वह जो आभास मात्र हुए, उनमें कारण किसको कहें और कार्य किसको कहें ऐसे स्मृति संस्कार और अनुभव जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं, इनमें कारण किसको कहें और कार्य किसको कहें अतः सब जगत् आभास मात्र है, हे रामजी! जितना कुछ जगत् तुझको भासता है, वह आत्मसत्ता का आभास है आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जैसे नेत्र का खोलना और मूंदना होता है, ऐसे परमात्मा में जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है, जब चित्त संवेदन फुरती है, तब जगत् रूप हो भासती है जब फुरणे से रहित होती है तो जगत् आभास मिट जाता है, जगत् की उत्पत्ति और प्रलय में आत्मसत्ता यथावत् है, जैसे खोलना और मूंदना उभय नेत्रों का स्वभाव है, ऐसे फुरना और अफुरना उभय संवेदन के स्वभाव हैं, जैसे चलना और ठहर जाना उभय वायु के स्वभाव हैं, जब चलती है तब भासती है और नहीं चलती तब नहीं भासती और चलने में वायु की तीन संज्ञाएँ होती हैं, एक मंद चलती है, अथवा बहुत चलती है, शीतल और उष्ण स्पर्श होता है, तीसरी सुगन्ध दुर्गन्ध होती है, यह तीनों संज्ञाएँ फुरणे में होती हैं जब फुरने चलने से रहित होती हैं, तब तीनों संज्ञाएँ मिट जाती हैं, जैसे एक ही अनुभव में स्वप्न और सुषुप्ति की कल्पना होती है, स्वप्न में जगत् हो भासता है और सुषुप्ति में नहीं भासता, परन्तु दोनों में अनुभव एकही है, ऐसे संवित् फुरने से जगत् भासता है और ठहरने में अच्युतरूप हो जाती है, आत्मसत्ता ज्यों की त्यों एकरूप है, इसलिये जो कुछ जगत् भासता है आत्मा से इतर कुछ नहीं, वही रूप है, जगत् की

उत्पत्ति और प्रलय तीनों का आत्मा का आभास हैं उसमें आस्था नहीं करनी चाहिये, हे रामजी! यह परमसिद्धान्त मैंने तुम्हें समझाया है, परन्तु जिन युक्तियों से मैंने कहा है उन युक्तियों से न किसी ने कहा न कोई कहेगा, अज्ञानी के लिये संसाररूप बड़ी भ्रान्ति उदय हुई है, परन्तु जो कोई मेरे इस शास्त्र का श्रद्धा से बार बार विचार करेगा उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जायेगी, दिन के दो भाग करे, आधा दिन इस अध्यात्म शास्त्र का विचार करे और बाकी आधा दिन अपने आचार विचार में व्यतीत करे, यदि शास्त्र विचार के लिये आधा दिन न दे सके तो भी एक पहर समय तो इसके अभ्यास में अवश्य लगावें, जैसे सूर्य के उदय से अंधकार निवृत्त होता है, ऐसेही इसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जायेगी और जो मेरे वचनों को वृथा जानकर इनकी निन्दा करेगा, उसको आत्मपद की प्राप्ति न होगी, क्योंकि उसने शास्त्र के महत्व को नहीं जाना, इसलिये जीव का यह कर्तव्य है कि पहिले अन्य शास्त्र का विचार देख ले तदनन्तर इस शास्त्र का अभ्यास करे, कि इसको इस शास्त्र की महिमा का ज्ञान हो, हे रामजी! यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मबोध का परम कारण है, इस जीव को यदि पद पदार्थ की समझ हो तो इस शास्त्र के विचार से इसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जायेगी, यदि सम्पूर्ण ग्रन्थ के आशय को न जान सके तो थोड़ा थोड़ा विचार करे तब सब भावाशय समझ में आने लग जायेगा, हे रामजी! यदि पुरुष पद पदार्थ को जानने वाला हो जाय तो इस शास्त्र के विचार से सफल हो सकता है, इस शास्त्र (वेदान्त) के विचारने वाले की बुद्धि अन्य शास्त्रों में नहीं लगती, इसलिये यह विचार के योग्य है, जो पुरुष आत्मविचार से रहित है, उसका जीवनवृथा है और जो पुरुष आत्म विचारवान् हैं उनके लिये सब पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं एक श्वास भी आत्मविचार से रहित नहीं जाना चाहिये उस सफल श्वास की समानता पृथ्वी का समस्त धन भी नहीं कर सकता, वृथा बीता हुआ श्वास अनन्त रत्न देने से भी वापिस

नहीं आ सकता, ऐसे श्वासों को लोग वृथा गँवाते हैं उनको पशु जानना चाहिये, हे रामजी! आयुबल बिजली की चमक के समान चंचल हैं, जैसे बिजली का चमत्कार होकर नष्ट हो जाता है, ऐसे ही यह जीवन है, ऐसे शरीर को धारणकर जो सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं, हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् आभासमात्र है, सत् भासता है तो भी इसे असत् जानो, जैसे स्वप्न सृष्टि में मरता है उसके बान्धव रोते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव होता है, परन्तु हुआ कुछ नहीं, सब भ्रान्तिमात्र है ऐसे इस जगत् को भ्रममात्र जानिये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे परमार्थगीतावर्णनं नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२७९॥

अशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८०

ब्रह्माण्डोपाख्यान वर्णनम्।

रामजी बोले–हे भगवन्! जगत् तो अनेक और असंख्यरूप हुये हैं और आगे होंगे, उनकी कथा द्वारा उपदेश देकर आपने मुझे क्यों नही जगाया, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस जगत् के जाल समूह में जो पदार्थ हैं सब शब्द अर्थ से रहित हैं, जब तुम विदितवेद्य निर्मल त्रिकालदर्शी हो जाओगे तब इस जगत् को जान सकोगे, मैंने आगे भी तुझको बहुत बार कहा है, बार बार उसी विषय का वर्णन करना पुनरुक्ति दोष होता है, परन्तु समझाने के लिये कहा है, एक सृष्टि को जान लिया ऐसे संपूर्ण को समझो कि जान लिया, हे रामजी! जितना जगत् है, वह किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ, कारण बिना पदार्थ जिसमें भासा, उसे जानिये कि वही रूप है, सृष्टि के आदि में भी वही सत्ता थी और अन्त में भी वही होगी, मध्य में जो कुछ भासा उसको भी वही रूप जानिये, जैसे

स्वप्न के आदि में भी अपना अनुभव निर्मल होता है, स्वप्न के निवृत्त किये भी वही रहता है, स्वप्न के मध्य जो पदार्थ भासा, उसको भी वही जानिये, अपर वस्तु कुछ नहीं, अनुभव सत्ता ही उस प्रकार हो भासती है, जब तू विदितवेद्य होगा, तब सब जगत् तुझको अपना आप भासेगा, हे रामजी! एक एक अणु में अनेक सृष्टियाँ हैं, वे आकाशरूप हैं, हुई नहीं, इस पर एक आख्यान कहता हूं, सुनो, हे रामजी! मैंने एक बार पद्मज ब्रह्माजी से प्रश्न किया था, एकान्त में बैठे हुए भगवान् चतुर्मुख से मैंने कहा–हे भगवन्! यह सृष्टि कितनी है और किसमें है, तब पितामह ने कहा–हे मुनिवर! जितने जगत् हैं उनके शब्द अर्थ हैं, वे सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है और ज्ञानवान् हैं, उनको जाग्रत् सब आत्मरूप भासता है, जिस प्रकार जगत् हुआ है सुनो, हे रामजी! ब्रह्मरूप आकाश है, उसके सूक्ष्म अणु में फुरना हुआ कि "अहं अस्मि" तब इस अणु ने अपने आपको जीव जान लिया, जैसे हो तो सर्वात्मा और स्वप्न में अपने आपको जीव जाने, ऐसे चिद्अणु सर्वात्मा अहंकार को अंगीकार करके आपको जीव जानने लगा, उसमें जो निश्चय हो गया उससे बुद्धि हुई, जैसे वायु में फुरणा हुआ हो, ऐसे उसमें संकल्प विकल्परूप फुरणा हुआ, उसका नाम मन हुआ, तब मन के साथ मिलकर उस चिद्अणु ने देह को चेता, तब अपने में देह और इन्द्रिय भासने लगे अपने साथ शरीर को देखकर कि यह शरीर मेरा है, जैसे स्वप्न में अपने साथ शरीर को देखे और बड़ा स्थूल शरीर दृष्टि आवें, ऐसे स्थूल शरीर अपने साथ देखा, जैसे स्वप्न में सूक्ष्म अनुभव से बड़े पर्वत दृष्टि आते हैं, ऐसे सूक्ष्म अणु से स्थूल विराट् शरीर भासने लगा, फिर देशकाल की स्थापना की और नाना प्रकार के स्थावर जंगम प्राणी विराट् भासने लगे जैसे स्वप्न में देशकाल पदार्थ भास आएँ वे कुछ हैं नहीं, ऐसे देशकाल पदार्थ भास आये परन्तु हैं कुछ नहीं, जब चित्त संवित् बहिर्मुख फुरती हैं, तब नाना प्रकार का जगत् भासता है, जब

अन्तर्मुख होती है तब अवाच्यरूप हो जाती है, जैसे वायु चलने ठहरने में एक रूप होता है ऐसे फुरने अफुरने से संवित् एक ही अभेद है, हे रामजी! जितने जगत् हैं, आकाश में आकाशरूप स्थित हैं, अपने आपमें स्थित हैं, अणु अणु के प्रति सर्वदाकाल सृष्टि है, परन्तु रूप क्या है आभासमात्र है, जो चैत्य सम्बन्धी होकर जीव सृष्टि का अंत ले तो सृष्टि अनन्त है, इसका अन्त कहीं नहीं आता, यह सृष्टि अविद्यारूप है वह अविद्या ही चैत्य है, जब अविद्या सम्बन्धी होकर जगत् का अन्त देखेगा तो अन्त कहीं न आयेगा, संसरण का नाम संसार है जब स्वरूप में स्थित होगा तब सब जगत् ब्रह्मरूप हो जायेगा जगत् की कल्पना कुछ न भासेगी, हे रामजी! इस जगत् के आदि में भी अद्वैत सत्ता थी और अन्त में भी अद्वैत सत्ता रहेगी, मध्य में जो कुछ भासता है उसको भी वही रूप जानिये, अपर कुछ नहीं बना, यह जगत् अकारण है, अधिष्ठान सत्ता के अज्ञान से भासता है, इसीका नाम जगत् है और इसीका नाम अविद्या है, अधिष्ठान को जानना इसीका नाम विद्या है, हे रामजी! न कोई अविद्या है न जगत् है, ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है कोई जगत् कहो, कोई ब्रह्म कहो, एक ही वस्तु के नाम हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मांडोपाख्यानं नामा शीत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२८०॥

एकाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८१

ब्रह्मगीतावर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! यह मैंने समझ लिया है कि जगत् अकारण है, जैसे संकल्प नगर स्वप्नपुर होता है ऐसे यह जगत् है, जो अकारण ही है, तो अब यहाँ पदार्थ क्यों उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं, सकारणरूप कारण बिना तो नहीं उत्पन्न होते भासते हैं, यह क्या है, वसिष्ठजी

बोले—हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्मा है उसमें जैसा निश्चय होता है ऐसा होकर भासता है, वह क्या भासता है, अपना अनुभव ही ऐसा होकर भासता है, जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही नाना प्रकार के पदार्थ होकर भासता है परन्तु उत्पन्न कुछ नहीं हुआ, सब पदार्थ आकाशरूप हैं, ऐसा यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, कारण से रहित आकाशरूप है, हे रामजी! आदि सृष्टि अकारण हुई है पीछे से सृष्टि में आभासरूप मन ने जैसा निश्चय किया है वैसा ही है, क्योंकि जो सर्व शक्तिरूप है और आदि सृष्टि जो उत्पन्न होती है वह अकारण रूप है, पीछे से सृष्टि काल में कारण कार्य रूप हुए हैं, जैसे स्वप्न सृष्टि आदि कारण बिना होती है, पीछे से कारण कार्य भासते हैं और वास्तव से न कोई आकाश है, न शून्य है, न अशून्य है, न सत् है न असत् है, न असत् सत् के मध्य है, न अनित्य है, न परम है, न अपरम है, न शुद्ध है न अशुद्ध है, द्वैत कुछ नहीं सब भ्रम है, हे रामजी! ज्ञानवान् को सर्व शब्द और अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं, हमको तो कारण कार्यभाव की कल्पना कुछ नहीं, जैसे सूर्य में अन्धकार का अभाव है, ऐसे ज्ञानवान् को कारण कार्य का अभाव है, यदि सर्वात्मा ही है तो कारण कार्यभाव किसको कहें, रामजी बोले—हे भगवन्! ज्ञानी की बात पूछता हूं, उनको कारण कार्यभाव क्यों भासता है, जब कारण कार्यभाव नहीं तो मृत्तिका और कुलाल आदि से घटादि क्यों कर उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं? इसलिये कहिये कि ज्ञानवान् को अकारण कैसे भासते हैं और अज्ञानी को सकारण क्यों भासते हैं, मुझे यह ज्ञानी अज्ञानी के विषय में निश्चितरूप समझाइये? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! न कोई कारण है न कार्य है, मैं तुझे क्या कहूं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनके निश्चय में जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती, उनके निश्चयमें जगत् है नहीं तो ज्ञानी और अज्ञानी क्या, हे रामजी! आकाश का वृक्ष नहीं तो उसका वर्णन क्या किया जाय और जैसे हिमायल पर्वत में आग की चिनगारी नहीं होती, ऐसे ज्ञानी के निश्चय में जगत् नहीं होता, ज्ञानी अज्ञानी और कारण कार्य यह शब्द जगत् में होते हैं, यदि जगत् ही नहीं

फुरा तो कारण कार्य ज्ञानी अज्ञानी तुझको क्या कहूं, जैसे स्वप्न में सृष्टि सुषुप्ति में लीन हो जाती है, वहां शब्द और अर्थ कोई नहीं फुरता, ऐसे ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् ही नहीं फुरता, हे रामजी! हमको तो सब ब्रह्म ही भासता है, मुझको कुछ कहना नहीं आता, परन्तु कुछ कहता हूं, क्योंकि तुमने पूछा है, अज्ञानी के निश्चय को अंगीकार करके कहता हूँ, हे रामजी! यह जगत् अकारण है और आभासमात्र है, किसी आरम्भ और परिणाम से नहीं हुआ, जब पदार्थ का कारण विचारा जाये तब सब अधिष्ठान ब्रह्म निकलता है, वह अद्वैत अच्युत है और सर्व इच्छाओं से रहित है, उसको कारण कैसे कहें, इससे जाना जा सकता है कि जगत् आभासमात्र है, अन्य कोई वस्तु नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, जैसे स्वप्न की सृष्टि अकारण होती है, अनेक पदार्थ भासते हैं, उनका कारण विचारें तो सबका अधिष्ठान अनुभव निकलता है, उसमें आरम्भ और परिणाम हुआ कुछ नहीं, सृष्टि अनुभवरूप हो भासती है, जो पुरुष स्वप्न में उसको स्वरूप के प्रमादसे कारण कार्य जगत् भासता है, पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं, ऐसे जाग्रत् जगत् भासता है, हे रामजी! सृष्टि आदि अकारण हुई है, पीछे सृष्टिकाल में कारण कार्यरूप हो भासती है, जिसको अपना वास्तव स्वरूप है उसको अकारण भासता है और जिस ज्ञानी को वास्तव स्वरूप का प्रमाद है उसको कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है, हे रामजी! वस्तु एक ही अनुभव आत्मसत्ता है परन्तु जैसा जैसा अनुभव में संकल्प दृढ़ होता है, उसी की सिद्धि होती है, जिसका तीव्र संवेग होता है वही होकर भासता है, इसमें संदेह कुछ नहीं, कल्पवृक्ष के पदार्थ निकल आते हैं, वह क्या है, संकल्पकी तीव्रतासे प्रत्यक्ष होते हैं, वह किसी का कार्य कहिये और जगत किसी कारण से उत्पन्न होता है, तो महाप्रलय में भी कुछ शेष रहता, जैसे अग्नि के पीछे भस्म रह जाती है, वह तो रहती नहीं, जैसे स्वप्न की सृष्टि जगने पर नहीं रहती, ऐसे महाप्रलय में जगत् का शेष कुछ नहीं रहता, इसलिये

जान पड़ता है कि आभासमात्र है, जैसे ध्यान में ध्याता पुरुष जो किसी आकार को रचता है उसका कारण कोई नहीं होता, वह तो आकाशरूप है, अनुभवसत्ता ही फुरने से इस प्रकार हो भासता है, आकार तो कोई नहीं जैसे गन्धर्व नगर कारण से रहित भासता है, ऐसे यह जगत् कारण बिना भास आया है, न कोई पृथ्वी है न जल है, न तेज वायु आकाश है, सब आकाशरूप है, परन्तु संकल्प की दृढ़ता से पिंडाकार भासता है, हे रामजी! जब यह पुरुष मर जाता है तब शरीर यहां ही भस्म हो जाता है, फिर परलोक में जो अपने शरीर को देखता है और उस शरीर के साथ स्वर्ग नरक में सुख दुःख भोगता है, उसका कारण कौन है उसका कारण कोई नहीं पाया जाता, अपनी चेतनता में संकल्प की वासना जो दृढ़ हुई है उसके अनुसार शरीर भासता है, स्वर्ग नरक में सुख दुःख भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं, सब पदार्थ संकल्प के रचे हुए हैं सब आत्मरूप है, जैसे आकाश व्योम शून्य एक ही वस्तु के नाम हैं, कोई जगत् कहो कोई ब्रह्म कहो, इनमें भेद कुछ नहीं, फुरने का नाम जगत् कहाता है, अफुरने का नाम ब्रह्म है, जैसे वायु को चलने ठहरने में भेद कुछ नहीं, ऐसे ब्रह्म को फुरने अफुरने में संवेदन का भेद कुछ नहीं, सम्यक्दर्शी पुरुषों को सब जगत् ब्रह्म स्वरूप भासता है, इस कारण से दोष किसीमें नहीं रहता, बड़ा कष्ट आ पड़ने पर भी खेदवान् नहीं होता, जैसे कोई पुरुष स्वप्न में युद्ध करता है, परन्तु जब उसको अपना जाग्रत् स्वरूप चित्त में आ जाये तो स्वप्न को स्वप्न जानता है, तब युद्ध करता है तो भी दुःख मिट जाता है, ऐसे जो पुरुष परम पद में जगा है, उसकी सब क्रियाएँ होती हैं परन्तु अपने आपको अक्रिय जानता है, हे रामजी! सब चेष्टाएँ उसकी होती हैं, परन्तु उसके निश्चय में क्रिया का अभिमान नहीं होता, जैसे नट सब स्वांग धारण करता है, परन्तु अपने आपको नट ही जानता है और स्वांग क्रिया को असत् जानता है, क्योंकि उसको अपने स्वरूप का स्मरण है ऐसे ज्ञानवान् सब क्रियाओं का असत् जानता है, हे रामजी! जितने पदार्थ प्रतीत होते हैं सब अजात जात हैं, उत्पन्न नहीं हुए, अपना

अनुभव इस प्रकार प्रतीत होता है, ऐसे यह जगत् के पदार्थ भी अनुभव रूप जानिये, हे रामजी! बहुत वेदशास्त्र में तुझको किसलिये सुनाऊं वेदान्त शास्त्र का तो यही सिद्धान्त है कि वासना से रहित होना चाहिये, इसी का नाम मोक्ष है और वासना सहित होना बन्ध है, वासना किसकी की जाये, यह तो सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है, इसमें आस्था करना वृथा है, यह स्वप्न के पर्वत हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मगीतावर्णनं नाम काशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२८१॥

द्व्यशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः २८२

इन्द्राख्यानवर्णनम् ।

श्रीराम बोले–हे भगवन्! सब जगत् में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक अप्रत्यक्ष पदार्थ, एक प्रत्यक्ष पदार्थ और एक मध्यभावी है, जैसे वायु अप्रत्यक्षरूप से रहित है, परन्तु स्पर्श संयोग से भासती है, मध्य भी प्रत्यक्ष है, अप्रत्यक्ष है जो किसी से मिले नहीं, यह संवित् अप्रत्यक्ष है, हे मुनीश्वर! चन्द्रमा के मंडल में यह संवेदन जाती है और फिर गिरती है, वृत्ति चित्त से चन्द्रमा को देखती है और फिर आती है, इससे जानी जाती है, कि निराकार है, साकार होती है तो चन्द्रमारूप हो जाती है जैसे जल में जल डाला हुआ फिर नहीं निकलता, इसलिये जाना जाता है कि यह अप्रत्यक्ष अर्थात् निराकार है, हे मुनीश्वर! इस शरीर में जो प्राण आते जाते हैं, अज्ञानी का आशय लेकर मैं कहता हूं वह कैसे आते जाते हैं और यदि तुम कहो कि संवित् जो ज्ञान शक्ति है वह इस शरीर प्राण को लिये फिरती है, तो ऐसे कहना नहीं बनता, क्योंकि संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है, सप्रत्यक्ष साकार के साथ तो मिलती नहीं वह चेष्टा क्योंकर करे और यदि कहो कि संवित् निराकार ही चेष्टा करती है, तो पुरुष की संवित्

चाहती है कि पर्वत नृत्य करे वह तो इसका चलाया नहीं चलता और साथ ही कहते हैं कि यह पदार्थ उठकर आ जायँ परन्तु वे उठकर नहीं आते, क्योंकि पदार्थ साकार रूप है और वृत्ति निराकार है इसका उत्तर कहिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! शरीर में एक नाड़ी है, जब वह अवकाशरूप होती है, तब उसमें से प्राणवायु निकलता है और जब संकोचरूप होती है, तब प्राणवायु अन्दर आती है, जैसे लुहार की खल होती है, ऐसे इसके अन्तर पुरुष बल है, उससे चेष्टा होती है, रामजी बोले–हे भगवन्! लुहार की खल भी तब हिलती है, जब उसके साथ बल का स्पर्श होता है और स्पर्श तब होता है जब प्रत्यक्ष वस्तु होती है चेतनता निराकार है उसको स्पर्श कैसे कहें, यदि तुम कहो उसकी इच्छा से स्पर्श होता है तो–हे मुनीश्वर! मैं चाहता हूं कि मेरे सम्मुख वृक्ष है वह गिर पड़े वह तो गिरता नहीं क्योंकि इच्छा निराकार है, यदि साकार स्पर्श शब्द हो तो उसकी शक्ति से गिर पड़े और जो इच्छा ही से चेष्टा होती है तो कर्म इन्द्रिय किसलिये धारण किये हैं, इच्छा ही से जगत् की चेष्टा हो और यह भी संशय है कि एकके बहुत क्यों कर हो जाते हैं और बहुत का एक क्योंकर हो जाता है। एक चेतन है जब प्राण निकल जाते हैं, तब जड़ जैसा हो जाता है, पाषाण और वृक्ष की नाईं हो जाता है, आत्मा तो सर्वव्यापी है, जड़ कैसे हो जाता है और एक पाषाण वृक्षरूप जड़ है, एक चेतन है, यह भेद एक आत्मा में कैसे हुआ है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! तेरे संशयरूपी जो वृक्ष हैं उन सबको मैं वचनरूप कुल्हाड़े से काटता हूं, जिनको तू सप्रत्यक्ष साकार कहता है वह आकार कोई नहीं सब निराकार है, वह शुद्ध आत्मा अद्वैत सत्ता इस प्रकार हो भासती, यह आकार कुछ बने नहीं, जैसे स्वप्न नगर में आकार भासते हैं वे आकाशरूप निराकार हैं ऐसे यह आकार भी तुझको दृष्टि आते हैं सब निराकार हैं और स्वप्न में जो पर्वत भासते हैं, वे किसके आश्रय होते हैं और देहादिक भासते हैं, वे किसके आश्रय होते हैं, इसलिये कुछ बने नहीं अनुभव सत्ता ही आकाररूप हो भासती है, ऐसे

इसे भी जान लो, आकार कोई नहीं, हे रामजी! जब इन पदार्थों का कारण विचारें तो कारण कोई नहीं निकलता, इसीसे जाने जाते हैं आभास मात्र हैं बने नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है और आत्मसत्ता अद्वैत है, परम शुद्ध है, उसमें जगत् कुछ बना नहीं, मैं आकार क्या कहूं और निराकार क्या कहूं, पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाश भी द्वैत कुछ नहीं। शुद्ध आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है, जैसे संकल्प से रचे पदार्थ होते हैं, वे अनुभव से इतर कुछ नहीं होते, ऐसे यह सब पदार्थ अनुभव रूप हैं, अनुभव से इतर कुछ नहीं, इसके ऊपर एक आख्यान कहता हूं वह सुनने के योग्य है, हे रामजी! आगे भी मैंने तुझको कहा है, अब भी कहता हूं, एक सृष्टि में एक ब्राह्मण था, मानो ब्रह्माजी हैं, उस घर में दस पुत्र हुए मानों दशों दिशाएँ हों कुछ समय के बाद वह मर गया, उसकी स्त्री पतिव्रता थी, उसके प्राण भी ब्राह्मण के पीछे छूट गये, जैसे दिन के पीछे संध्या जाती है ऐसे ब्राह्मणी भी गयी, तब उन पुत्रों ने यथाशास्त्र क्रम से उनकी क्रिया की और उसके अनन्तर एक पर्वत की कन्दरा में जाकर स्थित हुए और विचार करने लगे कि किसी प्रकार हम उच्च पद को प्राप्त करें, हे रामजी! मैंने तुम्हें आगे ही कहा है कि वे मंडलेश्वर चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिक के पद को पाने का विचार करने लगे उनमें से बड़े भाई ने निर्णय करके कहा कि सबसे ऊंचा ब्रह्माजी का पद है, जिसकी यह सब सृष्टि रची हुई है, हम दस ही ब्रह्मा हों, ऐसा विचार कर वे दस ही पद्मासन लगाकर बैठ गये, यही निश्चय धारण किया कि हम ब्रह्मा हों सब सृष्टि हमारी रची है, ऐसे हो गये मानों पुतलियां लिखी हुई हों, खान पान से रहित उनको मास वर्ष युग बीत गये परन्तु वे यथास्थिर रहे, विचलित न हुए, जैसे जल नीचे को जाता है ऊंचा नहीं उठता ऐसे ही वे भी अपने निश्चय से विचलित न हुए, कुछ समय बीतने पर उनके शरीर गिर पड़े उनको पक्षी खा गये, यह जो ब्रह्मा की वासना संयुक्त संवित् थी, उस वासना से दसों ही ब्रह्मा हो गये

और दस ही उनकी देश काल पदार्थ और नीति सहित सृष्टियां हो गयीं, जैसे हमारी सृष्टि है ऐसे वह सृष्टि हुई–हे रामजी! वह सृष्टि क्या रूप हुई आत्मा ही वस्तु हुई अपर को कुछ नहीं, कुछ अपर हो तो कहूं, इसलिये सृष्टि का अपर रूप कुछ नहीं, अपना अनुभव ही सृष्टि रूप भासता है, जितने पदार्थ भासते हैं सब आत्मरूप हैं–हे रामजी! जैसे हम ब्रह्मा के संकल्प से रचे गये हैं, ऐसे उन्होंने भी रच लिये, वे भी इस प्रकार स्थित हो गये, इसलिये सब जगत् ब्रह्म स्वरूप है, यदि कारण से जगत् बना तो जाना जाता कि कुछ हुआ है, इसका कारण कोई नहीं पाते संकल्पमात्र आभास मात्र है, इसलिये कहता हूं कि ब्रह्म ही है अपर वस्तु कुछ नहीं, जो कुछ पदार्थ भासते हैं, पाषाण वृक्ष जड़ चेतन सब ब्रह्मस्वरूप हैं, उससे कुछ नहीं, हे रामजी! यह पंचमहाभूत और अन्य भी सब चिदाकाशरूप हैं, चिदाकाश से इतर कुछ नहीं, जैसे इन्द्र के पुत्र एक से अनेक हो गये, जैसे यह सृष्टि भी एक से अनेक है और प्रलय में अनेक से एक हो जाती है, जैसे एक तू स्वप्न में अनेक हो जाता है और सुषुप्ति में अनेक एक हो जाता है, ऐसे यह जगत् है कैसा है अकारणरूप है और यदि कारण भी माने तो आत्मरूप कुलाल है, संकल्प चक्र है, अनुभव चेतनरूप घट उससे उत्पन्न होते हैं आभास भी वही है, कुछ दूसरी वस्तु नहीं, यह सब जगत् वही रूप है, जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र को अपने अनुभव ही से सृष्टि फुर आई, वह अनुभवरूप भासने लगा, हे रामजी! घट भी चैतन्य है वृक्ष भी चैतन्य है, पृथ्वी भी चैतन्य है, जल, अग्नि, वायु सब चैतन्यरूप हैं, चैतन्य से इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही घट पहाड़ नदियाँ पदार्थ होकर भासता है, अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् अनुभव से इतर नहीं ज्ञानी को सदा निश्चय रहता है, अब एक अनेक का उत्तर सुनो, हे रामजी! जैसे मनोराज्य में एक से अनेक हो जाता है और अनेक से एक हो जाता है, चैतन्य से जड़ हो जाता है, जड़ कोई पदार्थ नहीं भासता, पदार्थ चैतन्यरूप हैं, जहां अन्तःकरण पाता है वही चेतन भासता है, जहां

अन्तःकरण नहीं पाता, तो जड़ भासता है, चैतन्य का आभास अन्तःकरण में पाता है, जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब जड़ भासता है, यह अज्ञानी की दृष्टि कहीं है और मुझे पूछो तो जिसको जड़ कहते हैं, जिसको चेतन कहते हैं पहाड़ वृक्ष पृथ्वी कहते हैं, वे सब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्म से इतर कुछ नही, जैसे स्वप्न में कई जड़ भासते हैं, कई चेतन भासते हैं नाना प्रकार के पदार्थ भिन्न भासते हैं आत्मरूप हैं इतर कुछ नहीं, ऐसे यह जगत् सब आत्मरूप है, इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप है, सब नामरूप के आत्मा के हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं, शून्य अशून्य सत् असत् सब आत्मा के नाम हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, हे रामजी! जिसको मूर्ख जड़ कहते हैं, वह जड़ नहीं सब चैतन्यरूप है और सृष्टिकाल में जड़ ही है, वह संवेदन में जड़रूप होकर रचित हुए हैं वह चैतन्य ही रचे हैं, जिनको अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद है उनको जड़ चेतन भिन्न भिन्न भासते हैं और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, उनको एक ब्रह्मसत्ता भासती है, हे रामजी! यह मैंने तुम्हें जो उपदेश किया है बार बार विचार करने योग्य है, जो कोई इसका नित्य विचार करता रहेगा, उसके दोष घटते जायेंगे और हृदय शुद्ध होगा और जो ब्रह्मविद्या को त्यागकर जगत् की ओर चित्त लगायेगा उसके दोष बढ़ते जायँगे, हे रामजी! ज्यों ज्यों इस जीव को ब्रह्मविचार उदय होता जायेगा, त्यों त्यों दुःखनाश होते जायँगे, ज्यों ज्यों दिन होता है, त्यों त्यों तम नष्ट होता जाता है विचार के त्याग से दुःख बढ़ते जाते हैं, जो महापापी हैं उनके पाप मेरे शास्त्र का संग उन्हें नहीं करने देते, उनको यह जगत् वज्रसार की नाईं दृष्टि आता है, संसार भ्रम कदाचित् निवृत्त नहीं होता, जितना जगत् भासता है, सब आकाश रूप है, मैं तू और भाव अभावआदि जितने शब्द हैं सब ब्रह्मसत्ता के नाम हैं, वह परमशुद्ध सत्ता है और निरामय है, अद्वैत है, सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें जितने पदार्थ भासते हैं, वे ऐसे हैं जैसे शिला में शिल्पी पुतलियों की कल्पना करता है, वे शिल्पी के चित्त में होती हैं, ऐसे जगत् के पदार्थों की प्रतिमा सब मन में है, उसका क्या रूप है,

उसीका किंचनरूप है, वह किंचन कुछ भिन्न वस्तु नहीं, जो सदा अपने आपमें स्थित है, परम मौनरूप है, उसमें विकल्प कोई नहीं प्रवेश कर सकता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे इंद्राख्यानावर्णनं नाम द्वचशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२८२।।

त्र्यशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः २८३

सर्व ब्रह्मप्रतिपादनवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सर्व लोक चिन्मात्र है, इसीसे शान्तरूप हैं, अद्वैत रूप हैं, अज्ञानी को जगत् भिन्न भिन्न भासता है, ज्ञानी के लिये सब निराकार आकाश रूप हैं, आकार कुछ बने नहीं, आत्मसत्ता निराकार है, वही परम शुद्धसत्ता इस प्रकार भासती है, वह शान्तरूप है, अनन्त है चिन्मात्र है, इंद्रिय भी ज्ञानरूप है, हाडमांस रुधिर हाथ पैर सिर आदि संपूर्ण शरीर ज्ञानमात्र है, ज्ञान से इतर कुछ नहीं, चिन्मात्र ही इस प्रकार भासता है, जैसे स्वप्न में शरीरादिक और पहाड़ नदियां वृक्ष भासते हैं वे अपना ही अनुभव रूप हैं, अपर कुछ नहीं बना, ऐसे यह जगत् सब अनुभवरूप है कारण रहित कार्य भासता है, तू अपने अनुभव में जगकर देख, कि सब अनुभवरूप है, आकाश में आकाश भी आकाशरूप है, सत् में सत् है, भाव में भाव है, अभाव में अभाव है, सर्व आत्मरूप है, इतर कुछ नहीं, और यदि तुम कहो कि वस्तु कारण ही से उत्पन्न होती है, वह सत् होती है, परन्तु जगत् का कारण कहीं नहीं पाया जाता, इसलिये यह मिथ्या है, कारण भी इसका तब कहें जब यह कुछ वस्तु हो और कार्य भी तब कहें जब इसका कारण सत हो, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तो न किसी का समवायि कारण है न किसी का निमित्त कारण

है, अच्युत है इसी से समवायि कारण नहीं और अद्वैत है इससे निमित्त कारण भी नहीं, सर्व इच्छा से रहित है, उसको कारण किसका कहें, जो कारण नहीं तो कार्य किसका कहें, इसलिये जितना जगत् भासता है, आभासमात्र है, उसी ब्रह्म सत्ता का नाम जगत् है, जैसे निद्रा एक है, उसके दो स्वरूप हैं, एक स्वप्न एक सुषुप्तिरूप है, स्फुरणरूप का नाम स्वप्न है, अस्फुरण का नाम सुषुप्ति है, ऐसे ही दो स्वरूप चेतन के हैं, स्फुरण (फुरना) रूप चेतन का नाम जगत् है, अस्फुरण (अफुरणे) रूप का नाम ब्रह्म है, जैसे एक ही वायु के चलना ठहरना दो पर्याय हैं, जब चलती है तब खलने में आती है, जब ठहरती है तब अलक्ष हो जाती है, शब्द का विषय नहीं होती, ऐसे ब्रह्मसत्ता अफुरने में शब्द की प्रवृत्ति नहीं होती, जब फुरती है, तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी रूप हो भासती है, एक से अनेक रूप हो भासती है, अनेक से एक रूप है, जैसे एक ही जल नदी नाला तालाब आदिक भिन्न भिन्न संज्ञाओं को पाते हैं और जब समुद्र में मिलते हैं, तब एक रूप हो भासते हैं, जैसे एक ही काल के बहुत नाम होते हैं, दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प, घटी, मुहूर्त आदिक नाम एक ही काल पाता है, परन्तु काल तो एक ही है, जैसे मृत्तिका की सेना में हस्ती घोड़े आदि बहुत नाम होते हैं, परन्तु मृत्तिका तो एक ही है, जैसे पत्र फूल, शाखा, आदि भिन्न भिन्न नाम होते हैं परन्तु वृक्ष तो एक ही है जैसे तरंग बुद्बुदे आवर्त फेन आदिक नाम होते हैं परन्तु जल एक ही है ऐसे परमात्मा में जगत् अनेक नामरूप को प्राप्त होता है, परन्तु सदा एक रूप है, जैसे स्वप्न में एक ही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है और भिन्न भिन्न रूप नाम हो भासती है, जब जगता है तब अद्वैत रूप होता है, ऐसे यह जगत् भी भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है, परन्तु आत्मसत्ता एक ही रूप है, हे रामजी! तब तू इसमें जगेगा तब तुझको सब अपने आपका अनुभव ही भासेगा, वह अनुभव कैसा है, केवल आत्मतत्वमात्र है, अनन्य अनुभव रूप है, वह आत्मरूप समुद्र है उसमें जगत् रूप जाल के कण हैं, जैसे आकाश में नक्षत्र चमकते हैं (फुरते हैं) ऐसे आत्मा में जगत् फुरते हैं,

आकाश से तारे भिन्न हैं, परन्तु आत्मा से जगत् भिन्न नहीं, जल से बिन्दु अभिन्न है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सर्व ब्रह्म प्रतिपादन नाम त्र्यशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२८३॥

चतुरशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८४

ब्रह्मगीतागौरीवाग्वर्णनम् ।

श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! अन्धकार में पड़ी हुई वस्तु यथावत् नहीं भासती इसमें कारण यही है कि संशयरूप अंधकार से ही वस्तु यथावत् भान नहीं होती, अर्थात् संशय के अन्धकार में वस्तु ज्यों की त्यों प्रतीत नहीं होती, उसको आपके वचनरूप सूर्य के प्रकाश द्वारा अर्थात् सम्यक् ज्ञान से जान सकूंगा, हे भगवन् एक प्राचीन इतिहास है, उसमें मुझे एक संशय है उसे दूर कीजिये, हे प्रभो! एक समय पाठशाला में विपश्चित् पं० जी से विद्याध्ययन कर रहा था, वहाँ बहुत से ब्राह्मण बैठे हुए थे, तब वहां एक विदित वेद्य महातपस्वी विद्वान् जिसको सांख्य योग वेदान्त आदि समस्त शास्त्र कंठस्थ थे और जो ब्रह्म तेज से युक्त अति सुंदर और शोभा सम्पन्न था मानो दूसरे दुर्वासा महर्षि हो सभा में आया, परस्पर नमस्कार हो जाने पर वह आसन पर स्थित हुआ, जो पंडित लोग वहां वेदान्तादि शास्त्रों की चर्चा कर रहे थे सब तूष्णी (चुप) हो गये, तब मैंने उससे कहा, हे विप्रवर! आप बहुत मार्ग चलकर आये हो आपने इतना परिश्रम किसलिये किया अर्थात् अपने आने का कारण कहिये और आपका आगमन कहां से हुआ है यह भी बतलाने की कृपा कीजिये। ब्राह्मण देवता बोले—हे भगवन्! मैं सम्पूर्ण वृत्तान्त कहता हूं, हे रामजी! मैं विदेह नगरका ब्राह्मण हूं, मेरा जन्म वहीं हुआ था, कुन्द नामका वृक्ष है, उसका पुष्प बहुत श्वेत होता है, उसके समान मेरे सफेद दाँत है इसलिये

माता पिता ने मेरा नाम कुन्द दंत रखा, मैं राजा जनक के विदेह नामक नगर से आया हूँ, विदेह नगर क्या है मानो स्वर्ग का प्रतिबिंब है, वहां के रहनेवाले सब लोग परमशान्त और निर्मल स्वभाव के हैं, वहां मैं विद्याध्ययन करता था तो मेरा मन बहुत उद्वेगवान् हुआ कि यह संसार बड़ा क्रूर बन्धन है, इसके बन्धन से किस प्रकार छूट सकूं, हे रामजी! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्न हुआ, कि मुझे दिनरात शान्ति प्राप्त करने की चिन्ता रहने लगी कि किस प्रकार शान्तिमान् हो सकूं, मैं वहां से निकला और शुभस्थानों सन्तमहात्माओं के आश्रमों देवमंदिरों और तीर्थ स्थानों में विचरने लगा, महात्मा लोगों और पवित्र स्थानों के दर्शन करके जब आ रहा था तो आगे एक पर्वत था उस पर चला गया और वहां तप करने लगा, चिर पर्यन्त तप करने के बाद एकान्त स्थान को ढूंढ़ता आगे चला गया और वहां एक आश्चर्य देखा उसे कहता हूं, हे रामजी! मैं वहां से चला आता था, वह जो बड़ा वन है और बहुत श्याम है, मानो आकाश की मूर्ति है, शून्य और तमोरूप है, उस वन में एक कोमल वृक्ष मैंने देखा जिसकी शाखाएँ और पत्र बहुत सुन्दर हैं, उसके साथ एक पुरुष लटकता है, पावों में मुंज का रस्सा है, वृक्ष के साथ बँधा हुआ है, सिर नीचे पाँव ऊपर हैं दोनों हाथ छाती पर जुड़े हुए हैं, उसको इस प्रकार लटकते देखकर मैंने सोचा कि यह मरा हुआ न हो, इसको देखूं, जब मैं उसके पास गया तब उसके श्वास आते जाते मालूम हुए और देखा कि युवावस्था है, कान्तियुक्त शरीर है मालूम होता है कि सर्वज्ञ है सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्वों को सह रहा है, आँधी बादल को सह रहा है, हे रामजी! तब मैंने जाना कि यह वीर तपस्वी है, तब मैं उसके पास बैठ गया और मैंने उसके पावों के बंधन कुछ ढीले किये और उसको पूछा कि हे साधो! इतनी क्रूर तपस्या करने का क्या कारण है, अपना वृत्तान्त मुझसे कहिये, हे रामजी! मेरे इस प्रकार कहने पर उसने आँखें खोलीं और बोला, हे साधो! यह तप मैं अपनी किसी कामना के लिये करता हूं,

मेरी वह कामना ऐसी है कि जिसे सुनकर तुम हँसोगे मेरी हँसी करोगे, हे रामजी! तब मैंने कहा कि कुछ हँसी न करूंगा, तुम अपना वृत्तान्त कहो और तुम्हारा कार्य यदि मुझसे हो सकने वाला होगा तो मैं कर दूंगा, जब मैंने बार बार ऐसा कहा तब वह बोला मन को उद्वेग से रहित करके सुनो जो मैं कहता हूं, हे साधो! मैं ब्राह्मण हूँ मेरा जन्म मथुरा का है, जब मेरा बाल्यकाल व्यतीत हुआ और युवाऽवस्था प्रारम्भ हुई तब मैंने वेदों शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण रूप से कर लिया था, उस समय मेरे चित्त में एक वासना उदय हुई कि सबसे बड़ा सुख राजा भोगता है, इसलिये मैं राजा बन जाऊं और सुख भोगूं कि क्या सुख है और सुख मैंने भोगे हैं, फिर विचार किया कि राज्य का सुख तो तब भोगूँ जब राजा हो जाऊं, परन्तु राजा कैसे बनूँ, राज्य तब मिलता है, तब तप किया जाय, इसलिये मैंने तप किया हे साधो! इस प्रकार तप करते मुझे बारह वर्ष व्यतीत हुए है आगे भी करूँगा, जब तक सप्तद्वीप का राज्य मुझे प्राप्त नहीं होता तब तक मैं तप करूंगा, यह निश्चय मैंने धारण किया है मेरा शरीर नष्ट होगा अथवा मुझको सप्तद्वीप का राज्य प्राप्त होगा, यह मेरा निश्चय है, मैंने तुम्हें सुना दिया है, अब आप जहां जाना चाहें जायँ, हे रामजी! इस प्रकार कहकर उस तपस्वी के फिर नेत्र बंद करके चित्त को स्थिर करने के लिये इन्द्रियों को संयतकर विषयों को त्यागकर मन निश्चल किया, तब मैंने उससे कहा, हे मुनिवर! मैं भी तुम्हारे पास बैठा हूं, जब तक तुम्हें वर की प्राप्ति नहीं होती तब तक तुम्हारी सेवा करूंगा, मुझे तुम्हारे ऊपर दया आई है, हे रामजी! इस प्रकार उससे कहकर मैं छः मास तक उसके पास रहा, उसकी सेवा में लगा रहता था, जब धूप आ जाती तो छाया कर देता था, आंधी और बादल में अपने शरीर को कष्ट देकर भी उस की रक्षा करता था, उद्वेग से रहित जब छः मास बीते तब सूर्य मंडल से एक पुरुष निकला जो कि परम बलवान् था, जैसे विष्णु भगवान् का तेज है, ऐसा वह तेजः पुंजरूप हमारे पास आया, उसको देखकर मैंने मन वाणी शरीर से उसकी पूजा की, तब उस पुरुष ने

कहा–हे तपस्वी! अब इस तप को त्याग दो और अपना अभिलषित वर मांगो, तुम्हारी अभिलाषा यही है कि मैं सप्त द्वीप का राजा बन जाऊं, इसलिये तू सप्तद्वीपवती पृथ्वी का राजा होगा और सात हजार वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा, परन्तु यह काम अन्य शरीर के साथ होगा, हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह पुरुष सूर्य मंडल में अन्तर्धान हो गया, ऐसे लीन हुआ जैसे तरंग समुद्र से निकलकर लीन हो जाता है, तब उसको मैंने कहा हे विप्रवर! अब क्यों संकट झेलते हो, जिसके लिये तुम तप करते थे वह वर तुम्हें मिल गया है, हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने कहा कि सूर्य मंडल से एक पुरुष निकलकर तुम्हें वर दे गया है तब उसने आँखें खोली, मैंने उसके पावों से रस्सी खोली तब उसका तेज बढ़ गया, उसके शरीर की कांति और प्रकाश से वह तेज पुंज प्रतीत होने लगा, वहां एक सूखा तालाब था उसके तप प्रभाव से वह जल पूर्ण हो गया, हम दोनों ने उसमें स्नान किया, संध्या वंदन, मंत्र जप पाठ आदि नित्य कृत्य से निवृत्त होकर हम दोनों वृक्ष के नीचे आये, वह फल रहित वृक्ष फलवान् हो गया, उसके पुण्य प्रताप से वह वृक्ष फलों से पूर्ण हो गया था, उसके फल हमने खाये, मैं तीन दिन तक वहां रहा, जाने के समय मैंने कहा–हे साधो! हम देश को चले हैं, जब तक शरीर है तब तक शरीर के स्वभाव भी हैं, आगे एक बन आया जो कि फलवान् वृक्षों से भरा हुआ था भ्रमर गूंज रहे हैं, जल का प्रवाह चल रहा है, कोयल, तोते वक आदि पक्षी और मृग वन की शोभा को बढ़ा रहे हैं, आगे बहुत से ताल वृक्ष देखे कंदराए देखीं, हम ऐसे स्थानों में से होते गये जो सात्विक राजस तामस इन तीनों गुणों से रचे गये हैं, इतने में मथुरा नगर के मार्ग में आये, जो सीधा मार्ग था, उसको छोड़कर वह टेढ़े मार्ग से चला तब मैंने कहा–हे साधो! सीधे मार्ग को छोड़कर टेढ़े मार्ग से क्यों जाते हो, तब उसने कहा–हे साधो! तुम चले आओ, इस मार्ग में गौरी भगवती का स्थान है, उनका दर्शन करते जायँ और मेरे अन्य सात भाई गौरी के

स्थान पर इसी कामना को लेकर तप करते थे उनकी भी सुधि ले आएं, हे रामजी! जब हम उस मार्ग के सामने चले तब आगे एक शून्य वन था मानों शून्य आकाश है, महातम रूप है, वहां कोई वृक्ष दृष्टि नहीं पड़ता और पशु पक्षी मनुष्य कोई नहीं था, उस वन में उसने मुझसे कहा—हे विप्रवर! इस स्थान मैं आगे छै मास रहा हूं और मेरे सात भाई और थे उन्होंने भी यह कामना रखकर देवी का तप आरंभ किया था, चलो देखें वह महापवित्र स्थान है, जिसके दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, तब मैंने कहा चलिये, पवित्र स्थान को देखना चाहिये, हे रामजी! ऐसे विचारकर चले जा रहे थे, जाते जाते मरुस्थल की तपी हुई पृथ्वी पर जा निकले, वह ब्राह्मण देखकर गिर पड़ा और कहने लगा हा कष्ट! हा कष्ट! हम कहां आ पड़े, मुझको भी भ्रम उदय हुआ कि यह क्या हुआ, फिर उठा, उठकर आगे गया तब एक वृक्ष देखा उसके नीचे एक तपस्वी बैठा है, ध्यान में स्थित देखकर हम उसके पास गये और कहा, मुनिवर! जगो बहुत बार कहने पर उसने आँख खोलकर हमको देखा और कहा, तुम कौन हो? तुम कौन हो? ऐसा कहकर कहने लगा, बहुत आश्चर्य है, यहां गौरी का स्थान था वह कहां गया, वृक्ष बावलियां कमल थे, वे कहाँ गये, बड़े सुन्दर स्थान थे, वे कहां गये और बड़े ऋषीवर मुनीश्वरों के स्थान थे वह कहां गये, हे साधो! यह क्या आश्चर्य हुआ, इसे तुम कहो, तबं हमने कहा, हे मुनीश्वर! हम नहीं जानते, हम तो अब आये हैं, इसको तुम्हीं जानो, तब उसने कहा बड़ा आश्चर्य है, हे रामजी! ऐसा कहकर वह फिर ध्यान में स्थित हो गया और व्यतीत वृत्तान्त का ध्यान देखने लगा, एक मुहूर्त पर्यन्त देखकर फिर नेत्र खोलकर कहने लगा, बड़ा आश्चर्य हुआ है, तब हमने कहा, हे भगवन्! जो कुछ वृत्तान्त हुआ हो वह कृपा करके हमको कहो, तब तपस्वी के कहा! वहां एक समय वागीश्वरी भवानी इस वन में आई थी उन्होंने एक निवास स्थान बनाया, उसमें शिव का अर्ध शरीर गौरीजी रहने लगी, उस स्थान के निकट बहुत से

सुन्दर वृक्ष कल्पवृक्ष तमाल वृक्ष और कदंब आदि लगाये गये और कमल आदि पुष्प तथा सब ऋतुओं में होने वाले अन्य फूल लगाये गये, बावलियाँ बागीचे सुन्दर रचे गये और वहाँ भँवरे गुंजार करते तथा कोयल तोते मोर बक (बगले) आदि पक्षी आकर विश्राम करने लगे, तथा अपने मनोहर कलरव से स्थान की शोभा बढ़ाने लगे और पास ही ऋषीवर मुनीश्वरों के आश्रम सुशोभित थे मानों इन्द्र का नन्दन वन है और पास ही ग्राम बसने लगे, हे साधो! वहां आठ ब्राह्मण तप के निमित्त से आये थे छै मास तक यहां रह गये बहुत सुन्दर स्थान है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्रह्मगीता गौरीवाग्वर्णनंनाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२८४॥

पंचाशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः २८५

ब्राह्मणकथावर्णनम् ।

कदम्ब ने कहा–हे साधो! मुझसे पूछो तो मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं, सुनो मैं मालव देश का राजा था, मैंने बहुत देर तक खेद से रहित विषय भोग भोगे हैं, फिर मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ, कि यह संसार स्वप्न मात्र है इसको सत् जानकर स्थित होना मूर्खता है, इतनी आयु मेरी बीत गयी है, मैंने सुकृत कुछ नहीं किया, यह विषयभोग आपातरमणीय नाशवान् है, इनको मैं चिरपर्यन्त भोगता रहा हूं और मुझको शान्ति प्राप्त न हुई, तृष्णा बढ़ती गयी, इसलिये वही उपाय करू जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो, फिर कभी दुःखी न होना पड़े, हे साधो! यह विचार मुझे उदय हुआ, तब मैं विरक्त होकर राज्यलक्ष्मी त्यागकर ऋषिमुनियों के आश्रमों को देखता हुआ इस कदम्ब वृक्ष के नीचे आकर स्थित हुआ और आठ भाई ब्राह्मण जो तप करने आये थे उनमें से एक तो यह इसी

पर्वत के ऊपर तप करने लगा था और स्वामिकार्तिक के पर्वत पर तप करने लगा था, एक वनारस में तप करने लगा, एक हिमालय के ऊपर तप करने लगा, चार भाई तो इस प्रकार चारों स्थानों को गये और अन्य चार भाई यहां तप करने लगे और कामना आठों की है कि सप्तद्वीप पृथ्वी के राजा हों, हे साधो! इसकी तो सूर्य ने वर दिया है और अपर जो सात थे उन्होंने बागीश्वरों भवानी को इष्ट बनाकर तप किया, जब वह प्रसन्न हुई और कहा वर मांगो, तब उन्होंने कहा हम सप्तद्वीपवती पृथ्वी के राजा हों, सातों ने यह एक ही वर मांगा, उनको वर देकर परमेश्वरी अन्तर्धान हों गयीं और यह भी वर मांगा कि जो यहां के वासी हैं उनका स्थान भी हमारे पास हो, हे साधो! इस वर को पाकर वहां से चले अपने घर गये और वह सदाशिव का अर्ध शरीर बारह वर्ष पर्यन्त रहा, फिर उनकी मर्यादा स्थापित करने के निमित्त वहां से अन्तर्धान हो गयी, यहां के वासी भी सब जाते रहे, वागीश्वरी के जाने से यह स्थान शून्य हो गया, एक यह कदंब वृक्ष भी बचा है, एक मैं ध्यान में स्थित रहा हूं, यह वृक्ष भी रहा है, जो वागीश्वरी ने अपने हाथों से लगाया है, इस कारण से यह नष्ट नहीं हुआ है और जर्जर भी नहीं हुआ है, हे साधो! इसके पास जो वस्तीवाले मनुष्य थे वे भी जाते रहे, भगवती अन्तर्धान हो गयीं, मैं ध्याननिष्ठ होकर रहा, अपरजीव यहां आकर अदृष्ट हो गये, इस कारण से सब शुभआचार रहे और उन आठों भाइयों में से एक यह बैठा है, इसने भी घर जाना है, सात आगे गये हैं, वहां सब इकट्ठे होंगे, जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरी में एकत्र हो, ऐसे एकत्र होंगे, हे साधो! जब घर से तप करने निमित्त निकले थे, इनकी स्त्रियों ने विचार किया कि हमारे भर्ता तो तप करने गये हैं, हम भी जाकर तप करें, उन आठों ने तप आरंभ किया, उन्होंने सौ सौ चान्द्रायण व्रत किये, उनके शरीर महान् कृश हो गये, जैसे वसन्त ऋतु की मंजरी ज्येष्ठ आषाढ़ में कृश हो जाती है, इस प्रकार वह हो गई कृश क्यों न होतीं एकतो भर्ता का वियोग दूसरा तप का परिश्रम। तब पार्वती वागीश्वरी प्रसन्न हुईं और बोली कि

वर मांगो, जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होकर बोलता है इस प्रकार बोली, हे देवेश्वरि! हम यह वर मागंती हैं कि हमारे भर्ता अमर हों, जैसे तुम्हारा और भगवान् शंकरजी का संयोग है ऐसे हमारा भी हो, तब भवानी ने कहा हे भद्रे! इस शरीर से तो अमर कोई नहीं रहता, आदि सृष्टि की नीति यही है कि शरीरधारी कोई न रहे, जितना जगत् देखा जाता है सब नाशरूप है, कोई पदार्थ स्थित (र) नहीं रहता, कोई और वर मांगो, तब उन ब्राह्मणियों ने कहा–हे देवि! हमारे भर्ता मरें तो हमारे घरों में रहें, इनकी संवित् बाहिर न जाय, तब वागीश्वरी ने कहा ऐसा ही होगा, उनके जीव तुम्हारे ही घर में रहेंगे और उनको जो लोकान्तर भासेगा, उसमें तुम भी उनकी स्त्रियां होकर उनके साथ रहोगी, ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गयी, कुंददंत बोला–हे रामजी! इस प्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ, मैंने कहा–मुनिवर! आपने आश्चर्य भरी कथा सुनाई है, कि आठों भाइयों ने एक ही वर पाया, सप्तद्वीप पृथ्वी का एक ही पृथ्वी में उन सबको राज्य कैसे प्राप्त होगा, हे रामजी! जब इस प्रकार उसको मैंने कहा तब कदंबतपा बोला, हे साधो! यह क्या आश्चर्य है और आश्चर्य सुनो–हे ब्राह्मण! जब यह आठों भाई तप के निमित्त घर से निकले थे तब इनके माता पिता ने विचार किया कि हमारे पुत्र तप करने गये हैं, हम भी उनके लिये जाकर तप करें, उनकी स्त्रियों को साथ लेकर तीर्थ और देवस्थान दिखाते फिरे और दिखाकर उन्होंने एकान्त में बैठकर तप किया, तब कृच्छ्र चान्द्रायण से देवी को प्रसन्न किया और वर लेकर अपने घर को आने लगे, तब एक स्थान में दुर्वासा ऋषीश्वर बैठे थे, दुर्बल सा शरीर था विभूति लगी हुई थी जटाएं खुली थीं, वह ब्राह्मण देवता इनको देखकर बिना प्रणाम किये ही, इनके सामने से निकलकर चले गये, तब उन्होंने कहा हे ब्राह्मण! तू दुष्टस्वभाव बनाये बिना प्रणाम किये ही किस तरह चला गया, अब तुम्हारे वर निवृत्त हो जायँगे, जो कुछ तुमको प्राप्त हुआ वह न होगा, विपरीत होगा तब उसने कहा–हे मुनिवर! यह कैसे वचन कहते हो हमारे ऊपर क्षमा करो, यह

ऐसे ही कहते रहे कि वह अन्तर्धान हो गया, ऐसा सुनकर यह शोकवान् हुए और अपने घर चले गये, तो हे ब्राह्मण! तू देख कि जब तक आत्मबोध से शून्य है, तब तक अनेक दुःख उत्पन्न होंगे, कई प्रकार के आश्चर्य प्रतीत होंगे, संदेह दूर न होगा और जब आत्मबोध हुआ, तब कोई संशय आश्चर्य न भासेगा, हे ब्राह्मण! यह सब चिदाकाश में माया मात्र ही रचना बनती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्राह्मणकथा वर्णनं नाम पंचाशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२८५॥

षडशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८६

ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनम् ।

कुंददन्त बोला–हे भगवन्! मैं यह सुनकर आश्चर्यवान् हुआ हूं और एक संशय उत्पन्न हुआ है, उसको निवृत्त करो, आपने कहा है इकट्ठे एक ही द्वीप में आठों सप्तद्वीपों के राजा होंगे, सप्तद्वीप तो एकही और राज्य करनेवाले आठ, यह कैसे राज्य करेंगे और इन्होंने वर भी पाया और शाप भी हुआ, दोनों बातें इकट्ठी कैसे होंगी, जैसे धूप और छाया का इकट्ठे होना आश्चर्य है, जैसे दिन और रात का इकट्ठे होना कठिन है, ऐसे वर और शाप का एक साथ होना कठिन है, कदंब तपा ने कहा–साधो! इनका भविष्य मैं कहता हूं, जब कुछ समय घर में बीतेगा तब इनके शरीर छूटते जायँगे, क्रम से आठों के शरीर छूटेंगे, इनको कुटुंबी जलायेंगे, इनकी पुर्यष्टका अनुभव के साथ मिली हुई एक मुहूर्त पर्यन्त जड़ीभूत सुषुप्ति होगी, उसके अनन्तर चेतनता फुर आयेगी, शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारी चतुर्भुज विष्णु का रूप धारण किये वर आएगें और हाथ में त्रिशूल लिये भृकुटी चढ़ाये क्रोधवान् त्रिनयन सदाशिवका रूप धारण किये शाप आयँगें, दोनों इकट्ठे होंगे, तब वर कहेंगे, हे शाप! तुम क्यों आये हो, अब तो हमारा समय है, जैसे एक ऋतु के समय दूसरी

नहीं आती, इसी प्रकार तुम भी मत आओ, तब शाप कहेंगे हे वरो! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है, जैसे एक ऋतु के होते दूसरी का आना नहीं बनता, ऐसे तुम्हारा आना नहीं बनता, तब वर कहेंगे हे शाप! तुम्हारे कर्ता ऋषि मनुष्य हैं, हमारे कर्ता देवता हैं, मनुष्यों से देवता पूजने योग्य हैं क्योंकि बड़े हैं इसलिये तुम जाओ, जब इस प्रकार वर कहेंगे तब शाप क्रोधवान् होंगे और मारने के लिये त्रिशूल उठायेंगे, तब वर कहेंगे हे शापो! तुम और हम लड़ेंगे, तदनन्तर किसी बड़े न्यायकर्ता के पास जाएगें, तब वह हमारा निवृत्त करेगा, तो पहिले ही किसी बड़े के पास क्यों न जाए, जो कुछ हमें कहे अंगीकार करें, इसलिये अब ही चलो, तब शाप कहेंगे, हे वरो! कोई युक्तिसहित वचन कहता है तो उसको सब कोई मानता है, तुमने ठीक कहा है, चलिये, ऐसे चर्चा करके दोनों ब्रह्मपुरी में जाएगें, जाकर ब्रह्माजी को प्रणाम करेंगे और कहेंगे, हे देव! हमारा न्याय करो, कि प्रथम वृत्तान्त कहकर वर उनको स्पर्श करें अथवा शाप स्पर्श करें, तब ब्रह्माजी कहेंगे हे साधो! अभ्यास की दृढ़ता के अनुसार प्रवेश करो, तब वर के स्थान शाप ढूंढ़ेंगे और शाप के स्थान वर ढूंढ़ेंगे, ढूंढ़कर शाप आकर कहेंगे स्वामिन्! हमारी हानि हुई है और वर की विजय हुई है, क्योंकि उनके अन्दर वर ही स्थित हैं, जिसका अभ्यास अन्दर स्थित है उसी की जय होती है, इनके अन्दर वज्रसार की नाईं वर स्थित हैं, हे स्वामिन्! हमारा आधिभौतिक शरीर कोई नहीं, हम संकल्परूप हैं उस संकल्प की दृढ़ता होती है, वही आकर उदय होता है, वर का कर्ता भी ज्ञानमात्र होता है, वर को लेता भी वही ज्ञानरूप है, वर को ग्रहण करता जानता कि यह हमारा स्वामी है, उस संकल्प से वर का कर्ता देवता है, जो मैंने वर दिया है और ग्रहण करनेवाला जानता है कि मैंने वर लिया है, हे ईश्वर! उसका जो वर रूप संकल्प है, उसके निश्चय में दृढ़ होता जाता है, जिस संकल्प की संवित् के साथ एकता होती है, फिर वही प्रकट होता है, उसी प्रकार शाप भी है, तो क्या है, न कोई वर है न शाप है, दोनों संकल्परूप हैं, जैसा संकल्प

अनुभव आकाश में दृढ़ होता है वही भासता है, वर देनेवाला भी अनुभवसत्ता है और लेनेवाला भी आत्मसत्ता है, वही सत्ता वररूप होकर स्थित होती है, वही सत्ता शापरूप होकर स्थित होती है, जिस संकल्प की दृढ़ता होती है उसीका अनुभव होता है, हे स्वामी! यह तुम्हीं से सुना हुआ हम कहते हैं कि इसको बाह्यकर्म कोई फलदायक नहीं होता, जो कुछ उसके अन्दर सार होता है वही फल होता है, इसके अंदर तो वर का संकल्प दृढ़ है, हमारा है नहीं इसलिये हमारा तुमको नमस्कार है अब हम जाते हैं, हे कुदंदन्त! ऐसा करके शाप आधिभौतिक शरीर को त्यागकर अन्तवाहक शरीर से अन्तर्धान हो जायेंगे, जैसे आकाश में भ्रम से तरवरे प्रतीत हों और सम्यक् ज्ञान से अन्तर्धान हो जाएं, ऐसे शाप अन्तर्धान हो जाएगें, तब ब्रह्माजी कहेंगे हे वरो! तुम शीघ्र ही उनके पास जाओ, तब वह वर फिर पूछेगा और दूसरा वर जो उनकी स्त्रियों ने लिया था कि उसकी पुर्यष्टका अन्तःपुर में रहे, इसलिये, हे भगवन्! हमको क्या आज्ञा है हमें तो उनको उसी मंदिर में रखना है और उन्होंने सप्तद्वीपवती पृथ्वी का राज्य भी भोगना है और दिग्विजय करना है, यह कैसा होगा, तब ब्रह्माजी कहेंगे हे साधो! यह क्या है, कि सप्तद्वीपवती पृथ्वी का राज्य करना है, उनका तुम्हारा साथ विरोध कुछ नहीं, तुमको उसी मंदिर में उनकी पुर्यष्टका रखनी है और वहां ही राज्य भोगना है, अपना जो कुछ तुम्हारा स्वभाव है, उसके अनुसार करना, कुंददन्त बोला हे भगवन्! इससे तो हमें बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है, उसी मंदिर में आठों भाई सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य कैसे करेंगे, इतनी पृथ्वी उस मंदिर में कैसे समाएगी यह आश्चर्य है, जैसे कोई कहे कि कमल फूल की डंडी में हाथी शयन करे और हाथियों की पंक्ति उसीमें यह है, आश्चर्य है, ऐसे यह आश्चर्य है, ब्राह्मण बोला—हे साधो! ब्रह्मरूप आकाश है, उसके अणु का जो सूक्ष्म अणु है उसमें जो स्वप्न फुरा है, वह हमारा जगत् है, उस स्वप्न में यह त्रिलोकी समा रही है तो मंदिर में समाना क्या आश्चर्य है, हे साधो! यह जगत् सब स्वप्नमात्र है, अहं त्वं आदि जगत् सब स्वप्न निद्रा मे फुरता है, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है, परमशांत और अनंत है, उसमें

जगत् आभासमात्र है, जैसे स्वप्न में अपना अनुभव सूक्ष्म से सूक्ष्म होता है, उसमें त्रिलोकी भास आती है, जो सूक्ष्म संवित् में त्रिलोकी भास आती है, तो मंदिर में भासना क्या आश्चर्य है, हे साधो! जब यह पुरुष मर जाता है तब इसकी सूक्ष्म पुर्यष्टका जड़ हो जाती है, उसमें फिर त्रिलोकी फुर आती है, तुम देखो, सूक्ष्म ही में भास आई, क्योंकि जो परमसूक्ष्म में सृष्टि बन जाती है तो मंदिर में होने का क्या आश्चर्य है, हे साधो! जितना जगत् प्रतीत होता है, सब आत्मा में स्थित है, उसका किंचन इस प्रकार हो भासता है, इसलिये तुम जाओ उनको राज्य भोग कराओ, हे कुन्ददन्त! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहेंगे, तब वर नमस्कार करके आधिभौतिक शरीर को त्याग देंगे, अंतवाहक शरीर के साथ उनके हृदय में आकर स्थित होंगे, जैसे एक शत्रु को दूरकर दूसरा आकर स्थित हो, ऐसे शाप को दूर करके उनके हृदय में वर आकर स्थित हुए, उनको त्रिलोकी भासने लगी और पुर्यष्टक अंतपुर में वर ने रोक दिया, जैसे जल वन को रोकता है ऐसे उनकी पुर्यष्टक को रोक दिया, हे कुंदंदत! इस प्रकार उनको अपने अंतःकरण में सृष्टि भासी और उन्होंने जाना, हम सप्तद्वीप के राजा हुए हैं, इस प्रकार आठों ही उस अंतःपुर में सप्तद्वीप पृथ्वी के राजा हुए परन्तु एक दूसरे को नहीं जाने, परस्पर अज्ञान सृष्टि के राजा हुए, उनमें से एक सप्तद्वीप का राजा हुआ और उसके रहने का स्थान जम्बूद्वीप में जो उज्जयिनी है उसमें उसकी राजधानी हुई और एक कुशद्वीप में रहने लगा, एक क्रौंचद्वीप में रहने लगा और एक शाकद्वीप में, उसको हरकारे आकर कहेंगे पाताल के नाग बड़े दुष्ट हैं, उनको किसी प्रकार जीतो तब यह समुद्र के मार्ग से नागों को जीतने के लिये पाताल जायेगा और चौथा एक द्वीप में अपनी स्त्री के साथ शान्त हो जायेगा और एक राजा शाल्मली द्वीप में स्थित होगा, वहां स्वर्ण की पृथ्वी है, बड़ी प्रकाश संयुक्त है। उस द्वीप में एक पर्वत होगा, उसके ऊपर एक ताल होगा, उस ताल में विद्याधरियों के साथ लीला करता फिरता करेगा और पांचवां क्रौंचद्वीप में राजा होगा,

दिग्विजय करके आयेगा, उसकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा और मानसिक पीड़ा से रहित होगी और एक गोमेदक नाम द्वीप में राजा होगा, उसका पुष्करद्वीप वाले के साथ युद्ध होगा, एक पुष्करद्वीप का राजा होगा, वह गोमेदकवाले राजा के साथ युद्ध करेगा, हे कुन्ददंत! इस प्रकार वह सृष्टि अपने अन्तःपुर में देखेंगे और राज्य भोगेंगे, परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होगी और राजधानी भी सबकी तुम्हें मैंने कही है, एक की जंबूद्वीप उज्जयिनी में, एक की शाकद्वीप में, एक की कुशद्वीप में एक की क्रौंचद्वीप में एक की पुष्करद्वीप में, एक की गोमेदक द्वीप में, एक लोकालोक पर्वत की स्वर्ण पृथिवी में, हे साधो! इस प्रकार का उनका भविष्य है, वह मैंने सब तुझे कह दिया है और जैसा इसके अंतर निश्चय होता है ऐसा ही इसको फल होता है, बाह्य यह कैसी ही क्रिया करे और अन्दर सत्ता न हो तो वह फलदायक नहीं होती, जैसे नट स्वांग बनाकर चेष्टा करता है परन्तु उसके अन्दर उसका सद्भाव नहीं होता इसलिये वह फलदायक नहीं होती और पुत्रादिक में अंदर उनकी ओर चित्त लगा रहता है तो अन्तरभावना से वह परे पुष्ट होते हैं, हे साधो! जैसा इसके अन्दर निश्चय होता है, वही वरदायक होता है, इसलिये निश्चय परमार्थ का कारण योग्य है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे ब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्ति वर्णनं नाम षडशीत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२८६॥

सप्तशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८७

कुन्ददन्तोपदेश वर्णनम् ।

कुन्ददंत बोला—हे मुनिवर! मुझे बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि उसी अंतःपुर में अपने अपने द्वीप का सब राज्य करेंगे यह कैसे होगा कदंबतपा ने कहा—हे साधो! जितना भी जगत् तुझे दृष्टि आता है यह बना नहीं

शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है, उनको जो अन्त:पुर में अपनी अपनी सृष्टि भासेगी, वह क्या रूप है, उनका जो अपना अनुभव है वही सृष्टिरूप होकर भासेगा आपही सृष्टिरूप और आपही राजा होंगे, यह जो कुछ जगत् तुझको प्रतीत होता है वह भी परब्रह्म है, इतर कुछ नहीं, जैसे समुद्र में तरंग स्वाभाविक फुरते हैं, जल ही रूप हैं और लीन होते हैं, वह जल ही रूप हैं, जल से इतर कुछ भी नहीं, न कुछ उत्पन्न हुआ है न कुछ मिटता है, ऐसे ब्रह्म में जगत् उत्पन्न होता और लीन होता है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, इसलिये वह ब्राह्मण भी अजरूप हैं, अपने आपको फुरने से जगत्‌रूप देखेंगे, हे साधो! जब सुषुप्ति होती है तब अद्वैत ही अपना अनुभव होता है फिर उसमें स्वप्न की सृष्टि फुर आती है, वह क्या रूप है, वह सुषुप्तिरूप है, ऐसे परम सुषुप्तिरूप जो आत्मा है जहां सुषुप्ति भी लीन हो जाती है, उसमें यह जगत् फुरता है, वह वही रूप है, आधार आधेय से रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, हे साधो! जैसे एक ही मंदिर में बहुत पुरुष शयन करें उनको अपने अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है तो कुछ आश्चर्य नहीं, ऐसे ही अपनी अपनी सृष्टि भासेगी, इसमें क्या आश्चर्य है, जो कुछ जगत् भासता है वह ब्रह्म में है और ब्रह्मरूप ही अपने आपमें स्थित है, कुन्ददन्त बोला–हे भगवन्! आत्मसत्ता तो एक है और केवल है, जिसमें एक कहना भी नहीं जंचता, परम शान्तरूप शिवपद है और अद्वैतरूप है, तो नाना प्रकार क्यों भासती है, यह तो स्वाभावसिद्ध है, नानात्व होकर वास्तव क्यों भासती है, कदम्बतपा बोला–हे साधो! सर्व शान्तरूप है और चैतन्य आकाश है, नाना प्रकार जो भासती है, वह अन्य कोई नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, वह बनी नहीं, अपना अनुभव ही सृष्टिरूप हो भासता है, ऐसे यह जगत् अनुभवरूप है, हे साधो! सृष्टि के आदि में अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें जो जगत् भास आया उसे भी तू वही रूपजान जैसे समुद्र ही तरंगरूप हो भासता है, ऐसे आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है, जैसे पुरुष स्तंभ से रहित स्थान में सोया है,

उसको बहुत स्तंभोंवाला मकान भास आया, परन्तु वहां बना तो कुछ नहीं, अनुभव आकाश ही स्तंभ रूप हो भासता है, ऐसे जो कुछ जगत् तुमको भासता है उसको अपना अनुभवरूप जानो, जैसे आकाश में शून्यता है, जैसे अग्नि में उष्णता है, जैसे बर्फ में शीतलता है, ऐसे आत्मा में जगत् है, कोई जगत् कहो कोई ब्रह्म कहो, ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, जैसे वृक्ष और तरु एकही वस्तु है, ऐसे ब्रह्म और जगत् एक ही वस्तु के दो नाम हैं, इस जगत् और इन्द्रिय मन से अतीत आत्मा को जानो और जो इन तीनों का विषय है उसे भी आत्मा जानो, अन्य वस्तु कोई नहीं और नानारूप जो दृष्टि आता है वह नानात्व नहीं हुआ दूसरा नहीं भासता है, जैसे स्वप्न में बड़े आरंभ दृष्टि आते हैं, सेना और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु हुआ कुछ नहीं, सब चिदाकाशरूप है, जैसे एक निद्रा की दो वृत्तियां हैं, एक स्वप्न एक सुषुप्तिरूप है स्वप्न में नानात्व भासता है और सुषुप्ति में एक सत्ता होती है, ऐसे चित् संवित् के स्फुरण में नानात्व भासता है और अफुरने में एक है, हे साधो! सर्वदा काल में एक रूप है परन्तु प्रमाद से भेद भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि अपना ही अनुभवरूप है परन्तु प्रमाद से भिन्न भिन्न भासती है, ऐसे यह जगत् है, हमको तो सर्वदा काल वही भासता है, जैसे पत्र फूल फल शाखा एक ही वृक्ष के नाम हैं, जो वृक्ष का ज्ञाता है उसको सभी वृक्षरूप भासता है, ऐसे सर्वनाम रूप से हमको आत्मा ही भासता है, आत्मा से इतर कुछ प्रतीत नहीं होता, आदि फुरने से जैसे निश्चय हुआ है अन्य निश्चय पर्यन्त वैसे ही रहता है, यह सब विश्व संकल्परूप है, संकल्प का अधिष्ठान ब्रह्म है, ब्रह्म ही संकल्परूप होकर भासता है, इसलिये जितना कुछ संकल्परूप जगत् भासता है, वह ब्रह्मरूप है ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, एक ही वस्तु के दो नाम हैं, जैसे वृक्ष और तरु दोनों एक वस्तु के नाम हैं, ऐसे ब्रह्म और जगत् दोनों एक चेतन के नाम हैं, हे साधो! जो शब्द वाणी के अगोचर है उसको ब्रह्म जानो और जो शब्द वाणी में आता है, उसको भी तुम ब्रह्मरूप जानो, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं जो ज्ञानवान् है उसको

सब ब्रह्म ही भासताहै, अज्ञानी के नानात्व भासता है जब अध्यात्म अभ्यास करेगा तब सब जगत्‌रूप ही भासेगा, इसका नाम घोष है, हे साधो! नाना प्रकार होकर जगत् दिखाई देता है, तो भी नानात्व कुछ नहीं, जैसे समुद्र में द्रवता से नाना प्रकार के तरंग बुद्‌बुदे चक्र दृष्टि आते हैं, परन्तु जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे जितने पदार्थ दृष्टि आते हैं सब आत्मरूप हैं, जितने जीव बोलते दृष्टि आते हैं सब महामौनरूप हैं, अपर कुछ बना नहीं, जो कुछ आत्मा से इतर विद्यमान भासता है उसको अविद्यमान जानिये, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से लेकर जितना जगत् भासता है, सब स्वप्न विलास है, जैसे नेत्र दोष से आकाश में तरवरे भासते हैं ऐसे भ्रम दृष्टि से आत्मा में जगत् भासता है, बना कुछ नहीं, जैसे सुषुप्ति में पुरुष सोया है, उसको फुरना नहीं फुरता, फिर उसी सुषुप्ति से स्वप्न सृष्टि फुर आती है, वह बनी कुछ बनी नहीं, वही सुषुप्ति रूप है और स्वप्न में स्थित पुरुष है उसको सत् भासता है और जो अनुभव में जगा है, उसको सुषुप्तिरूप है ऐसे यह जगत् भान आत्मा से इतर कुछ नहीं, जब जगकर देखेगा तब चिन्मात्र ही सब भासेंगे, शान्तरूप है, अनन्त है, सदा अपने आपमें स्थित है, उसमें जो जगत् भासता है, वह सत् भी नहीं और असत् भी नहीं, सत् इस कारंण से नहीं कि आभास मात्र है और नाशवान् है और असत् इस कारण से नहीं कि प्रगट भासता है, वास्तव में आत्मसत्ता से भिन्न नहीं, भाव अभाव सुख दुःख, उदय, अस्त वही आत्मसत्ता इस प्रकार हो भासती है, जैसे एक ही निद्रा के दो पर्याय है, स्वप्न भी और सुषुप्ति भी, ऐसे जगत् और आत्मा दोनों एक ही सत्ता के पर्याय हैं, जैसे एक ही वायु स्पंद और निस्पंद दो रूप होती है, ऐसे आत्म सत्ता के दोनों रूप हैं, जब संवदेन नहीं फुरता तब अग्निवाचीरूप होती है और जब अहं इस भाव को लेकर फुरती है, तब संकल्प की सृष्टि बन जाती है, आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी तत्व भास आते हैं नक्षत्र चक्र देवता मनुष्य पशु पक्षी जल का नीचे चलना, अग्नि का ऊर्ध्व चलना, तारागण प्रकाशवान्, पृथ्वी स्थिरीभूत, इनसे लेकर जितनी स्थावर

जंगमरूप सृष्टि है, अपने स्वभाव सहित भासती आती है, शुभ अशुभ कर्म होते हैं, उसमें सुख दुःख फल की नेति होती है। वह क्या है? आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, जैसे तू मनोराज्य से स्वप्न नगर की कल्पना करे, उसमें अनेक प्रकार की चेष्टा हो, वह जब तक संकल्प हो, तब तक वही सृष्टि स्थित होती है, जब सकंल्प मिट गया, तो सृष्टि लय हो जाती है तो वस्तु कुछ न हुई। तेरा अनुभव ही सृष्टिरूप होकर स्थित हुआ, ऐसे इस जगत् अनुभवरूप में भेद कुछ नहीं कुंददन्त बोला—हे रामजी! संकल्प जो फुरता है, वह पूर्व स्मृति को लेकर फुरता है, ब्रह्म में जो मनोराज्य संकल्प की सृष्टि उत्पन्न होती है, वह किसी संसार को लेकर फुरती है, यह संशय मेरा निवृत्त करो। कदंबतपा बोला—हे साधो! यह संपूर्ण सृष्टि किसी संस्कार से नहीं उत्पन्न हुई, भ्रम से भासती है, जैसे स्वप्न में अपने आपको मरा हुआ जानता है, तो उसको पूर्व संस्कार की स्मृति तो नहीं होती, अपूर्व ही भास आती है, ऐसे यह पदार्थ जो तुझको भासते हैं, अपूर्व हैं, किसी स्मृति से नहीं हुए, स्मृति अनुभव तो जगत् ही में उत्पन्न हुए हैं, जब जगत् का फुरना नहीं फुरा था, तब स्मृति अनुभव भी नहीं थे, जब जगत् फुरा है, तब यह भी फुरा है, इसलिये संपूर्ण जगत् अपूर्व है, भ्रम से भासता है, जैसे स्वप्न में मरा हुआ किसी कुल में अपना जन्म देखे और उसका कुल चिरकाल का चला आता है, ऐसा प्रतीत हो और जब जगा तब पूर्व किसको कहे, स्मृति किसकी करे, न जन्म रहता है, न कुल रहता है, ऐसे ज्ञानवान् को यह जगत् आकाशरूप भासता है, तो मैं तुम्हें पूर्व की स्मृति क्या कहूं, हे ब्राह्मण! अपर कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों स्थित है, जिससे यह सर्व जगत् हुआ है और जिसमें यह सब है, जो सब है, वह सर्वात्मा है, जब वही है तो दूसरा किसको कहें, इसलिये ऐसा जानकर तुम विचार करो, तब तुम्हारे दुःख नष्ट हो जायँगे, हे साधो! छै जो कारक हैं, ब्रह्मरूप हैं, इसमें विश्व का कर्ता भी ब्रह्म है, विश्वकर्मा भी ब्रह्म है, विश्व का साधक भी ब्रह्म है, जिसमें निमित्त यह विश्व है, वह भी ब्रह्म है,

जिसमें यह विश्व होता है, वह भी ब्रह्म है, हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है, उसको नमस्कार है, हे साधो! उस सर्वात्मा को ऐसे जानना, यही उसकी परम पूजा है, ऐसे ही तुम पूजन करो, हे साधो! अब तुम जाओ, अपना जो कुछ वांछित है, उसमें विचरो और तुम्हें बांधव स्मरण करते होंगे, उनके पास जाओ, जैसे कमलों के पास भ्रमर जाते हैं और हम भी समाधि स्थित होते हैं, जो कुछ गुह्य बात है, वह भी मैं कहता हूं, जिससे कोई सुख पाता है, वही करता है, मुझको जगत् दुःखदायक प्रतीत हुआ है, इस कारण से समाधि स्थित होता हूं, हे साधो! यद्यपि मेरे लिये सब अवस्थाएँ तुल्य हैं, भेद कुछ नहीं तो भी चित्तवृत्ति संसार दुःख से दुःखित होकर आत्मपद में स्थित हुई है, इस स्थिति का जो सुख है, उसके संस्कार से फिर उसी की ओर दौड़ता है, इसलिये तुम जाओ, मैं समाधि में स्थित होता हूँ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे कुंददंतोपदेशो नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२८७॥

अष्टाशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८८

कुंददंतविश्रान्तिवर्णनम् ।

कुन्ददन्त ने कहा–हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह फिर समाधि में स्थित हो गया। इंद्रिय और मन की क्रिया से रहित हुआ, मानों कागज पर मूर्ति लिख दी हो, ऐसे हो गया, हमने फिर जगाया। बहुत से शब्द किये, परन्तु वह न जगा, तब हम वहां से चले, ब्राह्मण के घर आये, उनके घर में बड़ा उत्साह हुआ, फिर समय पाकर क्रम से सातों भाई मर गये और अष्टम मेरा मित्र जीता रहा, फिर वह भी मर गया, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ, मेरा प्रियतम भी मर गया, अब मैं क्या करूं? हे रामजी! मैंने विचार किया कि फिर कदंबतपा के पास जाऊं, मेरा दुःख

नष्ट होगा, तब मैं गया, जाकर तीन मास पर्यन्त उसके पास रहा, उसको मैंने जगाया, परन्तु वह नहीं जगा। तीन मास हो चुके, तब वह जगा। मैंने उसको प्रणाम करके कहा—हे मुनिवर! वह तो अपने अपने राज्य को भोगने लगे हैं और मैं अकेला दुःखी हुआ हूं, इसलिये मेरा दुःख तुम नाश करो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूं, कदम्बतपा बोला—हे साधो! मैं तुझे उपदेश करूं परन्तु तुझको स्वरूप का साक्षात्कार न होगा, क्योंकि तुमसे अभ्यास न होगा और अभ्यास के बिना स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता, मेरा कहना भी व्यर्थ होगा, इसलिये मैं दुःख नष्ट होने का उपाय तुझको कहता हूं, उससे तू मेरे समान हो जायेगा। दुःख से रहित अनन्त अनन्तात्मा सुखी होगा। हे साधो! अयोध्या नगरी है, उसका राजा दशरथ है, उसके घर में रामजी पुत्र हैं, उनको वसिष्ठ महर्षि मोक्ष उपाय का उपदेश करेंगे, बड़ी सभा में कहेगा, वहां तुम जाओ, तुझको भी स्वरूप की प्राप्ति होगी, संशय मत कर, हे रामजी! जब इस प्रकार उस तपस्वी ने मुझको कहा तब वहां से चला और मैं तुम्हारे पास आया हूं, जो कुछ तुमने पूछा था, कह दिया, जो कुछ देखा सुना है, वही कहा है। राम बोले—हे वसिष्ठ! वह वृत्तान्त मैंने उसको सुनाया था, वह प्रभु के आगे कहा है और कुंददन्त भी तुम्हारे पास यह बैठा है, अब इससे पूछिये कि स्वरूप की प्राप्ति हुई है अथवा नहीं, तुम इसकी अवस्था पूछो, वाल्मीकि मुनि बोले—हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब वसिष्ठजी जो कि महामुनि हैं, कृपा करके बोले—हे ब्राह्मण! यह मोक्ष उपाय जो मैंने सम्पूर्ण कहा है, उसको सुनकर तुमने क्या समझा? कुंददन्त बोला—हे सर्व संशयों के काटने वाले! जो कुछ मुझको संशयरूप तम आवरण था, सब नष्ट हो गया है, तुम्हारे वचनरूप प्रकाश से अज्ञानरूप अन्धकार का नाश हुआ है और कुछ जानने योग्य पद है, मैंने जान लिया है, जो कुछ पाने योग्य था, पा लिया है। अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूं, अब मुझको कल्पना कोई नहीं रही, मैं अनन्त आत्मा हूं, नित्य शुद्ध अच्युत हूं, परमानन्द स्वरूप हूं, सर्व जगत् हमारी ही स्वरूप

है, हे भगवन्! अन्तःपुरी में जो इतनी सृष्टि सामने का संशय था, वह तुम्हारे वचन से दूर हुआ है और एक एक राई में मुझको ब्रह्माण्ड भासते हैं और आत्मत्वभाव से दिखाई देते हैं। जैसे अनेक दर्पणों में अपना मुख ही भासता है, ऐसे मुझको सब ओर से अपना आप भासता है, हे भगवन्! तुम्हारे वचन आदि से अंत तक मैंने सम्पूर्ण श्रवण किये हैं, कैसे वचन हैं कि परमपावन हैं और परम सार हैं, आत्मबोध के कारण हैं, उनके विचारे मेरी भ्रांति निवृत्त हो गयी है और मैं अपने आप में स्थित हुआ हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे कुंददन्तविश्रामप्राप्ति र्नामाष्टशीत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२८८॥

एकोनंनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २८९

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

श्रीवाल्मीकि महाराज बोले–जब इस प्रकार कुंददन्त ने कहा, तब श्री वसिष्ठजी महाराज सुनकर परमपद पाने का परम उचित वचन फिर कहने लगे। हे रामजी! अब कुन्ददन्त ने आत्मानुभव में विश्राम पाया है, इसको अब अपना आप हस्तामलकवत् अनुभवरूप जगत् भासता है। आत्मा ही निद्रा स्वरूप होकर भासता है और आत्मा ही द्रष्टारूप है, अपर दूसरी वस्तु कुछ नहीं, अपना अनुभव जगत्‌रूप होकर भासता है, वह अनुभव आकाश कैसा है, सब शान्तरूप है, अनन्त है, अखण्ड है, सदा ज्यों का त्यों है, हे साधो! नानारूप भासता है, परन्तु अनाना है, सदा ज्यों का त्यों अचैत्य चिन्मात्र परम शून्य है, जिसमें शून्य भी शून्य हो जाता है, चैत्य दृश्यरूप जो फुरना है, उससे रहित है, इसी कारण से परम शून्य है, बोलता दृष्टि आता है, तो भी परम मौन है, हे रामजी! उसमें जगत् कुछ बना नहीं, जैसे स्वप्न में पहाड़ दृष्टि आते हैं, वे न असत् हैं, न सत् हैं, ऐसे यह जगत् सत् असत् से विलक्षण है, क्योंकि कुछ बना

नहीं, जो कुछ भासता है, वह आत्मा है, जैसे रत्न का प्रकाश चमत्कार होता है, ऐसे आत्मा का प्रकाश जगत् है, जैसे समुद्र द्रवता से तरंगरूप हो भासता है, ऐसे ब्रह्म संवेदन से जगत्‌रूप हो भासता है और आदि स्पंद फुर आये हैं, वह जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है, वह जैसा हुआ, ऐसे हुआ, वह कार्य कारण भाव से रहित है, जिसको प्रमाद है, उसको यह कारण भाव भासता है, उसको ऐसा ही है, जब सत् जानकर पाप करता है, बड़े पाप आकर उदय होते हैं, तब स्थावररूप होता है, फिर स्थावर को त्यागकर जंगम मनुष्य होता है, हे रामजी! इस प्रकार यह ज्ञान संवित् चैत्य सम्बन्धी होकर नाना प्रकार के रूप धारण करती है और प्रमाद से भिन्न भिन्न भासती है, परन्तु स्वरूप से कुछ अपर नहीं होती, सदा अखंडरूप है, जब तक प्रमाद होता है, तब तक जगत् का आदि और अन्त नहीं भासता, जब प्रमाद से जगता है, तब सब कलना मिट जाती है। हे रामजी! जितना जगत् भासता है, वह कुछ बना नहीं, वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है, जब जाग्रत अवस्था का अभाव होता है और सुषुप्ति आती है, उसमें न शुभ की कल्पना रहती है, न अशुभ की कल्पना रहती है, उदय अस्त की कल्पना से रहित अद्वैत सत्ता रहती है, जब फिर उसमें चेतनता फुरती है, तब फिर स्वप्न की सृष्टि भासती है, कहीं स्थावर जंगम सृष्टि भासती है, जिसमें संवेदन फुरती भासती है, वह जंगम कहाता है और जिनमें नहीं, वह स्थावर कहलाता है, परन्तु अपर कुछ नहीं, वही अद्वैत अनुभव सत्ता स्थावर जंगमरूप होकर भासती है, ऐसे आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है, हे रामजी! सृष्टि के आदि परम सुषुप्ति सत्ता थी, उसमें संवेदन फुरने से जगत् भास आया, वही संवेदनरूप जगत् है, जिस आत्मसत्ता से फुरी है, वही रूप है, इतर कुछ नहीं, जैसे शरीर के अंग हस्तपाद आदि सब शरीर रूप हैं, ऐसे परमात्मा के अंग हस्तपादादिक जंगम सृष्टि और नख केशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मरूप है। अन्य दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं, जैसे स्वप्न सृष्टि अनुभवरूप होती है, संकल्पपुर रची सृष्टि संकल्परूप होती है, ऐसे यह

सृष्टि अनुभवरूप है, यह किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुई, इसलिये ब्रह्मरूप है, ब्रह्म के सूक्ष्म अणु में सृष्टि फुरी है, वह क्या रूप है, ब्रह्म ही सृष्टि है और सृष्टि ही ब्रह्म है, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, परन्तु अज्ञान निद्रा से भिन्न भिन्न भासता है, राम बोले–हे भगवन्! निद्रा का कितना प्रकार है, कितने समय तक रहती है और सूक्ष्म अणु में सृष्टि कैसी फुरी है और कैसे स्थित है, उसकी अणु संज्ञा किससे है और अनन्त क्यों है जो कि देवता, असुरादिकरूप को चित्त प्राप्त हुआ है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अज्ञान निद्रा अपने काल में तो अनादि है, जानी नहीं जाती कि कब की उत्पन्न हुई और कब तक रहेगी, अज्ञान काल में तो इसका आदि अन्त परिणाम कुछ नहीं भासता और ज्ञानावस्था में इसका अत्यन्ताभाव देखा जाता है और चित् सत्ता की यदि अनन्तता पूछो तो–हे रामजी! अद्वैत चिन्मात्र आत्म समुद्र है, उसमें सूक्ष्मभाव "अहम् अस्मि" जो संवित् फुरती है उसका नाम चित्त है, उस चित्त में आगे जगत् होता है, शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन चित्त फुरता है, उसमें जगत् है, वही चित्तदेवता असुर और जंगमरूप हो भासता है, नाग पिशाच कीटादिक स्थावर जंगमरूप होकर भासती है और वास्तव से चेतन सत्ता ही है, उससे इतर कुछ नहीं, चिदाकाश रूप है फुरने से नाना प्रकार है, हे रामजी! परमशुद्ध चिद्अणु के साथ मिलकर चित्त अनेक ब्रह्मांड को धारण करता है, उस सूक्ष्म अणु में अनन्त ब्रह्मांड फुरते हैं परन्तु उससे भिन्न नहीं जैसे एक पुरुष शयन करता है उसको स्वप्न में अनेको जीव भास आते हैं, उन जीवों में अपने अपने स्वप्न की सृष्टि फुरती है, अनेक सृष्टियां हो जाती हैं, ऐसे सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टियां फुरती हैं, परन्तु कुछ आत्मसत्ता से इतर नहीं बना, जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त त्रसरेणु होते हैं, वे सूक्ष्म होते हैं, ऐसे परमात्मरूप सूर्य के चिद्अणु सूक्ष्म हैं, इन त्रसरेणुओं से भी सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टियाँ अपनी अपनी फुरती हैं, हे रामजी! जब तक चित्त फुरता रहता है तब तक सृष्टि का अन्त नहीं आता, असंख्य जगद्भ्रम इसने आगे देखे हैं और असंख्य ही

आगे देखेगा, जब चित्त फुरने से रहित होता है, तब जगत् कल्पना मिट जाती है, जैसे स्वप्न में सृष्टि भासती है, बड़े व्यवहार होते हैं, जब जगता है, तब स्वप्नसृष्टि व्यवहार की कल्पना मिट जाती है, अद्वैत अपना आपही भासता है, ऐसे चित्त के ठहरने से सब भ्रम मिट जाता है, हे रामजी! सूक्ष्म चिद्अणु भी इसकी संज्ञा तब हुई है जब चित्त का सम्बन्ध हुआ है, जब चित्त को स्वभाव में स्थित करेगा, तब द्वैत कल्पना सूक्ष्म स्थूलभाव मिट जायेगा और इसकी सूक्ष्म जो संज्ञा है, वह अविद्यक भाव से है जो इन्द्रियों का विषय नहीं, इससे अणुता है, और सूक्ष्म अणु में व्यापा हुआ है इससे सूक्ष्म कहाता है, और अनन्त इसलिये कि सबको धारण कर रहा है, और यह जगत् क्या है? हे रामजी! यह जगत् अभावमात्र है, जैसे मरुस्थल में जलाभास होता है, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है, यह जगत् है ही नहीं, तो इसका कारण किसको कहें आदि सृष्टि अकारण फुरी है, फिर इसमें कारण कार्य भासने लगे, आभास की दृढ़ता हो गयी है, जैसे स्वप्न में आदि सृष्टि अकारण बीज वृक्ष कुलाल माटी घट इकट्ठे फुर आते हैं जब उस स्वप्न की दृढ़ता हो जाती है, तब कारण कार्य भासते हैं, परन्तु जो सोया पड़ा है, उसको दृढ़ भासते हैं, ऐसे अज्ञानी को जगत् कार्यकारण दृढ़ भासता है, ज्ञानवान् को सब अपना ही आपही भासता है, जैसे स्वप्न से जगे स्वप्नसृष्टि अपने आपही भासती है, कि मैं ही था, और कुछ न था, ऐसे ज्ञानवान् को सब जगत् आकाशरूप भासता है, पृथ्वी, आप, तेज वायु आकाश देवता मनुष्य पशु पक्षी पर्वत वृक्ष नदी स्थावर जंगम जितना जगत् है, सब आकाशरूप है, संवेदन के फुरने से दृष्ट भासते हैं, वास्तव से इतर कुछ नहीं, हे रामजी! यह जगत् चित्त में स्थित है, जैसे किसी पुरुष ने स्तंभ में पुतलियों की कल्पना की, पुतली के दो रूप होते हैं, जो शिल्पी में फुरती है, वे आकाशरूप है और जो स्तंभ में कल्पना की गयी है, वे स्तंभरूप हैं, स्तंभ में स्थितरूप है और शिल्पी के चित्त में नृत्य करती हैं, हे रामजी! अपर तो कुछ नहीं, स्तंभरूप हैं, शिल्पी के चित्त में कल्पना मात्र है, ऐसे ही चित्तरूप शिल्पी

की जगत्‌रूप पुतलियां कल्पना मात्र हैं, आत्मरूप स्तंभ ज्यों का त्यों है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे पट के ऊपर मूर्ति लिखी हो तो मूर्ति का रूप पट ही है, पट से इतर कुछ नहीं, वह पट ही मूर्तिरूप भासता है ऐसे यह जगत् आत्मा से इतर कुछ नहीं, आत्मा ही जगत्‌रूप होकर भासता है, आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं, जैसे ब्रह्म आकाशरूप है, ऐसे ही जगत् आकाशरूप है, जगत्‌रूप आधार है, ब्रह्म उसमें बसनेवाला है, हे रामजी! जैसे समूह है, जगत् में विद्या और अविद्यारूप सब संकल्प से रचित है और वास्तव से सब आत्मरूप है समता सत्यता निर्विकारता आदि से लेकर और इनसे विपरीत अविद्यारूप सब एक ही रूप हैं, एक ही में फुरते हैं और एक ही रूप हैं, जैसे स्वप्नजगत् अनुभवरूप अनुभव में स्थित होता है, वह सब आत्मरूप होता है, ऐसे यह जगत् सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्म से इतर न कुछ वर की कल्पना है न शाखा की कल्पना है, ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आपमें स्थित है, उसमें न कारण है न कार्य है, जैसे ताल नदी मेघ का एक ही जल होता है, ऐसे सब जगत् ब्रह्मरूप है, श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! वर और शाप के कर्ता तो परिच्छिन्न पाते हैं कारण बिना तो कार्य नहीं पाता, आप कैसे कहते हैं कि कारण कार्य कोई नहीं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता का किंचन जगत् होता है, जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं, ऐसे आत्मसत्ता में जगत् फुरता है, जैसे तरंग जलरूप होते हैं ऐसे जगत् आत्मरूप है, आत्मा से इतर कुछ नहीं, जैसे आदि परमात्मा से सृष्टि का फुरना हुआ है, ऐसे ही स्थित है, अन्यथा नहीं होता, सब जगत् संकल्परूप है, अनेक प्रकार की वासना संवेदन में फुरती है, जिनको स्वरूप का विस्मरण हुआ है, उनको यह जगत् सत्‌रूप भासता है, जो उनको विचार उत्पन्न हो तो वही काल है, जिस काल में विचार उत्पन्न होता है, उसी काल में अज्ञान निद्रा का अभाव होता है, हे रामजी! जब विचार और अभ्यास से मन तद्रूप होता है, तब इसको यथार्थ दर्शन होता है और सम्पूर्ण ब्रह्मांड अपना आपही भासता है, क्योंकि अपने आपमें स्थित है, जो सबका अधिष्ठान

आत्मसत्ता है, उसमें इसको अहं प्रतीति होती है, इस कारण से अपने आपमें सृष्टि भासती है, जैसे स्पंद फुरते हैं, ऐसे ही उसको सिद्ध होता है, निरावरण दृष्ट होता है निरावरण दृष्ट से सर्व संकल्प सिद्ध होता है, क्योंकि यह जगत् आत्मा में संकल्प का रचा हुआ है, उसमें इसको अहं प्रत्यय हुआ है, हे रामजी! जो संकल्प इसको उठता है कि यह कार्य ऐसे ही होता है, हे रामजी! शुद्ध संवेदन में संकल्प होता है, वही होकर भासता है, वह संकल्प ही रूप है, संकल्प से इतर नहीं, इस कारण से वर और शाप का अपर कारण कोई नहीं, वर और शाप भी संकल्परूप हैं और उससे जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है, वह किसी कारण समवाय से तो नहीं उत्पन्न हुआ संकल्प ही से क्यों हुआ इसलिये सब अकारण रूप है और ब्रह्मरूप समुद्र में तरंग उठते हैं, अपर कारण और कार्य मैं तुझको क्या कहूं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, अपर द्वैत और एक की कल्पना कुछ नहीं, हे रामजी! हमको सदा ब्रह्मसत्ता ही भासती है, कार्य कारण कोई नहीं भासता, जैसे स्वप्न में किसी के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ बड़े उत्साह को प्राप्त हुआ जब जाग्रत् का संस्कार चित्त में आया तब मालूम हुआ कि जब उसका पिता ही उत्पन्न नहीं हुआ तो पुत्र कैसे कहा जाय, सब अपना आप ही हो जाता है, न कोई कारण भासता है न कार्य भासता है और जो स्वप्न में सोया है, उसको जैसे भासता है ऐसा ही भान कराता है, जैसे वर और शाप का आश्रय संकल्प है, संकल्प ही वर शाप होकर प्रतीत होता है, कारण भी होता है, और जिसको शुद्ध संवेदन के साथ एकता हुई है, वह निरावरण है, उसमें जैसे फुरना आभास फुरता है, ऐसा ही सिद्ध होता है, रामजी बोले–हे भगवन्! एक ऐसे हैं, जिनको आवरण है और उनका संकल्प जैसे फुरता है, वर दे अथवा शाप दे वैसे ही हो जाता है और स्वरूप का साक्षात्कार उनको नहीं हुआ, और शुभ कर्म उनमें प्रत्यक्ष पाते हैं तो शुद्ध कर्म ही कारण हुए, वर शाप को तुम कैसे कहते हो जो निरावरण पुरुष का संकल्प सिद्ध होता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है, वही चित्त धातु कहाती है,

उस चित्त धातु में जो आभास फुरना है, जो संवेदन कहाती है, वह संवेदन जब फुरती है तब जाना जाता है, कि मैं ब्रह्म हूं, तो संवेदन ही अपने आपको जगत् का पिता जानने लगी क्यों? उसने आगे मनोराज्य की कल्पना की, तब पंच भूतों का जानना हुआ, कि शून्यरूप आकाश हुआ, स्पंदरूप वायु है, उष्णरूप अग्नि है, द्रवतारूप जल है, कठोररूप पृथ्वी है फिर देश और काल की कल्पना हुई, स्थावर जंगम पदार्थ की कल्पना से वेद शास्त्र धर्म अधर्म का फुरना हुआ, उसमें यह निश्चय हुआ कि यह तपस्वी है, इसने तप किया है इसके कहने से वर हो और जो कुछ कहे सो हो, स्वरूप के साक्षात्कार से रहित है, तो भी इसका कहा हो, यह तप का फल है, आदि संकल्प ऐसे हुआ है, तो वर शाप का कर्ता तपस्वी का नहीं, इसका अधिष्ठान वहीं संवेदन है, जिससे आदि संकल्प का फुरा है, हे रामजी! वर और शाप संकल्परूप है, संकल्प संवेदन से फुरा है, संवेदन आत्मा का आभास है, तो मैं कारण और कार्य क्या कहूं, और जगत् क्या कहूं, आत्मा का आभास संवेदन ब्रह्मा है, उसने आगे संकल्प पूर्वक सृष्टि रची है, हम तुम आदिक सब उसके संकल्प में हैं, वे ब्रह्माजी कैसे हैं निराकार और निराधार हैं, निरालम्ब स्थित हैं, कुछ आकार को नहीं प्राप्त हुए, इसलिये उनका विश्व भी वही रूप जानिये, हे रामजी! जैसे उनका स्पंद हुआ है ऐसे ही स्थित हैं, अन्यथा नहीं होता, वही विपर्यय करें तो हो, अगर से नहीं होता, अग्नि में उष्णता, वायु में स्पंदता इत्यादि जो पदार्थ हैं, अपने अपने स्वभाव में स्थित हैं और हमको सब ब्रह्मरूप हैं, जैसे शरीर में हाड मांस से इतर नहीं होता, ऐसे हमको ब्रह्म से इतर नहीं भासता, जैसे घट में मृत्तिका से इतर कुछ नहीं होता, जैसे काष्ठ की पुतली काष्ठ से इतर नहीं होती, ऐसे जगत ब्रह्म से इतर नहीं होता, हे रामजी! जितना जगत् तुझको भासता है ब्रह्म ही है ब्रह्म ही फुरने से नाना प्रकार जगत् हो भासता है, जैसे समुद्र द्रवता से तरंग बुद्बुदे फेन हो भासता है, ऐसे ब्रह्म संवेवन से जगत्रूप हो भासता है, परब्रह्म से इतर कुछ नहीं, जैसे पर्वत से जल गिरता है, तो कण कण

भासता है, जब गिरकर ठहर जाता है, तब समुद्ररूप होता है, परन्तु जल से इतर कुछ नहीं होता, ऐसे जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् हो भासता है, जब चित्त ठहर जाता है, तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है, परब्रह्म से इतर कुछ नहीं होता ब्रह्म ही स्थावर जंगमरूप हो भासता है, जहां पुर्यष्टका का सम्बन्ध नहीं भासता वह अजंगम कहाता है, जहां पुर्यष्टका का सम्बन्ध होता है वहां जंगमरूप भासता है, परन्तु आत्मा में उभय तुल्य है, जैसे एक ही हाथ की अंगुली है, जिसको उष्णता का अथवा शीतलता का संयोग होता है वह फुरने लगती है, जिसको शीतल उष्ण का संयोग नहीं होता वह नहीं फुरती, ऐसे जिस आकार को पुर्यष्टका का संयोग नहीं उसमें जड़ता भासती है, वह जड़ भी आगे दो प्रकार के हैं, एक को पुर्यष्टका संयोग है और जड़ है, एक को पुर्यष्टका का संयोग नहीं और जड़ है, वृक्ष पर्वत को पुर्यष्टका संयोग है परन्तु घन सुषुप्ति जड़ता में स्थित हुई है, उस कारण से जड़ भासते हैं ओर मृत्तिका पुर्यष्टका से रहित है, इस कारण है तो जड़ परन्तु वास्तव से स्थावर जंगम इष्ट अनिष्ट वर शाप देशकाल पदार्थ सब ही ब्रह्मरूप है, ब्रह्मसत्ता ही ऐसे स्थित है, जैसे अपने अनुभव में संकल्प नगर नाना प्रकार का भासता है, परन्तु संकल्परूप है संकल्प से इतर कुछ नहीं जैसे मृत्तिका की सेना अनेक प्रकार की होती है, परन्तु मृत्तिकारूप है, मृत्तिका से इतर कुछ नहीं, ऐसे सर्व के अर्थ को धारण करनेवाली चेतन धातु नाना प्रकार के आकार को प्राप्त होती है, परन्तु चेतनता से इतर कुछ नहीं होती, हे रामजी! धातु उसको कहते हैं, जो अर्थ को धारण करें जितने पदार्थ तुझे भासते हैं सब अर्थरूप हैं और वस्तुरूप हैं, जो धातु हैं वह आत्मसत्ता है, उसने दो अर्थ धारण किये हैं, एक स्वप्नअर्थ एक बोध अर्थ, स्वप्न अर्थ में तो नानात्व भासता है, बोध अर्थ में एक अद्वैत सत्ता भासती है, जैसे एक ही धातु मिलने और बिछड़ने रूप दो अर्थों को धारण करती है, वे कैसे अर्थ हैं, परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं, परन्तु एक ही ने धारण किये हैं, ऐसे स्वप्न का अर्थ और बोध अर्थ इन दोनों को

आत्मसत्ता ने धारण किया है, जैसे तरंग बुद्बुदे जलरूप हैं, ऐसे जगत् ब्रह्मरूप है, जो ज्ञानवान् हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासता है, अज्ञानी को नानात्व भासता है, इसलिये तुम स्वभाव से निश्चय करके देखो, सब ब्रह्मरूप से इतर कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सर्व ब्रह्मप्रतिपादनं नाम एकोन नवत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२८९॥

नवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९०

जीवसंसारवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! सर्व ब्रह्म ही है तो नीति क्या है, और नाना प्रकार के पदार्थ क्यों भासते हैं, उसमें तुम कहते हो कि जगत् संकल्प से रचित है, तो हे भगवन्! यह जो असंख्यरूप पदार्थ हैं इनकी संख्या तो की नहीं जाती और इन पदार्थों का स्वभाव एक एक का अचलरूप होकर कैसे स्थित है, यह कृपा करके कहो? और सब देवताओं में सूर्य का प्रकाश अधिक क्यों है, और एक ही सूर्य में दिन छोटे बड़े क्यों होते हैं, और रात्रि छोटी बड़ी क्यों होती है, यह विचित्रता क्या है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! शुद्धचिन्मात्र सत्ता में अकस्मात् आभास फुरा है, उस आभास का नाम नीति है, और सृष्टि भी आभासमात्र है, किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुई, जिसके आश्रय आभास फुरता है, वही वस्तु अधिष्ठान होता है, इसलिये जगत् सब ब्रह्मरूप है, चिन्मात्र सत्ता अपने आपमें स्थित है, न उदय होती है न अस्त होती है, परिणाम से रहित सदा अद्वैत रूप स्थित है, उसमें न जाग्रत् है न स्वप्न है न सुषुप्ति है, तीनों अवस्थाएं आभास मात्र हैं, चेतन में इनसे द्वैत नहीं बना, यह तीनों इसीका स्वभाव प्रकाशरूप है, इससे इतर कुछ नहीं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं, जैसे वायु और निस्पंद में भेद कुछ नहीं, जैसे अग्नि और उष्णता में भेद कुछ नहीं, जैसे कर्पूर और सुगंधि में भेद कुछ

नहीं, ऐसे जाग्रत् आदिक जगत् और ब्रह्म में भेद कुछ नहीं, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चित्तभाव हुआ हैं, उसमें चेतन आभास फुरा है, उसमें जैसे संकल्प फुरा है, ऐसे स्थित हुआ है, यह इस प्रकार हो और इतने काल तक रहे, इस संकल्प निश्चय का नाम नीति है, जैसे आदि संकल्प दृढ़ हुआ है, ऐसे ही अब तक पदार्थ स्थित हैं पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अपने अपने भाव में स्थित हैं, अपने स्वभाव को त्यागते नहीं, जब तक उनकी नीति है, तब तक ऐसे ही जगत् सत्ता में स्थित हैं, हे रामजी! इसका नाम नीति है, जो संकल्प जैसे आदि धारण किया ऐसे स्थित हैं, और वास्तव से क्या है, आभासरूप है अकस्मात् आभास फुरा है, वह आभास किसी सूक्ष्म अणु में फुरा है, जैसे समुद्र के किसी स्थान में तरंग बुद्बुदे फुरते हैं संपूर्ण समुद्र में नहीं फुरते, ऐसे यहां संवेदन में जैसा फुरना होता है ऐसे स्थित होता है, वह नीति है, जैसे तरंग बुद्बुदे समुद्र से भिन्न नहीं ऐसे ही नीति आत्मा से भिन्न नहीं, जैसे द्रवता से समुद्र में तरंग फुरते हैं ऐसे आत्मा में संवेदन से नीति और जगत् फुरते हैं, वह वही रूप है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जैसे किसी ने कहा चन्द्रमा का प्रकाश है, वह चन्द्रमा और प्रकाश में भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद कुछ नहीं, यह विश्वात्मा स्वभाव है। जैसे एक ही काल की बहुत संज्ञाएं होती हैं, दिन पक्ष, वार, मास, वर्ष, युग कल्प इत्यादिक बहुत नाम हैं, परन्तु काल एक ही है, ऐसे भिन्न भिन्न जगत् के नाम हैं, सब ब्रह्म ही है, हे रामजी! जब संवेदन चित्त के सन्मुख होती है, तब प्रथम शब्द तन्मात्र फुरती है, उससे आकाश उत्पन्न होता है, आकाश का शून्यता स्वभाव है, जब फिर स्पर्श तन्मात्रा को चेता उससे वायु फुरा है, वायु का स्पंद स्वभाव है, फिर रूप तन्मात्रा को चेता, उससे अग्नि प्रकट हुई, अग्नि का उष्ण स्वभाव है, फिर रस तन्मात्रा को चेता, तब उससे जल प्रकट हुआ, जल का द्रव स्वभाव है, तब गंध तन्मात्रा को चेता, तब उससे पृथ्वी हुई, पृथ्वी का स्वभाव स्थिर है, इस प्रकार पंचभूत फुर आये, हे रामजी! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरी है, वह जितनी शब्द समूह वाणी

है, वह वृक्ष हुआ, उसका बीज है, सब उसी से उत्पन्न हुए हैं, पदार्थ वाक्य वेद शास्त्र पुराण सब उसी से फुरे हैं, इसी प्रकार पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश, इनका जो कार्य स्वभाव है, वह सबका बीज आदि इनकी तन्मात्रा है, उस तन्मात्रा का बीज वह संवित्सत्ता है, हे रामजी! अब इन तत्वों की खान सुनो, पृथ्वी से अणु भी होता है और एक दल भी होता है, पृथ्वी तो एक है अणु भी वही है, ऐसे सर्व तत्वों को समझकर देखना, पृथ्वी की खान भूपीठ है, वह सम्पूर्ण भूतजात को धारण करती है और जल की खान समुद्र है तो सब पदार्थों में रासरूप होकर स्थित है, अग्नि का तेज जो प्रकाश है, उसकी समष्टिता सूर्य है, और सर्व स्पंद की समष्टिता पवन है, और संपूर्ण शून्य पदार्थों की खान आकाश है, इस प्रकार यह पांचों तत्व संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है ऐसे यह भूत संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, संकल्प संवेदन से फुरा है, और संवेदन आत्मा का आभास है, वह आत्मा अद्वैत है, अच्युत है निर्विकल्प है, सर्वदा अपने आपमें स्थित है, उसके आश्रय संवेदन आभास फुरा है, फिर संवेदन से संकल्प फुरा है संकल्प से जगत् बन गया है, जैसे समुद्र में तरंग फुरता और लीन होता है, ऐसे संकल्पमें जगत् उत्पन्न होता है और संकल्प ही में लीन होता है, जैसे तरंग जलरूप हैं, ऐसे पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाश सब चेतन रूप हैं, जितने पदार्थ देखने सुनने में आते हैं और नहीं आते हैं, सब चेतन रूप हैं, आत्मा से इतर कुछ नहीं, वही आत्मा इस प्रकार होता है, स्वप्न में अपना अनुभव ही पदार्थ हो भासता है, परन्तु कुछ बना नहीं, नाना प्रकार भासता है तो भी कुछ बना नहीं नाना प्रकार भासता है तो भी अनाना है, ऐसे जगत् नाना प्रकार भासता है तो भी कुछ बना नहीं, जैसे एक निद्रा के दो रूप हैं, एक स्वप्न, एक सुषुप्ति रूप हैं, जब फुरना होता है तब स्वप्न दृष्टि भासती है, जब फुरना निवृत्त हो जाता है, तब सुषुप्ति होती है, जैसे एक वायु के दो रूप हैं, स्पंद होती है तब भासती है, निस्पंद होती है तब नहीं भासती, ऐसे जब संवेदन फुरती है, तब जगत् भासता है, जब नहीं फुरती तब

जगत् नहीं भासता, इसका नाम महाप्रलय है, दोनों आत्मा का आभास हैं, हे रामजी! ब्रह्माजी के संकल्परूप बालक ने आत्मा में आकाश रचा है, पृथ्वी रची है, आकाश में नक्षत्र रचे हैं और सम्पूर्ण क्रम रचा है, जैसे बालक अपने में संकल्प रचे, ऐसे ब्रह्मा ने रचा है, एक भूगोल रचा है, उसके ऊपर नक्षत्र चक्र रचे हैं उस चक्र के दो भाग हैं, अन्योन्य सम्मुख स्थित हैं, उससे सूर्य होता है, सातघड़ी दिन और रात्रि का प्रमाण है, जब सूर्य नक्षत्र चक्र के ऊर्ध्व की ओर उदय होता है, जब दिन बड़े होते हैं, जब अधः की ओर उदय होता है, तब दिन छोटे हो जाते हैं, ज्यों ज्यों सूर्य क्रम से ऊर्ध्व की ओर उदय होता है तब दिन बड़े होते हैं, जब अधः की ओर उदय होता है तब दिन छोटे हो जाते हैं, ज्यों ज्यों सूर्य क्रम से ऊर्ध्व से अधः की ओर उदय होता है, त्यों त्यों दिन छोटे हो जाते हैं, रात्रि बढ़ती जाती है, फिर षट्मास के बाद आषाढ़ की द्वादशी से लेकर पौष त्रयोदशी पर्यन्त रात्रि बढ़ती जाती है फिर रात्रि घटती है दिन बढ़ता जाता है, जब सूर्य मध्य चक्र में उदय होता है तब दिन और रात समान हो जाते हैं, वह क्या है, संवेदन रूप ब्रह्मा का संकल्प विलास है, जैसे शिल्पी शिला में पुतलियों की कल्पना करता है, और चेष्टा करता है, परन्तु बना कुछ नहीं, शिला ही अपने घन स्वभाव में स्थित होती है, ऐसे चित्त रूपी शिल्पी आत्मरूप शिला में जगत् रूप पुतलियों की कल्पना करता है, परन्तु कुछ बना नहीं, ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है, जब संवेदन चेतती है, जब रूप देखने की इच्छा होती है, तब चक्षु इन्द्रिय बन जाती है, वह रूप को ग्रहण करती है, जब स्पर्श की इच्छा होती है, तब त्वक् इन्द्रिय बन जाती है, वह स्पर्श को ग्रहण करती है, जब गंध की इच्छा होती है तब घ्राण इन्द्रिय बन कर गन्ध को ग्रहण करती है, जब शब्द सुनने की इच्छा होती है तब श्रवणेन्द्रिय बन जाती है, वह शब्द विषय को ग्रहण करती है, जब रस की इच्छा हुई तब रसना इन्द्रिय प्रकट होकर स्वाद को ग्रहण करती है जब अपने में वायु विषय में चेतती है, तब अपने साथ वायु को देखती है, उस वायु में प्राण फुरते

देखती है–हे रामजी! देखना सुनना रस लेना स्पर्श करना, बोलना गंध लेना जहां जहां इन्द्रिय विषयों को ग्रहण करते हैं वह देश है और जिस विषय को ग्रहण करने लगी हैं वह पदार्थ है और जिस समय ग्रहण करने लगी हैं वह काल है, इस प्रकार देश काल पदार्थ हुए हैं, फिर यह शुभ है यह अशुभ है, इस क्रम से कर्म भासने लगे, हे रामजी! इस प्रकार संवेदन ने फुरकर जगत् को रचा है, शरीर को रचकर इष्ट अनिष्ट को ग्रहण करती है, यदि तुम कहो कि इन्द्रिय तो भिन्न भिन्न हैं, और अपने अपने विषय को ग्रहण करती है, सब इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट इस जीव को कैसे होते हैं तो इसका दृष्टान्त सुनो, हे रामजी! जैसे तन्तु एक होता है और मन के बहुत होते हैं, उन सबका आश्रय सूत्र होता है, ऐसे अहंकाररूप सूत्र है, इन्द्रियरूप मनके हैं, इस कारण से जीव अहंकार से इन्द्रियों के सुख के साथ सुखी होता है और इन्द्रियों के दुःख के साथ दुःखी होता है, और इन्द्रिय स्वयं ही कार्य करने की समर्थ नहीं होती, अहंकार जीव की सत्ता से चेष्टा करती है, जैसे शंख को स्वयं बजने की सामर्थ्य नहीं, जब पुरुष बजाता है, आप शब्द करता है तब शंख बजता है, ऐसे इन्द्रियों की चेष्टा अहंकार और जीव से होती है, हे रामजी! वास्तव से न कोई इंद्रिय हैं न इनके विषय हैं, न मनका फुरना है सब आभास मात्र है जब संवेदन फुरती है, तब इतनी संज्ञाओं को धारण करती है, जब संवेदन निर्वाण होती है, तब सब कल्पना मिट जाती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जीवसंसारवर्णनं नाम नवत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२९०॥

एकनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९१

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह संपूर्ण कल्पना का क्रम मैंने तुझको कहा है, जितना जगत् देखा जाता है, संवेदनरूप है, शुद्धचिन्मात्र सत्ता का जो आदि आभास चेतनता का लक्षण चित्त "अहं अस्मि" उसका नाम संवेदन है, उसके इतने पर्याय हुए हैं, कई ब्रह्मा कहते हैं, कई विष्णु कहते हैं, कई प्रजापति कहते हैं, कई शिव कहते हैं, इत्यादि पर्याय हुए हैं। उस संवेदन ने आगे संकल्प फुरने पर विश्व को रचा है, वह कैसा विश्व है कि अकारण है, किसी कारण से नहीं बना, काकतालीयवत् अकस्मात् आभास फुरा है, आकार सहित दृष्टि आता है, परन्तु अन्तवाहक है, व्यवहारसहित दृष्टि आता है, परन्तु अव्यवहार है, हे रामजी! संवेदन जो अन्तवाहकरूप है, उसने आगे विश्वरचा है, वह भी अन्तवाहक रूप है परन्तु अज्ञानी को संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक रूप हो भासती है, जैसे संकल्प नगर और स्वप्नपुर और संकल्प से इतर कुछ नहीं, संकल्प की दृढ़ता से साकाररूप नदियाँ घटपट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, परन्तु बने तो कुछ नहीं शून्यरूप हैं, ऐसे यह जगत् निराकार शून्यरूप है, हे रामजी! आदिजो अन्तवाहक रूपसंवेदन का स्फुरण हुआ है वह बहिर्मुख फुरने से देशकाल पदार्थरूप होकर स्थित है जब बहिर्मुख फुरना मिट जाता है तब जगत् आभास भी मिट जाता है, जैसे आभास जगत् जब तक भासता है, जब तक निद्रा में सोया होता है, जब जगता है, तब स्वप्न जगत् मिट जाता है, एक अद्वैतरूप अपना आपही भासता है, ऐसे यह जगत् अज्ञान के निवृत्त हुए लीन हो जाता है, सब जगत् निराकार है, संकल्प की दृढ़ता से आकार भासते हैं, हे रामजी! संवेदन में जो संकल्प फुरता है वही अन्तःकरण चतुष्टय होकर भासता है, पदार्थ के चेतने से इसका नाम चित्त होता है, संकल्प विकल्प के संसरण से इसका नाम मन

होता है, और ज्यों का त्यों निश्चय करने से इसका नाम बुद्धि होता है, वासना के समूह मिलने से पुर्यष्टका कहाता है, वह सब संकल्पमात्र है, उसमें जगत् उत्पन्न हुआ, वह भी संकल्परूप है, जैसे इन्द्रजाल और स्वप्न नगर संकल्प की दृढ़ता से पिंडाकार भासता है, परन्तु सब आकाशरूप हैं, ऐसे यह जगत् आकाशरूप है, आत्मा से इतर कुछ है नहीं, और यदि तुम कहो कि भासता क्यों है, तो जिसमें भासता है उसे बही रूप जानो, और देशकाल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य और ब्रह्माऽदि कीट पर्यन्त जो स्थावर जंगमरूप जगत् भासता है, वह सब ब्रह्मरूप है, वही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदन से जगत्रूप हो भासती है, जैसे स्वप्न में अपना ही अनुभव सृष्टिरूप भासता है ऐसे अपना ही अनुभव यह जगत्रूप हो भासता है, इसलिये सब ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्र द्रवता से तरंग हो भासता है, और जल ही जल है, ऐसे शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से जगत् आभास फुरता है वह ब्रह्म ही ब्रह्म है, इतर कुछ नहीं, हे रामजी! जो कुछ तुझको भासता है, सब अच्युत अनन्तरूप अपने आपमें स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे सर्व ब्रह्मप्रतिपादनं नामैक नवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२९१॥

द्विनवत्यधिक द्विशततमः सर्गः २९२

विद्यावादबोधोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब दृष्टा रूप को चेतता है तब विश्व होता है, वह विश्व सब अन्तवाहकरूप हैं,अन्तवाहक संकल्परूप निराकार जब दृश्य में अहंभाव से चेतना रहता है, तब अंतवाहक से आधिभौतिक शरीर हो जाता है, आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुरता है, वह अन्तवाहक शरीर हुआ है, जब बार बार अपने शरीर को देखता है तब वह भी

चतुर्मुख आधिभौतिक हो गया है, ओंकार का उच्चारण करके वेद और वेद के क्रम को रचा और संकल्प से विश्व को रचा, जैसे कोई बालक मनोराज्य से बगीचा रचे, उसमें नाना प्रकार के वृक्ष और फूल फल शाखाएँ पत्र रचे, ऐसे ब्रह्माजी ने रचना की, अन्तवाहक जीव उत्पन्न किये, जब जीव को शरीर को शरीर में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अन्तवाहक से आधिभौतिक हो गये, रामजी बोले–हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता जो निराकार थी, उसको शरीर का संयोग कैसे हुआ उससे आधिभौतिकता कैसे हो गयी, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! न कोई शरीर है न किसी को शरीर का संयोग है, केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है उसमें चेतन संवेदन स्फुरन हुआ है, वह संवदेन दृश्य को चेतती रहती है, वही जगत्रूप होकर स्थित हुई है, जब संकल्प की दृढ़ता हो गई तब अपने साथ शरीर भासने लगा और अपर आकार भासने लगे वह आकार कैसे हैं, आकाश रूप ही हैं कुछ बने नहीं, जैसे स्वप्न सृष्टि को उत्पन्न हुई कहें तो उत्पन्न कुछ नहीं हुई, और उसका कारण भी कोई नहीं केवल आकाशरूप है, कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ, परन्तु स्वरूप के विस्मरण से आकार भासते हैं, ऐसे यह शरीर और जगत् भासता है, वह केवल आभासमात्र है, असंभावना की दृढ़ता से प्रत्यक्ष भासता है, जब स्वरूप का विचार कर देखेगा तो शान्त हो जायेगा, हे रामजी! अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं, जैसे स्वप्न का पदार्थ अविद्यमान होता है और विद्यमान भासता है जब जगता है तब अविद्यमान हो जाता है, ऐसे यह जगत् अविचार सिद्ध है विचार करने पर शांत हो जाता है जब विचारकर देखेगा, तो सर्वात्मा ही भासेगा, हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है, अर्थ यह कि जो सत्तामात्र है इसका अभाव कदाचित् नहीं होता और अच्युत है सदा ज्यों की त्यों है, अपने भाव को कदाचित् नहीं त्यागती, इससे इतर भासे उसे भ्रममात्र जानिये, हे रामजी! विचार से जब दृश्य भ्रम शान्त होता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है, आत्मसत्ता ज्ञान स्वरूप है और निराकार है, सदा अपने आपमें स्थित है, जब सम्यग् ज्ञान का बोध

होता है, तब जगत् भ्रम नष्ट होता है, रामजी बोले–हे मुनीश्वर! सम्यग् ज्ञान किसको कहते हैं और बोध किसको कहते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! केवल जो बोधमात्र है, वह बोध कहाता है, उसको यथावत् जान लेने का नाम सम्यक्ज्ञान है, राम बोले–हे भगवन्! केवल बोध किसको कहते हैं और केवल ज्ञान किसको कहते हैं? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! चैत्य (दृश्य) से रहित चिन्मात्र को तुम बोध जानो, उसमें वाणी की गति नहीं, इसी प्रकार अचेत्य चिन्मात्र सत्ता को यथावत् जानना ही ज्ञान है, हे भगवन्! केवल बोध अचेत चिन्मात्र है तो चैत्य जो है दृश्य जगद्भ्रम से उसमें क्या भासता है, वसष्ठिजी बोले–हे रामजी! चिन्मात्र जो दृष्टारूप है, उसमें जो संवेदन है जानना वही चेतता कही जाती है, जब चेतता फुरती है, तब वही चेतता चैत्यरूप दृश्य हो भासती है, जैसे स्पंद से रहित वायु निर्लक्षण रूप होती है और जब फुरती है स्पंदरूप होती है, तब स्पर्श से भासती है, ऐसे संवेदन से दृश्य भासती है तो वही संवेदन दृश्य हो भासती है, रामजी बोले–हे भगवन्! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासता है तो दृश्य बाह्य क्यों भासता है? वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! इसी कारण से भ्रम कहा है कि अपने अन्दर और बाह्य भासती है, जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने ही अन्दर होती है, वास्तव से अन्दर है न बाहिर है आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, ऐसे अब भी यथावत् (ज्यों की त्यों) स्थित है, अंतर और बाह्य भ्रम से भासती है, रामज़ी बोले–हे भगवन्! अगर आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और दृश्य का भ्रम से भान होता है तो शशे के श्रृंग भी भ्रममात्र हैं वह क्यों नही भासते अहं और त्वं क्यों भासते हैं? भूत की चेष्टा प्रत्यक्ष भासती है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अहं त्वं आदिक जगत् भी कल्पनामात्र है, जैसे शशे के श्रृंग कल्पनामात्र हैं जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है, ऐसे यह जगत् भी भ्रममात्र है, जैसे मृग तृष्णा का जल और संकल्प नगर भ्रममात्र हैं ऐसे यह जगत् भ्रममात्र है, किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ, जैसे स्वप्न में शश के श्रृंग नहीं भासते, अपर जगत् भासता है, ऐसे यह

भ्रम है, रामजी बोले—हे मुनीश्वर! भूत भविष्य वर्तमान इन तीनों कालों में जगत् स्मृति अनुभव से जानता है और कारण कार्यभाव को पाता है फिर आप भ्रममात्र कैसे कहते हैं? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! मैं कहता हूं कि कारण से कार्य होता है वह तो सत् होता, तो तुम कहो कि जगत् का कारण क्या है? जैसे बीज से बट होता है ऐसे इसका कारण कौन है, रामजी बोले—हे भगवन्! जगत् सूक्ष्म अणु से उत्पन्न होता है, और लीन भी तत्व के अणु में होता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! सूक्ष्म अणु किसमें रहते हैं? रामजी बोले—हे मुनीश्वर! महाप्रलय में शुद्ध चिन्मात्र सत्ता शेष रहती है, उसमें अणु रहते हैं, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! महाप्रलय किसे कहते हैं? जहां सर्वशब्द अर्थ का अभाव है उसका नाम महाप्रलय है, वहां शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है, उसमें वाणी की गति नहीं तो सूक्ष्म अणु कैसे हो और कारण कार्यभाव कैसे हो, रामजी बोले—हे मुनिवर! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है, उसमें जगत् कैसे निकल आता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! विश्व की उत्पत्ति हुई तो तब तो मैं कहूं कि इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति होती है, जगत् उत्पन्न नहीं तो इसकी उत्पत्ति कैसे कहूं, जब चिन्मात्र में चैत्यता फुरती है तब जगत् अहं त्वं आदिक भासता है, वह स्फुरण रूप ही है अपर कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, वही रूप है, हे रामजी! ज्ञानका दृश्य भ्रमके साथ मिलाप है, वह बंधन का कारण है, उसका अभाव होना मोक्ष है, राम बोले—हे भगवन्! ज्ञान होने पर जगत् का अभाव कैसे होता है, यह जो दृढ़ हो रहा है, इसकी शांति कैसे होती है? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! सम्यक्ज्ञान से जो बोध होता है, उस बोध से दृश्य का सम्बन्ध निवृत्त होता है, वह बोध कैसा है निराकार निज शीतलरूप है, उससे मोक्ष में प्रवृत्त होता है, रामजी बोले—हे भगवन्! बोध तो केवल रूप हैं, सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं, जिससे यह जीव बन्धन से मुक्त होता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस ज्ञान से ज्ञेय दृश्य का संयोग नहीं उसको केवल ज्ञानी अविनाशी रूप कहते हैं, जब ज्ञेय का अभाव होता है

तब सम्यक्ज्ञान कहाता है, जगत् ज्ञेय अविचार सिद्ध है, राम बोले–हे भगवन्! ज्ञान से ज्ञेय भिन्न है अथवा अभिन्न है और ज्ञान उत्पत्ति का कारण कैसे होता है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! बोधमात्र का नाम ज्ञान है, उससे ज्ञानज्ञेय भिन्न नहीं, जैसे वायु से वायु का फुरना भिन्न नहीं, रामजी बोले–हे त्रिकालज्ञ! भूत भविष्य वर्तमान के जाननेवाले! यदि शश श्रृंग के समान ज्ञेय असत् है तो भिन्न होकर क्यों भासते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रान्ति से भासता है, उसका सद्भाव नहीं, न अन्तर जगत् है न बाहर है जगत् अर्थ से रहित भासता है, रामजी बोले–हे भगवन्! अहं त्वं आदिक प्रत्यक्ष भासते हैं, अर्थसहित अनुभव होता है, तुम कैसे अभाव कहते हो, वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! यह सर्वजगत् विराट् पुरुष का वपु है, आदि विराट् भी उत्पन्न नहीं हुआ, तो अन्य की उत्पत्ति कैसे कहें, रामजी बोले–मुनिवर! तीनों कालों में जगत् का सद्भाव पाया जाता है, तुम कहते हो उत्पन्न नहीं हुआ, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे स्वप्न में सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं उत्पन्न कुछ नहीं हुआ, जैसे मृगतृष्णा का जल, आकाश में दूसरा चन्द्रमा, संकल्पनगर, भ्रम से भासते हैं, ऐसे अहं त्वं आदिक जगत् भ्रम से भासता है, रामजी बोले–हे भगवन्! अहं त्वं आदिक जगत् दृढ़ भासता है, तो कैसे समझें कि उत्पन्न नहीं हुआ, वसिष्ठ महर्षि बोले–हे रामजी! पदार्थ कारण से उत्पन्न हुआ है, वह निश्चय से सत्य जाना जाता है, जब महाप्रलय होती है, तब कारण कार्य कुछ नहीं रहता, सब शान्तरूप होता है, फिर उस समय महाप्रलय से जगत् फुर आता है, इससे जाना जाता है कि सब आभासमात्र है, रामजी बोले–हे मुनिवर! जब महाप्रलय होता है, तब अज अविनाशी सत्ता शेष रहती है, उससे जाना जाता है कि वही जगत् का कारण है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे कारण होता है ऐसा ही उसका कार्य होता है, उससे विपर्यय नहीं होता, जो आत्मसत्ता अद्वैत आकाशरूप है, तो जगत् भी वही रूप है, घट से पट की नाईं आपको कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, राम बोले–हे भगवन्!

जब महाप्रलय होता है, तब जगत् सूक्ष्म रूप होकर स्थित होता है, उससे फिर प्रवृत्ति होती है। वसिष्ठजी बोले–हे निष्पाप रामजी! महाप्रलय में सृष्टि का तुमने अनुभव किया उसका क्या रूप होता है, रामजी बोले–हे भगवन्! ज्ञप्तिरूप सत्ता ही वहां स्थित होती है, तुम्हारे जैसों ने अनुभव किया है वह आकाशरूप है सत् और असत् शब्द से नहीं कही जाती, वसिष्ठजी बोले–हे राम! यदि ऐसा हुआ जो भी जगत् ज्ञप्तिरूप हुआ क्यों? इसलिये जन्म मरण से रहित शुद्ध ज्ञानरूप है, रामजी बोले–हे भगवन्! आपने कहा है कि जगत् उत्पन्न नहीं हुआ भ्रममात्र है, वह भ्रम कहां से आया? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से भासता है, जैसे जैसे चित्त फुरना करता है ऐसे ऐसे भासता है, इसका अपर कारण कोई नहीं, रामजी बोले–हे भगवन्! चित्त के फुरने से जगत् भासता है तो परस्पर विरुद्ध क्यों भासता है, अग्नि को जल नष्ट करता है जल को अग्नि नष्ट नहीं करती है, वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! द्रष्टारूप दृष्टि भाव को नहीं प्राप्त होता और ऐसी वस्तु कुछ वस्तु नहीं, भानरूप आत्मा ही चेतन घन सर्वरूप हो भासता है, रामजी बोले–हे भगवन्! चिन्मात्र तत्व आदि अन्त से रहित है, जब जगत् को चेतता है तब होता है, तो भी कुछ हुआ, क्योंकि जगत् चैतन्य का असंभव कैसे कहें, वसिष्ठ महर्षि बोले–हे रामजी! इसका कारण कोई नहीं इसलिये चैत्य का असंभव है, चेतन सदा मुक्त और अवाच्य पद है, रामजी बोले–हे भगवन्! इस प्रकार है तो जगत् का और तत्व का फुरना कैसे होता है, अहं, त्वं आदिक द्वैत कहां से आया है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! कारण के अभाव से यह जगत् आदि से उत्पन्न नहीं हुआ, सर्व शान्तरूप है और नाना भासता है, वह भ्रम मात्र है, रामजी बोले–हे भगवन्! प्रकाश रूप सर्वदा जो निर्मल तत्व है वह निरुल्लेख अचल रूप है, उसमें भ्रांति कैसे है और किसको है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! कारण के अभाव से निश्चित जानो कि भ्रान्ति कुछ वस्तु नहीं अहं त्वं आदि के सब एक अनामय सत्ता स्थित है, राम बोले–हे भगवन्!

मैं भ्रम की नाईं प्राप्त हुआ हूं, इससे अधिक पूछना नहीं जानता और अत्यन्त प्रबुद्ध भी नहीं, अब क्या पूछूँ, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह प्रश्न करो कि कारण बिना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ, जब विचार कर कारण का अभाव जानेगा तब परम स्वभाव अशब्द पद में विश्रांति पायेगा, रामजी बोले—हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि कारण के अभाव से जगत् उत्पन्न नहीं हुआ, परन्तु चैत्य का स्फुरण भ्रम कैसे हुआ, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! कारण के अभाव से सर्वत्र शांति रूप है, भ्रम भी कुछ अपर वस्तु नहीं, जब तक आत्मपद में अभ्यास नहीं तब तक भ्रम भासता है और शांति नहीं प्राप्त होती, अभ्यास करके केवल तत्व में विश्रांति प्राप्त करेगा, तब भ्रम मिट जायेगा, रामजी बोले—हे भगवन्! अभ्यास कैसे होता है और अनभ्यास कैसे होता है, एक अद्वैत में अभ्यास अनभ्यास कैसे भ्रांति होती है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! अनन्त तत्व में शांति भी कुछ नहीं, जो आभास शांति भासता है, वह महाचिद्धन अविनाशीरूप है; रामजी बोले—हे मुनीश्वर! उपदेश और उपदेश के अधिकारी यह जो भिन्न भिन्न शब्द हैं, सर्वात्मा कैसे भासते हैं? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! उपदेश और उपदेश के योग्य यह शब्द भी ब्रह्म में स्थित हैं, शुद्ध बोध में बधमोक्ष दोनों का अभाव है, रामजी बोले—हे भगवन्! जब आदि उत्पत्ति कुछ हुई नहीं तो देशकाल क्रिया द्रव्य इनके भेद कैसे भासते हैं? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! देशकाल क्रिया द्रव्य यह जो भेद हैं, संवेदन दृश्य में हैं अज्ञान मात्र भासते हैं, अज्ञान मात्र से इतर कुछ नहीं, रामजी बोले—हे भगवन्! बोध को दृश्य की प्राप्ति कैसे हुई, जहां द्वैत एकता कारण का अभाव है, वहां दृश्य भ्रम कैसे है! वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! बोध को दृश्य प्राप्ति और द्वैत एक का भ्रम मूर्ख का विषय है, हमारे जैसों का विषय नहीं, रामजी बोले—हे भगवन्! जो अन्ततत्व केवल बोधरूप हैं, तो अहं त्वं हमारे में कैसे होता है, वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शुद्ध बोधसत्ता में जो बोध का जानना है, वह अहं त्वं से कहाता है, जैसे पवन में फुरना है ऐसे उसमें चेतता फुरती

है, राम बोले–हे भगवन्! जैसे निर्मल अचल समुद्र में तरंग बुद्बुदे होते हैं, वे जल से इतर कुछ नहीं, ऐसे बोध में बोधसत्ता से इतर कुछ नहीं, अपने आपमें स्थित हैं और पूर्ण हैं, रामजी बोले–हे भगवन्! यदि एक है तो अहं त्व आदिक कलना कहां से आई हैं, भोक्ता की नाईं भोक्ता है, जो निर्मल है, तो यह कैसे दृढ़ता हुई है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ज्ञेय जो है दृश्यसत्ता, उसका जानना, उसको बन्धन नहीं, क्योंकि ज्ञान ही सर्व अर्थ रूप होकर स्थित हुआ तो बन्ध और मोक्ष किसको हो? रामजी बोले–हे भगवन्! ज्ञप्ति जो बाह्य अर्थ को देखती है, जैसे आकाश में नीलता और स्वप्न में पदार्थ असत् रूप सत् हो भासते हैं, ऐसे यह बाह्य अर्थ असत्हीन सत् हो भासते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! कारण से रहित जो बाह्य अर्थ सत् भी भासते हैं, वह भ्रम मात्र हैं, इतर कुछ नहीं। रामजी बोले–हे भगवन्! स्वप्न काल में स्वप्न के पदार्थ का दुःख होता है। सत् हो अथवा असत् हो, ऐसे यह जगत् में सत् असत् का दुःख होता है, परन्तु इसकी निवृत्ति का उपाय कहो। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो इस प्रकार है, जगत् स्वप्न की नाईं, तो जो कुछ पिंडाकार भासता है, सब भ्रम मात्र से भासता है, सर्व अर्थ शान्तरूप है, नानात्व कुछ नहीं, राम बोले–हे भगवन्! स्वप्न और जाग्रत में पिंडाकार पर अपर रूप कैसे उत्पन्न होता है और कैसे शांत होता है? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी? पूर्व अपर का विचार करें, यह जगत् आदि में क्या रूप था और अन्त में क्या रूप होता है, जब ऐसे विचार होगा, तब शान्ति हो जायेगी, जैसे स्वप्न में स्थूल पदार्थ पिंडरूप भासते हैं, वे सब आकाशरूप हैं, ऐसे जाग्रत पदार्थ भी आकाशरूप हैं, राम बोले–हे भगवन्! भिन्न भाव की भावना प्राप्त होती है, तब जगत् को कैसे देखता है और संस्कार कुहिड़ भ्रम कैसे शान्त होता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो निर्वासनिक पुरुष हैं, उनको जगत् का भाव सदैव उठ जाता है, जैसे संकल्प नगर जैसे कागज की मूर्तियां यह असत् भासते हैं, ऐसे उसको जगत् असत् भासता है, राम बोले–हे भगवन्! वासना से रहित पिंडभाव शान्त हुए जगत् को स्वप्नवत् जानता

है, उसके बाद क्या अवस्था होती है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जगत् को जब संकल्परूप जानता है, तब वासना निर्वाण होती है, पंचतत्व का क्रम उत्पन्न होना, नष्ट होना लीन हो जाता है, परमतत्व भासता है, सब आकाशरूप हो जाता है, रामजी बोले–हे भगवन्! जो वासना अनेक जन्मों से दृढ़ हो रही है और अनेक शाखाओं से फैली हुई है, यही घोर वासना संसार का कारण है, किस प्रकार शान्त हो सकती है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इसको यथा भूत अर्थज्ञान होता है, तब भ्रान्तिरूप से स्थित हुआ जगत् आत्मा में शान्त हो जाता है, जब पिंडाकार अर्थ पदार्थ हो जाता है, तब कर्म रूप दृश्यचक्र शान्त हो जाता है, जैसे स्वप्न पदार्थ जाग्रत् में नष्ट हो जाता है, ऐसे आत्मतत्व के बोध से सब वासना नष्ट हो जाती है, रामजी बोले–हे मुनिवर! जब पिंडग्रहण निवृत्त हुआ और कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब फिर क्या प्राप्त होता है, वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! जब पिंडग्रहण भ्रम शान्त होता है तब संकुचन और क्षोभ से रहित हो जाता है, दृश्य की जगत् आस्था शान्त हो जाती है और चित्त परमात्मतत्व को प्राप्त होता है, रामजी ने कहा–हे भगवन्! यह बालक के संकल्पवत् कैसे स्थित है, संकल्परूप है तो पदार्थों के नाश हुए इसको दुःख क्यों होता है, इस जगत् की आस्था शान्त कैसे होती है? वसिष्ठजी ने कहा–हे राम! जो पदार्थ संकल्प से उत्पन्न हुआ है, उसके नाश से दुःख नहीं होता। यदि पूर्व अपर विचार करके चित्त से रचा जान लिया जाय तो भ्रम शांत हो जाता है, रामजी बोले–हे भगवन्! चित्त कैसा है, उसने रचा कैसे? विचार किया जाये। मुनि बोले हे राम! चित्त सत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है, उसको संकल्परूप चित्त कहते हैं, उससे रहित विचारने से वासना शान्त हो जाती है, रामजी बोले–हे मुनीश्वर! चैत्य से रहित चित्त कैसे होता है और चित्त से उदय हुआ चैत्य जगत् निर्वाण कैसे होता है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! चित्त उत्पन्न नहीं हुआ, अनहोता द्वैत भासता है, कुछ है नहीं

राम बोले–हे भगवन्! जगत् प्रत्यक्ष भासता यदि उत्पन्न नहीं हुआ तो इसका अनुभव कैसे होता है? मुनीश्वर बोले–हे रामजी! अज्ञानी को जैसे जगत् भासता है, वह सत् नहीं और जो ज्ञानवान् को भासता है, वह अवाच्य सत्ता अद्वैतरूप है, रामजी बोले–हे भगवन्! अज्ञानी को तीनों जगत् कैसे भासते हैं, यदि सत् नहीं तो ज्ञानवान् को कैसे भासते हैं जो कि कहने में नहीं आता, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! अज्ञानी को द्वैत सघन दृढ़ भासता है, ज्ञानवान् को सघन द्वैत नहीं भासता, क्योंकि आदि में तो उत्पन्न नहीं हुआ। अद्वैत आत्मतत्व अवाच्य भासता है, रामजी बोले–हे भगवन्! जो आदि से उत्पन्न नहीं हुआ हो अनुभव भी न हो, यह तो अनुभव प्रत्यक्ष होता है, असत् कैसे कहा जाये? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! असत् ही सत् की नाईं हो भासता है, यह कारण से रहित भासता है, जैसे स्वप्न में पदार्थ का अनुभव होता है, परन्तु वास्तव से कुछ नहीं, ऐसे यह असत् ही अनुभव होता है, रामजी बोले–हे भगवन्! जैसे स्वप्न में असंकल्प में जो दृश्य का अनुभव होता है, वह जाग्रत के संस्कार से होता है, अपर कुछ नहीं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! स्वप्न और संकल्प उसके संस्कार से होते हैं, वह जाग्रत के संस्कार कैसे होते हैं, वही रूप अथवा जाग्रत से अन्य हैं, रामजी ने कहा–हे भगवन्! स्वप्न के पदार्थ और मनोराज्य जाग्रत के संस्कार से जाग्रत की नाईं भासते हैं, वे भ्रम से भासते हैं, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो स्वप्न में जाग्रत के संस्कार से जगत् जाग्रत की नाईं भासता है, जो स्वप्न में किसी का घर लुट गया अथवा जल के प्रवाह में बह गया, तो जाग्रत में तो कुछ हुआ नहीं, प्रातःकाल उठकर देखता है तब ज्यों का त्यों भासता है, तो संस्कार भी कुछ न हुआ, सब कल्पना मात्र जानना, रामजी बोले–हे भगवन्! अब मैंने जाना है कि यह सब ब्रह्म ही है। न कोई देह है, न जगत् है, न उदय है, न अस्त है, सर्वदा सर्वप्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। इससे इतर जो कुछ भासता है, सब भ्रम मात्र है और भ्रम भी कुछ वस्तु नहीं, सब चिदाकाश ब्रह्मरूप है। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो कुछ

भासता है, सब ब्रह्म ही का प्रकाश है, वही अपने आप में प्रकाशित हो रहा है। राम बोले–हे भगवन्! सर्ग के आदि में देह चित्तादिक कैसे फुर आये हैं और कैसे आत्मा प्रकाशरूप जगत् है, प्रकाश भी उसका होता है, जो साकार होता है, ब्रह्म तो निराकार है, दीप का दिवत् आकार से रहित है, उसका प्रकाश कैसे कहें? वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! सब ब्रह्मरूप है, प्रकाश और प्रकाशक का भेद भी कुछ नहीं, दूसरी वस्तु भी कुछ नहीं, वही अपने आप में स्थित है, इसीलिये स्व प्रकाश कहा गया है, सूर्य आदि का प्रकाश त्रिपुटी से भासता है, वह भी इसके आश्रय से प्रकाशित होता है, उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है, उसके आश्रित होकर सूर्य जगत् को प्रकाशित करता है और आत्मसत्ता अद्वैत सत्ता है, विज्ञान घन है, उसमें चित्त संवेदन स्फुरण हुआ है, वही जगत् रूप होकर स्थित हुई है। आत्मसत्ता और जगत् में भेद कुछ नहीं, इस प्रकार एक की नाईं स्थित हुआ है, हे रामजी! निराकार स्वप्नवत् साकार रूप हो भासता है, हे रामजी! इस जगत् के आदि में अद्वैत चिन्मात्र सत्ता थी, उसी से नानारूप जगत् दृष्टि आया तो वही रूप हुआ, क्योंकि अपर कारण तो कोई है नहीं, जैसे स्वप्न के आदि में अद्वैत सत्ता निराकार है, उसको सूर्यादिक पदार्थ भास आते हैं, वे भी वही रूप हुए, क्योंकि प्रकट भासते भी हैं, ऐसे यह जगत् भी अकारण और निराकार जानिये, हे रामजी! न कोई जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, सब आभास मात्र है, यही आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, हमको तो वही सदा विज्ञान घन आत्मसत्ता भासती है, जैसे दर्पण में अपना मुख भासता है, ऐसे हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रांतिरूप जगत् भासता है, जैसे वृक्ष के कुंड में पुरुष भासता है, दूर से भ्रान्ति के कारण ही ऐसा होता है, ऐसे ही अज्ञानी को जगत् भासता है, हे रामजी! न कोई द्रष्टा है, न दृश्य है, द्रष्टा तब कहें जो दृश्य हो तब और दृश्य तब कहें जो द्रष्टा हो, यदि दृश्य नहीं तो द्रष्टा किसका और यदि द्रष्टा ही नहीं तो दृश्य किसका, इसलिये निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने

आप में स्थित है, आकार भी भासते हैं तो भी निराकार है, आत्मसत्ता ही संवेदन से आकार रूप हो भासती है, जैसे स्तंभ से चितेरा पुतलियों की कल्पना करता है कि इतनी पुतलियां स्तंभ में है, तो उसको बिना निकाले ही प्रत्यक्ष भासती है, ऐसे ही निकाले बिना ब्रह्मरूप स्तंभ में मनरूप चितेरा यह पुतलियाँ देखता हैं, वहां हुआ कुछ नहीं, हे रामजी! इन मेरे वचनों को तुम स्वप्न और संकल्प के दृष्टान्त से देखो कि अनुभव रूप ही आकार हो भासता है। अनुभव से इतर कुछ नहीं, इस मेरे वचन रूप उपदेश को हृदय में धारण करो और अज्ञानी के वचन को बाल के समान त्यागो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विद्यावादबोधोपदेशो नाम द्विनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ।।२९२।।

त्रिनवत्यधिक द्विशततमः सर्गः २९३

रामविश्रान्तिवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि हमने अज्ञान से जगत् को देखा, जगत् तो कुछ वस्तु नहीं, सब ब्रह्म ही है और अपने आप में स्थित है। जगत् भ्रम से भासता है। अब मैंने जाना है कि जगत् भ्रम मात्र था। वास्तव में न यह पहिले था, न होता है, न आगे होगा। सर्व शान्त निरालंब विज्ञान घन सत्ता है और भ्रांति भी कुछ वस्तु नहीं, ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है, वह कैसा है, निर्विकार है, शान्तरूप है, जैसे सर्ग के आदि और परलोक के आदि और स्वप्न के आदि आदि स्थानों में अद्वैत चिन्मात्र सत्ता होती है, उसकी आभास संवेदन स्पंद फुरती है, तब अनेक पदार्थों सहित जगत् भास आता है, वह अनुभव रूप होता है, इतर कुछ वस्तु नहीं, ऐसे यह जगत् अनुभवरूप है, हे प्रभो! अब मैंने आपकी कृपा से ऐसे निश्चय किया है कि जगत् अविचार सिद्ध है, विचार करने से निवृत्त हो जाता है, जैसे शश श्रृंग और आकाश पुष्प असत् होते हैं, ऐसे

यह जगत् असत् है, बड़ा आश्चर्य है कि असत् रूप अविद्या ने मोहित किया था, अब मैंने जाना है कि अविद्या कुछ वस्तु नहीं, अपनी कल्पना ही अपना बन्धन है, जैसे अपनी छाया में बालक भूत की कल्पना करता है और आप ही डरता है, ऐसे अपनी कल्पना ही अविद्या रूप भासती है, जब तक विचार प्राप्त नहीं हुआ, तब तक भासती है, विचार करने से अविद्या का अत्यन्त अभाव हो जाता है, जैसे जेवरी में सर्प भासता है, जेवरी जानने से सर्प का अत्यन्ताऽभाव हो जाता है, जैसे स्थानु में भ्रम से पुरुष भासता है, ऐसे आत्मा में अविद्यारूप जगत् भ्रम से भासता है, जैसे आकाश के फूल और शशश्रृंग कुछ वस्तु नहीं, ऐसे अविद्या भी कुछ नहीं, जैसे वन्ध्या का पुत्र भासे, तो भी भ्रममात्र जानता है, जैसे स्वप्न में अपने मरने का अनुभव हो तो भ्रममात्र है, ऐसे अविद्यारूप जगत् भासता है, तो भी असत् है, प्रमाणरूप नहीं, प्रमाणरूप कहें कि यथार्थ ज्ञान का साधक हो, यह जो प्रत्यक्ष प्रमाण है, यथार्थ करता नहीं, क्योंकि जो वस्तुरूप वह आत्मा है, ज्यों की त्यों नहीं भासती। विपर्यय जगत्रूप भासता है, सीपी में रौप्यवत्, इसलिये यह प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है, तो भी असत्रूप है, प्रमाण कैसे जानना, हे भगवन्! यह जगत् अपर कुछ वस्तु नहीं, केवल कल्पना मात्र है, जैसे जैसे आत्मा में संकल्प दृढ़ होता है, ऐसे ऐसे जगत् भासता है और जो कोई पुरुष स्वर्ग में बैठा हो, उसके हृदय में कोई चिन्ता उत्पन्न हो तो उसको स्वर्ग भी नरकरूप हो जाता है, क्योंकि भावना नरक की हो जाती है, हे भगवन्! यह जगत् केवल वासना मात्र है, आत्मा में जगत् कुछ आरंभ परिणाम करके बना नहीं, यह जगत् चित्त में है, जैसे पत्थर की शिला में शिल्पी पुतलियों की कल्पना करता है, जैसी कल्पना करता है, ऐसी ही भासती है, शिला से इतर कुछ नहीं, ऐसे आत्मा में चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं, जैसे भावना करता है, ऐसे यह भासता है और आत्मा में न जगत् हुआ है, न होगा। केवल अपने आप में आत्मसत्ता स्थित है, स्वच्छ है, अद्वैत है और परम मौनरूप है, कल्पनातीत है, परम मुनीश्वरों के सेवन योग्य है, ऐसा पद मैंने प्राप्त किया है, स्वस्थ हूं, सर्व दुःखों से रहित हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे रामविश्रान्ति वर्णनं नाम त्रिनवत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२९३।।

चतुर्नवत्यधिक द्विशततमः सर्गः २९४

रामविश्रान्तिवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे मुनीश्वर! जो आदि अन्त और मध्य से रहित पद है और मुनियों को भी जो पाना कठिन है उसको मैंने प्राप्त किया है, एक और द्वैत की कल्पना जो शास्त्रों वेदों द्वारा कहीं गयी है वह मेरी मिट गयी है, अब मैं परम शान्ति को प्राप्त करके निःशंक हुआ हूं, कोई दुःख मुझको नहीं रहा, सब जगत् मुझको आत्मरूप ही भासता है, हे भगवन्! अब मैंने जाना है कि न कोई अविद्या है, विद्या है, न सुख है, न दुःख है, सर्वदा अपने आत्मपद में स्थित हूं, जो पाने योग्य पद को मैंने पा लिया है, जो आगे ही प्राप्त था, जो कहते हैं हम उस पद को नहीं जानते उनको भी प्राप्त रूप हैं, परन्तु अज्ञान के कारण नहीं जानते, वह पद और किसी से नहीं जाना जाता, अपने आपसे ही जाना जाता है, और ऐसे भी नहीं कि किसी से बताया जाय और जानने योग्य और हो आपही बोधरूप है, सदा अपना आपही है, अपर न कोई भ्रान्ति है, न जगत् है, सब आत्मा ही है, हे मुनीश्वर! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, उसमें अंधकार भासता है, उस अन्धकार का नाश तब होता है, जब सूर्य उदय हो, और जब्र स्वप्न से जाग्रत् में आता है, तब न अन्धकार रहता है न प्रकाश रहता है, ऐसे ही आत्मपद में जगने से ज्ञान अज्ञान दोनों का अभाव हो जाता है, द्वितीय कल्पना मिट जाती है, जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है, परन्तु जगत् आत्मसत्ता से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं, ऐसे आत्मा में और जगत् में कुछ भेद नहीं, जैसे शिला का अन्तर जड़ीभूत होता है, ऐसे आत्मा का रूप जगत् है, जैसे जलरूप तरंग में भेद कुछ नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् अभेदरूप हैं, हे मुनीश्वर! जिस पुरुष को ऐसे आत्मा में अहं प्रतीति हुई

है, वह कार्यकर्ता दृष्टि आता है, तो भी अन्दर से निश्चय करके कुछ नहीं करता, अशान्तरूप दृष्टि आता है, तो भी सदा शान्तरूप है, हे मुनीश्वर! अज्ञानरूप मध्याह्न का सूर्य है, जगत् सत्यता रूप दिन है, जगत् के भाव अभाव पदार्थरूप उसका प्रकाश है, और तृष्णा रूप मरुस्थल है उसमें अज्ञानी जीवरूप मार्ग पंथी हैं, उनका दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता और जो ज्ञानवान् स्वभाव में स्थित हैं, उनको न संसार की सत्यता रूप दिन भासता है, न तृष्णा रूप मरुस्थल भासता है, वे संसार की ओर से सो रहे हैं, ऐसे अद्वैत सत्ता उनको प्राप्त हुई हैं, जहां सत् असत् दोनों नहीं, उस कारण से जगत् कलना नहीं भासती, हे मुनीश्वर! अब मैं जगा हूं, सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्टि आता है, मैं निर्वाणरूप निराकार हूं, निरिच्छित रूप हू परन्तु मैं स्वभावसत्ता रूप हूं, अब कोई दुःख मुझको नहीं, हे मुनीश्वर! इस पद को प्राप्त हुआ हूं, जिनको पाने से तृष्णा कभी नहीं उत्पन्न होती, जैसे पाषाण की शिला में प्राण नहीं फुरते, ऐसे मुझमें तृष्णा नहीं फुरती, मुझको सब आत्मरूप भासता है और जो यह जीव है उसमें जीवत्व कुछ नहीं, जीवत्व भ्रांति सिद्ध है, सब आत्मस्वरूप है, मुझको तो निरालम्ब सत्ता अपने आपही भासती है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे रामविश्रांतिवर्णनं नाम चतुर्नवत्यधिक द्विशततम: सर्ग: ॥२९४॥

पंचनवत्यधिकद्विशततम: सर्ग: २९५

रामविश्रान्तिवर्णनम् ।

रामजी बोले–हे मुनीश्वर! आत्मा में अनन्तसृष्टियाँ फुरती हैं, जैसे मेघ की बूंदों से गिनती से अन्त नहीं पाया जाता ऐसे परमात्मा में अनन्त सृष्टियों का अन्त गिनती से नहीं पाया जा सकता, जैसे एक रत्न की असंख्य किरणें होती हैं, ऐसे ही परमात्मा में असंख्य सृष्टियां हैं, कई

परस्पर मिलती हैं, कई नहीं भी मिलतीं, परन्तु स्वरूप से एक रूप हैं। जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं, कई नूतन भिन्न भिन्न और ही प्रकार के उठते हैं, कई तो परस्पर ज्ञात होते हैं, एक नहीं होते, जैसे एक ही ज्वाला के अनेक दीपक होते हैं, कई भिन्न भिन्न होते हैं, कई परस्पर मिलते हैं, स्वरूप से एक रूप हैं, ऐसे आत्मा में अनंत जगत् फुरते हैं, परस्पर एक रूप हैं, जो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आया, उसमें तो वही रूप हुआ, क्योंकि अपर कारण तो कोई नहीं, जैसे शून्य के आदि में निराकार सत्ता होती है, उसीसे सूर्यादि पदार्थ भासते हैं, वे भी वही रूप हुए, प्रकट प्रतीत होते भी हैं, परन्तु निराकार होते हैं, ऐसे यह जगत् भी अकारण निराकार है, हे मुनीश्वर! अब मैंने यथावत् जाना है, जैसे स्वप्न में मरे हुए बोलते दृष्टि आते हैं, और जीते हुए मरे दृष्टि आते हैं, स्वप्नकाल में पदार्थ विपर्यय भासता है, परन्तु जगने पर यथार्थ भासते हैं, ऐसे मैं जगा हूं, मुझे विपर्यय नहीं भासता किन्तु यथार्थ रूप से सर्वात्मा ही भासता है, हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् पुरुष परम समाधि में स्थित हैं, उनका उत्थान कदाचित् नहीं होता, अर्थात् उन्हें स्वरूप से इतर कुछ नहीं भासता, व्यवहार करते दृष्टि आते हैं परन्तु व्यवहार से रहित हैं, क्योंकि अभिलाषा नहीं रहती, बिना अभिलाषा चेष्टा करते हैं, अन्दर से कुछ कर्तृत्व का अभिमान नहीं फुरता, इसीका नाम परम समाधि है, जब बोध की प्राप्ति होती है, तब तृष्णा कोई नहीं रहती, सब पदार्थ विरस हो जाते हैं क्योंकि आत्मपद, जो कि परमानन्द रूप है और तृष्णा से रहित है, उसीका नाम मोक्ष है, और उसीका नाम निर्वाण है, जिसमें उत्थान कोई नहीं, हे मुनीश्वर! आत्मानन्द ऐसा पद है कि जिसके आनन्द के लिये ब्रह्मा विष्णु और रुद्रादिक ज्ञानवानों की भी वृत्ति दौड़ती है, संसार के पदार्थों की ओर नहीं दौड़ती, और जिस पुरुष को शीतल स्थान प्राप्त हुआ है, वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप को नहीं चाहता कि मरुस्थल की ओर दौड़े, ऐसे ज्ञानवान् की वृत्ति आनन्द की ओर नहीं दौड़ती, हे मुनीश्वर, मैंने निश्चय किया है कि तृष्णा जैसा पाप कोई नहीं, अतृष्णा

जैसी शान्ति कोई नहीं, जो पुरुष परम ऐश्वर्य को प्राप्त है और अन्दर से तृष्णा जलाती है, वह कृपण है, दरिद्र है और आपत्ति का स्थान है और जो निर्धन दृष्टि आता है, परंतु अदंर तृष्णा कोई नहीं, वह परम ऐश्वर्य सम्पन्न है और परम सम्पत्ति की मूर्ति है और जो बड़ा पंडित है, परंतु तृष्णा सहित है, उसको परम मूर्ख जानिये, उसको बोध की प्राप्ति कदाचित् नहीं होती। जैसे मूर्ति की अग्नि शीत को निवारण नहीं करती। ऐसे उसकी मूर्खता को पंडित निवारण न करेगा, हे मुनीश्वर! हजारों में कोई पुरुष तृष्णा विरहित होता है, जैसे पिंजरे में पड़ा हुआ सिंह पिंजरा तोड़कर निकल जाता है, ऐसे कोई विरला तृष्णा के जाल को तोड़कर निकल पाता है, जो पंडित स्वरूप को विचार कर वितृष्ण नहीं होता और अतीत होकर वितृष्ण नहीं होता, तो पंडित और अतीत दोनों मूर्ख हैं, जितना जितना तृष्णा को घटायेगा, उतना ही शीघ्र जाग्रत् बोध का उदय होगा, जैसे जैसे रात्रि क्षीण होती है, ऐसे ऐसे दिन का प्रकाश और ज्यों ज्यों रात्रि वृद्धि होती है, त्यों त्यों दिन की क्षीणता होती है, ऐसे ज्यों ज्यों तृष्णा बढ़ती जायेगी, त्यों त्यों बोध की प्राप्ति कठिन होगी और ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जायेगी, त्यों त्यों बोध की प्राप्ति सुगम होगी, हे मुनीश्वर! अब मैं उस पद को प्राप्त हुआ हूं, जो अच्युत निराकार पद है और द्वैत कलना से रहित है, उस पद को मैंने आत्मा से जाना है, अब मैं निःशंक हुआ हूं और जिस पद को पाने से कोई इच्छा नहीं रहती, वह परमानन्द आत्मपद है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे रामविश्रान्तिवर्णनं नाम पंचनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥२९५॥

षण्वत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९६

रामविश्रान्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! बहुत कल्याण हुआ है जो कि तुम जगे हो, हे रामजी! यह परम पावन वचन तुमसे कहे हैं, जो अज्ञान रूप अंधकार के नाशकर्ता सूर्य हैं, इसके सुनने से पाप का नाश होता है और तन मन के ताप को नाश करनेवाली चन्द्रमा की किरणें हैं, हे रामजी! जो पुरुष अपने स्वभाव में स्थित है, उनको व्यवहार और समाधि में एक ही दशा है, अनेक प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं, परन्तु उनके निश्चय में कर्तृत्व का अभिमान कुछ नहीं फुरता, सदा परम ध्यान में स्थित है, जैसे पत्थर की शिला होती है, उसमें स्पंद कुछ नहीं फिरता, ऐसे उनको कुछ कर्तृत्व बुद्धि नहीं फुरती, क्योंकि दृश्य में उनका अहंकार देहाभिमान निवृत्त हुआ है,स्वरूपरूप चिन्मात्र में स्थिति पाई है, वह आत्मपद परम शान्तरूप है, द्वैत कलना से रहित एक है, उस पद को ज्ञानवान् आत्मरूप से जानता है, उसको निर्वाण कहते हैं, उसी को मोक्ष कहते हैं, हे रामजी! ऐसा जो पद है, उसमें हम सदा स्थित हैं और ब्रह्मा, विष्णु, आदि से लेकर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे उसी पद में स्थित हैं। नाना प्रकार की चेष्टायें करते भी दृष्टि आते हैं, परन्तु सदा शान्तरूप है, उनको क्रिया और समाधि में एक ही आत्म निश्चय रहता है, जैसे वायु स्पन्द में एक ही है, तरंग और स्थिर रूप में जल एक ही है, ऐसे ज्ञानी दोनों सम हैं। जैसे आकाशरूप और शून्यता में कुछ भेद नहीं, ऐसे आत्मा और जगत् में भेद नहीं, राम बोले–हे भगवन्! आपकी कृपा से मुझको कलना कोई नहीं फुरती। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि से लेकर जितना जगत् है, सब मुझको आकाश रूप भासता है, सर्वदा सब प्रकार मैं अपने आप में स्थित हूं, अच्युत और अद्वैत रूप हूं, मुझमें जगत् कलना कोई नहीं, चित्त संवेदन द्वारा मैं ही जगत् रूप हो भासता हूं और स्वरूप से कभी विचलित नहीं हुआ, अचेत चिन्मात्र स्वरूप हूं, अपने आप से इतर

मुझको कुछ नहीं भासता। वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मैं जानता हूं कि तुम जगे हो, परन्तु अपने दृढ़ बोध के लिये मुझसे फिर प्रश्न करो कि यह जगत् है नहीं, तो भासता क्यों है? रामजी बोले–हे भगवन्! मैं तो आपसे तब पूंछू, जब कि जगत् आकार मुझको भासता हो, मुझको जगत् कुछ भासता नहीं, जैसे संकल्प के अभाव हुए संकल्प की चेष्टा नहीं भासती, जैसे बाजीगर की माया का अभाव हुए बाजी नहीं भासती, जैसे स्वप्न का अभाव हुए स्वप्न सृष्टि नहीं भासती, जैसे भविष्यत् कथा के पुरुष नहीं भासते, ऐसे मुझको जगत् नहीं भासता, फिर संशय कैसे उठाऊं? आदि में जो चित्त संवेदन स्फुरण हुआ है, वह विराट् पुरुष होकर स्थित हुआ है, उसने आगे देशकाल पदार्थ रचे हैं और स्थावर जंगम जगत् को रचा है, उसके समष्टि वपु का नाम विराट् है। जैसे स्वप्न का पर्वत हो, ऐसे यह विराट पुरुष हैं, फिर कैसा विराट् है, जो आप आकाशरूप है, जो आप ही आकाशरूप है, उसका रचा जगत् मैं क्यों पूँछू, जैसे स्वप्न की मूर्ति का ही आकाशरूप है, अर्थात् यह जो उत्पन्न और अनुत्पन्न हुई है, उसके पात्र का मैं क्या पूँछू, इसलिये न कोई विराट् है, न उसका जगत् है, मिथ्या ही विराट् है, मिथ्या ही उसकी चेष्टा है, केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, न कोई जगत् है, न कोई उसका विराट् है, जैसे स्वप्न का पर्वत आभासमात्र होता है, ऐसे यह जगत् आकार भासती है, जैसे बीज से वृक्ष होता है, ऐसे ब्रह्म से जगत् प्रगट हुआ है, यह भी कैसे कहा जाये कि बीज साकार होता है, उसमें वृक्ष का सद्भाव रहता है, वही परिणामी होकर वृक्ष होता है, आत्मा ऐसे कैसे हो, आत्मा तो निराकार है, उसमें जगत् का होना नहीं, क्योंकि जो निर्विकार है और अद्वैत है, निर्वेद है, उसको जगत् का कारण कैसे कहें, न कोई जाग्रत् है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह अवस्था भी आकाश मात्र है, परिणाम भाव को प्राप्त नहीं हुआ, सदा अपने आप में स्थित है, हे मुनीश्वर! मैं तू भी आकाशरूप हैं, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आकाशरूप हैं, मुझको अब सब आत्मा ही भासती है, हे मुनीश्वर! एक

सविकल्प ज्ञान है, एक निर्विकल्प ज्ञान है, वह आकाशवत् अचेत्य चिन्मात्र है, चैत्य जो दृश्य है, उसके सम्बन्ध से रहित है, उसे आकाशवत् निर्मल जानिये, वह निर्विकल्प ज्ञान है, जिसको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह महापुरुष है, उसको मेरा नमस्कार है और जिसको दृश्य का संयोग है, वह सविकल्प ज्ञान जीव को होता है, वह संसारी है, उसको भिन्न भिन्न जगत् विषमता सहित भासता है, परन्तु वही भिन्न कुछ नहीं, जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग भासते हैं, तो भी जलस्वरूप हैं, ऐसे भिन्न भिन्न जीव और उनका ज्ञान है, तो भी मुझको अपना आप ही भासता है, जैसे अवयवी को सब अंग अपने ही भासते हैं, ऐसे सर्व जगत् अपना आप ही केवल अद्वैतरूप भासता है, जगत् की कलना कोई नहीं फुरती। जैसे स्वप्न से जगे को स्वप्न सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आप ही अद्वैत भासता है, ऐसे मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आप ही भासता है, हे मुनीश्वर! आगम से लेकर जो शास्त्र हैं, उनका उल्लंघन कर मैंने वचन कहे हैं, परन्तु जो मेरे हृदय में है, वही कहे हैं, जो कुछ अंतर होता है, वही प्रकट वाणी से कहता है, जैसे जो बीज बोता है, वही अंकुर निकलता है, बीज बिना अंकुर नहीं निकलता, ऐसे ही मेरे हृदय में है, वही वाणी से निकालता हूं और यह विद्या सर्व प्रमाणों से सिद्ध है, हे मुनीश्वर! जिसको यह दशा प्राप्त है, वही जानता है, अपर कोई नहीं जान सकता, जैसे जिसने मद्य पान किया है, वही उन्मत्तता को जानता है, अन्य कोई नहीं जान सकता, ऐसे जो ज्ञानवान् हैं, वही आत्मरस को जानता है, अपर कोई नहीं जानता, वह कैसा आत्मरस है, जिसे पी लेने से फिर कोई कल्पना नहीं रहती, हे मुनीश्वर! मैं आत्मा अजन्मा अविनाशी और परम शान्तरूप हूं, उभय एक की कल्पना से रहित अचेत चिन्मात्र हूं और जगत्रूप हुए की नाईं भी मैं भासता हूं और निराभास हूं, मेरे में आभास भी कोई वस्तु नहीं, क्योंकि निराकार हूं, इस प्रकार मैंने अपने आपको यथार्थ चिन्मात्र जाना है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे राम विश्रान्तिवर्णनम्
नाम षण्णवत्यधिकद्विशततमः सर्गः ।।२९६।।

सप्तनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९७

चिन्तामणिप्राप्तिवर्णनम् ।

वाल्मीकि मुनि बोले–हे भारद्वाज! इस प्रकार कहकर रामजी एक मुहूर्त पर्यन्त मौन रहे, अर्थात् उन्होंने परमार्थ पद में विश्राम प्राप्त किया, उनकी इन्द्रिय और मनोवृत्ति आत्मपद में उपशम को प्राप्त हुई। उसके अनन्तर रामजी ने लीला के निमित्त प्रश्न किया–हे संशय मेघ के नाश करने वाले शरत्काल! मुझको एक कोमल सा संशय हुआ है, उसे दूर कीजिये। हे मुनीश्वर! आत्मपद अव्यक्त है और अचिन्त्य है, अर्थात् इन्द्रियों और मन का विषय नहीं, इंद्रियों से ग्रहण नहीं होता और मन द्वारा चिन्तन नहीं किया जा सकता, जो बड़े महापुरुष हैं, उनके कहने में भी नहीं आता, ऐसा जो अचेत चिन्मात्र आत्मतत्व है, वह शास्त्र से कैसे जाना जाता है? शास्त्र तो अविच्छेद प्रतियोगी से कहते हैं वह सविकल्प हैं, सविकल्प से निर्विकल्प पद कैसे जाना जाता है? गुरु और शास्त्र से जानिये और विकल्परूप जो शास्त्र उनमें भी सार अर्थ पाया जाता है, परन्तु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो उसके साथ है, उनमें सर्वात्मा कैसे जाना जाये? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! गुरु और शास्त्र से नहीं जाना जाता, उसके बिना भी नहीं जाता। नाना प्रकार जो विकल्प रूप शास्त्र हैं, उनसे निर्विकल्परूप कैसे जाना जा सकता है, परन्तु जिस प्रकार इनसे जाना है, वह भी सुनो। हे रामजी! एक व्यवधानदेश के कीटके थे, वे गृहस्थ में रहते थे। उनको आपत्ति आ पड़ी, चिन्ता से दुर्बल हो जाते थे, भोजन भी नहीं मिला करता; जैसे वसंत ऋतु की मंजरी ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप से सूख जाती है, जैसे कमल जल से निकल सूख जाता है, ऐसे संपत्तिरूप जल से निकलकर कमलरूप कीटक आपत्तिरूप धूप से सूख गये, तब उन्होंने विचार किया कि किसी प्रकार हमारी उदर पूर्ति हुआ करे, इसलिये चलें, वन से लकड़ी चुनकर लावें, जिससे कुछ कष्ट दूर हो,

हे रामजी! ऐसा विचारकर वे वन में गये और लकड़ी ले आये, इस प्रकार वे लकड़ियां लाया करते थे और बाज़ार में बेचकर गुजारा करते थे। कुछ समय बीतने पर चन्दन की लकड़ी मिलने पर उन्हें विशेष लाभ होने लगा और वे लकड़ियों से छूट गये और ढूढ़ने पर उन्हें रत्न मिलने लगे, इससे वे ऐश्वर्यवान् हो गये। उनको विचार हुआ कि इससे भी अधिक लाभ उठायें, इसलिये वे पृथ्वी को खोदते चिन्तामणि पा गये, अब तो बहुत बड़े ऐश्वर्यवान् हो गये। ब्रह्मा और इन्द्रादिक के समान हो गये, हे रामजी! जिन्होंने उद्यम करके वन की सेवा की, उनको बड़ा सुख प्राप्त हुआ, लकड़ियां उठाते रहे तो उदर पूर्ति हुई और दुःख निवृत्त न हुआ, जिनको चन्दन की लकड़ियां प्राप्त हुईं, उनको उदर पूर्ति से इतर लाभ हुआ, दुःख की शान्ति हुई। जिनको चिन्तामणि प्राप्त हुई, उनके सब सन्ताप मिट गये, वह परम ऐश्वर्यवान् हुए, परंतु सबको वन से प्राप्त हुए और जो उद्यम करके वन में न गये, घर में ही बैठे रहे, उन्होंने दुःखी होकर प्राण त्याग दिये, अर्थात् सुख प्राप्त न हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे चिन्तामणि प्राप्ति नाम सप्तनवत्यधिकद्विशततम. सर्गः ।।२९७।।

अष्टनवत्यधिक द्विशततमः सर्गः २९८

गुरुशास्त्रोपमावर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! यह जो आपने कीटक का वृत्तांत कहा है, इसका तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया, वे कीटक कौन थे, वन क्या था और आपत्ति क्या थी, इसे कृपा करके प्रकट कीजिये, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जितने जीव देखते हो, सब कीट हैं, उनको अज्ञानरूप आपत्ति लगी है, आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक जो तीनों पाप हैं, आध्यात्मिक काम क्रोधादिक मानसिक दुःख है, आधिभौतिक देह के वात

पित्त कफ आदिक दुःख हैं और आधिदैविक जो ग्रह जनित दुःख अनिच्छित प्राप्त होते हैं, तीनों पापों की चिन्ता से जलते हैं, हे रामजी! उनमें प्रयत्न करके शास्त्ररूप वन में गये हैं, वे सुखी हुए हैं, जिन अर्थियों ने सुख के लिये शास्त्ररूप वन की सेवा की उनको सत् धर्मरूप लकड़ियां प्राप्त हुई, उनसे जो नरकरूप उदर पूर्ति का दुःख था, वह निवृत्त हुआ और स्वर्गरूप सुख प्राप्त हुआ, फिर शास्त्ररूप वन का सेवन करते करते जिनको उपासनारूप चन्दन वृक्ष प्राप्त हुआ, उससे अन्य दुःख भी निवृत्त हुए और विशेष सुख को प्राप्त हुए, जो अपने इष्ट देव की सेवा करता है, वह विशेष सुख पाता है, अपने स्थान को प्राप्त होता है, फिर शास्त्ररूप वन को ढूंढ़ता है, तब विचार में सुख पाता है, जब इसको सत् असत् विचार इसको प्राप्त होता है, तब इसके सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, और यह जो सुख प्राप्त होता है, शास्त्र से होता है, जैसे अपर पदार्थ चन्दन लकड़ियां वन में प्रकट थे, चिन्तामणि गुप्त थी, ऐसे अपर शास्त्र में धर्म अर्थ काम प्रकट हैं, और ज्ञानरूप चिन्तामणि गुप्त है, जब शास्त्ररूप वन पृथ्वी वैराग्य और अभ्यासरूप यत्न से अन्वेषण करे तब आत्मरूप चिन्तामणि को पाता है, हे रामजी! वन में उन्होंने चिन्तामणि कैसे प्राप्त की, वहां चिन्तामणि का वन था, परन्तु जब अभ्यास किया तब प्राप्त हुई, परन्तु इसी वन में प्राप्त हुई, ऐसे गुरु और शास्त्र भी मिट्टी के खोदने समान हैं, जब अच्छा अभ्यास करता है, तब आप ही चिन्तामणि के समान आत्म प्रकाश आता है, जैसे मिट्टीके खोदने से चिन्तामणि का प्रकाश उत्पन्न नहीं होता, किन्तु केवल उसका आवरण दूर होने की आवश्यकता है, चिन्तामणि तो स्वयं प्रकाश है, ऐसे ही गुरु और शास्त्र के वचनों के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होता है, तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाशित होती है, गुरु और शास्त्र केवल हृदय की मलिनता दूर करते हैं, जब मलिनता दूर होती है, तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशित होती है, इसलिये गुरु और शास्त्र से मलिनता दूर होती है, परन्तु इनकी कल्पना भी द्वैत में होती है, वह कल्पना द्वैत संसार

को नाश करनेवाली है, परमार्थ की अपेक्षा शास्त्र गुरु भी द्वैत कल्पना है और अज्ञानी की अपेक्षा गुरु शास्त्र कृतार्थ करते हैं, इनके अभ्यास से आत्मपद पाता है, पहिले अज्ञानी शास्त्र का सेवन भोग के लिये करते हैं, और उसका यही अर्थ लगाते हैं, जैसे लकड़ियों के लिये वन सेवन करते थे, शास्त्र में सब कुछ है, जो कोई रुचि से शास्त्राभ्यास करता है, ऐसे ही पदार्थ उसे प्राप्त होते हैं, शास्त्र एक है, परन्तु पदार्थों में भेद है, जैसे गन्ने का रस एक है, उससे गुड़ शक्कर खांड मिश्री होती है, उनमें भेद है, ऐसे शास्त्र एक है, उसमें पदार्थ भिन्न भिन्न हैं, जिस जिस पदार्थ की प्राप्ति के लिये यत्न करेगा वही प्राप्त होगा, शास्त्र में भोग भी है और मोक्ष भी है, अज्ञानी भोग के लिये यह यत्न करते हैं, तो भी धन्य हैं, क्योंकि शास्त्र का सेवन तो करते हैं, सेवन करते करते कभी किसी आत्मपदरूप चिन्तामणि भी प्राप्त होगी, परन्तु आत्मपद पाने के लिये शास्त्र श्रवण करना चाहिये, सुन सुनकर अभ्यास द्वारा आत्मपद प्राप्त होगा, तब सब ओर से समता भाव होगा, जैसे सूर्य के उदय हुए सब ओर से प्रकाश फैल जाता है, ऐसे सब तरफ समता फैल जायेगी, तब सुषुप्ति की नाईं स्थिति होगी, अर्थात् यह द्वैत और एक कलना भी शान्त हो जायेगी, अनुभव अद्वैत में जाग्रत् होगी, परन्तु किससे होगी, सत्संग और शास्त्रों के अभ्यास और विचार द्वारा होगी, वे संतजन कौन हैं, जो परोपकारी संसार समुद्र से पार करनेवाले हैं, उनके संग से आत्मपद प्राप्त होगा? हे रामजी! गुरु और शास्त्र नेति नेति से जल जाते हैं, अर्थात् अनात्मधर्म का निषेध करके आत्मतत्व शेष रहते हैं, जब अनात्म धर्म का त्याग करेगा, तब आत्मतत्व शेष रहेगा, तब उनको जान लेगा, उसको जान लेने से अन्य कुछ जानना शेष नहीं रहता, उसके जानने से यत्न भी कुछ नहीं आवरण दूर करने के लिये यत्न हैं, जैसे सूर्य के आगे बादल आता है, उससे सूर्य नहीं भासता, तब बादलों के दूर होने की आवश्यकता है, सूर्य के प्रकाश के लिये यत्न की आवश्यकता नहीं, सूर्य तो स्वभाव से प्रकाशित है, बादल दूर होना चाहिये, ऐसे ही गुरु और शास्त्र के वचनों

तथा अभ्यास द्वारा आवरण दूर हो जाने पर आत्मा स्वयं प्रकाशित भासने लग जाता है, गुरु और शास्त्रों के वचन सात्विक गुण हैं, उनसे राजस तामस भाव का नाश हो जाता है, तब परम अनुभव जोतिः स्वरूप आत्मा अकस्मात् प्रकाशित होता है, जब प्रकाश हुआ तब उसमें उन्मत्त हो जाता है, द्वैत संसार की कल्पना नहीं रहती, जैसे सुन्दर स्त्री को देखकर कामी पुरुष उन्मत्त हो जाता है, और संसार की ओर से स्मृति जाती रहती है, परम ऐश्वर्यवान् होता है, उसका साधन शास्त्र का विचार है, वन के सेवन से चिन्तामणि का दृष्टान्त कहा है, उसको जान लेना चाहिये।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे गुरुशास्त्रोपमावर्णनं नामाष्टनवत्यधिक द्विशततमः सर्गः ॥२९८॥

नवनवत्यधिकद्विशततमः सर्गः २९९

विश्रामप्रकटीकरणम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सम्पूर्ण सिद्धान्त मैंने तुम्हें विस्तार से कहा है, उसके सुनने और निरन्तर विचार करने से मूढ़ भी निरावरण होंगे, उत्तम पुरुष के निरावरण होने में तो आश्चर्य ही क्या है, हे रामजी! यह मैं भी जानता हूँ कि तुम विदित वेद्य हुए हो, पहिले तुम्हारे लिये उत्पत्ति प्रकरण कहा है कि जगत् की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है, फिर स्थिति प्रकरण कहा है कि स्थिति इस प्रकार हुई है, चित्त संवेदन के फुरने से जगत् के उत्पन्न होने को उत्पत्ति कहते हैं, और संवेदन फुरने की दृढ़ता से जगत् स्थित हुआ है, उसके अनन्तर उपशम प्रकरण कहा है, कि मन इस प्रकार अफुर होता है, जब चित्त उपशम हुआ तो समझो परम कल्याण हुआ, मन के फुरने का नाम संसार है, जब मन उपशम हो जाता है, तब संसार कल्पना मिट जाती है, यह सब विस्तार से कहा है, परन्तु अब जानता हूं कि तुम बोधवान् हुए हो, हे रामजी! मैंने तुम्हें आत्मज्ञान

का उपाय कहा है, और जिनको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके लक्षण भी कहे हैं, अब भी संक्षेप से कहता हूं, हे रामजी! प्रथम बालक अवस्था में इसको सत्संग और सदाचार पूर्वक किये हुए अभ्यास से ही महान् लाभ होता है कि आत्मपद की प्राप्ति हो जाती है, तब समता प्राप्त होती है, और सबका सुहृद बन जाता है, वह समता सुहृदता कैसी है, परमानन्द रूप है, मुदिता की जननी है, वह सदा इसके संग रहती है, जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होती है, अपने प्राण का त्यागना अंगीकार करती है, परन्तु इस पुरुष को नहीं त्यागती, ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्म लक्ष्मी से सुन्दर कान्ति है, उसको समता मुदिता सुहृदता रूप स्त्री नहीं त्यागती, सदा इसके हृदय में रहती है, वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है, हे रामजी! जिसको देवता का राज्य प्राप्त होता है वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं रहता और जिसको सुन्दर स्त्रियां प्राप्त हो, वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होता है, हे रामजी! समता कैसी है, कि जो द्वैतान्धकार के नाश के लिये सूर्य है और तीन ताप रूप उष्णता के नाश करने के लिये पूर्णमासी का चन्द्रमा है, सुहृदता पुनः कहिये, कैसी है कि जो सौभाग्य जल कें लिये नीचा स्थान है, जैसे जल नीचे स्थान में स्वाभाविक चला जाता है, ऐसे ही सुहृदता में सौभाग्य स्वाभाविक रहता है, जैसे चन्द्रमा की किरणों के अमृत से चकोर तृप्तिमान् होते हैं, ऐसे ही आत्मारूपी चन्द्रमा की समता सुहृदता रूप किरणों को पाकर ब्रह्मा आदि चकोर तृप्त होकर आनन्दवान् होते हैं और जीते हैं, हे रामजी! वह ज्ञानवान् ऐसी कान्ति से पूर्ण है, जो कदाचित् भी क्षीण नहीं होती, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में भी उपाधि दृष्टि आती है, परन्तु ज्ञानवान् के मुख में ऐसे भी उपाधि नहीं, जैसे उत्तम चिन्तामणि की कान्लि होती है, ऐसे ज्ञानवान् की कान्ति है, राग द्वेष से क्षीण कदाचित् नहीं होती, सदा प्रसन्न रहती है, हे रामजी! वही समता मानों सौभाग्य कमल की खान है, ऐसे आनन्द सहित जगत् में विचरता है, जो कुछ कार्य करना है, और भोजन करता है, जो कुंछ ग्रहण

करता है, जो कुछ देता है, सब लोक उसके कर्तृत्व की स्तुति करते हैं, हे रामजी! ऐसा जो पुरुष है, वह ब्रह्मादिकों से भी पूजने योग्य है, सब ही उसी का मान करते हैं, और सब उसके दर्शन की इच्छा करते हैं, दर्शन से प्रसन्न होते हैं, जैसे सूर्य के उदय हुए सूर्य मुखी कमल खिलते हैं, सब देखकर प्रसन्न होते हैं, ऐसे ही उसको देखकर सब प्रसन्न होते हैं और जो कुछ वे करते हैं, शुभाचार ही करते हैं, और यदि कुछ और भी कर बैठते हैं तो लोक उनकी निन्दा नहीं करते, क्योंकि जानते हैं कि समदर्शी हैं, समता से वह सर्व सुहृद है, शत्रु भी उसके मित्र हो जाते हैं, जिसमें समता भाव उदय हो जाय उसको आग नहीं जला सकती, पानी नहीं भिगो सकता, वायु नहीं सुखा सकती, और जो इच्छा करे वही सिद्ध होती है, हे रामजी! जिसको समता प्राप्त हुई है, वह पुरुष अतोल हो जाता है, संसार की उपमा उसको कोई दे नहीं सकता और समता नहीं प्राप्त हुई, वह सबसे सुहृदता का अभ्यास करे, तब उसको शत्रु भी मित्र हो जायेगा, क्योंकि जो अभ्यास की दृढ़ता से इसको शत्रु भी मित्र भासने लग जाते हैं, जो सबमें समता का अभ्यास करता है, वही दृढ़ होता है, तब समता भाव से कभी विचलित नहीं होता, हे रामजी! एक राजा था, उसने अपने शरीर का मांस काट काटकर क्षुधार्थियों को दिया, परन्तु समता से विचलित नहीं हुआ, ज्यों का त्यों रहा, एक पुरुष को पुत्री अति प्यारी थी, उसने किसी को दी, उसने ओर किसी शत्रु को दी परन्तु पुत्री का पिता यथावत् रहा, एक और राजा था, उसको स्त्री अतिप्यारी थी, उसका उसने कोई दोष सुना तो उसको मार डाला, परन्तु समारूप धर्म का त्याग नहीं किया, हे रामजी! जब राजा के घर मंगल होता है, तब अपने नगर को भूषणों और वस्त्रों से सुन्दर बनाता है, और प्रसन्न होता है, यह अवस्था राजा जनक की देखी गयी थी, और एक समय अति सुन्दर मकान अग्नि से जलते देखे गये, उस समय भी वह अपने समता भाव से विचलित नहीं हुए, एक और राजा था, उसने राज्य भी और को दे दिया, आप बिना राज्य के विचरता रहा, परन्तु समता भाव से

विचलित न हुआ, हे रामजी! एक दैत्य था, उसको देवताओं का राज्य प्राप्त हुआ, राज्य नष्ट हो गया, परन्तु दोनों भावों में सम ही रहा, एक बालक था, उसने चन्द्रमा को मोदक (लड्डू) जानकर फूंक मारी, परन्तु ज्यों का त्यों रहा, हे रामजी! इत्यादि मैंने अनेक देखे हैं, जिनको आत्मज्ञान सम्यक् प्राप्त हुआ है, वे सुख दुःख से विचलित नहीं हुए, हे रामजी! प्रारब्ध भोग ज्ञानी अज्ञानी के लिये तुल्य है, परन्तु अज्ञानी रागद्वैष से दुःख पाता है, और यथार्थिता के ज्ञान के कारण ज्ञानी दुःख नहीं पाता, सब अवस्थाओं में उसको समता भाव रहता है, और समता भाव आत्मपद के साक्षात्कार से होता है, वह आत्मपद तप से भी नहीं मिलता, और तीर्थ यज्ञ दान से भी नहीं मिलता, जब अपना विचार उत्पन्न होता है, तब सब भ्रम निवृत्त हो जाता है, और जब जगत् आत्मरूप ही भासता है, इसी दृष्टि को लिये प्राकृत आचार में विचरते हैं, परन्तु निश्चय से सदा निर्गुण हैं, रामजी बोले—हे मुनीश्वर! ऐसी अद्वैत दृष्टि निष्ठा जिनको प्राप्त हुई है, उनको कर्मों के करने से क्या प्रयोजन है, वे त्याग क्यों नहीं करते? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जो पुरुष अद्वैत निष्ठ हैं, उनको त्याग ग्रहण की भ्रान्ति नहीं रहती, उस भ्रम से रहित होकर प्रारब्ध के अनुसार चेष्टा करते हैं, हे रामजी! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनकी बन पड़ी है, उसका त्याग नहीं करतें, उसमें उनको ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह आचार करते हैं, और को ग्रहण नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, हे रामजी! जिनको गृहस्थ में ज्ञान प्राप्त हुआ है, वे गृहस्थी में विचरते हैं, त्याग नहीं करते, जैसे हम स्थित हैं, और जिनको राज्य में ज्ञान प्राप्त हुआ है, वे राज्य ही में रहे हैं, जैसे तुम हो, जिन ब्राह्मणों को ज्ञान प्राप्त हुआ है, वे ब्राह्मणों के ही कर्मों में रहे हैं, इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्रों को जिस स्थान में किसी को ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह वही कर्म करता है, हे रामजी! कई ज्ञानवान् गृहस्थ में रहे हैं, कई राज्य ही करते हैं, कई सन्यासी हो रहे हैं, कई वन में विचरते फिरते हैं, कई पर्वत कंदराओं में ध्यान स्थित हो रहे हैं, कई

नगर में रहते हैं, कई ज्ञानवान् मथुरा में, कई केदारनाथ में, कई प्रयाग में कई जगन्नाथ में रहते हैं, कई देवता का पूजन करते हैं, कर्म करते हैं, अग्निहोत्र करते हैं, हमारी तरह कई जप करते हैं, कई अस्ताचल पर्वत पर, उदयाचल पर्वत पर, कई मंदराचल पर्वत पर हिमालय पर्वतादि स्थानों में रहते हैं, कई शास्त्र विहित कर्म करते हैं, कई अवधूत हो रहे हैं, कई भिक्षा मांगकर भोजन करते हैं, कई कठिन वचन बोलते हैं, कई अज्ञानी हुए विचरते हैं, कई विद्याध्ययन करते हैं, इत्यादि नाना प्रकार की चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं, क्योंकि उनको स्वाभाविक प्राप्त हुई हैं, यत्न से कुछ नहीं करते, हे रामजी! शुभ कर्म करे अथवा अशुभ कर्म करे, कोई क्रिया उनको बन्धन नहीं करती और जो अज्ञानी हैं, जेसै कर्म करेंगे ऐसे ही फल को भोगेंगे, पुण्य कर्म करेंगे तब, स्वर्ग की प्राप्ति होगी, पाप से नरक दुःख भोगेगा, और जो शुभ कर्म कामना से रहित करेगा, तब अन्तःकरण शुद्ध होगा, सत्संग और शास्त्र के बल से शुद्धता प्राप्त होगी, हे रामजी! जो अर्ध प्रबुद्ध है और पाप करने लग जाय और आत्म अभ्यास त्याग दे तो उसको दोनों मार्गों से भ्रष्ट जानें, वह स्वर्ग नहीं पाता, अनात्मपद को प्राप्त होता है, तप दान, तीर्थ आदिके सेवन से भी आत्मपद नहीं मिलता, जब विचार उत्पन्न होता है और आत्मपद का अभ्यास करता है, तब आत्मपद की प्राप्ति होती है, जब आत्मपद प्राप्त हुआ तब निःशंक हो जाता है, चेष्टा व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु चित्त उसका शान्त रहता है, जैसे लोहे का तष्ट पारस के स्पर्श से सोना बन सकता है, परन्तु आकार से तष्ट ही रहता है, और लोह का भाव का अभाव हो जाता है, ऐसे जब चित्त को आत्मपद का स्पर्श होता है, तब चित्त शान्त हो जाता है, परन्तु चेष्टा उसी प्रकार होती है, और जगत् की सत्यता नष्ट हो जाती है, हे रामजी! अब तुम जगे हो और निःशंक हुए हो, राग द्वैषरूप दोष तुम्हारा नष्ट हो गया है, और तुम निर्विकार आत्मपदको प्राप्त हुए हों, जन्म, मृत्यु, बढ़ना, घटना, युवा, वृद्ध, होना आदि सब विकारों से रहित आत्मपद को प्राप्त हुए हो, जो

सबका अधिष्ठान परम शुद्ध चेतन है, वह तुमको प्राप्त हुआ है, हे रामजी! मुझको जो कुछ कहना था, कहा है, सार का भी सार आत्मपद कहा है, और जो कुछ जानने योग्य था, तुमने जान लिया है, अब न कुछ कहना शेष रहा है, न जानना ही बाकी बचा है, यहां तक ही कहना और जानना है, अब तुम निःशंक होकर विचरो, तुमको संशय कोई नहीं रहा, क्षय और अतिशय रहित पद को तुमने प्राप्त किया है, बाल्मीकि मुनि बोले–हे साधो! जब मुनिवर वसिष्ठजी इस प्रकार कहकर चुप हो गये तब सारी सभा निर्विकल्प पद में स्थित हो गयी, जैसे वायु से रहित कमल फूलों पर भ्रमर अचल हो जाते हैं, ऐसे ही चित्तरूप भ्रमर आत्मपदरूप कमल के रस को पीते हुए आनंद मग्न हो गये, ब्रह्म को जानकर ब्रह्मरूप हो गये, जितने भी समीप में मृग थे, वे भी तृण भक्षण को त्यागकर अचल हो गये, और जो पशु पक्षी थे, सुनकर निस्पन्द हो गये, और बालकों सहित जितनी स्त्रियां थीं, सुनकर जड़वत् हो गयीं, पहिले जो मोक्ष उपाय को श्रवण करने के लिये सिद्धों के गण आते थे, उन्होंने पुष्पवृष्टि की, नगारे भेरियाँ शंख बजाने लगे, और वसिष्ठजी की स्तुति करने लगे, बड़े शब्द हुए, उनसे दशों दिशाएं पूर्ण हो गयीं, और देवताओं और सिद्धों ने ऊपर से दिव्य पुष्पों की वृष्टि की, तमाल कदम्ब पारिजात कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षों के जो फूल हैं, उनको देवता और सिद्धों ने वर्षा की, देवताओं और सिद्धों के नगारों के शब्द भी सुनाई देने लगे, दिव्य पुष्पों की सुगन्धि फैल गयी, मानों पवन भी रंजित हो गया है, तब सिद्धों ने कहा–हे वसिष्ठजी! हमने भी अनेक मोक्ष उपाय श्रवण किये हैं, और कहें, परन्तु जैसा तुमने कहा है, ऐसा न आगे श्रवण किया है, न गाया है, न कहा है, तुम्हारे मुखारविन्द से जो श्रवण किया है, उससे हमने परम सिद्धान्त को प्राप्त किया है, इसके सुनने से पशु पक्षी भी कृतार्थ हो गये हैं, अन्य मनुष्यों की तो बात ही क्या करें, वाल्मीकि मुनि बोले–हे साधो! ऐसा कहकर उठकर पुष्प वर्षा की, वसिष्ठजी को चन्दन लेप किया, जब इस प्रकार पूजन हो चुका, तब अन्य जो वहां बैठे हुए थे,

परम विस्मय को प्राप्त हुए, कि ऐसा सुन्दर उपदेश वसिष्ठजी ने किया है, तब राजा दशरथ उठकर खड़े हुए और कहने लगे, हे प्रभो! हम तुम्हारी कृपा से षट् ऐश्वर्य सम्पन्न परमसुखी हुए हैं, हे भगवन्! आपने सम्पूर्ण शास्त्र सुनाया है, उसको सुनकर हमको तुम्हारी पूजा करनी चाहिये, हे देव! हम आपका पूजन किस सामग्री से करें, ऐसा पदार्थ पृथ्वी में, आकाश में, देवताओं में भी कोई नहीं, जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो, सब पदार्थ कल्पित हैं, यदि सत् पदार्थ पूजन करें तो वह सत् तो आप ही से पाया है, इसलिये ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो, तथापि अपनी शक्ति अनुसार पूजन करते हैं, परन्तु आप कुपित न होना और हमारा उपहास भी न करना, हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ और सम्पूर्ण मेरे अन्तःपुर की स्त्रियां और चारों पुत्र सारा राज्य तथा और जो कुछ यश संसार में उपार्जित किया है और जो कुछ पुण्य किये हैं, सब कुछ तुम्हारे चरणों में निवेदित है, हे साधो! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वसिष्ठजी के चरणों पर गिरा, तब वसिष्ठ महर्षि बोले–हे राजन्! तुम धन्य हो जिनको ऐसी श्रद्धा है, परन्तु हम तो ब्राह्मण हैं, हमको राज्य क्या करना है, हम राज्य व्यवहार क्या जानें, क्या कभी ब्राह्मण ने राज्य किया है, राजा क्षत्रिय होते हैं, इसलिये राज्य तुम्हीं से होगा, यह जो तुम्हारा शरीर है, इसको मैं अपना ही जानता हूं, और तेरे चारों पुत्रों को मैं अपने ही समझता हूं, हम तेरे प्रणाम से ही सन्तुष्ट हैं, यह राज्य हमने तुम्हें प्रसाद रूप सौंपा है, बाल्मीकि मुनि बोले–जब इस प्रकार वसिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने फिर कहा कि हे स्वामिन्! तुम्हारे योग्य कोई पदार्थ नहीं, तुम ब्रह्मांडों के ईश्वर हो, आपके विषय में ऐसे शब्द कहते भी हमें लज्जा आती है, परन्तु योग के निमित्त आपके आगे विनय पूर्वक निवेदन किया है, कि मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवण किया है, अपनी शक्ति के अनुसार पूजन करें, तब वसिष्ठजी ने कहा, बैठो, तब राजा बैठ गये, तब रामजी निरभिमान होकर कहने लगे, हे संशयरूप तिमिर के नाशक सूर्य! आपका पूजन हम किस वस्तु से

करें, जो पदार्थ घर अपना हो, अतः हे गुरुवर! मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक नमस्कार ही है, ऐसा कहकर चरणों पर गिर पड़े, नेत्रों से जल चल रहा था, बार बार उठते और आत्मानन्द की प्राप्ति के उत्साह में फिर चरणों पर गिर पड़े, तब वसिष्ठजी ने कहा बैठ जाओ, तब रामजी बैठ गये तदनन्तर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अर्घ्य पाद्य से पूजन करने लगे, सब राजर्षि ब्रह्मर्षि पूजन करने लगे, खूब पुष्पवृष्टि हुई, वसिष्ठ महाराज का शरीर पुष्पों से आच्छादित हो गया, जब वसिष्ठजी ने हाथों से फूल इधर उधर किये, तब मुख दृष्टि आने लगा, जैसे बादलों के दूर होने पर चन्द्रमा दृष्टि आता है, ऐसे मुख प्रतीत होने लगा, तब वसिष्ठजी ने कहा–हे ऋषीवरो! व्यास वामदेव विश्वामित्र नारद भृगु अत्रि इत्यादि से लेकर जितने बैठे थे, उनसे कहा गया, हे साधो! जो कुछ मैंने सिद्धान्त के वचन कहे हैं, इनमें जो कुछ उष्णता अधिकता हो वह तुम जैसा जैसा स्वर्ण होता है, ऐसा ऐसा ही अग्नि में दिखाई देता है, ऐसे ही तुम कहो तब सबने कहा–हे मुनीश्वर! यह आपने परमसार वचन कहे हैं, जो कोई आपके वचनों की निन्दा करेगा, वह महापतित् होगा, यह वचन परम पद पाने का कारण है, हे मुनीश्वर! हमारे अन्दर जो जन्म जन्मान्तर का मल था वह नष्ट हो गया है, हम तो पूर्ण ज्ञानवान् थे, परन्तु पूर्व जन्म जो धारण किये हैं, उनकी स्मृति हमारे चित्त में थी, कि अमुक जन्म हमने इस प्रकार पाया था, वह सब स्मृति अब नष्ट हुई है, जैसे सुवर्ण अग्नि में डाला हुआ शुद्ध हो जाता है, ऐसे तुम्हारे वचनों से स्मृतिरूप मल हमारा अब नाश हुआ है, अब हम जान गये हैं कि न कोई हमारा जन्म था, न हमने कोई जन्म पाया है, हम अपने ही आपमें स्थित हैं, हे मुनीश्वर! आप सम्पूर्ण विश्व के गुरु हैं, और ज्ञानावतार हैं, आपको हमारा नमस्कार है, राजा दशरथ भी धन्य हैं, जिनके संयोग से हमने मोक्ष उपाय श्रवण किये हैं, यह रामजी विष्णु भगवान् हैं, वाल्मीकि मुनि बोले–इस प्रकार ऋषि मुनि वसिष्ठजी को परम गुरु जानकर उनकी स्तुति करने लगे, और राजा दशरथ की स्तुति करने लगे, कि जिसके

घर में विष्णु भगवान् ने अवतार लिया है, इस प्रकार स्तुति कर चुकने पर अर्घ्य पाद्य से वसिष्ठजी की पूजा करने लगे, अब आकाश के सिद्ध बोले–हे वसिष्ठजी! आपको हमारा नमस्कार है, आप गुरुओं के भी गुरु हैं, हे प्रभो! जो कुछ आपने उपदेश किया है, और जो जो उसमें युक्तियां कही हैं, सरस्वती भी उनको कहे अथवा न कहे, हमारा आपको नमस्कार है, चतुर्द्वीप के राजा दशरथ को नमस्कार है जिसके प्रसंग से हमने ज्ञान और युक्तियां सुनी हैं, यह रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं, इनको हमारा प्रणाम है, यह चारों भाई ईश्वर रूप हैं, विष्णु भगवान् जिनके ऊपर कृपा करते हैं, राजकुमार जीवन्मुक्त अवस्था को धारण किये बैठे हैं, और वसिष्ठजी परम गुरु हैं और विश्वामित्र जी महाराज तप की मूर्ति हैं, वाल्मीकि मुनि बोले–इस प्रकार जब सिद्ध कह चुके तब फूलों की वर्षा करने लगे, जैसे हिमालय पर्वत पर बर्फ की वर्षा होती है, और बर्फ से पूर्ण हो जाता है, ऐसे वसिष्ठजी पुष्पों से आच्छादित हो गये, आकाशचारी जो ब्रह्मलोक में रहनेवाले थे, उन्होंने भी पुष्प वृष्टि की, और जो सभा में बैठे थे, उन्होंने भी पूजन किया, और सभा में जो दूसरे ब्रह्मर्षि बैठे हुए थे उन सबका भी यथायोग्य पूजन किया गया, इस प्रकार जब सिद्ध पूजन कर चुके, तब कई ध्याननिष्ठ हो गये, सबके चित्त शरत्काल के आकाशवत् निर्मल हो गये, अपने स्वभाव में स्थित हुए, जैसे स्वप्न की सृष्टि का कौतुक देखकर कोई जाग उठे और हँसे ऐसे वे हँसने लगे, तब वसिष्ठजी रामजी से कहने लगे, हे रघुवंशरूप आकाश के चन्द्र! तुम अब किस अवस्था में स्थित हो और क्या जानते हो, रामजी बोले–हे भगवन्! सर्व धर्म ज्ञान के समुद्र! आपकी कृपा से मैं अब अपने आप में स्थित हूं, कोई कल्पना नहीं रही, परम शान्तिवान् हुआ हूं, मुझको शेष विशेष कोई नहीं भासता, केवल अपना आपही पूर्ण भासता है, अब मुझे कोई संशय नहीं रहा, और इच्छा भी कोई नहीं रही, मैं परम निर्विकल्प पद को प्राप्त हुआ हूं, कोई कल्पना मुझे नहीं फुरती, जैसे नील पीतादि उपाधि से रहित स्फटिक प्रकाशित होता है, ऐसे

निरुपाधि में स्थित हूं, संकल्प विकल्प उपाधि का अभाव हो गया है, परम शुद्धता को प्राप्त हुआ हूं, चित्त मेरा शान्त हो गया है, चेष्टा मेरी पूर्ववत् होगी, और निश्चय में कुछ न फुरेगा, जैसे शिला में प्राण नहीं फुरते, मुझको द्वैत कल्पना कुछ नहीं फुरती, हे मुनीश्वर! अब मुझको सब आकाश रूप भासता है, मैं शान्त रूप होकर परम निर्वाण हूं, भिन्न भाव जगत् मुझको कुछ नहीं भासता, सब अपना आप ही भासता है, अब जो कुछ आप कहें, वही करूं, अब मुझको शोक कोई नहीं रहा, जिस रीति से राज्य आदि व्यवहार करने के लिये आप कहें ऐसा करूं, आपकी कृपा से मुझको सब समान है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे विश्राम प्रकटीकरणं नामनवनवत्यधिक द्विशततमः सर्गः ।।२९९।।

त्रिशततमः सर्गः ३००

निर्वाणवर्णनम् ।

वाल्मीकि मुनि बोले–हे भारद्वाज! जब ऐसे रामजी ने कहा तब वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! बहुत कल्याण हुआ कि जो तुम अपने आपमें स्थित हुए हो, अब तुम्हें यथार्थ ज्ञान हो गया है, अब जो कुछ चाहते हो कहो, रामजी बोले–हे संशयरूप अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य! और संशयवृक्षों के नाशक कुठार! अब आपकी कृपा से मैं अब परम विश्रान्ति को प्राप्त हुआ हूं, और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति की कलना से रहित हूं, जाग्रत् जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है, श्रवण करने की इच्छा भी नहीं रही, अब परम ध्यान मुझको प्राप्त हुआ है, अर्थात् मुझे आत्मा से इतर कुछ वस्तु नहीं भासती, मैं आत्मा हूं अज अविनाशी हूं, शान्तरूप हूं, अनन्त हूं, सदा अपने आपमें स्थित हूं, ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है, प्रलयकाल का पवन चले और समुद्र उछले, इत्यादि अपर क्षोभ कारण भी हों तो भी मेरा चित्त स्वरूप से विचलित न होगा, और

त्रिलोक्य राज्य मिलने पर भी मेरा हर्ष को प्राप्त न होगा, मैं सत्ता समान में स्थित हूं, वाल्मीकि मुनि बोले–हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब मध्याह्न का सूर्य सिर पर आ पहुँचा, जो राजा लोग वहाँ बैठे थे, उनके भूषणों पर लगे हुए रत्नों और मणियों की विशेष चमक हुई, वह मणियां इस प्रकार चमकने लगीं कि सूर्य के साथ एक हो गयी, मानों ऐसे वचन सुनकर उनकी कान्ति नृत्य करती है, तब वसिष्ठजी ने कहा–हे रामजी! अब हम चलते हैं, मध्याह्न की उपासना का समय हैं, जो कुछ पूछना हो फिर पूछ लेना, तब राजा दशरथ उठकर खड़े हो गये और वसिष्ठजी का पूजन किया, अन्य ऋषियों, ब्राह्मणों को भी यथोचित पूजन किया, मोतियों हीरों की मालाएं, मुहरें, रुपये, वस्त्र, भूषण गौएं घोड़े आदि जितनी ऐश्वर्य की सामग्री है, उससे यथायोग्य पूजन किया, जो विरक्त संन्यासी थे उनको प्रणाम कर प्रसन्न किया, और जो राजर्षि थे, उनका भी पूजन किया, तब वसिष्ठजी उठ खड़े हुए, परस्पर नमस्कार किया, मध्याह्न के नौबत बजने लगे, सब श्रोता उठकर अपने आप अर्थात् आपस में विचार करने लगे, चले जायें और शीश हिलायें, हाथ की अंगुली हिलावें, नेत्रों की भौमें हिलायें, परस्पर चर्चा करते जाएं, इस प्रकार सब अपने स्थानों को गये, वसिष्ठजी सन्ध्योपासना करने लगे, और जितने श्रोता लोग थे सबने विचार करते हुए रात बिताई, सूर्य की किरणों के साथ वे लोग फिर वहां आ गये, गगन चारी सप्तलोकों के रहनेवाले ऋषि देवता सब आ गयें, भूमिवासी जितने ब्रह्मर्षि राजर्षि श्रोतागण थे, सब आकर अपने अपने स्थान पर बैठ गये, सबने परस्पर नमस्कार किये, तब रामजी उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर उन्होंने कहा–हे भगवन्! अब जो कुछ श्रवण करना और जानना, शेष रहता है, उसको आपही कृपा करके कहो, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जो कुछ सुनने योग्य था, तुमने सुन लिया है, अब तू कृतकृत्य हुआ है, तुमने रघुवंश को तार दिया है, अर्थात् तुम्हारा बहुत यश फैल गया है, तुमने अपने कुल के भूत, भविष्यत् वर्तमान इन तीनों ही

प्रकार के मनुष्यों को तारा है, सबको कृतकृत्य किया है, अब तुम परम पद को प्राप्त हुए हो, और जो कुछ तुम्हें पूछने की इच्छा हो पूछ लो, हे रामजी! यदि सत्ता समान में स्थित हुआ है, तो विश्वामित्रजी के साथ जाकर इनका कार्य करो, कुछ पूछने की इच्छा है, तो पूछ लो, रामजी बोले–हे भगवन्! आगे जब मैं देखता था, तो इस देह से युक्त परिच्छिन्नरूप देखता था, और अब आपको देखता हूं, तो आपसे इतर मुझको कुछ प्रतीत नहीं होता, सब अपना आपही भासता है, हे मुनीश्वर! अब इस शरीर के साथ भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं रहा, जैसे फूलों से सुगन्ध लेकर पवन अपने स्थान पर चला जाता है, और फूलों के साथ उसका कुछ प्रयोजन नहीं रहता, ऐंसे इस देह में जो कुछ सार था, उसको पाकर मैं अपने आपमें स्थित हूं, शरीर के साथ मुझको कुछ प्रयोजन नहीं रहा, तब राज्य भोगने से कोई सुख दुःख नहीं, इन्द्रियों के इष्ट अनिष्टमें मुझे कोई हर्ष शोक नहीं, मैं अब सर्वोत्तम पदको प्राप्त हुआ हूँ, सर्व कलनासे रहित है अविनाशी अव्यक्तरूप सबसे निरन्तर अपने आपमें स्थित हूँ, निराकार निर्विकार हूँ, जो कुछ पाने योग्य था, मैंने पा लिया है, जो कुछ सुनने योग्य था, सुना है, जो कुछ आपसे कहना था, कहा है, अब आपकी वाणी सफल हुई है, जैसे कोई रोगी को औषध देता है, उस औषधि के साथ उसका रोग दूर हो जाता है और कल्याण होता है, ऐसे तुम्हारी वाणी से मेरा संशयरूप रोग दूर हुआ है, और मैं अपने आपमें तृप्त हुआ हूं, अब मैं निःशंक होकर अपने आपमें स्थित हूं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे निर्वाणवर्णनं
नाम त्रिशततमः सर्गः ॥३००॥

एकाधिक त्रिशततमः सर्गः ३०१

चिदाकाशजगदेकदाप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो रामजी! तुम मेरे परम वचन सुनो अभ्यास की दृढ़ता के लिये कहता हूं, जैसे आतश (दर्पण) को ज्यों ज्यों उज्ज्वल होता है, ऐसे बार बार श्रवण करने से अभ्यास दृढ़ होता है और जितना जगत् भासता है, सब चिदानन्द स्वरूप है, भासती भी वही वस्तु है जो आगे भानरूप होती है, वह भानरूप चेतन है और जो भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, द्वैत की कल्पना से भासते हैं, वास्तव से भानरूप चेतन है, जैसे जो उच्चारण करता है, वे सब शब्द हैं, शब्दरूप एक है और अर्थभेद से भिन्न भिन्न भासते हैं, जब अर्थ की कल्पना त्याग दी जाय तब यही शब्द है और जो अर्थ करें यह जल है, यह पृथ्वी है, यह अग्नि है, इनसे आदि लेकर अनेक शब्द और अर्थ होते हैं, अर्थ से रहित शब्द एक ही है, ऐसे यह सब चेतन है, चित्त की कल्पना से भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, अपर वस्तु कुछ नहीं, जो अपर भासता है, वह उसीका आभास है, हे रामजी! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है, परन्तु ज्ञान में भेद होता है, ज्ञान में भी भेद नहीं, वृत्ति में भेद है जिसमें अर्थ भासते हैं, और ज्ञानरूप अनुभवसत्ता है, उसमें जैसे अर्थ की वृत्ति आभास होती है, उसको जानता है, जैसे जेवरी एक पड़ी होती है, उसमें सर्प का अर्थवृत्ति न ग्रहण करे तो सर्प तो कुछ नहीं, वह जेवरी ही है, ऐसे अर्थभेद ग्रहण न करें तो ज्ञान ही है, जितने पदार्थ भासते हैं, सब ज्ञानरूप ही हैं, और कुछ बना नहीं, हे रामजी! स्वप्न के दृष्टान्त मैंने तुझको जतलाने के लिये कहे हैं, वास्तव से स्वप्न भी कोई नहीं, अद्वैतसत्ता अपने आप में स्थित हैं, जैसे समुद्र सदा जलरूप है, द्रवता से तरंग बुद्बुदे भासते हैं, वह नानारूप नहीं और नाना हो भासता है, ऐसे सर्वजगत् अनानारूप हैं, और नाना रूप हो भासते हैं, तू अपने स्वप्न की स्मृति को विचारकर देख, जो तेरा

अनुभव ही नाना प्रकार हो भासता है, परन्तु कुछ हुआ नहीं, ऐसे यह जाग्रत जगत् भी तेरा अपना आप है, दूसरा कुछ नहीं, सदा निराकार निर्विकार आकाशरूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, राम बोले–हे भगवन्! यदि अद्वैत आत्मसत्ता निराकार निर्विकार सदा अपने आपमें स्थित है तो पृथ्वी कहां से उत्पन्न हुई है, जल कैसे उत्पन्न हुआ है, अग्नि, वायु आकाश, पुण्यपाप इत्यादिक कल्पनाएँ चिदाकाश से कैसे उत्पन्न हुई हैं, मेरे दृढ़ बोध के लिये कहो? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह तुम कहो कि स्वप्न में जो पृथ्वी उत्पन्न होती है, वह कहाँ से उत्पन्न है, और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य कहां से उत्पन्न हुए हैं, देशकाल पदार्थ कहां से उत्पन्न हुए हैं, रामजी बोले–हे मुनीश्वर! स्वप्न में जो पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश देशकाल पदार्थ भासते हैं, सब आत्मारूप होते हैं, आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों होती है,तत्ववेत्ताको यथावत् भासती है, और जो असम्यक्दर्शी हैं, उनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, भासना तुमको तुल्य होता है, परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ को ग्रहण नहीं करती, उसको वही वस्तु अपररूप हो भासती हैं, हे मुनीश्वर! अपर जगत् कुछ बना नहीं, वही आत्मसत्ता स्थित है, कठोर रूप की संवेदन फुरती है, तब पृथ्वी, पहाड़रूप हो भासती है और द्रवता का स्पन्द फुरता है, जब जलरूप हो भासता है, और उष्णरूप की संवेदन फुरती है, तब अग्नि भासती है, इसी प्रकार वायु आकाशदिक पदार्थ जैसे फुरना होता है, ऐसे हो भासता है, जैसे जल तरंग रूप हो भासता है, परन्तु जल से इंतर कुछ नहीं, जलरूप है, ऐसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, वही रूप है, अपर कुछ वस्तु नहीं, यह गुण क्रिया सब आकाश में है, वास्तव कुछ नहीं, क्योंकि जो कारण से रहित है, वह सब असत् रूप है, अहंत्व से लेकर जितना कुछ जगत् भासता है, सब आकाशरूप है, कुछ बना नहीं, अपने आपमें आत्मसत्ता स्थित है, न कोई आधार है, अद्वैत सत्ता सदा अपने आपमें स्थित है, और नानारूप हो भासती है, जब चित्त संवेदन फुरता है, तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ देशकाल हो भासता है,

कहीं सर्व आत्मा का ज्ञान फुरता है, कहीं परिच्छिन्नता भासती है, परन्तु वास्तव से कुछ बना नहीं, वही वस्तु है, जैसे उसमें फुरना फुरता है, ऐसा हो भासता है, अनुभव सत्ता परम आकाशरूप है, जिसमें आकाश भी आकाश रूप हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे चिदाकाशजगदेकता प्रतिपादनं नामैकाधिक त्रिशततमः सर्गः ॥३०१॥

द्वयधिक त्रिशततमः सर्गः ३०२

जगदाभास वर्णनम् ।

रामजी बोले–हे भगवन्! जब जाग्रत् और स्वप्न में कुछ भेद नहीं और परम आकाश रूप है तो उस सत्ता को जाग्रत् और स्वप्न शरीर के साथ कैसे संयोग है, वह तो निरवयव निराकार है, वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जितने आकार तुझको भासते हैं, सब आकाशरूप हैं, आकाश में आकाश स्थित है, स्वर्ग के आदि में आकाश का अभाव था, अब भी वही जान लो कि उत्पन्न कोई नहीं हुआ, परम आकाश सत्ता अपने आपमें स्थित है, जब उस द्वैत अद्वैत सत्ता चिन्मात्र में चित्त किंचन होता है, तब वही सत्ता आकार की नाईं भासती है, परन्तु कुछ हुआ नहीं, आकाश रूप ही है, जैसे स्वप्न में शरीरों का अनुभव करता है, वह कुछ आकार तो नहीं होते, आकाश रूप होते हैं, ऐसे यह जगत् भी निराकार है, परन्तु फुरने से आकार हो भासता है, जिन तत्वों से शरीर होता है, वे तत्व ही उत्पन्न नहीं हुए तो शरीर की उत्पत्ति कैसे कहूं, हे रामजी! अपर जगत् कुछ उत्पन्न नहीं, ब्रह्म ही किंचन से जगत् रूप हो भासता है, जैसे जल और द्रवता में भेद नहीं, जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं, संवेदन से अर्थ संकेत हैं, जब संवेदन न फुरे, तब असंकेत न हो, भिन्न भिन्न वस्तु से एक ही सत्ता के नाम हैं, भिन्न नाम तब

भासते हैं, जब वेदना फुरती है, नहीं तो वस्तुतः भेद कुछ नहीं, जैसे वायु और स्पंद में भेद कुछ नहीं, परन्तु स्पन्द रूप हो भासती है, निस्पन्द नहीं भासती, परन्तु दोनों रूप वायु के हैं, ऐसे स्पन्द से ब्रह्म में किंचन जगत् भासता है, जब संवेदन नहीं फुरती, तब जगत् नहीं भासता परन्तु दोनों रूप ब्रह्म ही हैं, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं, जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं, एक स्वप्न दूसरा सुषुप्ति, परन्तु दोनों एक निद्रा के पर्याय हैं, ऐसे जगत् का होना और न भासना एक ब्रह्म की दोनों संज्ञाएं हैं, कोई ब्रह्म कहो कोई जगत् कहो, ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, ब्रह्म ही जगत् रूप हो भासता है, जैसे निर्मल अनुभव से स्वप्न में शिला भास आती है, वह शिला तो स्वप्न में उत्पन्न नहीं हुई, अपना अनुभव ही शिलारूप हो भासता है, ऐसे जितने आकार अब भासते हैं, वे जब आकाशरूप हैं, आत्मसत्ता ही आकाशरूप जगत् हो भासती है, अपर जगत् कुछ उत्पन्न नहीं होता, न सत् है, न असत् हैं, न आता है, न जाता है, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, राम बोले—हे मुनीश्वर! आगे आपने मुझे अनेक सृष्टियां कहीं हैं, अब प्रश्न यह है कि हमारी सृष्टि किससे उत्पन्न हुई है? वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! प्रश्न वही करता है जो अपूर्व होता है, जो आगे देखा और सुना न हो, और जगत् से जाना भी न हो, इस जगत् की उत्पत्ति वेदपुराण कहते हैं, और लोक में भी प्रसिद्ध हैं, जो ब्रह्म से हुई है और वास्तव में आकाशरूप है, कुछ उत्पन्न नहीं हुई, यह दोनों प्रकार मैंने तेरे लिये कहे हैं, उनको तू जानकर भी प्रश्न करता है, वह तेरा प्रश्न नहीं बनता, रामजी बोले—हे मुनीश्वर! यह सृष्टि कितनी है, और कहां तक चली जाती है, और कब तक रहेगी? वसिष्ठजी ने कहा—हे रामजी! जितनी सृष्टि तू जानता है, वह सृष्टि कोई नहीं, ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है, और सृष्टि बहुत है, परन्तु वास्तव से कुछ हुई नहीं, आदि मध्य अन्त से रहित है, वह ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है और सृष्टि बहुत है, परन्तु वस्तुतः कुछ हुई नहीं, आदिमध्य अन्त से रहित है, ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, और यह जितनी सृष्टि है,

आभासमात्र है, ब्रह्म जो आदिमध्य अन्त से रहित है, उसको आभास भी वैसा ही है, जैसा वृक्ष होता है, उतनी ही छाया होती है, उस ब्रह्म का आभास सृष्टि है, और वास्तव से कोई पूछे तो आभास भी कोई नहीं ब्रह्म की अपने आपमें स्थिति है, वही जगत्‌रूप आपको देखता है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, जैसे स्वप्न में पर्वत नदी आयुध नाना प्रकार के व्यवहार के रूप धारण कर आत्मसत्ता स्थित होती है, वह कुछ बना नहीं, जैसे संकल्प नगर भासता है, ऐसे यह जगत् भी जान लो, और कुछ बना नहीं, आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, यदि जगत् भी किसी कारण से उत्पन्न हुआ होता तो सत् होता, इसका कारण कोई नहीं, इसलिये असत् है, न कोई निमित्त कारण पाया जाता है, न समवायिकरण पाता है, हे रामजी! जो कारण से उत्पन्न हुआ न हो, और प्रतीत होता हो, उसे आकाशमात्र स्वप्न पुरवत् जानो, और जिसमें आभास भासता है, वह अधिष्ठान् सत्ता है, जैसे जेवरी में सर्प भासता है, वह सर्प कुछ नहीं, जेवरी ही सत् होती है, ऐसे जगत् अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, वही सत् हैं, शुद्ध है, निःदुःख है, अच्युत है, विज्ञान है, सदा अपने आपमें स्थित है, वही सत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे जल ही तरंगरूप हो भासता है, ऐसे ब्रह्मा ही जगत्‌रूप हो भासता है, हे रामजी! यह जगत् ब्रह्म का हृदय है, अर्थात् यह जो अपना स्वभाव है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, ज्ञानी को सर्वदा ऐसे ही भासता है, जैसे स्वप्न से जागे तब अपना आप ही भासता है, ऐसे यह जगत् अपना आप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे जगदाभास वर्णनं नाम द्व्यधिक त्रिशततमः सर्गः ॥३०२॥

त्र्यधिकत्रिशततमः सर्गः ३०३

राजप्रश्नवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस जगत् का कारण कोई नहीं, जो जगत् ही नहीं तो कारण कैसे हो? और कारण नहीं तो जगत् कैसे हो? इसलिये सब ब्रह्म ही है, इस पर एक उपाख्यान है, उसको सुनो–हे रामजी! कुशद्वीप में पूर्व और पश्चिम दिशा के मध्य में ऐलावती नगरी है, वह सोने की है, महा उज्ज्वल रूप है, उसके बड़े बड़े ऊंचे स्तंभ है, मानों पृथ्वी और आकाश को इन्होंने ही पूर्ण किया है, ऐसे वहां स्वर्ण के स्तंभ थे, उस नगरी का एक प्रागपति राजा है, एक समय आकाश से शीघ्र वेग से उसके घर में आया, उसने भले प्रकार अर्घ्य पाद्य के साथ प्रीति से मेरा पूजन किया और सिंहासन पर बैठाया, बैठाकर उसने मुझसे महाप्रश्न किया, जिस प्रश्न के बाद कोई प्रश्न नहीं है, राजा बोला–हे भगवन्! आप संशयरूप अंधकार के नाश करनेवाले सूर्य हो, मुझको संशय है, उसको दूर करो, हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होती है, तब कार्य कारण सब शब्द की कल्पना अभाव हो जाती है, उसके पीछे महाकाश सत्ता शेष रहती है, उसमें वाणी की गति नहीं, अवाच्य पद है, उससे फिर सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है, वहां उपादान कारण और निमित्त कारण तो कोई न था, सृष्टि कैसे हुई, श्रुति और पुराणों से सुना जाता है, कि महाप्रलय से फिर सृष्टि उत्पन्न हुई है, और दूसरे प्रश्न यह है, जम्बूद्वीप में कोई मृतक हुआ अथवा, कहीं अन्यत्र गया हुआ मर गया, तो उसका वह शरीर तो वही भस्म हो गया और परलोक में पुण्य पाप का फल दुःख भोगता है, जिस शरीर को भोगता है, उस शरीर का कारण कोई नहीं, यदि तुम कहो, पुण्य और पाप शरीर का कारण है तो पुण्य पाप आपही निराकार हैं, उनसे सार रूप शरीर कैसे उत्पन्न हो? और यदि तुम कहो परलोक कोई नहीं, पुण्य पाप भी कोई नहीं, तो श्रुति और

पुराण के वचनों के साथ विरोध होता है, सब ही वर्णन करते हैं, जो मरकर परलोक जाता है, जैसे कर्म किये हैं, वैसे भोगता है, और जिस शरीर के साथ भोग भोगता है, उसका कारण कोई नहीं, न पिता है, न माता है, वह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ, और तीसरा प्रश्न यह है, कि यह परलोक में जाता है, उसके निमित्त दान पुण्य करते हैं, उनका फल इसको कैसे प्राप्त होता है, और चौथा प्रश्न यह है कि महाप्रलय से ब्रह्म उत्पन्न हुआ है, उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ, जो महाप्रलय से उत्पन्न न हुआ हो, और अपने आपही उत्पन्न हुआ हो, इस कारण से स्वयंभू कहाता है और महाप्रलय में शेष अद्वैत रहा था, उससे उत्पन्न हुआ है, तो भी स्वयंभू कैसे कहा जाय, यदि कहो स्वयंभू अपने आपमें उत्पन्न होता है, अपना आप आत्मा है, वह सबका अपना आप है, अब क्यों नहीं उससे स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न होता, और पांचवां प्रश्न यह है, कि एक पुरुष था, उसका एक मित्र था, एक शत्रु था, उन दोनों ने प्रयाग में जाकर करपत्र लिया, जो इनका मित्र था, उसने इच्छा की कि मेरा मित्र चिरंजीव हो, दूसरे ने यह इच्छा की कि मेरा शत्रु इसी समय मर जाय, हे मुनीश्वर! एक काल में दो अवस्थाएँ कैसे होगीं, और छठां प्रश्न यह है, कि एक हजार आदमी ध्यान लगाकर बैठे हैं, कि हम इसी आकाश में चन्द्रमा हों एक ही आकाश में हजार चन्द्रमा कैसे होंगे, और सप्तम प्रश्न यह है, कि सहस्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे हैं, और वहां एक स्त्री बैठी है, सब उसकी इच्छा करते हैं कि हमको पति बनाये, स्त्री पतिव्रता है, उसके एक काल में सहस्र भर्ता कैसे होंगे, और आठवाँ प्रश्न यह है, एक पुरुष था, उसको किसी ने वर दिया कि तू मरकर सप्तद्वीप का राज्य कर, और किसी ने शाप दिया कि तेरा जीव अपने ही घर में रहेगा, मृतक होकर बाहिर न जायेगा, यह दोनों वर शाप एक ही काल में कैसे होंगे, और नवम प्रश्न यह है कि एक काष्ठ का स्तंभ था उसको एक ने कहा, स्वर्ण का हो जायेगा, वह स्वर्ण का हो गया, वह स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ, उसका कारण कोई न था, कारण बिना कार्य कथं भवति, कारण बिना कार्य कैसे उत्पन्न

होता है, जैसा अन्न का बीज होता है, ऐसा ही अन्न कार्य उत्पन्न होता है, अपर नहीं उगता, तो काष्ठ से स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ और यदि कहो, संकल्प से उत्पन्न हुआ तो हम भी संकल्प करते हैं, हमारा कार्य ऐसे हो, वह क्यों नहीं होता? इससे मालूम होता है कि संकल्प से भी उत्पन्न नहीं होता, हे मुनीश्वर! जिस प्रकार यह वृत्तान्त है, वह कहो, और एक कहते हैं, कि आगे असत् ही था, असत् से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, यह मुझको संशय है, उसको दूर करो जो कोई सन्त के निकट आ प्राप्त होता है, वह निष्फल नहीं जाता, इसलिये कृपा करके कहो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे राजप्रश्नवर्णनं नामत्र्यधिक त्रिशततमः सर्गः ।।३०३।।

चतुरधिक त्रिशततमः सर्गः ३०४

प्रश्नोत्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझको संशयों का समूह कहा, तब मैंने उसे उत्तर दिया कि हे राजन्! जितने तेरे संशय हैं, मैं सब दूर करूंगा, जैसे सम्पूर्ण अंधकार को सूर्य नाश करता है, ऐसे मैं संशयों को नाश करूंगा, हे राजन्! जितना जगत् तुझको भासता है, सब ब्रह्मरूप है, सदा अपने आपमें स्थित है, जब उसमें चित्त ऐसे फुरता है, तब वही चित्त संवेदन जगत्रूप हो भासता है, इसलिये जो कुछ आकार भासते हैं, सब चिन्मात्ररूप हैं, न कोई कार्य है, न कारण है, और यदि तू प्रत्यक्ष प्रमाण से संशय करे कि यदि सब चिन्मात्ररूप है तो यह शरीर जब मृतक हो जाता है, तब चेतना क्यों नहीं चाहिये, जो उस काल में भी इसमें जानना होवे तो हे राजन्! जब जाग्रत् का अन्त होता है और स्वप्न आया नहीं, तब शुद्ध चिन्मात्र रहता है, जब उसमें स्वप्न सृष्टि भास आती है, उस सृष्टि में कई चेतन भासते हैं, कई मृत्तक कई जड़ भासते हैं,

स्थावर जंगम नाना प्रकार की सृष्टि भासती है, परन्तु अपर तो कुछ हुआ नहीं, वहीं चिन्मात्र स्वरूप है, वही अनुभवरूप हो प्रतीत होती है, कहीं चेतन बोलते चालते भासते हैं, परन्तु वही हैं, यदि चेतनता न होती तो भासते कैसे, क्योंकि भासते हैं, इसलिये सब चेतन हैं, ऐसे इस जगत् में कहीं बोलते चालते भासते हैं, कहीं शव भासते हैं, परन्तु वही चिन्मात्र सत्ता है, जैसा जैसा संकल्प उसमें फुरता है, वैसा वैसा हो भासता है, हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलय से सृष्टि उत्पन्न हुई थी, ऐसे उत्पत्ति होती है, यह सृष्टि किसी का कार्य नहीं, और किसीका कारण भी नहीं, बिना कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है, हे राजन्! जो महाप्रलय में शेष रहता था, वह चिन्मात्र है, उस चिन्मात्र से जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है, वह ब्रह्म विराटरूप होकर स्थित हुई, उसने जगत्कल्पना की है, उसमें नीति रची है, कि यह पदार्थ इस प्रकार है, ऐसे चित्त संवेदन में दृढ़ होकर भासा है, उसका नाम जगत् है, वही आत्मसत्ता किंचन रूप होकर जगत् रूप हो भासती है, हे राजन्! जैसे तेरे संकल्प की आदि और स्वप्न की आदि शुद्ध आत्मसत्ता थी, वही फुरणा से पदार्थ रूप हो भासती है, ऐसे ही यह जानिये। अपर न कोई कार्य है, न कोई कारण है, जैसे स्वप्न सृष्टि अकारण होती है, ऐसे यह जगत् अकारण है, जो आदि अन्त के विचार से रहित है, और वर्तमान प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं, उनको कार्य कारण प्रत्यक्ष भासते हैं, उनके वचन भी निरर्थक हैं, जैसे अन्ध कूप में दर्दुर शब्द करते हैं, ऐसे वे भी निरर्थक प्रत्यक्ष प्रमाण से कार्य कारण के बाद करते हैं, उनको हमारे वचन सुनने का अधिकार नहीं और हमको भी उनके वचन सुनना योग नहीं, हे राजन्! जिस शास्त्र के श्रवण से और जिस गुरु के बोलने से सम्पूर्ण संशय निवृत्त न हों, उस शास्त्र और गुरु का कहना भी अन्धकूप के दर्दुरवत् है अर्थात् व्यर्थ है जो परमार्थ सत्ता से विमुख हुए हैं, उनको यह भ्रम अपने आपमें भासता है, शरीर के मृत हुए आपको मरता जानते हैं कि मैं मर गया हूं, फिर वासना के अनुसार शरीर उत्पन्न होता जाता है, तब मानता है तब मैं उत्पन्न हुआ हूं, अपने

पुण्यपाप कर्म का अनुभव करता है, जैसे स्वप्न में अपने साथ शरीर देखता है, ऐसे परलोक में अपने साथ शरीर भास आता है, ऐसे यह शरीर सभी भास आया है न कोई उसका कारण है, न पांच भौतिक है, न इसका शरीर है, न किसी कारण से भूत उत्पन्न हुए हैं, अपनी कल्पना आकार रूप होकर भांसती है, अपना आकार कोई नहीं, केवल ब्रह्म सत्ता अपने आपमें स्थित है, जैसा संकल्प उसमें दृढ़ होता है, ऐसा पदार्थ भास आता है, हे राजन्! तू इस जगत् को सत् मानता है, तो सब कुछ सिद्ध होता है, शरीर भी है, परलोक भी है, नरक स्वर्ग भी हैं, जैसा यह लोक है, ऐसा परलोक है, यदि यह लोक निश्चय में सत् है तो वह लोक भी सत ही भासेगा, जैसा कर्म करेगा ऐसा फल भोगेगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे प्रश्नोत्तर वर्णनं
नाम चतुरधिक त्रिशततमः सर्गः ।।३०४।।

पंचाधिक त्रिशततमः सर्गः ३०५

द्वितीय प्रश्नोत्तर वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले—हे रामंजी! जितना जगत् तुझको भासता है, वह सब संकल्प मात्र है, जैसे कोई बालक अपने मन में वृक्ष को रचे, उसमें फूल फल शाखा आदि की कल्पना करे, वह संकल्पमात्र है, ऐसे यह जगत् संवेदन रूप ब्रह्मा की कल्पना है, उनके मन में फुरता है, संकल्परूप है, जैसे उसने संकल्प किया है, वैसे ही स्थित है, जैसे उसमें क्रम रचा है, जो इस प्रकार यह पदार्थ होगा, वह वैसे ही स्थित हुआ है, देशकाल पदार्थ ऐसे ही स्थित है, इसका नाम नीति है, हे राजन्! तुमने प्रश्न किया कि पुरुष अरूप है और दूर है, उसके अर्थ किसी ने दिया उसको कैसे पहुँचता है, और सरूप अरूप का कैसे संयोग है, जो कोई शुद्ध संवेदन पुरुष हैं, उनको सब पदार्थ निकट भासते हैं, और जो कोई पुरुष मनोराज्य की

कल्पना करता है, उसमें बड़ा देश रचे, वे मार्ग दूर से भी दूर हैं, तो जो उस देश के वासी हैं, उनको देश की अपेक्षा दूसरा देश दूर से दूर है, परन्तु जिसका मनोराज्य है, उसको तो सब निकट अपना आप ही है, इस प्रकार जो शुद्ध संवेदन रूप है, उसके लिये ईश्वर के लिये अथवा जो कोई देवता के लिये देता है, उसको निकट से निकट सब अपने में भासता है, आदि नीति इसी प्रकार हुई है कि शुद्ध संवेदन को सबअपने में निकट से निकट ही भासे, क्योंकि सब संकल्प है, जैसे रचना संकल्प में रची जाती है, ऐसे होती है, संकल्प में क्या नहीं होता और स्तंभ का प्रश्न जो तुमने किया है, काष्ठ का स्वर्ण कैसे होता है, वह सुनो। हे राजन्! आदि जो संवेदन रूप ब्रह्मा है, उसने अपने मनोराज्य में नीति की है, कि तप आदि करके इसका वर और शाप सिद्ध होता है, उसके कहने से जो काष्ठ का स्तंभ स्वर्ण हो गया तो तू विचार कर देख कि इस कारण से काठ का स्वर्ण हो गया है, वह संकल्प मात्र है, यदि संकल्प से इतर भी कुछ होता तो काष्ठ का स्वर्ण न होता और यह सर्व विश्व संकल्प रूप है, जैसा संकल्प दृढ़ होता है, ऐसा ही हो भासता है, जैसे तू अपने मनोराज्य में संकल्परूप करता है, कि यह ऐसे रहे, और यदि इससे अपर प्रकार करे और अपर हो जावे, वह होता है क्यों, ऐसे वर और शाप भी अपर प्रकार हो जाते हैं, न कोई अपर जगत् है, न कार्य है, न कारण है, वही आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है, जैसे संकल्प जिसमें फुरता है, ऐसे ही भासता है, और तू पूछता है असत् से पुनः जगत् कैसे उत्पन्न होता है, जो आपही न हो उससे जगत् कैसे प्रकट हो, हे राजन्! असत् इसी का नाम है, जो जगत् असत् था, उसे श्रुति ने असत् कहा, जो आदि असत् था, वह असत्ता जगत् की कही है, आत्मा तो असत् नहीं होता सबका शेष भूत आत्मा है, जब उसमें संवेदन फुरती है, तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप हो जाता है, परन्तु उस संवेदन के फुरने और मिटने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है, उसका अभाव नहीं होता, जल में तरंग उत्पन्न होते हैं, फिर लीन हो जाते हैं, परन्तु उनके उपजने मिटने में जल ज्यों का त्यों है, तरंग उसका आभास फुरते हैं, जैसे

तू मनोराज्य से एक नगर की कल्पना करे, फिर संकल्प छोड़ दे, तब संकल्परूप नगर का अभाव हो जाता है, परन्तु सदा अविनाशी रहता है, जैसे स्वप्न की सृष्टि उत्पन्न हुई है, और लीन भी हो जाती है, परन्तु अभिमान ज्यों का त्यों है, हे राजन्! जैसे रत्न का प्रकाश किरण उठती है, और लीन भी हो जाती है, परन्तु यत्न रत्न यथावत् रहता है, ऐसे आत्मा विश्व के भाव अभाव में यथावत् होता है, इसका आभास जगत् उत्पन्न होता मिटता भासता है, उत्पन्न होता है, तब उत्पत्ति भासती है, मिटता है, तब प्रलय हो जाती है परन्तु उभय आभास हैं, जैसे वायु फुरती है, तब भासती है, ठहर जाती है, तब नहीं भासती परन्तु वायु एक है, ऐसे आत्मा एक ही है, फुरणे का नाम उत्पत्ति है, अफुरने का नाम जगत् का प्रलय है, वह सब किंचनरूप है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे द्वितीयप्रश्नोत्तर नाम पंचाधिक त्रिशततमः सर्गः ॥३०५॥

षडधिक त्रिशततमः सर्गः ३०६

राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे राजन्! तुमने प्रयाग के दो पुरुषों का प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो, जो उसका शत्रु बन गया है, वह इसका पाप था और जो उसका मित्र बन गया था, वह उसका पुण्य था, प्रयाग तीर्थ धर्मक्षेत्र था, हे राजन्! पाप रूप वासना के अनुसार उसको मृत्यु भासती है और पुण्यरूप जो मित्र है, वह पापरूप शत्रु को रोकता है, पुण्यरूप तीर्थ की बल से हृदय से अल्परूप पाप शीघ्र भासता है और जब उसको मृत्यु आती है, तब आपको मरता जानता है कि मैं मरा हूं, भाई बन्धु कुटुम्बी रुदन करते हैं, जब अपनी ओर देखता है, तब जानता है कि मैं तो मरा नहीं, जब मृतक स्वर्ग की ओर देखता है, तब आपको मरा

जानता है, भाईजन रुदन करते हैं, इस प्रकार उसको मरना भासता है, भाई जान जलाने चले हैं, अग्नि में जलता देखता है, कि अग्नि में इन्होंने मुझको डाला है, मैं जलता हूं, जब फिर पुण्य की ओर देखता है, तब जानता है कि मैं मरा नहीं, जीता हूं, जब फिर पाप की ओर देखता है, तब जानता है कि मैं मरा हूं, मुझको यमदूत ले चले हैं, यह परलोक में सुख दुःख भोगता है, जब फिर पुण्य की ओर देखे तब जाने कि मैं मरा नहीं जीता हूं, यह मेरे भाई बन्धु बैठे हैं, यहां मेरी व्यवहार चेष्टा होती है, इस प्रकार उभय अवस्था को एक पुरुष देखता है, जैसे संकल्प पुर में उभय अवस्था देखे, एकही पुरुष नाना प्रकार की चेष्टा करता है, ऐसे एक ही पुरुष को पुण्य पाप की वासना से जीना मरना भासता है, हे राजन्! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्प मात्र है, जैसा संकल्प दृढ़ होता है, ऐसा रूप हो भासता है। परलोक जाना भी अपनी वासना के अनुसार भासता है और जो कुछ उसके निमित्त बान्धव पुत्र देते हैं, वे पुत्र बांधव भी उसकी पुण्य पाप वासना से स्थित हुए हैं। जो कुछ उसके निमित्त करते हैं, उनसे यह सुख दुःख स्वर्ग नरक भोगते हैं, अपर कोई बांधव पुत्र नहीं, उसकी वासना ही नाना प्रकार के आकार को धारण कर स्थित हुई है, हे राजन्! सहस्र चन्द्रमा का तुमने प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। सहस्र इसी आकाश में होते हैं, अपनी अपनी वासना से कला संयुक्त चंद्रमा हो विराजते हैं, परन्तु एक को दूसरा नहीं जानता, परस्पर अज्ञात है, जो अंतवाहक दृष्टि से देखे, उसको भासता है, हे राजन्! जो कोई ऐसे भावना करे कि मैं उसके मंडल को प्राप्त हो जाऊं तो तत्काल जाकर प्राप्त होता है, जैसे एक ही मंदिर में अनेक मनुष्य सोये हैं, उनको अपने अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है, वह अन्योन्य विलक्षण है, एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता, ऐसे एक आकाश में सहस्रों चन्द्रमा बनते हैं, जैसे इन्द्र ब्राह्मण के दश पुत्र ब्रह्मा हो बैठे, ऐसे ही जिसके लिये तीव्र भावना की जाय, वह कार्य हो जाता है, यदि कोई भावना करे कि हम इसी मंदिर में सप्त द्वीप का राज्य करें, तो हो जाता है, क्योंकि अनुभव रूप

कल्प वृक्ष है, जैसी तीव्र भावना उसमें होती है, ऐसी हो भासती है। वर के वश से उस पुरुष को सप्त द्वीप का राज्य प्राप्त हुआ और शाप के वश से उसका जीव उसी मंदिर में रहा, उस मंदिर ही में द्वीप का राज्य किया, जैसे स्वप्न में राज्य करे, ऐसे अपने मंदिर में अपनी संवेदन ही सृष्टि रूप हो भासती है, इस प्रकार जो एक स्त्री की भावना करके सहस्रों पुरुष ध्यान लगाये बैठे हैं कि हम इसके भर्ता हों, वे भी हो जाते हैं, हे राजेन्! उनकी जो तीव्र भावना है, वही स्त्री का रूप धारण कर उनको प्राप्त होगी। वह समझेंगे कि वही स्त्री हमको मिली है, यह जगत् केवल संकल्प मात्र है, संकल्प से इतर कुछ वस्तु नहीं, सब चिदाकाश रूप है, अपने अनुभव से प्रकाशित होता है, जैसे उसमें संकल्प फुरता है, ऐसे हो भासता है। पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोई नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार स्थित है, परम शान्त है। निराकार, निर्विकार, अद्वैत एकरूप है। राजा बोला–हे मुनीश्वर! जगत् के आदि में जो आत्मसत्ता थी, वह किस आकाररूप द्रेह में स्थित थी, देह बिना तो स्थित नहीं होती, जैसे आधार बिना दीपक नहीं रहता, आधार होने पर जगता है, ऐसे आत्मसत्ता किसमें स्थित थी? वसिष्ठजी बोले–हे राजन्! जितने आकार तुझको भासते हैं, जिनको देखकर तुमने प्रश्न उठाया है, वह है नहीं। ब्रह्म सत्ता ही अपने आप में स्थित है, जिन भूतों से देह बना प्रतीत होता है, वे भूत भी मृगतृष्णा के जलवत् है, जैसे जेवरी में सर्प भ्रममात्र है, जैसे सीपी में रूप, जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है, अत्यन्त अभाव है, ऐसे यह भूताकार ब्रह्म में भ्रम से भासते हैं, अत्यन्ताभाव है। कुछ बने नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है और तुमने पूछा था कि ज्यों स्वयंभू अपने आप से उत्पन्न होते हैं, तो अब क्यों नहीं होते? हे राजन्! कई इसके सदृश पड़े उत्पन्न होते हैं, अनेक सृष्टियां हैं, वास्तव से उत्पन्न नहीं हुई। कहीं कुछ नाना प्रकार भासता है, परंतु नाना प्रकार हुआ नहीं। जैसे स्वप्न में सदा तू देखता है, जो अद्वैत अपना आप ही नानारूप हो भासता है, पर्वत पर दौड़ता फिरता है, वह किसी शरीर से

दौड़ता है और क्या रूप होता है, जैसे वह पर्वत भी आकाशरूप है, शरीर भी आकाशरूप होता है, भ्रम से पिंडाकार भासता है, ऐसे यह जगत् भी आकाशरूप है, भ्रम से पिंडाकार भासता है, हे राजन्! तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख, यह जगत् सब तेरा अनुभव आकाश है, स्वप्न का दृष्टान्त भी मैंने तेरे समझाने के लिये कहा है, स्वप्न भी कुछ हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, जब उसमें संवेदन फुरती है, तब वही जगत् रूप हो भासती है, जब आभास संकल्प मिट जाता है, तब प्रलय काल भासता है, वास्तव में न कोई उत्पत्ति होती है, न प्रलय हुई है, ज्यों की त्यों आत्मसत्ता स्थित है, जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं, एक स्वप्न, दूसरी सुषुप्ति। जो जाग्रत में दोनों आकाश मात्र होती हैं, ऐसे आभास की दो संज्ञाएँ होती हैं। एक जगत् और दूसरी महा प्रलय। आत्मरूप जाग्रत् में दोनों का अभाव हो जाता है, हे राजन्! तू स्वरूप में जगकर देख, जितनी कुछ कलना है, उसको त्यागकर देख। सब आत्मरूप है, अन्य कुछ नहीं, हे रामजी! इस प्रकार राजा को कहकर मैं उठ खड़ा हुआ, उसने भली प्रकार प्रीति संयुक्त पूजन किया। जब पूजन कर चुका, तब मैं जिस कार्य के लिये आया था, उसको पूर्ण करके स्वर्ग को चला गया।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे राजप्रश्नोत्तर समाप्तिवर्णनं नाम षडधिकत्रिशततमः सर्गः ॥३०६॥

सप्ताधिकत्रिशततमः सर्गः ३०७

पूर्वराम कथा वर्णनम् ।

वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह जगत् सब चिदाकाश रूप है, अपर द्वितीय कुछ बना नहीं। रामजी बोले–हे भगवन्! तुम कहते हो सब चिदाकाश है, कुछ बना नहीं, यह तो सिद्ध, साध्य, विद्याधर, लोकपाल, देवता इत्यादिक लोक भासते हैं, लोक और लोकपाल कुछ बने क्यों

नहीं? वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह जो सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता इनसे लेकर जो लोक और लोकपाल है, वस्तुतः उत्पन्न नहीं हुए, भ्रम से इनकी सत्यता भासती है, जैसे मृग तृष्णा की नदी, जैसे जेवरी में सर्प, जैसे सीपी में रूपा, जैसे संकल्प नगर, ऐसे आत्मा में यह जगत् है। हे रामजी! जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की रचना भासती है, परन्तु कुछ हुआ नहीं, ऐसे यह जगत् है, जो पुरुष इसको देखकर सत् मानता है, वह सम्यग्दर्शी नहीं, जो आत्मा को देखता है, वही सम्यग्दर्शी है, हे रामजी! यह लोक और लोकपाल जगत् सत्ता में ज्यों के त्यों है, जैसे स्थित है, ऐसे ही है और परमार्थ से पैदा नहीं हुए, अनुभव सत्ता ही संवेदन से दृश्यरूप हो भासती है, द्रष्टा ही दृश्य रूप हो भासता है, परन्तु स्वरूप से इतर कुछ नहीं हुआ, जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं, जैसे अग्नि और उष्णता में भेद नहीं, ऐसे ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। हे रामजी! अब तू एक और वृत्तान्त सुन, स्वप्न में जैसे अब हम हैं, ऐसे एक आगे भी चित्त प्रतिमा हुई थी, पूर्व एक कल्प में तुम और हम हुए थे, तू मेरा शिष्य था और मैं तेरा गुरु था। एक वन में तुमने मुझसे प्रश्न किया कि हे भगवन्! मुझे एक संशय है, उसको निवृत्त कीजिये कि महाप्रलय में नाश क्या होता है और अविनाशी क्या रहता है? गुरुजी बोले–हे तात! जितना कुछ शेष विशेष रूप जगत् है, सब नाश हो जाता है, जैसे स्वप्न का नगर सुषुप्ति में लीन हो जाता है, ऐसे सब जगत् लीन हो जाता है, निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, अपर क्रिया, काल, कर्म सब नाश हो जाता है, आकाश भी नाश हो जाता है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, पहाड़ नदियाँ, आदि जो जगत् है, क्रिया काल द्रव्य संयुक्त सब नाश हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र यह जो कार्य के कारण हैं, उनका नाम भी नहीं रहता, संवेदन शक्ति जो है, चेतनकाल लक्षणरूप, वह भी नहीं रहती, अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाश ही शेष रहता है, शिष्य बोला–हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत् होती है, उसका नाश नहीं होता और जो असत् होती है, वह आभास रूप है, यह जगत् तो विद्यमान भासता है,

महाप्रलय में कहां जायेगी। गुरु महाराज बोले–हे तात! जो सत् है, उसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो असत् है, उसका भाव नहीं, जितना जगत् तुझको भासता है, सब भ्रम मात्र है, इसमें कोई वस्तु सत् नहीं भासती, परन्तु स्थित नहीं रहता, मृग तृष्णा का जल स्थित नहीं, जैसे दूसरा चन्द्रमा भासता है, वह भ्रम मात्र है, जैसे आकाश में तरवरे भ्रम से भासते हैं, ऐसे यह जगत् जो भासता है, भ्रम मात्र है, जैसे स्वप्न नगर प्रत्यक्ष भी भासता है, परन्तु भ्रम मात्र है, ऐसे यह जगत् भ्रम रूप जानिये। हे तात्! आत्मसत्ता सर्वदा अपने आप में स्थित है, जैसे स्वप्न में जाग्रत का अभाव होता है और जाग्रत में स्वप्न का अभाव होता है, वह सृष्टि कहाँ जाती है, जैसे जाग्रत में स्वप्न सृष्टि का अभाव हो जाता है, ऐसे महा प्रलय में इसका अभाव हो जाता है, शिष्य बोला–हे भगवन्! यह जो भासता है, वह क्या है और जो नहीं भासता, वह क्या है, इसका रूप क्यों है और चिदाकाश से कैसे हुआ है? गुरुजी बोले–हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाश में किंचन संवेदन फुरती है, तब जगत् रूप हो भासती है, इसलिये इसका रूप भी चिदाकाश ही है। चिदाकाश से इतर कुछ नहीं, सृष्टि और प्रलय दोनों उसी के रूप हैं, जब संवेदन फुरती है और जब संवेदन अफुर होती है, तब प्रलय रूप हो भासती है, दोनों उसके रूप हैं, जैसे एक ही वपु में दो स्वरूप हैं, दन्तों से शुक्ल लगता है और केशों से कृष्ण लगता है, ऐसे आत्मा में सर्ग और प्रलय दो रूप होते हैं, दोनों आत्मरूप हैं, जैसे एकही निद्रा की दो अवस्थाएँ होती हैं। एक स्वप्न और दूसरी सुषुप्ति और जाग्रत में दोनों नहीं, ऐसे निद्रारूप संवेदन में सर्ग और प्रलय भासते हैं और जाग्रत में रूप आत्मा में दोनों का अभाव है, हे तात! जो कुछ तुझको भासता है, सब चिदाकाश रूप है, अपर कुछ नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है। जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही जगत् रूप हो भासता है, ऐसे आत्मा में जगत् भासता है। शिष्य बोला–हे भगवन्! यदि इसी प्रकार है, यदि द्रष्टा ही दृश्य रूप हो भासता है, तो अपर जगत् तो कुछ नहीं हुआ। क्यों सब वही है? गुरुवर बोले–हे तात!

इसी प्रकार है, अपर जगत् कुछ वस्तु नहीं, चिदाकाश जगत् रूप हो भासता है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है, अपर कुछ नहीं, क्योंकि सब उसी का किञ्चिन है,सब में सर्वदा सर्व प्रकार सृष्टि होकर फुरती है और किसी में किसी समय किसी प्रकार कुछ हुआ नहीं। आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है, जो कुछ जगत् भासता है, उसे वही रूप जानिये, जिसको तू सर्ग कहता है, जिसको तू प्रलय कहता है, सब आत्मसत्ता के नाम हैं, वही सब में सर्वदा काल सर्व प्रकार से स्थित है, वही एक परम देव घट पट रूप जल तृण अग्नि पृथ्वी आकाश स्थावर, जंगम, सत्, असत्, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल मूर्ति, अमूर्ति बन्ध मोक्ष से लेकर जितने शब्द व्यवहारोपयोगी सिद्ध होते हैं, सब आत्मरूप हैं, सब में सदा सर्व प्रकार आत्मा ही है और जिसमें सर्वदा सर्वकाल सर्व प्रकार नहीं, वही भी आत्मा ही है, सदा ज्यों का त्यों है, जैसे स्वप्न में सब कुछ भासता है, वह सब कुछ आत्मा ही है और दूसरा कुछ बना नहीं, हे तात! तृण ही कर्ता है, तृण की भोक्ता है, तृण ही सर्वेश्वर है, घट कर्ता है, घट भोक्ता है, घट ही सर्वेश्वर है। पट कर्ता है, पट भोक्ता है, पट ही परम ईश्वर है, नर कर्ता है, नर भोक्ता है, नर ही सर्वेश्वर है, इसी प्रकार एक एक वस्तु के नाम से जो वस्तु है, वह कर्ता, भोक्ता सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है, सब आत्मरूप है, क्षय और उदय, अन्तर बाहिर, कर्ता भोक्ता, सब ईश्वर है, विज्ञान मात्र हैं, कर्ता भोक्ता वही है और न कर्ता है, न भोक्ता है। विधि मुख से भी वही है और निषेध भी वही है, शुद्ध दृष्टि से सब चिदात्मा ही भासता है और सर्व दुःखों से रहित है और जिनको आत्म दृष्टि नहीं प्राप्त हुई है, उनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है, वह कैसा जगत् है, जो अनुभव से इतर कुछ नहीं, ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ। हे रामजी! इस प्रकार मैंने तुम्हें पहिले कहा था, परन्तु उससे तुमको बोध नहीं हुआ, अभ्यास की ऊनता से वही संस्कार तुझे अब प्राप्त हुआ है, इस कारण से अब तू जगा है, हे रामजी! अब तुम अपने स्वरूप में स्थित हुए हो, इसलिये कृतार्थ

हो गये, अपनी राजलक्ष्मी को भोगो, प्रजा पालन करो, अन्दर से आकाशवत् निर्लेप रहो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे पूर्वरामकथावर्णनं नाम सप्ताधिकत्रिशततमः सर्गः ।।३०७।।

अष्टाधिकत्रिशततमः सर्गः ३०८

उत्साह वर्णनम् ।

वाल्मीकि मुनि बोले–हे भारद्वाज! जब वसिष्ठजी ने इस प्रकार रामजी को कह रहे थे, तब आकाश पर से सिद्धगण तथा देवता लोग पुष्प वृष्टि करने लगे, मानों मेघ हिम (बरफ) बरसा रहे हों, मानों आकाश कम्पित हुआ है, उससे तारे गिर रहे हैं, जब वे वृष्टि कर चुके, तब राजा दशरथ उठ खड़े हुए और अर्घ्य पाद्य द्वारा पूजन किया, हाथ जोड़कर कहने लगे–बड़ा कल्याण हुआ, बड़ा हर्ष हुआ। हे मुनीश्वर! आपकी कृपा से हमें आत्मपद की प्राप्ति हुई है। अब कृत कृत्य हुए हैं, चित्त का वियोग हुआ है, उससे दृश्य के फुरने का भी अभाव हुआ है, हम अचेत चिन्मात्र हैं, परम पद को प्राप्त हुए हैं, सब संताप मिट गये हैं, जो संसार रूप अंधमार्ग था, उससे थके हुए विश्रान्ति को प्राप्त हुए हैं, अब मैं पहाड़ की नाईं अचल हुआ हूं, सब आपत्तियों से मुक्त हो गया हूं, जो कुछ जानने योग्य था, जान चुका हूं, हे मुनीश्वर! आपने बहुत युक्तियों से और द्रष्टान्तों से जगाया है, शून्य के दृष्टान्त और सीपी में रूप, मृगतृष्णा में जल, जेवरी में सर्प, आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नाव से नदी किनारे चलते भासते हैं। जल में तरंग, स्वर्ण में भूषण, वायु का फुरना, गन्धर्व नगर संकल्प पुर से लेकर जितने दृष्टान्त कहे हैं, उनसे हमने जान लिया है कि आत्मसत्ता से इतर कुछ नहीं, तुम्हारी कृपा से ऐसे जाना है। वाल्मीकि मुनि बोले–जब इस प्रकार दशरथ ने कहा तब रामजी उठे और इस प्रकार हाथ जोड़कर कहने लगे। रामजी बोले–हे

मुनीश्वर! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ है, अब मैं परम पद को प्राप्त हुआ हूं, किसी में न मुझे राग है, न द्वेष है, परम शान्ति को प्राप्त हुआ हूं, न मुझे अब कुछ करने से प्रयोजन है, न कुछ न करने से हानि है। मैं परम शान्त पद को प्राप्त हुआ हूं, हे मुनीश्वर! तेरे वचन का स्मरण करके मैं आश्चर्य को प्राप्त होता हूं, तथा प्रसन्न होता हूं। संदेह नष्ट हो गये हैं, अब मुझ को अपर नहीं भासता, सब ब्रह्म ही भासता है। लक्ष्मण बोले–हे भगवन्! मैं सन्तों के वचन इकट्ठे करता रहा था और सम्पूर्ण जो मेरे पुण्य थे, सब इकट्ठे हुए थे, अब सबका फल निकला है कि मैं सब संशयों से रहित हुआ परम पद को प्राप्त हुआ हूं, तुम्हारे कृपा भरे वचन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं अथवा उससे भी अधिक हैं, इनसे मैंने परम शान्ति पाई है, दुःख सन्ताप सब नष्ट हुए हैं। शत्रुघ्न बोले–हे मुनीश्वर! जरा और मृत्यु का भय आपने दूर कर दिया है। आपने अमृत वचनों का सुधारस पान कराया है। हमारे सब संशय नष्ट हुए हैं, हम आत्मपद को प्राप्त हुए हैं, हमारे जो कोई चिरकाल के पुण्य थे, उनका फल आज पाया है। विश्वामित्र बोले–हे मुनीश्वर! सब तीर्थों में स्नान करने से ऐसा पवित्र नहीं हो सकता। अन्य कर्मों से भी ऐसे पवित्र नहीं हो सकते, जैसे कि आपके वचनों से हुए हैं, आज हमारे श्रवण पवित्र हुए हैं, नारदजी बोले–हे मुनीश्वर! ऐसा मोक्ष उपाय मैंने देवताओं में भी नहीं सुना, सिद्धों के स्थानों में भी नहीं सुना, ब्रह्माजी के मुख से भी नहीं सुना, हे मुनिवर! तुमने पूर्ण उपदेश किया है, इसके श्रवण करने से कोई संशय नहीं रहता, राजा दशरथ बोले–हे मुनीश्वर! आत्मज्ञान जैसी कोई सम्पत्ति नहीं, इसलिये आपने हमको परम सम्पत्ति दी है, जिसके पाने से किसी वस्तु के पाने की इच्छा नहीं रही। अब तो हम अपने स्वभाव में स्थित हुए हैं। सम्पूर्ण कर्म हमको छोड़ गये हैं और यह जो तुम्हारे वचन सुने हैं, हमारे बहुत जन्मों के इकट्ठे हुए पुण्यों का फल है, श्री रामजी बोले–हे मुनिवर! बहुत बड़ी प्रसन्नता का समय है कि हमको सर्व सम्पत्तियों का अधिष्ठान प्राप्त हुआ है और सब आपत्तियों का अन्त

हुआ है। ज्ञानशून्य पुरुष बड़े भाग्यहीन हैं, जो आत्मपद को त्यागकर अनात्मपदार्थ की ओर दौड़ते हैं, वे भी यत्न से ही मिलते हैं। इनसे विमुख हो तो आत्मपद की प्राप्ति होती है, उस आत्मपद को पाकर मैं परम शान्ति को प्राप्त हुआ हूं, हर्ष शोक से रहित हुआ हूं, अचल पद को प्राप्त हुआ हूं, अविनाशी हूं, सदा अपने आप में स्थित हूं, आपकी कृपा से अपने अपने आप को प्राप्त कर सका हूं। श्री लक्ष्मणजी बोले–हे मुनीश्वर! सहस्रों सूर्य एकत्र उदय हों, तो भी हृदय के तम को दूर नहीं कर सकते, उस तम को आपने दूर किया है, सहस्रों चन्द्रमा इकट्ठे हों तो अन्दर की तपश को निवृत्त नहीं कर सकते, आपने सकल संताप को दूर कर दिया है। हम सन्ताप रहित पद को प्राप्त हुए हैं, वाल्मीकि मुनि बोले–हे साधो! जब इस प्रकार सब लोग कह रहे थे, तब वसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस मोक्ष कथा को सुनकर जितने कुछ ब्राह्मण हैं, उनको यथा योग्य पूजन करो और दान करो, जो इतर जीव हैं, वह भी यथाशक्ति पूजन करते हैं, तुम तो राजा हो, जब इस प्रकार वसिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने उठकर दस हजार मथुरावासी विद्वान ब्राह्मणों को भोजन कराया। दक्षिणा में वस्त्र, भूषण, घोड़े, गाँव आदि दिये गये। यथायोग्य पूजन किया गया, बड़ा उत्साह हुआ, अंगनाएँ नृत्य करने लगीं। नगारें, शहनाई आदि बाजे बजने लगे, सात दिन सब ब्राह्मण अतिथि निर्धन सबका द्रव्य से पूजन किया। अन्न वस्त्रादि से सबको प्रसन्न किया।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे उत्साहवर्णनं
नामाष्टाधिकत्रिशततमः सर्गः ॥३०८॥

नवाधिकत्रिशततमः सर्गः ३०९

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वाल्मीकि बोले–हे भारद्वाज! इस प्रकार वसिष्ठजी के वचन सुनकर रघुवंशी कृत कृत्य हुए। जैसे रामजी सुनकर संशय से रहित होकर जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं, ऐसे तुम भी विचरो, यह मोक्ष उपाय ऐसा है कि अज्ञानी भी जिसको सुनकर परम पद को प्राप्त हो जाये, तुम्हारी तो क्या बात है, तुम तो आगे भी बुद्धिमान् हो और जिस प्रकार मुझको ब्रह्माजी ने कहा था, वही मैंने तुम्हें सुनाया है, जैसे राम आदि राजकुमार और दशरथ आदि राजा लोग जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं, ऐसे तुम भी विचरो, उनमें मोह भी दृष्टि आया है, परन्तु स्वरूप से चलायमान नहीं हुए, ऐसे ही विचरो और ज्ञान जैसा सुख और कोई नहीं, और अज्ञान जैसा दुःख कोई नहीं, इससे अधिक कैसे कहें, यह जो मैंने मोक्ष उपाय तुझको कहा है, वह परम पावन है और संसार समुद्र से पार करने हारा है। दुःखरूप अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य हैं, सुखरूप कमलों की उत्पत्ति के लिये सुन्दर सरोवर हैं, जो पुरुष इसका बार बार विचार करे, वह तो महामूर्ख हो भी परम पद को प्राप्त हो जाये, जो कोई इस मोक्ष उपाय को पढ़ेगा, इसकी कथा करेगा, या सुनेगा, लिखेगा, लिखकर पुस्तक किसी को देगा अथवा मुद्रित पुस्तक का दान करेगा तो यदि उसको इच्छा होगी तो ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी। राजसूय यज्ञ का फल मिलेगा, विचार करेगा तो ज्ञान को प्राप्त होगा और मुक्त हो जायेगा, हे अंग! यह जो मोक्ष उपाय है, बड़ा शास्त्र है, इसमें बड़ी कथा है। नाना प्रकार की युक्तियाँ हैं, उन कथा और युक्तियों से वसिष्ठजी ने रामजी को जगाया है, वही ज्ञान मैंने तुझको सुनाया है। अपने उपदेश से उसको जीवन्मुक्त किया और कहा कि तुम राज्यलक्ष्मी के भोक्ता बनो, वही मैं तुम्हें कहता हूं कि सावधान होकर तप करो, आत्मसत्ता में निश्चय रक्खो। इस उपदेश से रघुवंशी कृत कृत्य हुए हैं, वह

मैंने तुम्हें यथावत् कहा है, इस निश्चय को धारण करके कृतार्थ हो जाओ, जितनी इतिहास कथाएँ हैं, उनके भिन्न भिन्न नाम सुनो। वैराग्य प्रकरण में संपूर्ण रामजी के प्रश्न हैं और मुमुक्षु प्रकरण में शुक निर्वाण ही कहा है और उत्पत्ति प्रकरण में यह आठ आख्यान कहे हैं, एक आकाशजका १, दूसरा लीला का २, तीसरा सूची का ३, चतुर्थ इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र का ४, पंचम कृत्रिम इन्द्र और अहल्या का ५, षष्ठ चित्तोपाख्यान ६, सप्तम वाल्मीकि की कथा ७, अष्टम सांबर का आख्यान ८, स्थिति प्रकरण में चार आख्यान कहे हैं, एक भृगु के सुत का १, दूसरा दाम व्याल कट का २, तीसरा भीम भास दट का ३, चतुर्थ दासुर का ४, उपशम प्रकरण में एकादश आख्यान कहे हैं, एक जनक की सिद्ध गीता १, दूसरा पुण्य पावन का २, तीसरा बल को विज्ञान की प्राप्ति का ३, चतुर्थ प्रह्लाद विश्रान्ति ४, पंचमगाधि का वृत्तान्त ५, षष्ठ उद्दालक का निर्वाण ६, सप्तम सुरग का निश्चय ७, अष्टम परघ निश्चय ८, नवम् भास का ९, दशम् विलास संवाद का १०एकादशवीतवका का ११, निर्वाण प्रकरण में सप्तविंशति आख्यान कहे हैं, भुशुण्डि वसिष्ठ का १, महेश वसिष्ठाकार २, शिलाकोश ३, अर्जुन का उपदेश ४, स्वप्न व रुद्र का ५, बैताल का ६, भागीरथ का ७, गंगावतार का ८, शिखर ध्वज का ९, बृहस्पति कच प्रबोध १०, मिथ्या पुरुष का ११, भृंगीगण का१२, इक्ष्वाकु निर्वाण का १३, मृग व्यध का दृष्टान्त १४, बली बृहस्पति का १५, मंकी निर्वाण का १६, विद्याधर का १७, हरिणोपाख्यान १८, आख्यानोपाख्यान १९ विपश्चित् का २०, शिव का २१, शिला का २२, ब्राह्मण के पुत्र का २३, कुंददंत का २४, महाप्रश्नोत्तर वाक्य २५ शिष्यगुरु का २६, महोत्सव ग्रन्थ प्रशंसा फल २७, प्रकरण चतुष्टय में पंचाशत् आख्यानों का वर्णन हुआ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे वसिष्ठरामचन्द्रसंवादे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम नवादिकत्रिशततमः सर्गः ॥३०९॥

योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धं समाप्तम् ।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व
खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर, मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५, फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डिंग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

श्री

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई